मई १९५६

वर्ष ३ ❀ अंक ५

(शेष अगले पृष्ठ पर)

वार्षिक : साढ़े पाँच रुपये

सम्पादक-श्रीपतराय : भैरवप्रसाद गुप्त

शेष सूची

सम्पादकीय नियम

१—'कहानी' में केवल कहानियाँ छपती हैं। कविताएँ, लेख आदि कृपया न भेजें।

२—जो रचना प्रकाशित हो चुकी है या प्रकाशनार्थ भेजी जा चुकी है उसे कहानी के लिए न भेजिए।

३—'कहानी' के लिए सुवाच्य लिखावट में कागज के सिर्फ एक ओर पंक्तियों में काफी फासला देकर लिखी हुई रचनाएँ भेजिए और अपनी रचना की प्रतिलिपि अवश्य रख लीजिए।

४—अनूदित कहानियों के साथ मूल रचना और मूल लेखक के नाम भी अवश्य भेजिए।

५—स्वीकृत रचना की ही सूचना सम्पादक द्वारा दी जाती है।

६—सम्पादक सम्बन्धी सारा पत्र-व्यवहार सम्पादक 'कहानी' के नाम से करना चाहिए।

व्यवस्थापकीय नियम

१—'कहानी' प्रति मास को पहली तारीख को प्रकाशित होती है।

२—एक प्रति का मूल्य छः आना और सालाना चंदा विशेषांकों के साथ साढ़े पाँच रुपये है। तिमाही और छमाही ग्राहक नहीं बनाये जाते।

३—वी० पी० भेजने में अधिक खर्च पड़ता है, इसलिए वी० पी० नहीं भेजी जाती। ग्राहक बननेवालों को साढे पाँच रुपये चन्दा मनीआर्डर से भेजना चाहिये।

४—नमूने के लिए छः आने का डाक टिकट भेजिए, नमूना मुफ्त नहीं भेजा जाता।

५—कार्यालय से सभी प्रतियाँ अच्छी तरह जाँच-पड़ताल करके भेजी जाती हैं। यदि १० तारीख तक प्रति न मिले तो डाकखाने में पूछ-ताँछ करके डाकखाने के अधिकारी का लिखित जवाब 'कहानी' कार्यालय को भेजना चाहिए।

६—पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए। बिना ग्राहक-नम्बर लिखे जवाब देने या कार्यवाही में देर हो सकती है और यह भी सम्भव है कि कोई कार्यवाही न की जा सके।

७—अगर आप एक साथ पाँच ग्राहकों का सालाना चन्दा साढ़े सत्ताइस रुपए मनिआर्डर से भेज दें, तो साल भर तक आप को 'कहानी' तथा विशेषांक बिना मूल्य मिलेगा।

८—व्यवस्था-सम्बंधी सारा पत्र-व्यवहार व्यवस्थापक 'कहानी' के ही नाम से कीजिये।

व्यवस्थापक, 'कहानी' कार्यालय,

सरस्वती प्रेस, सरदार पटेल मार्ग, पो० बा० नं० २४, इलाहाबाद—१

कहानी

'कहानी' की बात

यह अंक

इस अंक में कहानी क्लब तथा पुस्तकालय के साथ कुल तेरह कहानियाँ हैं, छः हिन्दी की नयी, पाँच प्रादेशिक भाषाओं की, एक विदेशी तथा एक लोककथा।

पहली कहानी 'ऊदबत्ती' के लेखक नरेन्द्र मित्र बंगला के चोटी के कथाकारों में हैं। चारों ओर से निस्सहाय एक लड़की किस प्रकार एक मीठे बोल पर न्योछावर हो जाती है! लेकिन उसके साथ एक दासी से भी बदतर व्यवहार करनेवाले उसके मालिक यह कैसे सहन कर सकते हैं कि एक साधारण फेरी करनेवाला उनकी 'इज़्ज़त' के साथ इस तरह की हरकत करे?

'नंगा आदमी, नंगा ज़ख़्म' के लेखक अमृतराय से आप सुपरिचित हैं। सारी योजनाओं के ऊपर देश की नंगी इन्सानियत व्यंग बनकर खड़ी है या दर्द, इसे आप समझें!

सरस्वती प्रेस, सरदार पटेल मार्ग, इलाहाबाद

क्षेत्रीय कार्यालय:

सरस्वती प्रेस	बिहार प्रकाशन गृह	सरस्वती प्रेस बुकडिपो	सरस्वती प्रेस बुकडिपो
पोस्ट बाक्स—२२	खजांची रोड	३७८८, फैज़ बाज़ार	अमीनुद्दौला पार्क
बनारस—१	पटना—४	दिल्ली—७	लखनऊ

सआदत हसन मन्टो की कहानी 'सरकंडों के पीछे' एक कबूतर के ज़िबह होने की कहानी है। इसका भयानक अन्त देखकर कलेजा काँप उठता है, लेकिन फिर कुछ सोचने को भी विवश करता है। मन्टो ही ऐसी कहानी लिख सकते थे।

'बूढ़े का चित्र' के लेखक गौरीशंकर तिवारी नये हैं। दो वर्षों से ही यह कहानियाँ तथा कवितायें लिख रहे हैं। आजकल भोपाल शासन के अन्तर्गत डायरेक्टरेट आफ़ पंचायत राज में क्लर्क हैं।

पंजाबी के सुप्रसिद्ध कथाकार कुलदीप सिंह ओबराय की कहानी 'निम्मो' आपका पर्याप्त मनोरंजन करेगी। इसका हल्का-फुल्का हास्य और व्यंग्य आपको अवश्य हँसायगा।

नये लेखकों में विद्यासागर नौटियाल बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ते जा रहे हैं। पहाड़ी जीवन को लेकर इन्होंने कुछ बड़ी ही सशक्त कहानियाँ लिखी हैं। 'ओवरकोट' की एक जेब और अनगिनत हाथ! एक अनार और सौ बीमार! यह घर-घर की कहानी है।

'कर-मन्त्री' के सुप्रसिद्ध उर्दू हास्य-लेखक कन्हैयालाल कपूर से आप पूर्ण रूप से परिचित हैं। जनता पर बढ़ते हुए करों की समस्या कोई हास्य का विषय नहीं। लेकिन कभी-कभी कोई अति स्वयं हास्य का विषय बन जाती है। कन्हैयालाल कपूर के इन बहुमूल्य सुझावों से, आशा है, हमारे शासक अवश्य लाभ उठायेंगे!

राजेन्द्र यादव की कहानी 'ब्रह्म और माया' एक आपबीती है। यह लेखकों की कुछ समस्याओं की ओर संकेत करती हैं। पाठकों को भी अवश्य रस मिलेगा।

मराठी के सुप्रसिद्ध कथाकार वि० स० खांडेकर की कहानी 'मानव' काफी पुरानी है, फिर भी इसका संदेश पुराना और अनुपयोगी नहीं। हमारे यहाँ बहुत-से ऐसे लोग हैं, जो अपनी ओछी वृत्तियों को भी एक तर्क से ऊँची समझते हैं। 'मानव' आपके समक्ष सच्चे मानव का आदर्श उपस्थित करता है।

लाडली मोहन की एक कहानी पहले भी आप पढ़ चुके हैं। 'एक असफल आदमी' एक सीधे-सादे, सहृदय, उदार अध्यापक की कहानी है। वह असफल रहकर भले ही 'सफलों' जैसा अपना स्थान न बनाये, लेकिन हमारी पूरी सहानुभूति और श्रद्धा का पात्र तो है ही।

'बीना' के लेखक विजय चौहान बिल्कुल नये, पर प्रतिभा-सम्पन्न हैं। यह स्व० सुभद्राकुमारी चौहान के सुपुत्र हैं।

गैराल्ड कर्श की कहानी 'आतिथ्य' का आतिथ्य जितना अद्‌भुत है, उतना ही उसकी शत्रुता भी। इस कहानी पर अन्तर-राष्ट्रीय पुरस्कार मिल चुका है।

उपन्यास

'उपन्यास' की तैयारी पूरी हो चुकी है। १५ जून तक इसका पहला अंक आपके हाथ में होगा। अभी तक आपने रियायत से लाभ न उठाया हो, तो तुरन्त ८) मनिआर्डर से भेजकर वार्षिक ग्राहक बन जायँ।

नया आवरण

इस अंक के नये आवरण के चित्रकार भी कमल बोस ही हैं। आशा है, आप पसन्द करेंगे।

माान्यवरेषु,

मैं आपके लिए पूर्ण रूप से अपरिचिता हूँ। बिना परिचय के आपको यह चिट्ठी लिखने बैठी हूँ, मेरी धृष्टता क्षमा करेंगे। लेकिन मुझे अपनी ओर से एक बात कहनी है। मैं आपकी एक परिचिता लड़की के अनुरोध से ही उसका वक्तव्य आपको लिखकर जतला रही हूँ। पहले उसकी ज़बानी ही लिखना शुरू किया था मैंने। किन्तु उसने ऐसा असम्बद्ध कहना प्रारम्भ किया कि मेरे लिए उसे सीधी तरह लिखना असाध्य हो गया। इसलिए मैं उससे सारी घटना सुनकर, उसकी बातें यथा-सम्भव समझने की चेष्टा करके यह चिट्ठी आपको लिख रही हूँ। नहीं जानती, इससे उद्देश्य कितना सिद्ध होगा, उसके मन की बात कहाँ तक आपको समझाकर कह सकूँगी।

पहले मैंने उससे कहा था कि तुम्हीं दो-चार लाइन जो लिख सको, लिख दो। तुम्हारे अपने हाथ की चिट्ठी पाकर विमल बाबू खुश होंगे। किन्तु रेणु जरा भी राजी न हुई। यह भी हो सकता है, आपके साथ उसका जो सम्बन्ध है, उस कारण सभी घटना स्पष्ट लिखने में उसे लज्जा आ रही हो।

आप, लगता है, रेणु को अब पहचान गये होंगे। आपके गाँव की वही अनाथ लड़की, जिसे बागबाजार में चौधुरी बाबू के घर तीन साल पहले आप छोड़ आये थे। चौधरी बाबू आपके आत्मीय हैं। हिसाब लगाने पर, भले दूर का क्यों न हो, उनके साथ रेणु का भी कोई सम्बन्ध निकलता है। यही बात सोचकर आप उसे अन्य कहीं न रख कर, किसी आश्रम-वाश्रम में न भेजकर चौधुरी बाबू के यहाँ छोड़ आये थे। अब सोचती हूँ, लड़की की अन्य कोई व्यवस्था ही उचित होती। उससे कम-से-कम रेणु कुछ लिखना-पढ़ना या हाथ का काम-काज तो सीख जाती। चौधरी बाबू के के घर पर ऐसी कोई सुयोग-सुविधा उसे नहीं मिली।

प्रथम-प्रथम अवश्य घर की बहुओं की छोटी-बड़ी फर-मायशें पूरी करना, लड़कों-बच्चों को गोद लेना, खिलाना-पिलाना, सुलाना, यही सब छोटे-मोटे कामों का भार उसके ऊपर था। सभी ने कहा था, घर की लड़की की तरह रहो। तुम तो हमारी आत्मीय हो, लज्जा-संकोच की क्या बात है

ऐसी अभ्यर्थना पाकर रेणु को बड़ी खुशी हुई थी।

बड़ा दुमंज़िला मकान। घर-भर आदमी। उसकी तरह सोलह-सतरह वर्ष की लड़कियाँ ही हैं घर में चार-चार। कोई स्कूल में पढ़ती है, कोई कालेज में। सभी उससे दोस्ती जमाने के लिए, अपने दल में उसे मिलाने के लिए, बेचैन रहतीं। कोई अपनी पुरानी साड़ी दे देती, कोई स्नो-साबुन देकर बन्धुत्व स्थापित करने की चेष्टा करती। घर के लड़के भी जैसे उसके ऊपर तनिक विशेष कृपालु थे। बहनों को छोड़कर रेणु को ही अपने विभिन्न कामों के लिए वे बुलाते। क़ीमती क़लम रेणु के हाथ में देकर कहते, धो-पोंछकर स्याही तो भर दो।

बिस्तर बिछा देना, फूलदानी में फूल सजाना, इन-सब कामों को, रेणु के अनाड़ी होते हुए भी, उसी से कराने में घर के लड़कों को आनन्द आता। घर की लड़कियाँ मजाक करके कहतीं, रेणु अकेली ने हम लोगों की जगह छीन ली

बहुएँ भी परिहास करतीं, तुम लोगों की जगह तो ठीक ही है, ननदजी, हमारी जगह के लिए ही चिन्ता है।

यह-सब हास-परिहास समझने की उम्र रेणु की हो गयी थी। वहाँ से वह लज्जा के मारे भागकर गृहिणी के पास जा बैठती।

इस बीच कभी-कभी आप खोज-खबर लेने आते थे। रेणु को बुलाकर जिज्ञासा करते, कैसी हो ?

रेणु मुस्कराकर कहती, अच्छी हूँ।

घर की मालकिन से आप उसकी प्रशंसा ही तब सुना करते थे। ऐसी शान्त, शिष्ट, कर्मठ, भली लड़की और नहीं हो सकती।

किन्तु अवस्था क्रमशः बदलने लगी। शोभा बाजार में चौधुरी बाबू की जो कपड़े की दूकान है, उसमें लाभ का अंक कम हो गया। आफिस में छँटनी के फलस्वरूप घर के दो-दो लड़के बेकार हो गये। और कालेज से नये जो लोग पास होकर निकले, उनकी नौकरी लगने का कोई लक्षण न दिखायी दे रहा था। कपड़े की दूकान की आय ऐसी नहीं रह गयी थी, जिसमें इतने बड़े परिवार का खर्च भली भाँति चल सके।

यह-सब बाहर की ख़बरें आप निश्चय ही जानते हैं। किन्तु भीतर की स्त्रियों का व्यापार, मालूम पड़ता है, उतना नहीं जानते। कारबार की अवस्था ख़राब होने से बड़े बाबू, छोटे बाबू दोनों का ही मिजाज बिगड़ गया। परिवार में लड़ाई-झगड़े, बातचीत शुरू हो गयी। सभी डाँट खाने लगे। रेणु भी नहीं छोड़ी गयी।

बड़े बाबू बोले, यह सब बाबूगिरी-विलासिता अब नहीं चलेगी, खरच कम करो।

दूकान के दो कर्मचारियों को निकाल दिया गया। बाज़ार-खर्च का पैसा चोरी करता है, कहकर घर के नौकर को भी बिदा कर दिया गया। एक नौकरानी थी, खाने-कपड़े के साथ दस रुपया लेती थी, उसे भी निकाल दिया गया। बोले, अपना-अपना कमाओ, खाओ। बाबूगीरी बहुत हो चुकी।

बाहरी आदमियों में रह गयीं एक मजदूरनी और रेणु। रेणु को डर लगने लगा कि बड़े बाबू कहीं उसे भी जाने को कह दें, तो वह कहाँ जायगी ? इस घर के सिवा पृथ्वी पर और कहीं कोई जगह है, यह बात रेणु को याद नहीं आयी। रेणु अपनी ही इच्छा से घर का ज्यादे-से-ज्यादा काम करने लगी। गृहिणी के, बहुओं के हाथ का काम छीन लेती। रसोई करती, पानी खींचती, बीस आदमियों के राशन के चावलों के कंकड़ बीनती, ताकि कहीं कोई उसे अनावश्यक न समझे।

सो अवश्य किसी ने नहीं किया। घर के अनेक कामों का भार गृहिणी ने उसके ऊपर छोड़ दिया, विशेष करके रसोई-घर का भार प्रायः सम्पूर्ण ही रेणु के ऊपर आ पड़ा। बिना पड़े उपाय क्या था ? बड़ी गृहिणी, छोटी गृहिणी, किसी के भी बच्चे होना बन्द नहीं हुआ था। और बहुओं के भी शुरू हो गये थे। उसके साथ बीमारी-वीमारी भी है। लड़कियों पर परीक्षा का भूत चढ़ा था। घर के काम-काज से यों भी उनका सम्बन्ध कम था। इसी लिए स्वाभाविक रूप से रेणु को ही सब उठा लेना पड़ा।

आप तब अपनी नौकरी-चाकरी और सभा-समिति में व्यस्त रहते थे। आने का अवसर अधिक नहीं मिलता था। तो भी दो-चार माह के अन्तर से कभी-कभी जब आकर पूछते, कैसी हो, रेणु ? तब उसके पास वही एक उत्तर मिलता था, अच्छी ही हूँ, विमल दा।

आप अपने काम से चले जाते। दूसरे कोई प्रश्न नहीं पूछते थे। यदि पूछते, तो उसी समय शायद आप कुछ-कुछ समझ जाते। मुझे तो लगता है, पूछे बिना भी आप कुछ जान गये थे, किन्तु कुछ करना आपके लिए कदाचित सम्भव नहीं था। आप अविवाहित, किसी मेस में रहते थे। आपके ही झंझट-झमेले कम न थे। यह-सब जानती थी, इसलिए रेणु ने भी आपसे कुछ नहीं कहा। सोचती थी, व्यर्थ व्याकुल करने से क्या लाभ। आपने उसके लिए यथेष्ठ किया था और यदि कुछ और करने को होता, तो आप स्वयं ही करते।

पिछले साल बड़े बाबू की [illegible] छोटी और छोटे बाबू की [illegible]सी लड़की, दीप्ति और [illegible] छुई तृप्ति, दोनों का एक साथ ही [illegible]ह हुआ। उसी विवा[illegible] में आप निमन्त्रण पर आये थे, बड़ी गृहिणी [illegible] मुँह से रेणु के नाम प्रथम बार आप [illegible] सुने गये। रेणु ओट में खड़ी सब सुन रही थी। बड़ी गृहिणी कह रही थीं आपसे, रेणु का पहले की तरह वह शान्त स्वभाव अब नहीं रह गया। बड़ा मुँह हो गया है। बात-बात में जबान लड़ाती है, मुँह पर जवाब देती है। और भी एक गुण बढ़ गया है। रास्ते के फेरीवाले को बुलाकर हँसी-मजाक करती है। ये-सब बातें सुनकर आपने जो भ्रू संकुचित की थी, सो रेणु की दृष्टि से छिपी नहीं रह सकी। आपने कहा था, यह सब तो ठीक नहीं, मौसीजी। आप उसे डाँट दें।

आपकी यह बात सुनकर रेणु को बड़ा ही दुःख हुआ था। उसके हाथ में उस समय दही की हाँड़ी थी, सोचा, उसे रख आकर, आपसे सब समझाकर कहेगी।

रेणु जबान लड़ाती है, बातों का जवाब देती है, सो ठीक ही। उस अकेली के सिर पर ही आप सब काम डाल दीजिए, और पान से थोड़ा-सा ही चूना गिर पड़ने पर आप बुरी तरह उसपर फट पड़ें, तो एकदम मुँह बन्द रखकर वह कब तक रह सकती है? वह भी रक्त-मांस की पुतली है। किन्तु कोई ख़राब बात उसने नहीं कही। एक दिन सिर्फ़ छोटी गृहिणी से कहा था, ऐसी बिना पैसे की नौकरानी नहीं मिलेगी! उन्होंने भी जवाब दिये बिना नहीं छोड़ा, कहा था, जहाँ पैसा मिले, वहीं चली जा। टुकड़ा डालने से कुत्तों का अभाव नहीं होगा। आजकल के जमाने में खाना-कपड़ा देकर और कौन कितना देता है!

ये सभी बातें आपसे कहेगी, उसने सोचा था। किन्तु लौटकर देखा कि आप विवाह-घर का पान खाकर चल दिये थे। आप केवल एक पक्ष की बातें ही सुन गये, और दूसरे पक्ष की कुछ भी नहीं सुनी, इस कारण रेणु के मन में दुःख और, यही नहीं, क्रोध भी हुआ था आपके प्रति। सुयोग पाकर रेणु आपसे बहुत-सी बातें कहती। चौधुरी बाबू के कारोबार की अवस्था पहले से अच्छी हुई, फिर भी घर के काम-काज के लिए उन लोगों ने कोई नया आदमी नहीं रखा, जल खींचना, मसाला पीसना, दो बेला रसोई तपना, सभी-कुछ रेणु का ही करना पड़ता, यह-सब आपको वह सुनाती।

और फेरीवाले को बुलाकर बातें करने की बात। वह भी रेणु के मुँह से ही आप सुन पाते। उनकी उस रमाकान्त बोस स्ट्रीट की गली से कितने ही फेरीवाले निकलते थे। कोई चीज़ें बेचना चाहता, कोई खरीदना। छींट की साड़ियाँ, बर्तन, शीशियाँ, बोतलें, सोनपापड़ी, मूँगफली, फूल, ऊदबत्ती. सभी के फेरीवाले चौधुरी बाबू के घर के पास से निकला करते थे। दोपहर या दिन ढलती बेला आकर हाँक लगाते थे। घर की बहुएँ दरवाज़े के पास आकर चीजें उठाती-धरतीं, देखतीं, दर-दाम करतीं, कोई-कोई चीज़ें खरीदतीं, अधिकांश योंही लौटा देती थीं।

एक दिन शाम को नयी बहू नीलिमा ने दुमंजिले से कहा, रेणु, मैं बाल बाँध रही हूँ। ऊदबत्तीवाला आया है। दो आने की ऊदबत्ती ले लो तो उससे। उसकी ऊदबत्तियाँ बहुत अच्छी होती हैं।

शाम के जलपान के लिए रेणु उसी समय आटा गूथने बैठी थी। जल्दी से हाथ धोकर सदर दरवाज़े के पास आ खड़ी हुई, दो आने की ऊदबत्ती दो तो।

लेकिन, दो, शब्द उसके मुँह से नहीं निकल सका। बाईस-तेइस वर्ष का युवक। लम्बा-पतला चेहरा। शरीर पर एक छींट की हाफ़ शर्ट। पैरों में सैंडिल भी है। उसे क्या चट से 'तुम' कहना सहज है! फेरीवाला ही हुआ तो क्या!

चार आने कीमतवाला पैकेट लें, तो और भी अच्छा होगा, फेरीवाले ने तनिक मुस्कराकर कहा था।

रेणु ने कहा था, नहीं, नहीं आप दो आनेवाला ही दे दीजिए।

फेरीवाला और कुछ न कहकर दो आने की ही ऊदबत्तियाँ देकर चला गया था।

दूसरे दिन दोपहर के कुछ देर बाद फेरीवाला फिर आ हाजिर हुआ—ऊदबती!

रेणु ने दरवाज़े से आगे आकर कहा, आज जरूरत नहीं हम लोगों को। कल जो दे गये थे, वही पड़ी हैं।

फेरीवाला बोला, थोड़ी-बहुत ले लीजिए। कल आपके यहाँ बोहनी करने से मेरी बिक्री बहुत अच्छी हुई थी।

कहानी

रेणु ने मुस्कराकर कहा, यह बात, मालूम पड़ता है, सब घरों में एक बार कहा करते हैं।

फेरीवाला भी मुस्कराया, नहीं, नहीं, सच कहता हूँ। आपके हाथ से बोहनी होने से कल मुझे बहुत लाभ हुआ था।

ऐसे शुभ लक्षण रेणु में हैं, ऐसी बात इसके पहले किसी ने उससे नहीं कही थी। बहुत अच्छा लगा उसे, बोली, ठहरिए। मैं पैसा लेकर आती हूँ।

उस दिन रेणु फिर पैसे मांगने नयी बहू के पास नहीं गयी, पुरानी बहुओं के पास भी नहीं। छोटे-से एक बार्ली के डिब्बे में दो-चार पैसे करके स्वयं जो संचय किया था, उसी में से एक दुअन्नी निकाल ले आयी।

फेरीवाला रंगीन कागज़ में लिपटी ऊदबत्तियों का एक और पैकेट भी उसके हाथ में दे गया।

ऊदबत्तियाँ सभी रेणु ने नहीं जलायीं। घर की बहुओं को भी दो-दो, चार-चार करके बाँट दीं।

नयी बहू बोली, आज बड़ी खुश हो! अब तक क्या बातें हो रही थीं फेरीवाले से?

वाह, और क्या बातें होंगी!

नीलिमा ने मुस्कराकर कहा, मैंने सब सुन लिया है!

बड़ी गृहिणी ऊदबत्ती देखकर नाराज़ होने लगीं, कल ही कितनी ऊदबत्तियाँ खरीदी थीं, नयी बहू! आज फिर क्यों व्यर्थ पैसा नष्ट किया?

नीलिमा ने जवाब दिया, आज मैंने नहीं खरीदीं, माँ। रेणु ने अपने पैसों से खरीदी हैं।

बड़ी गृहिणी ने जवाब दिया, अपना पैसा, पराया पैसा, मैं नहीं समझती, बहू। पैसा तो सभी एक जगह से ही आता है। घर-भर के लोग यदि इस तरह शाहखर्च हो उठें, तो बस!

किन्तु बड़ी गृहिणी के क्रोध और बकझक से रेणु का मन उस दिन खराब नहीं हुआ। उनकी किसी बात का जवाब नहीं दिया उसने। सन्ध्या बेला घर का काम-काज समाप्त कर, मुँह-हाथ धोकर, बाल बाँधकर एक धुली हुई साड़ी पहनकर अपने कमरे में ऊदबत्तियाँ जलायीं रेणु ने।

रसोई-घर और भांडार-घर के बीच छोटी-सी एक कोठरी की तरह जगह है। वही उसका कमरा है। पहले अवश्य वह दुमंज़िले के एक कमरे में छोटे बच्चों के साथ रहती थी, किन्तु घर के दो लड़कों की शादी हो जाने से कमरों की कमी पड़ गयी। रेणु नीचे उतर आयी थी इस कमरे में। सन्ध्या बेला उस कमरे में आज प्रथम बार उसने ऊदबत्ती जलायी।

खाना-पीना समाप्त होते ग्यारह बज गये। सभी के सोते-सोते बारह। किन्तु रेणु की आँखों में नींद नहीं। वह एक-के-बाद एक ऊदबत्ती जलाये जा रही थी।

उसके बाद से रेणु प्रायः ऊदबत्ती खरीदती और फेरीवाले के साथ कुछ-न-कुछ बातें भी कर लेती। जैसे, यह सब ऊदबत्तियाँ क्या आपके घर ही बनायी जाती हैं, या बाजार से खरीदकर आप बेंचते हैं? रुपये में कितना लाभ होता है? आप कब निकलते हैं फेरी करने, कब लौटते हैं? माँ और बेटे, दो होने पर भी इतनी अल्प आय से किस तरह खर्च चलता है? यही-सब साधारण कौतूहल, तुच्छ बातें।

बड़ी गृहिणी ने इतनी-सी बातों को उस दिन उतना बड़ा करके आपसे लगाया था!

किन्तु यह व्यापार छिपा न रह सका। ऊदबत्तीवाले के साथ रेणु की यह 'घनिष्ठता' केवल उनके घर के ही नहीं, मुहल्ले के आदमियों की नजर में भी पड़ी। ऊदबत्ती इस मुहल्ले में बिके या न बिके, फेरीवाला रोज़ आया करता। रेणु भी खिड़की के किनारे आ खड़ी होती। कभी दोनों में बातें होतीं, कभी नहीं भी होतीं; फिर भी एक बार देखना ज़रूर होता था। सारे दिन के काम-काज के बीच रेणु इसी मुहूर्त्त की प्रतीक्षा करती। रोज उसी विशेष समय पर खिड़की के पास आ खड़ी होती। एक पैकेट ऊदबत्ती लेती। किन्तु अब फेरीवाला पैसा नहीं लेता था। रेणु के पास भी इतने पैसे कहाँ थे। खिड़की की एक लोहे की छड़ अपने-आप निकल गयी थी (रेणु यही कहती है), या उसने स्वयं निकाल डाली थी (चौधुरी-घर का यही अभियोग है), मुझे ठीक नहीं मालूम, उसी के भीतर से कभी-कभी चाय के कप भी रेणु फेरीवाले के हाथ में दे देती।

इस व्यापार को लेकर मुहल्ले में जो नाना प्रकार की फुसफुसाहटें और हँसी-मजाक चलते थे, उसे मैंने भी लक्ष्य किया था।

उसके बाद कल की घटना कहती हूँ। शनिवार को आफ़िस की जल्दी छुट्टी हो गयी थी। घर में काम था, इसलिए मैं और कहीं न जाकर घर आ रही थी जल्दी-जल्दी। किन्तु अपनी गली में घुसी, तो देखा कि आगे नहीं जा सकती। भीड़, गोल-माल, हो-हल्ला। उसी ऊदबत्तीवाले को पकड़कर चौधुरी-घर के पहलवानों की तरह दो लड़के घूँसे-पर-घूँसे चला रहे थे। मुहल्ले के और सभी लड़के-बूढ़े भी उनके साथ जुट गये थे।

फेरीवाला उस मार को बचाते-बचाते चिल्ला रहा था, पहले मेरी बात तो सुनिए। हम लोगों ने विवाह करने का निश्चय किया है...

मुहल्ले के सभी स्त्री-पुरुष यह बात सुनकर हो-हो करके हँस रहे थे और नाना प्रकार के व्यङ्ग-विद्रूप कर रहे थे। एक तरुण एक तरुणी से विवाह करेगा, इससे बढ़कर परिहास की बात संसार में जैसे और कोई हो ही नहीं सकता। तिस पर युवक फेरीवाला है, और लड़की है घर की नौकरानी।

फेरीवाले का पक्ष लेकर मैं दो-चार बातें कहने जा रही थी। किन्तु लोगों ने ऐसा मन्तव्य शुरू किया कि बाध्य होकर घर में घुस जाने को बाध्य हुई।

अन्त में उन लोगों ने लड़के को अधमरा करके गर्दन पकड़कर गली से बाहर कर दिया। पैकटों से खुल पड़कर ऊदबत्तियाँ रास्ते की धूल में बिखरी रह गयीं।

अपने दादा से यह बात मैंने कही, तो वह भी मेरे ऊपर थोड़ा गुस्सा होकर बोले, तुझे इन-सब बातों में पड़ने की क्या जरूरत?

मैं फिर नहीं गयी। किन्तु रेणु ही उस घर से जाने किस तरह भागकर मेरे पास चली आयी है। आमने-सामने ही घर हैं। उसके साथ मेरी साधारण-सी पहचान है। किन्तु अब भी मुझे रेणु इस तरह पकड़े हुए है, जैसे मैं उसकी चिरकाल की सहेली हूँ।

उससे मैंने कहा, तुम जाओ इस समय, कुछ दिन चुप-चाप रहो, उसके बाद जो व्यवस्था कर सकी, करूँगी।

किन्तु रेणु बोली, नहीं, दीदी, जिन लोगों ने उनको इस तरह मारा है, मैं उनके घर अब एक क्षण भी न रहूँगी।

दादा शान्त, शिष्ट, निर्विरोध आदमी हैं। वह बड़े व्याकुल हो रहे हैं। चौधुरी-घर के लोग डरा रहे हैं, पुलीस में मामला करने को। उसमें अवश्य सुविधा नहीं होगी उनको। रेणु की वयस अठारह पार कर चुकी है। किन्तु कानून ही तो सभी समय बड़ी चीज नहीं। अधिकांश क्षेत्रों में वह प्रबल के हाथों का ही अस्त्र है!

रेणु के अनुरोध से सभी बातें आपको लिख रही हूँ। लड़के का नाम-ठिकाना भी उसने जान लिया है, अजित विश्वास, बेलगाछिया की रिफ्यूजी कालनी में रहता है।

आप यद्यपि चौधुरी बाबू के आत्मीय हैं, आपके ऊपर रेणु को बहुत विश्वास है।

नमस्कार ग्रहण करेंगे। इति।

अनधिकार चर्चा के लिए और एक बार क्षमा चाहती हूँ।

विनीता,
माधुरी सेनगुप्त
बंगला से अनु० प्रशान्त कुमार

नंगा आदमी नंगा ज़ख्म

अमृत राय

गोरे-चिट्टे, मज़बूत काठी, मँझोला क़द, चेहरे पर खुशहाली का नूर, माथे पर केसरिया चंदन का रुपये के बराबर गोल-सा टीका, मुँह में पान रचा हुआ, फूले-फूले गुलाबी गाल, निहायत बारीक खादी की धोती और कुर्ता, आँखों पर सुनहरी डंडी का चश्मा, कलाई पर बेशक़ीमत सुनहरी घड़ी, जेब में पार्कर '५१ का सुनहरा सेट, पैर में सुनहरे काम के चप्पल, दाहिने हाथ की अनामिका में एक बड़ा-सा नीलम, जो उन्हें रास आ गया था, यही पण्डित मुकुटमणि त्रिपाठी थे।

पण्डित मुकुटमणि त्रिपाठी उन देश-सेवियों में नहीं थे, जो मोटा खाने और मोटा पहनने को ही सबसे बड़ी देश-सेवा समझते हैं। वह अच्छे-से-अच्छा खाते थे, अच्छे-से-अच्छा पहनते थे। किसी ने आज तक उनके शरीर पर महीन छोड़ मोटा कपड़ा नहीं देखा। और क्यों पहने कोई! भगवान ने जिसे समाई दी है, वह क्यों न रहे अच्छी तरह? लोग अक्सर अपनी विवशता को ही अपने जीवन-सिद्धान्त की शकल दे लेते हैं। पण्डित मुकुटमणि त्रिपाठी ने कभी ऐसा नहीं किया, क्योंकि एक तो उनके वैसे कोई अटल जीवन-सिद्धान्त नहीं थे और दूसरे आज तक कभी उनके सामने वैसी कोई विवशता नहीं आयी। अपने बाप के इकलौते बेटे थे। घर में सैकड़ों बीघे आराज़ी थी। सूद पर रुपये चलते थे सो अलग, और इसमें क्या शक कि रुपये का सूद पर चलना ही एक ऐसा चलना है, जिससे वह किसी ढंग की मंज़िल पर पहुँचता है! कहने की ग़रज़ यह कि उनके पिता पण्डित रघुवर चरण ने किसानी और महाजनी दोनों के मेल से अच्छी-ख़ासी जायदाद खड़ी कर ली थी। और मुकुटमणि उनके इकलौते बेटे! राजकुमारों-जैसा जीवन।

और अब तो वह जैसे राजा हैं ही। घर के राजा, बाहर के राजा। घर पर स्त्री का सुख, संतान का सुख, धन-धान्य का सुख। स्त्री सुन्दरी, उर्वरा। संतान पाँच और सब-के-सब बेटे, कन्या एक नहीं, जिसके लिए त्रिपाठीजी आजीवन अपनी स्त्री भागीरथी के ऋणी रहे। त्रिपाठीजी अक्सर मगन होकर अपनी मित्र-मंडली के बीच कहा करते—पाँचों पुत्र! यह तो सचमुच कमाल कर दिया बड़के की माँ ने! पाँच जने और पाँचों पुत्र। जैसे पाँच पाण्डव। बड़ा अच्छा कन्या तो सचमुच जी का जंजाल है। पहले तो ब्याह

के लिए तीस हज़ार निकालकर रख दीजिए, जो इतने पर भी वर-पक्ष का मुँह सीधा हो। कन्या तो सरासर मुकदमे की डिग्री है, जिसके घर आ जाय, उसकी कुर्की रखी हुई है।

लेकिन माँ भागीरथी की कुछ ऐसी कृपा हुई कि पंडित मुकुटमणि त्रिपाठी के घर कोई कुर्की-वुर्की नहीं आयी और वह बिलकुल बेदाग़ बच गये। जैसे सब-कुछ अदृश्य की किसी महती योजना के अनुरूप हो रहा हो। देखिए न, बात कहाँ से शुरू हुई मुकुटमणि अपने बाप के इकलौते बेटे हुए। पूछिए, इकलौते क्यों हुए? क्या उनके दो-चार भाई नहीं हो सकते थे? मगर नहीं हुए। यही तो भाग्य है, अदृश्य की योजना है। यही अदृश्य की योजना इसमें थी कि माँ भागीरथी ने कन्या एक भी नहीं दी और पूरे पाँच बेटे दिये।

उन्हीं में सबसे बड़ा, रामेश्वर, अब घर का काम-काज देखता है और पण्डित मुकुटमणि त्रिपाठी निर्द्वन्द्व भाव से देश-सेवा करते हैं। उनका जीवन अत्यन्त सुव्यवस्थित, सुनियोजित है। अदृश्य की योजना के संग पंडित मुकुटमणि की अपनी योजना कुछ उसी खूबी के साथ मिल गयी है, जैसे सोने में सुहागा। उधर सैकड़ों एकड़ के फ़ार्म पर रामेश्वर बाबू की देख-रेख में नये तरीक़ों से खेती होती है, बाक़ायदा ट्रैक्टर चलते हैं और डेयरी हैं और आम-अमरूद के बाग़ हैं और इधर पंडित मुकुटमणि अपने विपुल अवकाश और विलक्षण मेधा का सुन्दर उपयोग करके उन्नति की सीढ़ी-पर-सीढ़ी चढ़ते हुए अपने प्रदेश के योजना-मंत्री बन गये हैं, ताकि प्रादेशिक जीवन में भी वह ऐसी ही सुन्दर योजना चालू कर दें, जो उनके निजी जीवन में स्पष्ट दिखायी देती है।

माननीय त्रिपाठीजी इसके पहले आहार-मंत्री थे, लेकिन फिर विद्वज्जनों ने सोचा कि उनकी अनमोल सेवायें योजना-विभाग को मिलनी चाहिएँ, क्योंकि योजना आहार से भी ज़्यादा ज़रूरी है। सैकड़ों साल की ग़ुलामी के बाद जागा हुआ राष्ट्र आहार के बिना भले ही जी ले, योजना के बिना नहीं जी सकता। व्यक्ति की उन्नति की योजनाएँ, राष्ट्र की उन्नति की योजनाएँ, वैज्ञानिक विकास की योजनाएँ, सांस्कृतिक अभ्युत्थान की योजनाएँ, आगामी कल की योजनाएँ, सौ साल बाद की योजनाएँ, इस मर्त्य लोक की योजनाएँ, उस चन्द्र लोक की योजनाएँ, राष्ट्रीय योजनाएँ, अंतरराष्ट्रीय योजनाएँ, योजनाओं की एक अनन्त शृङ्खला। और ठीक भी है, राष्ट्र की उन्नति करना है, तो योजनाओं को होना है! राष्ट्र योजनाओं से चलते हैं। दूसरे शब्दों में, योजनाएँ ही वह इंजन हैं, जिनसे राष्ट्र चलते हैं। जिसके पास जितनी ही ज्यादा योजनाएँ हैं, समझिए कि उतनी ही त्वरित, उतनी ही अहिंसावादी उसकी प्रगति है, जैसे पानी से बिजली पैदा करने की योजना, बिजली से पानी पैदा करने की योजना, खेती की फसल बढ़ाने की योजना, खेतिहरों से खेत छुड़ाने की योजना, अंधों और बहरों को शिक्षित बनाने की योजना, शिक्षितों को अन्धा और बहरा बनाने की योजना, पुराने बेकारों को काम पर लगाने की योजना, नये बेकार पैदा करने की योजना, और इसी तरह की दूसरी योजनाएँ!

स्पष्ट ही जहाँ इतनी और इतने विभिन्न प्रकार की योजनाएँ हों, वहाँ एक ऐसे आदमी की ऐन ज़रूरत है, जिसका बस एक ही काम हो, योजना बनाना, जो और किसी बात की रत्ती-भर चिन्ता किये बगैर बस बैठा इतमीनान से योजनाएँ बनाया करे। इसी अनिवार्यता को ध्यान में रखकर योजना-मंत्री के पद की सृष्टि की गयी और पंडित मुकुटमणि त्रिपाठी को उसपर नियुक्त किया गया।

इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है कि त्रिपाठीजी इस पद के लिए विशेष उपयुक्त थे, क्योंकि अजस्र अवकाश का उपभोग करते हुए उन्होंने जीवन-भर यही किया था। कभी कोई योजना, कभी कोई। बड़ा सरस उद्यम था, जैसा कि दूसरा उद्यम नहीं। इसमें जो ब्रह्मानन्द था, उसके सामने देवताओं का पेय सोमरस भी हेच था। फलतः वह एकाग्रचित्त होकर दिन-रात योजनाएँ बनाया करते, जिनमें परस्पर कोई भी संगति न होती और जो भांग का गोला चढ़ा लेने पर और भी ऊर्ध्वगामी हो उठतीं और आकाशगंगा में उड्डीयन करने लगतीं। पंडित मुकुटमणि त्रिपाठी के जीवन का यही सबसे बड़ा सुख था, सबसे बड़ा विलास और देश के कर्म-विभोर नेताओं के समीप यही उनकी सबसे बड़ी पात्रता थी। निदान सबने एकमत से त्रिपाठीजी को योजन-मंत्री बनाया। उनका कार्य था योजनाएँ बनाना और उनके प्रति लोक-मानस में उत्साह का संचार करना। यह बादवाला कार्य कुछ अधिक कठिन था, लेकिन वाग्विलासी, वागीश्वर पंडित मकटमणि त्रिपाठी के लिए सब-कुछ साध्य था,

उनकी जिह्वा पर सरस्वती विराजती थीं! जब त्रिपाठीजी अपनी ललित शब्दावली में आत्मा और परमात्मा, स्वार्थ और परमार्थ, देश और विदेश का घटाटोप बाँधते और भक्त जनों को अपना विराट् रूप दिखलाते, तो लोग गद्गद हो जाते और पागलों की तरह तालियाँ बजाने लगते। उनकी ओजः स्फूर्त वाणी में पता नहीं ऐसा कौन-सा जादू था कि बैठे हुए श्रोता मारे अकुलाहट के उठ खड़े होते और जो खड़े होते, वह मंत्र-मुग्ध-से चलने लग जाते या नहीं तो अपनी जगह पर खड़े-खड़े रबड़ के बबुओं की तरह उचकने लगते। त्रिपाठीजी की वाणी में कुछ ऐसी ही ऐन्द्रजालिक शक्ति थी।

ॐ

वही पंडित मुकुटमणि त्रिपाठी आज हमारे नगर में आ रहे हैं। धन्य भाग हमारे! ज़ोर-शोर से हर तरफ़ उनके स्वागत की तैयारियाँ हो रही हैं। वही नगरपालिका, जिसके लिए एक छोटा-सा भी काम पहाड़ ढकेलने के बराबर है, कि जैसे उसके अंग-अंग को गठिये ने जकड़ रखा हो, पिछले हफ़्ते से एकाएक इतनी स्फूर्ति आ गयी कि देखकर हैरानी होती है। महीनों की गंदगी घंटों में साफ हो रही है। सड़क कूटनेवाला इंजन, जो यों पता नहीं कहाँ कुम्भकर्ण के समान सोता रहता है, पिछले छः दिन से काम में इतना तत्पर है कि हाँफ-हाँफकर मरा जा रहा है और उसकी आँखों से गुस्से की चिनगारियाँ निकल रही हैं। इन्हीं सड़कों पर पैदल चलते-चलते न जाने कितनी बार मेरा पाँव गड्ढे में जा पड़ा है और मोच आ गयी है, लेकिन अब सब-कुछ ठीक हो जायगा। मंत्रीजी की तो बात ही अलग है, उनकी कैडिलक मोटर तक के पाँव में मोच नहीं आने पायगी।

तीन रोज़ से कलुआ भंगी मेरे घर नहीं आया है, मगर शहर चमचम करने लगा है। शहर के कोनों-अँतरों में अब भी वही गन्दगी का अखंड साम्राज्य है, मगर राज-मार्ग सब धुल-पुँछकर चमाचम चमकने लगे हैं। और यही मुनासिब है, जिधर से राजा की सवारी निकलेगी, उधर ही तो सफाई भी होगी, नहीं तो क्या मेरी-तेरी गली की सफाई होगी!

नगर की शोभा ही आज कुछ और है। जगह-जगह फाटक बने हैं, केले के खंभे लगे हैं, अशोक और आम की पत्तियों के तोरण झूल रहे हैं! फाटकों पर कहीं रुई के अक्षरों में और कहीं सुनहरी-रूपहली पन्नी के अक्षरों में 'स्वागतम्' और 'सुस्वागतम्' लिखा हुआ है।

इन-सब तैयारियों के साथ-साथ नेता के स्वागतार्थ जनता का भी उचित प्रबन्ध किया गया है। स्कूलों के लड़कों, दफ़्तरों के बाबू सबको इस शोभायात्रा में लाकर खड़े कर देने की सम्यक् व्यवस्था है। योजना-मन्त्री के स्वागत की योजना में कहीं कोई त्रुटि नहीं है। यहाँ तक कि कुछ कुलवधुओं को इसका संकेत भी दे दिया गया है कि जब मन्त्री जी का रथ उनके घर के सामने से निकले, तब वह अपने यहाँ से उनपर खील बरसायें और घर की नन्हीं-नन्हीं छोकरियाँ अक्षत से उनका टीका करें और पान का बीड़ा दें। उसी तरह मुहल्ले के चौधरियों के काम है कि उन्हें गेंदे और गुलाब और चाँदनी के फूलों की माला पहनायें।

ॐ

और इसी प्रकार, पूर्व-निर्दिष्ट योजनानुसार मंद-मंद मुसक्याते हुए पंडित मुकुटमणि त्रिपाठी ने नगर की प्रेम-विह्वल जनता के स्नेहार्घ्य को सिर-आँखों चढ़ाया और सभी दर्शकों को अपने शील और सौजन्य से मोहते हुए सभा-स्थल पर पहुँचे।

उनके पहुँचते ही दो सौ छिहत्तर आबाल-वृद्ध नर-नारी की विराट् भीड़ ने गगन-भेदी जयजयकार किया और तदन्तर मन्त्रीजी ने गद्गद होकर अपनी नैसर्गिक ओज-स्वता के साथ भाषण देना शुरू किया।

उन्होंने सबसे पहले लोगों को बतलाया कि आज उनका हृदय गा रहा है। इसके बाद उन्होंने यह भी बतलाया कि क्यों आज उनका हृदय गा रहा है। उन्होंने बतलाया कि मेरा हृदय इसलिए गा रहा है कि आज की इस शोभा-यात्रा और इस विराट् सभा को देखकर मेरे आनन्द की सीमा नहीं है! इसके बाद उन्होंने साधु आवेश में आकर अपने अंगूठों पर खड़े होते और इस प्रकार अपनी पाँच फुट साढ़े तीन इञ्च लम्बाई को आकाश से छुलाते हुए पैगम्बरों की तरह, उसी लहजे और उसी आनबान के साथ, ऐलान किया कि उन्हें चारों तरफ उत्साह की एक नयी

लहर दिखायी दे रही है, कि देश के सोये प्राण जाग रहे हैं, कि यही देश के अभ्युत्थान का प्रमाण है।

पंडित मुकुटमणि त्रिपाठी आत्म-विभोर होकर धारा-प्रवाह बोले जा रहे थे। भाँति-भाँति की उपमाएँ-उत्प्रेक्षाएँ, सुभाषित, चुटकुले, अंगूठी में नग की तरह जड़े हुए, एक-के-बाद-एक ताबड़-तोड़ निकलते चले आ रहे थे। उनका हृदय भरा हुआ था, उनकी वाक्-सरस्वती निर्झर के सदृश हो रही थी। अपने जीवन में कभी उन्होंने इतना मार्मिक भाषण नहीं दिया था। ज्वालामुखी के विस्फोट के समान उनके हृदय के भाव उबल-उबलकर बाहर निकलते चले आ रहे थे।

लेकिन तो भी, पता नहीं क्यों, आज वह श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध न कर पा रहे थे। पता नहीं, लोगों में कैसी चिमीगोइयाँ चल रही थीं। एक अजीब खुसुर-फुसुर थी, जिसका कोई अन्त न था। इस सबसे सभा का रङ्ग बदरङ्ग था। पंडित मुकुटकणि त्रिपाठी को इन्तहाई हैरानी थी, और हैरानी से भी ज्यादा गुस्सा। धीरे-धीरे उनके चेहरे की मुस्कराहट खिसियाहट में तबदील हो गयी। उनके तरकश के तमाम तीर चुक गये और कोई नतीजा न निकला। वह खुसुर-फुसुर बदस्तूर चलती रही।

आख़िरकार त्रिपाठीजी का भी ध्यान मजबूरन उस चीज की तरफ गया, जो सबकी निगाहों को अपनी तरफ खींच रही थी...

उधर पीछे दाहिनी तरफ, कोने में, जहाँ बिजली के दो बहुत तेज कुमकुमे लगे हुए थे, एक लम्बा-सा, साँवला आदमी एक पेड़ का सहारा लिये खड़ा था। सर और दाढ़ी के बाल जङ्गल-झाड़ी की तरह उगे हुए। सर से पैर तक नङ्गा, मादरजाद नङ्गा, एक चिन्दा नहीं जिस्म पर, बजुज़ एक मैली-कुचैली गांधी टोपी के, जो उसके सर के लिए बहुत छोटी थी और गौरैया की तरह चुन्दी पर बैठी हुई थी...

वह एक पागल आदमी था और इसी पागलपन की यह एक अलामत थी कि जहाँ उसे खुद अपनी लाज ढाँकने की रत्ती-भर परवाह न थी, वहाँ उसने अपनी कौम की लाज निहायत खूबी के साथ एक गाँधी टोपी से ढाँक रखी थी!

उसके इर्द-गिर्द एक छोटी-मोटी भीड़ जमा हो गयी थी, जो बस उसे देख रही थी और वह बुत की तरह खामोश खड़ा था, एक नंगा आदमी, जैसे कोई भी नंगा आदमी।

माननीय पंडित मुकुटमणि त्रिपाठी धुआँधार वक्तृता दे रहे थे और वह पागल हिन्दुस्तानी खड़ा था, बस खड़ा था, निर्वाक, निस्पन्द।

तमाशबीनों को इसी में बहुत मज़ा आ रहा था कि उनके पास ही एक पागल और नंगा आदमी खड़ा है। देखनेवाले बहुत बार घिनाकर मुँह फेर लिया करते और फिर थोड़ी देर बाद उसी को देखने लगते।

लिहाज़ा एक तरफ पंडित मुकुटमणि त्रिपाठी अपना अजस्र वाक्निर्झर बहा रहे थे और दूसरी तरफ़ लोगों की अलग अपनी-अपनी चिमीगोइयाँ चल रही थीं।

यहाँ तक कि अब त्रिपाठजी का चेहरा तमतमा उठा था और वह रह-रहकर मेज पर हाथ पटकने लगे थे।

और वह पागल तो बस खड़ा था, मूरत की तरह, खामोश कि जैसे दीवार पर एक बड़ा-सा पोस्टर चिपका दिया गया हो, कि जैसे वह एक कद्दे-आदम आईना हो।

उधर पंडित मुकुटमणि त्रिपाठी कभी कविता की शैली में और कभी दर्शन की शैली में और कभी लोकगाथा की शैली में एक-से-एक ऊँची बातें कह रहे थे और पसीने-पसीने हुए जा रहे थे, मगर वाह रे सुननेवालो, तमाशबीनो, अभागो, तुम्हारे सामने चाहे कोई अपना कलेजा भी निकालकर रख दे, तुम्हें तो बस अपने तमाशे से मतलब है! कभी तुमने अपने हीरे की क़द्र नहीं की! इसी लिए तुम्हारी यह हालत है! कहाँ तो आज एक इतनी बड़ी विभूति तुम्हारे बीच आयी है और कहाँ तुम्हें एक घिनौने पगले को देखकर अपनी खिलखिल से ही फ़ुर्सत नहीं है! लानत है तुम पर, हज़ार लानत!

योजना-मंत्री माननीय पंडित मुकुटमणि त्रिपाठी अब तक प्रथम पंच-वर्षीय योजना की सफलताओं का सिंहावलोकन कर चुके थे और अब बतला रहे थे कि कैसे द्वितीय पंचवर्षीय योजना से इसी धरती पर स्वर्ग की सृष्टि होने जा रही है, बस, धैर्य की जरूरत है।...

एक मनचले ने टीका की—अगर यही रफ्तार रही तो जरूर यह धरती स्वर्ग बन जायगी!

मगर वह धैर्य का पुतला पगला, नंगा, लबों को सिये हुए, बिजली की तेज़ रोशनी में एक नंगे ज़ख्म की तरह खड़ा रहा, पेड़ के तने से उठँगा हुआ, वैसा ही मादरज़ाद नंगा और वह गाँधी टोपी वैसी ही गौरैया की तरह उसके सर पर बैठी हुई और आँखें वैसी ही फटी-फटी, मगर नंगी नहीं, सूनी नहीं, क्योंकि उनमें एक तसवीर थी, उसके अपने बच्चे की, जिसका खून उसने किया था और जिस खून का हाल केवल उसकी आत्मा जानती थी।

२ मिन्टो रोड,
इलाहाबाद।
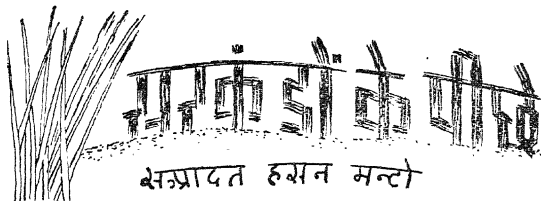
कौन-सा शहर था, इसके बारे में जहाँ तक मैं समझता हूँ, आपको जानने और मुझे बताने की कोई ख़ास ज़रूरत नहीं। बस, इतना ही कह देना काफ़ी है कि वह जगह जो इस कहानी से सम्बन्धित है, पेशावर के पास थी, सरहद के क़रीब। और जहाँ वह औरत रहती थी, वह घर झोंपड़ा-नुमा था, सरकंडों के पीछे।

घनी बाढ़-सी थी, जिसके पीछे उस औरत का मकान था, कच्ची मिट्टी का बना हुआ। चूँकि वह बाढ़ से कुछ फ़ासिले पर था, इसलिए सरकंडों के पीछे कुछ छिप-सा गया था, ऐसा कि बाहर कच्ची सड़क पर से गुज़रनेवाला कोई भी उसे देख नहीं सकता था।

सरकंडे बिल्कुल सूखे हुए थे। पर वे कुछ इस तरह ज़मीन में गड़े थे कि एक मोटा पर्दा बन गये थे। पता नहीं, उस औरत ने स्वयं वहाँ गाड़े थे या पहले ही से मौजूद थे। कुछ भी हो, कहना यह है कि उन्होंने बड़ा गहरा पर्दा कर रखा था।

मकान कह लीजिए या मिट्टी का झोंपड़ा। सिर्फ़ छोटी-छोटी तीन कोठरियाँ थीं, मगर साफ़-सुथरी। सामान थोड़ा था, मगर अच्छा। पिछले कमरे में एक बहुत बड़ा पलंग था, उसके साथ एक ताक़ था, जिसमें सरसों के तेल का दिया रात-भर जलता रहता था। पर यह ताक़ बहुत साफ़-सुथरा रहता था, और वह दिया भी, जिसमें प्रति दिन नया तेल और बत्ती डाली जाती थी।

अब मैं आपको उस औरत का नाम बता दूँ, जो उस छोटे-से मकान में, जो सरकंडों के पीछे छिपा रहता था, अपनी जवान बेटी के साथ रहती थी।

अनेक बातें मशहूर हैं। कुछ लोग कहते हैं कि वह उसकी बेटी नहीं थी। एक अनाथ लड़की थी, जिसको उसने बचपन से गोद लेकर पाल-पोसकर बड़ा किया था। कुछ कहते हैं कि वह उसकी नाजायज़ लड़की थी। कुछ ऐसे भी हैं, जिनका ख़याल है कि वह उसकी सगी बेटी थी। जो-कुछ भी असलियत है, उसके बारे में अधिकारपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता। यह कहानी पढ़ने के बाद आप स्वयं कोई-न-कोई राय क़ायम कर लीजिएगा।

देखिए, मैं आपको उस औरत का नाम बताना भूल गया। बात असल में यह है कि उस औरत का नाम कोई

महत्व नहीं रखता। उसका नाम आप कुछ भी समझ लीजिए, सकीना, महताब, गुलशन या कोई और। आख़िर नाम में क्या रखा है। लेकिन आप की सुविधा के लिए मैं उसे सरदार कहूँगा।

यह सरदार अधेड़ अवस्था की औरत थी। किसी समय ज़रूर ख़ूबसूरत होगी। उसके सुर्ख़, सफ़ेद गालोंपर यद्यपि कुछ-कुछ झुर्रियाँ पड़ गयी थीं, मगर फिर भी वह अपनी उम्र से कई वर्ष छोटी दिखायी देती थी। पर हमें उसके गालों से कोई मतलब नहीं।

उसकी बेटी (मालूम नहीं वह उसकी बेटी थी या नहीं) जवानी का बड़ा आकर्षक नमूना थी। उसके नख-शिख में ऐसी कोई बात नहीं थी, जिससे यह नतीजा निकाला जा सके कि वह बदचलन है। लेकिन यह असलियत है कि उसकी माँ उससे पेशा कराती थी और ख़ूब दौलत कमा रही थी। और यह भी असलियत है कि उस लड़की को, जिसका नाम फिर आपकी सुविधा के लिए नवाब रखे देता हूँ, इस पेशे से नफ़रत नहीं थी। वास्तव में वह आबादी से दूर एक ऐसे स्थान में पली-बढ़ी थी कि उसको सच्चे दाम्पत्य जीवन का कुछ पता नहीं था। जब सरदार ने उससे पहले पुरुष का उस निवाड़ी पलंग पर परिचय कराया, तो सम्भवतः उसने समझा होगा कि सारी लड़कियों की जवानी का आरम्भ इसी तरह होता है। अतएव वह अपनी इस कस्बियों की ज़िन्दगी से घुल-मिल गयी थी और वे मर्द, जो दूर-दूर से चलकर उसके पास आते थे और उसके साथ उस बड़े निवाड़ी पलंग पर लेटते थे, उसने समझा था कि यही उसके जीवन का उद्देश्य है।

यों तो वह एक बदचलन और बदकार औरत थी, उन मानों में जिनमें हमारी भली और पवित्र औरतें ऐसी औरतों को देखती हैं, मगर सच पूछिए तो उसको इस बात का तनिक भी अनुभव न था कि वह पाप का जीवन बिता रही है।...वह इसके बारे में सोच भी कैसे सकती थी, जबकि उसको इसका मौक़ा नहीं मिला था।

उसके शरीर में सहृदयता थी। वह हर मर्द को, जो उसके पास हफ़्ते-डेढ़ हफ़्ते के बाद लम्बा सफ़र करके आता था, अपने-आपको सौंप देती थी। इसलिए कि वह समझती थी कि हर औरत का यही काम है। और वह उस मर्द की हर सुविधा, उसके हर आराम का ख़याल रखती थी। वह उसकी कोई ज़रा-सी भी तक़लीफ़ बरदाश्त नहीं कर सकती थी।

उसको शहर के लोगों की ज़िन्दगी के नियमों का पता नहीं था। वह बिल्कुल नहीं जानती थी कि जो मर्द उसके पास मोटरों में आते हैं, सुबह-सवेरे अपने दाँत ब्रश के साथ साफ़ करने के आदी हैं और आखें खोलकर सबसे पहले बिस्तर में चाय की एक प्याली पीते हैं, फिर 'बाथ-रूम' जाते हैं। मगर उसने धीरे-धीरे बड़े अल्हड़ ढंग से इन मर्दों की आदतों के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली थी। लेकिन उसे बड़ी उलझन होती थी कि सब मर्द एक तरह के नहीं होते थे। कोई सुबह-सवेरे उठकर सिग्रेट माँगता था, कोई चाय और कुछ ऐसे भी थे, जो उठने का नाम ही न लेते थे। कुछ सारी रात जागते रहते और सुबह मोटर में सवार होकर भाग जाते थे।

सरदार बेफ़िक्र थी। उसको अपनी बेटी पर, या जो कुछ भी वह थी, पूरा विश्वास था कि वह अपने ग्राहकों को सँभाल सकती है। इसलिए वह अफ़ीम की एक गोली खाकर खाट पर सोयी रहती थी। कभी-कभी जब उसकी ज़रूरत पड़ती, उदाहरणार्थ जब किसी ग्राहक की तबीयत अधिक शराब पीने के कारण एकदम ख़राब हो जाय, तो वह उँघती हुई उठकर नवाब को आदेश दे देती थी कि उसको अचार खिला दे या कोशिश करके वह नमक-मिला गर्म-गर्म पानी पिलाकर उलटी करा दे और बाद में थपकियाँ देकर सुला दे।

सरदार इस मामले में बड़ी सावधान रहती थी कि जैसे ही कोई गाहक आये, वह नवाब की फ़ीस पहले ही वसूल करके अपने नेफ़े में उड़स ले। फिर वह अपने ख़ास अन्दाज़ में उसे आशीर्वाद देकर कि तुम आराम से झूले झूलो, अफ़ीम की डिबिया में से एक गोली निकालकर मुँह में डालकर सो जाती।

जो रुपया आता, उसकी मालिक सरदार थी। लेकिन जो भेंट-सौगात वसूल होती, वह नवाब ही के पास रहती थी। चूँकि उसके पास आनेवाले लोग मालदार होते, इसलिए वह बढ़िया-से-बढ़िया कपड़ा पहनती और तरह-तरह के फल और मिठाइयाँ खाती थी।

वह ख़ुश थी। मिट्टी से लिपे-पुते उस मकान में, जिसमें सिर्फ़ तीन छोटी-छोटी कोठरियाँ थीं। वह अपनी समझ में बड़ी दिलचस्प और सुखद ज़िन्दगी बिता रही थी। एक फ़ौजी अफ़सर ने उसे ग्रामोफ़ोन और बहुत-से रिकार्ड ला दिये थे। फ़ुरसत के समय वह उनको बजा-बजाकर फ़िल्मी गाने सुनती और उनकी नक़ल उतारने की कोशिश किया करती थी। उसके गले में कोई रस नहीं था, पर शायद वह इससे बेख़बर थी। सच पूछिए, तो उसको किसी बात की भी ख़बर नहीं थी और न उसको इस बात की इच्छा थी कि वह किसी चीज़ से बाख़बर हो। जिस रास्ते पर वह डाल दी गयी थी, उसको उसने ग्रहण कर लिया था, बड़ी बेख़बरी की हालत में।

सरकंडों के उस पार की दुनिया कैसी है, इसके बारे में वह कुछ नहीं जानती थी, सिवाय इसके कि एक कच्ची सड़क है, जिसपर हर दूसरे-तीसरे दिन एक मोटर धूल उड़ाती हुई आती है और रुक जाती है। हार्न बजता है, उसकी माँ, या जो कोई भी वह थी, खटिया पर से उठती है और सरकंडों के पास जाकर मोटरवाले से कहती है कि मोटर ज़रा दूर खड़ी करके अन्दर आ जाय। और वह अन्दर आ जाता है और निवाड़ी पलंग पर उसके साथ बैठकर मीठी-मीठी बातों में लग जाता है।

उसके यहाँ आने-जानेवालों की तादाद ज़्यादा नहीं थी। यही पाँच-छः होंगे। पर ये पाँच-छः स्थायी गाहक थे और सरदार ने कुछ ऐसा प्रबन्ध कर रखा था कि उनकी आपस की टक्कर न हो। वह बड़ी होशियार औरत थी। वह हर गाहक के लिए एक ख़ास दिन निश्चित कर देती, और ऐसे सलीके से कि किसी को शिकायत का मौक़ा न मिलता था।

इसके अलावा आवश्यकतानुसार वह इस बात का प्रबन्ध करती रहती थी कि नवाब माँ न बन जाय। जिन परिस्थितियों में नवाब अपना जीवन बिता रही थी, उनमें उसका माँ बन जाना यक़ीनी था। पर सरदार दो-ढाई वर्ष से बड़ी सफलता के साथ इस प्राकृतिक ख़तरे से निपट रही थी।

सरकंडों के पीछे यह सिलसिला दो-अढ़ाई वर्ष से बड़े समतल रूप से चल रहा था। पुलीसवालों को बिल्कुल पता नहीं था। बस, सिर्फ़ वे ही लोग जानते थे, जो वहाँ आते थे। या फिर सरदार थी और उसकी बेटी नवाब, या जो कोई भी वह थी।

सरकंडों के पीछे एक दिन मिट्टी के उस मकान में एक इनक़लाब आ गया। एक बहुत बड़ी कार, शायद डाज थी, वहाँ आकर रुकी। हार्न बजा। सरदार बाहर आयी, तो उसने देखा कि एक अजनबी है। उसने उससे कोई बात न की। अजनबी ने भी कुछ न कहा। मोटर दूर खड़ी करके वह उतरा और सीधा उनके घर में घुस गया। जैसे बरसों का आने-जानेवाला हो।

सरदार बहुत सिटपिटायी, लेकिन दरवाज़े की ड्योढ़ी पर नवाब ने उस अजनबी का बड़ी प्यारी मुस्कराहट से स्वागत किया और उसे उस कमरे में ले गयी, जिसमें निवाड़ी पलंग था। दोनों उसपर साथ-साथ बैठे ही थे कि सरदार आ गयी। चालाक औरत थी। उसने देखा कि अजनबी किसी मालदार घराने का आदमी है। सुन्दर है, स्वस्थ है। उसने अन्दर कोठरी में दाखिल होकर सलाम किया और पूछा—आपको इधर का रास्ता किसने बताया?

अजनबी मुस्कराया और बड़े प्यार से नवाब के मांस-भरे गालों में उँगली चुभोकर कहा—इसने।

नवाब तड़पकर एक तरफ़ हट गयी और एक अदा के साथ बोली—हायँ!...मैं तो तुमसे कभी मिली भी नहीं।

अजनबी की मुस्कराहट उसके होंठों पर और अधिक फैल गयी—हम तो कई बार तुमसे मिल चुके हैं।

नवाब ने पूछा—कहाँ? कब?—अचरज के कारण उसका छोटा-सा मुँह कुछ इस प्रकार खुला कि उसका मुखड़ा और भी आकर्षक दिखने लगा।

अजनबी ने उसका गुदगुदा हाथ पकड़ लिया और सरदार की ओर देखते हुए कहा—तुम ये बातें अभी नहीं समझ सकतीं।...अपनी माँ से पूछो।

नवाब ने बड़े भोलेपन के साथ अपनी माँ से पूछा कि यह आदमी उससे कब और कहाँ मिला था? सरदार सारा मामला समझ गयी कि वे लोग जो उसके यहाँ आते हैं, उनमें से किसी ने इसके साथ नवाब का ज़िक्र किया होगा और सारा अता-पता बता दिया होगा। अतएव उसने नवाब से कहा—मैं बता दूँगी तुम्हें।

और यह कहकर वह बाहर चली गयी। खटिया पर बैठकर उसने डिबिया में से अफ़ीम की गोली निकालकर खायी और लेट रही। वह सन्तुष्ट थी कि आदमी अच्छा है, गड़बड़ नहीं करेगा।

विश्वास से कुछ नहीं कहा जा सकता, लेकिन अजनबी, जिसका नाम हैबत खाँ था और ज़िला हज़ारा का बहुत बड़ा रईस था, सम्भवतः नवाब के अल्हड़पन से बहुत प्रभावित हुआ, इसी लिए विदा होते समय उसने सरदार से कहा कि भविष्य में नवाब के पास और कोई न आया करे।

सरदार चालाक औरत थी। उसने हैबत ख़ाँ से कहा—ख़ान साहब, यह कैसे हो सकता है!...क्या आप इतना रुपया दे सकेंगे कि......

हैबत ख़ाँ ने सरदार की बात पूरी होने से पहले जेब में हाथ डाला और सौ-सौ की नोटों की एक मोटी गड्डी निकाली और नवाब के क़दमों में फेंक दी। फिर उसने अपनी उँगली से हीरे की अँगूठी निकाली और नवाब को पहनाकर तेज़ी से सरकंडों के उस पार चला गया।

नवाब ने नोटों की तरफ़ आँख उठाकर भी न देखा। बस, देर तक अपनी सजी हुई उँगली को देखती रही, जिस पर काफ़ी बड़े हीरे से रंग-रंग की किरनें फूट रही थीं। मोटर स्टार्ट हुई और धूल उड़ाती चली गयी। इसके बाद वह चौंकी और सरकंडों के पास आयी, मगर अब गर्द-गुबार के सिवा सड़क पर कुछ भी नहीं था।

सरदार नोटों की गड्डी उठाकर उन्हें गिन चुकी थी। एक नोट और होता, तो पूरे दो हज़ार थे। पर उसको इसका अफ़सोस नहीं था। सारे नोट उसने घेरेदार शलवार के नेफे में बड़ी सफ़ाई से उड़से और नवाब को छोड़कर अपनी खटिया की ओर बढ़ी। डिबिया में से अफ़ीम की एक बड़ी गोली निकालकर उसने मुँह में डाली और बड़े इत्मीनान से लेट गयी और देर तक सोती रही।

नवाब बड़ी प्रसन्न थी। बार-बार अपनी उस उँगली को देखती थी, जिसमें हीरे की अँगूठी पड़ी थी। तीन-चार दिन बीत गये। इस बीच में उसका एक पुराना गाहक आया, जिससे सरदार ने यह कह दिया कि पुलीस का ख़तरा है, इसलिए उसने यह धंधा बन्द कर दिया है। यह गाहक, जो ख़ासा मालदार था, निराश वापस चला गया। सरदार को हैबत ख़ाँ ने बहुत प्रभावित किया था। उसने अफ़ीम खाकर पीनक की हालत में सोचा था कि अगर आमदनी उतनी ही रहे, जितनी पहले थी और आदमी एक हो, तो बहुत अच्छा है। अतएव उसने निश्चय कर लिया था कि बाकी लोगों को यह कहकर टर्का देगी कि पुलीसवाले उसके पीछे हैं और वह यह नहीं देख सकती कि उनकी इज़्ज़त ख़तरे में पड़े।

हैबत ख़ाँ एक हफ़्ते के बाद आया। इस बीच सरदार दो गाहकों को मना कर चुकी थी कि वे अब इधर का रुख़ न करें।

वह उसी शान से आया, जिस शान से पहले दिन आया था। आते ही उसने नवाब को छाती से चिमटा लिया। सरदार से उसने कोई बात न की। नवाब उसे, बल्कि यों कहिए कि हैबत ख़ाँ उसे उस कोठरी में ले गया, जहाँ निवाड़ी पलंग था। अबकी सरदार अन्दर न आयी और अपनी खटिया पर अफ़ीम की गोली खाकर उँघती रही।

हैबत खाँ बड़ा आनन्दित हुआ। उसको नवाब का अल्हड़पन और भी ज़्यादा पसन्द आया। वह पेशावरी रंडियों के नाज़-नख़रों से बिल्कुल अनभिज्ञ थी। उसमें वह घरेलूपन भी नहीं था, जो आम घरेलू औरतों में होता है। उसमें कोई ऐसी बात थी, जो स्वयं उसकी अपनी थी, दूसरों से बिल्कुल भिन्न। वह बिस्तर में उसके साथ इस तरह लेटती थी, जिस तरह बच्चा अपनी माँ के साथ लेटता है, उसकी छातियों पर हाथ फेरता है, उसकी नाक के नथुनों में उंगलियाँ डालता है, उसके बाल नोचता है, फिर धीरे-धीरे सो जाता है।

हैबत ख़ाँ के लिए यह नया तजरबा था। उसके लिए औरत की यह क़िस्म बिल्कुल निराली, दिलचस्प और आनन्दप्रद थी। वह अब हफ़्ते में दो बार आने लगा था। नवाब उसके लिए एक असाधारण आकर्षण बन गयी थी।

सरदार खुश थी कि उसे नेफ़े में खोंसने के लिए काफ़ी नोट मिल जाते हैं। लेकिन नवाब अपने अल्हड़पन के बावजूद कभी-कभी सोचती थी कि हैबत ख़ाँ डरा-डरा-सा क्यों रहता है! अगर कच्ची सड़क पर से सरकंडों के उस पार कोई कार या लारी गुज़रती है, तो वह क्यों सहम-सा जाता

है ? क्यों उससे अलग होकर बाहर जाता कर देखता है कि कौन था ?

एक रात बारह बजे के क़रीब सड़क पर से कोई लारी गुज़री। हैबत खाँ और नवाब एक-दूसरे से गुँथे हुए सो रहे थे कि एकदम हैबत ख़ाँ बड़े ज़ोर से काँपा और उठकर बैठ गया। नवाब की नींद बड़ी हल्की थी। वह काँपा, तो वह सर से पैर तक यों लरज़ी, जैसे उसके अन्दर ज़लज़ला आ गया है। चीख़कर उसने पूछा—क्या हुआ ?

हैबत ख़ाँ अब कुछ-कुछ सँभल चुका था। उसने स्वयं को और अधिक सँभालकर उससे कहा—कोई बात नहीं... मैं...मैं शायद ख़्वाब में डर गया था।

लारी की आवाज़ दूर से रात के सन्नाटे में अभी तक आ रही थी।

नवाब ने उससे कहा—नहीं ख़ान,...कोई और बात है। जब भी कोई मोटर या लारी सड़क पर से गुज़रती है, तुम्हारी यही हालत होती है।

हैबत खाँ की शायद यह दुखती रग थी, जिसपर नवाब ने हाथ रख दिया था। उसने अपनी मर्दानी शान बनाये रखने के लिए बड़े तेज़ लहजे में कहा—बकती हो तुम... मोटर और लारियों से डरने की क्या वजह हो सकती है ?

नवाब का दिल बहुत नाज़ुक था। हैबत ख़ाँ के तेज़ स्वर से उसके ठेस लगी और उसने बिलख-बिलखकर रोना शुरू कर दिया। हैबत खाँ ने जब उसको चुप कराया, तो वह अपने जीवन के एक मधुरतम आनन्द से परिचित हुआ और उसका शरीर नवाब के शरीर से और ज़्यादा क़रीब हो गया।

हैबत ख़ाँ अच्छे क़द-काठ का आदमी था। उसका शरीर गठा हुआ था। उसकी बाँहों में नवाब ने पहली बार बड़ी प्यारी गर्मी महसूस की थी। उसको शारीरिक आनन्द का क, ख उसी ने सिखाया था। वह उससे प्रेम करने लगी थी। यों कहिए कि वह चीज़ जो प्रेम होती है, उसके अर्थ उसपर अब प्रकट हो रहे थे। वह यदि एक हफ्ते गायब रहता, तो नवाब ग्रामोफोन पर दर्दीले गीतों के रिकार्ड लगाकर स्वयं उनके साथ गाती और आहें भरती थी। मगर उसको इस बात की बड़ी उलझन थी कि हैबत ख़ाँ मोटरों और लारियों के आने-जाने से क्यों घबराता है ?

महीनों बीत गये। नवाब के समर्पण और उसके स्नेह में वृद्धि होती गई। मगर इधर उसकी उलझन बढ़ती गयी कि अब हैबत ख़ाँ चन्द घन्टों के लिए आता और घबराहट की हालत में वापस चला जाता था। नवाब महसूस कर सकती थी कि यह-सब किसी मजबूरी के कारण से है, नहीं तो हैबत खाँ का जी चाहता है कि वह अधिक-से-अधिक समय उसके पास ठहरे।

उसने कई बार उससे इस बारे में पूछा, पर वह गोल कर गया। एक दिन सुबह-सवेरे उसकी डाज सरकंडों के पार रुकी। नवाब सो रही थी। हार्न बजा, तो चौंककर उठी। आँखें मलती-मलती बाहर आयी। उस समय हैबत ख़ाँ अपनी मोटर दूर खड़ी करके मकान के पास पहुँच चुका था। नवाब दौड़कर उससे लिपट गयी। वह उसे उठाकर अन्दर उस कमरे में ले गया, जहाँ निवाड़ी पलंग था।

देर तक दोनों बातें करते रहे। प्यार-मुहब्बत की बातें। पता नहीं, नवाब के मन में क्या आयी कि उसने अपनी ज़िन्दगी की पहली फ़रमायश की—ख़ान, मुझे सोने के कड़े ला दो।

हैबत खाँ ने उसकी मोटी-मोटी मांसल, सुर्ख, सफेद कलाइयों को कई बार चूमा और कहा—कल ही आ जायेंगे। तुम्हारे लिए तो मेरी जान हाज़िर है।

नवाब ने एक अदा के साथ, मगर अपने ख़ास अल्हड़ अन्दाज़ में कहा—ख़ान साहब ! ...जाने दीजिए,...जान तो मुझे ही देनी पड़ेगी।

हैबत खाँ यह सुनकर कई बार उसके सदके हुआ और बड़ा आनन्दपूर्ण समय बिताकर चला गया और वायदा कर गया कि दूसरे दिन आयगा और सोने के कड़े उसके नर्म-नर्म हाथों में स्वयं पहनायगा।

नवाब खुश थी। उस रात वह देर तक खुशी के गीतों के रिकार्ड बजा-बजाकर उस छोटी-सी कोठरी में नाचती रही, जिसमें निवाड़ी पलङ्ग था। सरदार भी खुश थी। उस रात उसने फिर अपनी डिबिया से अफ़ीम की एक बड़ी गोली निकाली और उसे निगलकर सो गयी।

दूसरे दिन नवाब और अधिक प्रसन्न थी कि सोने के कड़े आनेवाले हैं और हैबत ख़ाँ स्वयं उसको पहनानेवाला है। वह सारे दिन प्रतीक्षा करती रही, पर वह न आया

उसने सोचा, शायद मोटर ख़राब हो गयी हो।......शायद रात ही को आ जाय। पर वह सारी रात जागती रही और हैबत ख़ाँ न आया। उसके दिल को, जो बहुत नाज़ुक था, बड़ी ठेस पहुँची। उसने अपनी माँ को, या जो कुछ भी वह थी, बार-बार कहा—देखो, ख़ान नहीं आया, वायदा करके फिर गया है।—लेकिन फिर वह सोचती और कहती—ऐसा न हो, कहीं कुछ हो गया हो।—और वह सहम-सी जाती।

कई बातें उसके दिमाग़ में आती थीं। मोटर की दुर्घटना, अचानक बीमारी, किसी डाकू का हमला......लेकिन बार-बार उसको लारियों और मोटरों की आवाजों का खयाल आता था, जिनको सुनकर हैबत ख़ाँ हमेशा बौखला जाता था।......वह उसके बारे में पहरों सोचती थी, पर उसकी समझ में कुछ नहीं आता था।

एक सप्ताह बीत गया। इस बीच में उसका कोई पुराना गाहक भी न आया। इसलिए कि सरदार उन सबको मना कर चुकी थी। तीन-चार लारियाँ और दो मोटरें अलबत्ता उस कच्ची सड़क पर से धूल उड़ाती गुज़रीं। नवाब का हर बार यही जी चाहा कि दौड़ती हुई उनके पीछे जाय और उनको आग लगा दे। उसको ऐसा अनुभव होता था, मानो यही वे चीजें हैं, जो हैबत ख़ाँ के यहाँ आने में बाधक हैं। मगर फिर सोचती कि मोटरें और लारियाँ बाधक क्या बन सकती हैं और अपनी नासमझी पर हँसती।

लेकिन यह बात उसकी समझ से बाहर थी कि हैबत ख़ाँ-जैसा तगड़ा, तन्दुरुस्त आदमी उनकी आवाज सुनकर सहम क्यों जाता है। इस तथ्य को उसके दिमाग़ की पैदा की हुई कोई दलील झुठला नहीं सकती थी। और जब ऐसा होता तो वह बेहद उदास और दुखी हो जाती और ग्रामोफ़ोन पर दर्दीले रिकार्ड लगाकर सुनना शुरू कर देती और उसकी आँखें भीग जातीं।

एक हफ़्ते के बाद दोपहर को जब नवाब और सरदार खाना खा चुकी थीं और कुछ देर आराम करने की सोच रही थीं कि अचानक बाहर सड़क पर से मोटर के हार्न की आवाज़ सुनायी दी। दोनों यह आवाज़ सुनकर चौंकीं, क्योंकि यह हैबत ख़ाँ की डाज के हार्न की आवाज़ नहीं थी। सरदार बाहर लपकी कि देखे कौन है। कोई पुराना आदमी हो तो उसे टर्का दे। पर जब वह सरकंडों के पास पहुँची, तो उसने देखा कि एक नयी मोटर में हैबत ख़ाँ बैठा है। पिछली सीट पर भड़कीले लिबास में एक खूबसूरत औरत बैठी है।

हैबत ख़ाँ ने मोटर कुछ दूर खड़ी की और बाहर निकला। उसके साथ ही पिछली सीट से वह औरत उतरी। दोनों उनके मकान की तरफ बढ़े। सरदार ने सोचा कि यह क्या सिलसिला है। औरत के लिए तो हैबत खाँ इतनी दूर से चलकर यहाँ आता है। फिर यह औरत जो इतनी खूबसूरत है, जवान है, क़ीमती कपड़े पहने है, इसके साथ यहाँ क्या करने आयी है?

वह अभी यह सोच ही रही थी कि हैबत ख़ाँ उस खूबसूरत औरत के साथ, जिसने बहुमूल्य आभूषण पहने हुए थे, मकान में दाखिल हो गया। वह उनके पीछे-पीछे चली। उसकी तरफ़ उन दोनों में से किसी ने ध्यान ही नहीं दिया था।

जब वह अन्दर गयी, तो हैबत ख़ाँ, नवाब और वह औरत तीनों निवाड़ी पलंग पर बैठे थे और ख़ामोशी छायी थी, अजीब क़िस्म की ख़ामोशी। जेवरों से लदी-फँदी औरत अलबत्ता कुछ-कुछ बेचैन नज़र आती थी, क्योंकि उसकी एक टाँग बड़े ज़ोर से हिल रही थी।

सरदार देहलीज़ के पास ही खड़ी हो गयी। उसके क़दमों की आहट सुनकर जब हैबत खाँ ने उसकी ओर देखा, तो उसने सलाम किया।

हैबत ख़ाँ ने कोई जवाब न दिया। वह बहुत बौखलाया हुआ था।

उस औरत की टाँग हिलना बन्द हुई। और उसने सरदार से कहा—हम आये हैं। खाने-पीने का तो बन्दोबस्त करो।

सरदार ने पूरी मेहमाननवाज़ बनकर कहा—जो तुम कहो, अभी तैयार हुआ जाता है।

उस औरत ने, जिसके नख-शिख से साफ़ प्रकट था कि बड़े धड़ल्ले की औरत है, सरदार से कहा—तो चलो, तुम बावर्चीख़ाने में चूल्हा सुलगाओ......बड़ी देगची है घर में?

—है, सरदार ने अपना भारी सर हिलाया।

—तो जाओ, उसको धोकर साफ़ करो, मैं अभी आयी।

वह औरत उठी और ग्रामोफ़ोन देखने लगी।

सरदार ने माफ़ी-भरे स्वर में कहा—गोश्त वगैरह तो यहाँ नहीं मिलेगा।

उस औरत ने एक रिकार्ड पर सुई रखी—मिल जायगा। तुमसे जो कहा है, वह करो।......और देखो, आग काफ़ी हो।

सरदार यह आदेश लेकर चली गयी। अब वह औरत मुस्कराकर नवाब से बोली—नवाब, हम तुम्हारे लिए सोने के कड़े ले आये हैं।

यह कहकर उसने अपना वैनिटी बेग खोला और उसमें से बारीक, सुर्ख काग़ज में लिपटे हुए कड़े निकाले, जो काफ़ी भारी और खूबसूरत थे।

नवाब अपने साथ बैठे हुए खामोश हैबत ख़ाँ को देख रही थी। उसने कड़ों को एक नज़र देखा और उससे बड़ी नर्म व नाज़ुक, मगर सहमी हुई आवाज में पूछा—ख़ान, यह कौन है?

उसका इशारा उस औरत की तरफ़ था।

वह औरत कड़ों से खेलते हुए बोली—मैं कौन हूँ?...मैं हैबत की बहन हूँ।—और यह कहकर उसने हैबत ख़ाँ की तरफ़ देखा, जो उसके जवाब पर सिकुड़-सा गया था। वह फिर नवाब से बोली—मेरा नाम हलाकत है।

नवाब कुछ न समझी। उसे हैबत (आतंक) और हलाकत (विनाश) शब्दों के अर्थ भी न मालूम थे। लेकिन वह उस औरत की आँखों से डर रही थी, जो अवश्य ही सुन्दर थी, मगर आँखें बड़े भयानक ढंग से खुली हुई। उनमें से जैसे आग बरस रही थी।

वह आगे बढ़ी और उसने सिमटी हुई, सहमी हुई नवाब की कलाइयाँ पकड़ीं और उनमें कड़े डालने लगी। लेकिन फिर उसने उसकी कलाइयाँ छोड़ दीं और हैबत ख़ाँ से बोली—तुम जाओ, हैबत,...मैं इसे अच्छी तरह सजा-बनाकर तुम्हारी ख़िदमत में पेश करना चाहती हूँ।

हैबत ख़ाँ किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सा बैठा था। जब वह न उठा, तो वह औरत, जिसने अपना नाम हलाकत बताया था, ज़रा तेज़ी से बोली—जाओ!...तुमने सुना नहीं?

हैबत ख़ाँ नवाब की तरफ़ देखता हुआ बाहर चला गया। वह बहुत बेचैन था। उसकी समझ में नहीं आता था, कहाँ जाय और क्या करे।

मकान के बाहर जो बरामदा-सा था, उसके एक कोने में टाट लगा बावर्चीख़ाना था। जब वह उसके पास पहुँचा, तो उसने देखा कि सरदार आग सुलगा चुकी है। उसने उससे कोई बात न की और सरकंडों के उस पार चला गया। उसकी हालत पागलों की-सी हो रही थी। ज़रा-सी आहट पर भी वह चौंक-चौंक उठता था।

जब उसको दूर से एक लारी आती दिखायी दी, तो उसने सोचा कि वह उसे रोक ले और उसमें बैठकर वहाँ से ग़ायब हो जाय। पर जब वह उसके पास आयी, तो ऐसी धूल उड़ी कि वह उसमें ग़ायब हो गया। उसने आवाज़ें दीं, मगर गर्द के कारण उसके गले से आवाज़ ही न निकली।

गर्द-गुबार कम हुआ, तो हैबत ख़ाँ नीममुर्दा था। उसने चाहा कि सरकंडों के पीछे उस मकान में जाय, जहाँ उसने कई दिन और कई रातें नवाब के अल्हड़ पहलू में बितायी थीं, पर वह न जा सका। उसके क़दम ही न उठते थे।

वह बहुत देर तक कच्ची सड़क पर खड़ा सोचता रहा कि यह मामला क्या है। वह औरत, जो उसके साथ आयी थी, उसके साथ उसके काफ़ी पुराने सम्बन्ध थे। सिर्फ़ इस बिना पर कि बहुत दिन हुए, वह उसके पति की मृत्यु पर शोक प्रकट करने गया था, जो उसका लँगोटिया यार था। मगर संयोगवश यह शोक-प्रदर्शन उन दोनों के परस्पर सम्बन्ध में बदल गया। पति की मृत्यु के दूसरे दिन ही वह उसके घर में था और उस औरत ने उसको ऐसे आदेशात्मक ढंग से अन्दर बुलाकर अपने-आपको उसे सौंप दिया था, जैसे वह उसका नौकर है।

हैबत ख़ाँ औरत के मामले में बिल्कुल कोरा था। जब शाहीना ने उससे अपने अजीब-ग़रीब आदेशात्मक प्रेम का प्रदर्शन किया, तो उसके लिए यही बहुत बड़ी बात थी। इसमें कोई शक नहीं कि शाहीना के पास अपार धन था। कुछ अपना और कुछ अपने मृत पति का। पर उसे इस धन से कोई मतलब नहीं था। उसको शाहीना से सिर्फ़ यही

कहानी

दिलचस्पी थी कि वह उसके जीवन में सबसे पहली औरत थी। वह उसके आदेश के नीचे शायद इस लिए दबकर रह गया था कि वह बिल्कुल अनाड़ी था।

बहुत देर तक वह कच्ची सड़क पर खड़ा सोचता रहा। आख़िर उससे न रहा गया। सरकंडों के पीछे मकान की तरफ़ बढ़ा, तो उसने बरामदे में टाट लगे बावर्चीख़ाने में डेगची पर कुछ भुनते हुए देखा। अन्दर उस कमरे की तरफ़ गया, जहाँ निवाड़ का पलंग था, तो दरवाज़ा बन्द पाया। उसने हौले से दस्तक दी।

कुछ क्षणों के बाद दरवाज़ा खुला। कच्चे फ़र्श पर उसको सबसे पहले खून-ही-खून नज़र आया। वह काँप उठा। फिर उसने शाहीना को देखा, जो पट के साथ खड़ी थी। उसने हैबत ख़ाँ से कहा—मैंने तुम्हारी नवाब को सजा-बना दिया है।

हैबत ख़ाँ ने अपने सूखे गले को थूक से तर करते हुए उससे पूछा—कहाँ है?

शाहीना ने जवाब दिया—कुछ तो इस पलंग पर है, लेकिन उसका बेहतरीन हिस्सा बावर्चीख़ाने में है।

हैबत ख़ाँ उसका मतलब समझे बिना भयभीत हो गया। वह कुछ कह न सका। वहीं ड्योढ़ी के पास खड़ा रहा। मगर उसने देखा कि फ़र्श पर गोश्त के छोटे-छोटे टुकड़े भी हैं, और...और एक तेज छुरी भी पड़ी है और निवाड़ी पलंग पर कोई लेटा है, जिसपर खून-भरी चादर पड़ी है।

शाहीना ने मुस्कराकर कहा—चादर उठाकर दिखाऊँ?...तुम्हारी सजी-बनी नवाब है!...मैंने अपने हाथों से सिंगार किया है।...लेकिन तुम पहले खाना खा लो। बहुत भूख लगी होगी तुम्हें। सरदार तो बेहोश हो गयी, मैं बड़ा अच्छा गोश्त भून रही थी तुम्हारे लिए। उसकी बोटियाँ ख़ुद अपने हाथ से काटी हैं मैंने!

हैबत ख़ाँ के पाँव लड़खड़ाये। ज़ोर से चिल्लाया—शाहीना! तुमने यह क्या किया?

शाहीना मुस्करायी—जानमन! यह पहली बार नहीं,...दूसरी बार है। मेरा शौहर, अल्लाह उसे जन्नत में रखे, तुम्हारी ही तरह बेवफ़ा था। मैंने ख़ुद उसको अपने हाथों से मारा था और उसका गोश्त पकाकर चील-कौवों को खिलाया था।...तुमसे मुझे प्यार है, इसलिए मैंने तुम्हारे बजाय......

उसने वाक्य पूरा न किया और पलंग पर से खून-भरी चादर हटा दी।...

हैबत ख़ाँ की चीख़ उसके गले के अन्दर ही फँसी रही और बेहोश होकर गिर पड़ा।

जब उसे होश आया, तो उसने देखा कि शाहीना कार चला रही है और वह ग़ैर इलाके में है, उस इलाक़े में जहाँ किसी का राज नहीं।

उर्दू से अनुवादक—'हुनर'
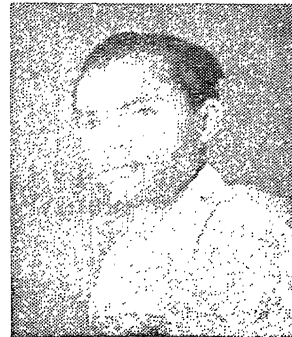
कलक्टर सोकल हमारे ज़िले में अभी हाल में ही बैतूल से स्थान्तरित होकर आये हैं। इसके पहले आप बैतूल में डिप्टी कलक्टर थे, तीन साल की अल्प अवधि में ही आपको कलक्टर के पद को सुशोभित करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। यह बात आश्चर्य की नहीं, तो भी महत्वपूर्ण अवश्य थी, क्योंकि आई० ए० एस० करने के बाद इतनी जल्दी कलक्टरी का पद प्राप्त होना अपवाद ही है। तीन साल के अल्प समय और तरुणावस्था में कलक्टर हो जाने के पीछे किसी बड़े आदमी की सिफारिश होनी चाहिए अथवा उस व्यक्ति में कोई आसाधारण प्रतिभा।

मैं पत्रकार और चित्रकार दोनों हूँ। पत्रकार होने के नाते मुझे प्रायः समाज में होनेवाली प्रत्येक बात और घटना से परिचित होना आवश्यक है। साथ ही एक पत्र 'नवचेतना' का संपादन भी करता हूँ। अतः मुझे श्री सोकलजी के सम्बन्ध में कि वह क्यों इतनी जल्दी कलक्टर हो गये, बहुत-कुछ मालूम हो चुका था। उसका कारण उनका मधुर स्वभाव, कार्यक्षमता और असाधारण प्रतिभा ही था। यथार्थ यह है कि सोकल साहब के विनम्र स्वभाव ने उन-सब पर अपनी योग्यता की छाप लगा दी थी, जो उनके सम्पर्क में आये। किसान से लेकर मन्त्री तक उनके सुझावों पर दाद देते हैं। जब आपकी नियुक्ति बैतूल में हुई, उस समय वहाँ विकास-योजनाओं का कार्य चल रहा था। सरकार ने आपको ज़िले की विकास-योजनाओं की देख-रेख का कार्य सौंपा। उस समय आपसे यह आशा नहीं थी कि आप कुछ कर दिखायेंगे। आपने जो कार्य किये, उनसे मैं अपने संवाद-दाता के द्वारा भली भाँति समय-समय पर परिचित होता रहता था। बैतूल ज़िले के किसान आपके मधुर स्वभाव और साथी-जैसे व्यवहार से आपके भक्त बन बैठे थे। आप किसानों को साथ लेकर विकास के कार्य स्वयं अपने हाथों से भी करते थे। यदि किसान गड्ढा खोदते, तो आप भी उनके साथ कुदाली चलाते; किसान सड़क पर मिट्टी डालते, तो आप भी खाँची उठाकर उन्हें देते; किसान पैदल चलते, तो आप भी उनके साथ दस-दस मील पैदल चलते। आपकी ही प्रेरणा और सहयोग के पिंजारा और चिचोली के बीच पन्द्रह मील लम्बा कच्चा रास्ता आज पक्की सड़क बन गया है। पूरव गाँव के तालाब का जीर्णोद्धार किया गया, जिससे आज तीन हज़ार एकड़ बंजर ज़मीन में फ़सल लहलहाने लगी है। आपने एक विशेष कार्य और किया, वह है जंगली इलाकों में स्कूल खुलवाना और मुफ्त शिक्षा की व्यवस्था करना।

आप जाति के कुम्हार हैं, किन्तु गुणों में किसी भी अभिजातवंशीय से कम नहीं। यहाँ तक की बैतूल ज़िले के गाँवों के कट्टर-से-कट्टर ब्राह्मण तक आपके सामने सिर झुकाने में कोई हिचक नहीं दिखाते थे। आप कह सकते हैं कि सत्ता के आगे सब पानी भरते हैं। आपके कथन से मैं भी सहमत हूँ। किन्तु यदि सत्ताधारी व्यक्ति के पास प्रेम और हृदय नाम की वस्तु भी हो, तो हर व्यक्ति उसका भक्त बन जाता है। यों गाँव के भोले-भाले और अपढ़ लोग कलक्टर को अपना राजा समझते हैं। जिस गाँव के रास्ते उसकी कार निकल गयी, उधर सन्नाटा छा जाता है। अँग्रेजों का राज्य था उस समय तो और भी कलक्टर का नाम जपा जाता था। बहुधा गाँवों में लड़ाई-झगड़े होने पर 'बड़ा आया कलक्टर' कहकर अपने प्रतिद्वंदी की भर्त्सना करते हैं। यदि कलक्टर किसी से दो शब्द भी बोल ले, तो वह व्यक्ति अपने-आपको भाग्यशाली समझता है। जब श्री सोकल साहब ने पिंजारा गाँव के किसानों की एक सभा में, मैं आपका सेवक हूँ, कहा तो किसके हृदय में उनके प्रति श्रद्धा और प्रेम की भावना न प्रकट हुई होगी। हृदय की सन्निकटता ही महान कार्यों का उद्गम है।

इस प्रकार उनके कार्यों से बैतूल जिले की ग्रामीण जनता बड़ी प्रसन्न थी। जब उनका तबादला हुआ, उस समय कुछ मुख्य-मुख्य ग्रामीण नेताओं ने उनके आकस्मिक स्थान्तरण को रुकवाने की कोशश भी की। ऐसा बिरला ही दिन जाता होगा, जब उनके सम्बन्ध में अपने संवाददाता से प्रकाशनार्थ कुछ न पाता होऊँ। मैंने उनकी पदोन्नति और अपने ही नगर में कलक्टर होकर आने का समाचार, जिले के लिए गौरव और भाग्य की बात है, शीर्षक देकर प्रकाशित किया था।

उनको मेरे नगर में आये लगभग छै महीने हो गये थे। मैं बहुत दिनों से सोच रहा था कि किसी दिन उनके बंगले पर पहुँचकर उनसे जान-पहचान करूँ और साथ ही उनका थोड़ा जीवन-परिचय भी प्राप्त किया जाय। किन्तु अचानक बीमार पड़ जाने के कारण उनसे न मिल सका। आज जब उन्होंने भारत आर्ट्स स्कूल में, जिसे उद्घाटन करने का श्रेय उनको मिला था, चित्रकारी एवं ललित कला पर एक बड़ा ही विद्वत्तापूर्ण और सारगर्भित भाषण दिया, तो मैं उनसे मिलने का लोभ संवरण न कर सका। उनके भाषण से मैंने जान लिया कि वह चित्रकारी में कुछ-न-कुछ दखल अवश्य रखते हैं। मैं भी, जैसा कि मैंने पहले ही कहा है, एक चित्रकार हूँ। अतः मैंने समारोह समाप्त होने पर उनसे बातचीत करने की अनुमति माँगी। मैंने अपना परिचय 'नवचेतना' के सम्पादक के रूप में दिया। वे तुरन्त ही मेरे उद्देश्य को समझ गये। और बोले—आपसे मिलकर मैं बहुत खुश हुआ। मैं चाहता हूँ और निवेदन करता हूँ कि आप मेरे यहाँ पाँच बजे शाम को चाय में अवश्य शरीक हों।

—जी, अच्छा,—मैंने कहा।

—ठीक वक्त से आइएगा, नहीं तो ठंडी चाय मिलेगी!—वह मुस्कराये।

मैं भी उनकी मुस्कराहट में शरीक हो गया। मैं भी यही चाहता था, क्योंकि इस समय दूसरे अफ़सरों के समक्ष किसी के जीवन से सम्बन्धित बातें पूछना उचित नहीं था। मैं उनके व्यक्तित्व से बड़ा ही प्रभावित हुआ। ऊँचा, हसीन नौजवान, जिसके मुख पर एक तेजपूर्ण आभा, नेत्रों में किसी को भी आकर्षित करने की शक्ति।

निश्चित समय से दस मिनट पूर्व ही मैं उनके बंगले पर जा पहुँचा। मुझे देखते ही एक चपरासी मेरे पास आया और मुझसे पूछा -क्या आप नवचेतना के सम्पादक महोदय हैं?

—हाँ। साहब हैं न?—मैंने पूछा।

—हैं। उन्होंने आपको ड्राइंग रूम में बैठाने का आदेश दिया है।

और मैं चपरासी के पीछे-पीछे कमरे में प्रविष्ट हुआ।

—साहब पाँच मिनट बाद आते हैं, आप बैठिये।—यह कहकर चपरासी बाहर चला गया और मैं कमरे में अकेला रह गया। कमरा बड़ा अच्छा सजा था। बड़ी आलमारी में अंग्रेजी और हिन्दी के कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथ सजे थे। दीवालों पर कुछ चित्र और कलेण्डर टँगे थे। मेरे विचार से कुछ चित्र शायद कलक्टर साहब के अपने ही बनाये हों। मुझे सब चित्रों में से एक बूढ़े का चित्र बहुत पसन्द आया। इस चित्र में जीवन का यथार्थ और कल्पना साकार हो उठी थी। रंगों का चुनाव भी बहुत सुन्दर हुआ

था। बूढ़ा, कमर झुकी हुई, सिर के ऊपर लकड़ियों का गट्ठर और एक हाथ से लकड़ी टेकता हुआ, नंगे पैरों, लकड़ियाँ बेच रहा है। वह मृत्यु के बिल्कुल पास पहुँच गया है, किन्तु उसके झुर्रियों-भरे पोपले चेहरे पर एक आशा की झलक दिखायी दे रही है। उस तसवीर के नीचे छोटे-छोटे शब्दों में 'जीवन का रहस्य' पंक्ति लिखी थी। मैं इस पंक्ति को ठीक-ठीक नहीं समझ सका। मैंने बहुत-से अर्थ लगाये, परन्तु मैं उनसे सन्तुष्ट नहीं हुआ। कुछ बच्चों की तसवीरें भी वहाँ थीं। मुझे एक दस-बारह वर्ष के बच्चे का चित्र काफी पसन्द आया। लड़का बड़ी ही भावुकता से डूबते हुए सूरज को खजूर के पेड़ों की पृष्ठभूमि में रेत पर खड़ा-खड़ा देख रहा था। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से असीम कौतूहल और दृढ़ता टपक रही थी। इतने में किसी के पैरों की आहट से मेरा ध्यान भंग हुआ।

—कहिए, साहब, क्या देख रहे हैं?—कलक्टर साहब ने कमरे में प्रवेश करते ही मुझसे पूछा।

—नमस्ते!—मैंने मुस्कराते हुए कहा।

उन्होंने भी, नमस्ते, कहकर मेरा अभिवादन किया।

—क्या ये चित्र आपके ही बनाये हैं?—मैंने उन चित्रों की ओर तर्जनी से संकेत करते हुए कहा।

—जी हाँ, मेरे ही समझ लीजिए,—कलक्टर साहब ने सोफे पर बैठते हुए कहा।

—बहुत खूब! कमाल है! जी चाहता है, आपके हाथ चूम लूँ! कितने ऊँचे कलाकार हैं आप!

—आपने तो मुझ नाचीज को जाने क्या समझ लिया।

—निस्संदेह, मैं आपकी साधना के समक्ष नतमस्तक हूँ!—मैंने श्रद्धा से कहा। मैंने आगे पूछा—क्या आपने अपने चित्रों को किसी पत्र में प्रकाशित करवाया है?

—जी नहीं, प्रकाशन के सम्बन्ध में मैंने ऐसी कोई बात नहीं सोची, क्योंकि मैं नहीं समझता कि ये प्रकाशित हो सकते हैं। और आपके विचार से ये प्रकाशन के योग्य हैं, तो भी मैं नहीं चाहता कि ये प्रकाशित हों। मैंने अपने-आपको कभी कलाकार नहीं समझा और न ही इस क्षेत्र में मैं कोई दावा कर सकता हूँ। जहाँ तक साधना का सम्बन्ध है, मैं समझता हूँ कि मैंने इस कला में कोई साधना भी नहीं की। जब मैं पढ़ता था, उस समय मुझे इस कला से रुचि अवश्य हो गयी थी और उस रुचि का एक कारण था।—इतना कहकर वह रुक गये और नौकर को पुकारा।

उसके आने पर उन्होंने चाय तैयार करने का आदेश दिया।

—हीरा अपने-आपको कोयला ही समझता है, किन्तु पारखियों की दृष्टि में आने पर वह कोयला नहीं रहता!—मैंने प्रशंसा का पुल बाँधा।

मेरी अतिशयोक्ति को वह समझ गये, अतः उन्होंने कुछ नहीं कहा।

—क्या, अभी भी आप इस कला की पूजा करते हैं?—मैंने बात को आगे बढ़ाते हुए पूछा।

—जी, करता हूँ, किन्तु अब मैं सच्ची पूजा करता हूँ।—उन्होंने गाँधीजी के चित्र की ओर दृष्टि डालते हुए कहा।

—क्षमा कीजिए, मैं आपके कथन को समझ नहीं सका।

—मैं कला की उपासना सेवा में समझता हूँ, अतः अपनी कला को मूर्त रूप देना चाहता हूँ। यद्यपि काग़ज पर की गयी कला की उपासना को बुरा नहीं समझना, किन्तु मानव की सन्तुष्टि फिर भी अधूरी ही रह जाती है। प्रकृति की बनायी हुई जीती-जागती तस्वीर मनुष्य है। उसके विकृत स्वरूप को सौन्दर्य और आनन्द प्रदान करने के लिए हमें उसे प्रेम और विश्वास की कूची से सुधारना है। मैं अपना जीवन इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए लगा देना चाहता हूँ। मेरी साधना यही होगी। और मुझे मेरे मनोनुकूल कार्य करने का अवसर भी मिला है।—इस समय उनका चेहरा भावुक हो गया था। उनकी आँखों में सचमुच एक प्यास थी।

—यह तो अपना-अपना तरीका है। गांधीजी का भी अपना एक तरीका था। मैंने उनके विचार का आदर करते हुए कहा।

इस समय वह फिर मुस्कराने लगे। मुझे ऐसा लगा कि वह मेरे मन की बातों से पहले ही परिचित हो गये। वह कुछ सोचकर बोले—मैंने अपने अध्ययनकाल में कुछ चित्र बनाये थे। वे चित्र एक कहानी प्रस्तुत करते हैं। आपको, सम्भव है, पसन्द आयें। क्या आप उन्हें देखने का कष्ट करेंगे?

—अवश्य ! मैं इस कला का पुजारी हूँ । विशेषकर मैं आपकी इस कला को देखने ही आया था ।—मैंने अपनी उत्सुकता बतलाते हुए कहा ।

कलक्टर साहब ने आलमारी में से एक मैला-सा अलबम, जो शायद काफ़ी पुराना हो चुका था, निकाला और मेरे सामने मेज़ पर फैला दिया । और मेरी बगल में खड़े होकर अलबम को खोलने लगे ।

प्रथम चित्र, वही बूढ़े का चित्र था, जो मैंने अभी दीवाल पर लगा हुआ देखा था । किन्तु आकार में यह उससे छोटा था । अलबम का चित्र दीवाल पर टंगे हुए चित्र से काफी पहले का बना हुआ दिखता था । फिर भी काफी अच्छा था । मैंने फिर तारीफ़ की—बहुत सुन्दर !

—यहाँ से एक कहानी प्रारम्भ होती है, —कलक्टर साहब ने कहा और उन्होंने दूसरा चित्र खोला । इस चित्र में एक गन्दे और फटे-पुराने कपड़े पहने दस-बारह साल का लड़का बस-स्टैंड की क्यू में खड़ा हुआ किसी सज्जन की जेब काट रहा था ।

—प्रथम चित्र और इस चित्र में क्या सम्बन्ध है ?—मैंने पूछा ।

कलक्टर साहब बोले—वह बूढ़ा इस बदमाश लड़के का बाप है । बूढ़े की उम्र चालीस-पैंतालीस के लगभग ही है, किन्तु क्षय ने उसे जर्जर कर दिया है । बूढ़े के मन में एक तीव्र इच्छा थी कि वह भी और लोगों-जैसा पढ़े, किन्तु उसकी तूफानी परिस्थितियों ने उसे पढ़ने नहीं दिया । बुढ़ापे में बच्चा हुआ और माँ को खा गया । परन्तु बाप अपनी जवानी और जवानी के अधूरे संकल्प एवं अधूरी इच्छाओं की पूर्ति अपने लड़के में देखना चाहता है । सुयोग्य लड़के में पिता मोक्ष की कल्पना करता है । किन्तु इस बूढ़े की आकांक्षा फलीभूत होती नहीं दिखती । फिर भी इस बूढ़े में एक अदम्य आत्मिक शक्ति है । देखिए, उसके मुख पर यह प्रकाश की चमक ।

—किन्तु लड़का तो अयोग्य है । आपको तो उसके मुख पर निराशा और थकान के भाव अंकित करना था ।—मैंने अपना मत और शंका व्यक्त की ।

—मृत्यु के निकट व्यक्ति में निराशा और आशा के बीच का भाव आ जाता है । व्यक्ति की उद्दाम आशायें निराशा में बदलती जाती हैं, किन्तु एक ऐसा भी क्षण आता है, जब आशा और निराशा के प्रति तटस्थता का भाव आ जाता है । उसका उद्देश्य स्थिर हो जाता है । तूफान शान्त होने पर जिस तरह वातावरण में स्वच्छता और शोभा आ जाती है, उसी तरह इस बूढ़े के हृदय में भी एक स्थित-प्रज्ञता-जैसी अवस्था उत्पन्न हो गयी है, जो उसके प्रफुल्लित चेहरे से छुप नहीं सकती । उसके सम्मुख अब मृत्यु ही शेष है ।—कलक्टर साहब ने गंभीर होकर कहा । और तुरन्त ही तीसरा चित्र खोला । इसमें उस बूढ़े को एक फूस के चौपाल में खटिये पर लेटे हुए दिखलाया था । बूढ़ा मृत्यु का आलिंगन कर रहा था, परन्तु उसका चेहरा उसके लड़के की ओर था, जो उसके पास खड़ा-खड़ा आँसू बहा रहा था । दोनों की आँखें एक हो रही थीं । बूढ़े की आँखों में एक मूक याचना थी, जिसे लड़का समझ रहा था, और नहीं भी ।

आप शायद इस चित्र का भाव अवश्य समझ गये होंगे ।—कलक्टर साहब ने मेरी ओर देखते हुए पूछा ।

—अच्छी तरह,—मैंने विश्वास के साथ कहा ।

अब कलक्टर साहब ने चौथा पृष्ट खोला । इसमें भी उसी लड़के का चित्र था । लड़का चुपचाप एकान्त में नदी के किनारे खड़ा होकर डूबते सूरज की लाल परछाईं से रंगी हुई नदी की चंचल और असंख्य लहरों को बनते और बिगड़ते देख रहा था । उसकी शरारत-भरी आँखों में एक कौतूहल और जीवन का सत्य अंकित हो रहा था । वह उस शान्त और सात्त्विक प्रकृति के अंचल में शायद बूढ़े की आँखों का लेख पढ़ रहा था ।

मैंने इस कहानी में रस लिया और इसकी गहराई को समझने का यत्न करने लगा । अवश्य इसमें कोई-न-कोई महान रहस्य है ।

इतने में नौकर चाय लेकर आ गया और कलक्टर साहब सोफ़े पर चाय बनाने के निमित जाकर बैठ गये । उन्होंने चाय की प्याली मेरे हाथ में देते हुए कहा—चाय पीजिए ।

मैं उस चित्रमय कहानी के बारे मे ही सोचा रहा था । मैंने चाय की एक चुस्की लेकर पाँचवें चित्र को और भी कुछ समझने के लिए खोला । पाँचवें चित्र में लड़का एक

झोपड़ी के भीतर बैठा हुआ बड़े मनोयोग से दीपक के मद्धिम प्रकाश में एक पुस्तक पढ़ रहा था। उसके मुख से दृढ़ता और लगन टपक रही थी। उसमें शायद किसी उद्देश्य की भावना निहित थी। अब मैं उस कहानी का प्रायः ठीक से अर्थ लगाने में समर्थ हो गया था। वह गन्दगी में पैदा हुआ पुष्प था, जो गन्दे तथा कालिमामय वातावरण में पनप रहा था, किन्तु उसने जीवन का शाश्वत स्पर्श पा लिया था। अब वह पूर्णतः फूलेगा और फलेगा।

यद्यपि चित्र बहुत सादे और चमत्कारहीन थे, परन्तु उनमें एक महान भाव और जीवन के सत्य का प्रादुर्भाव हो रहा था। मैंने अलबम बन्द करके रख दिया और उसके बनानेवाले की प्रतिभा की मन-ही-मन सराहना करने लगा।

—तो कलक्टर साहब में साहित्यिक रुचि भी है?—मैंने उनकी ओर वक्र दृष्टि से देखते हुए कहा।

—आप जो-कुछ कहें, मैंने ऐसा कभी नहीं सोचा कि मैं कभी साहित्य से प्रेम कर सकूँगा। यह तो चित्र हैं, जिनमें एक साधारण कहानी है। मुझे प्रसन्नता केवल इसी बात की है कि आपको मेरा यह प्रयास अच्छा लगा।—कलक्टर साहब मुस्कुराये।

मैं पुनः उस व्यक्ति के सम्बन्ध में सोचने लगा। कलक्टर साहब का भविष्य उज्ज्वल है। इस समय उनकी उम्र यही लगभग उन्तीस-तीस के लगभग होगी। यदि इनके कार्यों और गुणों को सरकार बराबर समझती रही, तो एक-न-एक दिन ज़रूर किसी महत्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित होंगे। एकाएक मुझे अपने हित की एक बात याद आयी, जो शायद मस्तिष्क के किसी कोने में बड़ी देर से चिपकी थी। मैंने मौन भंग करते हुए पूछा—क्या आप अपने ये चित्र मेरे पत्र के दीपावली विशेषांक में प्रकाशन के लिए दे सकते हैं? साथ ही अपना जीवन-परिचय भी?

मेरी बात सुनकर वह कुछ हँसे और बोले—प्रकाशन के लिए? आप भी कैसी बातें करते हैं? इन कलाविहीन चित्रों के प्रकाशन से आपके पत्र की कद्र कम हो सकती है। कहानी पसंद आने से क्या होता है। वास्तव में यह वस्तु अधूरी ही है।

—आप जो कुछ समझें, परन्तु एक चित्रकार होने के नाते मेरा भी स्वयं का कुछ दृष्टिकोण अवश्य है। चित्रों के प्रकाशन से पत्र की शान घटेगी नहीं, वरन बढ़ेगी।

—जैसा आप उचित समझें,—उन्होंने कहा।

बातचीत करते-करते छः बज गये। मैं कलक्टर साहब का अधिक समय नहीं लेना चाहता था, अतः बिदा होने से पूर्व मैं अपने अंतिम प्रश्न का उत्तर पाना चाहता था।

—क्षमा कीजिए, मैंने आपका काफी अमूल्य समय नष्ट कर दिया। मैं केवल एक बात और जानना चाहता हूँ, जैसाकि मैंने कुछ देर पूर्व पूछा था?...

—अवश्य पूछिए। इसमें क्षमा की क्या बात है?—उन्होंने मेरी बात बीच में ही भंग करते हुए कहा।

—क्या आप संक्षिप्त में अपने जीवन पर थोड़ा प्रकाश डालेंगे? जैसाकि मैंने अभी कहा था कि इन चित्रों के साथ ही मैं आपका थोड़ा जीवन-परिचय भी पत्र में देना चाहता हूँ।—मैंने संकोच करते हुए कहा, यद्यपि मुझे पहले ही ज्ञात हो चुका था कि सोकल साहब जाति के कुम्हार हैं। यह जाति पिछड़ी और निर्धन होती है। फिर भी इस जाति में ऐसी असाधारण प्रतिभा कैसे पनपी?

—जीवन-परिचय?—उन्होंने मेरे शब्दों पर ज़ोर दिया।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मैंने उनकी किसी अमूल्य वस्तु को छीनने का प्रयत्न किया हो। वह कुछ देर तक कुछ विचारों में खोये रहे, फिर उस बूढ़े के चित्र की ओर देखकर बड़ी गंभीरता से बोले—अच्छा हो कि आप मेरा नाम ही प्रकाशित कर दें। अपना परिचय देने की आवश्यकता मैं नहीं समझता।—वह कुछ रुके और पुनः बोले—मेरे सम्बन्ध में यदि आप जानना चाहते हैं, तो इस अलबम के शेष चित्र, जिन्हें आपने अभी नहीं देखा है और देख लीजिए... और बहुत-कुछ तो आपको ज्ञात हो ही चुका है।

उनके इस वाक्य के समाप्त होते ही मैंने कुर्सी छोड़ दी। मैंने स्पष्ट देखा कि कलक्टर साहब की आँखों में कुछ मोती-जैसे कण उभर आये हैं। वह छिपी हुई दृष्टि से उस चित्र को देख रहे थे, जिसे मैंने देख लिया था। उस समय उनका हृदय शायद अतीत की किसी मर्मस्पर्शी घटना से भर आया था। वह और आगे कुछ नहीं कह सके।

मैंने शान्ति भंग करते कहा—क्षमा कीजिए, अब आज्ञा चाहता हूँ।—मैंने इस तरह कहा, जैसे दो प्रेमी न चाहते हुए भी अलग होने के लिए मजबूर हों।

—अच्छा, लेकिन हमेशा आते रहिएगा। इसे अपना ही घर समझिए।—कलक्टर साहब ने संयत होकर कहा।

मैं सड़क पर चुपचाप चला जा रहा था। आस-पास नीरवता थी। ऊपर नीले आकाश में दो-तीन तारे छिटक पड़े थे। ठंडी-ठंडी हवा मेरे मस्तिष्क को दोलायित कर रही थी। मैं बहुत-कुछ समझ चुका था, लेकिन समझने को फिर भी बहुत-कुछ शेष था। वह क्या था? इस समय तो नहीं बतला सकता। मेरे मस्तिष्क में...बूढ़े का चित्र और उसकी चमकती हुई दोनों आँखें! लड़का! कलाकार! अन्य दंभी सरकारी कर्मचारी और यह व्यक्ति! उसको किस वस्तु के अभाव ने उस समय दुखित कर दिया था? प्रेम? नहीं। तो क्या? क्या उसने उन दो चमकते हुए नेत्रों से ज्योति पायी थी? क्या उन्हीं के स्पर्श से यह दीपक जल उठा? क्या वह उन नेत्रों को धारण करनेवाले शरीर से एक क्षण भर के लिए भी मिलना चाहता था? शायद यही अतृप्ति हो।

मेरे मस्तिष्क में ये-सब बातें गरम पानी के समान उबल रही थीं और मैं अन्धकार को बिजली के लट्टुओं की सहायता से चीरता हुआ, बगल में अलबम दाबे आगे बढ़ रहा था।

डायरेक्टरेट, पंचायत राज,
भोपाल।

—हाँ, तो मैं यह बतला रहा था कि निम्मो को प्यार हो गया।

मेरा मित्र बीच में ही बोल उठा—किसके साथ?

—मेरे साथ, और किसके साथ? वे ज़माने गये, जब मैं जगबीती सुनाता था, अब तो मेरे अपने साथ इतनी घटनाएँ घटित हुई हैं कि मुझे सोचना पड़ जाता है कि कौन-सी पहले सुनाऊँ।—मैंने उत्तर में कहा।

पर मेरे मित्रों की तसल्ली नहीं हुई, उनमें से एक फिर बोल उठा—तेरे साथ?—और साथ ही उसने अपने सिर को प्रश्नसूचक चिह्न का रूप दे दिया।

—हाँ, मेरी जान, मेरे साथ। तू क्या समझता है, इस सूरत पर रोज़ एक-आध लड़की मरती है!—मैंने कुछ रोष में आकर कहा।

पर दूसरा बोल उठा—तू भी इसी सूरत के कारण मरेगा!

इसपर दोनों हँसने लगे। मैंने पूछा—कैसे?

उत्तर मिला—इस सूरत को देखकर जूता मारने को जी नहीं चाहता क्या?

—ख़ैर, अपना-अपना ख़याल है। मेरी शक्ल में कुछ ऐसी मासूमियत है, मेरी आँखों में कुछ ऐसे संकेत छुपे हुए हैं कि लोग अपने-आप ही मेरी ओर खिंचे चले आते हैं। यही दशा निम्मो की हुई। मैं उनके मुहल्ले में दाख़िल हुआ ही था, अभी मेरा टाँगे से सामान उतर ही रहा था कि छत पर खड़े-खड़े उसकी नज़र मुझपर पड़ गयी। उसी समय मुझे खबर हो गयी कि कोई मुझपर क़ुर्बान हो चुका है।

—पर तुझे पता कैसे लगा?—मेरे मित्र ने मुझसे प्रश्न कर दिया।

—बस, कुछ मत पूछो। यह एक रहस्य है। यदि इसका पता मर्दों को लग जाय, तो बहार ही न आ जाय! मैं यह नहीं कहता कि लड़कियाँ तुम पर आशिक़ नहीं होतीं, सिर्फ़ तुम्हें पता नहीं चलता। मेरी होशियारी इसी में है कि मैं ताड़ लेता हूँ।

मेरे मित्र अपने-आपको बुद्धू समझने के लिए तैयार नहीं थे, एक ने कहा—घूमता तो तू हमारे साथ रहता है और क़िस्से लड़कियों के सुनाता है। आख़िर, वे तुझे मिलती किस समय हैं?

—रात में,—मैंने धीरे-से जवाब दिया।

—स्वप्नों में!—मेरे मित्र ने भी बात चलती की और दोनों हँसने लगे।

—तुम मानो या न मानो, मैं सच ही कहता हूँ। लड़कियाँ बदनामी से डरती हैं, पर निम्मो बड़ी निडर थी, वह रात में भी मिलती थी और दिन-दहाड़े भी। सारे मुहल्ले को हमारी मुलाक़ातों का ज्ञान था, पर निम्मो को कोई परवाह नहीं थी। वास्तव में यह उसका असली नाम नहीं है। क्योंकि वह जीवित है, इसलिए इस काल्पनिक नाम से ही मैं तुमको अपनी कहानी सुनाऊँगा।

कहानी

—केवल नाम ही काल्पनिक है या निम्मो का अस्तित्व भी ?

मेरे मित्रों को सरलता से मुझपर विश्वास नहीं होता और एक यह वाक्य कहे बिना रह न सका, पर मैंने उस ओर ध्यान न देकर अपना किस्सा जारी रखा।

—निम्मो का मेरे ऊपर आशिक़ होने का प्रमाण मुझे तीसरे दिन मिल गया। वह मेरे दरवाजे पर आकर खड़ी हो गयी। मैं चित्र बना रहा था। यद्यपि मेरी पीठ उसकी ओर थी, पर मैंने यह अनुमान लगा लिया कि यह वही है। मैंने गर्दन घुमायी, हमारी नज़रें मिल गयीं, कितनी देर हम एक-दूसरे की ओर देखते रहे!

—और बाहर की ओर भी, कि कोई तीसरा न देख ले!—मेरे मित्र ने बीच ही में टांग अड़ा दी।

मैं बार-बार की टीका-टिप्पणी को अच्छा नहीं समझता, पर मेरे मित्रों की कुछ आदत ही ऐसी है। वे मान नहीं सकते। और अब जबकि मैं आपबीती सुनाने के लिए बैठ ही गया हूँ, इसे पूरा तो करना ही पड़ेगा, ये लोग चाहे जितना भी मज़ाक क्यों न करें।

—दरवाज़े में खड़े-खड़े ही उसने मुझसे पूछा, आप कौन हैं? मैंने कहा, आदमी हूँ। कहने लगी, दिखायी पड़ रहा है। अब मेरी बारी थी, मैंने पूछा, आप कौन हैं? उसने कहा, मैं लड़की हूँ। मैंने कहा, मैं कहता हूँ, नहीं आप मेरी ज़िन्दगी हैं। मेरे मुँह से यह निकल तो गया, पर मैं डर-सा गया कि कहीं मेरी इस उच्छृङ्खलता का वह बुरा न मान जाय। कुछ समय तक वह चुप रही, फिर उसका मुख-मण्डल खिल उठा। उसके दाँत चमके, वह मुस्करा दी और बोली, कैसे? अब तो मैं दिलेर हो गया और मैंने जवाब दिया, बचपन में मैंने एक कहानी सुनी थी, एक देव के प्राण एक कबूतर में बसते थे। चाहे कितना ही देव को मारते रहो, जब तक कबूतर को न मारो, वह मर नहीं सकता था। इसी प्रकार मेरे प्राण भी एक लड़की में हैं, जब तक वह सलामत है, मैं सलामत हूँ। और वह तू है। मेरा उत्तर सुनकर उसके पग डगमगाये, वह मेरी ओर बढ़ी और पास आकर बैठ गयी। यह थी हमारी पहली मुलाक़ात।

—और आखिरी भी!—मेरे मित्र ने कहा।

मैंने पूछा—क्यों?

उत्तर मिला—कोई भी लड़की एक अपरिचित के पास नहीं जाती और यदि जाय भी, तो ऐसी बातें नहीं सहन करती।

—यही तो रहस्य है, जिससे तुम लोग अपरिचित हो। अगर लड़की फँसानी है, तो एकदम उसके साथ घुल-मिल जाओ। प्रेम शर्मीलों का काम नहीं है। अगर तुम झिझकते रहे, तो समझो, लड़की हाथ से गयी।—मैंने अपने मित्रों को नसीहत की, पर वे मेरी नसीहतों पर कम ही अमल करते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि ये खतरनाक होती हैं।

अब मेरे मित्रों को भी मेरी कहानी में कुछ रस मिलने लग गया था। एक ने पूछा—अच्छा, फिर क्या हुआ?

—जब वह कुर्सी पर बैठ गयी, तो कुछ क्षणों तक वह मौन भाव से कमरे का जायज़ा लेती रही, वह कमरे में लटके हुए चित्र देखती रही, पूछा, ये आपके बनाये हुए हैं? मैंने कहा, हाँ। उसकी आँखें फैल गयीं, वह हैरानी के साथ मेरी ओर देखने लगी, उसे विश्वास नहीं हुआ कि मैं इतना अच्छा चित्रकार हो सकता हूँ। पर यह चित्रकला ही है, जिसके सहारे मैं विश्व की एक महान् विभूति बनने के स्वप्न देख रहा हूँ। यह कला मुझे ईश्वरीय देन है, और ज्यों-ज्यों मेरा अनुभव बढ़ता जायगा, जैसे-जैसे लोगों की दृष्टि के सामने मेरी कला आयगी, मेरा नाम चमकता जायगा।...

मेरे दोनों मित्रों की आँखें टकरायीं, वे आँखों-ही-आँखों में मुस्कराये। वास्तव में, यद्यपि वे मानते हैं कि मैं एक अच्छा चित्रकार हूँ, पर जो आशा मैं लगाये बैठा हूँ, वे इसे पागलपन ही समझते हैं और जब भी मैं अपने प्रसिद्ध हो जाने की चर्चा चलाता हूँ, वे इसी प्रकार से मुस्करा देते हैं।

—निम्मो पर बहुत प्रभाव पड़ा। जिस प्यार का अभी-अभी आरम्भ हुआ था, वह अपनी पराकाष्ठा पर जा पहुँचा। उसने कहा, पहले मेरा चित्र बनाओ। मैंने न केवल उसी समय उसे चित्र बनाकर दिया, वरन् उसके बाद भी मैंने उसके अनेक चित्र बनाये। धीरे-धीरे वह मेरी कल्पना में इतनी समा गयी कि प्रत्येक चित्र में वह किसी-न-किसी रूप में आ जाती थी। यदि डूबते हुए सूर्य

को मैं कैनवास पर उतारता, तो वह घड़ा लिये कुँए की ओर जाती हुई नज़र आती थी; और यदि दृश्य पौ फटने का होता, तो वह हाथ जोड़े ईश-प्रार्थना करती हुई दिखायी पड़ती। यह तो दशा मेरी कला की थी। मेरे हृदय पर भी वह पूरी तरह से छा गयी थी। जब वह मेरे पास न होती, मैं अपना काम छोड़कर उसी के विचारों में डूबा रहता। कई-कई पहर मैं इसी प्रकार से मौन बैठा रहता और अनेक बार जब वह मुझसे आकर पूछती, आज आपने क्या किया है? तो मैं उत्तर देता, बस तुझे याद किया है। वह कहती, यह तो कोई काम नहीं है। वह मुझे कई बार फटकारती कि मैं अपने काम को क्यों बिसारता जा रहा हूँ? एक दिन तो उसने कहा, हाथ काम की तरफ और दिल यार की तरफ रखा कीजिए। पर मेरा काम ही ऐसा है कि जब तक दिल भी काम की तरफ न हो, चित्र बन नहीं सकता, इसलिए मैं एक समय में एक ही काम कर सकता हूँ।

—एक बार मुझे रात में नींद न आयी। मैं बड़ा व्यग्र था। बार-बार मुझे निम्मो का ही खयाल आता रहा। मुझे ऐसा लग रहा था कि जैसे वह हँसती हुई मेरी ओर आगे बढ़ रही है और पास आकर मेरे गले में बाहें डाल देती है। फिर वह मेरी आँखों में देखती है, जैसे कुछ ढूँढ़ रही हो। मैं जब भी आँखें बन्द करूँ, तो यही हो, जब खोलूँ तो तारे गिनूँ। रात के दो बज गये। आखिर मैं उठा और जाकर मैंने निम्मोवाले कमरे की खिड़की को खटखटाया। उसने खिड़की को खोल दिया और पूछा, कौन है? मैंने कहा, मैं हूँ तेरा दीवाना। उसने पूछा, क्या चाहता है? मैंने कहा, तेरे प्यार की भीख। उसने कहा, भीख तो दिन में मिलती है, रात में नहीं। यह कहकर वह खिड़की बन्द करके चली गयी। मेरा सारा शरीर क्रोध से काँपने लगा। इतनी लज्जा और इतना तिरस्कार मुझे कभी नहीं सहना पड़ा था। निम्मो धनी है तो अपने घर की। ऐसे अशिष्ट व्यवहार का उसे क्या अधिकार था? मुझे भी पश्चाताप होने लगा कि मैं क्यों अपने माँ-बाप से रूठकर परदेश चला आया, आज दो कौड़ी की लड़की मेरे दिल को ठेस लगाने का साहस करती है। मैं सारी रात क्रोध में तड़फड़ाता रहा।

—प्रभात होते ही वह मेरे पास आयी। वह हँस रही थी, उसकी आँखों में शरारत नाच रही थी। धीमे-धीमे कदम बढ़ाती हुई वह मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। मेरी नज़रें उठीं और साथ ही मेरे हृदय की धड़कन तेज़ हो गयी, मेरे शरीर में खून का दौरा अधिक तेज हो गया। मेरा हाथ अचानक ही उठा और तड़ से एक करारी चपत निम्मो के गाल पर जा पड़ी। उसकी आँखें खुली-की-खुली रह गयीं। एक हाथ गाल पर धरे वह मेरी ओर देखती रही, पर मुझसे खड़ा न रहा गया, मैं वहीं फर्श पर बैठ गया। मैं आशिक़ बाद में और मर्द पहले हूँ। जब भी मेरे आत्माभिमान को धक्का लगता है, मैं मरने-मारने के लिए तैयार हो जाता हूँ। मुझे एक महान् विभूति बनना है। मैं यह बात भूल ही गया कि निम्मो मेरे हाथों से निकल जायगी, जाती है तो जाय, वह मेरी इज़्ज़त के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकती!

—यह-सब झूठ है! कौन ऐसी गयी-बीती होगी, जो तुमसे चपत खाकर भी चुप रहेगी?—मेरा मित्र बोल उठा।

—मेरे मित्र! यही तो तुम भूलते हो। स्त्रियाँ लातों की भूत होती हैं, ये बातों से मोम नहीं होतीं। इनके सामने बल का प्रदर्शन करके दिखाओ, तभी इनको होश आता है।—मैंने अपने अनुभवों का निचोड़ अपने साथियों को दे दिया।

—कुछ देर तक निम्मो इसी प्रकार खड़ी रही, फिर वह झुकी और उसने मुझे कन्धों से पकड़कर खड़ा किया। हमारी नज़रें मिलीं, मेरी आँखें झुक गयीं, उसने अपने सिर को मेरे कन्धे पर टिका दिया और उसके आँसू टप-टप गिरने लगे। मैंने उसे चुप नहीं कराया। मैंने उससे क्षमा नहीं माँगी। आखिर अपराध भी तो उसी ने किया था। केवल धीरे-धीरे मैं उसकी पीठ पर थपकी देता रहा। हमने कोई भी बात नहीं की। जब उसका हृदय शान्त हो गया, उसके आँसू रुक गये।

—इसके बाद तो हम लोग प्रायः मिलने लगे। जब भी मैं प्राकृतिक दृश्यों के चित्र बनाने के लिए दिल्ली से दूर जाता, वह मेरे साथ होती। कई बार मेरा दिल अपना काम छोड़कर उसके साथ बातें करने में ही लग जाता, पर वह मुझे स्मरण करा देती कि मुझे एक उच्चकोटि का कलाकार बनना है, यह अवस्था बातें करने की नहीं, काम करने की है। पर यही अवस्था प्यार करने की भी है,

प्यार भी तो युवावस्था के बाद नहीं हो सकेगा। मुझे प्यार और कला में एक का चुनाव करना था, मेरा मन प्यार की ओर झुका, दिनों-दिन निम्मो मेरे हृदय में, मेरी कल्पना में समाती चली गयी, मैं उसके बिना व्याकुल रहने लगा।

—उन्हीं दिनों की बात है कि एक बड़ा बाँका जवान, खूब बना-ठना हुआ, बहुमूल्य वेष-भूषा से सुसज्जित, निम्मो के घर अचानक ही आ धमका। उसको देखकर मेरा दिल बैठ गया, पता नहीं क्यों, मुझे ख़याल आया कि यह निम्मो को मुझसे छीनकर ले जायगा। निम्मो ने बाद में मुझे बतलाया कि वह उनका दूर का सम्बन्धी है और अफ्रीका में व्यापार करता है। कोई दो महीने वह ठहरा होगा। वह प्रति दिन आता, निम्मो उसके साथ घूमने जाती, मुझे दुःख होता था, पर मैं उसके मामलों में दखल देनेवाला कौन होता था। मेरे साथ उसकी मुलाकातें वैसे ही होती थीं; केवल हम लोग पहले से अधिक मौन रहते। मैंने कभी अफ्रीका के व्यापारी के विषय में बात नहीं चलायी और न ही निम्मो ने मुझे कुछ बतलाया। कुछ समय के बाद मुझे पता चला कि निम्मो की उसके साथ कुड़माई हो गयी है। मैंने फिर भी निम्मो से गिला नहीं किया, पर उसके मौन से मैंने यह अनुभव किया कि यह उसके माँ-बाप की इच्छा है। जिस प्रकार वह मेरे साथ रही है, यह हो नहीं सकता कि उसको मुझसे प्यार न हो, और मुझे पूरी आशा थी कि निम्मो मुझे कहेगी, चलो, भाग चलें! चल, कलाकार, मुझे ऐसी जगह ले चल, जहाँ तेरे सिवा कोई न हो!

—मैंने वह रात, जब निम्मो की बरात आयी, सारी आँखों में ही काट दी थी, अच्छी तरह से याद है। एक-कतार-की-कतार कारें आयी थीं, निम्मो के घर बिजली के अगणित बल्ब जगमगा रहे थे। बैंड और ग्रामोफोन बज रहे थे। यह सारा दृश्य मैंने अपनी खिड़की में से देखा था, मुझे किसी ने बुलाया भी नहीं, इस बात का मुझे रोष था, और मन-ही-मन प्रसन्न था कि मैं भी इनको मज़ा चखा दूँगा। सवेरा होते ही यह खुशी मातम में बदल जायगी और उनको पता लग जायगा कि निम्मो ग़ायब है। मुझे पूरी-पूरी आशा थी कि निम्मो को जैसे ही अवसर मिला, वह उठ भागेगी। मैंने निश्चय कर रखा था, हम रातों-रात दिल्ली से कई सौ मील दूर चले जायेंगे और ऐसी जगह छिपेंगे, जहाँ से लोगों को जीवन-भर खबर न मिले। बरात से एक दिन पहले भी निम्मो मेरे पास आयी, और यद्यपि उसने मेरे साथ कोई बात नहीं की, पर सदा की ही तरह वह मेरी आँखों में देखती रही। वह देखना चाहती थी कि मेरे ऊपर क्या असर हुआ है, पर मैंने अपने दिल के दुःख को बिल्कुल प्रकट नहीं होने दिया। मैं नहीं चाहता था कि निम्मो मेरी हालत पर दया करके अपना फैसला बदल ले, वह मेरी ख़ातिर नहीं, अपनी ही ख़ातिर मेरे पास आयगी। यदि वह समझती है कि मेरे बिना नहीं रह सकेगी, तो मैं प्रस्तुत हूँ।

—मैंने सोचा, निम्मो का मेरे साथ भाग जाना उसके लिए कोई घाटे का सौदा नहीं था। एक-न-एक दिन मेरी कला चमकेगी, मेरा नाम दुनिया में रोशन होगा, मैं अमर हो जाऊँगा और इस अमर-जीवन की साझीदार निम्मो हो सकती है, मेरे साथ वह भी अमर हो जायगी। अफरीका का व्यापारी भी उसे साझीदार बनाना चाहता है, पर किसमें? दो-चार कपड़े की दुकानों में, एक-दो पक्के मकानों में। बस। मेरी तुलना में, अमर जीवन की तुलना में तो यह सब-कुछ हेय है। निम्मो कोई नादान बच्ची नहीं है, वह ये बातें समझती होगी। वह अवश्य आयगी, मुझे सोना नहीं चाहिए, कहीं मुझे सोया हुआ देखकर वह लौट ही न जाय।

—ठीक है, वह उसको मोटरों और कारों में सैर करायगा। मैं मानता हूँ, अफरीका का सौदागर उसे कोठियों में रखेगा। सेवा में नौकर-चाकर होंगे, प्यार करने के लिए वह स्वयं हाज़िर होगा। पर मेरा जी नहीं मानता कि निम्मो उसके साथ खुश रह सकेगी। उसकी दशा क़ैदी से बढ़कर कुछ नहीं होगी, यद्यपि वह सोने के पिंजरे में बन्द होगी। मैं स्वतन्त्रता देता हूँ, स्वतन्त्रता आत्मा का भोजन है और जिसकी आत्मा परितुष्ट हो, उसे शरीर के सुखों की इतनी परवाह नहीं होती, फिर अफरीका जाकर निम्मो करेगी भी क्या? वहाँ तो भारतीयों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। धन होते हुए भी उनको गोरे साहबों की अशिष्टताएँ सहन करनी पड़ेंगी।

—इन्हीं सब बातों के कारण मेरा विचार था कि निम्मो अवश्य आयगी।

—पर निम्मो न आयी। रात के बारह बज गये। मेरी व्याकुलता बढ़ने लगी। अब तो सब सो गये होंगे। अब निम्मो को खिसक आना चाहिए। पर ब्याहवाला घर है, हो सकता है, अभी सब न सोये हों। इसी प्रतीक्षा में एक बज गया। परन्तु निम्मो न आयी। अब मैं कुछ उदास-सा हो गया, मेरी आशाएँ टूट गयीं। मैं सोचने लगा, निम्मो बेवफा निकली, वह धन की ओर झुक गयी, उसने आत्मा से शरीर को अधिक महत्व दे दिया। उसने मेरे साथ खिलवाड़ ही किया, मेरे साथ तो वह समय बिताती रही, जब उसे अपनी बिरादरी का लड़का मिल गया, वह चली गयी। उसने यह भी आवश्यक न समझा कि मुझे अलविदा कह जाय। अच्छा, कोई बात नहीं, जो निम्मो की इच्छा। यह तो प्यार का सौदा है, कोई ज़बरदस्ती तो है नहीं।

—इन्हीं चिन्ताओं में सवेरा हो गया, निम्मो को न आना था, न वह आयी। एक तो रात्रि-भर का जागरण, दूसरे निम्मो की बेवफाई के दुःख से मेरा सिर भारी हो गया था। जी में आया, चलकर शराब के एक-दो पेग पीऊँ, वह भी देसी शराब के, जो मेरे सिर को चकरा देंगे और मुझे यह भी याद नहीं रहेगा कि रात निम्मो की बरात आयी थी या मेरी खुशियों का खज़ाना मुझसे छीना जा रहा है। पर अभी तो दुकान भी नहीं खुली होगी। कितनी बुरी आदत है, मुझे एक-आध बोतल घर में ज़रूर रखनी चाहिए।

—फिर मुझे खयाल आया, अभी तो भाँवरें नहीं हुईं, हो सकता है, निम्मो ऐन मौके पर इन्कार कर दे। पर नहीं, यह नहीं हो सकता, यदि उसका ऐसा विचार होता, तो वह रात में ही आती। पर देखें, क्या कहा जा सकता है। मेरी आशा बँधी और मैं फिर प्रतीक्षा में बैठ गया।

—भाँवरें हो गयीं। निम्मो न आयी। बैंड की आवाज़ ऊँची हुई, गोले चलाये गये, लोगों ने एक-दूसरे को बधाइयाँ दीं। मैं क्रोध में उठा, किवाड़ बन्द कर दिया और शराब की दुकान की ओर चल पड़ा।

—रास्ते में मुझे डाकिया मिला। बोला, सरदारजी, आपकी चिट्ठी है। मैंने चिट्ठी ले ली, पर पढ़ने की इच्छा न हुई। मैंने उसी तरह उसे जेब में डाल लिया। दुकान पर पहुँचते ही मैंने आधी बोतल मँगवाई और एक ही पेग में मैंने आधी खाली कर दी, सोडा भी नहीं मिलाया। सूखी शराब और उसपर भूखे पेट ने अन्दर आग लगा दी। मैंने एक पाव भुनी मछली मँगवायी और खाने लगा, फिर ख़याल आया, एक चिट्ठी आयी थी, उसको पढ़ना चाहिए। मैंने लिफ़ाफ़ा खोला, लिखा था, मेरे कलाकार! एकदम मेरी दृष्टि नीचे लिखे नाम पर गयी। यह तो निम्मो का ख़त था। लिखती होगी, मुझे भुला देना, मैं मजबूर हूँ, इत्यादि, मैं इन स्त्रियों को अच्छी तरह से जानता हूँ। और मेरे जी में आया पत्र को पढ़े बिना ही फाड़ फेकूँ, पर फिर मैंने सोचा, पढ़ तो लेना चाहिए। पत्र में लिखा था:

मेरे कलाकार,

मैं तुमसे इतनी दूर जा रही हूँ कि मुलाकात तो क्या, तुम्हें मेरा समाचार भी नहीं मिला करेगा। मैं चाहती तो तुम्हारी हो सकती थी, मुझे कोई रोकनेवाला नहीं। पर मैंने तुमसे दूर ही हो जाना चाहा, इसलिए नहीं कि मेरा हृदय तुमसे भर चुका था, बल्कि इसलिए कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। तुम मुझे बेवफा कहोगे, तुम मुझे जी-भरके कोसोगे, कुछ समय के लिए तुम बड़े उदास भी रहोगे, पर तुम मुझे भुला दोगे, मैं तुम्हारे स्वभाव को जानती हूँ। पर मैं तुम्हें कभी नहीं भुला सकूँगी। जो आनन्द मैंने तुम्हारे सहवास में प्राप्त किया है, वह मुझे जीवन-भर दुःखी रखेगा, क्योंकि तुम्हारे बाद मुझे कोई और भायेगा नहीं। तुम्हारा दुःख तो कुछ दिनों का है, मेरा तो जीवन-भर का है, पर मैं अपना सुख क़ुर्बान कर सकती हूँ, तुम्हारे जीवन को व्यर्थ होता नहीं देख सकती।

कलाकार सौन्दर्य का उपभोग करने के लिए जन्म नहीं लेते, सौन्दर्य को अमर करने के लिए आते हैं। कलाकार का काम है घूम-घूमकर सौन्दर्य की खोज करना और उसको जगत के सम्मुख प्रस्तुत करना। जब तक मैं तुम्हारे समीप रही, तुम कोई भी श्रेष्ठ चित्र न बना सके। सौन्दर्य कलाकारों के लिए जन्म नहीं लेता। जिस कलाकार की सभी इच्छाएँ पूरी हो रही हैं, उसको कोई वस्तु उत्साहित

नहीं करती, उसकी आत्मा नहीं तड़पती। और जब तक आत्मा नहीं तड़पती, तब तक कला का जन्म ही नहीं होता, कलाकार बन नहीं सकता। मैं तुमसे दूर जा रही हूँ, जिससे कि तुम्हारी तृष्णा न बुझे। सौन्दर्य धनियों के लिए जन्म लेता है, जिनके जीवन का कोई मनोरथ नहीं, जिनको केवल जीवित ही रहना है, जीवन को सुन्दर ही बनाना है।

—यह था निम्मो का पत्र, अब यद्यपि मैं समझता हूँ, निम्मो ठीक ही कहती थी, पर उस समय मुझे इतना क्रोध आया कि मैंने पत्र को पुर्जे-पुर्जे कर दिया।

—दूसरे शब्दों में तूने इस कहानी की सत्यता के प्रमाण नष्ट कर दिये!—मेरे मित्र ने जिरह की।

—पर यह कहानी सच्ची है!—मैंने उत्तर दिया।

—नहीं, यह झूठ है, इसकी सच्चाई का कोई प्रमाण नहीं!—मेरे मित्रों ने मानने से इन्कार कर दिया।

पंजाबी से अनु० तिलकराज चोपड़ा।

द्वारा, पीतम कार्यालय,
१५, अन्सारी मार्केट,
दरियागंज, दिल्ली।
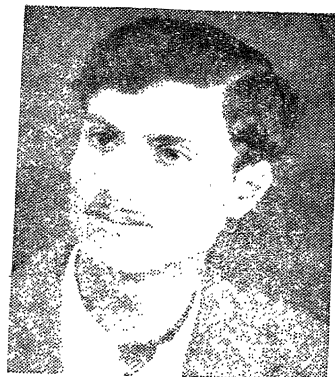
ट्रेनिंग समाप्त कर जब धरमसिंह का बेटा करमसिंह अफ़सर बना, तो उसने एक काला ओवरकोट सिलवाया, जिसमें सिर्फ़ एक जेब थी। कई दिनों तक बाप और बेटे में इस बात पर झगड़ा चलता रहा। पिता के अनुसार कोट में एक जेब रखना अपशकुन था। कपड़े में जेब का वही महत्व होता है, जो मकान में आले का, मुंशी धरमसिंह सदैव कहा करते।

गाँव के लोगों और रिश्तेदारों की भी यही राय थी। एक तो ओवरकोट, याने कोट का बाप, और उसमें भी केवल एक जेब! यह तो सर्वनाश की निशानी के अलावा कुछ हो ही नहीं सकता। दरजी ने भी डरते-डरते कह ही दिया—सरकार, ऐसा तो आज तक कभी किसी ने...

—मैं किसी की नहीं मानता!—कहकर करमसिंह ने कोट पहन लिया मंगलवार को ही। घर में कुछ बूढ़े बैठे थे, जिनमे एक ने यह श्लोक पढ़ ही दिया :

डाढ़े फाटे रवि, शशिवार
मरना होवे शनि, मंगलवार
बुद्ध, बृहस्पत, शुक्रवार
बस्तर पहनो बिना विचार।

और कुछ ही दिनों के बाद करमसिंह तो नहीं, पर उसके पिता मुंशी धरमसिंह सचमुच मर गये।

अब कोट की उस इकलौती जेब ने अपना कार्य प्रारम्भ किया।

करमसिंह को जीवन में पहली बार, पहले महीने की तनख्वाह मिली। उस दिन जब वह अपने गाँव जाने लगा, तो माँ-बहन के लिए कपड़े, घर के लिए नमक-तेल और अन्य सामान और कुछ जरूरत की चीजें ले जाना चाहा, पर नहीं ले जा सका। तनख्वाह जो थी, उससे अधिक तो उसपर लोगों का देना ही था। कुछ देर वह सोचता रहा और तब अचानक उसे अपनी पत्नी की याद हो आयी, जो माँ बननेवाली थी और जिसे घर में दासी की तरह रखा जाता था। होटल में चाय पीते हुए उसने सोचा, उसे मिठाई कितनी पसन्द है और उसे मेरे घर में कितना अधिक दुःख है! पहली कमाई से दो लड्डू तो खिला दूँ।

उसने मिठाई खरीद ली। घर पहुँचा। अपने कमरे में दाखिल हुआ और रूमाल में बँधी मिठाई ओवरकोट की

जेब में डाल दी, ताकि उसकी माँ या बहन की नज़र उस-पर न पड़े।

लेकिन यह बात उसके दिमाग़ में बनी रही कि उसने चोरी की है। अपनी माँ और बहन से छुपाकर उसने मिठाई रखी है। लेकिन वे भी तो ऐसा ही करती हैं, वे भी तो उसकी नजरों में कोई चीज़ नहीं पड़ने देतीं।

बुलाहट होने पर वह रसोई के अन्दर पहुँचा। लेकिन वह सोच में पड़ा रहा। बार-बार उसे अपनी पत्नी के ऊपर होनेवाले अत्याचारों की याद आती। और उसके लिए चोरी से छुपायी हुई मिठाई की सोच सन्देह हो उठता कि कहीं कोई देख न ले। उसकी बहन शारदा रसोई में न थी, कहीं वह उसके कमरे में...

—खाना खा ले, बेटा, तू किस सोच में है?

—कुछ नहीं, माँ, मैं सोच रहा हूँ कि इस सब्जी को मेरी थाली में पहुँचते-पहुँचते कितना लम्बा समय लगा होगा, कितने लोगों की मेहनत लगी होगी।

—हूँ! क्या बक रहा है यह?

—ज़रा सोचो, माँ। कभी इस सब्जी का बीज बोया गया होगा, फिर अंकुर फूटा होगा, फिर इकपत्ती, दुपत्ती, तिपत्ती उगी होगी और तब पौधा बड़ा हुआ होगा, किसी ने पानी दिया होगा, किसी ने काटा होगा, तुमने पकाया है और मैं खा रहा हूँ। लगा है न लम्बा समय?

—तू ऊल-जलूल न बकाकर, मुझे डर लगता है।

—कितनों की मेहनत पर हम जीते हैं, यह सोचकर भी तुम डर जाती हो, माँ?

—करमू, तू फिर वैसी ही बातें कर रहा है! मुझे तेरी बातें सुनकर डर लगता है। जबसे तूने वह काला कोट पहना, तू कुछ अजीब-सी बातें करने लगा है।

काला कोट! और वह तुरन्त हाथ धोकर अपने कमरे की ओर लौट पड़ा।

शारदा पीछे के दरवाज़े से भागी। वह ओवरकोट की जेब से सिर्फ़ एक लड्डू निकाल पायी थी? करमहिंस ने देखा, वह हड़बड़ायी हुई भागी जा रही है और दीवार पर कोट हिल रहा है। पर वह कुछ बोल न सका, अधिकार-पूर्ण स्वर में पूछ न सका, तुमने कोट की जेब में हाथ क्यों डाला? डर था कि कहीं माँ से वह कह न दे। शारदा ने भी स्वयं को चोर माना और वह पूछ न सकी कि यह मिठाई किसके लिए छुपाकर रखी है?

दूसरे दिन, मूल में कमरसिंह की पत्नी ने एक बच्चे को जन्म दिया। पुरोहित ने कहा—दस साल तक इस बच्चे का पिता इसका मुँह नहीं देख सकता।

शारदा ने अपनी माँ से कहा—अगर उसने काले कोट की मिठाई न खायी होती, तो ऐसे कुलघ्न बच्चा न जनती।

माँ ने इस बात का ढिंढोरा पीटा और फिर रिश्तेदारों की टोली ने काले कोट और उसकी इकलौती जेब पर प्रहार किये।

नवजात शिशु और उसकी माँ को पुरोहित और रिश्तेदारों के सुझाव पर नाना के घर भेज दिया गया। इसके बाद पुरोहितजी नित्य मंगलपाठ करने लगे कि कुलघ्न में जन्मा करमसिंह का बच्चा कोई अमंगल न कर सके। वह नित्य अमंगल के स्थान पर मंगल को न्यौता देने लगे।

आखिर मङ्गल आया और उसने आते ही अपना कार्य-भार संभाल लिया। करमसिंह को मिली दूसरे महीने की तनख्वाह पुरोहितजी को भेंट कर दी गयी।

कर्जा बढ़ता गया।

तीस दिन तक पूजा-पाठ करने के बाद जब पुरोहितजी लौटने को हुए, तो करमसिंह की बूढ़ी माँ ने कहा—महा-राज, जरा करमू की जन्म-पत्री तो देख लीजिए। कुछ धन-वन भी मिलेगा या कर्जा ही बढ़ता रहेगा।

पुरोहितजी ने पत्रा खोला, जन्म-पत्री खोली, स्लेट निकाली, कुंडलियाँ बनायीं, अश्वनी, भरनी, कृत्तिका इत्यादि को बार-बार दुहराकर उँगलियों पर गिनती की और तब कहा कि धन आयगा अवश्य, किन्तु इस घर में लक्ष्मी अधिक दिन नहीं टिकेगी, क्योंकि ग्रहों की मित्रमंडली संकट ग्रस्त है। करमसिंह के ग्रहों को कोई दुःख नहीं, किन्तु यही दुःख सबसे बड़ा है कि उन ग्रहों के मित्र घोर क्लेश भोग रहे हैं। किसी का सुख तभी स्थायी रह सकता है, जब उसके सगे-सम्बन्धी सुखी हों। इतना कहकर पुरोहितजी चल दिये।

❀

तीस वर्ष बाद।

एक छोटे-से सरकारी क्वार्टर के कमरे में करमसिंह आरामकुर्सी पर बैठा था। कमरे के अन्दर शहर के प्रसिद्ध

व्यापारी जेठासेठ को प्रवेश करते देख उसने कहा—सेठ साहब, वह काम मुझसे न हो सकेगा।

—हुजूर के दर्बार में अगर अर्जी नामंजूर हो गयी, तो दुनिया में खड़ा होने को जगह कहाँ मिलेगी, सरकार ?—इतनी-सी भूमिका बाँधकर जेठासेठ ने करमसिंह के काले कोट की जेब में हाथ डाल दिया।

—अब इससे काम नहीं चल सकता, सेठजी।

—हुजूर, तो यह आपकी पान-सुपारी लिए भी है,—कहते हुए जेठासेठ ने एक बार फिर डिप्टी साहब की जेब में अपना हाथ डाला।

—आप लोग मजबूर कर देते हैं।

—दया रहे, मालिक, आप ही का आसरा है !—कहते हुए जेठासेठ ने कमरा छोड़ दिया।

चूड़ीदार पाजामा और बन्द गले का कोट पहने एक व्यक्ति ने कमरे में आकर नमस्कार किया।

—नमस्कार, आओ, आओ, घर में तो सब कुशल है न ?

—दया है आपकी।

—दया भगवान की है, भाई।

इसके बाद कई मिनट तक दोनों मौन रहे। डिप्टी करमसिंह अपनी फाइल में डूबा रहा और नवागन्तुक चतर सिंह, जो उसके बहनोई के भाई के साले के चाचा का लड़का था, अपने विचारों में।

तब चाय आयी और दोनों ने मौन व्रत भङ्ग किया। वार्ता करमसिंह ने ही आरम्भ की। चतरसिंह के परिवार के सदस्यों के बारे में पूछ-ताँछ शुरू करके।

परिवार के सदस्यों की व्यक्तिगत कुशल-क्षेम के बारे में अन्तिम प्रश्न था—छोटे कहाँ है आजकल ?—छोटे चतरसिंह का छोटा भाई था।

—बरबादी के लक्षण हैं, भाई साहब। वह तो कहीं भाग गया है।—चतरसिंह ने एक लम्बी साँस खींचकर कहा—नानक सेठ की गाँववाली दुकान पर आपने लगा दिया था। मजे में-खा-पी रहा था। साले को दुर्बुद्धि उपजी। अब मिलेगा उसे कहीं हलुवा-पूरी ?—चतरसिंह ने अपनी बात समाप्त की और उसे लगा कि उसे मुक्ति मिल गयी है। बस, इस समय इतना ही कहना था। यही तो एक बात थी, जिसे कहने के लिए वह आज यहाँ आया था। उसकी सूरत बिल्कुल उस मुर्दे की जैसी हो गयी थी, जिसे लम्बी बीमारी और असह्य कष्टों के बाद मौत के जबड़े में पहुँचने के अलावा कहीं सुख मिलता नहीं दिखता और जो चिल्ला-चिल्लाकर कहता है, मौत, तू आती क्यों नहीं ? आ, मुझे ले जा। छुटकारा दे मुझे, इस पीड़ा से बचा। चतरसिंह ने सर झुका लिया।

करमसिंह की जुबान बेलगाम हो गयी—मरने दो सालों को ! भाग गया है, तो भाग जाने दो ! हो जायें साले बर्बाद, मुझे कोई मतलब नहीं। मैंने तो तुझसे पहले ही कह दिया था कि वह उल्लू का पट्ठा खाने-कमाने लायक हो ही नहीं सकता। सेठ का कर्जा क्या उसका बाप देगा अब ?—उसकी आवाज सारे घर को थर्राने लगी।

—सेठ ने तो नोटिस दे दी है,—चतरसिंह को जैसे साँप ने काट खाया हो।

—नोटिस दे दी है, तो मनौती करो, इकतारा बजाओ अब ! कमीने की औलाद ! जाओ, सालो, सब भाग जाओ ! मकान पर ताला लगवा दो, जमीन की कुर्की करवा दो !...

—चिरंजीव !—एक वृद्ध ने तभी प्रवेश किया।

—फूफाजी, प्रणाम। बहुत दिनों बाद आये आप ?—करमसिंह ने मृदु स्वर में कहा।

चतरसिंह ने भी वृद्ध को प्रणाम किया और चुपके से उठकर बाहर चल दिया। वृद्ध और करमसिंह एक-दूसरे के कुशल-समाचार पूछते रहे। बात-ही-बात में वे नयी पीढ़ी के नौजवानों पर आ गये और नये युग के छोकड़ों की खोटी-खरी आलोचना होने लगी, उनकी आदतों की, उनके दुर्व्यसनों की, उनके वाहियात खर्च की।

—जमाना ख़राब है, फूफाजी, ये छोकड़े आज इतना खर्च करते हैं। कल कमानेवाले होंगे, तो माँ-बाप से मिलनेवाली रकम का दसवाँ हिस्सा भी नहीं मिलेगा।

—अजी, क्या बतायें ! मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता। जमाना खराब क्या, रहने लायक ही नहीं रहा।—वृद्ध ने साँस रोककर काँपते हाथ से अपनी जेब से एक कागज निकाला और उसे करमसिंह की ओर बढ़ाते हुए कहा—

देखिए, यह चिट्ठी भेजी है उसने इस बार, मैं तो पागल हुआ जा रहा हूँ।

करमसिंह ने पत्र खोला :

पूज्य दादाजी,

सादर प्रणाम,

आपका पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपका स्वास्थ्य आजकल ठीक है। आपके लिए इस वृद्ध अवस्था में अधिक परिश्रम करना ठीक नहीं। मुझ अभागे को छोड़ जबसे पिताजी स्वर्ग सिधारे, मुझे अपना जीवन निरर्थक लगता है। केवल आपकी ही आशा है। ईश्वर आपको लम्बी आयु दे, ताकि मैं कभी आपके चरणों में बैठकर सेवा करने का सुअवसर पा सकूँ।

जाड़े का मौसम है और हमारे कालेज में सभी गर्म कपड़े पहन रहे हैं। दुनिया में ग़रीब का कोई पूछनेवाला नहीं। जिन लोगों के पास पैसा नहीं, उन्हें यहाँ कभी नहीं आना चाहिए। ऐसी पढ़ाई किसी काम की नहीं, जिसके लिए अपने आत्मसम्मान का बलिदान कर कदम-कदम पर क्रोध और निरादर के घूँट पीने पड़ें। ट्यूशन ज्यादा नहीं मिल पाती। एक बड़ी मुश्किल से मिली भी तो उससे बीस रुपये माहवार से ज्यादा नहीं मिलते। इससे अधिक तो, आप जानते ही हैं, खाने पर ही खर्च हो जाता है।

मैं गर्म कोट तो खैर नहीं बना सकता। अगर आप कुछ रुपये भेज सकते, तो एक ठण्डा कोट या स्वेटर बनवा लेता। अभी तक किताबें भी नहीं खरीद पाया। सब किताबें खरीदने की तो मेरी सामर्थ्य नहीं, लेकिन कुछ तो खरीदनी ही पड़ेंगी।

जूता फट गया है और आजकल नंगे पाँव नहीं रहा जाता, एक जूता भी खरीदना ही होगा। दस-बारह रुपये का आ जायगा।

पिछले महीने आपने जो चालीस रुपये भेजे थे, उनका और ट्यूशन से मिले बीस रुपयों का हिसाब इस प्रकार है :

२०) रु० खाना, १५) रु० फीस, १) रु० दवाई की फीस, २) रु० बिजली की फीस, ।) रु० सोशल सर्विस फीस, ३) रु० इम्तिहान की फीस, ५) रु० खेल की फीस, ३) रु० पुस्तकालय की फीस। कुल ५६।)

नाई, धोबी वगैरह किसी का भी इस महीने हिसाब साफ़ नहीं किया जा सका। इस बढ़ते हुए खर्च को रोकने के लिए मैंने इस महीने से एक वक्त का खाना बन्द कर दिया है। शाम को चने चबा लेता हूँ। आप चिन्तित न हों।

आप जितना भेज सकते हों, भेज दीजिए। किसी तरह यदि मैं बी० ए० पास कर पाया, तो जीवन को संकट-मुक्त समझूँगा।

दादीजी व माँ को मेरा प्रणाम कह दीजिए।

आपका पोता, सुमेर।

करमसिंह ने पत्र पढ़ा और एक ओर रख दिया।

—करमसिंह, बेटा, मेरी नाव तुमने ही पार लगायी है। इस सुमेर को तुमने ही पढ़ाया है। इतना पढ़ा लिया, तो अब पूरा ही कर दो। यह भी तुम्हारे ही मत्थे है। कुछ ही महीनों की बात है। फिर साले जो चाहें करें। पर पहले यह नय्या तो पार लगे। —वृद्ध के स्वर में बहुत-से भाव थे, भिक्षा, करुणा, चातुर्य।

करमसिंह ने कुछ न कहा। मौन हो माथा पकड़ एक लम्बी साँस खींची और सिगरेट निकालकर कश लेने लगा।

कुछ देर तक सिगरेट फूँकने के बाद उसने चतरसिंह को अन्दर बुलाया।

—सेठ के कितने पैसे हैं ?

—दो सौ इक्कीस।

खूँटी पर टंगे ओवरकोट की ओर इशारा करके करमसिंह ने कहा—देखो, जेब में कुछ रुपए होंगे।

चतरसिंह ने ओवरकोट की जेब से नोटों के दो बंडल निकालकर करमसिंह के हाथ में दिये।

करमसिंह ने दो सौ इक्कीस रुपये गिनकर चतरसिंह के हाथ पर रखे और कहा—अब मेरी सामर्थ्य नहीं रह गयी देने की। ज़िन्दगी बीत गयी लोगों की माँग पूरी करते। किसे न दूँ ? कोई चाचा का है, कोई मामा का, कोई अपने साले का है, तो कोई भाई-बन्धुओं का। इस बूढ़ी अवस्था में पाप करना पड़ रहा है, नरक भोगना ही होगा। वह तो, खैर, अपना कोई नहीं रहा, वर्ना सब भूखों मरते, मारे-मारे फिरते। अच्छा ही हुआ, जो वह मूलू नहीं रहा। हरि इच्छा प्रबल है।

चतरसिंह रोना चाहता था। पर जब्त कर गया और चल दिया।

इसके बाद सुमेर के नाम कालेज के पते पर मनीआर्डर किया गया। कूपन पर लिखा, प्रिय सुमेर, शुभाशीष। तुम्हारे पत्र से चिन्ता हुई। एक वक्त का भोजन बन्द मत करो। तन्दुरुस्ती सबके पहली चीज़ है। एक पूरी बाँह की स्वेटर भेज रहा हूँ। पुस्तकें जो जरूरी हो, ले लेना, तुम्हारा चाचा करमसिंह।

❀

यह संयोग की बात थी कि जिस दिन करमसिंह को पेंशन का समाचार मिला, सुमेर वहाँ मौजूद था। रोज़ की तरह करमसिंह दफ्तर से लौटा, पर उसने अपना काला ओवरकोट न पहना।

दूसरे दिन सुमेर को बिदा करने से पहले करमसिंह ने रोककर कहा—एक मिनट के लिए मेरे साथ चलो,—और वह उसे अपने कमरे में ले गया। खूँटी से लटका काला ओवरकोट उतारकर उसने सुमेर के हाथ में दिया—एक यही बाकी है, बेटा, जिसने मेरा साथ नहीं छोड़ा। इसे मैंने उस दिन बनवाया था, जिस दिन मेरी नौकरी लगी थी। तबसे कोई मेरा साथ न दे सका। मेरी माँ, तुम्हारी चाची, मूलू, सब-के-सब चल दिये, एक यही कोट बाकी है। जीवन में इस कोट की जेब में कितने हाथ डाले गये, यह बताना मुश्किल है। अब मेरी नौकरी खत्म हो गयी है और इसकी जेब में मेरा हाथ नहीं जायगा। मैं यह कोट तुम्हें सौंपता हूँ।

सुमेर कोट लेकर जाने लगा।

—एक बार इसे मेरे सामने पहन लो, बेटा!—करमसिंह बच्चे की-सी आवाज में बोला।

कुछ दिन बाद करमसिंह ने संन्यास ले लिया, जीवन में किये पापों से मुक्ति पाने के लिए, और वह कहाँ गया, किसी को पता न चला।

❀

कहते हैं, सुमेर उस कोट को तब तक पहनता रहा, जब तक उसकी नौकरी समाप्त न हो गयी। वृद्ध हो जाने पर उसने वह कोट अपने लड़के को पहना दिया। इतनी लम्बी आयु बीत जाने पर भी वह कोट न तो फटा ही और न उसमें किसी दूसरी तरह का परिवर्तन ही हुआ, उसे कीड़ों ने भी नहीं खाया। हाँ, रोज-रोज पड़नेवाले अनगित हाथों के दबाव से उसकी जेब कुछ फैल जरूर गयी थी।

डा० गूर्द छात्रालय,
विश्वविद्यालय, बनारस।
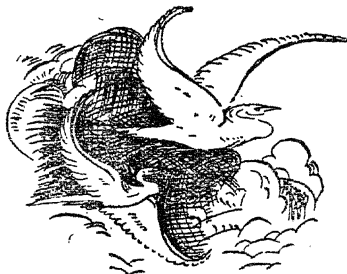
कर-मन्त्री

कन्हैया लाल कपूर

उस दिन जब मुझे कर-मन्त्री का पत्र मिला, तो मैं बहुत चकित हुआ। कर-मन्त्री से मेरा परिचय तक न था और मुझे ख्याल तक न था कि वह मुझे न केवल पत्र लिखेंगे बल्कि अपने यहाँ चाय पर आमन्त्रित भी करेंगे। कर-मन्त्री ने लिखा था।

आदरणीय,

मुझे आपकी आज अत्यन्त आवश्यकता है। यदि हो सके, तो चार बजे मेरे यहाँ तशरीफ़ लाइए और मेरे साथ चाय पीजिए। आपसे बहुत आवश्यक बातें करनी हैं।

आपका,
(दस्तखत)
कर-मन्त्री

यह विचार करते हुए कि कर-मन्त्री-जैसे बुद्धिमान् व्यक्ति से अवश्य कोई ग़लती हुई है, अर्थात् उन्होंने यह निमन्त्रण-पत्र किसी और को भेजवाने के बदले मुझे भेजवा दिया है, पहले तो मैं उनके यहाँ जाने से झिझका, परन्तु जब तीन बजे कर-मन्त्री के सहायक-सचिव ने फोन पर मुझसे निश्चित समय पर पहुँच जाने की प्रार्थना की, तो मैं यह समझा कि कर-मन्त्री अवश्य किसी अकस्मात् आयी हुई विपत्ति में फँस गये हैं और उन्हें मेरे परामर्श की आवश्यकता है। सो मैं ठीक चार बजे उनकी कोठी पहुँच गया।

जय-हिन्द!...मिज़ाज कैसे हैं!...आज मौसम बड़ा सुहाना है।...तशरीफ़आवरी के लिए शुक्रिया! आदि रस्मी बातों के पश्चात् कर-मन्त्री मुझे अपने ड्राईङ्ग रूम में ले गये और एक बढ़िया सोफे पर बैठने का संकेत किया। नौकर चाय लाया। कर-मन्त्री ने मेरे लिए चाय का प्याला बनाते हुए कहा—आप हैरान अवश्य होंगे कि मैंने आपको बुला भेजा। परन्तु बात वास्तव में यह है कि मुझे सचमुच आपकी आवश्यकता है।

—फरमाइए,—मैंने नम्रता से कहा—मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?

—मुझे बताया गया है कि आप बड़े बुद्धिमान व्यक्ति हैं।

—साहब, मैं क्या हूँ, यह तो बतानेवाले की कृपा है।

—कहने की आवश्यकता नहीं। आप सचमुच बड़े बुद्धिमान व्यक्ति हैं। मुझे इस समय सचमुच एक बुद्धिमान व्यक्ति की आवश्यकता है।

—फरमाइए ।

—आप जानते हैं कि घाटे का बजट तैयार करने में मैं निपुण हूँ ।

—बहुत अच्छी तरह जानता हूँ । तीन वर्ष हुए आपने बजट में पचास करोड़ की हानि दिखायी थी । पिछले वर्ष सत्तर करोड़ और इस वर्ष तो आपने अपने सब रेकार्ड मात कर दिये, अर्थात् निन्यानवे करोड़ ।

—बस इसी के विषय में आपसे परामर्श लेना है ।

—गुस्ताख़ी माफ़ ! परन्तु मुझे बजट तैयार करने का कोई अनुभव नहीं । सच तो यह है कि मैं अपना निजी बजट तैयार करने में भी बहुधा असफल रहता हूँ । इसी को लीजिए कि आज महीने की बीस तारीख है और मेरे बटुए में केवल एक खोटी चवन्नी है और अभी बिजली का बिल, दर्जी का बिल, धोबी का बिल और इस प्रकार के और भी कई बिल मुझे चुकाने हैं । इस दशा में...

—छोड़िए यह कहानी,—कर-मन्त्री ने मेरी बात काटते हुए कहा—आपके बटुए में कम-से-कम खोटी चवन्नी तो है । यहाँ मेरे खज़ाने में फूटी कौड़ी तक नहीं ।

—विचित्र बात है । परन्तु आप इतने नये कर हर वर्ष लगाते हैं, वह धन कहाँ जाता है ?

—आप भी बड़े भोले हैं !—कर-मन्त्री ने निस्संकोच कहा—यह भी नहीं जानते कि यदि इधर मैं नये कर लगाता हूँ, तो उधर तत्काल ख़र्च बढ़ाता हूँ । इस दशा में खज़ाने में कुछ बच रहने की कोई सम्भावना ही नहीं ।

—परन्तु आप खर्च क्यों बढ़ाते हैं ?

—ख़र्च न बढ़ाऊँ, तो हानि कैसे दिखा सकता हूँ ?

मैंने धीरे से कहा—हानि न दिखाइए ।

कर-मन्त्री ने चमककर कहा—हानि न दिखाऊँ ? तं फिर कर-मन्त्री कैसे रह सकता हूँ ? फिर तो मुझे वही काम करना पड़ेगा, जो मेरे माता-पिता करते थे ।

—अर्थात् ?

—खैर, छोड़िए ये बातें । हाँ, तो बात यह है कि मुझे खर्च बढ़ाना ही पड़ेगा । वास्तव में मैं इस विषय में कुछ विवश-सा हूँ । अब इस वर्ष ही देखिए...

—हाँ-हाँ, इस वर्ष...

—इस वर्ष मैंने नौ नये सचिव नियुक्त किये, दस नये राजदूत विदेशों में भेजे, पाँच सौ नये सेक्रेटरी नियुक्त किये, साढ़े सात सौ डिप्टी सेक्रेटरी, पन्द्रह सौ सहायक डिप्टी सेक्रेटरी और यदि उप-सहायक डिप्टी सेक्रेटियों की संख्या पूछिए, तो शायद बता भी न सकूँ ।

—नौ सचिव, दस राजदूत, यह तो असम्भव-से लग रहे हैं ।

—असम्भव से ?—कर-मन्त्री बोले—अच्छा गिन लीजिए, दुर्भिक्ष सचिव, जेल सचिव, जलूस सचिव, जलसा सचिव, मज़ाक सचिव, दुर्घटना सचिव...

—और राजदूत कौन-से नये देशों में भेजे हैं ?

—उन देशों के नाम तो मुझे भी अच्छी तरह नहीं आते । बस, यह समझ लीजिए कि अब संसार के कोने-कोने में हमारे राजदूत हैं । जैसे एक द्वीप जगमग-मगजग है । शान्त महासागर या अन्ध महासागर में है शायद । इसका क्षेत्रफल केवल एक वर्ग मील है । जन-संख्या पचास-साठ के करीब होगी । वहाँ मैंने अभी-अभी एक राजदूत नियुक्त किया है ।

—परन्तु ये नये सचिव और दूत कुछ काम भी करते हैं, या केवल खर्च बढ़ाने के लिए काम कर रहे हैं ?

—खर्च बढ़ाना इनका सबसे बड़ा कारनामा है । परन्तु इसके अतिरिक्त ये और भी बहुत-से काम देते हैं, जैसे दुर्भिक्ष सचिव को लीजिए ।

—हाँ-हाँ, इन महाशय का क्या कारनामा है ?

—इनका कारनामा यह है कि यह देश की हर छोटी-बड़ी रियासत पर दुर्भिक्ष ला रहे हैं । आरम्भ इन्होंने उत्तर-पूर्वी रियासत से की है, परन्तु अन्त कहाँ करेंगे, इसका ज्ञान इनके अतिरिक्त और किसी को नहीं । जब चाहें, किसी किस्म का अकाल ला सकते हैं । अन्न का अकाल, मिट्टी के तेल का अकाल या केवल मिट्टी का अकाल !

—खूब !—मैंने मुस्कराकर कहा—और मज़ाक सचिव ?

—हा-हा-हा ! मज़ाक सचिव बड़े मज़े के आदमी हैं । उनका काम है, जनता से मज़ाक करना । ज्योंही कोई समस्या जनता की उद्विग्नता का कारण बनती है, इनकी कृपा-दृष्टि उसकी ओर फेरी जाती है । यह उसे हँसी-मज़ाक में उड़ा देते हैं

—उदाहरण के रूप में ?

—यदि जनता शिकायत करे कि चाय बहुत महंगी हो गयी है, तो यह कहते हैं, यदि चाय मंहगी हो गयी है, तो चाय के बदले सूखी घास का रस पिया कीजिए।

—मजाक-सचिव यथार्थ में बड़े भाँड़ हुए हैं।

—जी हाँ, यह बात न होती, तो मैं उन्हें पाँच हज़ार मासिक वेतन पर नियुक्त न करता। खैर, छोड़िए यह बात। हम असली बात से परे भटक रहे हैं। वास्तव में मैंने आपको इसलिए नहीं बुलवाया कि नये सचिवों अथवा राजदूतों के कारनामे-बताऊँ। मेरा मतलब कुछ और था।

—फरमाइए !

—आप चूँकि बुद्धिमान व्यक्ति हैं, इसलिए तनिक अपने दिमाग से काम लीजिए और मुझे बताइए कि निन्यानवे करोड़ रुपये की हानि को पूरा करने के लिए कौन-कौन-से नये कर लगाये जायँ ?

—नये कर ? गुस्ताखी माफ़ !—मैंने तनिक भन्नाकर कहा—ये पहले ही आपने कर लगा-लगाकर जनता की कमर कुबड़ी कर दी है। ईश्वर के लिए नये कर मत लगाइए !

—जनता पर कर ? कैसी बातें करते हैं आप ? मैंने जनता पर तो कोई कर नहीं लगाया। यह ठीक है कि मैंने तम्बाकू पर टैक्स लगाया, पान पर लगाया, परन्तु जनता तम्बाकू में है, न पान में।

—ज़ालिम !—मैंने कर-मंत्री को बताया—ये टैक्स जनता पर ही तो हैं। जनता तम्बाकू अथवा पान न सही, परन्तु हम पान खाते और तम्बाकू पीते तो हैं।

—यह और बात है। अच्छा, छोड़िए यह बात भी ! अब जल्दी-जल्दी बताइए कि कौन-से नये टैक्स...

—तो आप टैक्स लगाके रहेंगे ?

—अवश्य लगाना चाहते हैं ?

—अवश्य !

—अच्छा तो सगाई के बारे में क्या राय है ?

—सगाई ? किस की सगाई ? मेरी अथवा आपकी ?

—हा-हा-हा ! वाह, कर-मन्त्री साहब ! आप हैं तो मन्त्री, परन्तु माफ़ कीजिएगा कि हैं निरे काठ...

—बस-बस, आगे मत कहिए। मैं आपका अर्थ समझ गया। परन्तु...परन्तु सगाई का टैक्स से क्या सम्बन्ध है, यह समझ में नहीं आया।

—मेरे कहने का अर्थ है, सगाई-टैक्स।

—अच्छा, अच्छा ! सगाई-टैक्स। खूब, खूब ! बहुत दूर की सूझी ! भई, वाह ! क्या बात है ! सगाई-टैक्स ! वास्तव में आप बुद्धिमान हैं !

—यह तो आपकी...

—अच्छा, भला बताइए कि आपके देश में हर साल कितनी सगाइयाँ होती हैं ?

—यह तो किसी पंडित से पता चल सकता है।

—नहीं-नहीं, मज़ाक छोड़िए, बताइए !

—कोई दस-बारह लाख।

—ठीक ! यदि प्रत्येक सगाई पर दस रुपये कर लगाया जाय, तो एक करोड़ से भी अधिक आय हो सकती है। अच्छा और कोई टैक्स तजवीज़ कीजिए।

—जन्म-टैक्स।

—बहुत खूब ! बहुत खूब ! मेरे विचार से अपने देश में हर वर्ष कोई पचास लाख नये बच्चे उत्पन्न होते हैं। पाँच रुपया प्रत्येक बच्चा ठीक रहेगा।

—अधिक है। गरीब लोग नहीं दे सकेंगे।

—तो पौने पाँच कर दीजिए। पचास लाख गुणे पौने पाँच, काफी आय हो सकती है। अब आगे चलिए।

—कफ़न-टैक्स।

—हाँ-हाँ, कफ़न-टैक्स ! क्यों नहीं। यदि जन्म-टैक्स लग सकता है, तो कफ़न-टैक्स में हरज क्या है ? इस कर से भी पचास लाख के करीब आय हो सकती है। चलिए यह भी नोट कर लिया। और...

—बकरी-टैक्स।

—अर्थात् ?

—अर्थात् जो व्यक्ति बकरी पाले, उसपर टैक्स लगाया जाय। आप जानते हैं कि आजकल गाय या भैंस पालने की बहुत कम लोग सामर्थ्य रखते हैं।

—ठीक है, ठीक है, परन्तु मेरे विचार में इस टैक्स का घेरा तनिक विस्तृत होना चाहिए। कितने ही लोग मुर्गियाँ, बटेरें, बत्तखें, तोते, कुत्ते, बिल्लियाँ और चूहे भी तो पालते हैं।

—तो चलिए, बकरी टैक्स के अतिरिक्त बटेर-टैक्स, चूहा-टैक्स, मुर्गी-टैक्स, तोता-टैक्स भी लगा दीजिए।

—अच्छा, अब कोई ऐसी वस्तु बताइए, जिसे प्रत्येक व्यक्ति उपयोग करता है। मेरी राय में यदि उसपर कर लगाया जाय तो पर्याप्त आय हो सकती है।

—सोचना पड़ेगा।

—हाँ-हाँ, दो-तीन मिनट सोच लीजिए। मैं इतने में सिगरेट पीता हूँ।

दो-तीन मिनट के पश्चात् मैंने कहा—मेरे विचार में ऐसी केवल दो चीजें हैं।

—फरमाइए।

—शीशा और कंघी।

—शीशा और कंघी!—कर-मन्त्री ने कुर्सी पर से उछलते हुए कहा—आप वास्तव में बुद्धिमान व्यक्ति हैं! शीशा और कंघी! कंघी और शीशा! क्या बात है!

—यदि आप इन दोनों पर टैक्स लगा दें, चाहे साधारण-सा, तो करोड़ों की आय हो सकती है।

—करोड़ों वारे-न्यारे हो जायेंगे!...अच्छा, अब एक मिनट के लिए दिमाग को फिर तकलीफ दीजिए और सोच-कर बताइए कि कोई ऐसी वस्तु रह तो नहीं गयी, जिसपर हमने टैक्स नहीं लगाया। आप भी सोचिए, मैं भी सोचता हूँ।

कुछ क्षण हम दोनों बैठे सोचते रहे। फिर कर-मन्त्री ने कहा—एक चीज का तो मुझे पता चल गया है। शेष आप बता दीजिए।

—वह कौन-सी चीज़ है?

—बर्फ।

—बर्फ?

—हाँ, हाँ, भई, बर्फ! जानते नहीं, गर्मी के मौसम में हर आदमी बर्फ उपयोग करता है।

—खूब, बहुत खूब!—मैंने कर-मन्त्री की बुद्धि को दाद देते हुए कहा।

—अच्छा, अब आप कहिए, आपने क्या सोचा है?—कर-मन्त्री ने पूछा।

—मेरे विचार में तो अभी बहुत-सी चीजें शेष हैं। उदाहरण के लिए गरारा......

—आपका मतलब, रेशमी गरारा?

—इस पर टैक्स नहीं लगाया जा सकता।

—क्यों?

—इसलिए कि,—कर-मन्त्री ने बताया—मेरी श्रीमतीजी पहनती हैं।

—तो रहने दीजिए।...हेना के बारे में क्या विचार है?

—हेना पर टैक्स लगाया जा सकता है। हेना से मेरी श्रीमतीजी घृणा करती हैं।

—ख़िज़ाब?

—ख़िज़ाब पर टैक्स लगाना ठीक नहीं रहेगा। पिताजी ख़िज़ाब लगाते हैं। कोई और चीज़ बताइए।

—ऐनक, छतरी, बटुआ, चाकू, चमचा, देगची, पेन, हल्दी, मिर्चे, दालचीनी, लिहाफ, रजाई, तौलिया, झूमर, नथ, बाजूबन्द, घड़ी और गर्म मसाला...

—बस-बस, काफी है। मेरे विचार में निन्यानवे करोड़ की हानि पूरी हो जायगी।

—यदि अब भी पूरी न हुई, तो हवा, पानी और धूप पर भी कर लगा दीजिएगा।

—नहीं-नहीं, मेरे विचार में इस वर्ष यह नौबत नहीं आयगी। अगले वर्ष देखा जायगा।

—अच्छा, तो अब मैं जा सकता हूँ?

—बहुत-बहुत धन्यवाद!—कर-मन्त्री ने मुझसे हाथ मिलाते हुए कहा—आप की जितनी प्रशंसा की जाय, कम है। आप न केवल बुद्धिमान हैं, बल्कि बहुत बुद्धिमान आदमी हैं।

उर्दू से अनु० रवीन्द्र कालिया।

ब्रह्म और माया

राजेन्द्र यादव

अपने उपन्यास, 'प्रेत बोलते हैं', को दूसरे संस्करण के लिए ले जा रहा था कि उस दिन बड़े अजब ढंग से शिवजी के दरबार में मेरा बुलावा हो गया।

बात यों हुई कि पार्वती ने भगवान आशुतोष से पूछ डाला कि—हे नाथ, यह माया ब्रह्म से उत्पन्न उसकी शक्ति भी है और ब्रह्म और जीव के बीच का पर्दा भी, क्या यह दो बातें विरोधी नहीं लगतीं? जब वह शक्ति है, तो भ्रम-जाल कैसे हुई? उसे यह कहकर क्यों बताया जाता है कि वह है भी और नहीं भी? प्रभो, मेरी शंका का समाधान करें।

शिवजी बूटी के नशे में थे और पाइप में धतूरा रखे फूँक रहे थे। इस असमय प्रश्न से भुँझलाकर बोले—पार्वती, तुम तो शंकाओं के मारे मेरी नाक में दम कर देती हो। अरे, दुनिया-भर के एनसाइक्लोपीडिया बन रहे हैं, किसी में देख-दाख लो। ऐसा ही सवाल एक बार गरुड़जी ने काकभुशुण्डजी से पूछ डाला था। तब काकभुशुण्डजी ने बताया कि यही सवाल एक बार वैशम्पायनजी शुकदेव से पूछ बैठे थे। और शुकदेवजी ने तब जनमेजय और परीक्षित के बीच में इसी प्रश्न का होना बताया था...

—बस, बस!—पार्वतीजी का धैर्य छूट गया—किसने क्या पूछा था, यह छोड़कर मुझे सीधा-सादा उत्तर दीजिए।

भगवान मुस्कराये—नारी हो न, तभी ऐसी अधीर हो। अच्छा सुनो! देखो, मूलतत्व तो है बस वही ब्रह्म। वही अपने को जीवों में बाँट लेता है, क्योंकि अपने अकेलेपन से ऊब जाता है। लेकिन यह बँटना वास्तव में सच होता नहीं है, सिर्फ लगता है, अर्थात् भासता है। इसे ही 'माया' का नाम दिया गया है। यह माया ब्रह्म की शक्ति है, लेकिन अज्ञानी और भोले जीव को ब्रह्म से अलग करके स्वयं अपना लक्ष्य बना लेती है। जीव उसी में लिप्त हो जाता है और यह ठगिनी अपने को ही पुजवाती है।

जब शिवजी ने देखा कि पार्वती कुछ भी नहीं समझ पायीं, बस, बुद्धू की तरह देखे जा रही हैं, तो उन्होंने अपना मन-भर का मुक्का सामने चपरासी बुलाने की घण्टी पर मारा और दन्न्-से वीरभद्र दाखिल हुआ। शिवजी ने आज्ञा दी—जाओ, एक लेखक को पकड़ लाओ!

वीरभद्र के जाते ही पार्वतीजी ने आश्चर्य से पूछा—लेखक क्यों, महाराज?

—अरी, मूर्खे!—कैलाशवासी ने कहा—इस सीधी-सी बात को क्यों नहीं समझती कि लेखक को ही तो दूसरा ब्रह्म बताया गया है। सो वही इस माया और ब्रह्म के झगड़े को अच्छी तरह समझा सकेगा।

—सो कैसे, स्वामी?

—लो, मुझसे ही सुनो!—आशुतोष ने उत्तर दिया—लेखक और पाठक अलग होते हुए भी असल में अलग नहीं हैं। लेखक लेखक भी है और पाठक भी और पाठकों में ही लेखक भी होता है। लेकिन उन दोनों के बीच में दुकान लगाये माया बैठी है, उसका नाम प्रकाशक है। वह लेखक और पाठक को अलग रखती है। लेखक के बिना

उसका कोई अस्तित्व नहीं है। और वह लेखक की ही शक्ति है। लेकिन उसी शक्ति ने आज लेखक को 'निकाल बाहर कर दिया है।

पार्वतीजी हक्की-बक्की रह गयीं। उनका मुँह खुल रहा गया—यह आप क्या कह रहे हैं, महाराज? प्रकाशक तो कहता है कि लेखक कोई बना-बनाया नहीं होता, उसे अगर कोई लेखक बना सकता है, तो वह है प्रकाशक! वह 'ब्लर्ब' में उसे ख़ुदा लिख दे, सोने की स्याही से हाथी दाँत की पट्टियों पर उसकी किताबें छाप दे, लाल क़िले की दीवारों और सारे पत्रों के विशेषांकों में पूरा पन्ना भरवाकर उसका विज्ञापन निकलवा दे...लीजिए, साहब, वह लेखक हो गया। जिसे अपनी सूंड़ से उठाकर प्रकाशक अपनी पीठ पर बैठाये नहीं, वह लेखक हो ही नहीं सकता।

बमभोले ठहाका मारकर हँस पड़े—आ गयी न, पार्वती, तुम भी बातों में! अरे, यही तो माया के अस्त्र हैं। इन्हीं बातों की तो वह कमाई खाती है, अपना महत्व बनाये रखती है, वर्ना उसे फिर पूछे कौन? अच्छा, बताओ, बिना प्रकाशक के संसार में लेखक और पाठक का अस्तित्व है या नहीं? लेकिन बिना लेखक और पाठक के प्रकाशक एक चलते-पुर्ज़े बातूनी आदमी के सिवा क्या है?

इधर वीरभद्र मेरे सामने आ खड़ा हुआ। बाहर निकले हुए दाँत, भयानक चेहरा, जल्लाद-जैसा बदन और हाथ में डण्डा। मेरे साथ मेरे कुछ शुभाकांक्षी भी थे। उसने मेरा रास्ता रोककर कहा—चलो, शिवजी ने बुलाया है।

—क्यों?—मैंने शिवजी के उस गण को ऊपर-नीचे देखा। फिर अपने साथियों की ओर देखकर हिम्मत की।

—चलो!—उसने मेघ-गर्जन किया।

उसकी सूरत-शक्ल देखकर ही मेरे तो देवता कूच कर गये थे। बड़ी निरीह दृष्टि से साथियों-शुभाकांक्षियों को देखकर मैं उन्हें ज़रा देर चाय की दूकान पर ठहरने को कहकर काँपता-घिघियाता चुपचाप चल पड़ा।

मैं सोच रहा था कि वह मुझे कैलाश ले जायगा, लेकिन उसने ले जाकर खड़ा कर दिया एक चिक पड़े कमरे के सामने। कहा—अन्दर जाओ!

जैसे ही मैंने कमरे में प्रवेश किया, देखा कि पार्वती ज़रा रोमांटिक मूड में शिवजी के कन्धे से टिकी, कुर्सी के हत्थे पर बैठी उनके गले के नाग को पुचकार रही हैं। फ़ौरन् ही, सारी, कहकर बाहर निकल आया। तभी भीतर से आवाज़ आयी—वीरभद्र, इसे भीतर ले आओ!

शिवजी को तीन बार झुककर जुहार की और माता पार्वती को भीत (किन्तु ज़रा मुग्ध दृष्टि से) प्रणाम करने को झुका, तो वीरभद्र ने डाँटा—सीधे खड़े रहो!

अहा, कैसा सुन्दर शिवजी का रूप था! गौर-वर्ण, नील कण्ठ, वक्ष पर लहराता साँप, कानों में कुण्डल, जटा-जूट, ऊपर खुँसा हुआ चन्द्रमा, बीच से बहती गंगा की धारा, माथे पर त्रिपुंड...चूँकि कुर्सी पर बैठे थे और साथ ही पार्वती सटी थीं, अतः कह नहीं सकता, लेकिन अवश्य ही बाघम्बर पहने होंगे। नन्दी को शायद कांजी-हाउसवाला पकड़ ले गया था, क्योंकि सामने कांजी हाउस की फ़ाइल रखी थी, या शायद यह भी हो सकता है, कि कहीं कांग्रेसी अपना चुनाव-चिन्ह बनाकर एम० पी० शिप के लिए उस भूखे-प्यासे बैल का जुलूस निकालकर सारे शहर में रगड़ रहे हों। इतने में शिवजी ने भौंहों को मुश्किल से ऊपर उठाकर देखा और घरघराती आवाज़ में पूछा—वीरभद्र, आख़िर तुम यह किस उजबक को पकड़ लाये? इससे पूछो, कुछ पढ़ता-लिखता है?

वीरभद्र सकपका गया। मैंने काँपकर कहा—सर, थोड़ा-बहुत पढ़-लिख लेता हूँ।

वीरभद्र फिर लपका—सर-सर क्या करता है? प्रभो या भगवान् कह!

मैंने शिकायत से शिवजी की ओर देखा—सर, कलियुग का वासी हूँ, यहाँ सारे प्रभो और भगवान सर ही होते हैं। इसलिए मैं और कुछ नहीं कह सकता।—और फिर इस विषय में शिवजी की अनुमति पाकर मैंने अपने पढ़े हुए कुछ अच्छे लेखकों के नाम गिना दिये।

—अच्छा, उन लेखकों को क्या पता कि तुम उनके बारे में पढ़कर क्या सोचते हो?

—सर, कभी-कभी जोश में आकर प्रकाशकों के केयर-ऑफ़ उन्हें लिखा था, लेकिन फिर बाद में सुना, सर, कि जिस पत्र में किताबें ख़रीदने या वी० पी० भेजने का आर्डर न हो, उसे प्रकाशक सिर्फ़ रद्दी की टोकरी में रखता है। तब

कभी जब मिले या किसी तरह जब लेखक का पता मालूम हो गया, तो भले ही लिख दिया। नहीं तो...

शिवजी पार्वती की ओर देखकर मुस्कराये। फिर पूछा—लिखते भी हो कुछ? यह क्या किताब है?

—सर...सर!—मैं घबरा गया—यह मेरा उपन्यास, 'प्रेत बोलते हैं', है, सर। दुबारा छप जाय, इस प्रयत्न में हूँ सर। कुछ थोड़ा-बहुत लिख लेता हूँ, योंही कभी-कभी, सर।

—इसका पहला संस्करण समाप्त हो गया? उसमें तो खूब पैसे मिले होंगे?—पार्वती ने पूछा।

मैंने पार्वती की ओर सिर घुमाया ही था कि वीरभद्र ने मेरा सिर फिर शिवजी की ओर घुमा दिया। मैं पुतले की तरह बोलता रहा—सर, प्रकाशक मेरा अन्नदाता है। इसके पहले संस्करण के बारे में मैं कुछ भी नहीं बोलूँगा, सर... सर, मुझे माफ़ कीजिए।

—वीरभद्र!—शिवजी को लगा कि यह पार्वती का अपमान है। क्रुद्ध हो बोले—इसे बाहर ले जाकर बताओ, कि यह किससे बात कर रहा है।

और वीरभद्र मेरा कान पकड़कर बाहर ले जाकर बताने को ही था कि मैंने कहा—सर, मैं अभी बताता हूँ, सर!

तभी पार्वतीजी की आवाज़ सुनायी दी—नाथ, आपने तो बताया था कि लेखक की ही शक्ति प्रकाशक है, यह तो उलटी बात बता रहा है।

—अरे, पार्वती!—शिवजी फिर लीला से मुस्कराये—मेरे साथ हुए भस्मासुर के किस्से को तुम इतनी जल्दी भूल गयीं? वह बात तो जब-जब याद आ जाती है, काँप उठता हूँ, खैर, तुम बताओ, जी!

—सर, इस किताब को छापकर प्रकाशक ने एक ही तीर से चार चिड़ियाँ मारीं। एक तो उसने लेखक को उपन्यासकार बना दिया, दूसरे नये लेखक को बाज़ार में लाने का रिस्क उठाया, तीसरे प्रूफ़रीडर को पैसे नहीं देने पड़े और चौथे,—मैं झिझका।

—और चौथे?—प्रश्न हुआ।

—और चौथे, सर, यह किताब प्रूफ़-रीडरी के ऊँचे क्लासों में टेक्स्ट-बुक की तरह लग गयी, जिसमें विद्यार्थियों को बताया जाता था कि कोई किताब अधिक-से-अधिक कितनी ग़लत छप सकती है।...कहीं चैप्टर न बाँटे गये थे, कहीं एक ही अक्षर पर दो-दो मात्रायें थीं, यहाँ तक कि, सर, मैंने किताब लिखकर जो पीछे हस्ताक्षर कर दिये थे, वे भी ज्यों-के-त्यों आ गये, जैसे यह उपन्यास न होकर कोई लम्बा-चौड़ा ख़त हो! बड़े-बड़े आलचकों, दिग्गजों ने उसे पढ़कर लेखक की ही यह ग़लती मानी...

—तुमने नहीं कहा, कि यह किताब उपन्यास के पाठकों के लिए लिखी गयी है, प्रूफ़-रीडरी के विद्यार्थियों के लिए नहीं।

—सर, मैंने बहुत कहा,—मेरी आँखें शिवजी की गर्दन में इठलाते साँप की गोल-गोल चमकदार आँखों पर जा चिपकीं और पता नहीं, मैं उसी सम्मोहन में कहता गया—लेकिन, सर, आप जानते ही हैं कि जो किताब कोर्स में लग जाती है, उससे फ़ायदे की बड़ी उम्मीदें रहती हैं...

—जो बात पूछी जाय, उसका जवाब दो! तुमने उससे कहा या नहीं?

मैं साँप की आँखों में ही देखता बोला—सर, उसके कान नहीं होते, आँखों से ही सुनता है। और जब पुराना हो जाता है और चर्बी बढ़ जाती है, तो आँखों पर भी केंचुली चढ़ जाती है। सर, उसके ज़बानें भी कई होती हैं...

—खैर, जो भी हो, यह अच्छा है कि तुम्हें लिखते ही प्रकाशक मिल गया, वर्ना...

—कहाँ, सर?—मैंने हिम्मत करके शिवजी की बात काट डाली—जैसा दुनिया के हर लेखक के साथ यह प्रकाशक करता है, वैसा ही मेरे साथ भी हुआ। 'रंगरूट' का लेखक बरेन बसु किताब बग़ल में दबाये बरसों चौरंगी पर घूमता रहा, न छपी। और किसी तरह छपी, तो एक साल में तीन संस्करण हुए, एक दर्जन भाषाओं में अनुवाद हुए। 'साहब, बीबी, गुलाम' के लेखक बिमल मित्र ने कई प्रकाशकों को पाण्डुलिपि सुनायी, दिखायी, लेकिन नये लेखक की किताब कौन ले? और अब किसी तरह किताब छप गयी है, तो डेढ़ साल में पाँच संस्करण, और अत्यन्त सफल फिल्म! इसी तरह, सर, 'मैला आँचल' की पाण्डुलिपि इस प्रकाशक के यहाँ से उसके यहाँ टकराती रही, और अब तो

उसके हल्ले आप भी सुन रहे होंगे। सो शायद कुछ ऐसा नियम होता जा रहा है कि जो किताब इतिहास बनाने जा रही हो, वह निश्चय ही कई प्रकाशकों के यहाँ से लौटती है। विश्व-साहित्य का श्रेष्ठ उपन्यास 'यूलिसीज़' बीस प्रकाशकों के यहाँ से लौट आया था, और जेन ऑस्टिन का 'प्राइड एण्ड प्रेजूडिस' वर्षों इधर-से-उधर टकराता फिरा। और सर, उन बेचारों का भी दोष नहीं है, असल में...

—क्या असल में, जल्दी बोलो! देर होती है।—शिवजी ने जमुहाई ली।

—असल में, सर, ये लोग बिल्कुल दूसरी तरह के जीव होते हैं। इनकी आँखें बाजार पर अधिक रहती हैं। चलता माल उन्हें पसन्द है। चलता लेखक, चलती किताबें। जब वह नये लेखकों की तरफ़दारी करें, तो समझ लीजिए कि पुराने को देने लायक़ पैसे उनके पास नहीं हैं। और नये को कुछ देना नहीं पड़ता।...और, सर, जब किताब अपने लेखक की प्रतिभा और परिश्रम का गुल खिलाने लगती है, तो वही प्रकाशक, जिसने उसे लौटा दिया था, बौखलाकर उसे देखता है, पूरा स्टॉक ख़रीदने की बात करता है।...

—लेकिन, हज़रत, नया लेखक भी तो अपनी पाण्डुलिपि को गीता से कम नहीं समझता! फिर आप...

—सर, प्रकाशक तो बीच में लेखक की बाधा का काम करता है। उसके असली आधार तो हैं पाठक ही। प्रकाशक ने तो अपनी सुविधा के लिए दोनों के बीच में एक दीवार बना दी है, और उस दीवार पर खड़ा होकर इधर का माल उधर पहुँचाकर बन्दर-बाँट करता है। उसी को चिरंन्तन सत्य बताता है। इस दीवार का नतीजा यह होता है कि लेखक मरते दम तक नहीं जान पाते कि उनके पाठक कौन हैं, क्या चाहते हैं, उनकी उनसे क्या शिकायतें या पसन्दें हैं, इसलिए लेखक हवाई होता चला जाता है। दूसरी तरफ प्रकाशक जो पाठकों को देता है, वही उन्हें पढ़ना पड़ता है और इस तरह उनकी रुचियाँ गिरती जाती हैं।

—बकवास बन्द करो। मेरे सामने अपनी यह लेखकगीरी मत चलाओ! प्रकाशक अपनी किताब की बिक्री से पाठकों की रुचि या लेखक की शक्ति को जानता है। तुम कमरे में बन्द होकर लिखनेवाले, तुम्हें क्या मालूम?—शिवजी ने समझा, शायद मैं उन्हें बेवक़ूफ़ बना रहा हूँ, इसलिए गरज उठे।

मैं भय से सुन्न हो गया। डरी आँखों से शिवजी और वीरभद्र की ओर देखा—सर, लेखक जब पाठक को जाँचता है, तो वह अपने संतोष के साथ पाठक के हित और रुचि दोनों को पाठक की ही दृष्टि से देखता है। और जब प्रकाशक पाठक को जाँचता है, तो लेखक से सन्तोष छीनकर उसके पास समझौता छोड़ देता है, और पाठक से हित छीनकर केवल रुचि छोड़ देता है। अर्थात् पाठक की रुचि को जैसा वह चाहता है तृप्त करता है और लेखक को समझौता करना पड़ता है। सन्तोष और हित बँटवारा-कर्ता प्रकाशक महोदय का होता है। गीता में रुचि रखनेवाला पाठक 'ख़ूनी-लालटेन' पढ़ता है और प्रेम के मधुर गीत लिखनेवाला लेखक 'भूगर्भ-शास्त्र' और 'जीव-विज्ञान' के नियम लिख-लिखकर देता है।

शिवजी ने प्रशंसा से पार्वती की ओर देखकर कहा—लड़का तर्क अच्छा कर लेता।

संकोच से मैंने सिर झुका किया। तभी फिर सुनायी दिया—तुम नहीं जानते कि अपने आक़ाओं और अन्नदाताओं के ख़िलाफ़ क्या कह रहे हो?

—सर, क्या करें, कहना पड़ता है। फिर उनमें भी कुछ इस बात को नहीं समझते हों, सो बात नहीं है। कुछ तो यह भी दिखाते हैं कि वह इन सबसे बहुत दुखी भी हैं।

—फिर भी हिम्मत तुम्हारी कैसे होती है? तुम्हें डर नहीं लगता?—पार्वती ने पूछा—आख़िर तुम्हारे पास ऐसी क्या ढाल है, जो यह-सब बकने का साहस कर रहे हो?

—सर!—मैंने पार्वतीजी की ओर देखते हुए ही शिवजी को सम्बोधन किया—अपनी ढाल-तलवार तो अपने पाठक ही हैं।

—पाठक लोग क्या लेखकों को बहुत प्यार करते हैं? कई बार तुमने उनका जिक्र किया।—पार्वती ने सरस होकर पूछा। फिर स्नेह से बोलीं—लेकिन तुम शायद यह भूलते हो, कि हर साहित्यिक और कलाकार के साथी और परिचित अलोचक उसकी उलटी-सीधी तारीफ़ करना अपना धर्म समझते हैं और वह भोला उन्हें सत्य समझता है, इसी से उसका दिमाग चढ़ जाता है।

मैं चुप हो गया। सिर झुकाकर नीचे देखता रहा—मैं स्वयं क्या कहूँ, सर ? लेखक साथियों और अपने निकट परिचितों को मैंने अपना पाठक ही नहीं समझा। सर, सच पूछा जाय, तो ये लोग मेरी किताबें पढ़कर ईमानदारी से राय दे भी नहीं सकते। मगर......

—बताओ न, डरते क्यों हो ?—फिर जब उन्होंने देखा कि मैं शिवजी को देख रहा हूँ, तो हल्के-से कुहनी का ठहोका मारकर बोलीं—ए इससे पूछो न, इसे कैसे मालूम कि इन लोगों के अलावा भी इसके पाठक हैं और वे इसे प्यार भी करते हैं ? क्यों इसमें इतना आत्म-विश्वास आ गया है ?

—बताओ,—गिरिजा-पति ने स्निग्ध स्वर में कहा।

जब मैंने देखा कि अपनी बातें सुनाकर मैं पाठकों को ही नहीं, स्वयं शिव-पार्वती को अपने पक्ष में कर सकता हूँ, तो मुझमें पुनः अपना आत्म-विश्वास जाग पड़ा। दुष्ट वीरभद्र को जैसे चिढ़ाते हुए-से मैंने लपककर पास पड़ी कुर्सी खींची और आनन्द से उसपर जमकर बिना उसकी चिन्ता किये बोला—सर, सच पूछा जाय, तो अपना परिवार, अपनी दुनिया यही पाठक ही हैं। इनका स्नेह मिलता है, तो आत्म-विश्वास आ जाता है। वैसे किस लेखक को उसके पाठक क्या कहते हैं, ईमानदारी से इस सबको बताने का रिवाज हमारी बिरादरी में नहीं है, इसलिए आपको बताने में झिझक होती है, क्योंकि इसमें आत्म-श्लाघी का ख़िताब बड़ी जल्दी मिल सकता है। लेकिन जब शुरू ही हो गया है, तो सुनिए। सबसे बड़ी बात तो यह कि लेखक को वही पाठक लिखते हैं, जो मन-ही-मन लेखक को अपना बेटा या छोटा भाई समझते हैं। बाकी चुप रहते हैं। यह पाठक बातचीत शुरू तो बड़ी श्रद्धा से करते हैं, बड़ी आदर-भावना दिखाते हैं, लेकिन कुछ समय में ही लेखक को समझाने लगते हैं, कि क्यों नहीं वह लिखने-विखने का काम छोड़ कर कहीं बुकिंग-क्लर्क हो जाता, आखिर पढ़ा-लिखा आदमी है। मुझे कुछ समझाते हैं कि मुझमें प्रतिभा-व्रतिभा नामी कोई चीज नहीं है, क्यों अपने को भ्रम में डाले हुए हूँ। हाँ, बात को जरा रोचक ढंग से कहना-भर जानता हूँ और कुछ नया कहने को भी है, लेकिन इसका ही नाम तो प्रतिभा नहीं है। कुछ हैं कि उपन्यास के पात्रों को लेकर ही मुझसे इस तरह लड़ते हैं, जैसे मैं कोई आवारा-लुच्चा हूँ, और मैंने उनके प्रिय बेटों को बिगाड़ डाला है।...इस पात्र को यों किया जा सकता था, आपने उसे व्यर्थ ही ऐसा बना दिया।...आपको इसका क्या हक था ?...मैं पूछती हूँ, नायिका ने उस समय पलटकर नायक की पीठ में मुक्का या बेलन क्यों नहीं जड़ दिया ?...आपको जवाब देना होगा, आपने उस पात्र को आखिर क्यों आत्म-हत्या करने को विवश कर दिया ? आप उसे बचा भी सकते थे। शुरू से उसका उसी तरह विकास कर सकते थे।...आप ऐसा उपन्यास लिखिए, जिसकी नायिका जोन ऑफ आर्क-जैसी हो।...क्यों नहीं आप एक खूँटी की आत्मकथा लिख डालते, जहाँ बड़े-बड़ों के लिफाफे (कपड़े) और ऊपरी रंग-रूप झूलते रहते हैं, गर्दन में रस्सी बाँधे लटके रहते हैं।...सर, यहाँ तक तो आदमी चुपचाप किसी तरह सह ले, लेकिन जब पाठक इस तरह लिखें, तब वह बेचारा क्या करे, आप ही बताइए कि... पारस भाई डाँटते हैं, आप बुरा मत मानिए, मैंने तो आपको काफी पढ़ा-लिखा समझदार समझा था। मुझे क्या पता था कि आप ऐसे बुद्धू और कोरे हैं। कहीं से किसी की पाण्डु-लिपि तो नहीं चुरा ली।...अरे, साहब, मानिए, मैंने हजारों उपन्यास पढ़े हैं, प्रेमचन्द की 'निर्मला' के बाद पारिवारिक समस्याओं का जमकर चित्रण 'बस प्रेत बोलते हैं' में ही हुआ है।...महाराष्ट्रियन कदम साहब का ख़याल है कि, इस उपन्यास में वैयक्तिक समस्याओं की जो सामाजिक परिणति है, उसने इसे भयंकर निराशवादी होने से बचा लिया है।—स्नेहावेश में दीदी रौब झाड़ती हैं कि, आज हम लोगों ने तीसरी बार बहस की और तय किया कि 'प्रेत बोलते हैं' 'नदी के द्वीप' से ज्यादा दमदार किताब है।... भाड़ में गयी तुम्हारी तीसरी बहस, और चूल्हे में गईं वैयक्तिक समस्यायें ! अब, सर, मुझे बताइए, मैं कैसे इन्हें समझाऊँ कि, दादाओ, कुछ सोचकर बोलो, समझकर तुलना करो। मैंने खूब गिड़गिड़ाकर लिखा, भाइयो, यों मुझे सिर मत चढ़ाओ, जिन्दा रहने दो, वर्ना यह काजी, खलीफा और आलोचक मुझे फाँसी दे देंगे, छाती तक गड़वाकर कुत्ते छुड़वा देंगे ! एक निरीह लेखक के लिए घर-घर फाँसी के तख्ते बनेंगे। खुद, यह कुछ कहते रहें, लेकिन किसी का कहा सुनने की इनमें शक्ति नहीं है।

मेरा पक्ष ही लेना है, तो ('नदी के द्वीप' की नहीं 'अवन्तिका' की) गौराजी की तरह लो...विदेशी मित्र !...

—शटाप् ! दम्भी, पाखण्डी, झूठे, स्नाव ! बहकने लगा न ! वीरभद्र, इसे निकालो !

शंकर चीख पड़े। पार्वतीजी भी चौंकी। वैसे मैंने उन्हें अपनी बातों में बहा लिया था। पति-क्रोध देखकर सहम गयीं। मेरी ओर से सारा ध्यान खींचकर बोलीं—हाँ, नाथ, यह तो बहुत बहक गया, अपना माया-जाल फैलाने लगा। लेखक है न, शब्दों से खेलता है मायावी ! शब्द, शब्द, शब्द, शब्द ही तो इनकी माया है। हाँ, तो नाथ आप ब्रह्म और माया के विषय में बता रहे थे। किस तरह माया सिर्फ धोखा है, झूठ है, भ्रम है ?

मैंने मन-ही-मन कहा, हे महामाया, शब्द ही तो ब्रह्म है। और अर्थ ही माया है। वागार्थविव संपृक्तौ...और चुपचाप वीरभद्र के भारी-भरकम पंजों में मैंने गर्दन फँसाये आँसू-भरी आँखों से बाहर निकलते हुए कहा—बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले !

अगले ही मिनट धूल झाड़कर, चप्पल चटखाते चाय की दूकान की ओर चल दिये, जहाँ अपने शुभाकांक्षी और मित्र खड़े राह देख रहे थे, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। एक बार मुड़कर लेखकीय खोखले दम्भ से कहा—इस शंकर भंगेड़ी को भी आजकल की हवा लग गयी है। कल तक चरस पीता बैल लिये घूमता था, आज ऑफिस खोलकर बैठा है, जैसे भूतनाथ न हुआ, कहीं का कोई प्रकाशक हो गया हो, और मैं अपनी रॉयल्टी का हिसाब माँगने पहुँचा होऊँ !

६, बी० डायमण्ड हारबर रोड,
कलकत्ता।

एक पंजाबी लोककथा

खरबूजा

एक किसान अपनी पत्नी के साथ एक गाँव में रहता था। उसके कोई बाल-बच्चा न था। किसान दिन-भर खेतों पर काम करके शाम को घर आता और रात की रोटी खाकर फिर खेतों पर चला जाता। उसे कोई फिक्र न थी, और न ही वह किसी तरह के सोच-विचार में अपना समय बरबाद करना पसन्द करता। लेकिन उसकी पत्नी को रात-दिन अपनी सूनी गोद की चिन्ता ही खाये जाती थी।

एक दिन दोपहर को जब वह अपने आदमी की रोटी लेकर खेतों पर जाने को तैयार हुई, तो उसके मन में सहसा यह विचार आया कि यदि हमारे कोई बाल-बच्चा होता, तो इस वक्त मुझे खेत पर न जाना पड़ता, वही अपने बाप की रोटी लेकर फुदकता हुआ चला जाता।

इसी विचार में लीन वह दरवाजा खोलने लगी कि एक कोने में पड़े खरबूजे ने धीरे से कहा—ला, माँ, मुझे दे। मैं बापू की रोटी ले जाऊँगा।

खरबूजे की यह बात सुनकर बेचारी औरत पहले तो घबरा गयी, किन्तु फिर साहस करके उसने खरबूजे से कहा—तुम जरा-से तो हो, नन्हें बेटे, रोटी कैसे ले जाओगे?

खरबूजे ने कहा—माँ, मेरे सिर पर पोटली रख दो, और जहाँ जाना है, वहाँ का पता और कोई निशानी बता दो।

बड़े आग्रह के बाद वह रोटी की पोटली उसे देने को तैयार हुई। उसने उसे पता और निशानी भी बतला दी, एक बैल सफेद और दूसरा चितकबरा...

पता लेकर खरबूजा रोटियाँ सिरपर रखे लुढ़कने लगा और लुढ़कता-लुढ़कता बताये स्थान पर जा पहुँचा। उसने खेत में एक आदमी को हल चलाते देखा। वह जोर-जोर से पुकारने लगा—ओ बैलोंवाले बापू! रोटी खा ले! जल्दी रोटी खा ले, बापू, नहीं टंडी हो जायगी!

किसान यह आवाज सुनकर सोचने लगा, इस वक्त यहाँ इधर-उधर कोई भी नहीं है, यह आवाज कहाँ से आ रही है, और कौन है यह? वह इधर-उधर देखता-देखता आवाज की जगह पर पहुँचा। देखा, तो सकपका-सा गया। खरबूजा रोटी की पोटली लिये खड़ा था। जब किसान पहुँचा, तो उसने फिर धीमे से कहा—बापू, रोटी खा ले।

यह सुनकर किसान गद्गद हो उठा, पितृ-हृदय प्रसन्नता में झूम उठा। उसने खरबूजे को हाथों में लेकर ज़ोर से चूम लिया।

जब किसान रोटी खाने लगा, तो खरबूजे ने किसान से कहा—बापू, तुम कहो तो मैं हल चलाऊँ?

यह सुनकर किसान हँस पड़ा। उसने स्नेह-भरे शब्दों में खरबूजे से कहा—बेटे, तुम नन्हे-मुन्ने-से हो। कहीं किसी बैल ने गोबर कर दिया, तो तुम उसके नीचे दब मरोगे।

खरबूज़े ने कहा—नहीं, बापू, मैं नहीं दबूँगा। जब सफेद बैल गोबर करेगा, तो मैं चितकबरे बैल की तरफ हो जाऊँगा और जब चितकबरा बैल गोबर करेगा, तो मैं सफेद बैल की तरफ हो जाऊँगा, और जब दोनों करेंगे, तब उछल-कर हल पर जा

किसान के बहुत समझाने पर भी खरबूजा न माना। आखिर उसे स्वीकृति देनी ही पड़ी। खरबूजा लुढ़कता-लुढ़कता खेतों में पहुँच गया और लगा जोर-जोर से बैलों को हाँकने। कुछ समय तक तो उसे किसी खतरे का सामना न करना पड़ा। किसान भी खरबूजे की यह चातुरी देख पेड़ की ठंडी छाया-तले कुछ देर आराम करने की इच्छा से लेट गया।

बहुत देर बाद सफेद बैल ने गोबर किया, तो खरबूजा फौरन चितकबरे बैल की तरफ चला गया। और जब चितकबरे ने किया, तो सफेद बैल की तरफ हो लिया। इस प्रकार पहले खतरे से तो वह बच गया, किन्तु जब कुछ समय बाद दोनों बैलों ने एक साथ ही गोबर किया, तो बेचारा खरबूजा ऊपर उछलकर न चढ़ पाया और एक बैल के गोबर के नीचे दब गया। बैल आगे को चल दिये और कुछ दूर जाकर ठहर गये।

जब किसान की नींद खुली, तो उसे खेत में बैल खड़े नजर आये। खरबूजे का कहीं पता नहीं था। किसान शाम को अपना काम निबटाकर बैलों को लेकर घर चला आया।

अकस्मात् एक गोबर उठानेवाली उधर को आ निकली। उसने गोबर उठाया, तो खरबूजा निकलकर बाहर बाहर आ गया। उसने डाँटकर पूछा—बता, मेरे बैल किधर हैं? मेरे बैल तुमने चुरा लिये हैं क्या?

बेचारी वह बड़ी असमंजस में पड़ गयी। उसने पीछा छुड़ाने के लिए उससे कहा—तुम्हारे बैल तो एक राजा ले गया है। बिलकुल सामने की दिशा में।

यह सुनकर खरबूजा लाल-पीला हो उठा और राजा को गालियाँ देने लगा। जब गुस्सा कुछ ठंडा हुआ, उसने राजा के पास जाने की सोची। उसने एक सरकंडों की गाड़ी बनायी और उसमें दो चूहे जोत लिये और उसपर बैठ गया।

जब वह कुछ दूर गया, तो उसे एक चिऊँटी मिली। चिऊँटी ने उससे कहा—किधर जा रही है सवारी, मामा?

खरबूजे ने जवाब दिया—

अक्कां दी मैं गड्‌ बनावाँ,
चूहे जोड़ाँ बल्ले।
इक राजा ने बैल चुराये,
उससे झगड़े चल्ले।

(सरकंडों की मैंने गाड़ी बनायी है और उसमें चूहे जोते हैं। एक राजा ने मेरे बैल चुरा लिये हैं, मैं उसी से निपटने जा रहा हूँ।)

यह सुनकर चिऊँटी ने कहा—तब तो, मामा, मुझे भी साथ ले चलो'।

—आ बैठ मेरे कान में,—खरबूजे ने चिऊँटी को अपने कान में बैठा लिया।

रास्ते में कुछ दूर जाने पर उसे एक तेंदुआ मिला। तेंदुए ने पूछा—किधर जा रहे हो, मामा?

खरबूजे ने उसे भी चिऊँटीवाला ही जवाब दिया और तेंदुए के साथ चलने की इच्छा प्रकट करने पर उसे भी अपने कान में बैठा लिया।

इसी प्रकार कुछ दूर जाने पर उसे एक शेर मिला। शेर को भी उसने अपने कान में बैठा लिया।

चलते-चलते राजा का महल आ गया। खरबूजे ने भीतर खबर पहुँचायी कि अगर आपने मेरे बैल तुरन्त वापस न किये, तो अच्छा नहीं होगा। जल्दी करें, वर्ना लड़ाई के लिए तैयार हो जायँ।

जब राजा ने यह बात सुनी, तो उसकी आँखों में खून उतर आया और उसने फौरन हुक्म दिया कि इसे बकरियों के झुण्ड में छोड़ दिया जाय कि बकरियाँ इसे खा जायँ।

आज्ञानुसार उसे रात में जब बकरियों के रेवड़ में छोड़ दिया गया, तो खरबूजे ने अपने कान से तेंदुए को निकालकर, मैदान में छोड़कर कहा—इन सबको जान से मार दो और जितना खा सको, पेट भरकर खा लो।

तेंदुए ने सुबह होते-होते सबका सफाया कर दिया।

सुबह राजा के पास फरियाद पहुँची कि खरबूजे ने सब बकरियों का सफाया कर दिया है।

राजा यह सुनकर आपे से बाहर हो गया और उसने तुरन्त उसे बैलों के बीच छोड़ने का हुक्म दिया?

रात को जब उसे बैलों के बीच छोड़ा गया, तो उसने अपने कान से शेर को बाहर निकालकर कहा—सब बैलों को मार-काटकर फेंक दो और जितना खा सको, खा लो।

शेर ने सुबह होते-होते सबको मौत के घाट उतार दिया।

राजा को जब यह समाचार मालूम हुआ, तो वह गुस्से से पागल हो उठा। उसने खरबूजे को हाथी के तबेले में फेंक देने को कहा।

जब खरबूजे को हाथी के तबेले में छोड़ा गया, तो खरबूजे ने अपने कान से चिऊँटी निकालकर छोड़ दी। चिऊँटी ने सूँड़ में घुसकर हाथी को बेजान कर दिया

सुबह जब राजा को खबर मिली कि खरबूजा अब भी सही-सलामत है, तो उसका गुस्सा बिल्कुल ठण्डा हो गया। उसने हुक्म दिया कि इसको दो बैल देकर मेरे राज्य से फौरन निकाल बाहर करो।

और खरबूजा दो बैल लेकर सही-सलामत अपने घर पहुँच गया।

प्रेषक, अजीत मधुकर

सुबह हुई। मन्दिर में घड़ियाल और शंख बज उठे। शान्ताराम के बंगले के चारों ओर बिखरी हुई झोंपड़ियों से मुर्ग़ बाँग देने लगे। एक के बाद दूसरा मुर्ग़ और भी ज़ोर से बाँग देता, मानो छोटे बच्चों-जैसी उनमें ऊँची आवाज़ से चिल्लाने की होड़ लगी हुई हो।

शान्ता के सोने के कमरे की खिड़की खुली हुई थी। रात-भर बड़ी गरमी रही। उस खिड़की से प्रातःकालीन वायु की एक लहर हरसिंगार के मन्द, मधुर सुगन्ध को लिये कमरे में आ गयी।

क्लोरोफ़ार्म की बेहोशी से जागे व्यक्ति के समान शान्ताराम की दशा हो गयी। उसे लगा कि पास में उसकी पत्नी सो रही है, और पलने में नन्हा मोहन जाग उठा है, और, ऊँ-ऊँ, करता हुआ खेल रहा है, और उसके पैरों की झुनझुनी झुनझुना रही है।

एकाएक वह पूरी तरह जाग उठा। उसे याद आया, ओह, आज तो सोमवार है! मोहन का विलायत से पत्र आनेवाला है।

यह सोचकर बड़ी हँसी आयी कि उसके दिमाग ने भी क्या कल्पना कर डाली, और अर्द्धजाग्रत अवस्था में क्या स्वप्न दिखाया। आई० सी० एस० की पढ़ाई के लिए इंगलैंड गया हुआ मोहन अभी स्वप्न में पलने में झुनझुनी झुनझुना रहा था। मनुष्य के शरीर के वृद्ध हो जाने से क्या होता है? उसका दिल तो युवा ही बना रहता है। स्वप्न में इस दिल को स्वच्छन्दता से खुलकर खेलने का अवसर मिलता है, और फिर वह न जाने क्या-क्या करिश्मे दिखाने लगता है। इसी तरह सोचते हुए, उसने करवट बदली।

नीचे पलंग के पास मंजुला गहरी नींद में डूबी हुई थी।

मंजुला, एक अशिक्षित नौकरानी, परन्तु अब मोहन की माँ के मरने के बाद कई सालों से...

क्या मृत्यु सचमुच मरनेवाले व्यक्ति को इस पृथ्वी पर होनेवाली किसी घटना का पता न लगने देती होगी? यदि पता लगता हो, तो मोहन की माँ अब शान्ताराम के विषय में क्या सोचती होगी? क्या शान्ताराम का अपनी पत्नी के प्रति प्रेम असत्य था?

मोहन की माँ की तस्वीर आज भी शान्ताराम की आँखों में बरबस आँसू ला देती है। यह होते हुए भी, शान्ताराम के जीवन में मंजुला आ ही गयी। गाँव के लोग कहते, मंजुला ने शान्ताराम पर जादू-टोना कर दिया है।

शान्ताराम ने सोचा, लोग भी क्या पागलपन की बातें किया करते हैं। सच ही निसर्ग से बढ़कर जादूगर कौन है? जो-कुछ हुआ, उसमें बेचारी मंजुला का क्या दोष है? उसने सदा ही यह ध्यान रखा है, कि उसकी जगह रेशमी

शाल में नहीं, वरन् दरी पर है। उसे न तो पत्नी के हक़ ही हासिल थे, और न समाज में मान-सम्मान। फिर भी मंजुला का प्रेम अक्षुण्ण बना हुआ था।

नीति की दृष्टि से इस तरह का प्रेम पाप हो सकता है। लेकिन भक्ति? नीति की अपेक्षा क्या भक्ति का स्थान ऊँचा नहीं है?

शान्ताराम उठा, और पलंग से नीचे उतरा। उसकी कृतज्ञ आँखें मंजुला की ओर एकटक देखने लगीं। उसने सोचा, हरसिंगार कहीं भी फूले, जंगल में या काँटों-भरी झाड़ियों में, वह अपनी सुगन्ध से किसी का भी मन प्रसन्न किये बिना न रहेगा।

एकाएक मंजुला ने आँखें खोल दीं। शान्ताराम को अपने से पहले जागा देख, वह मन में लजा गयी।

—अरे, सुबह हो गयी!—कहते हुए, उसने अपना बिस्तर समेटा। ईमानदार कुत्ते की आँखों में अपने मालिक के प्रति जो भक्ति भरी होती है, उसी भक्ति से वह शान्ताराम को देखती हुई, अदृश्य हो गयी।

शान्ताराम समझ गया, कि कहीं वह ठण्डे पानी से ही मुँह न धो ले, इस विचार से पानी जल्दी गरमाने के लिए मंजुला भाग गयी।

हरसिंगार की सुगन्ध शान्ताराम के मस्तिष्क में छा गयी। उस सुगन्ध से मोहित होकर, वह खिड़की के पास जा खड़ा हुआ।

क्षण-क्षण में नये-नये नृत्य दिखाता हुआ, वृत्ताकार धुआँ ऊपर उठ रहा था, और उन वृत्तों के बीच मंजुला शान्ताराम की ओर देखकर हँस रही थी। शान्ताराम ने सोचा, यदि ईश्वर पूछे, कि तूने यह पाप क्यों किया? तो वह कहेगा, मैं मानव हूँ, पाषाण नहीं। मैं पाषाण होता, तो मंजुला की भक्ति मुझे द्रवित न कर पाती, और न मैं शारीरिक सुख के मोह में फँसता ही। परन्तु मैं पाषाण नहीं, मानव हूँ!

मैं मानव हूँ, इन शब्दों ने मानो शान्ताराम के दिल पर छाया हुआ कुहासा उड़ा दिया, और वह स्वस्थ हो गया।

उसने सामने देखा। जसवन्ती के फूलों में से ऊपर उठे मोगरे के फूल के समान सूर्य ऊपर आ रहा था। शान्ताराम को लगा, कि मैं मानव हूँ, इन शब्दों में सूर्य की-सी ही दिव्य शक्ति भरी हुई है। और उसने फिर कहा मन में, मैं पाषाण नहीं, मानव हूँ।

(२)

उस दिन की डाक में इंग्लैण्ड से आया हुआ मोहन का पत्र तो था ही, अपरिचित अक्षरों में लिखा एक और पत्र था। शान्ताराम उन अक्षरों को देख, समझ न पाया कि वह पत्र किसका है।

शान्ताराम के मन में गुदगुदी हुई। उसने सोचा कि शायद किसी लड़की के बाप ने मोहन के विवाह के सम्बन्ध में यह पत्र भेजा हो। अब मोहन शीघ्र ही आई० सी० एस० होकर लौटनेवाला है। शायद लड़की के बाप ने सोचा हो, कि पहले ही अर्जी दे देना ठीक होगा।

शान्ताराम ने लिफाफा खोला। कुतूहलवश उसने पत्र के नीचे हस्ताक्षर देखे, रघुपतिनाथ साने?

शान्ताराम हँस पड़ा। अरे, यह तो अपना जिगरी दोस्त है, रघुनाथ साने! उसने मन में कहा।

शान्ताराम की आँखों के सामने पुरानी बातें एक क्षण में चित्र की तरह खड़ी हो गयीं। रघुनाथ साने एक डाक्टरनी से प्रेम करता था। पन्द्रह साल पुरानी बात है। लेकिन उस डाक्टरनी को रघुनाथ साने का मजदूर-आन्दोलन पसन्द न था। उसका सिद्धान्त था, कि डाक्टरनी का पति कम-से-कम प्रोफेसर हो, जो रघुनाथ को जँचा नहीं। आगे चलकर मेरठ षड्यन्त्रकारियों का दोस्त होने के कारण वह पुलीस की आँखों में खटकने लगा। वह कलकत्ता चला गया, और खड़गपुर में हुई मजदूर हड़तालों में उसका नाम आता रहा।

हर साल बड़े दिनों की छुट्टियों में शान्ताराम बम्बई जाता, और अपने प्रोफेसर मित्र पराड़कर के घर ठहरता। फिर दोनों दोस्तों में पुराने मित्रों की चर्चा चलती, कौन कहाँ है, क्या करता है, बाल-बच्चे कितने हैं, आदि-आदि। उनके सात-आठ दिली दोस्तों में से दो-तीन के घर मोटरें थीं, तीन चार अच्छे खाते-पीते थे। सभी के घर बाल-बच्चों से परिपूर्ण थे। सिर्फ़ एक दोस्त था, जिसके कोई बाल-बच्चा नहीं था। लेकिन उसने इस कमी को एक खूबसूरत बँगला बनाकर पूरा कर लिया था।

उस दोनों को अपने सभी पुराने मित्र फल-फूल से लदे वृक्ष-जैसे लगते थे, सिवा एक दोस्त के, जो बिलकुल पर्ण-

हीन-सा लगता था, और वह दोस्त था रघुनाथ साने ! उनकी दृष्टि में रघुनाथ साने जीवन में कहीं सुखी न था, न विवाह किया, न काम-काज और न कीर्ति ही अर्जित की। उन्हें उसके विषय में इतनी ही जानकारी थी, कि वह कलकत्ता के आस-पास ही कहीं रहता है। जब कभी शान्ताराम और प्रोफेसर पराड़कर की बातों में उसका जिक्र आता, तो वे हँसते, और दोनों ही एक साथ कहते—यह मनुष्य है या...—हँसने के जोश में आगे के शब्द अनुच्चारित रह जाते।

और इस समय भी रघुनाथ साने का नाम पढ़ते ही, शान्ताराम के मुँह से निकल गया—यह मनुष्य है या......

(३)

प्रिय शान्ताराम,

बिल्कुल साधारण नमस्ते ! सप्रेम आदि कुछ नहीं, क्योंकि यदि सप्रेम लिखूँ, तो तुम तत्काल पूछोगे कि, भले आदमी, पिछले पन्द्रह वर्षों तक यह प्रेम छिपा कहाँ था ? एक चार लाइन की चिट्ठी तक न भेजी !

डाक्टर ने निर्णय किया है, कि मैं रक्त-स्वल्पता का रोगी हूँ। जेब में पैसा न होने के कारण मैंने अपने को एक ही डाक्टर को दिखाया, और उसी का यह निदान है। यदि दो चार विशेषज्ञों को दिखा सकता, तो मुझे जूड़ी-बुखार से लेकर रक्त-स्वल्पता तक सभी रोग हैं, यह सिद्ध हो जाता।

मानो या न मानो, गरीबों के लिए एक बात बड़ी लाभदायक होती है। वे रोग की चिन्ता से कभी नहीं मरते। मरने के बाद भी उन्हें पता नहीं चलता, कि आखिर उन्हें हुआ क्या था।

डाक्टर का कहना है कि इस रोग में आराम मिलना खास औषधि है। इसलिए मैं बम्बई आया। परन्तु बम्बई और कलकत्ता मानो एक माँ की सगी बेटियाँ हैं। इसलिए मैंने सोचा, कि शहर छोड़ गाँव में ही रहना ठीक होगा।

मुझे तुम्हारे सुन्दर गाँव की याद आयी। जब हम-सब बी० ए० प्रीवियस में थे, तब तुम्हारी शादी में तुम्हारे गाँव पहुँचे थे। नारियल के वन में छन-छनकर आनेवाली चाँदनी, समुद्र-तट का सूर्यास्त, अनन्त माधुरी लिये कटहल के कुंज ! इतने वर्ष बीत जाने पर भी इन-सब की स्मृति अब भी हरी है। तुम कहोगे कि, इस पेटू को कटहल ही याद आया ! खैर ! एक मज़ाक याद आ गया, जो मैंने किया था। तुम्हारी सुन्दर पत्नी को देखकर, मैंने कहा था, अब शान्ताराम कालेज छोड़कर, अपने बँगले में ही पढ़ा करेगा। इसका विषय होगा, स्त्री-सौन्दर्य !

तुम्हारे विवाह के कुछ दिनों बाद ही तुम्हारे पिता का देहान्त हो गया। और मुझे बहुत अफसोस हुआ यह सुन कर, कि मेरी बेहूदा भविष्यवाणी कितने दुखदायी तरीक़े से पूरी हुई।

परन्तु उससे भी अधिक दुख मुझे अभी हुआ, जब मैंने पराड़कर से सुना, कि अपने पति के पुराने मित्र का स्वागत करने को भाभी भी अब इस दुनिया में नहीं हैं।

उसने मुझे यह भी बताया, कि सौतेली माँ से मोहन को कष्ट न हो, इसलिए तुमने दुबारा विवाह भी नहीं किया। पहले तो मैं चकित रह गया, लेकिन फिर मुझे लगा कि जीवन की आत्मा ही त्याग है। कोई समाज के खुले मैदान में डंके की चोट पर त्याग करता है, तो कोई घर की चारदीवारी में !

मेरी हार्दिक इच्छा है, कि दो-तीन महीने तुम्हारे साथ रहकर गुज़ारूँ और आराम करूँ। परसों तक रवाना होऊँगा। तुम्हें यदि असुविधा हो, तो लौटती डाक से पत्र भेज देना। मेहमान नाम का जन्तु कितना कष्टदायक होता है, यह मैं खूब जानता हूँ।

इस वाक्य से कहीं यह न समझ बैठना, कि मैं सपरिवार (यानी पाँच-दस बच्चों को लेकर सपत्नीक) आ रहा हूँ। नहीं, नहीं, मैं तो अब भी भीष्म पितामह और रामसेवक हनुमानजी का शिष्य हूँ।

तुम्हारा,
रघुनाथ साने।

शान्ताराम के मन में परेशानी पैदा हो गयी। रघुनाथ-जैसा पुराना अभिन्न-मित्र, और वह बीमारी की हालत में हवा बदलने आना चाहता है। उसे, मत आओ, किस तरह कहा जा सकता है ?

परन्तु मंजुला ? इसे क्या किया जाय ? रघुनाथ ब्रह्मचर्य का व्रती है। और मंजुला मेरी विवाहिता पत्नी नहीं है !

और फिर रघुनाथ दो-चार दिन के लिए नहीं आ रहा है। मंजुला को कहीं भेज दिया जाय। पूरे तीन महीने के लिए आ रहा है। और यदि जलवायु उपयुक्त सिद्ध हुआ, तो उसका मुकाम और भी लम्बा हो सकता है।

तीन महीने की अवधि के लिए मंजुला को कहीं भेजा भी तो नहीं जा सकता। उसका एक पुराना मित्र आनेवाला है, इसलिए उसे दूर भेजा जा रहा है, यह जानकर मंजुला को अत्यधिक दुख होगा।

दो चुम्बक जब बीच में पड़े लोहे को अपनी ओर आकर्षित करते होंगे, तब लोहे की क्या दशा होती होगी, कहा नहीं जा सकता। रघुनाथ और मंजुला के प्रति विचारों की खींचातानी शान्ताराम के दिल में इतनी बराबर की हुई, कि उसने निश्चित कर लिया, कि जो होगा, सो देखा जायगा।

रघुनाथ के आने पर, दोनों मित्र सुबह-शाम हवाखोरी करने लगे।

हर दिन सुबह शान्ताराम रघुनाथ को लेकर, अपने नारियल के बागीचे में जाता, और पुकारता, नवश्या! यह पुकार सुनते ही, एक कोने में जमीन से हाथ-डेढ़ हाथ ऊँची झोंपड़ी में से एक बहुत दुबला आदमी निकलता। उसके बदन पर सिर्फ एक लंगोटी होती। पैर के अँगूठे और उँगली के बीच रस्सी पकड़, वह तेजी से नारियल के पेड़ पर चढ़ जाता, और तीन-चार नारियल तोड़ लाता। नीचे आकर, वह चट-पट अपने हँसिये से नारियल में छेद कर देता। शान्ताराम और रघुनाथ उन नारियलों का पानी पी लेते, और नाखूनों से उनकी कोमल गरी निकाल लेते। तब हँसता हुआ वह नर-कंकाल तमाम नरेटियों को समेटकर, ले जाता।

इस तरह चार-पाँच दिन बीत गये। एक दिन नवश्या के पीछे-पीछे रघुनाथ भी उसकी झोंपड़ी की ओर चला गया। शान्ताराम मात्र हँसा।

काफी देर हो जाने पर भी, जब रघुनाथ नवश्या की झोंपड़ी से बाहर न आया, तो शान्ताराम उद्विग्न हो उठा। किस पेड़ में कितने फल लगे हैं, और किस जगह और भी वृक्ष लगाये जा सकते हैं, यह सोचते-देखते हुए उसने कुछ समय और व्यतीत किया।

थोड़ी देर बाद वह अधीर हो उठा और उसने रघुनाथ को आवाज़ दी। रघुनाथ बाहर आया। उसे देख, शान्ताराम ने मज़ाक करते हुए कहा—अरे यार, तुम तो इस क़दर मशगूल थे, मानो महल देख रहे हो!

रघुनाथ हँसा। परन्तु उसका हास्य जितनी सौम्यता लिये था, उतनी ही उसकी दृष्टि तीव्र थी। उसे देख, अपराधियों को गिरफ़्तार करनेवाली पुलीस की सूरतें शान्ताराम की आँखों में झूल गयीं।

शान्ताराम रघुनाथ की आँखों से आँखें न मिला सका। वह नारियलों की ओर देखने लगा।

(४)

उस दिन पूर्णिमा थी। शान्ताराम और रघुनाथ समुद्र-किनारे घूमने गये। एक जगह खासी भीड़ इकट्ठा थी। रघुनाथ उधर घूमा।

समुद्र में फेंका हुआ एक जाल मछुओं ने खींच निकाला था। जगह-जगह मछलियाँ तड़प रही थीं। मछुओं की औरतें उन्हें अपनी टोकनियों में भरने का प्रयत्न कर रही थीं। पीछे से चन्द्र-किरणें आ रही थीं। लेकिन हीरे के समान चमकती हुई, तड़पती मछलियों के सामने वे फीकी लग रही थीं।

एक फन्दे में एक बड़ी लम्बी और सुन्दर मछली थी। शान्ताराम ने उस मछली की कीमत पूछी। मछली की मालकिन ने कीमत बतायी। शान्ताराम को वह कीमत महँगी लगी।

इतने में एक बूढ़ा मछुआ आगे आया और उसने अपनी भाषा में उस औरत से कुछ कहा। रघुनाथ सारी बातें तो न समझ सका, परन्तु उसकी समझ में इतना अवश्य आ गया, कि वह बूढ़ा उस टोकनी की मालकिन से कह रहा था, देख, इस आदमी से बहस मत कर! यह अपना मालिक है, और इस गाँव का ज़मींदार है! उस औरत ने वह मछली चुपचाप शान्ताराम को थमा दी।

पन्द्रह दिन रहने के बाद रघुनाथ की तबीयत सुधरने लगी। शान्ताराम अपने मन में पूर्ण शान्ति और स्वस्थता का अनुभव कर रहा था। मंजुला कौन है, उसका उससे क्या सम्बन्ध है, आदि बातों के विषय में रघुनाथ ने उससे एक शब्द भी नहीं पूछा।

शान्ताराम ने कभी कल्पना भी न की थी कि रघुनाथ इतना सीधा और शान्त बन गया होगा। न माधव के देने में, न ऊधो के लेने में। उसका ऐसा स्वभाव जैसे शान्ताराम के लिए अपेक्षा के विपरीत चीज़ थी, क्योंकि शान्ताराम का कालेज का मित्र रघुनाथ हठीला, दुराग्रही और झगड़ालू था।

शान्ताराम मन में सोच रहा था, परदेश में गैरों के बीच बिताये समय मानव-स्वभाव के चमकीले रङ्गों को धुँधला बना देते हैं। न तो वह अपने विषय में कुछ कहता है, और न दूसरों के बारे में कुछ जानना ही चाहता है।

अख़बार पढ़ना और दिन-भर गाँव में मटरगश्ती करना, इसी में वह अपना समय किस तरह काट लेता है, भगवान जाने।

ऐसी तबीयत का आदमी तीन छोड़ छै महीने भी मेहमान बना रहे, तो भी किसी को अखरेगा नहीं।

(५)

शान्ताराम रघुनाथ को छै महीने तक मेहमान बनाये रहने को तैयार हो गया। लेकिन सोलहवें या सतरहवें दिन ही रघुनाथ ने कहा—कल वापस जाने का विचार है।

अपना विस्मय छिपाते हुए, शान्ताराम ने पूछा—क्यों? हवा बदलने से फ़ायदा नहीं हुआ?

रघुनाथ ने मुस्कराते कहा—अरे, यार, इस आबोहवा में यदि तीन महीने भी रह पाऊँ, तो अच्छे पहलवान को पछाड़ दूँ। लेकिन......

—लेकिन क्या?

—कुछ नहीं,—कहकर, रघुनाथ ने बातों का सिलसिला तोड़ दिया।

शान्ताराम ने समझा, कि मंजुला के साथ उसका अवैध सम्बन्ध ही रघुनाथ के जाने का कारण है। उसने सोचा, कि मंजुला के विषय की सारी सत्य बातें यदि रघुनाथ के सामने स्पष्ट कर दे, तो शायद वह ठहर जाय। काजल काला होता है, फिर भी बच्चों की आँखों में उसे लगाते ही हैं। मंजुला के प्रति उसका प्रेम भी उसी तरह का है।

यदि रघुनाथ मान ले कि शान्ताराम और मंजुला के बीच का वर्तमान प्रेम-भाव क्षम्य है, तो...

तो क्या वह ये सारी बातें रघुनाथ से ज़बानी कह दे? नहीं, यह तो नहीं हो सकेगा।...

रघुनाथ के कमरे में रखने के लिए तैयार किया हुआ पत्र शान्ताराम ने दुबारा पढ़ा और वह मन-ही-मन हँसा।

प्रिय रघुनाथ,

तुमने यहाँ से जाने का अकस्मात विचार क्यों किया, यह तुमने मुझे बताया नहीं। फिर भी कुछ बातें ऐसी होती हैं, जो बिना कहे भी समझ में आ जाती हैं। ठीक है न?

तुम जिस कारण जा रहे हो, वह कारण है मंजुला। है न यही बात?

मंजुला का जीवन मेरे जीवन से किस तरह गुथ गया, यह यदि तुम्हें मालूम होता, तो...

मोहन पाँच-छै वर्ष का ही था, कि उसकी माँ चल बसी। मेरे सामने कई विवाह के प्रस्ताव आये। कोंकन-जैसे दरिद्र प्रदेश में मेरे-जैसे जमींदार की आमदनी कम नहीं थी। उन लड़कियों में से कई लड़कियों को मैंने यार-दोस्तों की ख़ातिर देख भी लिया। उनमें से तीन-चार लड़कियाँ तो इतनी सुन्दर थीं, कि उनकी जगह मंजुला को स्वीकार करनेवाले व्यक्ति को कोई भी मूर्ख ही कहेगा। परन्तु...

मेरा दिल कह रहा था कि विवाह करूँ, तो हो सकता है कि मोहन को सौतेली माँ से दुख पहुँचे। मान लो कि न भी पहुँचे, तब भी इस विवाह से यदि दो-चार लड़के-बच्चे हो गये, तो फिर मोहन के लिए मैंने जो महत्वाकांक्षा के महल खड़े किये थे, वे मन में ही रह जायेंगे। मैं बी० ए० भी न कर सका। मोहन के जन्म के बारहवें दिन उसके नामकरण संस्कार के अवसर पर मैंने निश्चय कर लिया था, कि इसे आई० सी० एस० बनाऊँगा। मोहन की माँ के सामने भी मैंने अपनी प्रतिज्ञा कई बार दुहरायी थी।

मोहन की माँ के देहावसान के बाद तीन चार वर्ष मैंने उसकी याद में काट दिये। इन सालों में मुझे स्त्री-प्रेम की याद ही नहीं आयी, सो बात नहीं। फिर भी मैं कभी बेचैन नहीं हुआ।

मोहन की माँ के न रहने पर, मोहन की देख-भाल

करने के लिए मैंने मंजुला को नौकर रख लिया। यह एक अशिक्षित, निम्न जाति की गरीब बाल-विधवा थी।

दिन बीतने के साथ मोहन बड़ा हुआ और पढ़ाई के लिए दूसरी जगह चला गया। घर में सिर्फ मंजुला रह गयी।

अब मेरे दिन मोह से संघर्ष करते गुज़रने लगे। मेरी ओर से लड़नेवाला कोई न था। मंजुला मेरी जाति की होती, या कम-से-कम लिखा-पढ़ी ही होती, तो मैं उससे अवश्य विवाह कर लेता। परन्तु वह असम्भव था।

कल मोहन आई० सी० एस० होगा। मेरी बहू किसी बड़े घराने की सुशिक्षिता कुमारी होगी। मंजुला-जैसी सास को देखकर, क्या वह एक क्षण भी इस घर में टिकेगी?

आगा-पीछा सोचकर, मैंने मंजुला को अपनी प्रेम-पात्री बना लिया। चार दिन गाँव के लोगों ने आलोचना की, लेकिन मेरी उदारता के कारण शीघ्र ही लोग ये बातें भूल गये।

तुम शायद कहोगे, कि मुझे मोहासक्त नहीं होना था। मैं भी यह बात स्वीकार करता हूँ, परन्तु मुझपर तुम्हें क्रोध हो आया हो, तब भी, रघुनाथ, कृपा करके यह मत भूलना, कि शान्ताराम मानव है, पाषाण नहीं।

तुम्हारा,

शान्ताराम।

शान्ताराम ने यह पत्र रघुनाथ के कमरे में रख दिया। उसने सोचा कि रघुनाथ रात्रि में यह पत्र पढ़ेगा। सुबह होते ही, रघुनाथ उसे प्रेम से आवाज़ देकर कहेगा, शान्ताराम, मैंने अपना विचार पलट दिया है। अब मैं नहीं जाऊँगा।

शान्ताराम की यह अपेक्षा कोरी कल्पना निकली। सुबह उठते ही, उसने देखा कि रघुनाथ ने अपनी यात्रा की सारी तैयारियाँ कर ली हैं।

दोनों चाय पी रहे थे। टैक्सी का भोंपू जोर-जोर से बजने लगा। कोट पहनते हुए रघुनाथ ने कहा—तुम्हारे पत्र का उत्तर देना, देखो तो, मैं भूल ही रहा था!

रघुनाथ के दिये लिफाफे को अपने कमरे में रख, शान्ताराम अपने मित्र को विदा करने सड़क तक गया। रघुनाथ को हँसकर विदा करते हुए उसने कहा—फिर कभी ज़रूर आना!

शान्ताराम के मन को यह बात परेशान कर रही थी कि रघुनाथ ने उस पत्र में क्या लिखा होगा। शायद उसने एक लम्बा नीति-पाठ दिया होगा, या सिफ़ारिश की होगी कि एक पत्नी-व्रतधारी रामचन्द्र का जीवन-चरित बार-बार पढ़ूँ!

(६)

प्रिय शान्ताराम,

मेरा मन तुम्हारा पत्र पढ़कर प्रसन्नता से भर गया। साथ ही दुख भी हुआ। प्रसन्नता इसलिए हुई कि तुमने अपना दिल मेरे सामने खोलकर रख दिया और इस तरह मेरे प्रति प्रेम का सबूत दिया। बचपन की भावनायें अखण्ड और अटूट होती हैं। बीस वर्ष पूर्व शान्ताराम और रघुनाथ कालेज में 'हाथ-में-हाथ दिये घूमा करते थे। आज भी हम एक-दूसरे को भूले नहीं, यह कितनी खुशी की बात है।

परन्तु मेरा मन प्रसन्नता की अपेक्षा दुख से ही अधिक भारी हो उठा है।

तुम्हारे और मंजुला के बीच रूढ़ नीति के विरुद्ध जो व्यापार है, उसके लिए मुझे दुख नहीं है। स्त्री, पुरुषों में अनिर्बन्ध सम्बन्ध होने का मैं पक्षपाती नहीं हूँ। परन्तु प्रेम की तस्वीर नीति के निर्धारित पुराने फ्रेम में सदा ही फिट होगी, ऐसा मैं नहीं मानता। फ्रेम में फ़िट करने के लिए चित्र काटना आवश्यक है, ऐसा दकियानूसी नीति-मार्तण्ड ही कहेंगे।

फ्रेम की अपेक्षा चित्र अधिक महत्त्व रखता है, यह दलील तुम-जैसे लोग देंगे। इस बहस में मैं नहीं पड़ता। तुमने या मंजुला ने किसी दूसरे के सुख की बुनियाद पर अपना सुख-साम्राज्य नहीं बसाया है। अतः मेरी दृष्टि में तुम्हारा सम्बन्ध प्रचलित नीति के विरुद्ध होते हुए भी, सर्वथा क्षम्य है। यह सच है कि इसमें भी मंजुला पर अधिक अन्याय हुआ है। फिर भी...

अपने व्यवहार के समर्थन में तुमने जो दलीलें दी हैं, वे स्वीकार नहीं हैं। तुम कहते हो, मैं मानव हूँ, पाषाण नहीं! मैं कहता हूँ, तुम पाषाण नहीं, तुम मानव भी नहीं। तुम पशु हो!

यह पढ़कर शायद तुम मुझपर क्रोधित हो जाओगे। मेरे दोस्त, स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण, बाल-बच्चों के लिए प्रेम आदि बातों से मानवता सिद्ध नहीं होती।

तुम्हारे तो यह रोज़मर्रा के देखने की चीज़ होगी कि बिल्ली अपने बच्चों की किस तरह परवरिश करती है। न जाने कहाँ-कहाँ से खोज खोजकर वह उनके लिए चूहे लाती है, उन्हें शिकार करना सिखाती है, वक्त आने पर जान पर खेलकर उनकी रक्षा करती है। मोहन को आई० सी० एस० बनाने के लिए किये गये तुम्हारे त्याग का यही रूप है। उसमें मानव की महानता नहीं दिखायी देती, बल्कि दिखायी देता है निसर्ग की शक्ति का रूप।

तुम्हारे और मंजुला के प्रेम की बात? यह मत भूलो, कि उसमें भी भक्ति की अपेक्षा शारीरिक आसक्ति की मात्रा ही अधिक है! फिर भी मैं ऐसा नहीं मानता, कि यह आसक्ति संसार का कोई महान पाप है, या शारीरिक सुख का मोह टाल देना सहज है। मेरे जाने का कारण यह तुम्हारा समाज-बहिष्कृत प्रेम नहीं है।

शान्ताराम, मुझे तुम्हारे यहाँ शारीरिक आराम तो खूब मिला। लेकिन मेरा मन तो कई गुना अधिक अस्वस्थ हो उठा, तुम्हारे घर के किसी दृश्य के कारण नहीं, बल्कि तुम्हारे बँगले के बाहर गाँव में जो दीनता और ग़रीबी फैली है, उसे देखकर, विषमता के नंगे नाच को देखकर, अन्याय को न्याय मान लेनेवाली जनता की दुर्बलता को देखकर, और उच्चवर्ग के तुम-जैसे कोमल, उदार हृदय लेकिन अन्धे व्यक्ति देखकर।

नवश्या की झोपड़ी-जैसी सैकड़ों झोपड़ियाँ इस गाँव में हैं। इन झोपड़ियों में अनगिनत नंगे बच्चे अधपेट खाते हैं, या भूखे रहते हैं। मछुओं की हिम्मत नहीं होती, कि वे तुम-जैसों के हाथ बाजार-भाव से मछली बेंच सकें। तब ज़मीन के सहारे अपना पेट भरनेवाले लोगों को कैसे हिम्मत हो सकती है, कि वे तुम-जैसे ज़मींदार के दिल को चोट पहुँचा सकें?

कल तुम्हारा मोहन आई० सी० एस० होगा। लेकिन वह जो ढेरों धन कमायगा, जो कीर्त्ति-मन्दिर खड़ा करेगा, उसकी बुनियाद कितने कुटुम्बों के स्वतंत्र जीवन पर खड़ी होगी, इसका तुम्हें या किसी को भी ज्ञान है?

जिसे इसका ज्ञान है, मैं उसे मानव मानता हूँ। अपना और अपने बाल-बच्चों का सुख तो पशु भी समझ लेते हैं! लेकिन मानव-दृष्टि तो इसके भी ऊपर जाती है।

कल के अखबार में कलकत्ते के जिन मजदूरों में मैं काम करता हूँ, उनके हड़ताल कर देने के समाचार आये हैं। तुम्हें शायद यह मालूम भी न होगा। आखिर तुम-जैसे लोगों के लिए ये खबरें भी क्या मानी रखती हैं? वे तो सिनेमा-अभिनेत्रियों की तस्वीरें देखेंगे और बेकार के तत्वों पर घंटों बहस करते रहेंगे!

मैं चुप न बैठ सका। मेरे जाने का यही कारण है। शान्ताराम, रघुनाथ मानव है, पाषाण नहीं। उधर जब हज़ारों मानव अपने बित्ते-भर पेट के गड्ढे को भरने के लिए संघर्ष कर रहे हों, तब उनका हमदर्द और मित्र होने का दावा करनेवाला मैं कैसे यहाँ आराम करता रहूँ? नहीं, यह असम्भव है!

पाषाण होकर अमर होने की अपेक्षा, पशु बनकर सुख से जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा, मानव बनकर मानवता के लिए संघर्ष करते हुए मर जाने में अधिक आनन्द है। ठीक है न?

तुम्हारा,
रघुनाथ।

मराठी से अनु० मो सा०

अनिल के पिता शोर मचा रहे थे—अबे, मैं पूछता हूँ, आखिर इतने रुपयों का करता क्या है ? एक पैसा हमें नहीं देता। तेरी बहू कपड़ों के लिए अलग झींकती रहती है। खुद तेरे कपड़ों की यह हालत है। कुछ समझ में नहीं आता। रामप्रसाद तो कचहरी में कुल साठ रुपये पर है, फिर भी अच्छा खाता-पीता है। और तुझे स्कूल से सौ मिलते हैं, फिर भी झींकना पड़ा रहता है।...

अनिल की आदत उत्तर देने की नहीं। वह चुपचाप सुनता रहता। मुस्कराता रहता। उसका अन्तर सदा पीड़ित रहता, पर बाहर सदा खिलखिलाता रहता। दो-चार के संग बैठकर वह सबको हँसाता रहता। यह कोई नहीं जानता था कि वह बहुत ही दुःखी प्राणी है।

उस दिन स्कूल के हास्टल के भंगी ने अनिल से कहा—बाबूजी, मेरे ढाई बरस के बच्चे को निमूनिया हो गया है। क्या बताऊँ, इस समय पास में...दूध तक...

उत्तर में अनिल ने उसे वह दोनों रुपये दे दिये, जो उसकी पत्नी ने तकिये के गिलाफ के लिए डेढ़ गज लट्ठा लाने के लिए दिये थे।

कालिज से लौटने पर पत्नी ने पूछा—लट्ठा कहाँ है ?

अनिल ने मुस्कराते हुए कहा—याद नहीं रहा। अभी ला देता हूँ।

फिर वह मोहल्ले की बजाज की दुकान से डेढ़ गज लट्ठा उधार ले आया।

इतवार का दिन था। अनिल मेज पर बैठा अपने किसी मित्र को पत्र लिख रहा था, तभी उसके पिताजी बोले—तेरी घड़ी क्या हुई ?

अनिल ने कोई उत्तर नहीं दिया।

उन्होंने फिर पूछा—टूट गयी या खो दी ?

अनिल फिर भी चुप रहा।

अब उसके पिताजी जोर-जोर से चीखने लगे—साहब, मैं तो इस लड़के को समझने से रहा। न जाने क्या करता है। घर में तो इसके होंठ सिले रहते हैं, बाहर दोस्तों में जबान कैंची की तरह चलती है...

अनिल लिफाफे पर टिकट लगा चुका था। उठकर बाहर चला गया। रास्ते में दूधवाला मिल गया। बोला—बाबूजी, आज छै तारीख हो गयी। तनखाह नहीं मिली अभी क्या ?

—मिल तो गयी थी, पर एक जरूरी काम में खर्च हो गयी। तुम्हारा इन्तज़ाम मैं कर रहा हूँ। तुम बेफिकर रहो। दो-तीन दिन में ही भिजवा दूँगा।

—कोई बात नहीं। भिजवा दीजिएगा। एक गाय खरीदनी है, इसी लिए···

शाम को पत्नी ने पूछा—घड़ी का क्या किया?

—रामेश्वर को दे दी है।

—क्यों?

—उसे तीन महीने की फीस के साथ परीक्षा की फीस जमा करनी थी। चालीस रुपये देने थे। मेरे पास थे नहीं। उसने घड़ी को गिरवी रखकर जमा कर दिये होंगे।

—भला, दानीजी! बाले के पास जूता नहीं और तुम्हारे पास पैंट नहीं। यह तो हाल घर का हो रहा है और तुम उसे घड़ी दे आये?

—मुझसे ऐसी बातें मत किया करो। जानती भी हो, वह किस प्रकार स्कूल जाता है। अक्सर बिना खाये ही स्कूल जाता है और वहाँ से लौटकर ट्यूशन···

इनविजिलेशन के पैंतीस रुपये मिले, तो अनिल ने हिसाब लगाया, पन्द्रह दूधवाले को दूँगा, पन्द्रह में पतलून, तीन-चार में बाले के जूते···

पन्द्रह दूधवाले को दे दिये। घर पहुँचे, तो पत्नी ने कहा—मैंने तेरह की एक धोती ले ली है। पड़ोस में सब ने ही ली। सब सिर हो गयीं, तो क्या करती, लेनी ही पड़ी। उसे तेरह रुपये देने हैं?

उसने तेरह रुपये दे दिये। पैंट नहीं बनी। बाले के जूते ज़रूर आ गये।

अनिल स्कूल जा रहा था। रास्ते में एक बीड़ी पीते विद्यार्थी को दूसरे विद्यार्थी ने टोका, तो उसने कहा—दुत, इनसे तो एक चूहा भी न डरेगा।

और आगे बढ़ा, तो वैद्यजी ने कहा—मास्टर साहब, यह साल तो किसी तरह कट गया। अगले साल लड़के की फीस माफ न हुई तो···

—देखिए, मैं पूरी कोशिश करूँगा।

उसके बाद हरसरनजी मिल गये। यह स्कूल की कार्य-कारिणी के मेम्बर थे। बोले—मास्टर साहब, आपकी बड़ी शिकायतें आ रही हैं। हेडमास्टर की रिपोर्ट है कि आप बड़े नरम दिल हैं। अनुशासन का ख्याल नहीं करते। विद्यार्थियों पर कोई रोब नहीं है। क्लास में शोर मचता है।

अनिल ने कहा—अच्छा जी, आगे से ध्यान रखूँगा।

स्कूल में हेडमास्टर ने कहा—आपको आज दो दर्जे और लेने हैं। अध्यापक नहीं आये हैं।

—जो आज्ञा।

किसी लड़के से स्कूल का नक्शा फट गया। हेड मास्टर साहब ने दस रुपये जुर्माना कर दिया। शाम को छुट्टी हुई, तो लड़का बाहर खड़ा रो रहा था। अनिल पास से गुजरा, तो लड़के से उसने पूछा—तुम से ही नक्शा टूटा है?

लड़के ने पूरी कहानी सुना दी।

अनिल ने जेब से दस रुपये निकालकर दे दिये।

बराबर में एक अध्यापक खड़ा था। बोला—यह क्या बेवकूफी है? लड़के को सजा मिलनी चाहिए।

अनिल मुस्कराकर रह गया।

अनिल के कपड़े बहुत गन्दे हो गये थे। पत्नी से पूछा—धोबी के यहाँ से पाजामा नहीं आया? यह पैन्ट तो बिल्कुल गन्दी हो गयी है।

—तुमने कभी धोबी को डाँटा भी है कि समय पर कपड़े ले आया करे।

उसके बाद दोनों में हल्की-सी लड़ाई हुई। लड़ाई के बाद पत्नी थोड़ी देर तक रोती रही। फिर अनिल को रुपये देकर कहने लगी—जाओ, पैंट का कपड़ा ले आओ। यह फट भी तो बिल्कुल गयी है।

अनिल ने कपड़ा खरीदकर अरजेन्ट पतलून सिलवायी।

तनख्वाह के सौ रुपये मिले। बीस हेड क्लर्क को दे दिये। उससे उधार लिये थे। किसी मास्टर के यहाँ पुत्र-जन्म हुआ था। वह सीधे उधार लेना नहीं चाहता था, तब अनिल ने लेकर दिये थे। लेते समय मास्टर ने कहा था, पहली को दे दूँगा। पर फिर उसे याद नहीं रही होगी!

ग्यारह एक लड़के की फीस के दे दिए। यह फीस वह हर महीने दिया करता था, क्योंकि उसकी फीस माफ नहीं हुई थी। लड़का पढ़ने में जितना तेज था, उतना ही गरीब।

सोलह रुपये मोहल्ले की गंगा को दे दिये। गंगा विधवा थी। माँ के पास रहती थी। अनिल को भैया कहती थी। एक दिन अनिल ने सुना कि यह दोनों आज-कल भूखी सो जाती हैं। तब आपने वहाँ जाकर आश्वासन दिया, हर महीने पन्द्रह रुपये मैं दे सकता हूँ। आधा,

दाल, लकड़ी मंगा लिया करो। वह दोनों औरतें तब से ही अपने को तीन समझने लगी थीं।

बाकी रुपये पत्नी के हाथ में रख दिये। पत्नी ने रुपये गिने और सामने दीवार पर फेंक मारे। फिर चीखने लगी—एक बार की बात हो तो हो! हमेशा ही आधे रुपए गायब कर देते हैं!—उसके बाद रोती हुई ट्रंक में कपड़े रखने लगी।

अनिल ने बहुत समझाया कि पीहर मत जाओ। मैं अभी तुम्हें पूरे रुपये लाकर देता हूँ। पर वह न मानी। कहने लगी—जितना दुःख मुझे यहाँ मिल रहा है, उससे पीहर में ही भली! कहने को मास्टर हो।

अनिल ने खुशामद की। बिनती की। हाथ जोड़े। पर वह नहीं रुकी। चली गयी।

तीसरे दिन अनिल ने पत्र लिखा :

तुम चली गयी। मुझसे वास्तव में गलती हुई है। क्षमा चाहता हूँ। अब कभी रुपये इस प्रकार खर्च नहीं करूँगा। तुम्हारे जाने से यहाँ मेरे खाने-पीने का इन्तज़ाम ठीक नहीं हो रहा है। कमज़ोरी बहुत हो गयी है। उठते-बैठते बदन में दर्द होता है। आठ-दस दिन रहकर चली आओ। बाले को प्यार।

कुछ दिन बाद एक पत्र और लिखा :

तुम्हें गये पचीस दिन हो गये हैं। तुमने एक पत्र भी न लिखा। मुझे तीन दिन से बुखार आ रहा है। स्कूल से छुट्टी ले ली है। देख-भाल करनेवाला कोई नहीं है। पिताजी नाराज़ रहते हैं। अभी मरने की इच्छा नहीं है। तुम आ जाओगी, तो ठीक हो जाऊँगा।

अनिल पलंग पर लेटा था। बुखार अधिक बढ़ गया था। स्कूल के चपरासी ने अनिल को रुपए देते हुए कहा—आपकी तनख्वाह हेड क्लर्क साहब ने भेजी है।

अनिल ने रुपये लेकर कहा—देखो, यह ग्यारह रुपए सतीशचन्द्र को दे देना, जो नवें में पढ़ता है। और यह पन्द्रह रुपए इसी लाइन में जो छोटा मकान है, वहाँ दे देना। साथ ही मेरा एक तार भी डाकखाने में देना। तुम्हें कष्ट तो होगा?

चपरासी ने कहा—अजी, कष्ट की इसमें क्या बात है। दीजिए।

उसने कागज़ पर लिखा, मर रहा हूँ, शीघ्र आ जाओ। फिर पता लिखने लगा।

पिताजी चौक में खड़े होकर कह रहे थे—डाक्टर इन्जेक्शन के लिए कह गये हैं, तनखाह आ गयी है, तो.....

—वह आ जाये, तभी कुछ करेंगे,—अनिल ने धीरे से जवाब दिया।

—वह आये या न आये, दवा तो नहीं रुक सकती। तुम्हारी तनखाह का तो पता ही नहीं चलता कि क्या होता है। अबकी सारी तनख्वाह मेरे हाथ में रख दो।

—वह ज़रूर आयगी!—कहकर अनिल ने करवट बदल ली।

दूसरे दिन पत्नी आ गयी। अनिल को देखा, तो रो पड़ी। माफी मांगी कि अब कभी नहीं जाऊँगी। तुम अच्छे हो जाओ। सब रुपये लुटा दोगे, तब भी कुछ नहीं कहूँगी। तुम कोई बुरा काम थोड़ा ही करते हो। एक बार फिर माफी मांगी और अपना सिर अनिल के पैरों पर रख दिया।

अनिल की आँखों में भी आँसू आ गये। बोला—तुम्हारे बिना बिल्कुल जी नहीं लग रहा था।

पत्नी उसे आगे नहीं बोलने देना चाहती थी। बोली—बाले को वहीं छोड़ आयी हूँ।

अनिल ने बताया कि डाक्टर ने सूई देने को कहा है।

तभी चपरासी ने आकर एक परचा दिया। हेड मास्टर ने लिखा था, तुम्हारे बारे में स्कूल कमेटी की राय अच्छी नहीं है। फिर इतनी छुट्टियाँ भी नहीं मिल सकतीं। विद्यार्थियों की पढ़ाई का नुकसान होता है। इसलिए तुम्हारी नौकरी खतम करने के लिए आज स्कूल कार्यकारिणी की मीटिंग हो रही है। तुम्हें सूचित किया जा रहा है।

चौक में खड़े पिता चिल्ला रहे थे—यही रहन रही, तो तुम किसी काम के नहीं रहोगे। भीख मांगोगे! अब तुम जानो और तुम्हारा काम!

शीश महल, मेरठ।

बीना

विजय चौहान

मैं बीना को लेकर सुबह सात बजे डाक पर पहुँच गया। उसका टिकट और पास पोर्ट सब तैयार था। रास्ते-भर उसने मुझसे कुछ भी बातचीत नहीं की थी। मैं भी चुप था। मेरा मन बहुत भारी था।

मैं जानता था कि इसके बाद उससे फिर कभी नहीं मिलूँगा। वह बर्मा से कभी वापस नहीं आयगी, इसका मुझे पूरा विश्वास था। एक सवाल, जो मैं उससे पहले भी एक बार पूछ चुका था, मेरे मन को बार-बार सता रहा था। आखिर मैं जी कड़ा करके बोला—बीना, एक बात पूछूँ?

बीना ने बिना कुछ बोले मेरी तरफ देखा।

—तुमने हरीश से शादी क्यों नहीं कर ली?—मैंने पूछा।

यह सुनकर वह एकदम फूटकर रो पड़ी। कुछ देर वह कुछ नहीं बोली, फिर सिसकियों के बीच बोली—मुझसे कौन शादी करता? मैं काली हूँ, खूबसूरत नहीं हूँ। और फिर शादी तो एक तपस्या का फल है। शायद मेरी साधना में कोई कमी रह गयी होगी। लेकिन तुम समझते होगे कि मुझे कोई पछतावा होता है। यह बात नहीं है। मैं अपने जीवन से पूरी तरह सन्तुष्ट हूँ।

मैंने बीना की ओर देखा। और मुझे लगा कि वह खुद अपनी बात पर यकीन नहीं कर रही है।

इसके बाद मेरी उससे कोई बात नहीं हुई। जहाज़ बीना को लेकर चल पड़ा। वह रो रही थी, और डेक पर खड़ी धीरे-धीरे मेरी ओर रूमाल हिला रही थी। जहाज़ दूर होता जा रहा था और पिछले कई वर्ष मेरी आँखों के सामने घूम रहे थे।

❁

कलकत्ता के वे दिन, जब बीना मुझे मिली थी! उसकी उम्र पचीस के लगभग होगी। देखने में वह बहुत अच्छी नहीं थी। रङ्ग साँवला था और उसके बाल अजीब ढङ्ग से कटे थे, जैसे लड़कों के आम तौर से कटे होते हैं। भवानीपुर में, आशुतोष मुखर्जी रोड और एलगिन रोड के चौराहे पर, एक मकान में तिमंज़िले पर दो कमरों में मैं रहता था। हफ़्ते में एक बार मेरे उस छोटे-से घर में, साहित्यिक मित्रों का जमावड़ा हो जाता था। हरीश, जिसके साथ बीना पहली बार मेरे यहाँ आयी थी, एक बंगला साप्ताहिक का सम्पादन करता था। हरीश ने उसका परिचय हम सब से कराया था—ये हैं बीनाजी। इन्हें साहित्य से बड़ा प्रेम है। बङ्गला में कविता भी लिखती हैं। यहाँ आकर आप लोगों से मिलने के लिए बड़ी उत्सुक थीं।

चाय पीते-पीते मेरी बीना से बङ्गला कविता के बारे में बातचीत होती रही और फिर थोड़ी देर में बातचीत का विषय बन गया हरीश।

—हरीश का पत्र तो बहुत अच्छा निकल रहा है,—उसने कहा।

—हाँ, बड़ी मेहनत भी तो कर रहा है उसपर,—मैंने जवाब दिया।

—क्या आप उसे बहुत दिनों से जानते हैं?

—हम लोग साथ ही पढ़े हैं,—मैं बोला।

—तो आप उसे बहुत ही अच्छी तरह जानते होंगे। बिल्कुल बच्चा है न?—बीना ऐसे बोली, जैसे उसने ही हरीश को पाल-पोसकर बड़ा किया हो।

मैंने यह सुनकर बड़े आश्चर्य में पड़ गया। हरीश को मैं पिछले सात साल से जानता था, लेकिन मैं यह नहीं पहचान पाया था कि वह बिल्कुल बच्चा है।

हरीश, जिसको शायद हमारी बातचीत का अनुमान हो गया था, उठकर हमारे पास आया। मुझसे बोला—तुम शायद यह नहीं जानते कि मैं बीना का दत्तक पुत्र हूँ।

हरीश का यह मज़ाक एक तो मेरी समझ में नहीं आया और मुझे अच्छा भी नहीं लगा, लेकिन बीना ने जब बड़ी गम्भीरता के साथ उसका समर्थन किया, तो मुझे विश्वास हो गया कि वह मज़ाक नहीं कर रहा है।

इसके बाद बीना ने अगर मुझसे कोई बात की, तो वह हरीश की।

—वो इतना लापरवाह है कि अपनी फिकर नहीं रखता, बहुत ज़्यादा चाय पीता है, वक्त पर खाना नहीं खाता। उसकी माँ बचपन में मर गयी थी न, इसी लिए वो ऐसा हो गया है। उसको माँ का प्यार नहीं मिला।

—लेकिन तुम तो उससे उम्र में बहुत छोटी हो, बीना। तुम उसकी माँ कैसे बन सकती हो?—मैंने उसकी बातों के प्रवाह को रोकते हुए कहा।

—इससे क्या होता है। जब मैंने उसके साथ यह रिश्ता क़ायम कर लिया है, तो उम्र का सवाल ही नहीं उठता।—वह बोली।

मैंने उसके चेहरे की तरफ देखा, तो आगे कुछ न बोल सका। उसपर असमर्थता की एक गहरी छाप थी। वह बहुत दयनीय दिख रही थी।

इसके बाद बीना अक्सर हमारी उन छोटी-सी महफ़िलों में आती थी। बीना हरीश की बातें करती थी और मैं सुनता था।

स्त्री में मातृत्व की भावना बहुत प्रबल रहती है। माँ को अपनी सन्तान के प्रति जो प्यार होता है, उसमें इसका होना स्वाभाविक है। लेकिन स्त्री माँ हो या पत्नी, बहन हो या प्रेमिका, उसके प्यार का पात्र सन्तान हो या पति, भाई हो या प्रेमी, उसके प्यार में सदा ही मातृत्व का अंश रहता है। बीना के स्वभाव में यह बात बहुत ही प्रबल थी। इसका क्या कारण था, यह मैं नहीं कह सकता। शायद उसके जीवन में कुछ ऐसी घटनाएँ घटी हों, जो इसका कारण हों, लेकिन मैं उन्हें कभी नहीं जान पाया। उसके चेहरे के पीछे एक काली छाया रहती थी, उसकी काली आँखों के पीछे एक ऐसा अँधेरा रहता था, जिसे देखकर मैं सिहर उठता था।

एक दिन मैं न्यू मारकेट से गुज़र रहा था कि बीना मुझे मिल गयी।

—सुबह-सुबह कहाँ चले जा रहे हो?—उसने पूछा।

—यूँ ही, थोड़ी-सी ख़रीद-फ़रोख़्त करनी थी, इसलिए निकल पड़ा।—मैं बोला।

—चलो, मैं भी चलती हूँ, मुझे भी थोड़ा-सा सामान ख़रीदना है।—कहकर बीना मेरे साथ हो ली।

सुबह से दोपहर तक अपना सामान ख़रीदने के बदले मैं बीना का सामान खरीदवाता रहा। उन चार घंटों में बीना ने आधा दर्जन रूमाल और एक नेलकटर ख़रीदा और मैंने एक जोड़ी मोज़े। पूरे वक्त वह मुझे बतलाती रही अपने बारे में, और हरीश के बारे में।

दो बजे के लगभग बीना बोली—मुझे तो जो ख़रीदना था, मैं ख़रीद चुकी।...अरे, तुमने तो कुछ खरीदा ही नहीं!

—मैं आज कुछ और नहीं ख़रीदना चाहता। चलो, अब वापस चलें।—मैं कुछ खीजकर बोला। मुझे वक्त ख़राब हो जाने का बड़ा पछतावा हो रहा था।

—यह कैसे हो सकता है? तुम्हारा सामान ख़रीदे बग़ैर हम वापस जा ही नहीं सकते!—वह बोली।

अपना सामान खरीदने के लिए बीना के साथ एक घंटा और बिताना ज़रूरी था और इसके लिए मैं हर्गिज़ तैयार नहीं था। मैंने कुछ ज़ोर देते हुए कहा—नहीं, आज मुझे क्षमा करो। मैं फिर कभी आकर ले जाऊँगा। आज वैसे ही बड़ी देर हो गयी है।

—मैं समझ गयी,—बीना इस अन्दाज़ से बोली, जैसे उसे किसी बड़े मुश्किल सवाल का जवाब मिल गया हो—तुम्हें भूख लगी है। कितनी देर हो गयी है! मैं

अभी तक समझी ही न थी। तुम भी बिल्कुल बच्चे हो। चलो, मैं तुम्हें खाना खिलाती हूँ।

उसके बाद बीना ने मुझे खाना खिलाया। रिदम कार्नर में ले जाकर ग्रामोफोन-रिकार्ड सुनवाये। शाम को चाय पिलायी और अन्त में एक तस्वीर दिखायी। ग़रज़ यह कि जिस तरह हो सका, उसने मेरा मनोरंजन किया। थोड़ी देर के लिए तो मैं अपने मन को इस सबके लिए राज़ी नहीं कर पाया, लेकिन उसके बाद मैंने अपने-आपको बिलकुल बीना के हवाले कर दिया। घड़ी को कलाई से खोलकर कोट के अन्दरवाली जेब में रख लिया।

उस दिन रात को जब तक मैं उसे घर छोड़ने गया, मैं उसके बृहत् परिवार में शामिल हो चुका था। मैं उसका छोटा-सा भाई था और वह मेरी बड़ी बहन।

उन दिनों मैं कलकत्ता में एक किताब लिख रहा था, जिसका सम्बन्ध बंगला से था। किताब करीब-करीब ख़तम होने को आ गयी थी। मेरा सारा दिन टाइप करते बीत जाता था। साहित्यिक गोष्ठियाँ भी एक दूसरे मित्र के घर होने लगी थीं। बीना से मुलाक़ात हुए भी बहुत दिन हो गये थे। एक दिन शाम को मैं घर पर चाय पी रहा था कि किसी ने घंटी बजायी और मैंने दरवाज़ा खोला, तो देखा कि बीना है।

—बहुत दिनों के बाद आयी, बीना,—मैंने कहा।

—हाँ, क्या बताऊँ, इधर बहुत व्यस्त रही। आज तुमसे बहुत ज़रूरी काम है। कहीं बाहर तो नहीं जाना है?—वह बैठते हुए बोली।

मैंने देखा, बीना बहुत ही उदास थी और उसकी आँखें रोने के कारण सूजी हुई थीं।

मैंने कहा—नहीं, मुझे कहीं नहीं जाना। आओ, सुनाओ, तुम्हें क्या ज़रूरी काम आ गया है?

मैंने उसके लिए एक प्याली चाय बना दी। चाय पीते-पीते वह बोली—मैं तुमसे हरीश के बारे में बात करना चाहती हूँ। तुम तो उसके दोस्त हो न, तुम शायद उसे समझा सको।

मैं समझ नहीं पाया कि बीना हरीश के बारे में क्या बात करना चाहती है। हरीश को वह पिछले कई वर्षों से जानती थी। हरीश को कोई बात समझाने का या किसी विषय पर सलाह देने का उसे उतना ही हक था, जितना कि मुझे।

—ऐसा क्या हो गया है तुम्हारे और हरीश के बीच कि मेरी सलाह की ज़रूरत आ पड़ी?—मैंने पूछा।

बीना थोड़ी देर तक चुप रही। फिर बोली—हरीश, शादी कर रहा है।

—लेकिन इसमें बुरी बात क्या है, बीना? शादी तो वो एक दिन करता ही। सभी करते हैं।—मैंने उसके विचारों को समझते हुए भी न समझा।

—शादी सभी करते हैं, ये मैं नहीं कह सकती। लेकिन हरीश जिस लड़की से शादी कर रहा है, वह उसके लायक नहीं है।—उसने बड़े गंभीर स्वर में कहा।

—ये तुमने कैसे जाना?—मैंने पूछा।

—क्योंकि मैं हरीश को बहुत अच्छी तरह जानती हूँ। यह औरत उसे बेवक़ूफ़ बना रही है। इन पिछले पाँच वर्षों मैंने उसकी देख-भाल वैसे ही की है, जैसे माँ अपने बच्चे की परवरिश करती है; और अब उसकी शादी के वक्त मेरी राय की कोई क़ीमत नहीं!—बीना ने बड़े आवेग के साथ कहा।

मैं बीना को धीरे-धीरे समझ रहा था। मैं बोला—लेकिन, बीना, तुम उसे जितनी अच्छी तरह जानती हो, वैसी जाननेवाली तो उसे कोई लड़की नहीं मिलेगी। इसका मतलब यह तो नहीं कि वह शादी ही नहीं करेगा?

—मैंने ये तो नहीं कहा,—वह बोली—शादी वह ज़रूर करे, लेकिन ऐसी लड़की के साथ, जो उसको निबाह सके और जो उसे सुखी रख सके।

मैं एक बात बीना से दिनों से कहना चाहता था और उस दिन अपने-आपको न रोक सका।

—एक बात कहूँ, बीना? तुम हरीश से शादी क्यूँ नहीं कर लेतीं?

बीना एकदम फूट पड़ी—तुम इतनी दुष्टता करोगे, ये मैं नहीं जानती थी। तुमको हरीश का दोस्त समझकर तुम्हारे पास आयी थी, तुम्हारी सहायता लेने, अपना मज़ाक उड़वाने नहीं। हरीश को तो मैंने अपना बच्चा माना

है, उससे शादी का सवाल ही नहीं उठता। लेकिन मैं तो। किसी से भी शादी नहीं करूँगी।

बीना फूट-फूटकर रो रही थी। उसका चेहरा बहुत ही बदशकल दिख रहा था। उसकी आँखें सूजी हुई थीं, और उसके बाल बिल्कुल अस्त-व्यस्त थे।

बीना चली गयी। मैं उसके मन की स्थिति समझने की कोशिश करता रहा। उसके बारे में जितना भी सोचता था, उतनी ही ज़्यादा दया मेरे मन में उसके लिए पैदा होती थी।

कुछ दिन बाद हरीश का ब्याह, जिस लड़की से बीना नहीं चाहती थी, उसी के साथ हो गया। लड़की हिन्दुस्तानी नहीं थी। उसके पिता बर्मा के रहनेवाले थे। एक बंगाली स्त्री से शादी करके कलकत्ता में बस गये थे।

मेरा कलकत्ता में काम ख़तम हो गया था और मैं दिल्ली चला गया। जाने के पहले मैं बीना से मिलने गया था। हरीश की शादी के बाद वह खुश कम ही दिखायी देती थी। उसने नौकरी कर ली थी। हरीश के बारे में उसने सिर्फ इतना कहा था—अभी मैं ये नहीं कह सकती कि उसने ठीक किया कि नहीं। लेकिन अब तो बहुत देर हो चुकी है। भगवान उसे सुखी रखें!

—बीना, कभी मेरी ज़रूरत हो तो मुझे ख़त लिखना। शायद मैं तुम्हारे किसी काम आ सकूँ।—जाते-जाते मैंने उससे कहा था।

❀

दिल्ली में पाँच साल बीत गये और मुझे न तो बीना का ही कोई समाचार मिला और न हरीश का और फिर एक दिन बीना का खत आया :

इन पिछले सालों में मैंने कई बार सोचा कि तुम्हें ख़त लिखूँ, लेकिन वक्त ही नहीं मिला। हरीश के बच्चों की देख-भाल से बिल्कुल छुट्टी नहीं मिलती। हरीश की एक लड़की है, बहुत ही प्यारी है। छोटे दो लड़के हैं, बड़े शैतान।

जिसके लिए मैं तुम्हें लिख रही हूँ, वह यह है। हरीश अगले महीने बर्मा जा रहा है। उसकी पत्नी की जिद्द है कि वह बर्मा जाकर कोई व्यापार करे। उसकी पत्नी के चाचा वहाँ पर हैं। मैं नहीं चाहती कि वह जाय। हरीश ने शादी के वक्त मेरी राय नहीं ली थी, तो अब क्या लेगा। तुम उसे लिखकर समझा सकोगे? शायद तुम्हारी बात मान जाय। उसका जाना ठीक नहीं है।

मैं उसके साथ नहीं जा रही हूँ।

प्यार।

तुम्हारी,
बीना।

मैं इस पत्र का जवाब क्या देता। मैंने सिर्फ़ इतना लिख दिया कि उन दोनों की इच्छा अगर बर्मा जाने की है, तो हमें दख़ल नहीं देना चाहिए। आख़िर ज़िन्दगी तो उन्हें साथ ही बितानी है। जिसमें उनकी खुशी हो वैसा ही उन्हें करने दिया जाय, तो अच्छा होगा।

इसके बाद हरीश का भी एक ख़त मेरे पास आया। उसने अपने बर्मा जाने के बारे में लिखा था, और अन्त में लिखा था, बीना की तो तुम्हें याद होगी ही। बेचारी ने इन पिछले वर्षों हमारी गृहस्थी जमाने में बड़ी मेहनत की है। बच्चों पर तो जान ही देती है। वे भी उससे बहुत हिल गये हैं। हम लोगों के बर्मा जाने का सबसे ज़्यादा दुख तो उसे ही हो रहा है। वह यहाँ अकेली रह जायगी। लेकिन परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि हमें जाना ही पड़ेगा। बीना का पूरा इन्तज़ाम करके जा रहा हूँ। बच्चे उसे बहुत प्यारे हैं, इस लिए उसे बच्चों के एक स्कूल में पढ़ाने की दिला दी है। अपना बहुत-सा सामान भी उसके पास जा रहा हूँ। उसे तकलीफ न होगी।

ख़त पढ़कर मैंने एक ठण्डी साँस ली। काश, हरीश जान पाता कि बीना को जीवन की सब सुविधाओं की उतनी ज़रूरत नहीं, जितनी कि एक पुरुष की, जो उसे अपना ले, जो उससे प्यार करे! लेकिन बीना के जीवन में ऐसा होना अब नामुमकिन था।

कई वर्ष और बीत गये। न तो मुझे हरीश की कोई ख़बर मिली और न बीना की। फिर मैं कलकत्ता आया, तो मैंने सोचा कि पता लगाऊँ कि बीना क्या कर रही है। जिस स्कूल में वह पढ़ाती थी, उसका पता मुझे मालूम था। मैं जब वहाँ पहुँचा, तो मालूम हुआ कि क़रीब एक महीना हुए उसने नौकरी छोड़ दी है। लेकिन वहाँ से उसके घर

का पता मालूम हो गया। मैं जब उसके घर पहुँचा, तो वह बैठी कुछ सी रही थी। मुझे देखकर एकदम रो पड़ी।

—अच्छा हुआ तुम आ गये, फिर शायद मैं तुमसे कभी मिल न पाती।

—ऐसी क्या बात हो गयी, बीना?—मैंने बड़े ही स्नेह के साथ पूछा।

मैंने देखा, उसके आधे से ज़्यादा बाल सफ़ेद हो चुके थे। इतनी कम उम्र में ही वह बूढ़ी हो गयी थी।

—मैं जा रही हूँ। कल मैं बर्मा जा रही हूँ। हरीश और उसके बच्चों को मेरी बहुत ज़रूरत है। तुमको नहीं मालूम, हरीश बहुत बीमार है।

—हरीश की बीमारी का हाल तो मुझे नहीं मालूम,—मैंने कहा—लेकिन इतने रुपये तुम कहाँ से लाओगी?

—मैंने जमा कर लिये हैं। इतने साल की नौकरी से कुछ बचा लिये थे, और फिर मैंने अपना सारा सामान बेच दिया है। मैं जा रही हूँ, क्योंकि हरीश कहे चाहे न कहे, उसे मेरी ज़रूरत है। यही तो मेरी परीक्षा का समय है। अभी मैं न जाऊँगी तो कब जाऊँगी?

बीना को जाने से कोई नहीं रोक सकता था।

मैं खड़ा-खड़ा सोच रहा था और जहाज़ दूर होता जा रहा था। बीना को लेकर वह दूर क्षितिज की ओर बढ़ा जा रहा था, बहुत दूर, जहाँ आकाश और समुद्र का मिलाप होता है।

सन्नन्न् करती हुई एक गोली आयी। गेलिको ज़मीन पर लेट गया। पहाड़ी मुल्क, तिसपर जंगल का इलाक़ा। गेलिको और उसका गाइड रास्ता तय कर रहे थे कि अचानक यह आफत आयी। गेलिको तो बच गया, पर गोली गाइड की छाती में घुस गयी और उसे तत्क्षण सदा के लिए सुला दिया। अब गेलिको अकेला था।

गेलिको ने अपने थैले से दूरबीन निकाल दूर-दूर तक नजर दौड़ायी। क़रीब हज़ार गज़ के अन्तर से उस प्रदेश के एक मूलवासी ने रायफल से गोली छोड़ी थी। अब लुकते-छुपते उसे आगे बढ़ना था। रास्ता अनजान था, गाइड मारा गया था। अब खुद ही रास्ता खोजने के सिवा दूसरा चारा न था। रात्रि का-सा घुप्प अन्धकार बाधक सिद्ध हो रहा था।

उसने मृत गाइड के थैले को खोला और उसमें से भोज्य पदार्थ निकाले। फिर गाइड के शव को एक ओर ढकेल कर, पत्थरों और वृक्षों की आड़ लेते, लुकते-छुपते वह आगे बढ़ा। थक गया, तो थोड़ी देर के लिए सो रहा। फिर उठकर आगे चलने लगा। पर रास्ते के नाम पर कुछ भी नज़र न आता था और उसकी हालत पागलों-जैसी होती जा रही थी। बारह से भी अधिक घन्टे लगातार चलने के बाद थकान से वह चूर-चूर हो गया। खाना खत्म हो चुका था। पानी का कहीं नाम न था। उसे लगा कि शायद भूख, प्यास और थकान से वह यहीं मौत के घाट उतर जायगा।

परन्तु इतने में दूर एक मकान की झलक-सी दिखायी दी। आशा और निराशा के झूले में झूलता वह उसी ओर चल पड़ा। वह मित्र का घर हो या शत्रु का, उसे इस समय आराम की सख्त ज़रूरत थी। बड़ी मुश्किलों से वह मकान के दरवाजे तक पहुँचा और इसके पहले कि वह दरवाजा खटखटाता, वहीं चौक में बेहोश होकर गिर पड़ा। दरवाज़ा खोलनेवाले ने कहा—आइए, भाई साहब, आपका स्वागत है!—पर गेलिको के कानों में वे शब्द न पहुँच सके।

पूरे चौबीस घन्टों के बाद जब गेलिको को होश आया, तो उसके पास एक पहाड़ी वृद्ध शोरबा लिये खड़ा था। उसपर दृष्टि पड़ते ही गेलिको काँप उठा। वह वृद्ध अल्बानियावासी था, और अल्बानिया पर ही तो उसकी इटालियन सरकार ने चढ़ाई की थी। लड़ाई में वह भी एक टुकड़ी के लेफ्टिनेन्ट की हैसियत से शामिल हुआ था। यदि इस बुड्ढे को यह हकीकत मालूम हो जाय, तो क्या वह उसे जिन्दा छोड़ेगा? यही गेलिको के भय का कारण था।

—आप यह शोरबा पी लें और आराम फरमायें,—उस वृद्ध ने उससे कहा।

—परन्तु क्या आप जानते हैं,—गेलिको के मुँह से निकल पड़ा—कि आप लोगों पर चढ़ाई करनेवाली इटालियन सेना का मैं एक लेफ्टिनेन्ट हूँ?

—हुँ, होंगे?—उस वृद्ध ने कहा—परन्तु सबसे पहले तो आप मेरे मेहमान हैं। और मेहमान का स्वागत करना हम अल्बानिया के निवासी अपनी जिन्दगी का सबसे पहला और बड़ा फर्ज समझते हैं। आप हमारे आंगन में आये

हैं, हमारे घर में बैठे हैं, तो निर्भय होकर आराम कीजिए, खाइए, पीजिए और मौज उड़ाइए !

—परन्तु हम लोगों ने तो आपके देश पर चढ़ाई की है ?—गेलिको फिर बड़बड़ाया ।

—जी हाँ, यह भी मेरे दिमाग के बाहर नहीं है ।

—तो क्या मैं आपका कैदी हूँ ?—गेलिको ने पूछा ।

—हरगिज नहीं !—वृद्ध मुस्काया—बल्कि आप हमारे मेहमान हैं, इसलिए हमारे सरताज हैं ! आप, जब आप बेहोश पड़े थे, मैंने और मेरी बीवी ने, आपको इटालियन पहचान कर भी, आपकी भर-सक सेवा की है । इसे अपना ही घर समझिए । जब तक आपकी इच्छा हो, चाहे एक दिन या एक वर्ष, आप हमारे मेहमान बनकर रहिए, और हम आपका प्रेममय स्वागत करेंगे । आपको जाने की जब इच्छा होगी, तो मैं अपना घोड़ा आपको दूँगा, और जब तक आप यहाँ रहेंगे, मैं हथेली पर अपनी जान रखकर आपकी सेवा करूँगा ।

थोड़ी देर तक गेलिको कमरे में नजर घुमाता रहा । कमरा मुसलमानी ढंग से बड़े करीने से सजाया गया था ।

उस वृद्ध ने पूछा—आप भोजन अभी लेना पसन्द करेंगे, या बाद में ? आप इसाई हैं, अतः शराब पीते होंगे । हम तो मुसलमान हैं, दारू को छूते तक नहीं । अतः भोजन के साथ उसका प्रबन्ध न हो सकेगा । इसके लिए क्षमा-याचना करता हूँ । और हाँ, मेरी बच्चियों ने आपके कोट के फटे स्थानों पर पैबन्द लगा दिये हैं । आपके बूट खराब हो गये थे, अतः उन्हें फेंक दिया है । परन्तु मोरक्को के चमड़े के दूसरे जूते आप यहाँ से खरीद सकते हैं । मेरी बच्चियाँ आपके लिए कमीज तैयार कर देंगी । सुबह से ही सीने के काम में लग गयी हैं ।

—मुझे जाने दीजिए । मुझे अपने कैम्प में जल्द-से-जल्द वापस पहुँच जाना चाहिए ।—गेलिको ने इतना ही कहा ।

वृद्ध सम्मानपूर्वक झुका, और नम्रतापूर्वक बोला—आपकी इच्छा के खिलाफ़ यहाँ कोई काम न होगा । परन्तु आप पहले भोजन लेने की कृपा करें !

वृद्ध के ताली बजाते ही खाने की थाली ले बावर्ची आ पहुँचा, और गेलिको ने पेट-भर भोजन किया । पेट भरने के पश्चात् उसे दुगुनी शक्ति महसूस हुई । उसने पूछा—आज के ताजे समाचार क्या हैं ?

—हमारे बादशाह को वतन छोड़कर भाग जाना पड़ा है, और अल्बानिया पर आपकी इटालियन सरकार का झण्डा फहरा रहा है ।—वृद्ध ने खबरें सुनायीं ।

गेलिको के मन में आया कि ओह, तो इसी कारण यह वृद्ध उसका इतना आदर-सत्कार कर रहा है । और इस विचार का आना था कि गेलिको की छाती अभिमान से फूल उठी । उसने रोब-भरे स्वर में कहा—मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, कि आपका यह उपकार कभी भी भूला न जायगा ।

वृद्ध गेलिको के भाव ताड़ गया । वह बोला—आप हमें समझने में नाकामयाब हो रहे हैं । हम आपका स्वागत सिर्फ़ इसलिए कर रहे हैं कि आप हमारे मेहमान हैं, और हम आपके मेज़बान हैं । हाँ, मुझे इस बात का अफ़सोस ज़रूर है, कि आप एक इटालियन हैं; और इसे मैं आपकी बदनसीबी ही समझता हूँ ।

गेलिको ने कुछ गुस्से से कहा—बदनसीबी ? जरा मुँह सँभालकर बात कीजिए, महाशय !

पर वृद्ध बोलता ही गया—हाँ, बदनसीबी ! क्योंकि आप घर पर भले ही मेरे मेहमान हों, पर लड़ाई के मैदान में तो शत्रु ही हैं । आप हमारे घर आ पहुँचे, तो आपका सत्कार हमारा फ़र्ज़ है । मेहमाननवाज़ी हमारा फर्ज़ ही नहीं, हमारा धर्म भी है । और इसी लिए मैं आपके ऊपर विशेष ध्यान दे रहा रहूँ, लेकिन आप इसे मेरी खुशामद न समझें, यह तो हम अपना फर्ज़ अदा कर रहे हैं ।

गेलिको कुछ न बोला ।

वृद्ध ने कहा—थोड़ी मिठाई भी चखिए न !

मिठाई खाते-खाते गेलिको ने कहा—बड़ा ही स्वादिष्ट भोजन तुम लोग बनाते हो !...वह लड़ाई नहीं, एक तमाशा ही था । तुम लोगों ने ज़रा भी सामना न किया । हाँ, इतना ज़रूर मानना पड़ेगा कि गोली तुम पहाड़ी लोग बखू चलाते हो । अभी ही पहाड़ों तथा जंगलों में से मैं आ रहा था, तो हजार गज के फासले से एक पहाड़ी ने मेरे गाइड को धायँ से उड़ा दिया ।

वृद्ध ने कुछ न कहा । बाहर कुछ स्त्रियाँ क्रन्दन कर उठी थीं । बात यह हुई थी कि इटाली की चढ़ाई का

सामना करने में इस वृद्ध के पाँचों पुत्र काम आये थे। उनके मृत शरीरों को घर पर लाया गया था। पुत्रों की माता बड़ी जोरों से चीख रही थी। क्षण-भर के लिए तो वृद्ध भी हिल उठा, पर फिर तुरन्त सँभलकर बोला—हमें माफ कीजिएगा। हम आपके आराम में खलल पहुँचा रहे हैं। मैं भी युद्ध में गया था, पर बदनसीबी से मर न सका।

गेलिको का मन नाराज़ हो उठा। खिन्न होकर बोला—ईश्वर ऐसा न करे!...हो सकता है कि मैंने ही तुम्हारे पुत्रों को मारा हो।...वह तो लड़ाई थी... किसको खबर थी, कि कौन किसपर गोली छोड़ रहा है।

वृद्ध ने दुःख को दबाकर कहा—महाशय, आप बिलकुल बेफिक्र रहें। आप हमारे मेहमान हैं, मेरे घर में कभी भी आपके साथ बुरा व्यवहार न किया जायगा।

—नहीं, अब मुझे आपसे ज़रा भी डर नहीं। परन्तु आपकी इतनी सेवा का बदला...—

वृद्ध ने कहा—मैं समझ गया। आप अपनी स्थिति समझते हैं। मैं आपका आभारी हूँ। लीजिए, यह शरबत आपके लिए है।

गेलिको ने कहा—मेहमाननवाज़ी की आप लोगों की यह पुरानी प्रथा मुझे बहुत पसन्द आयी। मैं आपको वचन देता हूँ, कि इस सेवा का बदला मेरी सरकार की ओर से जरूर चुकाया जायगा।

वृद्ध ने ठण्डी शान्ति से कहा—आप ख़ुद ही देख सकते हैं, हमारी यह बस्ती इस पहाड़ी की सबसे ऊँची चोटी पर है। अतः इटालियनों का मुझे कोई भय नहीं है। यहाँ तक आने के लिए सिर्फ एक ही रास्ता है, जिसे केवल मैं, और मेरे नौकर जानते हैं। मेरे इस किले को जीतने के लिए आपकी सरकार को बड़ी फौज भेजनी होगी। परन्तु साथ ही हमारी मेहमाननवाज़ी के सम्बन्ध में मेरी एक बात सुन लीजिए: इस इलाक़े के एक आदमी ने एक समय अपने पड़ोसी की पत्नी का ख़ून कर डाला। पति ने ख़ूनी को मार डालने की कसम खायी। परन्तु वह ख़ूनी मेहमान बनकर उस पति के यहाँ रहने लगा। क़रीब बीस वर्षों तक वह वहाँ रहा। तब तक किसी ने उसकी ओर अँगुली भी न उठायी, और उसकी मेहमाननवाज़ी खूब होती रही।...

इतने में गेलिको को डाढ़ी बनाने की इच्छा हो आयी। वृद्ध ने इसका भी इन्तजाम किया। फिर गेलिको ने कहा—अब मुझे जाना चाहिए।

वृद्ध ने कहा—जैसी आपकी मर्ज़ी।

फिर उसने नौकर से घोड़ा मँगवाया। उसपर चाँदी का ज़ीन कसवाया। फिर मेहमान को नहला-धुला घोड़े पर बिठाया। साथ में नाश्ता भी बाँध दिया।

गेलिको ने कमर में रिवाल्वर बाँधी और घोड़े पर चढ़ गया। वृद्ध भी दूसरे घोड़े पर बैठ गया।

घर से दोनों काफी दूर निकल आये। सूर्य पश्चिम की गोद में छुप रहा था। वृद्ध ने गेलिको का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा—बस, मेरी ज़मीन की हद यहीं तक है।

—यह क्या कर रहे हो!—गेलिको भय से चीख उठा। उसने देखा कि वृद्ध ने उसकी ओर रिवाल्वर तान दी थी। वह काँप उठा।

वृद्ध ने कहा—वह ख़ूनी, जो बीस वर्षों तक अपने मेजबान के साथ रहा था, एक दिन दूर के एक बाग में जा पहुँचा, और उसी समय मेज़बान ने उसे गोली से उड़ा दिया। घर की हद के बाहर होते ही वह मेहमान न रह गया था। आप भी अब मेरे मेहमान नहीं रहे। क्या मरने से पूर्व आप प्रार्थना करेंगे?

गेलिको ने सिर हिलाया।

वृद्ध ने कहा—मेरे पाँचों बेटों की लाशों में से मुझे आपकी रायफल से ही छूटी गोलियाँ मिली हैं। मेरे पाँचों बेटों को आपने ही मारा है। मैं अपने हर बेटे के नाम पर आप पर एक-एक गोली चलाऊँगा।

वृद्ध ने पाँच धड़ाके किये। गेलिको घोड़े पर से नीचे उछल पड़ा। वृद्ध ने तिरस्कार से ठोकर मारकर मुर्दे को पत्थर से नीचे ढकेल दिया, और खाली घोड़े को लेकर घर वापस आया।

घर की स्त्रियाँ तब भी रो रही थीं। उनके आँसुओं से सारा वातावरण गीला हो रहा था। वृद्ध घर में घुसा, और कफन में लिपटे अपने बड़े बेटे के शव पर गिरकर धाड़ें मार-मारकर रोने लगा।

अंग्रेजी से अनु० मनहरलाल

'कहानी' विशेषांक पर अब भी पाठकों की सम्मतियाँ आती जा रही हैं। पिछले अंक में हमने निवेदन किया था कि अब केवल चालू अंक की कहानियों पर आयी सम्मतियाँ प्रकाशित की जायँगी। विशेषांक पर आयी जिन सम्मतियों को हम प्रकाशित न कर सके, उनके भेजनवाले कृपा कर हमें क्षमा करें और अब चालू अंक की कहानियों पर अपनी सम्मति भेजें।

पिछली बार विचार-विनिमय के लिए जो विषय रखा गया था, उसमें बहुत ही कम पाठकों तथा लेखकों ने दिलचस्पी दिखायी। यही कारण है कि वह विषय आगे न बढ़ सका। जो दूसरे सुझाव विषय के बारे में आये थे उनपर भी किसी ने ध्यान न दिया। अब कोई नया विषय उठाना ही ठीक है। कृपाकर आप-सब अविलम्ब सुझाव भेजें।

यहाँ पिछले साधारण अंकों की कहानियों पर आयी कुछ सम्मतियाँ दे रहे हैं।

जितेन्द्रकुमार तिवारी (बिलासपुर)

मैंने 'कहानी' का अप्रैल-अंक देखा। पढ़ा। बड़ा अच्छा लगा। इसके लिए धन्यवाद स्वीकार कीजिएगा

इस अंक की 'अनावश्यक पात्र', 'एक लड़की की कहानी' और 'बड़ी बहू' कहानियाँ बड़ी अच्छी लगीं। लेखकों को बधाई है। 'मजनूँ की खोज' के अन्तिम भाग में कुछ पकड़ नहीं रह जाती, इसलिए कहानी सफल नहीं हो पायी। नये लेखकों के बारे में अभी कुछ कहना ठीक नहीं। उनका भविष्य उज्ज्वल हो, यही हमारी हार्दिक मनोकामना है। कुल मिलाकर छै आना अखरा नहीं, लगा कि ब्याज समेत वसूल हो गया।

ललितकुमार शर्मा 'ललित' (कलकत्ता)

'कहानी' का मार्च-अंक देखा। सुन्दर तो है ही, साथ ही ठोसपन लिये हुए भी। कहना पड़ेगा कि आपने मन्नू भण्डारी की कहानी 'मैं हार गयी' प्रकाशित कर हिन्दी लेखकों तथा पाठकों को एक नयी प्रतिभा-सम्पन्न लेखिका का अलौकिक चमत्कार दिखाया है। निश्चय ही कहानी इतनी सुन्दर है कि बस चकित रह गया। मैं इस कहानी को यशपाल की कहानी 'प्रेत लीला' के टक्कर की समझता हूँ। जिस तरह उन्होंने अपनी कहानी में एक बिलकुल नये तरीके से व्यंग किया है तथा कहने का भी नया ढंग निकाला है, वही 'मैं हार गयी' में परिलक्षित होता है

वैसे मैं अभी तक तीन ही कहानियाँ पढ़ पाया हूँ। छेदीलाल गुप्त की 'एक रात' सुन्दर कहानी है। इस्मत चुगताई की कहानी 'पंखड़ियाँ' तो सुन्दर है ही।

ललित किशोर (पटना)

'कहानी' के मार्च अंक में प्रकाशित तेरह कहानियों पर एक सरसरी नज़र डालने पर पता चल जाता है कि हिन्दी और हिन्दीतर कथा-साहित्य के शिल्पी कितनी तेज़ी से अपने रास्ते पर बढ़े जा रहे हैं। भाषा और रहन-सहन में विभिन्नता रहने पर भी विचारों में कितनी समानता है। इस जर्जर व्यवस्था और शोषण के फैले हुए जाल को तोड़ फेंकने का जब एकमत निश्चित हो गया है, तो जागरण की नयी किरण आने में अब बहुत देर नहीं है।

नारायण गंगोपाध्याय की कहानी 'जन्मान्तर' अपने अन्त के साथ ही पाठकों के हृदय में बहुत गहराई तक उतर जाती है। जन्म से अभिशप्त, जीवन से सन्तप्त उस अपाहिज गुण्डे और क़ातिल, खूनी की सो गयी मानवता भी जाग उठी, परन्तु उसका परिणाम वही हुआ, जो एक सच्चे इन्सान बनने की कोशिश में होता है।

शेखर जोशी की दृष्टि नयी है और वह बहुत दूर तक देखती है। मैं हृदय से इनकी उन्नति और सफलता चाहता हूँ।

'चाँदी के हाथ' का कथानक नया नहीं है, परन्तु उसकी अभिव्यक्ति बिलकुल नयी है और लाजवाब है।

सत्यपाल आनन्द की कहानी 'पेन्टर बावरी' मुझे बेहद पसन्द आयी। विशेषतः इसका अन्त तो इतना नाटकीय और प्रभावशाली है कि सदा के लिए हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ देता है।

बहन मन्नू भण्डारी को एक पत्र मैं अलग से लिख रहा हूँ।

खलील-जिब्रान और इस्मत चग़ताई तो जाने-माने शिल्पी हैं, उनके विषय में क्या कहा जाय। फिर भी 'विद्रोही आत्माएँ' जैसी कहानियाँ किसी एक भाषा की ही नहीं, वरन संसार की समस्त भाषाओं के लिए अनमोल निधि हैं, वे हमेशा अमर रहेंगी।

'पंखुड़ियाँ' नये चीन की प्रगति और हँसती-मुस्कराती मानवता की बहुत प्यारी झलक है। त्रस्त और भूखी-नंगी मानवता एक नयी करवट बदलकर जब मुस्कराती है, तो ऐसा लगता है, मानो सूर्य की नयी रश्मियाँ अपने साथ-साथ जन-जागरण के मधुर और संगीत-भरे स्वर धरती के आँगन में बिखेर रही हैं।

इन्द्र जोशी से मुझे यही कहना है कि दीवारें केवल उन्हीं से नहीं कहतीं, बल्कि ज़िन्दगी के दायरे में साँस लेने-वाले प्रत्येक इन्सान से दीवारें इस घुटन और ज़लील ज़िन्दगी के विषय में कहती हैं कि सब-कुछ देख-सुनकर उनकी हिम्मत पस्त हो गयी है और गिरकर वह सदा के लिए इस घुटन को मिटा देना चाहती हैं, पर इन्सान भी कैसा है, जो सब-कुछ सहता है और चुपचाप रहता है!

लेकिन इन्सान अगर चुप रहता, तो इन्द्रजोशी से हम परिचित कैसे होते? इन्सान भीतर-ही-भीतर उबल रहा है, और वह दिन अब बहुत दूर नहीं है, जब अन्तर की यह उबलती ज्वालामुखी बाहर फूट निकलेगी और तमाम विषम-ताओं और गन्दगी को जलाकर खाक कर देगी। उसी राख से उस नयी दुनिया का निर्माण होगा, जिसमें मानवता खिलखिला कर हँसेगी।

'कहानी' का मार्च अंक अब तक प्रकाशित अंकों में सर्वश्रेष्ठ रहा। आपसे अनुरोध है कि निकट भविष्य में ऐसी ही कहानियाँ देकर तेजी से आगे बढ़नेवाले शिल्पियों के कारवाँ को और भी सशक्त बनाने की कृपा करें।

जयमंगल प्रसाद (हजारीबाग)

आपकी 'कहानी' का मार्च १९५९ का अंक देखा। मन्नू भण्डारी की 'मैं हार गयी' कहानी पढ़ी। प्रारम्भ का ढंग सुन्दर, शैली एवं कथानाक भी आकर्षक लगा। किन्तु कहानी के माध्यम से भण्डारीजी ने जो तर्क प्रस्तुत कर राजनीतिक नेताओं के प्रति कटाक्ष किये हैं एवं उनके प्रति घृणा के भाव पाठकों के हृदय में उत्पन्न किये हैं, वे निष्पक्ष नहीं। मैं सिर्फ भण्डारीजी को ही दोषी नहीं ठहराता, बल्कि नेताओं के प्रति साधारणतः ऐसी भावना बहुतों की है। सिर्फ कहानियों में ही नहीं, किन्तु सभी स्थानों में नेताओं की चर्चा जब चल पड़ती है, तो लोग इसी तरह के विचार प्रगट करते पाये जाते हैं।

लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि एक ही बात हमेशा ठीक होती है। दूसरा पक्ष देखने से ही निष्पक्ष निर्णय किया जा सकता है।

कृष्णमुरारी पहारिया (इलाहाबाद युनिवर्सिटी)

मैं बाँदा में पैदा हुआ और १७ साल तक वहीं खेला-कूदा और पढ़ा-बढ़ा। वहाँ केदार बाबू के सम्पर्क में आकर कुछ थोड़ा-बहुत साहित्य पढ़ा, कविताएँ भी लिखीं, लेकिन कहानी पढ़ने में कोई रुचि न थी। कभी प्रेमचन्दजी की 'मानसरोवर' की कहानियाँ पढ़ी थीं। उन्हें छोड़ कुछ और न पढ़ सका, क्योंकि मिली भी नहीं। इधर-उधर पत्रों में कहानियाँ पढ़ता, तो ४-६ पंक्तियाँ पढ़कर ऊब जाता। पूरी पढ़ जाता, तो सोचता, मेरा समय व्यर्थ नष्ट हुआ।

एक बार बाबू ओमशंकर खरे ने 'कहानी' पत्रिका के विषय में बताया कि उसमें अच्छी कहानियाँ निकलती हैं। लेकिन पढ़ने को कोई प्रति न मिल सकी और मैं सोचता रह गया।

यहाँ हास्टल लाइब्रेरी में बैठे-बैठे एक बार ओम शंकरजी की बातों का ध्यान आया और पहली बार 'कहानी' का अंक खोला। तब से तो आज तक एक भी 'कहानी' की कहानी नहीं छूटी।

रामचन्द्र सिन्हा (आगरा)

'कहानी' के अप्रैल-अंक में दो कहानियाँ मुझे बहुत अच्छी लगीं। पहली कहानी 'भालू' है और दूसरी 'सब-एकाउन्टेन्ट'। 'भालू' पढ़कर तो मैं मुग्ध हो गया। हाजरा मसरूर की भाषा इतनी जानदार है कि हर फिकरे पर वाह-वाह निकलती है। कथा के पात्रो और उसके वातावरण का हाजरा को गहरा अनुभव है। यही कारण है कि यह कहानी हर दृष्टि से सफल उतरी है। और अन्त तो और भी सफल है। 'भालू' की स्त्रियोचित कामना कितनी स्वाभाविक है!

'सब-एकाउन्टेन्ट' मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सफल कहानी है। यथार्थ चरित्र-चित्रण ही इस कहानी की सफलता का मूल है। 'सब-एकाउन्टेन्ट' के वर्ग के लोग सच ही इतनी मोटी चमड़ीवाले होते हैं, तरक्की...तरक्की...चीखते ही ये मरते हैं।

'मरियल' कहानी भी अच्छी है। लेकिन इसका अन्त सुस्पष्ट नहीं है। मेरा ख्याल है, इसे स्पष्ट करना चाहिए था।

अनूदित कहानियाँ तो अच्छी होती ही हैं, उनके बारे में क्या लिखूँ!

'कहानी' को धन्यवाद, जो हमें इतनी अच्छी और स्वस्थ कहानियाँ पढ़ने को देती है।

सरोज काबरा (कागजनगर)

'कहानी' के लिए आपको धन्यवाद दूँ, क्योंकि इसकी कहानियाँ ऐसी होती हैं, जो मन को छूती हैं।

'कहानी' निकालकर आपने मुझे प्रकाश दिया है, मेरी बहुत दिनों की इच्छा पूर्ण की है। आशा है, भविष्य में भी उच्च, पवित्र कहानियाँ ही प्रकाशित करेंगे, जिनमें कोई ध्येय हो, पुकार हो, ठोस भावना हो। आज हमारे समाज को ऐसी ही कहानियों की आवश्यकता है। आप 'कहानी' की कहानियों-द्वारा समाज को सही रास्ता दिखा रहे हैं।

ललित किशोर (पटना)

'कहानी' का अप्रैल १९५६ का अंक अभी-अभी समाप्त करके उठा हूँ। स्वस्थ और सुरुचिपूर्ण विभिन्न भाषाओं की कहानियाँ एक सूत्र में पिरोकर निखार के साथ प्रत्येक मास सामने लाने का आपका प्रयास वास्तव में अभिनन्दनीय है।

'सियावर' और 'बड़ी बहू' अच्छी कहानियाँ हैं। कई अंकों के बाद अप्रैल अंक में आपने एक हास्य कहानी अ० वा० वर्ती की दी है।

इतना कहना अवश्य चाहूँगा कि कहानी के प्रत्येक अंक के साथ जीवन के अभिशापों और संघर्षों के बीच जन्म लेकर पनपने और जिन्दा रहनेवाले कुछ ऐसे पात्रों से परिचय होता है, जो समाज की घुटन से हमें परिचित करा देते हैं और तब अनायास ही जन्म से अभिशप्त जीवन से सन्तप्त उन अभागे पात्रों के लिए मन में सहानुभूति उमड़ आती है। और फिर तब खोखले समाज के ऐसे अनुचित बन्धनों और इस व्यवस्था के प्रति असन्तोष से मन भर उठता है।

'भालू' के साथ 'एक लड़की की कहानी' की नायिका की धुँधली तस्वीरों में आँखें उलझकर रह जाती हैं।

इस समय हिन्दी में अच्छी और स्वस्थ कहानियाँ दे सकनेवाली पत्रिकाओं का अभाव है, और 'कहानी' इस अभाव को पूरा कर रही है।

मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

पुस्तकालय

पुस्तकों का चुनाव

सुदामा सिंह

किसी भी पुस्तकालय के कर्मचारियों के सामने अनेक जटिल समस्याएं उपस्थित होती हैं, जिनमें पुस्तकों का चुनाव प्रमुख स्थान रखता है। एक बड़े पुस्तकालय की अपेक्षा एक छोटे पुस्तकालय में पुस्तकों के चुनाव की ओर विशेष ध्यान दने की आवश्यकता है। साधनों के अभाव के कारण हमारे देश के पुस्तकालयों में पुस्तकों के चुनाव की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता है। किसी सिलसिले के बिना पुस्तकालय में पुस्तकों को भर देने से पुस्तकालय की शोभा-मात्र बढ़ती है, उन्हें पढ़ने वाले कम ही रहते हैं। इससे पुस्तकालय का धन तो नष्ट होता ही है, साथ-साथ पुस्तकालय की ख्याति भी कम हो जाती है। पुस्तकों के चुनाव का मुख्य लक्ष्य अधिक-से-अधिक पाठकों के लिए कम-से-कम मूल्य पर ज्यादा-से-ज़्यादा अच्छी पुस्तकों का संकलन है।

अब यह देखना है कि पुस्तकों के चुनाव की समस्या उपस्थित ही क्यों होती है? इसके अनेक कारण हैं, जिनका उल्लेख नीचे किया जाता है :

(क) धन का अभाव—किसी भी संस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए यथेष्ट धन की आवश्यकता होती है। अगर किसी पुस्तकालय के पास इतना धन हो कि वह 'काक्सटन' के द्वारा प्रकाशित की गयी प्रथम पुस्तक से लेकर आज तक की सभी पुस्तकें खरीद सके, तो पुस्तकों के चुनाव की समस्या उपस्थित ही नहीं होगी। परन्तु ऐसी बात नहीं है। धन का अभाव सर्वत्र है। अतः किसी भी पुस्तकालय को थोड़े धन से ही उसपर होनेवाली सभी मांगों की पूर्ति करनी है। यह कुशल पुस्तकालयाध्यक्ष-द्वारा कुशलतापूर्वक पुस्तकों के चुनाव से ही संभव है।

(ख) अधिक संख्या में पुस्तकों का प्रकाशन—आज का युग पुस्तकों का है। प्रायः हजारों पुस्तकें प्रति वर्ष प्रकाशित होती हैं। सभी पुस्तकें खरीदनी किसी भी पुस्तकालय की शक्ति के बाहर की बात है। अतः पुस्तकालयों को अपनी सीमित शक्ति से ही प्रति वर्ष प्रकाशित होनेवाली सभी पुस्तकों का प्रतिनिधित्व करना है, जो कि पुस्तकों के कुशलतापूर्वक चुनाव पर ही अवलम्बित है।

(ग) एक ही विषय पर अनेक पुस्तकों का प्रकाशन—हजारों पुस्तकों के साथ-साथ आज एक ही विषय पर प्रति वर्ष अनेक पुस्तकें प्रकाशित होने लगी हैं। इनमें अच्छी पुस्तकें रखनी ही पुस्तकालय के लिए हितकर है। इसके लिए पुस्तकों के चुनाव की आवश्यकता पड़ती है।

(घ) चित्त को चंचल करनेवाले साहित्य की सृष्टि—आजकल युवकों के चित्त को चंचल करनेवाले यौन साहित्य की सृष्टि तेजी से होने लगी है। हमारे देश के उपन्यासों का कथानक भी अधिकांशतः श्रृंगार प्रधान रहता है। मोपासां के कथानकों की नकल करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इस परिस्थिति में अगर पुस्तकों के चुनाव में सावधानी से काम नहीं लिया गया, तो पुस्तकालय जितने लाभदायक हो सकते हैं, उतने ही हानिकारक भी। पुस्तकालय का एक प्रधान काम जनता की रुचि को परिमार्जित करना है, जो अधिक मात्रा में पुस्तकों के चुनाव पर ही अवलम्बित है।

(ङ) पाठकों की भिन्न-भिन्न रुचि—पुस्तकालय में एक ही रुचि के पाठक नहीं आते हैं। प्रत्येक पाठक की रुचि भिन्न-भिन्न होती है। अतः पाठकों-द्वारा भिन्न-भिन्न विषयों की पुस्तकों की मांग होती है। इसकी पूर्ति पुस्तकों के सफलतापूर्वक चुनाव पर अवलम्बित है।

(च) पुस्तकों की बनावट—किताब लिखते समय कुछ लेखकों का ध्यान धन कमाने की ओर विशेष रहता है। यही बात प्रकाशकों के साथ भी है। यही कारण है कि आज बाजार में ऐसी पुस्तकें आ गयी हैं, जिनकी जिन्दगी बहुत थोड़ी है। कागज, छपाई, जिल्दसाजी इत्यादि पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा है। खासकर उपन्यासों और टेक्स्ट बुक की नोट की किताबों के लिए यह बात अधिक लागू होती है। मेरा विचार तो यह है कि ऐसी पुस्तकें पुस्तकालय में रखनी ही नहीं चाहिएँ। पुस्तकों के चुनाव के समय पुस्तकों के रूप पर भी ध्यान रखने की आवश्यकता है।

सिद्धान्त—पुस्तकों के चुनाव में तीन बातों पर सबसे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है—(१) पाठक, (२) पुस्तक और (३) आर्थिक अवस्था।

(१) पाठकों के बिना पुस्तकालय की कल्पना ही नहीं की जा सकती। पुस्तकालय के कर्मचारियों को इस बात की ओर दृष्टि रखनी होगी कि किस तरह के पाठक पुस्तकालय से लाभ उठाने आते हैं, उनकी मांग क्या है, वे मनोविनोद के लिए आते हैं या उपयोगी विषयों का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। पुस्तकालयाध्यक्ष को पाठकों की रुचि को परिमार्जित करने के साथ-साथ उनकी मांगों की पूर्ति की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(२) पुस्तक पुस्तकालय की आत्मा है। पुस्तकालय की ख्याति अच्छी पुस्तकों के संग्रह पर निर्भर है। पुस्तकों का चुनाव समय, परिस्थिति, स्थान तथा पाठकों की रुचि को ध्यान में रखकर ही करना चाहिए। ऐसा करने से पुस्तकों का व्यवहार अधिक-से-अधिक होगा और पुस्तकों के चुनाव की सफलता भी इसी में है।

(३) पुस्तकालय बराबर बढ़नेवाली संस्था है। पुस्तकों और पाठकों के बढ़ने के साथ-साथ धन की वृद्धि भी आवश्यक है। पुस्तक खरीदते समय स्थानीय रुचि पर ध्यान देना होगा। जिस विषय की पुस्तकों की मांग अधिक हो, उसी विषय की पुस्तकें खरीदने में अधिक धन लगाना चाहिए।

आस-पास के पुस्तकालयों को संगठित करके आपस में पुस्तकों का आदान-प्रदान करने की व्यवस्था से धन की उपयोगिता बढ़ायी जा सकती है। पुस्तकें खरीदने के लिए जो कुछ भी पूंजी प्राप्त हो, उसे एक ही बार नहीं खर्च कर देना चाहिए। ऐसा करने से बाद में प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों से पाठक वंचित रह जाते हैं।

कुछ अनुभवी पुस्तकाध्यक्षों ने अपने अनुभव के आधार पर पुस्तकें चुनने की बात बतायी है। नीचे तालिका दी जाती है, जिसमें बताया गया कि यदि १०० पुस्तकों का पुस्तकालय हो तो किस विषय की कितनी किताबें रखनी चाहिएँ।

जेम्स डफ ब्राउन के अनुसार

विषय	पुस्तकें
साधारण ज्ञान	३
दर्शन	४
धर्म	५
समाज शास्त्र	७
भाषा विज्ञान	४
विज्ञान	६
व्यावहारिक विज्ञान	६
शिल्प और कला	७
साहित्य	२८
इतिहास	८
जीवनी	८
भ्रमणादि	८
	१००

डब्लू डे० साहब के अनुसार

विषय	पुस्तकें
साधारण ज्ञान	२.०
दर्शन	१.६
धर्म	३.२
समाज शास्त्र	५.५
भाषा विज्ञान	१.२

विज्ञान	५.५
व्यावहारिक विज्ञान	५.७
शिल्प और कला	७.६
साहित्य	१४.२
इतिहास, जीवनी, भ्रमण	१६.२
उपन्यास	३४.०
	१००

ऊपर की तालिका कोई कानून नहीं है। बल्कि इसको आधार मानकर पुस्तकों का चुनाव करना अच्छा होगा।

पाठकों की मांग—पूंजी के अनुसार पाठकों की मांग का ध्यान रखते हुए पुस्तकों का चुनाव करना ठीक है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि पाठकों की मांग को पुस्तकालय के कर्मचारी कैसे जान सकते हैं? इसके लिए पुस्तकालयों को भिन्न-भिन्न विभागों तथा कागज-पत्रों पर निर्भर करना पड़ता है।

पूछ-ताछ-गृह, पुस्तकों के आदान-प्रदान करने के निर्देशक-गृह इत्यादि विभाग ऐसे हैं, जहाँ पाठक कर्मचारियों के सम्पर्क में आते रहते हैं। इस तरह कर्मचारियों को पाठकों की रुचि मालूम होती रहती है। इन विभागों में काम करने वाले कर्मचारियों को चाहिए कि वे पाठकों की मांगों की तालिका तैयार करते रहें और पुस्तकों के चुनाव के समय उसका ध्यान रखें। पुस्तकों के आदान-प्रदान करने की पुस्तिका, पाठकों को सलाह देने की पुस्तिका, मांग-पत्र इत्यादि पुस्तकालय में ऐसे साधन हैं जिनसे पाठकों की मांग की जानकारी होती रहती है। पुस्तकों के चुनाव के अवसर पर इनका ध्यान रखना भी जरूरी है।

पाठकों की मांगों की जानकारी प्राप्त करने का दूसरा तरीका सामाजिक सर्वेक्षण है। यदि पुस्तकालय का क्षेत्र छोटा हो तो प्रत्येक घर पर जाकर पाठकों की मांगों की तालिका तैयार की जा सकती है। परन्तु बड़े क्षेत्रों में यह काम सम्भव नहीं है। वहाँ समाज की भिन्न-भिन्न संस्थाओं के सम्पर्क में जाकर परोक्ष रूप से पाठकों की रुचि जानी जा सकती है।

पुस्तकें चुनने के साधन—यूरोप तथा अमेरिका आदि में पुस्तकें चुनने के अनेक साधन मौजूद हैं। अनेक पुस्तक-कोष निकलते रहते हैं। बड़े-बड़े "कैटलाग" निकलते हैं, जिनकी सहायता से पुस्तकों का चुनाव सहज में हो जाता है। लेकिन हमारे देश में ऐसा कोई भी साधन नहीं है। प्रकाशकों-द्वारा जो सूची-पत्र निकलते हैं, वे अधूरे रहते हैं। उनमें पुस्तकों के नामों का संग्रह अटकलबाजी से किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि पुस्तकालय के संचालकों को सूची बनाने में काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। "कुमुलेटिव बुक लिस्ट", "कुमुलेटिव बुक इनडेक्स", "इंगलिश कैटलाग" इत्यादि यूरोप तथा अमेरिका से प्रकाशित होनेवाले ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनमें केवल पुस्तकों की सूची ही नहीं रहती बल्कि प्रत्येक पुस्तक पर तुलनात्मक टिप्पणी भी रहती है, जिससे पुस्तकें चुनने में काफी सहायता मिलती है। ऐसी बात हमारे देश की सूची के साथ नहीं है। हमारे देश में प्रकाशित होनेवाले सूची-पत्रों में केवल पुस्तकों के नाम, प्रकाशकों के नाम तथा मूल्य दिये रहते हैं। टिप्पणी के अभाव में एक पुस्तक की दूसरी पुस्तक से तुलना करना असम्भव हो जाता है और इस तरह पुस्तकों के चुनाव में काफी कठिनाई होती। साधन के अभाव के कारण हमको तो इन्हीं अधूरे सूची-पत्रों पर भरोसा करना है। उत्तम उपाय यही है कि सभी प्रकाशकों के सूची-पत्र मंगाये जायं और उनके आधार पर विषय के अनुसार ताकिका बनाकर पुस्तकें खरीदी जायं।

प्रकाशित होनेवाली नयी पुस्तकों पर भी पुस्तकाध्यक्ष की दृष्टि बराबर रहनी चाहिए और उसकी उपयोगिता देखकर उन्हें यथाशीघ्र खरीद लेना चाहिए। पुस्तकालय को आधुनिकतम बनाने की बात ध्यान में रखना पुस्तकाध्यक्ष का सबसे बड़ा कर्तव्य है।

('पुस्तकालय' से)

जून १९५६

वर्ष ३ * अंक ६

(शेष अगले पृष्ठ पर)

वार्षिक : साढ़े पाँच रुपये

सम्पादक—श्रीपतराय : भैरवप्रसादगुप्त

सम्पादकीय नियम

१—'कहानी' में केवल कहानियाँ छपती हैं। कविताएँ, लेख आदि कृपया न भेजें।

२—जो रचना प्रकाशित हो चुकी है या प्रकाशनार्थ भेजी जा चुकी है उसे कहानी के लिए न भेजिए।

३—'कहानी' के लिए सुवाच्य लिखावट में कागज के सिर्फ एक ओर पंक्तियों में काफी फासला देकर लिखी हुई रचनाएँ भेजिए और अपनी रचना की प्रतिलिपि अवश्य रख लीजिए।

४—अनूदित कहानियों के साथ मूल रचना और मूल लेखक के नाम भी अवश्य भेजिए।

५—स्वीकृत रचना की ही सूचना सम्पादक द्वारा दी जाती है।

६—सम्पादक सम्बन्धी सारा पत्र-व्यवहार सम्पादक 'कहानी' के नाम से करना चाहिए।

व्यवस्थापकीय नियम

१—'कहानी' प्रति मास की पहली तारीख को प्रकाशित होती है।

२—एक प्रति का मूल्य छः आना और सालाना चंदा विशेषांकों के साथ साढ़े पाँच रुपये है। तिमाही और छमाही ग्राहक नहीं बनाये जाते।

३—वी० पी० भेजने में अधिक खर्च पड़ता है, इसलिए वी० पी० नहीं भेजी जाती। ग्राहक बननेवालों को साढ़े पाँच रुपये चन्दा मनीआर्डर से भेजना चाहिये।

४—नमूने के लिए छः आने का डाक टिकट भेजिए, नमूना मुफ्त नहीं भेजा जाता।

५—कार्यालय से सभी प्रतियाँ अच्छी तरह जाँच-पड़ताल करके भेजी जाती हैं। यदि १० तारीख तक प्रति न मिले तो डाकखाने में पूछ-ताँछ करके डाकखाने के अधिकारी का लिखित जवाब 'कहानी' कार्यालय को भेजना चाहिए।

६—पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए। बिना ग्राहक-नम्बर लिखे जवाब देने या कार्यवाही में देर हो सकती है और यह भी सम्भव है कि कोई कार्यवाही न की जा सके।

७—अगर आप एक साथ पाँच ग्राहकों का सालाना चन्दा साढ़े सत्ताइस रुपए मनिआर्डर से भेज दें, तो साल भर तक आप को 'कहानी' तथा विशेषांक बिना मूल्य मिलेगा।

८—व्यवस्था-सम्बंधी सारा पत्र-व्यवहार व्यवस्थापक 'कहानी' के ही नाम से कीजिये।

व्यवस्थापक, 'कहानी' कार्यालय,

सरस्वती प्रेस, सरदार पटेल मार्ग, पो० बा० नं० २४, इलाहाबाद—१

'कहानी' की बात

यह अंक

इस अङ्क में सात हिन्दी की, चार प्रादेशिक भाषाओं की कहानियों के साथ एक बघेली लोक-कथा तथा पाँच चीनी लघुकथायें हैं।

पहली कहानी 'पंच प्रिया पांचाली' के सुविख्यात बङ्गला हास्य-कथाकार परशुराम से कोई भी कथाप्रेमी अपरिचित न होगा। पहले भी 'कहानी' में इनकी दो कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं और इनका विस्तृत परिचय दिया जा चुका है। हाँ, चित्र पहली बार छप रहा है। लेकिन इनका यह रेखाचित्र युवावस्था का है, बहुत प्रयत्न करने पर भी इनका नया चित्र हम प्राप्त नहीं कर सके।

'मुंशीजी का तोता' के लेखक रामप्रताप बहादुर भी आपके सुपरिचित कथाकार हैं। महीनों बाद इन्होंने यह कहानी लिखी है। आशा है, इनकी पिछली कहानियों की तरह यह कहानी भी आपको खूब पसन्द आयगी।

सरस्वती प्रेस, सरदार पटेल मार्ग, इलाहाबाद

क्षेत्रीय कार्यालय:

सरस्वती प्रेस	बिहार प्रकाशन गृह	सरस्वती प्रेस बुकडिपो	सरस्वती प्रेस बुकडिपो
पोस्ट बाक्स—२२	खजांची रोड	३७८८, फैज़ बाज़ार	अमीनुद्दौला पार्क
बनारस—१	पटना—४	दिल्ली—७	लखनऊ

सुरिन्दर सिंह नरुला पंजाबी के सुप्रसिद्ध कहानीकार हैं। 'छम्मो की बैठक' इनकी मशहूर कहानियों में से एक है।

'सिकन्दर' के सुप्रसिद्ध लेखक राधाकृष्ण भी आपके परिचित कथाकार हैं। इसके हास्य और व्यंग को आप अवश्य सराहेंगे।

गुजराती के विख्यात कथाकार धूमकेतु से भी आप परिचित हैं। 'मैया ददा' कहानी आपको अवश्य द्रवित करेगी।

सुखबीर बलबीर सिंह का ही दूसरा नाम है। इनकी कहानी 'रात बीत रही है' की याद आपको अवश्य होगी। 'फूल खिलता है' की काव्यमयी शैली आपको मुग्ध किये बिना न छोड़ेगी।

'अभिनेता' कहानी के लेखक अज़ीज़ असरी उर्दू में अभी नये-ही-नये आये हैं। लेकिन इनकी इस कहानी की प्रौढ़ता में कोई भी सन्देह नहीं। यह एक सच्चे अभिनेता की कहानी है, जिसका हृदयद्रावक अन्त हमें हिला देता है।

कीर्ति चौधरी की कविताएँ आपने इधर पत्र-पत्रिकाओं में अवश्य पढ़ी होंगी। 'प्रतियोगिता' कहानी कदाचित इनके प्रथम प्रयासों में से है। यह हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवयत्री सुमित्राकुमारी सिन्हा की पुत्री हैं।

'सिकन्दर' की तरह 'आलू' भी एक गल्पिका ही है। नारायणदत्त श्रीमाली का व्यंग आपको चमत्कृत करेगा।

ठाकुर पुँछी की एक कहानी आप पहले भी पढ़ चुके हैं। 'झाँझरा दा छनकार' पहाड़ों की एक गूँज है।

'तुम्हें गङ्गा मैया की सौगन्ध' के लेखक सुधीन्द्र गेमावत ला फाइनल के विद्यार्थी हैं। आयु २१ वर्ष। पिछले वर्ष ही इन्होंने पहली कहानी लिखी, जिसपर जयपुर के दैनिक 'नवयुग' की प्रतियोगिना में पुरस्कार मिला था।

'तीन सूरदास' एक मनोरंजक बघेली लोककथा है।

फेंग-सू-फेंग सुप्रसिद्ध चीनी कलाकार हैं। इनकी गल्पिकाएँ बहुत ही लोकप्रिय हैं।

उपन्यास

'उपन्यास' का पहला अंक प्रेस में चला गया है। पन्द्रह जून के पहले ही यह अंक प्रकाश में आ जायगा, ऐसी आशा है। इसका आवरण भी कमल बोस ही बना रहे हैं। स्मरण रहे कि 'उपन्यास' का रियायती वार्षिक मूल्य ८) पन्द्रह जून तक ही स्वीकार किया जायगा। अभी तक आपने इस रियायत से लाभ न उठाया हो, तो शीघ्रता कीजिए।

'उपन्यास' के दूसरे अंक में उर्दू के अमर कथाकार सआदत हसन मन्टो का उपन्यास प्रकाशित होगा। मन्टो ने अपने जीवन में सैकड़ों कहानियाँ लिखीं, लेकिन उपन्यास के नाम पर उनकी यही एक अमर कृति है।

आजकल पंच पाण्डव बड़ी अशान्ति में हैं। इन्द्रप्रस्थ का ऐश्वर्य त्याग कर बारह साल बनवास और एक साल अज्ञातवास भोगना है, इसलिए नहीं; और इसलिए भी नहीं कि यह समय बीत जाने के बाद भी दुर्योधन सम्भवतः राज्य वापस देने के लिए राज़ी न हो और तब उन्हें कौरवों से लड़ने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। इस अशान्ति का मूल कारण पांचाली का व्यवहार है। आज एक महीने से उसने अपने पतियों से वार्तालाप करना बन्द कर रखा है।

राज्य-त्याग करने के पश्चात् पाण्डव पहले काम्यक वन में रहे। आजकल द्वैतवन में नदी-किनारे आश्रम बनाकर रह रहे हैं। इनके साथ पुरोहित धौम्य, सारथी इन्द्रसेन और कितनी ही दास-दासियाँ हैं। इनके अलावा द्रौपदी की सहचरी धात्री-कन्या सेवन्ती भी है। द्रौपदी के मत्थे काफी कार्य हैं, इतनी बड़ी गृहस्थी उसे चलानी पड़ती है। भगवान् सूर्य की कृपा से उन्हें ताँबे की जो हँडिया मिली है, उसकी सहायता से रसोई बनाना सहज हो गया है। द्रौपदी के भोजन न करने तक उसमें स्वयं ही भोजन बनता जाता है, चाहे हजार व्यक्ति क्यों न पेट-भर खा लें। एक गृहिणी के सारे कार्य द्रौपदी करती है, बस, अपने पतियों से बातचीत नहीं करती। किसी चीज़ का अभाव होने पर वह सेवन्ती से संदेश भिजवा देती है।

पाण्डवों को बनवास के चार माह हो चुके हैं। युधिष्ठिर आनन्द से दिन काट रहे थे, मानो वह आजीवन बनवास के अभ्यस्त हों। भीम को पहले कुछ दिक्कतें हुई थीं, लेकिन बाद में वह भी शिकार खेलने में रम गये। अर्जुन, नकुल और सहदेव भी राज्य खोने के दुःख को बिसरा चुके थे। लेकिन आजकल द्रौपदी के इस व्यवहार से पंच पाण्डव उद्विग्न हो गये हैं।

द्यूत-सभा में हुए अपमान और राज्य खोने के दुःख को द्रौपदी किसी भी प्रकार भुला नहीं पा रही है। अक्सर उलाहना-भरे शब्दों में रोष प्रगट करती है कि ज्येष्ठ पति की निर्बुद्धिता और दूसरे पतियों की अकर्मण्यता के कारण ही आज उन्हें यह दुःख झेलना पड़ रहा है। यद्यपि युधिष्ठिर ने द्रौपदी को शान्त करने के सभी प्रयत्न किये हैं; भीम ने इस बात का आश्वासन दिया है कि वह दुःशासन का रक्त-पान अवश्य करेंगे और दुर्योधन का जंघा भी भंग किये बिना नहीं रहेंगे; नकुल, अर्जुन और सहदेव ने भी कहा है कि तेरह वर्ष देखते-देखते बीत जायेंगे, फिर उसके बाद हमारे दिन लौटेंगे; लेकिन इन आश्वासनों से कुछ लाभ नहीं हो रहा है। द्रौपदी अपने रोष को सँभाल नहीं पा रही है। फलस्वरूप उसने अपने पतियों से सम्भाषण करना बन्द कर दिया है।

(२)

द्वैतवन से द्वारिका काफी दूर है। फिर भी कभी-कभी रथ पर चढ़कर कृष्ण पाण्डवों से मिलने आते हैं। दो-एक बार सत्यभामा भी साथ आ चुकी है। इस बार वह अकेले

आये हैं। युधिष्ठिर के मुँह से सारी कहानी सुनकर वह द्रौपदी के प्रकोष्ठ में आये।

कृष्ण पाण्डवों के ममेरे भाई तथा अर्जुन के समवयस्क हैं। उन दिनों बहू या भाभी नामक कोई सम्बोधन था या नहीं, पता नहीं चलता। रहने पर भी एक बाधा थी, क्योंकि रिश्ते में वह द्रौपदी के भसुर भी थे और देवर भी। द्रौपदी का प्रकृत नाम कृष्णा है, अर्थात् कृष्ण का उसके साथ सखी-सम्बन्ध था। दोनों एक-दूसरे का नाम लेकर पुकारते थे।

अभिवादन और कुशल के पश्चात् कृष्ण ने हँसते हुए कहा—सखी कृष्णा, तुम्हारा यह चन्द्रवदन रसोई की हँडिया की तरह क्यों दिखायी दे रहा है?

द्रौपदी—कृष्ण, हर वक्त मजाक अच्छा नहीं लगता।

कृष्ण ने कहा—समझ नहीं पा रहा हूँ कि तुम्हें दुःख किस बात का है? अगर पाण्डव तुम्हारे किसी अभाव को दूर नहीं कर पा रहे हैं, तो मुझसे क्यों नहीं कहती? सुन्दर वस्त्र, रत्नाभरण चाहती हो? सुगन्ध या शृङ्गार की वस्तुएँ चाहती हो? यहाँ तो कदाचित अन्न दुर्लभ है। मृगया से प्राप्त मांस और वन्य फल-फूल और शाकादि खाना पड़ता होगा; इससे अरुचि होना स्वाभाविक है, इस कारण चित्त भी अप्रसन्न हो सकता है। क्या यव, गोधूम और तण्डु आदि चाहती हो? दुग्धवती धेनु चाहती हो? घृत, तेल, गुड़, लवण, हरिद्रा, आर्द्रक आदि चाहती हो? दस-बीस कलश उत्तम आसव भेज दूँ? पैष्ठी, माध्वी और गौड़ी मदिरा, मैरेय और द्राक्षेय मद्य आदि द्वारिका में प्रचुर मात्रा में प्राप्य हैं। यहाँ कदाचित तालरस (ताड़ी) के अतिरिक्त तुम लोगों को कुछ नहीं मिलता।

द्रौपदी ने हाथ हिलाकर कहा—यह-सब कुछ नहीं चाहिए। माधव, तुम तो महापण्डित हो, लोग तुम्हें सर्वज्ञ कहते हैं। मेरे इस दुर्भाग्य का क्या कारण है, बता सकते हो? मेरी तरह हतभागिनी अन्य कहीं है?

कृष्ण ने कहा—अनगिनत! अगर तुम मेरी किसी भी पत्नी से यह बात पूछो, तो वह स्वयं बतायगी कि वही सर्वाधिक हतभागिनी है, अकेली दग्धकपालिनी हैं। उन लोगों का विश्वास है कि मैं ही उनके समस्त दैहिक, दैविक, भौतिक तथा आध्यात्मिक दुःखों का एक मात्र कारण हूँ। कृष्णा, दुश्चिन्ता को दूर करो। विधाता विश्वत्राता मंगलदाता करुणामय...

—तुम विधाता के चाटुकार हो, उनकी निष्ठुरता देखकर भी नहीं देखते। केवल उनकी करुणा देखते हो।

—याज्ञसेनी, तुम अपने दुःखों के बारे में ही चिन्ता क्यों करती रहती हो? अपने सौभाग्य के विषय में भी तो सोचो! तुम इन्द्रप्रस्थ की राजमहिषी हो, तुम्हारी तरह गौरवमयी नारी और कौन है? तुम्हारी यह दुर्दशा स्थायी नहीं रहेगी, एक दिन अपने स्वपद में तुम अवश्य प्रतिष्ठित होओगी। यज्ञ के अग्नि से तुम्हारी उत्पत्ति हुई है, तुम अपूर्व रूपवती हो, तुम्हारे पिता पांचालराज द्रुपद अभी तक जीवित हैं और तुम्हारे दो महाबली भाई हैं। तुम्हारे पाँच वीर पुत्र अभिमन्यु के साथ द्वारिका-स्थित मेरे भवन में अध्ययन कर रहे हैं। पाँच पुरुष सिंह तुम्हारे पति हैं। चार भसुर और चार देवर हैं।

—इसमें भसुर और देवर कहाँ से आ गये? धृतराष्ट्र के पुत्रों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।

—भसुर और देवर तुम्हारे पास ही हैं, कृष्णा! क्या तुमने यह श्लोक नहीं सुना है:

पतिश्वशुरता ज्येष्ठे पतिदेवरतानुजे।
मध्यमेषु च पांचाल्यास्त्रितयं त्रितयं त्रिषु॥

ज्येष्ठ पाण्डव पांचाली के पति तथा भसुर हैं, कनिष्ठ पाण्डव पति तथा देवर हैं, बीच के तीनों व्यक्ति भसुर और देवर हैं।

—जी हाँ, सुनकर चित्त गद्‌गद हो गया!

—पांचाली, अपने क्रोध का संवरण करो। दोष-शून्य मनुष्य इस संसार में नहीं है। चूँकि युधिष्ठिर स्वभाव के द्यूत-प्रिय और सरल हैं, इसलिए उनकी यह दशा हुई है। वे बड़े अनुतप्त हैं, इसलिए उन्हें अब अधिक क्लेश मत दो। तुम्हारे शेष पति उनके आज्ञाकारी मात्र हैं। अग्रज की इच्छा के विरुद्ध वे कुछ भी करने में असमर्थ हैं, अतएव वे अकर्मण्य हैं, सोचना भूल है।

कृष्ण ने उन्हें नाना प्रकार के प्रबोध-वाक्यों से समझाया, छहों शास्त्रों से भार्या के कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में उपदेश दिये, लेकिन पांचाली का क्षोभ दूर नहीं हुआ।

अन्त में कृष्ण स्मित-भाव से पाण्डवों से विदा लेकर चल पड़े।

(३)

एक बड़े प्रकोष्ठ में पुरोहित धौम्य तथा अन्य ब्राह्मण रहते हैं। कृष्ण के आगमन के कारण वहाँ एक मन्त्रणा-सभा बैठी हुई है। वहाँ पंच पाण्डव मिलकर कृष्ण को बड़े आदर के साथ ले गये।

युधिष्ठिर ने कहा—पूज्यपाद धौम्य और उपस्थित विप्रगण ! आप सभी ध्यान दें। वासुदेव कृष्ण, तुम भी सुनो। कौरव-सभा में हुए अपमान तथा राज्य खोने के कारण पांचाली के चित्त में विकार उत्पन्न हो गया है। अपने पतियों के प्रति उसके हृदय में भयानक विक्षोभ घर कर गया है। आज एक महीने से उसने वार्तालाप बन्द कर रखा है। इस दुस्सह अवस्था का प्रतिकार क्या हो सकता है, इसका निर्णय आप लोग करने की कृपा करें।

धौम्य ने कहा—मैं वेद-पुराण और धर्मशास्त्र के श्लोकों का हवाला देकर पांचाली को पतिव्रता तथा सह-धर्मिणी के कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में उपदेश दे सकता हूँ, पाप का भय भी दिखा सकता हूँ।

कृष्ण ने कहा—द्विजवर ! इससे कुछ नहीं होगा। मैंने सभी शास्त्रों की चटनी बनाकर उसे चखाया, पर कोई लाभ नहीं हुआ।

युधिष्ठिर ने कहा—फिर क्या किया जाय ?

पुरोहित धौम्य के खुल्लतात हौम्य नामक एक तेजस्वी ब्राह्मण ने कहा—पांचाली को विनीत करना कोई कठिन कार्य नहीं है। सच तो यह है कि पाण्डवगण कुछ स्त्रैण हो गये हैं, द्रुपदनन्दिनी को सर पर अधिक चढ़ा लिया है। इसी लिए पंचभ्राता इस कलह से डरने लगे हैं। धर्मराज युधिष्ठिर, मैं एक सुसाध्य उपाय बता रहा हूँ, उसे आज-माइए। पांचाली ही आप लोगों की एक मात्र पत्नी नहीं है। आपकी एक पत्नी और है, राजा शैब्य की कन्या देविका। भीम की तीन अन्य पत्नियाँ हैं, राक्षसी हिडिम्बा, शल्य की बहन काली और काशीराज-कन्या बलन्धरा। अर्जुन की तीन पत्नियाँ हैं, मणिपुर राज-कन्या चित्रांगदा, नागकन्या उलूपी और कृष्ण-भगिनी सुभद्रा। नकुल की एक पत्नी और है, चेदीराज-कन्या करेणुमती। सहदेव की भी एक पत्नी है, जरासन्ध-कन्या, उसका नाम मुझे नहीं मालूम। आप लोग अपनी सभी पत्नियों को यहाँ बुला लें। उन लोगों के आ जाने पर द्रौपदी का सारा अहंकार स्वयं चूर्ण हो जायगा। फिर बहु-पत्नी के साथ आप लोग आराम से दिन यापन करते रहिए।

युधिष्ठिर ने कहा—आपका प्रस्ताव अति गर्हित है। द्रौपदी बहुत मनस्ताप भोग चुकी है। अब और दुःख उसे क्यों दिया जाय ? यह सत्य है कि हम लोगों की और पत्नियाँ हैं, लेकिन उनमें कोई भी सहधर्मिणी या पट्टमहिषी नहीं है। इस समय हम लोग बनवास-व्रत पालन कर रहे हैं, अतएव इसमें पांचाली के अलावा अन्य कोई हमारी संगिनी नहीं बन सकती। कृष्ण, तुम हमारी सभी विपत्तियों में काम आये हो, पांचाली जिससे प्रकृतस्थ हो जाय, इसके लिए कोई उपाय करो।

कुछ देर सोचने के बाद कृष्ण ने कहा—अच्छा, कोई उपाय सोचूँगा। इस समय मुझे विदा दीजिए। यहाँ से पाँच कोस की दूरी पर मेरे मातुल रोहितजी रहते हैं, उनसे भेंट कर शीघ्र वापस आ जाऊँगा।

(४)

रथ पर आरूढ़ होकर कृष्ण ने अपने सारथी दारुक से कहा—यहाँ से कुछ दूर उत्तर दिशा में ज्वलजट ऋषि का आश्रम है। चलो वहीं।

ऋषिजी की आयु पचास के लगभग है। विशाल शरीर, गात्रवर्ण आरक्त गौर, जटा और श्मश्रु अग्नि की नाईं अरुण हैं। कृष्ण का अभिनन्दन करते हुए उन्होंने कहा—जनार्दन, तीन वर्ष पूर्व प्रभास तीर्थ में आपसे मेरी भेंट हुई थी। भाग्यवश आज पुनः हो रही है। कहिए, मैं क्या सेवा कर सकता हूँ ?

कृष्ण ने कहा—तपोधन, मेरे आत्मीय तथा परम प्रीति-भाजन पाण्डवगण राज्यच्युत होकर द्वैतवन में निवास कर रहे हैं। संप्रति उनपर एक संकट आ गया है। उससे उन्हें मुक्त करने के लिए आपकी सेवा में आया हूँ। आपकी जान-पहचान की कोई नारी है ?

ज्वलजट ऋषि ने कहा—किसी नारी-वारी से मेरा सम्बन्ध नहीं है, मैं ब्रह्मचारी हूँ। इस जंगल में नारी कहाँ

से पाऊँगा। हाँ, पंचचूड़ा नामक एक अप्सरा कभी-कभी उपदेश सुनने आती है, लेकिन वह सुन्दरी नहीं है।

कृष्ण ने कहा—सुन्दरी हो या न हो, आपकी पंचचूड़ा चीत्कार तो कर सकती है न? बस, तब मेरा कार्य हो जायगा। अब मेरी प्रार्थना सुनिए!

कृष्ण ने विस्तारपूर्वक सारी रामकहानी सुनायी। ज्वलज्जट ऋषि ने तब कहा—वासुदेव, लोग आपको कुचक्री कहा करते हैं, लेकिन मुझे तो आप सुचक्री दीख रहे हैं। आपका उद्देश्य साधु है। निश्चिन्त रहिए, मैं आपके इस उद्देश्य को अवश्य सफल बनाऊँगा। दो दिन बाद अपराह्न के समय पाण्डवों के आश्रम में उपस्थित हो जाऊँगा।

ऋषि को प्रणाम कर वहाँ से बिदा हो कृष्ण और उत्तर राजर्षि रोहित के आश्रम में आये। आप बलदेव-जननी रोहणी के भ्राता हैं। आजकल वानप्रस्थ का अवलम्बन कर सपत्नीक बनवास कर रहे हैं। कृष्ण को देखकर प्रसन्न हो बोल उठे—वत्स, बहुत दिनों बाद दिखायी पड़े। चलो, अच्छा हुआ, अब कुछ दिनों यहीं रहो और मेरा तथा अपनी मातुलानी का आनन्दबर्द्धन करो। द्वारिका में सब कुशल है न?

कृष्ण ने कहा—पूज्यपाद मातुल, सब कुशल है। मैं तो आपके चरणों का दर्शन करने चला आया, इसलिए अधिक दिनों तक ठहरना मेरे लिए असम्भव है। दो दिन बाद मुझे एक विशेष कार्यवश पाण्डवाश्रम में जाना है।

(५)

पाण्डवों के प्रतिपालित दो सौ व्यक्ति हैं। दोनों जून इनके लिए भोजन बनाना पड़ता है। द्वैतवन में हाट-बाजार भी नहीं है और न तण्डुलादि शस्य मिलते हैं। कभी-कभार दरद, पुक्कस आदि आदिवासी जाजियाँ यव और मधु दे जाती हैं। अन्यथा मृगया से प्राप्त मांस, स्वच्छन्द वनजात फल-मूल और साग ही पाण्डवों का मुख्य खाद्य है।

नित्य प्रातःकृत समाप्त कर पंच पाण्डव मृगया के लिए चल पड़ते हैं। आज एक वाराह को देखकर सभी प्रसन्न हो उठे, क्योंकि आश्रम-स्थित विप्रों को वाराह-मांस अतिप्रिय है। अर्जुन ने वाण छोड़ा, पर वाराह मरा नहीं, बल्कि वन की ओर तेजी से भाग गया। यह देखकर पंच पाण्डवों ने एक साथ शर छोड़े। तभी किसी नारी का कण्ठ-स्वर आर्त्तनाद कर उठा—हा नाथ हतोहस्मी!

क्या हमारे शराघात से किसी नारी की हत्या हो गयी? पाण्डवगण व्याकुल हो अरण्य की ओर दौड़ पड़े। वाराह मर चुका था, लेकिन आस-पास कोई नहीं था। चतुर्दिक अन्वेषण करने के पश्चात् भी कोई दिखायी नहीं दिया। भीम ने कहा—अवश्य कोई राक्षसी माया थी। मारीच ने भी इसी तरह चीत्कार कर राम को विभ्रान्त किया था।

युधिष्ठिर ने शंकित होकर कहा—चलो, जल्द लौट चलो, पता नहीं कुछ विपदा आ गयी हो। भीम, वाराह को उठा लो।

आश्रम में आने पर मालूम हुआ कि यहाँ कोई दुर्घटना नहीं हुई है। पांचाली ने सूर्य से प्राप्त हुए ताम्र पात्र में वाराह-मांस पकाया और सभी भर पेट खा तृप्त हुए।

(६)

अपराह्न के समय एक वृहद् अश्वत्थ वृक्ष के नीचे सभी बैठे हुए थे। पुरोहित धौम्य यम-नचिकेता का उपाख्यान सुना रहे थे। पांचाली एक ओर बैठी इस पवित्र कथा को सुन रही थी। ठीक इसी समय मूर्तिमान विपदा की भाँति ज्वलज्जट ऋषि प्रगट हुए। उनकी जटा और श्मश्रु अग्नि की ज्वाला की भाँति भयंकर, आकृति क्रोध से रक्तवर्ण, चक्षु विस्फारित और भृकुटियों पर बल थे। हुँकार करते हुए ज्वलज्जट ऋषि ने कहा—अरे नरघातक पापियो! आज मैं तुम-सबको ब्रह्मशाप देकर नरक भेजूँगा!

युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर कहा—भगवन, हम लोगों ने कौन-सा पाप किया है?

ज्वलज्जट ऋषि ने कहा—तुम्हारे ही शराघात से मेरी प्रिय भार्या की हत्या हुई है। धिक है तुम्हारी धनुर्विद्या को! एक वाराह मारने के पीछे ऋषि-पत्नी के भी प्राण हर लिये।

युधिष्ठिर आदि पंचभ्राता कातर होकर ऋषि के चरणों पर गिर पड़े। द्रौपदी हाथ जोड़कर अनवरत अश्रु-वर्षण करने लगी।

युधिष्ठिर ने कहा—हम लोगों के अज्ञान में जो महापाप हो गया है, उसके लिए आप जो दण्ड देना चाहेंगे, वह हमारे लिए शिरोधार्य होगा।

द्रौपदी आगे बढ़कर बोली—महामुनि, मेरे स्वामियों के शराघात से आपकी प्रिय भार्या की हत्या हुई है, अतएव उसके दण्ड-स्वरूप आप मेरे प्राण लें और इनके अपराध क्षमा कर दें। मध्यम पाण्डव, चलो, तुम चिता बनाने की तैयारी करो, आज मैं अग्नि में प्रवेश करूँगी।

ज्वलज्जट ऋषि ने कहा— तुम तो बड़ी निर्बुद्धि रमणी ज्ञात पड़ती हो! तुम्हारे प्राण-विसर्जन से क्या मेरी पत्नी जीवित हो जायगी? मुझे पत्नी चाहिए और अभी चाहिए। पाण्डवों ने मुझे विधुर बनाया है, अतएव मैं पाण्डव-पत्नी पांचाली को लूँगा!—यह कहकर वह उन्मत्त की तरह नृत्य करने लगे।

युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ते हुए कहा—प्रभो! प्रसन्न होइए! पांचाली के अलावा और जो कुछ चाहिए, ले लजिए।

इयं हि नः भार्या प्राणेभ्योहयि गरीयसी।
मातेव परिपाल्या च पूज्या ज्येष्ठव च स्वसा॥

हमारी यह प्रिय भार्या प्राणों से बढ़कर गरीयसी, माता की तरह परिपालनीया और ज्येष्ठा भगिनी की तरह माननीया हैं। इन्हें हम कैसे छोड़ सकते हैं? इससे अच्छा है कि आप अपने शापानल में हमें भस्म कर पांचाली को निष्कृति दे दें।

ज्वलज्जट ऋषि ने कहा—अहो मूर्ख! अगर तुम्हारी मृत्यु होगी, तो पांचाली सती होगी। अनर्थक नारी-हत्या के कारण-स्वरूप मैं पाप का भागी बनूँगा। मुझे तो पांचाली चाहिए!

भीम ने हाथ जोड़ते हुए कहा—तपोधन! मेरा भी एक निवेदन है, उसे सुन लीजिए। आप ज्येष्ठा पाण्डव-पत्नी हिडिम्बा को ले लीजिए और पांचाली को मुक्ति दे दीजिए, क्योंकि पांचाली से विवाह करने के पूर्व मेरा विवाह हिडिम्बा से हुआ था।

ज्वलज्जट ऋषि ने कहा—तुम बड़े दुष्ट और प्रतारक ज्ञात पड़ रहे हो। एक राक्षसी को मेरे गले मढ़ना चाहते हो?

भीम ने कहा—प्रभो, यह सत्य है कि हिडिम्बा राक्षसी है, लेकिन जब वह मानवी रूप धारण करती है, तब वह बड़ी सुन्दर लगती है। अगर आप उसे स्वीकार न कर सकें, तो हमारी अन्य आठ पत्नियों में से किसी एक को ले लीजिए।

नकुल, सहदेव आदि एक साथ बोल उठे—ठीक है, ठीक है।

ज्वलज्जट ऋषि ने कहा—तुम लोगों की अन्य पत्नियाँ यहाँ नहीं हैं, अतएव अनुपस्थित वस्तु का दान नहीं किया जा सकता। मुझे पत्नी चाहिए और मैं पांचाली को ही लूँगा!

अर्जुन ने कहा—प्रभो, धर्मराज और पांचाली को छोड़ दीजिए और हम चारों भाइयों को भस्म कर अपने क्रोध को शान्त कीजिए। इसके बाद सुविधानुसार किसी ऋषि-कन्या से पाणिग्रहण कर लीजिएगा।

ज्वलज्जट ऋषि ने कहा—तुम-सब बड़े मूर्ख हो। अस्तु। तुम्हारे इस आग्रह से मैं प्रसन्न हुआ हूँ। तुम लोगों को भस्म कर देने से मेरा कुछ लाभ नहीं होगा। मुझे पत्नी चाहिए, जो मेरी सेवा कर सके। अगर तुम लोग द्रौपदी को नहीं दे सकते, तो उसके स्थान पर तुम पाँचों भाइयों को मेरा आजीवन दासत्व करना होगा।

युधिष्ठिर ने कहा—महर्षि, हमें यह स्वीकार है। हम आजीवन दास बनकर आपकी सेवा करते रहेंगे।

धौम्य ने कहा—महामुनि, क्या यह अच्छा होगा? इससे अच्छा है कि पंचगव्य भक्षण, चन्द्रायण आदि प्रायश्चित्त करवाया जाय। इनके पास इस समय अर्थ नहीं है, लेकिन त्रयोदश वर्ष बाद जब पुनः राज्य पायेंगे, तब आपको उचित दक्षिणा मिल जायगी।

ज्वलज्जट ऋषि ने प्रचण्ड गर्जन करते हुए कहा—यह विप्र कौन है, जो मेरे बीच में दखल दे रहा है? अरे, कोई है? एक दीर्घ रज्जु ले आओ।

युधिष्ठिर ने कहा—प्रभो, रज्जु की आवश्यकता नहीं है। आप हमारे उत्तरीय से हमें बाँध लीजिए।

ज्वलज्जट ने प्रत्येक के उत्तरीय से उनके कटि-प्रदेश को बाँधा और फिर सबका छोर अपने हाथ में ले चल पड़े। द्रौपदी आर्त्तनाद कर संज्ञाहीन हो गयी। धौम्यादि विप्रगण स्तंभित हो अवाक् होकर रह गये।

(७)

चेतना प्राप्त होने पर द्रौपदी ने देखा, वह अपने शयन-

कक्ष में सेवन्ती की गोद में सिर रखे सोयी हुई है और कृष्ण ताड़-पंख से हवा कर रहे हैं।

द्रौपदी ने कहा—हा, पंच आर्यपुत्र ! तुम कहाँ हो ?

कृष्ण ने कहा—कृष्णा, आश्वस्त हो ! पंच पाण्डव सकुशल हैं। इस समय वे लोग अश्वत्थ वृक्ष के नीचे उपविष्ट हो पाप-नाश के लिए अघमर्षण मंत्र का जाप कर रहे हैं। तुम स्वस्थ हो लो, तो वहाँ ले चलूँ।

—वह भयंकर ऋषि कहाँ गया ?

—अब डर नहीं है। वह पाण्डवों को पशु की तरह बाँधकर ले जा रहा था। संयोगवश मेरी भेंट हो गयी। मैंने उससे पूछा, तपोधन, आप यह क्या कर रहे हैं ? यह सब-के-सब बड़े अकर्मण्य और विलासी क्षत्रीय हैं। इनसे आपका कोई काम नहीं होगा। केवल बैठकर अन्न-भक्षण करेंगे। तब उन्होंने कहा, फिर मैं इन्हें ले जाकर क्या करूँगा। मुझे पांचाली को लाकर दो। फिर मैंने कहा, वह तो और भी विलासिनी है, दिन-रात अपने प्रसाधन में ही व्यस्त रहती है। इससे अच्छा है कि मैं एक कर्मिष्ठा ब्रजनारी भिजवा दूँगा। इस समय पांचाली को छोड़ देने के उपलक्ष में आप इस सवत्सा धेनु को ले लीजिए। इससे पर्याप्त दूध-दही और घी आपको मिलेगा। मातुल रोहितजी ने मुझे उपहार दिया है। ज्वलज्जट मुनि ने प्रसन्न होकर तुम्हारे पतियों को छोड़ दिया।

द्रौपदी ने कहा—धन्य है वह धेनु, जिसका मूल्य पाण्डव-महिषी के बराबर है ! लेकिन ऋषि-पत्नी की हत्या से पाण्डव गण कैसे मुक्त होंगे ?

कृष्ण ने हँसते हुए कहा—ऋषि-पत्नी की हत्या नहीं हुई है। अप्सरा पंचचूड़ा वास्तव में उनकी पत्नी नहीं है, एक तरह से वह उनकी दासी-मात्र है। वाराह ने जरा उसके पैरों में काट लिया था; बस इसी भय से चीत्कार करती हुई वह आश्रम में जाकर गिर पड़ी और संज्ञाहीन हो गयी। ऋषि ने सोचा कि शायद पंचचूड़ा मर गयी। पाण्डवों को मुक्त कराने के बाद मैं उनके आश्रम में गया था, तो देखा, पंचचूड़ा झूले पर बैठी झूल रही है।

द्रौपदी ने कहा—कृष्ण, तुम शीघ्र मुझे मेरे पतियों के पास ले चलो। हाय, मैं कितनी बड़ी अभागिन हूँ ! आज एक महीने से उनसे वार्तालाप करना बन्द कर रखा है। अब कैसे उनसे क्षमा-प्रार्थना करूँगी !

—पांचाली, क्षमा माँगकर व्यर्थ उन्हें लज्जा का भागी बनाओगी ? वे-सब तुम पर अप्रसन्न ही कब थे। बहुत दिनों से तुम्हारा सम्भाषण सुनने के लिए तृषित चातक की नाईं पिपासु बने हुए हैं।

—गोविन्द, मैं उनसे क्या कहूँगी ?

—पुरुष-जाति अपनी भार्या के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनकर जितना प्रसन्न होते हैं, उतना अन्य बातों से नहीं होते। कृष्णा, तुम अपने पतियों के पास जाकर उनकी स्तुति करना प्रारम्भ कर दो।

—मैंने इस मुँह से उन्हें कितना भला-बुरा कहा है, अब इसी मुँह से कैसे उनकी स्तुति करूँगी ? तुम कुछ सिखा दो न !

—सखी कृष्णा, वाग्देवी तुम्हारी रसना पर विराजमान हो जायँगी। आज तुम निःसंकोच होकर सबके सामने उन लोगों की स्तुति कर सकती हो। अब झटपट तैयार होकर मेरे साथ चलो। सेवन्ती तैयार बैठी है।

सेवन्ती ढेरों फूल की झोली दिखाकर बोल उठी—यह तैयार हैं। यहाँ अन्य फूल नहीं मिले, सब कदम के फूल हैं।

कृष्ण ने कहा—ठीक है, इसी से काम चल जायगा।

(८)

धौम्यादि द्विजों से घिरे हुए पंच पाण्डव एक अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। उन लोगों का मंत्र-जाप समाप्त हो गया था। कृष्ण के साथ द्रौपदी को आते देख सभी ठीक से बैठ गये।

पंच पाण्डवों की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखती हुई द्रौपदी प्रस्तर की प्रतिमा की भाँति निस्पन्द भाव से खड़ी हो गयी है।

कृष्ण ने कहा—पांचाली, अब तुम अपना मौन व्रत भंग करो।

पांचाली गद्गद कण्ठ से बोल उठी—देव सम्भव ! पंच आर्य पुत्र ! पति-महिमा में अभिभूत होकर मैं संभाषण कर रही हूँ। जो मन में आया, वही सुनाया, अपनी इस

प्रगल्भता के लिए क्षमा चाहती हूँ। पितृभवन में स्वयंवर-सभा में धनञ्जय को देखकर मैं मुग्ध हो गयी थी। इनके लक्ष्य-भेद से तो मैं हर्षातिरेक से आत्महारा-सी बन इन्हें पति के रूप में पाने के लिए व्याकुल हो गयी थी। लेकिन विधाता और गुरुजनों ने मेरी इच्छा-अनिच्छा की चिन्ता न कर पंच भ्राताओं के साथ मेरा विवाह कर दिया। अन्तर्यामी इस बात के साक्षी हैं कि कुछ दिनों बाद मेरा सारा क्षोभ दूर हो गया। पंच पति मेरे अन्तर में अभिभूत हो गये। जैसे पंच इन्द्रियों की अनुभूति पृथक रूप से तथा एक योग में अन्तकरण को रंजित करती है, ठीक उसी तरह मेरे पंच पति स्वतंत्र तथा संयुक्त रूप से मेरे हृदय को उद्भासित करते हैं।

—पाण्डवाग्रज! जब मैं इन्द्रप्रस्थ में पट्टमहिषी थी, तब उन दिनों मैंने वसन, भूषण और प्रसाधन में प्रचुर अर्थ-व्यय किया, प्रियजनों को मुक्त हस्त से दान दिया, जब जिस वस्तु की आवश्यकता हुई, मुझे तुरत मिली, कभी कोई प्रश्न आपने नहीं पूछा और न इस अपव्यय के विरुद्ध आपने कुछ कहा ही। दास-दासियों पर कठोर शासन किया, इसके विरुद्ध आपके प्रिय अनुचरों ने आपसे कहा, लेकिन आपने उसपर ध्यान नहीं दिया। पाण्डव-महिषी की मर्यादा का आपने सदा ध्यान रखा। आप शान्तिप्रिय, क्षमाशील, और धर्म-भीरु हैं। आपके धर्माधर्म के विचारों को बिना सोचे मैंने आपकी बहुत भर्त्सना की है, फिर भी आप इस अप्रियवादिनी के प्रति कभी अप्रसन्न नहीं हुए। हे अजातशत्रु, महामना धर्मराज! आपके महत्व को आँकने की शक्ति कम लोगों में है।

—मध्यम पाण्डव! तुम जरासन्ध-विजयी, महाबली, सभी दुःसाध्य कार्यों के योग्य हो। लेकिन मैंने तुमसे हमेशा छोटे-छोटे कार्य लिये, जिसका संपादन बड़े प्रेम से तुमने किया। तुम भोजन-विलासी और रन्धन-विद्या में सर्वकुशल हो। इन्द्रप्रस्थ में अनेक निपुण पाक-विशारद तुम्हारा तृप्ति-विधान किया करते थे, लेकिन इस अरण्य में मैं जो-कुछ साधारण भोजन देती हूँ, उसी से तुम सन्तुष्ट हो जाते हो। कभी कोई बात, जैसे यह तरकारी फीकी है, इसमें निमक नहीं है आदि नहीं कहा। नरशार्दूल! तुम सबके प्रयत्नों से ही पुनः राज्योद्धार होगा! लेकिन मेरे अपमान का बदला केवल तुम्हीं ले सकोगे। दुर्योधन और दुःशासन को अन्तिम समय में याद दिला देना कि पाण्डव-महिषी को अपमानित करनेवाले का निस्तार नहीं!

—तृतीय पाण्डव! यद्यपि तुम वयोज्येष्ठ नहीं हो, फिर भी युद्ध-काल में तुम्हारे सभी भाई तुम्हारा ही नेतृत्व स्वीकार करते हैं। तुम देवप्रिय, सर्वगुणाकर, अद्वितीय धनुर्धर, देव-सेनापति स्कन्द-तुल्य रूपवान, नृत्य-गीत-कला में पटु और हृषिकेश श्री कृष्ण के अभिन्न सखा हो। तुम जब सुभद्रा को हरण कर इन्द्रप्रस्थ के राजपुरी में ले आये थे, तब मैं तुम्हारे इस कार्य से क्षुब्ध हो गयी थी। लेकिन मैं सत्य कह रही हूँ, आज मेरे मन में उस घटना के प्रति कोई क्षोभ नहीं है। जो नारी पंच पतियों की पत्नी है, वह किस अधिकार से सौत से ईर्ष्या कर सकती है? सुभद्रा मेरी प्रियतम भगिनी है। द्वारिका में अपने पाँचों पुत्रों को उसे सौंप मैं निश्चिन्त हूँ। परन्तप महारथी, कुरु-पाण्डवों के महा समर में तुम्हीं पाण्डवों के सेनापति होगे और वासुदेव की सहायता से विपक्षियों को परास्त करोगे। कुरु-पितामह भीष्म मेरे महागुरु हैं, तुम्हारे आचार्य द्रोण मेरे नमस्य हैं, लेकिन द्यूत-सभा में उन लोगों ने राजकुल-वधू की रक्षा नहीं की, वीरोचित कार्य नहीं किया, बल्कि राजपुरुष की भाँति निश्चल बने रहे। सव्यसाची, सम्मुख समर में मर्मभेदी शराघात से तुम उन्हें उनकी कर्त्तव्य-च्युति का स्मरण दिला देना!

चतुर्थ पाण्डव! तुम सुकुमार, दर्शन-विलास-प्रिय हो, लेकिन युद्ध में भयंकर हो। इन्द्रप्रस्थ में तुम अनुपम वस्त्र एवं बहु-अलंकार धारण करते थे। लेकिन यहाँ मुझे अल्पभूषणा देखकर स्वयं भी निराभरण हो गये हो और गन्धमाल्यादि का वर्जन कर दिया है। तुम्हारी समवेदना के प्रति मैं मुग्ध हो गयी हूँ। राजसूय यज्ञ के पूर्व तुमने दशार्ण त्रिगर्त पंचनद देशों पर विजय प्राप्त की है। आगामी समर में भी तुम अवश्य विजयी बनोगे।

कनिष्ठ पाण्डव! तुम मेरे पति और देवर हो, प्रेम और स्नेह के पात्र, विशेष रूप से स्नेह के ही। वनयात्रा के समय आर्या कुन्ती ने मुझसे कहा था, पांचाली, मेरे सहदेव का अधिक ध्यान रखना, उसे अप्रसन्न होने का अवसर न देना। निर्भीक, अरिन्दम, तुम कभी भी अप्रसन्न नहीं हुए। युद्ध

के लिए सदा अधीर रहते हो। माहिष्मति राजदुर्नीत नील और कालमुख नामक राक्षसों को तुमने परास्त किया, इस लिए दुरात्मा कौरवों के साथ युद्ध में विजयी अवश्य बनोगे !

—हे देव प्रतिम, महाप्राण पंचपति ! देव-वन्दना-काल में देवता का दोष-कीर्तन कोई नहीं करता। इस समय मैं तुम्हारे सारे अपराधों को भूल गयी हूँ। आज मेरे लिए तुम-सब मरने के लिए तैयार हो गये थे और दासत्व स्वीकार कर लिया था। मेरी तरह पतिप्रिया नारी कौन है ? पति-निर्वासिता सीता भी नहीं, पति-परित्यक्ता दमयन्ती भी नहीं। तुम-सब अपनी अन्य पत्नियों को पित्रालय में रख केवल मुझे लेकर त्रयोदश वर्ष बनवास के लिए आये हो। मेरा पंचमांश ही प्राप्त कर तुम लोग सन्तुष्ट हो। मेरी तरह गौरविणी नारी कौन है ? तुम्हारी तरह संयमी पति कौन है ? बहुत दिन पहले पितृगृह में विवाह-मण्डप में एक ही दिन तुम सबके गले में एक-एक करके माला पहनायी थी। आज फिर अरण्य-भूमि के मुक्ताकाश के नीचे पुनः पहना रही हूँ। महानुभाव पंचपति ! प्रसन्न हो, स्निग्ध नयनों से मेरी ओर देखो !

इतना कहकर पांचाली ने पाण्डवों के गले में माला पहनायी। सेवन्ती ने शंख-ध्वनि की। विप्रों ने साधु-साधु कहा। और कृष्ण आनन्द से तालियाँ बजाने लगे। युधिष्ठिर ने द्रौपदी के मस्तक पर हाथ रखते हुए कहा—पांचाली, लगता है, जैसे तुम बहुत थक गयी हो। चलो विश्राम करो।

युधिष्ठिर और द्रौपदी के जाने के बाद कृष्ण को एक ओर बुलाकर अर्जुन ने कहा—माधव, ज्वलज्जट ऋषि कहाँ से मिल गये ? उनका अभिनय उत्तम रहा, लेकिन हास्य-दमन के लिए विचित्र रूप से मुँह बना रहे थे। वह तो कहो, किसी ने उधर ध्यान ही नहीं दिया।

भीम ने कहा—क्यों जी, कृष्ण, तनिक इधर आओ, यह तो बताओ, अब तो पांचाली परेशान नहीं करेगी न ?

कृष्ण ने कहा—यह कैसे कह सकता हूँ ? उनकी जिह्वा तो अब भी उनके मुँह में है !

बंगला से अनु० विश्वनाथ मुखर्जी

मुंशीजी का तोता

राम प्रताप बहादुर
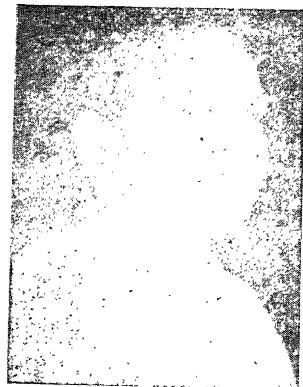
जब मुंशीजी का देहान्त हुआ, तो यह कौन सोच सकता था कि उनके न रहने पर पहाड़पुर मुहल्ले में उनका स्थान उनका तोता ले लेगा।

मुंशीजी कचहरी में काम करनेवाले व्यक्ति थे, जिनसे सैकड़ों का नित्य काम निकलता था। खुशी से सबका काम करते और जिससे जो मिल जाता, स्वीकार कर लेते, न हुज्जत करते, न किसी के आगे हाथ फैलाते।

जब नौकर थे, दूसरे की सेवा परमधर्म समझते थे, तो पेंशन पाने के बाद लोक-सेवा का भाव निष्काम धर्म के दर्जे तक पहुँच जाना स्वाभाविक ही था। एक-के-बाद-एक पाँच लड़कियों के गुज़र जाने के बाद औलाद के नाम से अब उनका कोई भी न रह गया था। कुछ दिन और बुढ़ापे के दिन काटने के बाद जब वृद्ध अर्द्धांगिनी भी जाती रही, तो आँखों की रोशनी कुछ और फीकी पड़ गयी।

तोते का पिंजड़ा, जो पहले आंगन की दलान में लटकता रहता था, घर में किसी और के न रहने पर, बाहर उठा लाये और सामने के बरामदे में लटकाकर सही मानों में वाणप्रस्थ जीवन बिताने लगे। बाहर बरामदे की टूटी चारपाई पर पड़े रहते। अपने अथवा कुटुम्ब के बारे में सोचने को अब रहा भी क्या था? इसलिए पहाड़पुर-वालों की समस्याओं पर मनन करना और उन्हें सलाह देना उनका एक-मात्र काम था। दूसरों के दुख-सुख में सम्मिलित होते और सामर्थ्य के अनुसार जितना हो सकता, हाथ बटाते। वैसे जो उनकी अवस्था थी, उनसे कोई क्या आशा करता कि वे किसी का छप्पर उठा देंगे।

बढ़ती हुई अवस्था के साथ मनुष्य वैसे भी मानसिक अधिक और शारीरिक कम होता जाता है। पौरुख घटने पर मानसिक जगत में ही आदमी अधिक रहने लगता है। फिर मुंशीजी की मजबूरियाँ और भी थीं। आँखों की रोशनी निरन्तर घटती जाती थी। जब आँखें साथ न दे सकीं, तो पीतल का चश्मा कितना साथ देता। कमानी की कमी उन्होंने तागे से पूरी कर ली थी। जब कोई चश्मा बदलवाने की राय देता, तो मुस्कराकर सदैव यही कहते कि यह चश्मा खरीदने का समय है अथवा चार बोझ लकड़ी के बन्दोबस्त करने का। उनके बैठने-उठनेवाले भी अधिकतर पेंशन पानेवाले ही थे। इसलिए उनके निराश यथार्थवाद से किसी को अधिक धक्का न पहुँचता, बल्कि उनकी प्रशंसनीय दूरदर्शिता को देखकर अपने-अपने दाह-कार्म की सोचने लगते।

मुंशीजी का यदि कोई शारीरिक उत्तरदायित्व भी रह गया था, तो केवल इतना कि तोते के पिंजड़े में शाम-सबेरे

दाना-पानी डाल देते। सो जब तक दाहिनी आँख के धुँधले प्रकाश में तोते की लाल चोंच देखते रहे, उन्होंने इस बात की तनिक चिन्ता न की कि बायीं आँख की रोशनी जाती रही।

जब दिन-भर बरामदे में तोते के समीप खाट पर पड़े सोचते-सोचते तय कर लेते कि पंडित मथुरा प्रसाद को भैया दूज के पश्चात लड़की का विवाह तय करने कहीं-न-कहीं जाना ही चाहिए, तो उनके लिए अनिवार्य हो जाता कि खूँटी से अंगा उतार कंधे पर रख, बाँस की छड़ी के सहारे कुएँ के उस ओर समानेवाले मकान तक जाकर पंडितजी से अपना विचार प्रकट कर आयें।

पहाड़पुर में मुंशीजी और मथुरा प्रसाद के अतिरिक्त और भी पेंशन पानेवाले थे। किन्तु उनमें मुंशीजी सब से वृद्ध थे। यह केवल इससे ही प्रत्यक्ष न था कि सन सत्तावन के गदर की बातें सबसे अधिक वही सुनाते थे, बल्कि जबसे उन्होंने बायीं आँख पर चश्मे की कमानी के नीचे, जहाँ दूसरा शीशा होता, कागज की गोल दफ्ती काटकर लगा ली, मुहल्ले का बच्चा-बच्चा जान गया कि मुंशीजी को अब एक ही आँख से दिखायी देता है। यद्यपि स्वयं मुंशीजी ने कभी ऐसा न सोचा, इसलिए कि दाना-पानी देते समय तोते की लाल चोंच वे अब भी देख लेते थे। बुढ़ापे में आदमी जितनी दूर देख सकता है, उससे अधिक सोचता भी नहीं, और न इसकी आवश्यकता ही पड़ती है।

कभी फल इतना पक जाता है कि उसके टूटकर गिरने पर आवाज़ भी नहीं होती। जब मुंशीजी का देहान्त हुआ, तो उसको मरना मुहल्ले के बच्चों ने ही शायद समझा हो, बड़े-बूढ़ों ने उसे जीवन से मुक्ति पाना ही समझा। कभी ऐसा भी होता है कि मरनेवाला जीवन से ऐसा सिलसिला छोड़ जाता है कि उसके विषय में लोग अधिक सोचते हैं, चल बसनेवाले के बारे में कम। मुंशीजी के साथ भी ऐसा ही हुआ। एक अनाथ मकान और तोता क्या छोड़ गये, पहाड़वालों के लिए एक समस्या छोड़ गये। जीनेवाले को मरनेवाले की इतनी चिन्ता न रही, जितनी इस बात की कि खपरैले मकान का क्या किया जाय तथा तोते के दाने-पानी का क्या बन्दोबस्त हो?

मुंशीजी के साथवालों में केवल जोखन दफ्तरी ही ऐसे थे, जिनकी वृद्ध अवस्था भी उन्हें आशारहित न बना सकी थी। सदैव मुंशीजी के दफ़्तर में काम करते रहे। परन्तु यह मुंशीजी भी कभी न बता सके कि जब जोखन को कहीं और काम न मिला, तो दफ्तरी का काम आरम्भ करके वे आर्यसमाजी बने अथवा आर्यसमाजी होने के नाते दफ़्तरी का काम करना भी उन्होंने अपनी जातीय परम्परा के प्रतिकूल न समझा। जब दफ्तरी का काम करने लगे थे, तो दफ़्तरी ही कहलाते। वैसे चालीस वर्ष की अवस्था से उन्होंने जनेऊ पहनना तथा मंदिर जाना भी आरम्भ कर दिया था। किन्तु उनके चाहने पर भी उन्हें 'महाशयजी' लोग केवल उनके सामने ही कहते, पीठ पीछे हमेशा दफ्तरी ही कहते।

जब मनुष्य किसी ऐसे अटल विश्वास का माननेवाला बन जाता है, तो दीर्घ अवस्था में भी उत्साह की रस्सी को हाथ से नहीं जाने देता। यह उन्हीं का उत्साहमय साहस था, जो बिना किसी संकोच के मुंशीजी से एक बार कह बैठे थे कि आँख मूँदने से पहले मकान समाज के नाम लिख जावें। जो बात जोखन दफ़्तरी सोचते थे, स्पष्ट ही था। बुढ़ापे में घर के पास ही यदि एक छोटा-मोटा मंदिर भी बन जाता, तो पौरुख न रहने पर भी हवन-कुंड से बहुत दूर न होते। किन्तु मुंशीजी के मन में जो तोता था, वह उन्हें इतना निराश क्यों होने देता कि वे अपने ही हाथों दुनिया से नाता इस तत्परता से तोड़ लेते?

मुंशीजी के मकान में ताला पड़ गया था और बाहर बरामदे में बुड्ढा तोता लटकता रहा। बड़े-बूढ़े भली भाँति जानते थे कि मुंशीजी के जीवन के सूखते हुए सोते में मृत्यु जब दोनों किनारों से कगारें काट-काटकर निरन्तर गिराती रही, यदि उस समय तोते का भी प्राण-पखेरू उड़ गया होता, तो वे अन्तिम जीवन के कई जाड़े-बरसातें काटने के पहले ही शरीर के बन्धन से मुक्त हो गये होते। इसलिए यह सभी की राय हुई कि मकान में ताला डाल दिया जाय और तोते को बाहर बरामदे में जहाँ-का-तहाँ पिंजड़े में लकटता रहने दिया जाय, तो उसमें शाम-सबेरे थोड़ा अन्न-जल डाल देना किसके लिए बड़ा बोझ सिद्ध होता।

मगर स्वयं जोखन दफ्तरी के मन में मुंशीजी का लावारिस मकान निरन्तर मँडलाता रहा। उनका यह भी विश्वास था कि मुंशीजी के पास अन्तिम समय भी कुछ रुपया रह गया था, जो वे मकान के किसी कोने में गाड़ गये हैं। उनके लिए यह विश्वास स्थिति को और भी सुन्दर बना देता था। फिर मंडप और हवन-कुंड बनने में कोई कठिनाई रह ही नहीं जाती थी। इसलिए वे मुंशीजी के मकान पर सदा नेह जगाये रहे, और यदि मुहल्लेवाले उनकी चलने देते, तो हवन-सामाग्री-द्वारा मकान की कभी शुद्धि हो गयी होती और तोते के भूत से पहाड़पुरवाले न जाने कभी मुक्त हो गये होते।

मकान में ताला पड़ा रहा और बरामदे की घन्नी में तोते का पिंजड़ा लटकता रहा। भोजन करने के पूर्व जो भी भगवान के नाम रोटी-चावल-दाल थाली से अलग निकालकर रखता, वह अपना यह भी कर्त्तव्य समझता कि भोजन के पश्चात् मुंशीजी के बरामदे में जाकर पिंजड़े में भगवान का जूठन डाल आवे।

इस प्रकार जहाँ पहाड़पुर में और देवी-देवता थे, उनमें मुंशीजी के तोते ने भी अपना स्थान बना लिया। मुहल्ले के लड़के-बच्चे मकान और तोते, दोनों ही से योंही डरने लगे थे। धीरे-धीरे तोते का जादू स्त्रियों को भी प्रभावित करने लगा। पहले कभी-कभी पिंजड़े के नीचे दिया टिम-टिमाता दिखायी देता। परन्तु जब से यह बात फैली कि मुंशीजी के बरामदे में रात के अँधेरे में चोर इकट्ठा हो गाँजे का दम लगाते हैं और बूढ़े तोते से आशीर्वाद लेकर अपने काम पर निकलते हैं, तो आस-पास इस नये देवता का आतंक पूर्ण रूप से छा गया।

यदि बड़े-बूढ़ों को लेश-मात्र सन्देह रह गया था, तो वह उस रात के बाद दूर हो गया; जब जोखन दफ्तरी ने चारपाई पर पड़े-पड़े खिड़की से अपनी आँखों तोते को गाँजे का दम लगाते देखा। जब तोते ने गाँजे का दम खींचा, चिलम का मुँह भक से जल उठा, जिसके प्रकाश में पिंजड़े के चारों ओर गोल उजाला छा गया!

जो बात जोखन ने अपनी आँखों देखी थी, उसका विश्वास कौन न करता। यह बात जोखन ने कभी भी साफ न होने दी कि पिंजड़े के पास गाँजे की चिलम से दम किसी चोर-बदमाश ने पिंजड़े के देवता को प्रसन्न करने के लिए खींचा था अथवा स्वयं चोरों के देवता ने दम लगाया था। बहरहाल, उनका तर्क स्पष्ट ही था। मुंशीजी के बरामदे में रात को चोर-बदमाश इकट्ठा होने लगे थे और तोता चोरों का देवता माना गया था, इसलिए पहाड़पुरवालों के कल्याण के लिए अब यह अति आवश्यक हो गया था कि मकान को भुतहा होने से पहले तथा चोरों-बदमाशों से सुरक्षा प्राप्त करने के अभिप्राय से मकान की शुद्धि करा दी जाय और हवन करके तोते को उड़ा दिया जाय।

परन्तु जब जोखन की बात पहाड़पुरवालों ने पहले न मानी थी, तो अब उसे मानने की किसकी मजाल थी। मुहल्ले के किनारे मुंशीजी के भूतवाले मकान से बच्चे यों भी डरते थे। मुहल्ले का बरसाती पानी बहकर उसी ओर से पीछे के भिंडी के खेतों में गिरता था। रात गये जब चारों ओर से गन्दा पानी आकर मुंशीजी के मकान के पीछे गहरे खेत में गिरता, तो उसकी डरावनी आवाज़ से बच्चे खाटों पर दुबके अपनी माताओं के आँचलों में मुँह छिपा लेते। मुंशीजी का प्राण निकलकर तोते के तन में प्रवेश करते तो कोई क्या देखता, जब उन्हें मरते ही किसी ने न देखा था। जब बेचारे का प्राण निकला, तो मकान में कोई न था और सम्भवतः घंटों अँधेरी कोठरी में टूटी खाट पर मरे पड़े रहे। इस कारण ऐसा सबका विश्वास हो गया था कि हो-न-हो, मुंशीजी मरने के बाद भूत बनकर तोते के तन में समा गये हैं। यह बात तो जोखन ने ही बतायी थी कि मुंशीजी के मकान में रुपया गड़ा है। इसलिए उनके न रहने पर जब चोर रुपया चुराने आये और असफल रहे, तो तोते की दैवी शक्ति को कौन नहीं मान लेगा?

देवी-देवता तरह-तरह के और अनगिनत होते हैं, किन्तु नये देवता का प्रभुत्व और ही होता है। त्योहार तथा शादी-ब्याह के अवसर पर स्त्रियाँ कुएँ, पीपल के अतिरिक्त देवी के स्थान पर योंही सदैव जाती थीं, मगर जब मुंशीजी का तोता मुँह-माँगे मुराद पूरी करने लगा, तो किसी की क्या मजाल थी कि जब दूल्हा शादी करने जाने लगता, तो स्त्रियाँ गाती-बजाती उसे तोते के पिंजड़े के पास ले जाकर उसका सर न झुकवातीं?

देवी-देवताओं में तोते का महत्व विशेष रहा। भले-बुरे सभी उसका लोहा मानते और उससे भय खाते। शाम तक मुंशीजी के खंडहर में पिंजड़े के पास नित्य-प्रति नाना प्रकार के चढ़ावे इकट्ठे हो जाते। पिंजड़े के नीचे शाम ही से घी के दीप जलने लगते, धूप और अगरबती की सुगंधि वायुमंडल में फैलने लगती। किन्तु जहाँ यह सब-कुछ होता, बूढ़ा तोता सदैव बायें डैने के नीचे मुँह छिपाये मौन साधे पिंजड़े में बैठा रहता।

जोखन दफ्तरी तोते का प्रभुत्व घटाने के उद्देश्य से उसे चोरों का देवता कहने लगे थे, किन्तु इसका परिणाम भी उलटा हुआ। धीरे-धीरे इस नाम से तोता सारे शहर में प्रसिद्ध हो गया और संकटग्रस्त लोग उठते-बैठते उसको इसी नाम से स्मरण करते।

जब सभी अन्ध-विश्वास की बाढ़ में बह चले, तो अकेले जोखन क्या कर लेते? बेचारे बहुधा यही सोचा करते कि उनकी सारी समाज-सेवा विफल सिद्ध हुई। जब आर्य-संतानों को उन्होंने देखा कि संतान की अभिलाषा से पिंजड़े के सामने सिर झुका रहे हैं, तो वे अधिक उदासीन हो गये। जिस माँ का बच्चा बीमार पड़ता, उसे पिंजड़े के पास ले जाकर तोते से स्वास्थ्य की भिक्षा माँगते। चोरों का देवता डैने के अन्दर मुँह छिपाये बैठा रहता। धीरे-धीरे सबका विश्वास अटल होता गया कि तोता रात-भर गाँजा पीता है और दिन-भर नशे से माता सोता है। स्वयं जोखन को जो बात सबसे अधिक परेशान करती, वह यह थी कि चोरों का देवता चाहे औरों के लिए एक अधार्मिक तमाशा ही क्यों न रहा हो, किन्तु स्वयं उनके लिए उसने एक महान संकट का रूप ग्रहण कर लिया था, इसलिए कि उनका घर औरों की अपेक्षा मुंशीजी के भूतवाले मकान के सब से समीप था। इसलिए उन्हें कई चिन्ताएँ एक साथ सताने लगी थीं।

प्रथम तो उन्हें आर्य-सन्तान पर शोक होता कि एक निराकार भगवान के माननेवाले वैदिक धर्म से इस प्रकार विमुख होकर चोरों के देवता के नाम गंडा-ताबीज बाँधे फिरने लगे हैं। दूसरी चिन्ता उन्हें इस बात की हो चली थी कि स्वयं उनका परिवार भी इसी बवंडर में पड़ने पर बाध्य हो रहा था। उनकी स्त्री उनसे छिपाकर अपनी ओर से पिंजड़े के नीचे कभी-कभी घी का दिया रखवाने लगी थीं। इसलिए जोखन को अब अधिक विश्वास न रहा कि उनके न रहने पर वैदिक धर्म घर में नाम-मात्र को भी न रह जायगा। इसके अतिरिक्त जो बात उन्हें और भी अधिक सताने लगी थी, वह यह कि चोरों-बदमाशों का भय था, जो रात के अँधेरे में मुंशीजी के वीरान मकान के बरामदे में नित्य इकट्ठा होते थे।

जोखन दफ़्तरी रात-रात-भर इसी चिन्ता में ग्रस्त अपनी नींद हराम करते। एक रात ऐसे ही खाट पर पड़े करवट बदलते इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि जो पलीतेदार बन्दूक काठ के बक्स में रखी है, अब उसकी सहायता-बिना काम न चलेगा। बन्दूक साल में केवल एक बार बाहर निकालते थे, जब उसका लइसेंस बदलवाने का समय आता था। किन्तु अपनी ज़िन्दगी का अब कोई ठिकाना न रहा। अपने बच्चों में कोई ऐसा न था, जो आफ़त-मुसीबत में बन्दूक का प्रयोग कर सकता। इसलिए जोखन ने खाट पर पड़े-पड़े निश्चय किया कि पत्नी को बन्दूक चलाना सिखा दें। मालूम नहीं, चोरों-बदमाशों की नीयत कब बिगड़ जाय।

प्रातःकाल सात-आठ का समय रहा होगा, जब आंगन में स्त्री के साथ खड़े हो पीछे से उनके दोनों हाथ पकड़े जोखन ने बन्दूक छुटायी। इस ज़ोर का धड़ाका हुआ कि पहाड़पुर के सारे बच्चे देखते-देखते उनके द्वार पर इकट्ठा हो गये। उस भीड़ में जो लड़का सबसे पीछे छूट गया था, उसकी समझ में जब कुछ भी न आया, तो उसने डरते-डरते मुड़कर मुंशीजी के बरामदे की ओर देखा। उसी समय पीछे से एक और लड़का बदहवास भागता-चिल्लाता आया—मुंशीजी का तोता मर गया!

तोता पिंजड़े के कोने में पैर ऊपर किये मरा पड़ा था। बच्चों की भीड़ एकदम बिखर गयी। भयभीत जो जिधर भाग सका, उधर ही भागा। चारों ओर शोर मच गया—मुंशीजी का तोता मर गया!......चोरों का देवता मर गया!...

बंदूक के धड़ाके के साथ यह भयानक दुर्घटना! सुननेवालों ने पहले यही समझा कि जोखन ने मुंशीजी के तोते को मार डाला। बेचारे जोखन अपराधी की भाँति घूम-घूमकर अपनी सफ़ाई में यही कहते फिरे कि उनकी पत्नी के

बन्दूक चलाने के धड़ाके से डरकर तोते का प्राणान्त हो गया। उनकी स्त्री अलग सशंकित अपने दुर्भाग्य को कोसती और रोती रही। यह पाप उन्हीं के हाथों होने को था। तोते की ओर से कौन रह गया था, जो उसकी आपबीती सुनाता।

पहाड़पुरवाले आज तक उस रहस्यमय पहेली को सुलझा न सके। जो कम अवस्था के होते हैं, वे यही समझते हैं कि चोरों का देवता बन्दूक के धड़ाके से डरकर मर गया। ऐसा सोचनेवाले जब बड़े होते हैं, तो क्षीण मुस्कान के साथ व्यंगात्मक टिप्पणी करते हैं कि जोखन की वृद्ध स्त्री के बन्दूक चलाने के हौसले की लज्जा से मुंशीजी का तोता दम तोड़ गया।

इलाहाबाद युनिवर्सिटी,
इलाहाबाद।

छुओं की बैठक

सुरिन्दर सिंह नरूला

संघ के नवयुवकों और शहीदी दल के दिलेर लड़कों की अगवाई में फ़सादियों की एक सबल टोली खूब ज़ोर का शोर-गुल करती हुई करमो ड्योढ़ी आ, आख़िरी मोड़ घूमकर कटरा जैमलसिंह में प्रवेश कर रही थी। इस टोली के अगले किनारे के नवयुवकों में बड़ा उत्साह था और उनके हाथों में पकड़े हुए नाना प्रकार के हथियार अपनी भयपूरित लिश-लिश करती हुई फ़ुहारों को हवा में छोड़ते थे। शहीदी दल के दिलेर लड़कों की कृपाणें धुएँ से काली थीं और कुछ पर गर्म ताज़े खून की बूँदें चमक रही थीं। संघी नवयुवकों के हाथों में लोहे की नोकवाली लाठियाँ थीं और भीड़ में कुछ के हाथों में ऊँची, लम्बी और ज़ालिम बर्छियाँ थीं। इस जन-समुदाय में एक निहंग सिख भी था, जिसका डील-डौल और सुविशाल शरीर नगरवासी नवयुवकों और अधेड़ पुरुषों में से बाहर निकल-निकल पड़ता था।

जिस समय यह टोली कटरा जैमलसिंह में मोड़ से घूमी, अगली पंक्ति के लड़कों का उत्साह कुछ मन्द पड़ गया था। इसका कारण इन लड़कों की कायरता नहीं हो सकता, क्योंकि इस अगली पंक्ति में वे संघी नवयुवक और शहीदी दल के दिलेर लड़के थे, जिनकी धाक की धूम पिछले कुछ दिनों से सारे नगर में फैली हुई थी। दुबले-पतले, निर्भय और निश्छल नगर के संघ के संचालक सीताराम के विषय में साम्प्रदायिक दंगों के शुरू से ही यह प्रसिद्ध हो गया था कि मुसलमान माताएँ उसका नाम लेकर अपने बच्चों को डराती थीं। जब नगर में इस प्रकार की किंवदन्तियाँ चली थीं, तो शहीदी दल के नवयुवक ख़ामख़ाह उससे ईर्ष्या करने लग गये थे। एक बार मैजासिंह दालगर की टोली में सीताराम की चर्चा चली थी, तो मैजासिंह अपने साथियों का विश्वास जीतने के लिए अभिमान-भरे स्वर में कह दिया था, सिंह बन्धुओ, ये मूँग की दाल खानेवाले हैं, सीताराम को इन सिरफिरों ने बाँस पर चढ़ा दिया है। मुसलमान डरेंगे और भागेंगे, तो हमारे कारनामों के कारण ही। आप लोगों को हरीसिंह नलुवा का तो पता ही है।...इस तरह मैजासिंह दालगर हरीसिंह नलुवा की वीरता की चर्चा करता हुआ जमरोद के युद्ध का आख्यान छेड़ने ही लगा था, पर कदाचित् उसके साथियों ने उसका यह आख्यान अनेक बार सुना था। एक साथी ने समझदार बनते हुए कहा, सुन लिया है तेरा सारा आख्यान! लोग तो, भाई, मेरे काम की क़दर करते हैं। हमारे शहीदी दल ने किया ही क्या है! बाज़ार के दुकानदारों और रेलवे के बाबुओं से हथियारों के लिए रुपये लेकर बाटियाँ छान गये। संघवाले कुछ करते हैं, तभी तो नाम होता है।

इसके बाद तो जैसे सीताराम और मैजासिंह दालगर के साथियों में एक प्रतियोगिता ही चलने लगी हो। दोनों की टोलियों ने चढ़-चढ़कर, बढ़-बढ़कर नगर-भर के मुसलमानी इलाकों में खूब मार-काट, लूट-खसोट की थी। दोनों सदा फ़सादियों की टोलियों के आगे-आगे रहते थे और जब किसी इलाके में लूट-खसोट शुरू होती, तो दोनों के साथी अलग-अलग दलों में बँट जाते थे और हठपूर्वक एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर मुसलमान नारियों का अपमान करते थे, मुसलमान बच्चों को कष्ट देते थे और मुसलमानों की जाय-

दादों का विध्वंस करते थे। इसलिए जब फ़सादियों की यह टोली मुसलमान इलाकों में प्रवेश करती, तो उनका मौन किसी कायरता का सूचक नहीं होता था। वे एक सैनिक दल की तरह शत्रु के प्रदेश में प्रविष्ट हो गये थे और पूरे-पूरे संयम के साथ आगे बढ़ना चाहते थे।

कटरा जैमलसिंह का सम्पूर्ण क्षेत्र पिछले दिनों के साम्प्रदायिक दंगों में जल चुका था। इस क्षेत्र में अधिक संख्या हिन्दू दुकानदारों की थी, पर आस-पास की गलियों में मुसलमानों का वास था। इसलिए अमृतसर के दूसरे मुसलमानी क्षेत्रों के विनाश का बदला लेने के लिए उन्होंने इस क्षेत्र की हिन्दू दुकानों को नष्ट और विध्वस्त कर डाला था।

सन्ध्या के धूमिल उजाले में जले हुए मकानों के आकार और ढाँचे भीषण दिखायी पड़ते थे। सारी सड़क मलबे से भरी हुई थी और सड़क के बीच की बम्बे की नाली का पानी मलबे में से रास्ता न बना सकने के कारण एक गहराई में से शाँ-शाँ करता हुआ गिर रहा था। बिजली के खम्भे और तारों के समूह सर्वथा व्यवस्थाहीन होकर इधर-उधर बिखरे पड़े थे। इस सारे उजड़े हुए क्षेत्र के अन्तिम किनारों में से धुएँ की एक मोटी-सी रेखा उठती हुई, वायु-मंडल को और भी अधिक गम्भीर बना रही थी। फ़सादियों की टोली धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी, जैसे कि शत्रु की सुरंगों के डर से सैनिक युद्ध के बीच की धरती को पार कर रहे हों।

टोली के बीच में से एक लड़के ने कन्हैया के कटरे की ओर संकेत करते हुए कहा—मोहन लाला, वह देखा है, सभी बैठकें जल-बल गयी हैं। इन दंगों का एक लाभ तो यह होगा कि वेश्याओं का भी नाश हो जायगा।

—वाह, भइया, वाह! तू भी अजीब उल्लू है, भला किसी चीज़ का नाश हो सकता है! और तुझे पता नहीं कि रामबाग़ में रहनेवाली हिन्दू वेश्याओं को अभी पिछले ही सप्ताह सन्ती पहलवान के आदमियों और सीताराम के संघियों ने निकालकर हनुमान के मन्दिर में पहुँचाया था। उनके होते हुए भला वेश्याओं का बीज-नाश हो सकता है?

—यार, कुछ भी हो, इन तुरकानियों के साथ तो अब कोई हिन्दू या सिख जाकर राख नहीं उड़ायेगा!—मोहन के पीछे खड़े एक सरदार ने कहा। इस सारी बात-चीत की आवाज़ टोली के दूसरे लोगों तक भी पहुँच गयी थी और सब-के-सब फ़सादियों की वृत्ति कन्हैया के कटरे की बैठकों पर एकाग्र हो गयी थी। कन्हैया का कटरा जैमलसिंह के कटरे की ओट में था, पर दंगों के कारण जैमलसिंह के कटरे का भीतरी भाग गिरकर ढेर हो गया था और दूर से ही कन्हैया का कटरा देखा जा सकता था। सारी टोली में कन्हैया के कटरे की और उसमें रहनेवाली वेश्याओं की बातें चल पड़ी और इन-सब में छम्मो का नाम बार-बार आता था।

इसका एक कारण तो यह था कि छम्मो की बैठक ही कन्हैया के कटरे की तबाही के बाद बच सकी थी। दूसरी बात यह थी कि छम्मो कन्हैया के कटरे की सबसे अधिक सुन्दर वेश्या थी। जब कभी आहलूवाले कटरे के किसी हिन्दू लाला के घर पर ब्याह-शादी या और किसी शकुन का उत्सव होता था, तो छम्मो को अवश्य बुलाया जाता था। साम्प्रदायिक दगों का दोर दौरा तो थोड़े समय से ही हुआ था, पर उससे पहले आहलूवाले कटरे के शौक़ीन लाला लोग बड़ी रुचि और उत्साह के साथ छम्मो का मुजरा सुनने जाते थे। सबसे बड़ी बात जो छम्मो के सम्बन्ध में प्रसिद्ध थी, वह यह थी कि वह नाचनेवाली होने के बावजूद बड़ी नेक और धार्मिक विचारोंवाली स्त्री थी। जब कभी उसको कोई हिन्दू किसी त्यौहार या ब्याह-शादी पर बुलाता, तो वह मीराबाई के वेश में प्रभु-भक्ति के भजन गाती थी। मीरा के वेश में उसका यौवन-भरा मुख दग-दग करता हुआ एक अनोखी प्रभा से उजागर हो जाता था। इसी तरह उसके पास एक मीरासी लड़का, शैदा, था। वह लड़का कोई सोलह-सत्रह बरस का था, उसकी मसें अभी भींगी ही थीं और बड़ा छैल-छबीला था वह लड़का। अनेक बार उसने कृष्ण बनकर छम्मो के साथ रासलीला की थी। इसी प्रकार से मुहर्रम के दिनों में छम्मो अपने मातमी लिबास में नात्रतें दोहराती और गाती रहती थी। इस कारण छम्मो सभी हिन्दू और मुसलमानों की साझी थी और सारा कन्हैया का कटरा गिरकर ढेर हो जाने पर भी, न तो हिन्दू बलवाइयों को और न ही मुसलमान बलवाइयों को इस बात का साहस हुआ कि छम्मो की बैठक को जलायें या उसको लूट सकें। फ़सादी आग की लपटों में भी छम्मो की बैठक बदस्तूर क़ायम रही और जब फ़सादों के अन्तिम दिनों में किसी भी

मुसलमान का अमृतसर में रहना बिल्कुल मुश्किल हो गया था, तो भी छम्मो ने नगर को छोड़ने से इन्कार कर दिया था। वह अपने मीरासी साथियों के साथ प्रति दिन सन्ध्या समय भजन-मण्डली लगाती थी और जब कोठों पर चढ़े हुए हिन्दू जवान लड़के उसके भजन की आवाज़ को दूर से आते हुए सुनते, तो उनके हृदय अपने अत्याचारों और अपनी बर्बर रुचियों पर ग्लानि का अनुभव किये बिना नहीं रह सकते थे। इसी प्रकार से भजन-मण्डली समाप्त होने पर वह नाअतें गाती थी और उसकी बैठक के पिछवाड़े रहनेवाले यह कहने के लिए विवश हो जाते थे कि इस पाप और अपराध के संसार में छम्मो ही एक 'अल्ला की बन्दी' रह गयी थी। इसके साथ-ही-साथ तुलना करने की दृष्टि से कन्हैया के कटरे की दूसरी वेश्याओं की बातें शुरू हो गयीं, रहिमत और नियामत की, जिनके विषय में यह मशहूर था कि जब बैसाखी और दीवाली के त्योहारों पर रामबाग़ के क्षेत्र में, कटरा शेरसिंह में और कन्हैया के कटरे में हृष्ट-पुष्ट और मतवाले जाट दल बाँधकर आते थे, तो वे इन क्षेत्रों को बहुत शोर-गुल मचाते और अट्टहास करते हुए लाँघते थे। किसी एक जाट का पिछली बैसाखी पर क्या हाल हुआ था, इस विषय में बलवाइयों ने बातें छेड़ दी थीं। इसके बाद मैजासिंह दालगर भी पीछे हटकर बीच की टोली में ही मिल गया था, और उसने बड़े विस्तार के साथ आस-पास के क्षेत्र में जाटों-सरदारों के साम्प्रदायिक कारनामों की चर्चा चला दी। किस-किस तरह तरन-तारन के इलाके में, बटाले के क्षेत्रों में और अजनाला तहसील में सिख सरदारों ने अपने निकटवासी मुसलमानों को गुद्दड़-कूड़े की तरह इकट्ठा करके फूँक डाला था। इसकी बातें करता हुआ मैजासिंह बड़े उत्साह में जाटों की बहादुरी के बारे में बातें करने लगा।

किस प्रकार एक बार दीवाली पर कुछ जाट शराब पीकर घंटाघर के पास के मैदान में बैठे थे। किस प्रकार से एक शराबी, मतवाले जाट ने हाथ उठाकर कहा था, जो मेरा हाथ काट देगा, उसको मैं सौ रुपया दूँगा। और किस प्रकार से एक दूसरे शराबी ने चादर में छिपायी हुई कृपाण को निकालकर उस दूसरे जाट की बाँह काट दी थी। फिर मैजासिंह ने हाथ उठाकर बतलाया कि पहले जाट ने साबित बाँहवाले हाथ से सौ रुपया अपनी टेंट में से निकालकर दे दिया था। जाटों के बारे में और भी बातें होती रहीं और किसी आन्तरिक उत्साह के प्रभाव से बलवाइयों में से जवान लड़के बोलियाँ देने लग गये थे। मोहन लाला ने स्वर को खूब ऊँचा करके कहा—तेरी हिक ते मलाइयाँ आइयाँ, कच्चा दुद्ध पीण वालिये!—और एक दूसरे सिख युवक ने जैसे कि बोली का उत्तर बोली में ही दिया हो, अपना पूरा ज़ोर लगाकर कहा—ढाँडे लद्दी जान्दा एँ प्राहुणया आए, रस पी गये पिंड दे मुंडे (गधे लादकर लिये जाते हो, ऐ पाहुन, रस तो पी गये गाँव के लड़के)! बस फिर क्या था, फ़सादी टोली के जवान लड़के अपनी दबी-घुटी रीझों के वशीभूत होकर ऊट-पटांग बकने लग गये और जब टोली कन्हैया के कटरे में घुसी, तो बलवाइयों की बहुसंख्या पर वही उल्लास और उत्साह छाया हुआ था, जो अमृतसर-निवासियों के तुष्ट-परितुष्ट, और अच्छी फसलों के कमाऊ लड़कों के चेहरों पर देखा गया था, जब कि ये जाट लड़के उत्सव-त्यौहार पर कन्हैयावाले कटरे में दल बाँध-बाँधकर फेरे डालते थे।

रहिमत का मकान कन्हैयावाले कटरे की नुक्कड़ पर ही था और यह दो दुकानों के बीचोबीच एक गली को लाँघकर पिछे हटा हुआ था। अभी अमृतसर में छुरेबाजी आम नहीं हुई थी और आग लगने की भी एक-दो ही घटनाएँ हुई थीं। बहुत-से हिन्दू तमाशबीन डरते हुए कन्हैया के कटरे में नहीं जाते थे, क्योंकि उनको इस बात की शंका रहती थी कि कहीं रात में देर से लौटते हुए कोई तुरकड़ा तंग न करे। इस प्रकार रहिमत का बाजार उसके दलाल करीम के कथनानुसार मन्दा पड़ गया था। एक दिन पता नहीं करीम को क्या सूझी, उसने गेरू से रहिमत की बैठक के आगे लिख दिया, सिर्फ पाकिस्तानियों के लिए! इससे आस-पास की मुसलमान आबादियों में रहिमत की बड़ी चर्चा हुई और तमाशबीन इकट्ठे हो-होकर उसकी बैठक में आने लग गये थे। दूसरी वेश्याओं ने भी अवसर को शोचनीय समझकर अपने राजनीतिक मतभेद की घोषणा कर दी थी। नियामत ने साफ-साफ घोषणा कर दी थी कि वह न तो पाकिस्तान के लिए है, न हिन्दुस्तान के लिए है। वह तो हर उस व्यक्ति के लिए है, जो सौन्दर्य का ग्राहक है और

पैसे का धनी है। उसने अपनी बैठक के बाहर यह बोर्ड लटकवा दिया था, सेठों और खोजों के लिए। एक अन्य वेश्या रहीमा नाम की कन्हैया के कटरे के बीच में रहती थी। इस के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध था कि जब अमावस्या के दिन बहुत-सी दूसरी वेश्याएँ जाटों की टोलियों से डरती हुई अपने अपने कोठों में बन्द रहती थीं, यह दिन में भी खिड़की में गैस-लैम्प लटका के रखती थी। मैजासिंह ने अपने साथियों को बतलाया था कि किस प्रकार से रहीमा पूरा-पूरा दिन नीचे लाँघते हुए जाटों की ओर ललचायी नज़रों से देखती रहती थी। दूसरी अनेक वेश्याओं ने अपने दलालों के द्वारा हाथ से लिखे बोर्डों के माध्यम से यह स्पष्ट कर दिया था कि वे राजनीतिक और धार्मिक झगड़ों से दूर हैं। और अल्लारखी नाम की एक वेश्या ने अपने कोठे के बाहर यह लिखवाया था, हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई। वेश्याओं के सम्बन्ध में ये सब बातें दंगों के दिनों में सरक बाणों की तरह उड़ती रहती थीं और अमृतसर के रहनेवाले, अपनी रुचियों के अनुसार उनकी निन्दा करते थे या प्रशस्तियाँ गाते रहते थे। पर जब भी छम्मो की चर्चा चलती थी, तो सब के सिर आदर से झुक जाते थे, और इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि छम्मो पेशा नहीं करती थी।

जब बलवाइयों की टोली रहिमत की बैठक के पास पहुँची, तो उन्होंने देखा कि आस-पास की सभी दुकानें जल चुकी थीं, पर गली के पिछले भाग में रहिमत की बैठक अपनी पुरानी शान में खड़ी थी और उसके बाहर, सिर्फ पाकिस्तानियों के लिए, का बोर्ड भी लटका हुआ था। यद्यपि सारे बलवाइयों को इस बात का पूरा-पूरा पता था कि बैठकवाले तो नगर छोड़कर भाग गये थे, पर उनके शरीर का तनाव एक वहशी झुँझलाहट में बदल गया था और सीताराम ने, हर-हर महादेव, का स्वर गुँजाते हुए बैठक की ओर बढ़ने का आदेश दिया। मैजासिंह दालगर भला कैसे चुप रह सकता था! उसने भी, सत स्री अकाल, का नारा लगाया और अपने साथियों को उत्साहित करता हुआ पहल करने के लिए कहने लगा। थोड़े ही समय में सभी बलवाई रहिमत की बैठक का दरवाजा तोड़ने लगे। बाहर के बोर्ड को उतार दिया गया और पास में पड़े हुए जले तख्तों में से एक कोयला उठाकर एक उत्साही संघी ने दीवार पर लिखना शुरू कर दिया, हिन्दुओं के लिए, सिर्फ हिन्दुओं के लिए, संघ के नवयुवकों के लिए। उसकी इस व्याकुल उत्कण्ठा को देखकर एक बड़ी आयु के सिख ने कहा—ओए! अब यहाँ रहिमत ने कोई लौट आना है!

—तो क्या हुआ, अब सारे भारतवर्ष पर संघियों का राज होगा। सब-कुछ हमारे लिए, सब-कुछ संघियों के लिए!—युवक पागल आकांक्षा से बड़बड़ा रहा था।

रहिमत की बैठक के सामान को बुरी तरह से लूट लिया गया। झाड़-फानूसों को ईंटें मार-मारकर तोड़ दिया गया। कालीन फाड़ डाले गये और एक किनारे पड़े हुए पेंचवान के पेंदे को एक टीकाधारी ने उठाते हुए कहा—मैं इसका ऊपरी भाग उतरवाकर इसमें अपनी छतपर तुलसी लगवाँऊगा।...एक ओर तखत पर गावतकिया पड़ा हुआ था। मैजासिंह के एक साथी के दिल में पता नहीं क्या आया, उसने अपनी कृपाण के एक ही वार से गावतकिए का झटका कर दिया। दूसरे एक लड़के ने उसको एक सिरे से पकड़कर हवा में उछालना शुरू कर दिया और क्षण में ही पूरा-का-पूरा हाल कमरा सेमल की रूई के कणों से आच्छन्न हो गया। दूसरे किनारे पर तबले पड़े थे, और बेपरवाही से बिछे हुए हुए सुकेशी खासे पर झाँझरें और पाजेबें पड़ी थीं। एक बलवाई ने, जिसने शायद शराब ज्यादा पी ली थी, झाँझरों को अपने पैरों में पहन लिया और झट दूसरे किसी बलवाई ने तबले पर थाप देनी शुरू कर दी। फिर सबने मिल-जुलकर वह गन्दी बकवास की कि ईश्वर ही बचाये! एकदम ही किसी ने झूठ या सच यह आतिशबाज़ी छोड़ दी कि गोरे फ़ौजियों की पलटन की लारी का हार्न सुनायी दिया था। सब बलवाई बाहर बाजार की ओर भाग खड़े हुए। पर थोड़ी दूर भागने के बाद उनको पता लग गया कि वह ख़बर तो बिल्कुल झूठ थी। गोरे अमृतसर की छावनी छोड़ गये थे और अब तो राज्य सिख तथा राजपूत सैनिक भाइयों के हाथ में था। कुछ बलवाई इस बात के पक्ष में थे कि रहिमत की बैठक में दुबारा वापस चला जाय, पर सबने बहु-सम्मति से छम्मो की बैठक में जाने का निर्णय कर लिया।

छम्मो की बैठक आस-पास के जले हुए और गिरे हुए मकानों के बीचो-बीच एक अजीब शान के साथ खड़ी थी।

मुसलमान का अमृतसर में रहना बिल्कुल मुश्किल हो गया था, तो भी छम्मो ने नगर को छोड़ने से इन्कार कर दिया था। वह अपने मीरासी साथियों के साथ प्रति दिन सन्ध्या समय भजन-मण्डली लगाती थी और जब कोठों पर चढ़े हुए हिन्दू जवान लड़के उसके भजन की आवाज़ को दूर से आते हुए सुनते, तो उनके हृदय अपने अत्याचारों और अपनी बर्बर रुचियों पर ग्लानि का अनुभव किये बिना नहीं रह सकते थे। इसी प्रकार से भजन-मण्डली समाप्त होने पर वह नाअतें गाती थी और उसकी बैठक के पिछवाड़े रहनेवाले यह कहने के लिए विवश हो जाते थे कि इस पाप और अपराध के संसार में छम्मो ही एक 'अल्ला की बन्दी' रह गयी थी। इसके साथ-ही-साथ तुलना करने की दृष्टि से कन्हैया के कटरे की दूसरी वेश्याओं की बातें शुरू हो गयीं, रहिमत और नियामत की, जिनके विषय में यह मशहूर था कि जब बैसाखी और दीवाली के त्योहारों पर रामबाग़ के क्षेत्र में, कटरा शेरसिंह में और कन्हैया के कटरे में हृष्ट-पुष्ट और मतवाले जाट दल बाँधकर आते थे, तो वे इन क्षेत्रों को बहुत शोर-गुल मचाते और अट्टहास करते हुए लाँघते थे। किसी एक जाट का पिछली बैसाखी पर क्या हाल हुआ था, इस विषय में बलवाइयों ने बातें छेड़ दी थीं। इसके बाद मैजासिंह हालगर भी पीछे हटकर बीच की टोली में ही मिल गया था, और उसने बड़े विस्तार के साथ आस-पास के क्षेत्र में जाटों-सरदारों के साम्प्रदायिक कारनामों की चर्चा चला दी। किस-किस तरह तरन-तारन के इलाके में, बटाले के क्षेत्रों में और अजनाला तहसील में सिख सरदारों ने अपने निकटवासी मुसलमानों को गुद्दड़-कूड़े की तरह इकट्ठा करके फूँक डाला था। इसकी बातें करता हुआ मैजासिंह बड़े उत्साह में जाटों की बहादुरी के बारे में बातें करने लगा।

किस प्रकार एक बार दीवाली पर कुछ जाट शराब पीकर घंटाघर के पास के मैदान में बैठे थे। किस प्रकार से एक शराबी, मतवाले जाट ने हाथ उठाकर कहा था, जो मेरा हाथ काट देगा, उसको मैं सौ रुपया दूँगा। और किस प्रकार से एक दूसरे शराबी ने चादर में छिपायी हुई कृपाण को निकालकर उस दूसरे जाट की बाँह काट दी थी। फिर मैजासिंह ने हाथ उठाकर बतलाया कि पहले जाट ने साबित बाँहवाले हाथ से सौ रुपया अपनी टेंट में से निकालकर दे दिया था। जाटों के बारे में और भी बातें होती रहीं और किसी आन्तरिक उत्साह के प्रभाव से बलवाइयों में से जवान लड़के बोलियाँ देने लग गये थे। मोहन लाला ने स्वर को खूब ऊँचा करके कहा—तेरी हिक ते मलाइयाँ आइयाँ, कच्चा दुद्ध पीण वालिये!—और एक दूसरे सिख युवक ने जैसे कि बोली का उत्तर बोली में ही दिया हो, अपना पूरा ज़ोर लगाकर कहा—ढाँडे लद्दी जान्ना एँ प्राहुणया आए, रस पी गये पिंड दे मुंडे (गधे लादकर लिये जाते हो, ऐ पाहुन, रस तो पी गये गाँव के लड़के)! बस फिर क्या था, फ़सादी टोली के जवान लड़के अपनी दबी-घुटी रीझों के वशीभूत होकर ऊट-पटांग बकने लग गये और जब टोली कन्हैया के कटरे में घुसी, तो बलवाइयों की बहुसंख्या पर वही उल्लास और उत्साह छाया हुआ था, जो अमृतसर-निवासियों के तुष्ट-परितुष्ट, और अच्छी फसलों के कमाऊ लड़कों के चेहरों पर देखा गया था, जब कि ये जाट लड़के उत्सव-त्यौहार पर कन्हैयावाले कटरे में दल बाँध-बाँधकर फेरे डालते थे।

रहिमत का मकान कन्हैयावाले कटरे की नुक्कड़ पर ही था और यह दो दुकानों के बीचोबीच एक गली को लाँघकर पिछे हटा हुआ था। अभी अमृतसर में छुरेबाजी आम नहीं हुई थी और आग लगने की भी एक-दो ही घटनाएँ हुई थीं। बहुत-से हिन्दू तमाशबीन डरते हुए कन्हैया के कटरे में नहीं जाते थे, क्योंकि उनको इस बात की शंका रहती थी कि कहीं रात में देर से लौटते हुए कोई तुरकड़ा तंग न करे। इस प्रकार रहिमत का बाजार उसके दलाल करीम के कथनानुसार मन्दा पड़ गया था। एक दिन पता नहीं करीम को क्या सूझा, उसने गेरू से रहिमत की बैठक के आगे लिख दिया, सिर्फ पाकिस्तानियों के लिए! इससे आस-पास की मुसलमान आबादियों में रहिमत की बड़ी चर्चा हुई और तमाशबीन इकट्ठे हो-होकर उसकी बैठक में आने लग गये थे। दूसरी वेश्याओं ने भी अवसर को शोचनीय समझकर अपने राजनीतिक मतभेद की घोषणा कर दी थी। नियामत ने साफ-साफ घोषणा कर दी थी कि वह न तो पाकिस्तान के लिए है, न हिन्दुस्तान के लिए है। वह तो हर उस व्यक्ति के लिए है, जो सौन्दर्य का ग्राहक है और

पैसे का धनी है। उसने अपनी बैठक के बाहर यह बोर्ड लटकवा दिया था, सेठों और खोजों के लिए। एक अन्य वेश्या रहीमा नाम की कन्हैया के कटरे के बीच में रहती थी। इस के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध था कि जब अमावस्या के दिन बहुत-सी दूसरी वेश्याएँ जाटों की टोलियों से डरती हुई अपने अपने कोठों में बन्द रहती थीं, यह दिन में भी खिड़की में गैस-लैम्प लटका के रखती थी। मैजासिंह ने अपने साथियों को बतलाया था कि किस प्रकार से रहीमा पूरा-पूरा दिन नीचे लाँघते हुए जाटों की ओर ललचायी नज़रों से देखती रहती थी। दूसरी अनेक वेश्याओं ने अपने दलालों के द्वारा हाथ से लिखे बोर्डों के माध्यम से यह स्पष्ट कर दिया था कि वे राजनीतिक और धार्मिक झगड़ों से दूर हैं। और अल्लारखी नाम की एक वेश्या ने अपने कोठे के बाहर यह लिखवाया था, हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई। वेश्याओं के सम्बन्ध में ये सब बातें दंगों के दिनों में सरक बाणों की तरह उड़ती रहती थीं और अमृतसर के रहनेवाले, अपनी रुचियों के अनुसार उनकी निन्दा करते थे या प्रशस्तियाँ गाते रहते थे। पर जब भी छम्मो की चर्चा चलती थी, तो सब के सिर आदर से झुक जाते थे, और इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि छम्मो पेशा नहीं करती थी।

जब बलवाइयों की टोली रहिमत की बैठक के पास पहुँची, तो उन्होंने देखा कि आस-पास की सभी दुकानें जल चुकी थीं, पर गली के पिछले भाग में रहिमत की बैठक अपनी पुरानी शान में खड़ी थी और उसके बाहर, सिर्फ पाकिस्तानियों के लिए, का बोर्ड भी लटका हुआ था। यद्यपि सारे बलवाइयों को इस बात का पूरा-पूरा पता था कि बैठकवाले तो नगर छोड़कर भाग गये थे, पर उनके शरीर का तनाव एक वहशी झुँझलाहट में बदल गया था और सीताराम ने, हर-हर महादेव, का स्वर गुँजाते हुए बैठक की ओर बढ़ने का आदेश दिया। मैजासिंह दालगर भला कैसे चुप रह सकता था! उसने भी, सत स्री अकाल, का नारा लगाया और अपने साथियों को उत्साहित करता हुआ पहल करने के लिए कहने लगा। थोड़े ही समय में सभी बलवाई रहिमत की बैठक का दरवाजा तोड़ने लगे। बाहर के बोर्ड को उतार दिया गया और पास में पड़े हुए जले तख्तों में से एक कोयला उठाकर एक उत्साही संघी ने दीवार पर लिखना शुरू कर दिया, हिन्दुओं के लिए, सिर्फ हिन्दुओं के लिए, संघ के नवयुवकों के लिए। उसकी इस व्याकुल उत्कण्ठा को देखकर एक बड़ी आयु के सिख ने कहा—ओए! अब यहाँ रहिमत ने कोई लौट आना है!

—तो क्या हुआ, अब सारे भारतवर्ष पर संघियों का राज होगा। सब-कुछ हमारे लिए, सब-कुछ संघियों के लिए!—युवक पागल आकांक्षा से बड़बड़ा रहा था।

रहिमत की बैठक के सामान को बुरी तरह से लूट लिया गया। झाड़-फानूसों को ईंटें मार मारकर तोड़ दिया गया। कालीन फाड़ डाले गये और एक किनारे पड़े हुए पेंचवान के पेंदे को एक टीकाधारी ने उठाते हुए कहा—मैं इसका ऊपरी भाग उतरवाकर इसमें अपनी छतपर तुलसी लगवाँऊगा।...एक ओर तखत पर गावतकिया पड़ा हुआ था। मैजासिंह के एक साथी के दिल में पता नहीं क्या आया, उसने अपनी कृपाण के एक ही वार से गावतकिए का झटका कर दिया। दूसरे एक लड़के ने उसको एक सिरे से पकड़कर हवा में उछालना शुरू कर दिया और क्षण में ही पूरा-का-पूरा हाल कमरा सेमल की रूई के कणों से आच्छन्न हो गया। दूसरे किनारे पर तबले पड़े थे, और बेपरवाही से बिछे हुए हुए मुकेशी खासे पर झाँझरें और पाजेबें पड़ी थीं। एक बलवाई ने, जिसने शायद शराब ज्यादा पी ली थी, झाँझरों को अपने पैरों में पहन लिया और झट दूसरे किसी बलवाई ने तबले पर थाप देनी शुरू कर दी। फिर सबने मिल-जुलकर वह गन्दी बकवास की कि ईश्वर ही बचाये! एकदम ही किसी ने झूठ या सच यह आतिशबाज़ी छोड़ दी कि गोरे फ़ौजियों की पलटन की लारी का हार्न सुनायी दिया था। सब बलवाई बाहर बाजार की ओर भाग खड़े हुए। पर थोड़ी दूर भागने के बाद उनको पता लग गया कि वह ख़बर तो बिल्कुल झूठ थी। गोरे अमृतसर की छावनी छोड़ गये थे और अब तो राज्य सिख तथा राजपूत सैनिक भाइयों के हाथ में था। कुछ बलवाई इस बात के पक्ष में थे कि रहिमत की बैठक में दुबारा वापस चला जाय, पर सबने बहु-सम्मति से छम्मो की बैठक में जाने का निर्णय कर लिया।

छम्मो की बैठक आस-पास के जले हुए और गिरे हुए मकानों के बीचो-बीच एक अजीब शान के साथ खड़ी थी।

कई बार उसके अगल-बगल में आग लगने की दुर्घटनाएँ हुई थीं, पर उसकी बैठक को कोई भी नुक़सान नहीं पहुँचा था। लोग हैरान तो ज़रूर थे, पर सबका यह विचार था कि कि छम्मो के साथ किसी का वैर-विरोध नहीं था और उसकी सदाचारिता ने ही उसको आश्रय दिया था।

जब बलवाइयों की टोली छम्मो की बैठक की सीढ़ियाँ चढ़ रही थी, तो उनका शोर-गुल कम हो गया। सबके चेहरों पर गम्भीरता के चिन्ह थे और कुछ अधिक उग्र प्रकृति के बलवाई रहिमत की बैठक की ओर लौट गये थे। जब ये बलवाई बैठक की सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे, तो वे इस प्रकार से अनुभव कर रहे थे, जैसे कि वे किसी शिष्ट, परदे-दार, कुलीन घर की सीढ़ियाँ चढ़ रहे हों। छम्मो के बारे में किसी सिख या मुसलमान को कोई गिला नहीं था, और कई बार जब किसी कुलीन घर के लड़के को कन्हैया के कटरे में घूमने के कारण ताड़ना मिलती थी, तो वह छम्मो की बैठक में भजन या नाअत सुनने का बहाना बनाकर अपने हिन्दू या मुसलमान माता-पिता को धोखा दे सकता था। जब बलवाइयों की टोली बैठक में प्रविष्ठ हुई, तो सुसज्जित बैठक अनुपम छटा से चमक रही थी। प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर बड़ी स्वच्छता से पड़ी हुई थी। तखत की चादर नयी, धुली हुई, अपनी पूरी उज्ज्वलता को उद्घाटित कर रही थी, और गावतकिये के गिलाफ़ भी उजले-उजले लगते थे। पूरी बैठक में न तो दूसरी वेश्याओं की बैठकों की तरह पान की पीक और न ही शराब-कबाब की दुर्गन्ध के निशान थे, और छत से लटके हुए फ़ानूसों में मोमबत्तियाँ नयी ही मालूम पड़ती थीं। बलवाइयों में से बहुत-से तो छम्मो की बैठक में पहले भी कई बार आये थे, पर मैजासिंह और उसके दूसरे साथियों के लिए यह एक अभूतपूर्व अनुभव था। जब मार्ग में छम्मो की बातें चलती थीं, तो मैजासिंह ने कई बार जुगुप्सा-भरे क्रोध में यह कहा था कि छम्मो आखिर मुसलमान ही थी और उसके निष्पक्ष होने की सभी बातें झूठी थीं। वह उसके भजनों को और उसकी नाअतों को केवल कपट ही समझता था। पर जब वह अपने दूसरे साथियों के साथ छम्मो की बैठक में आया, तो आदर की भावना ने उसको भी अपने प्रभाव से अभि-भूत कर दिया था।

छम्मो की बैठक का पिछला भाग टोली में से अधिकांश के लिए एक पहेली थी। साधारण वेश्याएँ तो अपनी बैठक का पिछला कमरा अपने ग्राहकों के लिए परदेदार-सा रखती हैं, पर छम्मो अपना मुजरा सर्वदा बैठक में खुले और प्रत्यक्ष रूप से करती थी। एक-दो बार उसकी बैठक में आये हुए कुछ शराबियों ने बैठक के पिछले कमरे की दहलीज़ पार करने का प्रयास किया था, पर छम्मो और उसके आदमियों ने, उनको सीढ़ियाँ उतर जाने के लिए बाध्य कर दिया था।

अब बलवाइयों की टोली में से अधिकांश इस बात के लिए बड़े उतावले हो रहे थे कि वे छम्मो की बैठक के पिछले भाग को देख सकें। यह आकांक्षा कई अन्य कारणों से भी प्रबल थी। सारी राह मैजासिंह और उसके साथी झगड़ा करते आये थे। एक पक्ष तो छम्मो के धर्मानुराग को बहुत सराह रहा था और इस बात पर अफ़सोस प्रकट कर रहा था कि दंगों के कारण उस बेचारी को भी नगर छोड़ के चला जाना पड़ा था। दूसरा पक्ष, जिसका नेतृत्व मैजासिंह कर रहा था, यह मत रखता था कि कोई सूअर की बच्ची विश्वास के योग्य नहीं हो सकती। दोनों पक्ष अपने-अपने विचारों की पुष्टि के लिए छम्मो की बैठक के पिछले कमरे की तलाशी लेने के लिए उतावले थे।

जब कमरा खुला, तो पहली चीज़ जिसपर सबकी दृष्टि पड़ी, वह थी समानेवाली दीवार पर एक शिष्ट तिलकधारी हिन्दू का बड़ा-सा चित्र। इस चित्र के आस-पास रामकृष्ण की मूर्त्तियाँ दीवार में अटकायी हुई थीं। चित्र के नीचे लिखा था, मेरे प्यारे स्वर्गवासी पिताजी। इस विशाल चित्रवाली दीवार के समानेवाली दीवार पर एक मुसलमान का एन्लार्ज किया हुआ फोटो था और इसके आस-पास जड़ाऊ मुकेश पट्टों पर, या अल्लाह, और, या मुहम्मद, लिखा हुआ था और फोटो के नीचे एक काष्ठ-खण्ड पर मोटे अक्षरों में उत्कीर्ण किया हुआ था, मेरे प्यारे चाचाजी। बलवाइयों की नज़रें अभी विशाल चित्र और बड़ी फोटो को देखकर असमञ्जस में पड़ी हुई थीं और उनकी समझ में पिताजी और चाचाजी का भेद भी नहीं आया था कि मैजासिंह के किसी साथी ने एक कोने में पड़े हुए लकड़ी के बड़े सन्दूक का ताला तोड़कर सामान को कमरे में बिखेरना शुरू कर दिया।

इस सामान में रामनामी अँगौछे थे, मालाएँ थीं, रामकृष्ण की पीतल की मूर्त्तियाँ थीं, और ताज कम्पनी के निर्मित पवित्र आयतों के पटक थे। कुछ नक़दी भी एक मिट्टी के बन्द पात्र में छनक रही थी और कुछ दरियों के नीचे पुराने चित्र थे।

सब बलवाइयों का ध्यान अब लकड़ी के सन्दूक से निकाली हुई चीज़ों की ओर था और जब सन्दूक के नीचे से फोटोओं का पुलिन्दा निकला, तो सीताराम ने उछलकर उसे पकड़ लिया। एक फोटो बहुमूल्य वस्त्र के टुकड़े में लिपटी हुई थी और जब उसको बाहर निकाला गया, तो वह साफ़ और सुस्पष्ट थी। यह सोलह-सत्रह बरस की एक युवती की फोटो थी और इसपर लिखा हुआ था, कमला देवी अलमारूफ़ छम्मो। सीताराम ने जैसे किसी ऐन्द्रजालिक दर्पण में भूतकाल की घटनाओं का साक्षात कर लिया हो। ललकारता हुआ कहने लगा—भाइयो! यह छम्मो अवश्य ही हिन्दू परिवार में से रही होगी और, और फिर विधवा होने के कारण या किसी अत्याचारी पति से तंग आकर मुसलमानों के हाथ लग गयी होगी। ये मुसलमान कम्बख्त! —इतना कहकर उसने अपनी लाठी को हवा में उछाला और 'मेरे चाचा, प्यारे चाचा' पर ज़ोर की चोट की। फोटो ज़मीन पर गिर पड़ी, दूसरे ही पल दूसरे संवियों ने 'या अल्लाह' और 'या मुहम्मद' वाले पटक तोड़ डाले और उनको पैरों के नीचे कुचलने लग गये। पूरी बैठक इस कोलाहल से हुमहुमा उटी और चारों ओर शोर-सा मच गया। घृणा की उमस से कमरे की हवा घुट गयी और बलवाइयों ने पागल अभिलाषा के वशी भूत होकर वस्तुओं को उजाड़ना शुरू कर दिया था। एक आदमी जो बलवाइयों के साथ मार्ग में ही आकर मिला था, एक तिराई पर खड़ा होकर ऊँची आवाज़ में कहने लगा—भाइयो! पागल न बनो, भले-बुरे को पहचानो, मैं कन्हैया के कटरे में शाम को मोतिया के फूलों की मालाएँ बेचा करता था। मुझे छम्मो के व्यक्तिगत जीवन के विषय में पर्याप्त ज्ञान है। वह कोठे पर चढ़ने के पहले एक अनाथ हिन्दू बालिका थी और इस दीनदार मुसलमान ने उसका पालन-पोषण किया था। जब वह जवान हुई, तो इस भले-मानस ने अपने किसी हिन्दू परिचित के लड़के के साथ उसका विवाह कर दिया। जब तक वह जीवित रहा, सदा छम्मो से पुत्रियों की तरह स्नेह करता रहा। छम्मो के विवाह के पश्चात्, यह दीनदार मुसलमान स्वर्गवासी हो गया। छम्मो के पति ने इसके अनन्तर किसी दूसरी स्त्री को अपने यहाँ रख लिया और छम्मो का परित्याग कर दिया। छम्मो का असली नाम कमला ही था और बाद में जब किसी ने भी उसको आश्रय न दिया, तो वह कोठे पर बैठने के लिए विवश हो गयी। यह इसी नेकदिल मुसलमान से ली तालीम का ही नतीजा था कि छम्मो ने कभी पेशा नहीं किया था।

माली की आवाज़ में लोच थी, पर लोग उसकी आवाज़ नहीं सुन रहे थे। मैंजासिंह और उसके साथियों ने दूसरे कोने में रखा सन्दूक भी तोड़ दिया था और चाँदी के पात्रों तथा आभूषणों के विषय में झगड़ा हो रहा था। बड़े चित्र के आस-पास की राम-कृष्ण की मूर्त्तियाँ अपने विस्तार में संकुचित होती जा रही थीं और फ़र्श पर पटक खण्ड-खण्ड हो गये थे।

पंजाबी से अनु० तिलकराज चोपड़ा

उस दिन मेरे पास यूनान के पुराने सम्राट सिकंदर चले आये। कहने लगे कि अब मैंने दिग्विजय का काम छोड़ दिया है। आज के इस ऐटम-युग में दिग्विजय की टेकनीक बहुत बदल गयी है। इसी कारण मैं सोचता हूँ कि मैं कोई दूसरा काम करूँ।

मैंने ऊबकर पूछा—तो आख़िर आप करेंगे क्या? दिग्विजय के काम के अलावा तो आप कुछ भी नहीं कर सकते। चाँदी का फाटका खेलना या गाँधी-टोपी लगाना आप जानते ही नहीं। इसलिए आप चाहे क्लर्की कीजिए या दिग्विजय कीजिए।

सम्राट सिकंदर ने कहा—अजी नहीं, दिग्विजय के काम से मैं एकदम ऊब गया हूँ। अब मुझसे यह नहीं होगा।

मैंने कहा—तो फिर क्लर्की कीजिए। यों डिपटी-मैजिस्ट्रेटी के लिए भी आप कोशिशें भिड़ा सकते थे; लेकिन आप अब सरकारी नौकरी के लिए ओवर-एज हो गये हैं। मेरा ख़याल है कि आपकी उम्र दो हज़ार साल से ज्यादा हो गयी होगी, क्यों?

सम्राट सिकंदर बोले—हाँ, दो हज़ार वर्षों में क्या शक है! लेकिन भई, क्लर्की तो हमसे नहीं होगी। मैं अपने लिए एक दूसरा काम सोच रहा हूँ। उस काम में न दिग्विजय की तरह मिहनत है और न परीशानी। उस काम में किसी को कत्ल भी नहीं करना पड़ता और आसानी से लाखों रुपये खड़े हो जाते हैं।

मैंने तमाम अक्ल दौड़ायी। लेकिन ऐसा कोई काम नज़र नहीं आया, जिसमें किसी को कत्ल भी नहीं करना पड़े, कोई परीशानी भी नहीं उठानी पड़े और लाखों रुपये पैदा हो जायँ। तब मैंने उनसे कहा—ऐसा तो कोई भी काम नहीं!

सम्राट सिकंदर कहने लगे—क्यों, ऐसा एक काम तो ज़रूर है। मैंने सुना है कि सिनेमा में काम करनेवाले लाखों रुपये कमाते हैं। इसी लिए मैंने सोचा है कि मैं सिनेमा में भर्ती हो जाऊँ।

ख़याल तो बड़ा अच्छा था। मुझे याद आया कि एक डाइरेक्टर महोदय 'चाणक्य', 'चंद्रगुप्त' और 'चंपाकली' तथा 'चमकती चाँदी' नाम की चार तस्वीरें तैयार करने-

वाले हैं। इसके लिए सभी पात्र तो उन्हें मिल रहे थे, लेकिन सिकंदर का काम करनेवाला उन्हें बहुत ढूँढ़ने पर भी नहीं दिखलायी देता था। मैंने कहा—हाँ, आपका ख़याल तो बड़ा बढ़िया है। आप सिकंदर का काम कर सकेंगे ?

सम्राट सिकंदर ने कहा—सिकंदर तो मैं हूँ ही, फिर सिकंदर का काम करने में कौन-सी अड़चन आ सकती है ? यह तो मेरे लिए बहुत ही अच्छा होगा। जो काम मैं कर चुका हूँ, उसी को अभिनय में करके दिखा देना है।

मैंने कहा—तो बस ठीक है। मेरे एक जान-पहचान के डाइरेक्टर हैं। वे चार खेल तैयार कर रहे हैं और चारों तस्वीरों के लिए चार सिकंदर की खोज में हैं।

इसपर सिकंदर ने कहा—चार सिकंदरों की ज़रूरत क्या है ? मैं अकेला ही सभी सिकंदरों का काम कर दूँगा। आख़िर मैंने जो काम किये हैं, वही कारनामे तो पर्दे पर दिखलाये जायेंगे।

मगर जब मैं उन्हें डाइरेक्टर के पास ले गया, तो बात बिल्कुल दूसरी हो गयी। पहले तो मैंने उनका डाइरेक्टर से परिचय कराया कि आप यूनान के ऐतिहासिक सम्राट सिकंदर हैं और आप भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध डाइरेक्टर श्री नानाभाई दादाभाई भूसावाला...

यह सुनते ही डाइरेक्टर महोदय उछल पड़े। सिकंदर से हाथ मिलाया। प्रसन्न होकर बोले—मेरे बड़े भाग्य हैं, जो आपके दर्शन हो गये। मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

सिकंदर ने कहा—आपको सेवा करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। मैं तो स्वयं ही आपकी सेवा के लिए आया हूँ। सुना है कि आपको सिकंदर की ज़रूरत है, सो मैंने ख़याल किया कि स्वयं ही जाकर हाज़िर हो जाऊँ। अब मैं लड़ाई-भिड़ाई के काम से ऊब गया हूँ।

डाइरेक्टर महोदय प्रसन्न होकर बोले—ठीक है, मेरे को चार सिकंदरों की ज़रूरत है।

सिकंदर ने कहा—सिकंदर तो मैं एक ही था, फिर आप चार सिकंदर लेकर क्या करेंगे ? में अकेले ही सारा काम कर लूँगा।

यह सुनकर न जाने क्यों डाइरेक्टर साहब का चेहरा उतर गया, मगर फिर कुछ सोचकर बोले—अच्छी बात है, आपका ट्राई लेता हूँ। मैंने कुछ ऐसी तस्वीर बनाने का इरादा किया है, जिसमें आपकी चढ़ाई से भारतवर्ष का गौरव दिखलाया गया है।

सम्राट सिकंदर ने कहा—मैंने भारतवर्ष के गौरव को बढ़ाने के विचार से यहाँ चढ़ाई थोड़े ही की थी ! मगर ख़ैर, आपका यही इरादा है, तो यही सही। आप मेरा ट्राई ले लीजिए।

और तब डाइरेक्टर साहब ने सिकंदर की ट्राई लेनी शुरू की। उन्हें एक जगह खड़ा कर दिया और कहा—अपनी सेनाओं को बुलाओ !

फिर तो जब सिकंदर ने नाम ले-लेकर अपनी सेना के लोगों को बुलाना शुरू किया, तो कान के पर्दे फटने लगे। उधर से साउंड-रेकर्डिंग करनेवाला दौड़ा हुआ आया और कहने लगा कि कौन बेहूदा चिल्ला रहा है ? इसकी आवाज़ क्रैक करती है !

फोटोग्राफर आया। उसने सिकंदर को आगे-पीछे घुमाकर देखा। अंत में उसने यही निर्णय दिया कि हीरो के काम के लायक इस आदमी का चेहरा नहीं है। सिकंदर के लिए इससे ज़्यादा खूबसूरत आदमी चाहिए।

अब सिकंदर से कहा गया कि कुछ गाना सुनाओ। सिकंदर की आदत तो गाने की थी नहीं, लेकिन पार्ट करना भी जरूरी था। इसलिए गाने लगे। म्यूज़िक डाइरेक्टर ने कहा—इस तरह ध्रुपद की तरह का गीत हमारे यहाँ नहीं चलता। आपको वह गीत आता है ?

सिकंदर ने पूछा—कौन-सा गीत ?

म्युज़िक डाइरेक्टर ने बताया—डर्डा-डर्डा ड्रा-ड्रा !

सिकंदर ने झल्लाकर कहा—जी नहीं, ऐसा गाना न मुझे आया और न आ सकता है।

❀

अंत में डाइक्रेटर महोदय ने बड़े तपाक के साथ सम्राट सिकंदर से हाथ मिलाया और बोले—मुझे इस बात का बहुत दुख है कि आप सिकंदर के काम के लिए फ़िट नहीं हो सके। मगर स्टूडियो में आते-जाते रहा कीजिए। कभी अवसर आया, तो एक-आध 'साइड रोल' आपको दे दिया जायगा।

(यन्त्रस्थ 'गल्पिका' से)

भैया दादा

धूमकेतु

रंगपुर के छोटे-से स्टेशन पर तीन सरकारी मनुष्य खड़े थे। दूर से आये ग्रामवासी यात्री और पहली बार ही रेल की यात्रा करने आयी हुई स्त्रियाँ जब-तब इन तीनों व्यक्तियों की ओर छुपे-छुपे देख लेतीं और आपस में फुसफुसाकर बातें करने लगतीं।

—यहाँ क्रासिंग पर कौन है?—अपनी साहबी टोपी को हाथ में घुमाते हुए युवक ने पूछा। प्रश्न करने के ढंग से लगता था, कि वही इन सबमें बड़ा अफ़सर है।

लम्बे और सूख गये मुँहवाले प्रौढ़ मनुष्य ने सविनय उत्तर दिया—यहाँ पच्चीस वर्ष से एक ही आदमी काम कर रहा है, साहब।

—पच्चीस वर्ष से?

तीसरे मनुष्य ने, जो क्लर्क और अफ़सर के बीच की स्थिति का लगता था, हँसकर कहा—हाँ।

—और ऐसे मनुष्य से आप समुचित काम की आशा रखते हैं?—युवक अफ़सर ने अपने हाथ की छड़ी से जमीन पर टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ खींचते हुए पूछा।

क्षण-भर दोनों मौन रहे। किसी से उत्तर देते न बन पड़ा। अंत में वह क्लर्क ही बोला—वृद्ध मनुष्य है, साहब। अब इस उम्र में कहाँ जायगा। आपकी ही दया पर जी रहा है।

युवक अफ़सर ने होंठ चबाये। छड़ी से एक कंकर उछाला। फिर बोला—हमें मनुष्य से काम नहीं है, काम से काम है। वह कहाँ जाय, यह उसके सोचने की बात है। बस, हमें तो देखना है कि वह काम कैसा करता है।

क्लर्क का लम्बा और निस्तेज चेहरा और भी अधिक निस्तेज हो गया। वह बहुत ही भावुक हृदय था। पंद्रह वर्ष की उम्र से ही वह क्लर्की कर रहा था। इस दरमियान उसने अनेक अफ़सरों की मातहती में काम किया था और इस कारण वह अफ़सरों के स्वभाव से भली भाँति परिचित हो गया था। इस समय नये साहब को होंठ चबाते देख, और भी अधिक नम्रता से वह बोला—भैया बदरीनाथ यहाँ पचीस वर्ष से काम कर रहे हैं।

—उसकी उम्र कितनी है?

—यही, लगभग सत्तावन-अट्ठावन वर्ष।

—तब तो वह किसी भी काम के उपयुक्त नहीं होगा,—साहब ने फ़ैसला सुनाया।

साहब के दिमाग़ में इस समय अफ़सरी तूफ़ान छाया हुआ है, यह वह चतुर क्लर्क समझ गया। फिर कभी साहब को समझाऊँगा, सोचकर, वह मौन रह गया।

रंगपुर के स्टेशन से लगभग दो मील की दूरी पर लेविल क्रासिंग था। वहीं रेलवे की एक कोठरी में रहकर आज पच्चीस वर्ष से भैया दादा काम कर रहा था। उसके काम में कभी कोई ग़लती नहीं हुई थी। अभी कुछ दिन पूर्व उसने अपनी सतर्कता से एक दुर्घटना होते-होते रोकी थी। रंगपुर के स्टेशन पर ट्रैफ़िक इन्सपेक्टर, ट्रैफ़िक सुपरिन्टेन्डेन्ट और क्लर्क आज वही बात कर रहे थे।

इसी समय स्टेशन पर ट्रेन आ पहुँची और साहब अपने डब्बे में जा बैठे। बैठते-बैठते भी, जैसे वह इस बात में लुत्फ़ ले रहे हों, इस तरह क्लर्क से बोले—इस

क्रासिंग पर किसी अनुभवी और तेज़ आदमी को नियुक्त करना होगा।

उनके आख़िरी शब्द इंजन की सीटी में डूब गये। दोनों ने साहब को सलाम किया। अब तक गाड़ी चल चुकी थी।

क्लर्क विनायक राय नित्य ही उस क्रासिंग तक टहलने जाते थे। उनकी चाँदी की मूटवाली छड़ी, पुराना, पर सँभालकर रखा हुआ रेशमी दुपट्टा, दक्षिणी साफ़ा और चप्पल पिछले दस साल से नियमित रूप से इस रास्ते पर यात्रा कर रहे थे। बदरीनाथ की कोठरी पर पहुँचकर विनायक राय कुछ देर तक बैठते और भैया भी उन्हें आया देख, अपनी छोटी-सी कोठरी में से शीतल जल लेकर उनके पास आ बैठता। फिर दोनों सुख-दुःख की बातें करते और नित्य इसी तरह संध्या बीत जाती।

आज भी विनायक राय मंद गति से उसी ओर बढ़े जा रहे थे। धीरे-धीरे वह वहाँ पहुँचे और भैया दादा को सामने न पा तसल्ली-सी महसूस करते अपने नियत स्थान पर जा बैठे। किसी गूढ़ विचार में निमग्न वह भैया दादा का सुन्दर संसार देखने लगे।

भैया दादा ने अपनी कोठरी के पीछे एक छोटी-सी फुलवारी लगा रखी थी। कोठरी के द्वार पर भी मिर्च, कोथमीर और तुलसी के पौधे लगाये हुए थे। अपनी इस छोटी-सी वाटिका के चारों ओर बाँस गाड़कर बाड़ा-सा बना लिया था और जमीन पर सफेद फूल-सी मिट्टी बिछा रखी थी। भैया दादा की एक बकरी भी यहीं बँधी रहती थी। विनायक राय अनिमेष दृष्टि से भैया दादा का घर और उसकी सजावट देखते रहे।

इसी समय भैया दादा की कोठरी से बारह-तेरह वर्ष की एक लड़की बाहर निकली। विनायक राय को बाहर बैठे देखकर वह उल्टे पाँव भीतर लौट गयी। और भैया दादा से बोली—कोई बाहर बैठा है, दादा।

—कौन है?—कहते हुए भैया दादा बाहर आया।

आज आठ दिन से भैया दादा अस्वस्थ था। और विनायक राय भी काम की अधिकता के कारण इन आठ दिनों इधर आ न सके थे, इसी से वृद्ध भैया दादा को ध्यान न रहा कि बाहर विनायक राय ही होंगे। बाहर निकलते ही उसने विनायक राय को देखा।

—अरी, पानी! यह तो अपने रायसाहब हैं। जल्दी ठंडा पानी ले आ।—कहकर, भैया दादा हमेशा की तरह विनायक राय के निकट जा बैठा। बिल्ली के दो-तीन बच्चे कहीं से आकर उसके वृद्ध शरीर को रगड़-रगड़कर घूमने लगे।

विनायक राय का कलेजा फटा जा रहा था। भैया दादा को इस स्थान से कितना प्रेम है, इसका उन्हें आज, अभी ही अनुभव हुआ। साथ ही आज उन्हें एक और नवीन दृश्य दिखा। भैया दादा किसी किसान की लड़की को पुत्री की तरह प्यार से बुला रहा था।

—यह किसकी लड़की है, भैया दादा?—आज विनायक राय केवल भैया नहीं कह सके।

—करसे की लड़की है। आज आठ दिन से आकर बेचारी बकरी दुह देती है। भगवान इसका भला करे!

पानी शीतल जल से भरा हुआ चमकता हुआ लोटा ले आयी। उस आठ-दस वर्ष की लड़की के नेत्रों में काजल इतना प्यारा लग रहा था कि विनायक राय की दृष्टि उन नेत्रों पर ही गड़ी रही।

—अब मैं जाऊँ, दादा?

—टिलारी को दुह लिया न?

टिलारी भैया दादा की बकरी का नाम था। भोले-भाले भैया ने टीला देखकर उसका नाम टिलारी रख दिया था।

—हाँ, दादा।

—अच्छा, तो जा। कल जल्दी ही आ जाना।

पानी चली गयी। पर कुछ समय बाद ही लौट भी आयी। बोली—चार दिन बाद दीवाली है, दादा, तुम भी लपसी रंधवाओगे न?

वृद्ध ने आनन्द अनुभव किया। मीठी हँसी हँसकर बोला—अरे, मुझे क्या करना है लपसी का?

—अरे वाह, दादा! सब लोग जीमेंगे और तुम कुछ भी नहीं बनवाओगे?

विनायक राय ने निःश्वास छोड़ा।

—अच्छा तो फिर यह थोड़े-से गेहूँ लेती जा, पर ज़्यादा मोटा मत पीसना, समझी ?

—नहीं, दादा, मैं तो बहुत ही बारीक पीसती हूँ ।

पानी चली गयी । एक नन्हीं बच्ची भी भैया दादा से इतना प्यार करती है, विनायक राय ने आज ही जाना । वह धीरे से बोले—अब यह नौकरी छोड़ दो, दादा । अब उम्र भी काम-लायक नहीं रह गयी ।

—अब मुझे जीना ही कितने दिन है,—भैया ने उत्तर दिया—ज्यादे-से-ज्यादा दो-चार साल ।

—इसी से कहता हूँ, अब भजन-पूजन किया करो ।

—भजन-पूजन से पेट तो नहीं भरता, विनायक राय । लड़का प्लेग में गया, लड़के की बहू कहीं भाग गयी । मैं ही एक बच रहा हूँ । सो जब तक भगवान हाथ-पाँव चलाते हैं, कमाता-खाता हूँ ।—भैया दादा ने उत्तर दिया ।

इस उत्तर से विनायक राय का अन्तःकरण पिघल गया । सच, इस अवस्था में भैया दादा किसके आसरे रहेंगे । सोचते-सोचते वह वहाँ से लौटे, तो उनका मन भारी-भारी-सा हो रहा था ।

दूसरे दिन ट्रैफिक सुपरिन्टेन्डेन्ट नियत समय पर आफिस में आ पहुँचा । विनायक राय सर झुकाये उनके सामने खड़े थे ।

—हाँ, तो राय, उस बदरीनाथ के स्थान पर तुम किसकी सिफारिश करते हो ? मैंने सुना है कि वह बूढ़ा सारे दिन सोता रहता है ।—साहब ने विनायक राय को आश्चर्य-चकित करते हुए कहा ।

राय के हृदय में उथल-पुथल मची हुई थी । एक बार तो उनकी जेब में से त्याग-पत्र थोड़ा बाहर भी निकल आया था । पर दूसरे ही क्षण उनके हाथ-पाँव काँपने लगे थे और त्याग-पत्र पसीने से तर हो गया था ।

—विनायक राय,—बिल्ली जिस तरह चूहे को खेलाती है उसी तरह का खेल आरम्भ करते हुए साहब बोले—तुमने क्या निश्चय किया ?

विनायक राय क्षण-भर कुछ सोचते रहे, फिर बोले—यह, नहीं हो सकता ।

साहब ने होंठ चबाये—हैं ?

जीवन-भर की गुलामी की निर्बलता अपना असर दिखाने लगी । राय के होश-हवास उड़ गये । जल्दबाज़ी में हो गयी भूल को वह तुरन्त समझ गये । बात बदलते हुए बोले—मैं किसी दूसरे विचार में था, साहब !...भैया बदरीनाथ के स्थान पर कालू को नियुक्त करना ठीक होगा ।

—हाँ, ठीक है । और देखो, भैया को चौबीस घन्टे की नोटिस दे दो ।

—जो हुक्म,—विनायक राय ने सर झुकाकर सलाम किया और बाहर निकल गये ।

विनायक राय ने भैया दादा के हित में एक और प्रयत्न कर देखना मुनासिब समझा । दूसरे दिन नोटिस देने के बदले साहब के हुज़ूर में हाजिर होने के लिए उसे सन्देश भेजा, इस आशा से कि शायद साहब उसके बुढ़ापे पर ही रहम कर दें ।

सूचना मिलते ही भैया दादा उपस्थित हुआ । साहब अधिकारी की-सी अदा में अकड़े हुए बैठे थे । भैया दादा को देखते ही बोले—तुम्हारा ही नाम है बदरीनाथ ?

—जी हाँ, हुज़ूर ।

—तुम अब बूढ़े हो गये हो, बदरीनाथ । सरकार की तुमने बहुत सेवा की । अब इस उम्र में तुम्हें आराम करना चाहिए ।

—जी हाँ, साहब । इस नौकरी में ही बाल सफेद हो गये ।

—अच्छा ।

भैया दादा सोच रहा था कि उसकी इस लम्बी सेवा के लिए साहब कोई ईनाम देने जा रहे हैं । तभी साहब ने काग़ज़ों में से सर उठाकर भैया दादा से कहा—देखो, तुम विनायक राय से मिलो । तुम्हारा हिसाब कर देने का उसे हुक्म दे दिया गया है ।

भैया दादा अवाक् रह गया । क्षण-भर उसके मुख से बोल ही नहीं फूटा । अन्त में दीन स्वर में बोला—साहब, आज, अब...

साहब ने उसकी ओर घूरकर देखा ।

वह एक दम कदम आगे बढ़ा—साहब ! क्यों मेरा बुढ़ापा बिगाड़ते हैं ? अब इस उम्र में मैं किसके आसरे रहूँगा ?

—तुम्हारे कोई बाल-बच्चा नहीं है ?

—नहीं, साहब ! प्लेग···—भैया दादा का गला रुँध गया—मेरी कोठरी और फूल-पौधे ही मेरे बेटे हैं। अब उम्र के आखिरी चार-पाँच साल उन्हीं के साथ गुजार लेने दें !

—ठीक, ठीक, हम सोचेंगे। अब तुम जाओ।

पर भैया दादा विनायक राय से मिले बिना ही अपनी कोठरी की ओर चल पड़ा। जिस जमीन के साथ पच्चीस वर्ष तक बच्चे की तरह खेला थे, उसे छोड़ते उसका वृद्ध हृदय काँप रहा था।

दूसरे दिन विनायक राय भैया दादा की कोठरी पर पहुँचे। उसकी नौकरी का वह अन्तिम दिन था। वह चबूतरे पर बैठे भैया दादा की राह देखने लगे।

—कुछ हुआ क्या ?—भैया दादा ने आतुरता से विनायक राय से पूछा।

—नहीं। तुम्हें जाना ही होगा। दूसरे आदमी की नियुक्ति हो गयी है।

भैया दादा रोने-रोने को हो गया। बोला—कल सबेरे ही ?

—हाँ,—और विनायक राय भैया दादा के पाँवों पर गिर पड़े।

—अरे, अरे, यह क्या कर रहे हैं, रायसहाब ?

—भैया दादा, कल से तुम मेरे घर ही आ जाओ। मुझे अपना ही लड़का मान, वहीं रहो।

—अरे, राय साहब,—फीकी हँसी हँसकर भैया दादा बोला—यह तुम्हारी उदारता है, पर मैं तो आखिरी दम तक यहीं रहूँगा।

विनायक राय ने सोचा कि कल भैया दादा को जैसे-तैसे मना लूँगा। दोनों उठे। भैया दादा ने आँखों में आँसू भरकर विनायक राय को विदा किया।

दूसरे दिन सूर्योदय से पूर्व ही विनायक राय आ पहुँचे। पानी भी बकरी दुहने के लिए आ पहुँची थी। विनायक राय चबूतरे पर बैठ गये, अभी भैया दादा बाहर नहीं आये थे। बड़ी देर तक पानी और विनायक राय भैया दादा के जगने की प्रतीक्षा करते रहे। फिर पानी ने द्वार खटखटाया। पर द्वार खुले हुए ही थे।

—भैया दादा ! ओ भैया दादा !—किसान की लड़की ने मधुर स्वर में आवाज़ दी—चलो, उठो, टिलारी को दुह लूँ।

पर भैया दादा ने उत्तर नहीं दिया।

पानी और भी ऊँची आवाज़ में बोली—और यह तुम्हारी दीवाली की लपसी है, दादा।

विनायक राय भी उठकर वहीं पहुँचे। कोठरी में भैया दादा रजाई ओढ़े सीधे लेटे हुए थे। उनके शरीर को रगड़-रगड़कर बिल्ली के बच्चे खेल रहे थे। और बकरी के बच्चे उनकी शय्या के निकट बैठे करुण स्वर में में-में कर रहे थे। और भैया दादा, झोंपड़ी में से कोई न निकाल सके, इस तरह सीधे लेटा हुआ था।

विनायक राय ने उसे हिलाया—भैया दादा !

पर भैया दादा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

विनायक राय का स्वर रोने लगा और उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे। पानी की ओर घूमकर वह बोले—बेटा पानी, भैया दादा अब कभी नहीं बोलेंगे !

पानी भैया दादा की लाश से लिपटकर करुण स्वर में विलाप करने लगी।

❀

भैया दादा की झोंपड़ी में अब वैसी स्वच्छता नहीं है। अब वहाँ बुलबुल और कोयल के मधुर स्वर फुलवारी में नहीं फूटते। काम करनेवाली आत्मा के स्थान पर अब वहाँ काम करनेवाला शरीर है। आदर्श काम करनेवाले का, काव्यमय जीवन का यहाँ कोई महत्व नहीं है, जड़ के सामने रसमय चैतन्य महत्व हीन है।

गजराती से अनु० राजगोपाल माथुर

खानपुरा,
अहमदाबाद।

फूल खिलता है

सुखबीर

चार वर्ष हुए, मैंने 'खिज़ा के फूल' कहानी लिखी थी, जिसमें मैंने पतझड़ के काँटों से ज़ख़्मी हुए प्यार के चेहरे को चित्रित किया था। और उसके बाद मैं और कहानी न लिख सका। रंग-बिरंगे फूलों की महकी हुई सौगातें लेकर चार बहारें बीत गयीं, मैं कहानी न लिख सका। अपने खाली आँचलों को फैलाये चार बार यहाँ पतझड़ें आयीं, मैं एक भी कहानी उनकी झोली में न डाल सका। कहानी आती थी जिस तरह होंठों पर मुस्कराहट आती है, या जिस तरह आँखों से कोई आँसू गिरता है; लेकिन वह मुस्कराहट ऐसी थी, जैसे कोई तितली उड़ जाये, और एक आँसू गिर कर धरती में समा जाता था, कहानी चली जाती थी।

केसरो

मोपासाँ को पढ़ते हुए मेरे सामने तुम कितनी बार आयीं और मेरी आँखें गीली हो गयीं। लेकिन मेरे पास मोपासाँ का ससपेंस कहाँ था, और मैं सोचता कि तुम्हारी सीधी-सादी कहानी को कैसे लिख सकूँगा? तुम्हें मैं आज भी अपनी आँखों के इस काजल में पाल रहा हूँ और तुम मेरे जीवन के अन्तिम क्षणों में भी मेरी आँखों में तैर रही होगी और मैं तुम्हारे प्यार के बादवानों के आँचल को भर रहा हूँगा। वे दिन बड़े सुहाने थे, इतने सुहाने कि आज भी मुझे तुम्हारे चेहरे पर फूलों का मुस्काना याद आता है।

अपने मामा के यहाँ मैं सर्दियों की छुट्टियाँ काटने आता। सर्दियों की वे रातें तुम्हारी आँखों की तरह ही कजलायी हुई और लम्बी होती थीं। सर्दियों की टहकती हुई धूप-जैसा तुम्हारा रंग था। वे दिन थे, जब मेरे सपनों में लड़कियाँ आने लगी थीं। पहले लड़कियों की परछाइयाँ आनी शुरू हुईं। फिर उनमें से एक ठोस आकृति बनती गयी, और कौन जानता था कि वह आकृति तुम्हारी थी। मेरे सपनों में कोई चुनरी उड़ती, कोई मोरपंखों को फैलाकर नाचती, किसी की कजलायी हुई आँखों में कोई सुबह झाँकती और मैं सोचता कि काश, मेरे यह सपने सर्दियों-जितने लम्बे हो जायें! सरसों के सुनहरे खेतों में मैं तुम्हें देखता। तुम साग तोड़ रही होती, तुम्हारी कमर की लचक में मैं उन कोमल डण्ठलों को टूटते हुए अनुभव करता और कभी मैं

तुम्हारी दूध-सी सफेद कलाइयों में हरी चूड़ियों का गुनगुनाना सुनता। पतला, बेंत की छड़ी-जैसा लचकता हुआ तुम्हारा शरीर था और यह तुम्हारी वह आकृति ही थी कि आज मुझे कोई सुन्दर-से-सुन्दर लड़की भी, यदि वह पतली न हो, नहीं जँचती।

हमारे पड़ोस में तुम्हारा घर इस तरह था, जैसे कि तुम बिल्कुल मेरे पास थी। तुमने कितनी बार मुझे अपने हाथों बनाया हुआ सरसो का साग और साथ में मकई की छोटी-छोटी, गोल-गोल, सुनहरी रोटियाँ खिलायीं और मैं हमेशा उनमें तुम्हारे होंटों की मिठास को अनुभव करता रहा। तुम मेरे पास तकियों के गिलाफ लाती, चद्दरें और पंखियाँ लाती। मैं उनपर तरह-तरह के फूल बनाकर देता, बेलें चित्रित करता और 'फारगेट मी नाट' आदि के बड़े सुन्दर अक्षर लिखकर देता। और जब तुम उनको रंग-बिरंगे धागों से, दोपहर की हलकी-हलकी धूप में बैठी काढ़ रही होती, तो तुम्हारी कजलायी हुई लम्बी-लम्बी पलकें और ज़्यादा काली हो जातीं। और जब-कभी तुम मेरी तरफ पलकें उठाकर देखती, तो मुझे ऐसे लगता कि ख़ामोश रातें जैसे कुछ बोल रही हैं, कोई चिरकाल की भूली हुई कहानी सुना रही हैं। तुम फिर फूल-पत्तियाँ काढ़ने लगती और जैसे सोचती कि कभी यह चद्दरें मेरे नीचे बिछेंगी, मैं इन तकियों पर सिर रखकर सोऊँगा और यह पंखियाँ मेरे सिर पर हल्की-हल्की हवायें करेंगी। तुम इस तरह सोचती रहती और आगे सोचती जातीं...और अन्त में तुम्हारे मुख पर एक लालिमा दौड़ जाती और तुम किसी लज्जावश लाल हो उठती और तुम्हारे होंटों पर एक हल्की-सी मुस्कराहट दौड़ जाती और तुम्हारी आँखों की रातें जैसे और काली हो जातीं,...लेकिन तुम काली रातों में फँस गयीं। तुम्हारे बाप ने हमारे गाँव के एक जाट लड़के से तुम्हें बाँध दिया। तुम बोल न सकीं, तुम तो केवल आँखों से ही बातें करना जानती थी, तुम्हारे होंठ न खुल सके। और जैसे कोई बकरी किसी कसाई के पीछे चल पड़ती है, तुम हमारे गाँव की ओर चल पड़ी, उस जाट के लड़के के घर की ओर, जो हमारे घर से दूर गाँव के दूसरे सिरे पर था। तुम्हारा वह पति फौज में था। शादी पर एक महीने की छुट्टी लेकर आया था, शादी के बाद चार दिन तुम्हारे साथ बिताकर फिर मोर्चे पर चला गया और फिर उसके माता-पिता की लम्बी नज़रों के साथ तुम भी अपनी बुझी हुई आँखों से उसका रास्ता देखती रही, लेकिन वह न आया। हौले-हौले उसके पत्र आने भी बन्द हो गये और अन्त में चार वर्षों के पश्चात् उसकी मौत की ख़बर के साथ उसकी पेन्शन के पन्द्रह रुपये तुम्हारा नाम आने शुरू हो गये।

अब भी सर्दियों की छुट्टियों में मैं गाँव आता हूँ। लेकिन अब वे सर्दियों की रातें बड़ी लम्बी हो गयी हैं और तुम्हारी आँखों से भी ज़्यादा ख़ाली और डरावनी, जिनमें कि मेरे साथ बम्बई देखने के तुम्हारे सारे सपने खो गये हैं, और तुम्हारी फूल-पत्तियों से चित्रित चद्दरों और पंखियों और तकियों का ख़्याल अब जब आता है, तो दिल में एक हूक उठती है। और जब छुट्टियाँ काटकर मैं वापस बम्बई आने लगता हूँ, तो हमारे घरवालों के साथ उस विदा के समय तुम सिसकियाँ भरकर रोती हो और तुम्हारी वे सिसकियाँ सबसे अलग होकर मेरे दिल में छेद कर जाती हैं।... केवल तुम्हारी याद दिल में पल रही है। मोपासाँ को पढ़ते हुए तुम्हारे बारे में कहानी लिखने की हिम्मत नहीं पड़ती।

मार्था

मैं उस दिन कोई कहानी सोचता हुआ ही जा रहा था, जो किसी की आँख में से गिरते हुए एक आँसू की तरह थी, कि जब तुम पहली बार मुझे मिली। बम्बई के इतने बड़े शहर में और विशेषकर रात के इस वातावरण में जब बत्तियों की बनावटी रोशनी से बम्बई अपने शरीर का श्रृंगार करके सारी-सारी रात जागती रहती है, तुम्हारा व्यक्तित्व कितना तुच्छ-सा था! मैं उस पहली मुलाक़ात का उल्लेख नहीं करना चाहता, क्योंकि वह बम्बई के इतने बड़े व्यापारिक शहर होने के बावजूद भी व्यापारिक दृष्टिकोण से बहुत हीन थी। उसका विचार मुझे लज्जा से भर देता है। ख़रीदना-बेचना मेरा धन्धा नहीं, मैं साधारण जरूरत की चीज़ें ख़रीदते समय भी बड़ी तकलीफ़ महसूस करता हूँ, और तुम्हारे साथ वह सौदा? किस चीज़ का सौदा था भला वह? मैं आज उसके बारे में सोचना तक नहीं चाहता। आख़िर एक छोटे-से होटल में हम जाकर बैठे और मैंने देखा कि एक क्षण के लिए तुम्हारे पेट की

भूख तुम्हारी आँखों में भर गयी है और तुम्हारी आँखों में का जिन्स का बाज़ार इस भूख के नीचे दब गया है। मैंने कभी ऐसी भूखें काटी हैं, और भूख भूख को कितनी जल्दी पहचान लेती है ! तुम आमलेट खाती रही और मैं तुम्हारे चेहरे की तरफ देखता रहा और उसमें औरत के सदियों पुराने चिन्हों को ढूँढ़ता रहा, वे चिन्ह, जो कुंवारपन और सोहाग और ममता के प्रभाव के नीचे नयी शक्लें अख़्तियार करते हैं। तुम्हारे चेहरे पर पेट की भूख थी और इस भूख ने तुम्हारे मुख-चिन्हों को एक नयी शक्ल में ढाल दिया था और उनपर जिन्स की बुझी हुई राख मल दी थी। तुम्हारा स्त्रीत्व कितना कुरूप हो गया था ! कौन मान सकता था कि तुम्हारी उम्र अभी मुश्किल से पन्द्रह वर्ष ही है। काश, कहीं तुम्हें जन्म से ही कुछ सौन्दर्य मिला होता, तो आज तुम जिन्स की इस सौदेबाज़ी में पेट-भर मोल पा सकती। तुम्हें पहले ख़ुशी थी कि तुमने मेरे-जैसे आदमी को फाँसकर अपनी क़ीमत से ज़्यादा पैसे बटोर लिये हैं। लेकिन जब हम काफ़ी पीने लगे और बातों के झरोखों में से एक-दूसरे को और नज़दीक से देखा, तो तुम्हें अपनी इस सौदेबाज़ी पर कुछ शर्म महसूस हुई, जैसे कोई दूकानदार अपने किसी दोस्त से चीज़ का ज़्यादा मोल ले ले। आज से तीन वर्ष पहले तुम्हारी एक-मात्र सहारा माँ मर गयी थी और तुम अपने दो वर्ष के भाई से साथ अपनी चाल के छोटे-से कमरे में, जिसका साढ़े छः रुपये किराया था, दिन काटती रही। सूखी-बासी डबल रोटियाँ खाते और एँड़ियाँ रगड़ते समय काटना आसान न था। प्लास्टिक और फुग्गों की कितनी फैक्टरियों में तुमने काम किया, लेकिन कहीं भी तुम टिक न सकी। काम थोड़ा था, बेकारी लम्बी थी। और फिर एक दिन तुम्हें पहली बार पता लगा कि इस शरीर की मेहनत न सही, इस शरीर को भी बेचा जा सकता है, जब तुम्हें, दो दिन की भूखी को, तुम्हारी चाल का एक लड़का रोटी खिलाने एक होटल में ले गया और फिर उसने वहीं तुम्हारे साथ रात काटी और सुबह जब तुम घर आयी, तो तुम्हारे हाथ में एक रुपया था। और बाद में प्लास्टिक और फुग्गों की फैक्टरियों के चक्कर लगाने के बजाय तुमने रात के समय बम्बई की सड़कों पर ग्राहक ढूँढ़ने शुरू किये और तुम्हें तब अपने सुन्दर न होने का सबसे ज़्यादा अफ़सोस हुआ कि काश, कहीं तुम्हें ज़रा-सा भी रूप मिल गया होता, तो आज तुम्हें इस तरह ठोकरें न खानी पड़तीं !

होटल से निकलकर मैं तुम्हें तुम्हारे घर तक छोड़ने आया। घर जाते समय तुमने मुझसे फिर मिलने के कितने-कितने वादे लिये। उस रात तुम्हारा दिल न किया कि मेरे बाद तुम कोई ग्राहक ढूँढ़ो। तुमने उस रात बड़ा हल्का-हल्का अनुभव किया और तुमने चाहा कि तुम सीधी घर जाकर अपने भाई को चूम लो और फिर गहरी नींद सो जाओ। यद्यपि पहली कई रातों की तरह उस रात भी तुम्हारा जिस्म का सौदा न हो सका, लेकिन उस रात तुम्हारी आँखों में कोई शून्यता न थी, रातों में जगने का अन्धकार नहीं था, बल्कि हल्की-हल्की चाँदनी थी, यद्यपि मैं यह जानता था कि अगली रात तुम फिर इन्हीं सड़कों पर रही होगी और मैं कहीं और आज के इस समाज की दीवारों को गिराने की मजदूरी कर रहा हूँगा, जिसमें कि हर वस्तु ही बँधी हुई है।

सुरिन्दरजीत

आँसू आँखों में से गिर पड़ता है, धरती में समा जाता है। आख़िर मनुष्य उसको पकड़कर करेगा भी क्या ? कोई दिन था, जब मैंने एक नहीं, कई आँसुओं के धुँधलके में से बड़ी कड़वी सचाई देखी थी और वे आँसू धरती में समा गये थे। कभी मैं बचपन में तितलियों के पीछे भागा करता था। मेरे पास एलबम में कितनी ही तितलियाँ इकट्ठी हो गयी थीं, यद्यपि यह मेरे दिल का अरमान ही रह गया था कि उस नीले, सुनहरी पंखोंवाली तितली को मैं कभी न पकड़ सका, जो सदा उन क्यारियों पर उड़ती रहती थी, जिन्हें मैं अपने छोटे-से फव्वारे से पानी दिया करता था। और अपने कालेज के दिनों में मैंने जब तुम्हें देखा, तो एक बार तो मैंने अनुभव किया कि मै अपनी क्यारियों में पानी दे रहा हूँ और वही नीले और सुनहरी रंगोंवाली तितली फूलों पर उड़ रही है। तुम सचमुच एक तितली की तरह मेरे जीवन में आयी, फूलों की महक में उड़ती रही और फिर एक बार जब मैं अपनी नर्म-नर्म अँगुलियों से तुम्हारे पंखों को पकड़ने की सोच ही रहा था कि तुम लम्बी उड़ान लगाकर उड़ गयी। बी० ए० के अन्तिम वर्ष में मैथ्यू

आर्नल्ड की कविता थी। आर्नल्ड कहीं-कहीं बड़ा शुष्क है, प्रौढ़ों-जैसी गम्भीरता है उसकी कविता में, शेली और कीट्स की कविता-जैसे उड़ते हुए रंग नहीं। लेकिन फिर भी आर्नल्ड की कविता मुझे फूलों-जैसी हल्की और महक-भरी हवाओं-जैसी उड़ती हुई प्रतीत होती थी। मैंने उसका जी भर-भरकर आनन्द लिया। हम दोनों एक साथ बैठकर कविता पढ़ते, ख़ासकर कई बार मैं तुम्हें पढ़ाता। शायद पहली बार इस वर्ष तुम्हारा कविता का शौक़ जगा था, जैसे कि पहली बार इस वर्ष मैं तुम्हें मिला था। वह वर्ष था, जब मैंने सही अर्थों में कविता को समझना सीखा, कविता की आत्मा को पहचानना सीखा और मुझे पता लगा कि कविता के अंग किस तरह तराशे जाते हैं, कविता की आँखों में कितनी लम्बी काजल की लकीर डाली जाती है और कविता किस लिबास में ज़्यादा सुन्दर लगती है। कविता में रंग भी चित्रित किये जा सकते हैं, कविता में सुगन्ध भी भरी जा सकती है, इसका मुझे तब ही ज्ञान हुआ। मुझे ऐसे लगता था कि कविता नीले और सुनहरी रंगों की तितली के पंखों पर बैठकर लहराती हुई हवाओं में सैर कर रही है। तुम्हारे साथ आर्नल्ड की कविता कितनी कोमल और फूलों-जैसी हल्की बन गयी थी, और आज मैं हँसता हूँ कि कई बार कैसे आर्नल्ड की प्रौढ़ कविताओं के सामने तुम मेरी कविताओं की अधिक प्रशंसा करती थी, क्योंकि मेरी कविताओं में तुम्हारा दुपट्टा उड़ रहा होता था, तुम्हारे गालों की लालिमा होती थी, तुम्हारी आँखों की सर्दियों की काली रातों की ठंडक होती थी, तुम्हारे सपनों के रंग होते थे, जो प्यार की झील में कमल के फूलों की तरह खिल जाते थे।

बी० ए० करने के बाद तुम यहाँ से चली गयी। पहले लगातार तुम्हारे लम्बे-लम्बे पत्र आते रहे। फिर वे कुछ कम होने लगे। फिर उनकी लम्बाई छोटी होने लगी और मुझे तब लगा कि जैसे तुम्हें आर्नल्ड की कवितायें भूलती जा रही हैं और फिर एक पत्र में और अन्तिम पत्र में तुमने मुझे लिखा कि तुम्हारा विवाह हो रहा है।......किसके साथ हो रहा है ? मैं आँखें खोले देखता रह गया। एयर फोर्स के एक बड़े अफ़सर के साथ तुम्हारा सम्बन्ध जुड़ गया था। पैंतीस वर्षों का यह नौजवान तुम्हारी आँखों में समा गया था, क्योंकि तुम्हें शुरू से ही बड़ा शौक़ था कि तुम हवाई जहाज़ों में नीले आकाश की सैर करो। मैं तो नीले आकाश के बारे में तितली के पङ्खों-जैसी केवल कविता ही लिख सकता था, हवाई जहाज़ मेरे पास कहाँ था कि मैं उसमें बैठाकर तुम्हें सैर भी करा सकता। तुम्हें मैंने पागलों की-सी मानसिक अवस्था में एक लम्बा पत्र लिखा कि तुमने मेरे नीले आकाश की दूध-सी सफेद आकाशगंगा को मिट्टी में मिला दिया है। मैं आकाश के सारे चाँद और तारे और बर्फ़ीली, नीली झीलों के फूलों से तुम्हारा आँचल भर दूँगा।......लेकिन तुमने कोई जवाब न दिया, क्योंकि तुम्हें पता था कि मेरी कविता तुम्हें रेशमी साड़ियाँ नहीं पहना सकती, जिनको पहनकर तुम पार्टियों में जा सको, डांसों में शामिल हो सको। तुम्हें पता था कि एम० ए० करके मुझे किसी बैंक या दफ़्तर या कालेज में नौकरी ही करनी है और ऐसी नौकरी करनेवाला मोटरें नहीं रख सकता। और तुम्हें शायद यह भी डर था कि तुम्हारे पास जो एक दर्जन झूमरों की जोड़ियाँ हैं, दो दर्जन अलग-अलग शेड की साड़ियाँ और सूट हैं तथा उनसे मैच करते सैंडल कहीं मेरे पास आकर बजाय बढ़ने के घटने ही न शुरू हो जायें, क्योंकि बावजूद हमारी कालेज की दोस्ती और थोड़ा-सा सम्बन्ध होने के तुम्हें मेरा राजनैतिक जलसों और मिटिंगों में जाना कभी अच्छा नहीं लगा। तुमने मुझे मोटरों में घुमाया, मेरे साथ सैरें कीं, अपने रेशमी पर्दों से सजे घर में कितनी बार चाय और खाने पर बुलाया और उस स्टडी रूम में कितनी-कितनी देर आर्नल्ड की कविताएँ पढ़ते हुए जीवन के सुनहरे सपने लिये, लेकिन तुमने कभी मेरे साथ जलसों और मिटिंगों में जाना स्वीकार नहीं किया, क्योंकि ऐसी चीजें तुम्हें उकता देती थीं। और अब तो एक ज़माना ही बीत गया है। मुझे पता है, तुम्हारी आर्नल्ड की किताबों पर अब धूल जमी हुई होगी और तुमने शायद ही कभी 'फारसेकेन मरमन' कविता पढ़ी होगी, जिसमें समुद्र का राजा गिरजे में प्रार्थना का बहाना करके, शहर चली गयी अपनी प्रियतमा को याद करता है।...... मैं आज आर्नल्ड से आगे मायकोविस्की और पब्लोनरूदा तक पहुँच गया हूँ। और मैं यह महसूस करता हूँ कि जीवन कितना महान है ! लेकिन तुम्हें भला इससे क्या ? तुमने शायद मायाकोविस्की और नरूदा का नाम भी न सुना हो,

यद्यपि नरूदा भी उन्हीं आकाशों के बारे में कविता लिखता है, जिनमें तुम्हारा पति हवाई जहाज़ उड़ाता है, और जहाँ तुमने कभी उसके साथ बैठकर सैरें की हैं। तुम्हारे अब तीन बच्चे हैं और चौथे को तुम जन्म दे रही हो। तुम्हारा रूप ढल गया है, तुम्हारे शरीर में मोटापन आ गया है। तुम्हारा पति अब तुम्हारी ओर पहले का-सा ध्यान नहीं देता, क्योंकि अब तुम तीन बच्चों को जन्म दे चुकी हो और चौथे को जन्म देनेवाली एक माँ हो और डांसों में तुम नहीं जा सकती। और वैसे भी उसकी आँख अब तुम पर जमती नहीं। ख़ासकर बच्चों से उसे बड़ी चिढ़ है कि उन्होंने उसकी आज़ादी ख़राब कर दी है। और सुना है, उसको कोई और रिश्ता भी आ रहा है, लेकिन वह तुम्हें तलाक़ भी तो नहीं दे सकता। और मैं सोचता हूँ कि शायद तुम अब फिर फ़ुर्सत के समय, जब बच्चे सो जाते होंगे, आर्नल्ड की कोई किताब पढ़ने की कोशिश करती होगी, लेकिन शायद वह कविता अब तुम्हें तितली के पंखों पर उड़ती हुई महसूस न हो, क्योंकि कविता को तितली के पंखों पर उड़ाने का तरीक़ा तो मेरे हाथों में ही रह गया है।

बेअन्तकोर

मैं तुम्हारे बारे में क्या लिख सकता हूँ, क्योंकि मैंने तुम्हें कभी प्यार नहीं किया, मैंने तुमसे कभी नफ़रत नहीं की और फिर भी यदि कभी तुम्हारे बारे में सोचने लगता हूँ, तो मुझे ऐसे लगता है, जैसे किसी ने मेरे दिमाग़ में पिघला हुआ सीसा डाल दिया हो और वह वहाँ जम गया हो। बर्फ़ के नीचे कई बार हरी काइयाँ इसी तरह जम जाती हैं। सामाजिक रूप से तुम मुझपर अपना पूरा अधिकार समझकर आयी और सोहाग के उस लाल लिबास में तुम्हारे सारे सपने रंगीन हो उठे, तुम्हारे कपोलों की आग की तरह, तुम्हारे हाथों की महकती हुई मेंहदी की तरह, तुम्हारी अँगूठी में लगे हुए लाल नगीने की तरह। और तुम्हें ऐसे लगा, जैसे एक क्षण में प्रातःकाल की लालिमा से भरे तुम्हारे सारे सपने लहू-लोहान हो गये, जैसे तुम्हारी लाल चूड़ियाँ ख़ून के आँसू रो पड़ी हों, क्योंकि तुम्हें हमेशा के लिए फिर तुम्हारे माँ-बाप के बड़े-बड़े खेतों में ही छोड़कर मैं बम्बई भाग आया था। और बाद में तुम्हें हिस्टीरिया के दौरों और काली रातों के भयानक सपनों में ऐसे लगता, जैसे तुम्हारे बाप के बड़े-बड़े खेत जलते हुए मरुस्थल हों और उनमें चीखती हुई कोई सस्सी अपने बाल नोच रही हो। और वह आकाश की ओर झाँक रही हमारी तीनमंज़िली हवेली, जिसकी शान तुम्हारे बाप के बड़े-बड़े दूर-दूर तक फैले हुए खेतों से कम न थी, तुम्हें श्मशान की तरह लगती, जैसे कोई उजड़ा हुआ खँडहर हो और वहाँ गीदड़ चीख रहे हों। तुम्हारा सोहाग का लिबास मटमैला हो गया और तुम्हारी आँखों के गिर्द काले घेरे बन गये। तुम्हें क्या पता था कि यह तुम्हारा मेरे साथ नहीं, बल्कि तुम्हारी ज़मीन का हमारे चौबारे के साथ विवाह हुआ है। काश, तुम्हारा सम्बन्ध कालेज में पढ़नेवाले किसी शहरी लड़के के बजाय धरती में हल चलानेवाले किसी नौजवान से जुड़ता, क्योंकि जहाँ मेरे पास आकर तुम्हारे लिए शेली और कीट्स को समझना सम्भव नहीं था और मेरी कवितायें तुम्हारे लिए काले अक्षरों की पंक्तियाँ मात्र ही थीं, वहाँ तुम उस हल चलानेवाले नौजवान के साथ धरती के चेहरे की भूख और प्यास को समझ सकती थी और उस धरती में से जन्म ले रही फ़सलों को पहचान सकती थी। तुम मेरे कमरे में बर्नार्डशा की फोटो देखकर हँसी, लेनिन को तुम पहचान तक न सकी और टैगोर तुम्हें सिर्फ़ बूढ़ा बाबा ही लगा और मेरी मेज़ और आलमारी में पड़ी पुस्तकों को देखकर, जिनमें शेली और प्रेमचन्द और टैगोर और नरूदा और वाल्टह्विटमैन और शा और ब्राऊनिंग और गोर्की आदि अनसुने और अनजाने नाम थे, तुम्हें ऐसे लगा कि मैं इतनी किताबें पढ़कर किसी बड़ी नौकरी पर लग जाऊँगा और तुम बड़े सुख के साथ घर रहोगी और किसी नौकर बाबू की पत्नी कहलाओगी।... लेकिन नहीं, तुम्हारे लिए इस जीवन के बजाय वही जीवन अच्छा रहता, जिसमें तुम प्रातःकाल प्यार-भरी बाहों से निकलती, गायों-भैंसों को खोलती, उनको चारा डालती, दूध निकालती, छाछ बनाती, चूल्हा जलाती और फिर गुनगुनाती हुई चूड़ियों की आवाज़ में रोटियाँ पका, अपने पति के लिए सिर पर रोटियाँ उठाकर लचकती हुई कमर को सँभालती हुई खेतों में जाती और इस प्रकार जीवन के दिन और रातों की गर्दिश और मौसमों के आने-जाने में तुम जीवन का सुख देखती और

तुम्हें हिस्टीरिया के दौरे न पड़ते और काली रातों से सपनों में कोई सस्सी अपने बाल न नोचती।

तुम्हारे अन्दर संस्कार किसी सौ साल पुराने बरगद की जड़ों की तरह बड़े गहरे फैले हुए थे और इतना-कुछ होने के उपरान्त भी उन संस्कारों के कारण तुमने मुझे अपना ही समझा है, क्योंकि कुछ धार्मिक और सामाजिक रीतियों ने तुम्हें मेरे साथ बाँध दिया था। लेकिन मैं तुम्हें कभी प्यार नहीं कर सकता। तुम तब भी नहीं समझ सकी और मैं आज भी तुम्हें कैसे समझा सकता हूँ कि इसमें मेरा दोष कोई नहीं, तुम्हारा दोष कोई नहीं, क्योंकि जब तक समाज का यह ढाँचा ज्यों-का-त्यों बना रहेगा, तब तक मेरे चित्रों और पुस्तकों से सजे हुए कमरे में तुम नहीं समा सकोगी। तुम्हारा स्थान उस किसान के कमरे में ही है, जिसकी दीवारों पर बड़े पुराने धार्मिक किस्म के एक-दो चित्र लगे हुए हैं और जिनके पीछे चिड़ियों ने अपने घोंसले बनाये हैं। मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ कि जब तक यह ताना-बाना नया नहीं बुना जाता, तब तक दूर तक फैली ज़मीनों के विवाह आसमान को छू रहे चौबारों के साथ होते ही रहेंगे और कोई सस्सी चीखें मारती हुई बाल नोचती रहेगी और जंगलों में गीदड़ों की चीखें सुनायी देती रहेंगी।

कुलवन्त

जिस तरह पतझड़ की लम्बी ऋतु के बाद किसी हरे-भरे पौधे की टहनी पर फूल खिलता है और फिर हौले-हौले उसकी हलकी-हलकी महक सुबह की भीनी-भीनी हवा में फैलने लगती है, बस इसी तरह तुम मेरे जीवन में आयी हो और मेरा जीवन सुगन्धों से भर गया है। तुम्हारी आँखों-जैसी नीली झीलें मैंने पहले कभी नहीं देखीं, तुम्हारे होंठों की शहद में भीगी हुई कविता मेरे होंठों पर पहले कभी नहीं आयी और तुम्हारे श्वासों से ज़्यादा सुगन्धित श्वास किसी बहार के मैंने पहले नहीं अनुभव किये। मुझे पता नहीं था कि मशीन की तरह चल रहे बम्बई शहर में, लोगों की भीड़ से भरी हुई सड़कों पर भटकता हुआ एक दिन जब मैं एक सड़क का मोड़ मुड़ूँगा, तो उस मोड़ पर किसी दूसरी सड़क का मोड़ मुड़ते हुए तुम अचानक मुझे मिल जाओगी। मैं आज तक किसी के साथ समानान्तर रास्तों पर नहीं चला, मुझे वे रास्ते ही पसन्द हैं, जो एक-दूसरों को कोई कोण बनाते हुए मिलें और एक-दूसरे को काटते हुए आगे बढ़ जायें। कई बार ऐसे रास्तों के मिलन-स्थल पर ही दो मिलनेवाले अपना-अपना रास्ता छोड़कर एक नया रास्ता अपना लेते हैं। बिल्कुल ऐसे ही हम मिले और आज हमारे कदमों के नीचे यह नया रास्ता नीले आसमान की आकाशगंगा के समान बह रहा है। जीवन आज कितना सौन्दर्यमय लग रहा है, जिस तरह की मनुष्य नील समुद्र पर तैरती हुई दूधिया बादबानोंवाली किश्तियों को देखता जाये या किसी महकते हुए पार्क में बैठकर विभिन्न प्रकार के पौधों की काट-तराश और टहकते हुए फूलों और बच्चों को निहारता जाये, या जैसे उफनती हुई चाँदनी में मनुष्य बम्बई की किसी चौड़ी-सपाट सड़क पर किसी के साथ प्यार की लोर में सैर को जा रहा हो, या फिर जैसे घर के फूलों से स्वच्छ वातावरण में सोने से पहले शैली की प्यार-भरी कवितायें पढ़ रहा हो। तुम एक फूल की तरह महक रही हो और मैं नीले आकाश को देखता हूँ, जिसके नील पानी में चाँद और सूरज रोज़ मुँह धोकर निकलते हैं। सारा चौगिर्द एक बच्चे के खिले हुए चेहरे की तरह कोमल बन गया है। मेरी गतियाँ आज इतनी मुलायम बन गयी हैं कि उनमें गोलाइ-जैसी लचक आ गयी है। आज मैं कितने सुकोमल स्पर्शों से रात की स्तब्धता में कविताओं के चेहरे चित्रित करता हूँ कि कहीं तुम्हारे कपोल पर कोई ख़राश न पड़ जाये और कई बार इस कमरे की दीवारें इस तरह लगती हैं, जैसे चारों तरफ़ रेशमी पर्दे लटक रहे हों और चित्रों में के चेहरे जैसे उनके पीछे से झाँक रहे हों। मैं आज नये गीतों को जन्म दे रहा हूँ, जिनमें कि तुम्हारे श्वासों-जैसी धरती की सुगन्ध है, तुम्हारे चेहरे-जैसी फसलों की टहक है। इन गीतों की जन्मपीड़ायें बिल्कुल इसी तरह की हैं; जिस तरह तुम कभी बच्चे को जन्म देते समय अनुभव करोगी। तुम आयी हो, तो आज मुझे ऐसे लगता है कि मेरे नीचे किसी की काढ़ी हुई चद्दर है, किसी के बने सिरहाने पर सिर रखकर मैं सो रहा हूँ, मेरे कानों के बिल्कुल पास किसी की हरी चूड़ियाँ कुछ कह रही हैं और मेरी शीतकाल की रातें बहुत-बहुत सुन्दर बन गयी हैं।...तुम आयी हो, तो मुझे ऐसे लगता

है कि कोई मेरे साथ घर में मुस्कराती हुई दृष्टि से चाय की मेज़ पर बैठी हुई है। उसकी आँखों में कोई भूख नहीं है। और हम आपस में रात को सिनेमा के शो का प्रोग्राम बना रहे हैं।...तुम आयी हो, तो मुझे ऐसे लगता है कि एक नीले और सुनहरी पंखोंवाली तितली मेरी सफ़ेद कमीज़ पर आकर बैठ गयी है। एक बार ख़्याल आता है कि इसको हौले से पकड़ लूँ, लेकिन फिर मैं रुक जाता हूँ, नहीं, यह तो अब स्वयं ही मेरे पास आ गयी है, उसको पकड़ने की ज़रूरत नहीं, वह अब उड़कर नहीं जायगी।... तुम आयी हो, तो मुझे ऐसे लगता है कि किसी का सोहाग का मटमैला दुपट्टा फिर से लाल सुर्ख़ हो गया है, किसी ने हाथों पर फिर से मेंहदी के फूल बनाये हैं और किसी क काली रातों में एक सपना आता है कि ऊँटों की गर्दनों में घंटियाँ बज रही हैं और सस्सी दौड़कर पुन्नू के गले से चिपट गयी है।...तुम आयी हो, तो मुझे ऐसे लगता है कि मैं तुम्हें बता नहीं सकता। आओ, मेरे पास बैठ जाओ, मैं तुम्हें अपनी नयी लिखी कविता 'फूल महकता है' सुनाऊँ और फिर हम शाम की सैर के लिए समुद्र पर चलेंगे।

निर्मल निवास,
सोनारी रोड, विले पार्ले,

अभिनेता

अज़ीज़ असरी

वह जब कमरे में कदम रखती है, तो चारों ओर मुस्कुराहटें नाचने लगती हैं। मुस्कराहट उसका सबसे बड़ा जादू था। उसका दूसरा जादू आँखों में था। जब कोई नौजवान नर्स टी० बी० के रोगी को मेहरबान नज़रों से देखे, तो समझ लीजिए कि रोगी की आधी बीमारी खतम हो गयी।

मैं सेनीटोरीयम के एक अलग-थलग कमरे में तनहाई की कैद काट रहा था। बिस्तर पर लेटे-लेटे लिखने-पढ़ने के अतिरिक्त दूसरा कोई काम न था। उसकी ड्यूटी जब इस तरफ लगी, तब मैंने देखा कि वह अक्सर मेरे कमरे में आने से झिझकती है। लेकिन उसे हर सुबह टेम्परेचर लेने, चार्ट पर कई बातों को नोट करने और इन्जेक्शन आदि देने के लिए आना पड़ता था। मुझे शुरू में उसकी यह उपेक्षा देखकर आश्चर्य भी हुआ और दुख भी। मैं जान-बूझकर ऐसी कई बातें करता, जिनसे उसे मेरे प्रति कुछ दिलचस्पी पैदा हो सके। कई बार वह मेरी बातों का जवाब बड़े मधुर स्वर में देती, लेकिन बाहर बरामदे में खड़ी रहकर। मुझे इससे बड़ी कोफ़्त होती। आपसे क्या चोरी, मैं नारी-मनोविज्ञान से थोड़ा परिचित हूँ। मुझे यहाँ और तो कोई काम था नहीं, इसलिए मैंने उसका ध्यान अधिक-से-अधिक अपनी ओर खींचने का प्रयत्न शुरू कर दिया। और मैं बहुत जल्द सफल हो गया।

अब मुझे चमकती हुई मुस्कराहटों का अधिक हिस्सा मिलने लगा। वह अक्सर मेरे पास आकर बातें करने लगी। अक्सर अवकाश के समय मेरे कमरे में कुर्सी पर बैठ भी जाती। वह आम नर्सों की अपेक्षा अधिक सुरुचिपूर्ण और सुसंस्कृत थी। धीरे-धीरे वह मुझसे घुल-मिल गयी। अब वह साहित्य और साहित्यकारों पर मुस्करा-मुस्कराकर दिलचस्प बातें करती, मेरी कवितायें और कहानियाँ सुनती और उनपर हँस-हँसकर राय देती।

मुझे स्वस्थ होने में देर नहीं लगी। मैं चलने-फिरने और अपने निकट के ग्रीन वार्ड और दूसरे वार्डों में आने-जाने लगा। यहाँ मेरे कई मित्र बन गये। हमारी महफ़िलों में ज़िन्दगी की गर्मी पैदा होने लगी। हमने सोचा, हमें कोई नाटक खेलना चाहिए। मैंने नाटक लिखने का ज़िम्मा लिया। निश्चय हुआ कि डाक्टरों तथा नर्सों से सहयोग के लिए कहा जाय। अतएव सबसे पहले हमारी नज़रें ग्रीन वार्ड की उसी हँसमुख तथा सदावहार नर्स पर पड़ी। हम सबको विश्वास था कि वह नाटक की तैयारी और उसे प्रस्तुत करने में हमारा साथ देगी।

अगले दिन सुबह को वह मुस्कुराहटें बिखेरती हुई मेरे कमरे में आयी, तो मैंने बात छेड़ दी—आज आपकी ड्यूटी कितने बजे आफ होगी?

—मालूम होता है कि आज आप कुछ विशेष कृपा करने के मूड में हैं!—उसने हँसकर कहा।

—मैं कोई विशेष किरपा-विरपा नहीं करना चाहता। असल बात यह है कि हम आप की सहायता चाहते हैं।

—मेरी सहायता!...किसलिए, कुशल तो है!

—हम लोग एक नाटक तैयार कर रहे हैं।

—आप नाटक खेल रहे हैं ?—वह एकदम गम्भीर हो गयी।

— जी, हाँ,—मैं जल्दी से बोला—आपने मेरे वाक्य का अर्थ बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है।

मुझे विश्वास था कि अब वह अपनी आदत के अनुसार हाथ बढ़ाकर चहकेगी, अच्छा, तब लाइए मेरा इनाम।

लेकिन वह चुप रही।

मैंने कहा—मैंने नाटक लिखना शुरू कर दिया है और हम बहुत जल्द उसे स्टेज करना चाहते है।

—वह कुछ क्षण चुप रही, फिर एक दम बोली—लेकिन क्यों ?

मुझे ऐसा लगा, मानो वह कह रही है, ए रोगी ! तेरी मत मारी गयी है, तेरी अक्ल घास चरने गयी है ? इत्यादि-इत्यादि। मैंने देखा कि उसकी मेहरबान नज़रें मेरी नज़रों से बचकर मेज पर पड़ी हुई एक किताब को घूर रही हैं।

मैंने कहा—हम सबको विश्वास है कि आप हमारा साथ देंगी।

लेकिन वह उसी तरह किताब को घूर रही थी। फिर मेज़ को, फिर मेन्टल पर रखी हुई दवा की शीशियों को, फिर बिस्तर पर पड़े हुए मेरे चार्ट को, फिर किसी और चीज़ को। मुझको ऐसा लगा, जैसे वह किसी ख़ास चीज़ को नहीं देख रही, बल्कि अपने विचारों को घूर रही है। वह गहरी सोच में थी और उदास लगती थी।

—आप हमारा साथ जरूर देंगी न ?—मैंने कहा।

—नहीं,—वह बोली और कमरे से निकल गयी।

उसकी इस दो टूक नहीं ने मुझे जितना निराश किया, उतना ही चकित भी। मुझे काफी रंज हुआ। अतएव जब वह इन्जेक्शन देने के लिए आयी, तब उसने मुझे रुष्ट पाया। मैंने इन्जेक्शन लेने से इनकार कर दिया।

—ओ-हो ! सरकार का मूड आज आफ है !—वह पिचकारी में दवा भरकर मेरी ओर बढ़ी।

मैंने फिर इनकार किया, तो पास आकर हँसती हुई बोली—रोगी के लिए ग़ुस्सा हराम बताया गया है। ग़ुस्सावर रोगी के लिए यह पतली-सी सूई, जो मेरे हाथ में है, लोहे की सीख बन जाती है। सो, सरकार, चुपके से इन्जेक्शन ले लीजिए।—यह कहते-कहते उसने मेरी बाह से कपड़ा हटाकर कन्धे के पास स्प्रिट मली और सूई भोंक दी।

—मैं जानती हूँ,—वह बोली—आज आप बिगड़े हुए हैं।

—आपको इससे क्या ?

—देखिए,—वह नम्र स्वर में बोली—रोगियों को हम थूकदानियाँ इसलिए देते हैं कि जब कभी उन्हें ग़ुस्सा आये, तो उनका सदुपयोग करें। आपके बेड के साथ थूकदानी भी इसी लिए रखी गयी है।

—आपने नाटक में काम करने से...

—इनकार कर दिया है !—उसने जल्दी से मेरी बात पूरी कर दी।

—लेकिन क्यों ?—अबकी मैंने यह शब्द केवल इसलिए कहे कि, मेरा मतलब था कि, ऐ नर्स ! तेरी मत मारी गयी है, तेरी अक़्ल घास चरने गयी है...

—मैं आपको इस क्यों का जवाब दे सकती हूँ,—वह बोली—इसका एक कारण है।...अच्छा, मैं फिर आऊँगी।—उसने सूई को रूई से साफ करके ट्रे में रखा और ट्रे उठाकर चल दी।

उसके आने से पहले मैंने कई बार सोचा कि वह अपने इनकार का कारण बताने के लिए कोई मज़ेदार चुटकुला गढ़-कर लायेगी, अपने उस चुटकुले पर आप ही ठहाका लगायगी और जी भरकर हँस लेने के बाद जब तबीअत साफ़ हो जायगी, तब हमारे नाटक में काम करने के लिए हाँ कह देगी।

रेस्ट टाइम से कुछ देर पहले वह आयी और कुर्सी खींचकर मेरे पास आ बैठी। उसका मुँह देखकर मज़ेदार चुटकुला सुनने की उम्मीद हवा हो गयी। वह सम्भवतः जल्दी में थी।

—आप कहानियाँ लिखते हैं, और मैं कहानियाँ सुनाती हूँ। —वह बोली—आज एक अजीब ग़ैरदिलचस्प-सी कहानी आपको सुनाती हूँ।

लेकिन उसका अन्दाज़ कहानी सुननेवाला न था। ऐसा लगता था, जैसे वह जल्दी से किसी बोझ को उतार फेंकना चाहती है। उसने सुबह की तरह फिर मेरी ओर से नज़रें

हटाकर कमरे की दूसरी चीजों को घूरना शुरू किया। मुझे इससे उलझन होने लगी।

—कमरे की चीज़ों को इस तरह बिना ज़रूरत घूरने का अन्दाज़ मुझे पसन्द नहीं,—मैंने कहा।

—और मुझे आपके नाटक लिखने की अदा बिल्कुल पसन्द नहीं!—वह मेरे चार्ट पर नज़रें जमाकर बोली।

—आप तो कहानी सुनाने आयी हैं,—मैंने बात बदली—उस कहानी की हीरोइन शायद...

—उस कहानी की हीरोइन कोई नहीं, सिर्फ़ एक हीरो है,—इतना कहकर उसने मेरी ओर देखा और बोली—और उसका हीरो इसी कमरे में, इसी बेड पर था, जहाँ आप लेटे हुए हैं।

—यह तो दिलचस्प संयोग है!—मैं बोला।

—यह बड़ी मनहूस बात है,—उसने जवाब दिया। उसका चेहरा इतना गम्भीर था कि मेरा हँस देने का इरादा ख़तम हो गया।

—आज से चार साल पहले यहाँ तीन नाटक हुए थे, वह तीनों में हीरो था।

—कौन?—मैं बिस्तर पर थोड़ा उठकर बैठ गया।

—एक रोगी,—उसने कहा—जिसका नाम बड़ा अजीब-सा था। रहीमयार, बिल्कुल देहाती-सा सिन्धी टाइप नाम। उसके दोनों फेफड़ों में दो बड़े-बड़े छेद थे। मुझे पता नहीं कि वह ग्रीन वार्ड में कब भरती हुआ। लेकिन मेरी ड्यूटी इस वार्ड में लगी, तो उसे आये एक महीने से ऊपर हो गये थे। उसे चार महीने के लिए पोस्चर दिया गया। पोस्चर पर लटके रहनेवाले रोगी बड़े चिड़चिड़े और ज़िद्दी हो जाते हैं। बच्चों की तरह जरा-ज़रा-सी बात पर बिगड़ते हैं। आप तो दिन-रात टँगे रहने की इस सज़ा से बचे रहे हैं और न आपने वार्डों में पोस्चरवालों को ग़ौर से देखा है। वे हम नर्सों को बहुत तंग करते हैं। वैसे तो ठीक रहते हैं, लेकिन डाक्टर के राउंड पर आते ही चिल्लाने लगते हैं, सीने में में दर्द है, डाक्टर साहब!...हड्डी में दर्द है, डाक्टर साहब!...यहाँ दर्द है, डाक्टर साहब, वहाँ दर्द है, डाक्टर साहब!...जब हम उन्हें स्पंज करने जाती हैं, तो उनके नाज़-नखरे और भी बढ़ जाते हैं। लेकिन रहीमयार उन-सब रोगियों से भिन्न था। उसने मुझे कभी तंग नहीं किया। दूसरों की तरह डाक्टरों से ख़ाहमख़ाह दवा नहीं माँगता था और न कभी अधिक ख़ुराक ही लिखवाता था। डाक्टर आकर पूछता, क्यों, भाई, कैसे हैं आप?

—बस जी, आपकी दवा से ठीक हूँ, वह हर रोज़ यही जवाब देता। वह मुझसे स्पंज करने के लिए ज़िद भी न करता। वह ख़ूबसूरत न था, लेकिन उसका चेहरा बच्चों-ऐसा लगता था। वह कभी किसी बात की शिकायत न करता था। वार्ड के नर्सिङ्ग अर्दली, नौकर लड़के और भंगी सभी उससे ख़ुश थे। ऐसा अच्छा रोगी सौ में एक-आध ही होता है। इसलिए वह सबको पसन्द आता है।

—आपकी तरह उसे भी पढ़ने का जुनून था। वह लेखक न था, लेकिन दिन-भर बिस्तर पर पड़ा ख़त लिखता रहता या किताबें और पत्रिकायें पढ़ता रहता।

—वह बहुत कम बोलता था। चुपचाप अकेला पड़ा रहता। मैं जब उसे दवा पिलाने आती, तो कहता, क्या ज़रूर पीनी पड़ेगी? फिर वह इस तरह दवा लेकर पीता, मानो मुझपर बड़ा एहसान कर रहा हो। मेरी मेज़ के पास ही उसका बेड था। कई बार मैं मेज़ पर झुकी हुई लिखने में व्यस्त होती, तो मुझे ऐसा लगता, मानो वह मेरी ओर देख रहा है। मैं जब उसकी ओर देखती, तो वह शर्माकर नज़रें किताब पर जमा देता। मैं कई बार शरारत से उसकी ओर देखती रहती। मेरा जी चाहता कि उसकी ख़ामोशी और तनहाई को दूर करने के लिए उससे बातें करूँ, लेकिन वह बहुत संक्षिप्त-सा उत्तर देकर फिर चुप्पी साध लेता था। फिर भी दो-अढ़ाई महीनों में उसने कई रोगियों को दोस्त बना लिया। जो रोगी पोस्चर पर नहीं थे, वे उसके बेड के आस-पास जमा हो जाते, और कैरम, ताश और लूडो खेलते। फिर वह वार्ड के रोगियों के लिए नये-नये खेल, नयी-नयी दिलचस्पियाँ सोचने लगा। इसी लिए वह सब रोगियों का बहुत जल्द मित्र बन गया। साढ़े तीन महीने में उसने आश्चर्यजनक उन्नति की। उसके फेफड़े के दोनों छेद बन्द हो गये। उसे पोस्चर से रिहाई मिल गयी। वार्ड के सब रोगी उसके भाग्य से ईर्ष्या करते थे। उन-सबने चन्दा इकट्ठा किया और उसके पोस्चर के उतरने की ख़ुशी में मिठाई बाँटी। मिठाई बाँटने का काम मुझे सौंपा गया। मैं जब मिठाई बाँटती हुई उसके पास गयी, तो उसने कहा, आप

हर रोज़ कड़ुवी दवायें बाँटती हैं, लेकिन आज मिठाई बाँट रही हैं!

—यह-सब आपका चमत्कार है,—मैंने जवाब दिया।

—नहीं, आपके प्रेम का चमत्कार है! उसने धीरे से कहा। फिर आप ही लज्जित होकर इधर-उधर देखने लगा। लेकिन मुझे उसकी यह बात बुरी नहीं लगी। उसमें बड़ी मासूमियत और भोलापन था।

—देखिए, मेरी इन बातों से कहीं आपको वहम तो नहीं होने लगा?—वह मुझे बिस्तर पर पहलू बदलते देखकर बोली।

मैंने कहा—मुझे तो कोई वहम नहीं हो रहा। मालूम होता है कि आप वहम पैदा करने की कोशिश में हैं!

—खैर, तो सुनिए,—वह हँसकर बोली—उसके बाद यह हुआ कि मेरी ड्यूटी निचले वार्ड में लग गयी। जाड़ा शुरू हो गया। गर्मियों में तो वार्ड के बरामदों में भी रोगियों को डाला जा सकता है। लेकिन सर्दियों में यह सम्भव नहीं! सर्दियों में बहुत-से कमरे खाली हो जाते हैं, क्योंकि प्राइवेट रोगी आम तौर पर सीज़न बिताने के लिए आते हैं। सीज़न खतम होते ही अपने घरों को चले जाते हैं, और इस तरह कमरे खाली हो जाते हैं। डाक्टर वार्ड के कई रोगियों को वार्डों से मिले कमरे में कर देते हैं, जिसमें कि बरामदे में पड़े रोगियों को अन्दर जगह मिल सके। अतएव ग्रीन वार्ड से जिन रोगियों को भेजा गया, उनमें रहीमयार भी था। रहीमयार को इस कमरे में यही बेड मिला, जिसपर आप लेटे हुए हैं।

—मेरी ड्यूटी अक्सर ग्रीन वार्ड में रहती थी, इसलिए दूसरे किसी वार्ड में बदले जाने से मेरा जी नहीं लगता था। मैं निचले वार्ड में ड्यूटी देने के बाद इस कमरे में आ जाती। कुछ समय वार्ड में रहने के बाद रोगी के लिए अकेले कमरे में रहना मुश्किल हो जाता है। वार्ड में रोगी एक-दूसरे से काफ़ी हिल-मिल जाते हैं। और फिर अकेले रहने से घबराते हैं। रहमीयार भी यहाँ कमरे में बहुत उदास रहता था।

—मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह बहुत जल्द दोस्त बन गया। शायद इस एकान्त ने उसे मेरे क़रीब कर दिया था। फिर वह वार्ड में दूसरे रोगियों के सामने मुझसे खुलकर बातें करने से शर्माता था। कुछ भी हो, मैं जब कभी उसके पास आती, वह मेरी प्रतीक्षा करता होता। मेरा अपना मन निचले वार्ड में नहीं लगता था, इसलिए मैंने बहुत जल्द फिर ग्रीन वार्ड में अपनी ड्यूटी लगवायी। ग्रीन वार्ड से मुझे बहुत प्यार हो गया था।

—ग्रीन वार्ड से या रहीमयार से?—मैंने कहा।

—क्यों, फिर भ्रम होने लगा न आपको? मैं जानती हूँ, आप-जैसे लोग बड़े शक्की और वहमी होते हैं। रहीमयार से मुझे सिर्फ हमदर्दी थी, सरकार। उसने मुझे बतलाया था कि दुनिया में सिवाय एक बूढ़ी माँ के उसका और कोई नहीं। उसके घर की हालत अच्छी न थी। वह बी० ए० फ़ाइनल में पढ़ता था। वह अपनी शिक्षा का खर्च ट्यूशन करके और काम करके कमाता था। वह बहुत ग़रीब लेकिन बहुत संतोषी युवक था। वह कभी ख़ूब ज़ोर से हँसता और कभी बातें करते-करते एकदम चुप हो जाता।

—उसका स्वास्थ्य सुधर रहा था। जिस दिन वह आया था, उसका वज़न पंचानबे पौंड था, लेकिन अब एक सौ छै पौंड हो गया था। डाक्टर ने उसका आपरेशन करने के लिए कह दिया। उन दिनों उसे थोड़ा चलने-फिरने की इजाज़त थी। वह ग्रीन वार्ड में आकर अपने दोस्तों में बैठता। उनसे खेलता और उनसे हँसी-मज़ाक करता। फिर वह दूसरे वार्डों में भी जाने लगा। एक दिन मेहरा वार्ड में उसकी मुलाक़ात एक रोगी प्रोफ़ेसर से हो गयी। यह प्रोफेसर रेडियो के लिए नाटक भी लिखा करते थे। रहीमयार ने उनसे मिलकर यहाँ नाटक खेलने का प्रोग्राम बनाया।

—पहले नाटक में अधिकतर ग्रीन वार्ड के रोगी शरीक थे। मैं चूँकि उस वार्ड में ड्यूटी देती थी, इसलिए मैंने भी हिस्सा लिया।

—आप हीरोइन बनी होंगी?—मैंने सवाल किया।

—आप पूरी बात तो सुन लीजिए!—वह जल्दी से बोली—आप बार-बार टोकते हैं, यह अच्छी बात नहीं।

मैं इस डर से चुप रहा कि कहीं वह सचमुच खफ़ा न हो जाय।

वह बोली—नाटक तैयार कराना, उसका रिहर्सल कराना, एक-एक रोगी को पार्ट नक़ल करके देना और

उसके पीछे-पीछे फिरना रहीमयार का ही काम था। उधर उसने नाटक की तैयारी शुरू करायी और इधर उसका आपरेशन क़रीब आ गया। उसने कई बार डाक्टर से कहा कि उसका आपरेशन नाटक होने तक स्थगित कर दिया जाय, लेकिन डाक्टर नहीं माना। उसका आपरेशन हो गया। वह नाटक का हीरो था, उसके बिना रिहर्सल नहीं हो सकता था, लेकिन उसने रिहर्सल बन्द नहीं होने दिया। अपने कमरे में रिहर्सल कर लेता और बिस्तर पर पड़े-पड़े अपना पार्ट याद करता। चौथे दिन वह बिस्तर से उठ बैठा, जब कि अभी उसके आपरेशन के टाँके नहीं खुले थे। नाटक स्टेज हुआ और बहुत पसन्द किया गया। उसके अभिनय ने नाटक में जान डाल दी थी। नाटक समाप्त होने पर जब प्रोफ़ेसर साहब ने अभिनेताओं का परिचय कराते हुए रहीमयार को भी पेश किया, तो हाल तालियों से गूँज उठा। रात को नाटक हुआ और सुबह को वह सारे सेनीटोरियम में मशहूर था। अगले दिन कई रोगी उसे देखने आये।

—मेरे साथ बहुत-सी नर्सें उसे बधाई देने आयीं। डाक्टरों ने भी उसके अभिनय की बड़ी सराहना की।

—पहले नाटक से छुट्टी पाते ही उसने दूसरे नाटक की तैयारी शुरू कर दी। प्रोफ़ेसर से नया नाटक लिखवाया। उसके लिए काम करनेवालों का चुनाव किया और रिहर्सल शुरू भी करा दिया। अब वह नाटक की तैयारी में इतना डूब गया था कि कई बार मुझसे बहुत कम बात करता और जब कोई बात करता भी, तो वह नाटक के सम्बन्ध में ही होती। मैं जब टेम्परेचर मार्क करने या इन्जेक्शन और दवायें देने आती, तब उसे बहुत व्यस्त पाती। कई बार वह अपने कमरे में न मिलता। मुझे चिन्ता थी कि वह अपने स्वास्थ्य का ख़्याल किये बिना भाग-दौड़ कर रहा है। मैंने कई बार उसे समझाया भी, लेकिन उसे तो एक ही धुन सवार थी। आठवें दिन उसका वजन लिया गया, तो पहले से दो पौंड कम था। मैं उसपर बहुत बिगड़ी। मैंने कहा कि मैं डाक्टर से रिपोर्ट कर दूँगी, तो वह बोला कि वह किसी वहम का शिकार नहीं होना चाहता, क्योंकि नाटकों से उसकी बीमारी दूर हो रही है।

—एक बार मैंने फिर डाँटा, तो वह बोला, तुम मुझपर नाहक खफ़ा होती हो। दरअसल मुझे ऐसा लगता है, जैसे मेरे पास समय कम है और मुझे बहुत-कुछ करना है। वह मेरे समझाने को बुरा मानता। बात-बात पर मुँह फुला लेता। उसे पता नहीं क्या हो गया था।

—एक दिन डाक्टर साहब ने मुझे किसी रोगी की शिकायत पर बहुत डाँटा। मेरा मूड बहुत ख़राब था। मैंने दो-तीन घन्टे वार्ड के किसी रोगी से बात तक नहीं की। वार्ड में से रहीमयार के किसी दोस्त ने उसे यह खबर पहुँचा दी। मैं रहीमयार के कमरे में यह सोचकर आयी कि उसके सामने अपने मन का सारा ग़ुबार निकालूँगी। लेकिन देखा कि वह मुँह फुलाये बैठा है। मैंने कारण पूछा, तो उसने मुँह फेर लिया। मुझे बहुत दुख हुआ। मैंने कहा कि वह जान-बूझकर मेरा दिल दुखाता है।

—वह बोला, तुम जो तीस रोगियों का दिल दुखाकर आयी हो! तुमने सुबह से वार्ड में किसी से बात नहीं की!

—मैं भौंचक्की रह गयी। मैंने कहा, लेकिन मैं तुमसे तो बात कर रही हूँ। तुम्हें तो मैं हर समय प्रसन्न देखना चाहती हूँ।

—मेरे तीस साथियों को दुखी करके तुम मुझे प्रसन्न नहीं कर सकती! उसने जवाब दिया। उसकी इन बातों और व्यवहार पर मैं ख़फ़ा होकर उसके कमरे से निकल गयी।

—अगले दिन उसकी पी० पी० स्टार्ट होनी थी। उसने मुझे चिट लिखकर भेजी कि मेरे बिना वह पी० पी० नहीं करा सकेगा। उसे पी० पी० कराने से बड़ा डर लगता था। मैं फिर उसके कमरे में आ गयी। उसकी प्राइमरी पी० पी० हुई। शुरू में पी० पी० से काफ़ी तकलीफ़ होती है। आप घबराइए नहीं। बस, पहले दो-तीन बार तकलीफ़ होती है, क्योंकि शुरू में इन्सान हवा लेने का आदी नहीं होता। पेट में हवा जाती है और जगह बनाने की कोशिश करती है। उठते-बैठते कन्धों में खासे झटके लगते हैं। फिर आदमी अभ्यस्त हो जाता है। तो उसकी पी० पी० शुरू हुई। तीसरे दिन हवा लेने के बाद वह फिर चलने-फिरने लगा। रिहर्सल में नियमित रूप से शरीक़ होता।

—अगले सप्ताह उसका वज़न हुआ, तो दो पौंड और कम हो गया था। उसने बताया कि पी० पी० के कारण

ऐसा हो रहा है। कई रोगियों के साथ हो भी जाता है। इससे भूख नहीं लगती और वज़न कम होने लगता है। लेकिन मुझे अच्छी तरह मालूम था कि वह खाना खूब खाता है, लेकिन आराम न करने और काम अधिक करने के कारण वह कमज़ोर हो रहा है।

—डाक्टर ने दो-तीन बार उसे टोका भी, लेकिन उसने हर बार पी० पी० का बहाना कर दिया। डाक्टर उसपर विश्वास करते थे। उसके चलने-फिरने पर प्रतिबन्ध नहीं लगा, लेकिन उसके इन्जेक्शन बढ़ा दिये गये और दवाएँ भी अधिक लिख दी गयीं।

—दूसरा नाटक भी हो गया। उसमें भी वह हीरो था। उसके अभिनय की धाक बैठ गयी। इस बार रोगियों और स्टाफ़ के अतिरिक्त बाहर के लोग भी काफ़ी आये। रोगी तो जैसे उसके नाम की माला जपने लगे। उन लोगों को, जिनमें से अधिकांश एक-एक वर्ष से यहाँ रहते थे, बैठे-बैठे मुफ़्त की तफ़रीह हो गयी थी और यह सब-कुछ रहीमयार के ही कारण था।

—फिर तीसरे नाटक की तैयारी शुरू हो गयी। दूसरे नाटक में मैंने अच्छा-खासा रोल लिया था। उसमें गाने भी गाये थे। तीसरे नाटक में उसने मुझे डान्सिग गर्ल का पार्ट दिया। मैं उतना अच्छा डांस नहीं कर सकती थी। लेकिन उसने कहा कि मैं अभ्यास कर लूँ, तो ठीक नाच लूँगी। मैं तैयार न होती थी, लेकिन उसने बार-बार बिगड़कर मुझे मना लिया। उसने मुझे बताया कि वह कालिज में बहुत अच्छा डांस किया करता था, लेकिन बीमारी के कारण उसे डाक्टरों ने मना कर रखा है।

—तीसरे नाटक की तैयारी में वह पूरी तरह डूब गया। मैं जब-कभी उसके कमरे में जाती, यह कहीं ग़ायब होता। रेस्ट टाइम के अतिरिक्त वह कमरे में कभी न बैठता। वह रिहर्सल में मिलता और मुझे आदेश देता कि मैं अपने कमरे में जाकर नाच का अभ्यास कर लूँ।

—उसका स्वास्थ्य गिर रहा था। मुझे इससे बड़ी चिन्ता थी। लेकिन वह बहुत ज़िद्दी और हठ का पक्का था। उसपर तो केवल नाटक सवार था और किसी बात का उसे होश न था। नाटक से चार दिन पहले मुझे उसके बारे में एक भयानक सन्देह हुआ। हम नर्सें रोगियों और उनके रोगों के बारे में बड़ी चतुर होती हैं। हमारी निगाहें साधारणतः रोगी की सूरत देखकर रोग का हाल जान लेती हैं। उसके चेहरे का रंग देखकर मुझे सन्देह हुआ कि उसे ख़ून आने लगा है। मैंने दो-तीन बार उसकी चोरी से उसकी थूकदानी भी देखी, लेकिन वह साफ़ थी।

—जिस दिन शाम को नाटक होना था, उसी दिन सुबह जब मैं उसके कमरे में आयी, तो वह बाथ रूम में था। मैं थूकदानी देखने लगी, लेकिन वह ग़ायब थी। मेरा सन्देह और भी बढ़ गया। मैं चुपके से बरामदे में निकल आयी और बाथरूम में उसके निकलने का इन्तज़ार करने लगी। दरवाज़ा खुलने की आवाज़ आयी। मैं बरामदे से ज़रा आगे हो गयी। मेरी नज़रें नाली पर पड़ीं, जहाँ पानी से मिला हुआ ख़ून बह रहा था। मैं काँप गयी। मेरा सन्देह विश्वास में बदल गया। वह थूकदानी में ख़ून थूकने के बाद बाथरूम में पानी बहाकर आ रहा था।

—मैंने उसकी चोरी पकड़ ली थी। एक-दो मिनट तक मैं उसे ग़ुस्से से घूरती रही। फिर मैं जब बोली, तो वह सहम गया। मैं ग़ुस्से से चीख़ी, मैं अभी जाकर डाक्टर से तुम्हारी रिपोर्ट करती हूँ!

—वह कुछ देर तक गुम-सुम-सा खड़ा रहा। फिर न जाने उसे क्या हुआ कि वह एकदम बिफरकर बोला, जाओ, कह दो जाकर! लेकिन याद रखो, मैं उमर-भर तुम्हारी सूरत न देखूँगा!

—मैंने कहा, यह तुम्हें क्या हो गया है?…तुम पागल हो गये हो?

—वह धीरे से बोला, मैं पागल नहीं हूँ। लेकिन ख़ुदा के लिए तुम आज डाक्टर से न कहना। आज नाटक हो रहा है, वे मुझे बिस्तर पर जकड़ देंगे। नाटक नहीं हो सकेगा।… पौने दो सौ रोगियों को कितनी निराशा होगी!

—मैं ग़ुस्से से काँपने लगी और बोली, तो क्या दूसरों को ख़ुश करने के लिए तुम ख़ुद मौत के मुँह में चले जाओगे? मैंने तुम्हारे-ऐसा बेवक़ूफ़ आज तक नहीं देखा। तुम्हें पूरे आराम की ज़रूरत है।

—बस, आज का नाटक हो जाने दो, वह कहने लगा, इसके बाद मैं पूरा आराम करूँगा। बिस्तर से कभी नहीं हिलूँगा। तुम चाहो तो डाक्टर से मेरी रिपोर्ट भी कर देना।

लेकिन सिर्फ़ आज की मोहलत दे दो। एक दिन में मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ जायगा। मैं इतनी आसानी ने मरनेवाला नहीं हूँ।

—फिर उसने मेरी इतनी .खुशामदें कीं, इतनी बार मेरे सामने हाथ जोड़े, इतनी क़समें खा-खाकर आराम करने का वादा किया कि मैं नर्स के बजाय एक बेवक़ूफ़ औरत बन गयी। मैं जानती थी कि मैं नर्स की हैसियत से अपने कर्त्तव्य से मुख मोड़ रही हूँ, संगीन जुर्म कर रही हूँ, लेकिन उसकी भोली सूरत, उसकी .खुशामदों, उसके नाटक खेलने के जुनून ने मुझे हरा दिया। मैंने सोचा कि एक ही दिन की तो बात है। मुझे यह डर भी था कि अगर इसकी बात न मानी और डाक्टर ने इसे बिस्तर पर डालकर नाटक मुलतवी करा दिया, तो उसे बहुत दुख होगा। वह सचमुच मुझसे कभी बात नहीं करेगा और शायद वह मुझसे नफ़रत भी करने लगे। नर्स की अक़्ल और कर्त्तव्य ने आँखें बन्द कर लीं और मैं एक ऐसी औरत रह गयी, जो बहुधा प्रेम या सहानुभूति में अन्धी हो जाती है।

—रात को उसने नाटक में अपनी कला का बड़ा ही अच्छा प्रदर्शन किया। उसने एक ऐसे बेकार और दुखी नौजवान का पार्ट किया, जिसे दुनिया पग-पग पर धोखे देती है। ऐसा लगता था, मानो उसने उस चरित्र में अपनी आत्मा डाल दी है। आस-पास के देहातों और करीब के दो-तीन नगरों से भी लोग नाटक देखने आये थे। हाल के बाहर, इर्द-गिर्द और न जाने कहाँ-कहाँ लोग खड़े थे। मुझे तो उस समय किसी बात का होश न था। पहले दृश्यों में दो साधारण नाच थे। लेकिन अन्त में बड़ा मुश्किल नाच था। मुझे अन्तिम दृश्य में नाचना था। अन्तिम दृश्य आ गया। उस समय रहीमयार साइड में खड़ा था और मेरा दिल बढ़ा रहा था। मेरा बुरा हाल था। क़दम रखती एक जगह थी, पड़ते दूसरी जगह थे। हालाँकि रिहर्सल में दो-एक बार मैंने अच्छा नाच लिया था, लेकिन अब दिल बुरी तरह धड़क रहा था। मेरे पाँव उखड़ गये। हाल में लोग हँसने लगे। आख़िरी दृश्य सब से अधिक प्रभावशाली और सफल होना चाहिए था, लेकिन मेरे कारण हास्यास्पद बन गया। मैं घबराहट और शर्म से पानी-पानी हो गयी। लोग ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे। अचानक दूसरी तरफ से एक दूसरा नाच, शुरू हो गया। मैं हैरान रह गयी। नर्तकी ने मुँह और सर दुपट्टे से ढाँक रखा था। किसी ने उसकी सूरत नहीं देखी। उसके नाच से मेरे क़दम सँभल गये। देखते-ही-देखते हँसते हुए दर्शक चुप हो गये। फिर तालियाँ बजाने लगे। अन्तिम दृश्य फिर चमक उठा। नाटक सफल हो गया। मैंने नाचते-नाचते कई बार उसे देखना चाहा। नाचनेवाला पुरुष था। मेरा जी धक से रह गया, मैंने चिल्लाना चाहा...

—मैंने चिल्लाना चाहा, रहीमयार! मत नाचो, रहीमयार! लेकिन मेरी आवाज़ गले में फँसकर रह गयी। वह दो-तीन मिनट तक .खूब नाचा। फिर मैंने देखा कि वह जल्दी से दुपट्टा मुँह में लेकर साइड में ग़ायब हो गया। पर्दा गिर गया।

—मैं थकी हुई ग्रीन रूम में भागी आयी। लेकिन वह यहाँ नहीं था। मैं यह सोचकर कपड़े बदलने लगी कि वह स्टेज पर ही कपड़े बदलकर परिचय के लिए तैयार हो रहा होगा। मैं जब कपड़े बदलकर आयी, तब प्रोफ़ेसर साहब बहुत-से अभिनेताओं का स्टेज पर दर्शकों से परिचय करा चुके थे। अब मेरा नाम आनेवाला था। मैं पेश होकर वापस आ गयी। अब रहीमयार का नाम प्रोफ़ेसर साहब ने पुकारा। उसका नाम आते ही लोग तालियाँ पीटने लगे। वह मुझे साइड में कहीं न दिखा। प्रोफ़ेसर साहब ने यह सोचकर कि वह लिबास बदलकर आता ही होगा, फिर उसका नाम माइक पर लिया। लोग और ज़ोर-ज़ोर से तालियाँ बजाने लगे। मैं भागकर ग्रीन रूम में उसे बुलाने के लिए आयी, लेकिन ग्रीन रूम ख़ाली था। उसके सादा कपड़े, जिनमें वह परिचय के लिए आया करता था, वहीं पड़े थे। मैंने ग्रीन रूम से अपनी टार्च उठायी और उसे बाहर देखने लगी।

—ग्रीन रूम के उस तरफ़ अँधेरे में वह पड़ा था। टार्च की रोशनी में नीले रंग का दुपट्टा, जिससे नाचते समय उसने अपना मुँह और सर छुपा रखा था, ख़ून में तर था। पास ही खून का ढेर लगा था। मैंने उसके माथे पर हाथ रखा, नाड़ी देखी, छाती को टटोला, लेकिन पर्दा गिर चुका था।

—लोग अभी तक ज़ोर-ज़ोर से तालियाँ बजा रहे थे। कई रोगी उसका नाम ले-लेकर पुकार रहे थे, लेकिन...

नर्स रुक गयी और बाहर देखने लगी। मुझे उसके स्वर में दुख की कँपकँपाहट-सी महसूस हुई। रेस्ट टाइम की घंटी बजने लगी।

—लेकिन स्टेज खाली पड़ा था,—वह रुँधे हुए स्वर में बोली और कुर्सी से उठी और बाहर चली गयी।

मेरी नजरें बरामदे में उसके पीछे भागीं। फिर कमरे में आ गयीं। मैंने कमरे की दीवारों, खिड़कियों और अपने बिस्तर को देखा। फिर मैंने महसूस किया कि ऊपर ग्रीन वार्ड में बजती हुई घंटी आज रोज़ की अपेक्षा ज़ोर-ज़ोर से और काफ़ी देर से रो रही है।

उर्दू से अनु० 'हुनर'

प्रतियोगिता

कीर्ति चौधरी

सरो के घर से लौटकर रंजना चुपचाप बिना कपड़े उतारे पढ़ने बैठ गयी, तो माँ ने टोका—रंजना, मुँह-हाथ तो धो ले। हर वक्त पढ़ना भी क्या? सरो के घर कमल भी आयी थी क्या?

—हाँ, आयी थी।...मुझे पढ़ने दो!—रंजना ने मुँह फुलाकर जवाब दिया और सामने खुली किताब पर लाल पेंसिल से बड़े-बड़े निशान लगा डाले।

माँ ने पुत्री का मूड बिगड़ा देखा, तो सामने से हट आयी। माँ के हटते ही पढ़ना भूल रंजना की आँखों में मारे क्रोध के आँसू भर आये। किताब परे सरका उसने रूमाल आँखों से लगा लिया। माँ फिर आयी, और चुपके से देखकर लौट गयी। छोटी बहन ने बड़ी देर तक अन्दाज़ लगाया। सामने खुली किताब को झाँककर देखा कि शरत का 'देवदास' तो नहीं है। फिर वह भी लौट गयी।

शाम को बाबू आये।

—रंजन बेटा, सरो के घर से किताब ले आयी? लाओ, ज़रा देखें तो।—चाय की मेज़ पर बैठे अनन्त बाबू ने पुत्री को पुकारा।

रंजना उनकी सबसे बड़ी लड़की है। इस वर्ष हाई स्कूल में प्रविष्ट हो रही है। किताब लेकर उसने गंभीर मुख से कमरे में प्रवेश किया और मेज़ के एक कोने बैठ चाय बनाने लगी। अनन्त बाबू ने किताब उलटते-पलटते हुए कहा—अब तो इस पर्चे में तुम्हें किसी किताब की ज़रूरत नहीं रही, क्यों? इसी पर्चे पर तुम्हारा डिवीज़न निर्भर है न, रंजन?

कप की अतल गहराइयों में दृष्टि डुबाते हुए विरक्त आवाज़ में रंजना बोली—डिवीज़न! बिल्कुल असम्भव है, बाबू! पास हो जाऊँ, यही बहुत है।

अनन्त बाबू पुत्री के इस आकस्मिक भाव-परिवर्तन पर बड़े आश्चर्य-चकित हुए। उसकी ओर ध्यान से देखते हुए बोले—क्यों? अच्छा, अब समझा? सरो ने क्या बहुत पढ़ लिया है?

रंजना ने उत्तर नहीं दिया। चुपचाप चाय पीती रही।

मुस्कराते हुए अनन्त बाबू फिर बोले—सरो चाहे जितना पढ़े, पर प्रथम श्रेणी हमारी रंजना को ही मिलेगी। अच्छा, शर्त बदेगी?

—ऐसे ही सबको प्रथम श्रेणी मिलने लगे, तो क्या कहने ! न कोई पढ़ानेवाला, न कुछ । समय अलग से नहीं मिलता । सरो दिन-भर पढ़ती है, दिन-भर ! मुझे कौन···—संयम का बाँध तोड़कर मोती के दाने झर पड़े ।

अनन्त बाबू ने इस समय पुत्री को कुछ कहना उचित नहीं समझा । बाद में पत्नी को बुलाकर उन्होंने हिदायतें दीं—देखो, रंजना को पढ़ने का अधिक-से-अधिक समय दिया करो । घर का काम तुम लोग करो । दो ही महीने तो रह गये हैं उसकी परीक्षा के ।

❀

—नमस्ते, मिश्रजी ।

—आइए, अनन्त बाबू, क्या हाल है ?

—ठीक ही है । लगता है, अभी आये हैं कोर्ट से । सरो नहीं दिखलायी पड़ रही । कहाँ है ?

—अरे, कुछ न पूछिए !···सरो का तो हाल बुरा है । कल जब से रंजना उससे मिलकर गयी है, इसने अन्न-जल का त्याग कर रखा है । क्या बताऊँ, मैंने तो सोचा था, ये-सब एक ही परीक्षा में बैठ रही हैं, जान-पहचान हो जायगी, मिलती रहेंगी, तो लाभ ही होगा । पर परिणाम तो उल्टा ही दीखता है । वो राय साहब हैं न यहाँ पर । उनकी लड़की कमल भी परीक्षा दे रही है । कल वह भी आयी थी । सरो को पूरा विश्वास हो गया है कि फर्स्ट डिवीज़न उसे अवश्य मिलेगा । कल से इसी चिन्ता में भुन रही है । भई, ज़रा तुम्हीं समझाओ । अब जितनी सुविधाएँ घर में मिल सकती हैं, उतनी तो मैंने दे रखी हैं । और हो ही क्या सकता है ? पर सरो ने तो घर-भर को परेशान कर रखा है !

इतने में चिन्तातुर, क्षीण काया लिये सरो ने प्रवेश किया । हाथ में इतिहास का मोटा-सा ग्रंथ, आँखों पर चश्मा

—कहो, फर्स्ट डिवीज़न श्योर है न ?—अनन्त बाबू ने पूछा ।

दार्शनिकों की तरह चश्मे के अन्दर से अनन्त बाबू को भली भाँति देखते हुए सरो ने कुछ ऐसी मुस्कान मुस्कराने की चेष्टा की, जिसमें लगे कि बहुत दर्द छिपा है । फिर धीमे-धीमे बोली—आकाश-कुसुम है ।

—तो फिर अन्न-जल क्यों त्यागा है ?—हँसते हुए अनन्त बाबू बोले ।

सरो ने कुछ उत्तर नहीं दिया । केवल मुँह कुछ और व्यथातुर बना लिया ।

अनन्त बाबू फिर बोले—भई, सारी पुस्तकें तुम्हारे पास हैं । तुम क्यों इस तरह की बात करती हो ? घर में भी कोई काम नहीं रहता । रंजना को तो देखो, उसकी माँ हरदम बीमार रहती हैं । डाक्टर ने आग के पास बैठना मना कर दिया है । वही खाना बनाती है । घर का सारा काम भी करती है । वह अगर असंतोष प्रकट करे, तो बात भी है, क्यों ?

सरो ने किताब परे सरका दी, फिर एक-एक शब्द को तौलते हुए बोली—यही तो विडम्बना है मेरे साथ । अपने-आप पढ़ते रहने से कुछ थोड़े ही हो जाता है । कोई कुछ बताने वाला भी तो होना चाहिए । कहने के लिए बाबूजी मर्मज्ञ हैं, साहित्य के ज्ञाता हैं, पर इन्हें कचहरी और मुवक्किलों से दम मारने को भी फ़ुर्सत है ? क्या ऐसे ही पढ़ाई होती है ?—सरो ने ज़ोर से होंठ काटकर अपने आँसू रोक लिये ।

❀

बहुत देर तक क्रोधपूर्ण बनायी हुई मुख-मुद्रा की ओर किसी ने ध्यान न दिया, तो कमल ने अस्पष्ट स्वरों में बड़-बड़ाना प्रारम्भ किया—हर वक्त काँव-काँव ! घर है कि कुँजड़ों का बाज़ार ! हुँः ! ऐसे में कोई पढ़ भी सकता है ? यही लक्षण हैं पास होने के ? उधर म्यूज़िक कांफ्रेंस हो रही है ! इधर दंगल लड़ा जा रहा है ! एक कमरा नहीं । एक जगह नहीं ! हुँः-हुँः !···

क्रमशः तेज़ होती हुई बड़बड़ाहट भाई के कानों में जा पहुँची ।

—किस सम्बन्ध में गोत्रोच्चार हो रहा है ? स्पष्ट कहा जाय ?

—पढ़ना नहीं हो सकता ! किताबों के बंडल बाँधकर समुद्र के नाम पार्सल कर दिया जाय !

—क्या फर्स्ट डिवीज़न में किसी तरह का ख़तरा आ गया है ?

—नान्सेन्स ! फर्स्ट डिवीज़न कोई खेल नहीं है !

—खेल तो, ख़ैर, नहीं है। पर कुछ लोगों ने अभी तक खेल ही समझ रखा था। यह अच्छी बुद्धि किस तरफ़ से मिल गयी?

—बात मत करो!—कमल बहुत ज़ोर से पैर पटकते हुए अन्दर चली गयी।

पीछे-पीछे भाई भी पहुँचे।

—क्या तुम्हारी सहेलियों में से किसी को फ़र्स्ट डिवीज़न मिल रहा है?

कमल ने चट मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

—अच्छा, यह इम्तहान पास कर लो। अगले साल तुम्हारा ब्याह कर देंगे! पढ़ना न पड़ेगा।

कमल ने सिर को बड़े ज़ोर से झटककर अप्रसन्नता ज़ाहिर की और वैसे ही बैठी रही।

—अच्छा, ख़ैर, मत, बोलो। यह लो अपनी किताब, जो कल मंगायी थी, और मैं चला।

कमल ने मुँह फेरे-फेरे हाथ बढ़ा दिया, तो प्रमोद चीखकर हँसने लगा। लाचार उसे भी हँसी आ गयी। लेकिन बात नहीं खतम हुई। बड़े गम्भीर शब्दों में सरो और रंजना के पढ़ने की प्रगति बयान की गयी। साथ ही इस बात की पूरी आशंका प्रकट की गयी कि यदि पढ़ाई पर काफ़ी से ज़्यादा ध्यान न दिया गया, तो प्रतिद्वन्द्वी अवश्य बाजी जीत ले जायेंगी।

प्रमोद ने वैसा ही गंभीर मुँह बनाकर सारी बातों का अनुमोदन किया। तय यह हुआ कि कल से कमर कसकर पढ़ाई पर जुटा जाय। प्रथम श्रेणी हर हालत में उसे ही मिलनी चाहिए।

ॐ

पूरे दो महीने अनन्त बाबू की पत्नी ने खाना बनाया। छोटी लड़की ने घर सँभाला। फलस्वरूप उसे आठवीं में प्रोमोशन मिला। पत्नी की बीमारी ने वह रूप पकड़ा कि हालत अब-तब होने लगी।

मिश्रजी ने अच्छे-अच्छे मुक़द्दमे छोड़ दिये और महीने-भर तक ऐस्प्रो की टिकिया खा-खाकर बेटी के लिए नोट्स बनाते रहे, किताबें समझाते रहे।

प्रमोद ने मकान-मालिक से एक कमरा बीस रुपये मासिक पर लिया। रेडियो रिश्तेदारों को दे दिया। एक छोटा-सा नौकर रखा। लड़कों को इस बीच शोर मचाने पर कई बार मार पड़ी। मकान के आगे एक तख्ती लग गयी, कृपया बेकार समय नष्ट न करें आकर।

गरज़ ये कि हर तरह की कोशिशें की गयीं। तीनों लड़कियों में प्रतिद्वंद्विता का भाव बेतरह बढ़ता गया। सरो का खाना-पीना एकदम छूट गया। कमल ने मौन व्रत धारण किया। रंजना को रोने के मौक़े इस बीच कई बार आये। पर नोट्स बढ़ते गये। किताबें खत्म होती गयीं।

ॐ

कभी-कभी मिलना होता। बड़ी हँसी-ख़ुशी बातें शुरू होतीं। इम्तहान पास करने में बड़ी मुश्किलें नज़र आतीं। घर कीं असुविधाएँ, प्राइवेट पढ़ाई के दोष पर बात होते-होते सामाजिक स्तर पर आ जाती। मध्यम वर्ग! तीनों सहेलियाँ खुले दिल से मध्यम वर्ग की सीमाओं की आलोचना करतीं। कभी-कभी रंजना हँसी में कहती—कमल, तुमसे तो हमें ग्रैंड फ़ीस्ट मिलेगी न? तुम्हारे फ़र्स्ट डिवीज़न में तो किसी तरह का संशय नहीं।

चश्मे के अन्दर से हँसती हुई सरो अनुमोदन करती।

तब कमल कुछ अजीब भाव आँखों में भर, दर्दीले स्वर में उत्तर देती—मेरी महत्वाकांक्षा थी, रंजना। पर पूरा होना असम्भव है।—फिर फीके से मुस्काकर—तुम दोनों प्रयत्न करो। अपना टूटा हुआ सपना तुममें चरितार्थ होते देख मुझे बेहद ख़ुशी होगी।

और पलक मारते फ़िज़ा बदल जाती। तीनों के हृदयों में प्रतिद्वन्द्विता और चेहरों पर अव्यक्त क्रोध के भाव आ जाते। कुछ पलों बाद फिर चुहल शुरू होती। अपने-अपने नोट्स एक-दूसरे को देने के वादे होते, आपस में सद्भावनाओं के कोष लुटाये जाते।

बार-बार मिलने पर भी एक-सी ही बातें दुहरायी जातीं और अन्तर-प्रतिद्वंद्विता बढ़ती जाती। तीनों के मन में एक ही दृश्य था, रिज़ल्ट निकला है और दोनों सहेलियाँ हारी हुई हँसी हँसती उसे बाधई दे रही हैं।

ॐ

आखिर परीक्षा आयी और खतम हुई। पर परेशानियाँ खत्म होने की जगह बढ़ गयीं। सरो को चश्मा बदलवाना पड़ा। मिश्रजी को मुक़द्दमे छोड़ने की आर्थिक हानि किसी

तरह सहन न हो सकी और उन्हें मई-जून की गर्मियों में बड़ी रात गये तक मिसिलें देखनी पड़ीं। रंजना का वज़न पूरे दस सेर घट गया। अनन्त बाबू को पत्नी की बीमारी से लेने-के-देने पड़ गये। गर्मियाँ शाप हो उठीं। कमल को रात-रात-भर पढ़ने के कारण रक्ताल्पता की बीमारी हो गयी। प्रमोद के नौकर ने एक दिन गहनों-कपड़ों-सहित प्रयाण कर दिया। रिश्तेदार साहब ने रेडियो लौटाया, तो उसके अंजर-पंजर ढीले थे।

पर इतनी सारी परेशानियाँ भी सह्य थीं। अन्धकार में एक आशा की किरण बाक़ी थी। रंजना के पिता ने सोच रखा था, लड़की प्रथम श्रेणी में आयगी, तो स्कालरशिप के लिए अप्लाई करेंगे। उनकी बड़ी पहुँच थी। सरो को किसी अच्छी जगह नौकरी पाने की पूरी आशा थी। कमल का इरादा आगे पढ़ने का था।

गर्मियाँ प्रतीक्षा और कष्ट में बीतने लगीं। दुःख की रात बीतने को थी। सुनहला प्रभात आने में कोई संशय नहीं था। और आखिर वह दिन आ ही पहुँचा।

प्रमोद ने अख़बार लिये घर में प्रसन्न मुद्रा से प्रवेश किया और आंगन के बीचो-बीच खड़े होकर ज़ोर से ऐलान किया—

थर्ड !

थर्ड !

थर्ड !

युग मन्दिर,
उन्नाव।
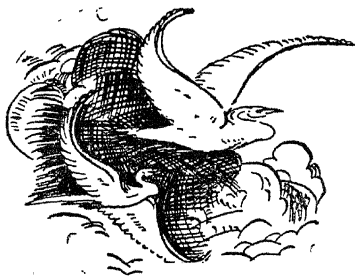
आज बाबू वैद्य प्रकाश के दफ़्तर में दावत थी। दफ़्तर के एक अफ़सर का तबादला ऊँची जगह हो गया था, उसी के उपलक्ष में बिदा-भोज का आयोजन किया गया था। कार्यालय के सभी कर्मचारियों ने यथाशक्ति चन्दा दिया था।

चन्दा एकत्रित करने से लेकर सामान ख़रीदने आदि के सभी कामों में वैद्य प्रकाशजी सबसे आगे थे। दिन-भर वह भोज के प्रबन्ध में ही लगे रहे। कितना चन्दा एकत्रित हुआ, क्या-क्या सामान आया, कितना खर्च हुआ, आदि सभी बातों के लिए वैद्य प्रकाशजी ही जिम्मेदार थे। भोज का कार्य सम्पन्न कर करीब आठ बजे वह निवृत्त हुए।

घर में सन्नाटा छाया हुआ था। दोनों बच्चे सो चुके थे। पत्नी बाट देख रही थी। रसोई ठंडी हुई जा रही थी। कभी इतनी देर नहीं करते, आज क्यों अभी तक नहीं आये, वह रह-रह कर झल्ला उठती थी। उसने अभी तक भोजन नहीं किया था। बच्चे भी बाट देखते भूखे ही सो गये थे।

वैद्य प्रकाशजी ने कुंडी खटखटायी, तो पत्नी ने उठकर दरवाज़ा खोला। वैद्य प्रकाशजी का अन्दर घुसना था कि पत्नी ने तीर छोड़ा—आज इतनी देर कहाँ कर दी? रसोई ठंडी हो गयी। आपको तो जैसे घर की परवाह ही नहीं।

—सुबह तुम्हें बताना मैं बिल्कुल भूल गया!—वैद्य प्रकाशजी अपराधी की तरह बोले—आज दफ़्तर में भोज था, तुम्हें इत्तला न कर सका! जरूर तुम्हें तकलीफ़ हुई।

पत्नी ने बच्चों को जगाकर भोजन परोसा। आलू का साग देखकर तड़ाक से वैद्य प्रकाशजी बोले—अभी आलू मँगवा लिये? अभी तो बहुत महंगे हैं। कितने मँगाये थे?

—आठ आने के आध सेर लाया था राधे,—पत्नी छोटे बच्चे को अपने हाथ से खिलाती अनमने भाव से बोली।

—बेईमान कहीं का! कहाँ है राधे? बदमाश बीच में ही पैसे खा लेता है! मैं ख़ुद आज भोज के लिए आलू लाया हूँ चौदह आने सेर। कहाँ है वो! ओ राधे।

राधे बाहर दालान से भागता हुआ आया—जी बाबू! का हुकुम है?

—सूअर कहीं का! कितने आलू के लगे? बोल! जल्दी बोल!—वैद्य प्रकाशजी गुस्से में राधे की आँखों में आँखे डाले चिल्ला उठे।

—आठ आने, बाबू।

—आठ आने के बच्चे! आध सेर के सात आने लगते हैं या आठ आने? चोर! बीच में ही आना हड़पकर कहता है, आठ आने! निकल जा मेरे घर से! चोर! न मालूम तूने इस तरह कितना उड़ाया होगा!

—मैंने आना नहीं लिया, बाबूजी! मैं अपने बेटे की सौगन्ध खाकर कहता हूँ, जो एक दमड़ी रखी हो। राधू हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा—आप चलकर कुंजड़े से खुद पूछ लें। एक पैसा भी मुझे हराम है।

—तुम लोग ऐसे ही होते हो! आने के लिए बेटे की कसम खा लेते हैं। खबरदार! आइन्दा चोरी की तो!

राधे चला गया। दोनों बच्चे आँखें फाड़े पिताजी की तरफ़ देख रहे थे।

दूसरे दिन दफ़्तर में बाबू वैद्य प्रकाशजी ने भोज के हिसाब में लिखा, आलू पाँच सेर, पाँच रुपये दस आने···

मुख्याध्यापक, रायथल स्कूल,
पो० सिवाना (राज०)

झाँझराँ दा छनकार

ठाकुर पुँछी

डाक बंगले पर पहुँचते ही शाम हो गयी थी और हलकी-मटियाली बदलियाँ पहाड़ों पर उतर आयी थीं। चारों तरफ़ धुन्ध-ही-धुन्ध थी। जहाँ धुन्ध छट जाती, वहाँ चीड़ और देवदार के सीधे-लम्बे दरख़्त झूमते दिखायी देते। और उनपर झुकती हुई वही पुरानी बर्फ़ानी चोटियाँ गिरती-पड़ती न जाने कितनी सदियों से किसी का पीछा कर रही हैं। वह पहाड़ी वायुमंडल मेरे लिए नया न था, कान्त के लिए भी नया न था। मुद्दतों से हम उनका पीछा करते चले आ रहे थे। कई बार हम उन घाटियों में गये, कई बार उनके झरझराते झरनों की गुनगुनाहट में अपनी आवाज़ मिलाकर मिलन की यादों में खोये थे। मन में आता, तो नील गगन में उड़ने लगते, ऊँची-ऊँची चोटियों को छू लेते। वे बहुत बेफ़िक्री के दिन थे। लेकिन अब तो छोटी-छोटी ऊँचाइयों को देखकर ही दिल धड़कने लगता था। जी यही चाहता था कि एक ही जगह दम साधे खड़े रहें। न वह उमंगें थीं, न वह तमन्नाएँ थीं, न वह इरादे थे, न वह वलवले थे। दुनिया को अपना बनाने के वे सारे सपने मिट गये। बादलों की धुन्ध उन्हें अपने साथ ले गयी। हम वहीं रहे, जहाँ थे, लेकिन हमारे ख़्वाबों की दुनिया हमसे दूर चली गयी, हमें बीच मँझधार में छोड़कर।

आज कान्त भी वह नहीं, जो पहले था, जिसके दिल में सारे जहान का दर्द था, जो सिर्फ़ दूसरों को एक पल हँसाने के लिए अपना सब-कुछ लुटा देता था, जिसकी आवाज़ में पहाड़ों की जानी-पहचानी गूँज थी, जो हर बार जीवन की अनुभूति जगाती, वही गूँज, जो शाम के पहाड़ी धुँधलकों में अक्सर गूँजा करती, पनघट के उन किनारों पर जहाँ जंगली गड़रिये अपनी काल्पनिक प्रेमिका की प्रतीक्षा करते, बर्फ़ानी चोटियों पर दृष्टि जमाये गाया करते थे। और कभी-कभी तुम्हें छेड़ने के लिए कान्त गुनगुनाया करता था। वही, झाँझरों और झाँझरों की भारी छनकार की कहानी, चाँद और तारे की अनन्त कहानी, जिसने इन्हीं घाटियों में जन्म लिया था।

कान्त ने ऐसा ही सोचा था। वह तुम्हारे साथ वैसे ही रहने का इच्छुक था, जैसे चाँद के पास तारा रहता है। उसने अपने हृदय की गहराइयों से ऐसा ही चाहा था। लेकिन तुमने भी तो सच ही कहा था, जो-कुछ हम चाहते

हैं, वह हमें कहाँ मिलता है ? दिल की बातें कब पूरी हुईं, जो अब होंगी !

यह तुमने कई बार कहा था, मुझसे भी और कान्त से भी । औरत का दिल था । कोई कहाँ तक डूबकर समझता । तुम्हारी हर बात एक अट्टहास होती थी, अट्टहास, जो तुम्हारे सीने की गहराइयों से उठता था और पहाड़ों की गूँज में दफ़न हो जाता था । यह उन्हीं पहाड़ों की बात है, उसी धुन्ध की कहानी है, उन्हीं बादलों की दास्तान है, जो हमारे देखते-ही-देखते बिन-बरसे ही देवदार और चीड़ के जंगलों में छिप जाया करते थे । वहाँ तुम न थीं, लेकिन वायुमंडल में तुम्हारी साँसों की ख़ुशबू उसी तरह मौजूद थी । तुम्हारे हाथों के निशान उन काली, भयानक चट्टानों पर मौजूद थे । कान्त ने उन्हें अपने काँपते हाथों से छुआ । उनसे तरावट हासिल की । तुम्हारे मेंहदी लगे हाथ उन चट्टानों से बहुत दूर थे । लेकिन उसकी कल्पना में तुम्हारी आकृति तब भी मौजूद थी । झाँझरों की छनकार तब भी उसके विचारों में छनछनाकर तुम्हारी याद ताज़ी कर रही थी । तब भी उसका दिमाग़ उसी ख़ुशबू के नशे में सरशार तुम्हारी याद में ऊँघ रहा था । मैंने तुम दोनों के प्रेम का बहुत ही निकट से आरम्भ और अन्त देखा है । तुम दोनों की लम्बी कहानी का मैं एक धुँधला-सा पात्र हूँ, जो सिर्फ़ इसलिए पैदा किया जाता है कि जब कहानी रुक-रुककर, थम-थमकर साँस लेने लगे, तो उसे बढ़ावा देने के लिए नयी, ताज़ा साँसें जुटायी जायें । मैं एक पत्थर की तरह तुम्हारी कहानी में लुढ़कता रहा, उस क्षण की प्रतीक्षा करता रहा, जब यह कहानी पूर्ण होगी । और आज यह कहानी पूर्ण हो गयी है और मुझमें अपने नवजीवन की भावना जाग उठी है । पत्थर का सीना भी फटा । उसमें से भी तड़पता-मचलता झरना फूट पड़ा । अब यह झरना किसी नदी से मिल जायगा और वह नदी इसे अपनी हुमकती छाती से लगाये दूर कहीं किसी समुद्र की अथाह गहराइयों में डूब जायगी । लेकिन पत्थर, इस झरने का जन्मदाता, अपनी जगह पर मौजूद रहेगा । काश, वह मिट्टी का ढेला होता, जो अपने आँसुओं में ही घुलकर सागर के विस्तार को पा लेता !

कान्त नहीं जानता था कि तुम उससे रूठकर उससे दूर जा रही हो । और मैं यह न चाहता था कि उसकी मौजूदगी में तुम किसी दूसरे की ज़िन्दगी को अपना लो । इसलिए मैं उसे उन ऊँचाइयों पर ले गया, जहाँ तुम दोनों का प्रेम बढ़ा-पला था । वहाँ पहुँचकर मुझे महसूस हुआ, जैसे तुम्हें उसके साथ न देखकर वे पत्थर, वे चट्टानें, वे झरने, वे चश्मे और हिमाच्छादित चोटियाँ एकदम उदास हो गयीं ।

बूढ़े चौकीदार ने डरते-डरते पूछा था—कान्त बाबू, चन्द्रा मेम सासब नहीं आयीं ?

कान्त के रिसते हुए घाव को मानो किसी ने कुरेद दिया था । उसने उदास निगाहों से मुझे देखा, जैसे कह रहा हो, तुम मुझे कहाँ ले आये ? ऐसे सवालों का जवाब कौन देगा ?

मैंने चौकीदार से पूछा—क्यों, चौकीदार, चन्द्रा मेम साहब कैसी थीं ?

लेकिन कान्त ने बात काट दी । उसने चौकीदार को तुम्हारे बारे में बात करने का मौक़ा न दिया और मैंने उसे सहारा देकर चारपाई पर लिटा दिया ।

चन्द्रा ! यह तो तुम जानती ही हो कि कान्त उन दिनों मौत और ज़िन्दगी की कशमकश में पड़ा था । हमारे निकटतम मित्र तुम्हें इसका जिम्मेवार ठहराते थे, लेकिन मैं उनसे सहमत न था । मैं जानता था, कान्त तुमसे प्रेम तो कर सकता है, जैसे कि उसने किया, लेकिन वह इतना गिरा हुआ इन्सान न था, जो किसी प्रेम के लिए अपनी जान दे दे । उसे अपना जीवन बेहद प्यारा था, तुमसे और तुम्हारे प्रेम से भी प्यारा, जिसे उसने बड़े सलीके से सँभाल रखा था । वह उन लोगों में से था, जो इस प्रकार की दुर्घटनाओं से बल प्राप्त करते हैं । तुम्हारे प्रेम, तुम्हारे ग़म ने उसे न मारा था । वह तो स्वयं ही ज़माने के हाथों परेशान था । लेकिन वह असाधारण हिम्मत का मालिक था ।

एक दिन मैंने उससे कहा—यह हक़ीक़त है कि तुम्हें कोई रोग नहीं ।

—तो फिर मैंने चारपाई क्यों सँभाल रखी है ?—उसने बड़े ही भोलेपन से यह सवाल किया ।

—डाक्टर कहता है, तुम्हें कोई सदमा पहुँचा है ।

वह देर तक चुप रहा। फिर दबी ज़बान से पूछा—डाक्टर ने यह नहीं कहा कि कान्त को किसी लड़की से प्रेम है और वह प्रेम नासूर बन गया है और वह उसी नासूर का मारा मर रहा है!

मैं चुप रहा, क्योंकि डाक्टर हम तीनों का दोस्त था। हम तीनों को भली भाँति जानता था। वह पेशेवर डाक्टर था। वह किसी से प्रेम न करता था। उसे सिर्फ़ अपने काम से प्रेम था। वह अपने काम के लिए अपनी दुनिया भी छोड़ सकता था, और किसी दिन तुम्हें भी। तुम्हारा अभिमान, तुम्हारा वह पारे का-सा चंचल स्वभाव, किसी दिन भी तुम्हें उससे छुड़ा सकता था। तुम्हारी-जैसी लड़कियाँ मुख्तसर-सी ज़िन्दगी की क़ायल होती हैं, वह ज़िन्दगी चाहे किसी माहौल की हो। और जो ज़िन्दगी तुमने अपनायी है, वह बहुत लम्बी है, इतनी लम्बी है, इतनी लम्बी कि मौत भी उसपर हावी नहीं। तुम सुन्दरता की प्रेमी हो, सुन्दर रख-रखाव की इच्छुक। सुन्दर नक़्श हो, सुन्दर बातें हों, सुन्दर वायुमण्डल हो और सुन्दर अवकाश के क्षण। लेकिन डाक्टर बहुत ही कुरूप है। उसके नख-शिख इतने घिनावने हैं कि तुम एक बार स्वप्न में ही देखकर घबरा उठी थीं। ये तुम्हारी बातें हैं, जो मैं दोहरा रहा हूँ, क्योंकि तुम भूल जाने की आदी हो। मुझे वह दिन याद है, जब डाक्टर का तुम से परिचय हुआ था, तुम्हारा दोस्त बन गया था और तुमने कई बार मुझसे कहा था, जहाँ डाक्टर मुखर्जी हो, वहाँ मुझे न बुलवाया करो।...क्योंकि उन दिनों वह सिर्फ़ कुरूप था, बड़ा आदमी न था। उसके पास कार न थी, बंगला न था और न इतना रुपया ही कि वह तुम्हारी भावनाओं पर छा सकता। वह एक साधारण, कुरूप डाक्टर था और तुम्हें कुरूप तथा साधारण लोगों से हमेशा नफ़रत रही है। तुम्हारा यह कहना एक हद तक ठीक था कि तुमने कान्त की एक लम्बी प्रतीक्षा की, लेकिन वह एक साधारण स्तर से ऊपर न उठ सका, यद्यपि उसे बहुत उच्च स्तर पर होना चाहिए था, वह स्वयं भी इसका अभिलाषी था, इसी लिए उसने कभी तुमसे शादी की बात न की। शायद तुमने इस हालत में भी ऐसा चाहा हो। हो सकता है, अब भी तुम ऐसा चाहती हो। लेकिन डाक्टर ने एक ही छलांग में उन ऊँचाइयों को पा लिया, जो तुम्हारे विचारों में उभरा करती थीं। कान्त ख़ामोश आग में जलता रहा। वह नहीं जानता था कि तुम किन पस्तियों में डूब रही हो। तुम्हारी नयी कहानी में भी मैं शरीक़ था।

तुम्हारी बातों में कितनी बनावट थी! तुम्हारी-जैसी लड़कियाँ यह भी नहीं चाहतीं कि उनके प्रेमी दुनिया से से उठ जायें और अपनी बेचैन ज़िन्दगी से छुटकारा पा लें। तुम आख़िरी बार उससे मिलीं। मैं तुम्हें अपने साथ लाया था। कान्त चारपाई पर पड़ा तड़प रहा था। उसे तेज़ बुख़ार था। तुम मेरे साथ आ तो गयी, लेकिन कमरे में न बैठ सकी। तुम्हारे डाक्टर ने तुमसे कहा था कि कान्त किसी भयानक रोग से पीड़ित है। उस रोग का नाम मैं आज तक न जान सका।

तुमने दरवाज़े पर खड़े होकर पूछा था—अब कैसे हो, कान्त?

कान्त ने जवाब में आँखों-ही-आँखों से तुम्हें अपने पास बैठने को कहा था, इतने पास कि तुम उसके दिल की धड़कनें सुन सको। लेकिन तुम कैसे एक ख़तरनाक रोगी के पास बैठती? तुम देर तक दरवाज़े के पास ही खड़ी रही। वह तुम्हें देर तक देखता रहा। उसने पलक तक न झपकायी। उसके मन से जलन का वह भाव ही ख़तम हो चुका था, जो पूरे तीन महीने से उसे जला रहा था।

उसने रुक-रुककर कहा था—चन्द्रा, मैं ठीक हो जाऊँगा। मैं बड़ा आदमी बन जाऊँगा। उतना ही बड़ा, जितना कि तुम देखना चाहती हो। चन्द्रा का ख़याल ही किसी को बड़ा बनने में सहायक सिद्ध हो सकता है। और तुम तो स्वयं ही मेरे पास हो।

चन्द्रा! कोई दूसरा होता, तो उसकी ज़बान ही गूँगी हो जाती और आँखों के सोते जाग उठते। लेकिन तुम पत्थर थी। तुम खिलखिलाकर हँस पड़ी, कान्त की ख़ामख़याली पर, या अपने पतन पर, यह मैं आज तक न समझ सका। लेकिन तुम्हारा ढङ्ग बड़ा ही भयानक था। बिल्कुल मौत की तरह डरावना। तुममें जीवन सँवारने की झलक तो देखी थी, वह मौत का रंग मेरे लिए अजनबी था। आज सोचता हूँ, वही रंग तुम्हारा वास्तविक रंग था। तुम्हारा वह भाव भी कान्त को मार न सका। मैं कई बार उसकी हालत देखकर घबरा जाता था। वह आँखों-ही-आँखों

से मुझे जता देता, तुम जिस बात से डर रहे हो, वह कभी न होगी। अभी तो मुझे बड़ा आदमी बनना है, एक कार ख़रीदनी है, एक बंगला बनवाना है, क्योंकि चन्द्रा को ये सब चीजें प्यारी हैं। चन्द्रा! यह तो तुम जानती हो, कान्त अपने क़ौल का पक्का था। वह उस विचार को अपने पास भी न फटकने देता था, जो वह पूरा न कर सके। सोचता हूँ, तुम्हारा विचार उसकी कल्पना में क्यों न धुँधलाया? वह कैसे बना रहा, जब वह उसकी पहुँच से बाहर था। हो सकता है, तुम्हारा अपना ख़याल एक झूठा इरादा हो, कभी न पूरा हो। लेकिन वह पूरा हो गया, और एक ऐसे रूप में, जिसमें उसका अपना असली रंग ही न होगा, तब फिर क्या होगा? मैं घबरा उठता हूँ, क्योंकि मुझे तुम्हारे व्यक्तित्व पर भरोसा नहीं। और कान्त बड़े दृढ़ विचारों का व्यक्ति है।...

जिस दिन वह कम्पटीशन में बैठा, उसी रात वह बुखार में जलता रहा था। एक पल भी न सो सका। किताबों का ढेर उसकी चारपाई पर था। वह कुछ भी न देख सकता था। आँखों के आगे अँधेरा फैल जाता था। फिर भी वह उन्हीं किताबों से उलझा रहा। तुम्हारा डाक्टर मना करता रहा। उसने एक न मानी और दूसरे दिन उसी हालत में इम्तहान में बैठा। पूरे तीन घन्टे मैं दरवाज़े पर खड़ा रहा। वह किसी समय भी सवाल उभारते और जवाब बनाते मर सकता था। लेकिन उसने बड़े आत्म-विश्वास का सबूत दिया। जब वह कमरे से निकला तो बेहोश हो गया। लगातार तीन दिन उसने आँखें न खोलीं। और यह सब-कुछ तुम्हारे लिए था, तुम्हें अपना बनाने के लिए। कितनी कठिन परीक्षा थी? लेकिन तुम उसे देखने तक न आयी, क्योंकि उस समय तक डाक्टर ने तुम्हें अपने क़रीब कर लिया था। और कान्त उस समय तक एक ख़तरनाक रोग को अपना चुका था। डाक्टर ने तुम्हें खतरनाक रोगियों से मिलने के लिए मना कर दिया था, लेकिन वह स्वयं आता रहा। वह डाक्टर था। वह नहीं जानता, प्रेम और लगाव क्या है। ख़तरनाक कीटाणुओं से वह अपने को सुरक्षित रख सकता था। वह कान्त की उस दशा से निराश था। लेकिन कान्त निराश न था। जब भी ज़रा सँभलता, एक ही वाक्य दोहराता, इन्टरव्यू का दिन न भूलना, मुझे बता देना। जिस हालत में भी हुआ, शरीक होऊँगा। अगर भूल गये, तो मैं तुम्हें भूल जाऊँगा। लेकिन मैंने निश्चय कर लिया था कि उसे वह दिन याद न दिलाऊँगा। इसी में उसकी भलाई थी।

जिस दिन इन्टरव्यू था, उस रात वह जल्दी सो गया और सवेरे सबसे पहले जागा। हाथ-मुँह धोया, ख़ुद ही कपड़े बदले। जब मैं जागा, तो वह अख़बार पढ़ रहा था। उसका शरीर आग की तरह तप रहा था। मैं उसके चेहरे की वह पीलाहट कभी नहीं भूल सकता। मरी-मरी-सी आँखों की चमक अब भी मेरी कल्पना में कौंद जाती है।

मैंने पूछा—कहाँ की तैयारी है?

—आज इन्टरव्यू है।

—लेकिन तुम इस हालत में कैसे जा सकते हो? डाक्टर ने तो चारपाई से उठने को भी मना किया है।

वह बड़ी प्यारी नज़रों से मुझे देखता रहा। फिर एक कमज़ोर-सी मुस्कराहट अपने होंठों पर लाकर बोला—डाक्टर बहुत अच्छा आदमी है। कोई ही ऐसा डाक्टर होगा, जो दो ज़िन्दगियों को एक साथ जीवित रखने का प्रयास करे।

मेरे पाँव-तले से तो ज़मीन निकल गयी। मैंने सोचा, तुम्हारे और डाक्टर के बढ़ते हुए सम्पर्क का उसे पता चल गया है। वह अब जीवित न रह सकेगा। लेकिन वह मेरा वहम था। उसके मासूम ख़यालों में भला इस तरह का घृणित भाव कैसे जाग सकता था?

मैंने डरते-डरते पूछा—मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझ सका?

उसने उसी रौ में जवाब दिया—डाक्टर नहीं चाहता कि इस हालत में चन्द्रा मुझे देखे। वह उसे दूसरी बातों में उलझाये हुए है। जब अच्छा हो जाऊँगा, स्वयं मेरे पास ले आयगा।

मेरी जान में जान आयी। मैं चुप हो गया। वह देर तक अपनी घड़ी पर दृष्टि जमाये गुनगुनाता रहा। अपने ख़यालों में किसी की झाँझरें छनकाता रहा। उन मरी-मरी-सी आँखों में तुम्हारी यादों की ही चमक थी। उन धुँधले-धुँधले ख़यालों में तुम्हारी ही कल्पना थी, उन डूबी-डूबी-सी धड़कनों में तुम्हारे गीतों के ही बोल थे, तुम्हारी झाँझरों की की ही छनकार। कितनी शान्तिपूर्ण, कितनी मनोहर, कितनी

उत्साहप्रद ! मैंने दिल-ही-दिल में कहा, इस छनकार की आवाज़ तो आँधी और तूफ़ान भी नहीं दबा सकते ! यह बनी रहेगी और कान्त इसी के सहारे इन्टरव्यू देगा ।

इन्टरव्यू के कमरे तक वह बड़ी मश्किल से पहुँचा। वहाँ वह एक घंटा सवालों की बौछार में घिरा रहा । मैं तब भी दरवाज़े पर खड़ा था । वह हँसता, मुस्कराता हर एक प्रश्न का उत्तर देता रहा । उससे पूछा गया, तुम्हें अपनी प्राचीन संस्कृति की कौन-सी चीज़ सबसे अधिक लुभाती है ?

कान्त ने बड़े धैर्य से उत्तर दिया—खेतों के गीत ! मैं किसान हूँ ।—और अपने खेतों के गीत उसने वहाँ गा-गाकर सुनाये । उस समय कान्त के ख़यालों में धरती सिमटकर चन्द्रा बन गयी थी और सारे गीत सिमटकर एक किसान के रूप में ढल गये थे और दृष्टि-सीमा तक खेतों के फैलाव थे और अनाज के ढेर, जिनके गिर्द दुनिया ज़िन्दगी का नाच नाचती है ।

तब भी मैं उसे थामकर बाहर लाया । उसमें शक्ति ही बाक़ी न रही थी । बड़ी कठिनाई से मैं उसे घर तक लाया । इस बात का किसी को भी पता न था । डाक्टर को भी नहीं बताया गया । वह बुरा मानता । और फिर कान्त की हालत ही कुछ ऐसी थी । वह ज़्यादा परेशान हो गया था । लेकिन मैं ख़ुश था कि उसने अपने जीवन की एक महान इच्छा की पूर्ति के लिए अपनी अन्तिम साँसों को भी दाँव पर लगा दिया था ।

मैंने उसकी ज़िन्दगी बनाये रखने के लिए पहाड़ों का सहारा लिया । पहाड़ों ने उसे पाल-पोसकर बड़ा किया था । वही उसे शान्ति प्रदान कर सकते थे । और एक दिन हम उन्हीं पुराने पहाड़ों पर थे । वही पुराना डाक बंगला था, वही जानी-पहचानी आवाज़ें, जो वहाँ अक्सर गूँजा करती थीं, बूढ़ा चौकीदार इन तीन वर्षों में और भी बूढ़ा हो गया था । चेहरे पर झुर्रियाँ और उभर आयी थीं । उसकी लड़की पुनियाँ भी वहाँ मौजूद थी । जब हमने उसे देखा था, वह एक मैली-मरियल-सी लड़की थी । उस समय उसका सिर्फ़ नाम ही पुनियाँ था । शक्ल-सूरत से पूरे चाँद की रात न थी । तुमने उसे देखकर कहा था, पुनियाँ तो पूरे चाँद की रात को कहते हैं, लेकिन इस लड़की में तो आधे चाँद की रात की झलक भी नहीं ।...लेकिन अब वह जवान थी । अब वह पूरे चाँद की एक भरपूर रात थी । कान्त का सर दबाते हुए वह मुझे अत्यधिक सुन्दर दिखी थी । तुमसे भी सुन्दर । तुम वहाँ होती, तो वह तुम्हें भी सुन्दर दिखती । और फिर तुम तो सुन्दर चीज़ों की प्रेमी हो !

लम्बी यात्रा की थकावट ने कान्त को निढाल कर दिया था । वह चुपचाप लेटा था । उसे शायद होश ही न था। पुनियाँ मुझसे भी अधिक परेशान थी । उसने कान्त को ऐसी हालत में कभी न देखा था । उसके चेहरे पर तो हमेशा मुस्कराहटें नाचती रहती थीं । पुनियाँ ने उसका वहीं रंग देखा था । एक-दो बार वह मेरे पास भी आयी । उसकी आँखों में एक अनजाना-सा प्यार था और प्यार में एक अपरिचित-सी ज्योति, जो सिर्फ़ डूबतों को तिनके का सहारा देने के लिए दूर अँधेरे कोने में झिलमिलाती है ।

—बाबूजी, कान्त बाबू को क्या हो गया ?

—बीमार है ।

—वह तो मैं देख रही हूँ । लेकिन उनकी यह क्या हालत हो गयी है ?

—तीन-चार महीने से बीमार है ।

—इस हालत में भी चन्द्रा मेम साहब साथ नहीं आयीं ?

—उसे कुछ ज़रूरी काम था ।

—इतना ज़रूरी क्या काम था ? पहले कान्त बाबू के साथ ही रहती थीं ।

मेरे मुँह से अनायास निकल गया—उसका विवाह हो रहा है ।

वह चुप रही ।

—लेकिन कान्त को न बताना ।

पुनियाँ जैसे कुछ भी न समझ सकी । उसके ख़याल में तुम्हारा और कान्त का शायद कोई और ही रिश्ता था । वह चुप-सी हो गयी ।

मेरे मन पर एक बोझ-सा था । मैंने तुम्हारी शादी की बात किसी से न कही थी । बार-बार गले में आकर अटक जाती थी । लेकिन पुनियाँ को मैंने बता दिया और मेरे दिल पर से एक भारी पत्थर हट गया । मुझे एक शान्ति-सी मिल गयी ।

उसने हैरान होकर दबी ज़बान से कहा—चन्द्रा मेम साहब की शादी किसी और से ?

वह वहीं बैठ गयी।

देखा तुमने ! पहाड़ी लड़की, अनपढ़, अपने और पराये का भेद समझती थी। मुझे ऐसा लगा, पुनियाँ ही नहीं वहाँ का पत्ता-पत्ता, बूटा-बूटा, वादी-वादी, घाटी-घाटी चीख़-चीख़कर कह रही हो, शादी ! और चन्द्रा मेम साहब की, और वह भी किसी ग़ैर से ?

लेकिन यह पुनियाँ की बातें थीं। एक मूर्ख, अल्हड़ पहाड़ी लड़की की बातें, जो प्रेम को न समझती थी, न उसने किसी से प्रेम किया और न ऐसा करने का उसे मौक़ा ही मिलेगा। वह लडकियाँ अपने-आप उगनेवाले जंगली फूलों की तरह पैदा होती हैं और बिन चाहे, प्यार किये मुर्झा जाती हैं। लेकिन तुम तो पढ़ी-लिखी थी, मुहब्बत के तक़ाज़े जानती-समझती थी। और फिर तुम शहर की पैदावार, तुम्हारा नाम चन्द्रा था और उसका पुनियाँ। पुनियाँ बेचारी !

मैं थका हुआ था। रात को जल्दी सो गया। जब भी पहलू बदलता, पुनियाँ को कान्त के सिरहाने जागते देखता। सुबह भी वह उसके पास बैठी थी। वह जैसे सारी रात उससे पूछती रही, तुम्हें क्या हो गया, कान्त बाबू ? मुझे बताओ, मैं तो कोई ग़ैर नहीं। बचपन में कई बार तुम्हें देखा। तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा करती रही हूँ। तुम्हारे लिए प्राण भी दे सकती हूँ। अपनों के लिए तो हम अपना सब-कुछ लुटाते आये हैं। मुझे बताओ, तुम्हें क्या हो गया ?

लेकिन कान्त ने शायद कोई जवाब न दिया। वह मौन पड़ा रहा।

मैंने पूछा—रात-भर जागती रही हो ?

उसने स्वीकारात्मक ढंग से सर हिलाया। फिर बोली—डरती रही रात-भर। हालत अच्छी नहीं है कान्त बाबू की।

पुनियाँ की आँखों में आँसू आ गये, जिनमें किसी का जीवन सँवारने की प्रेरणा निहित थी। मुझे तुम्हारा वह ठहाका याद आ गया, जिसमें मृत्यु का रंग स्पष्ट था।

अब कान्त वायुमंडल की गोद में था। उसने उसे अपना दूध दिया, थपक-थपककर और लोरिया गा-गाकर उसे सुलाया। अब उसके चेहरे पर मुझे कभी-कभी मुस्कुराहट भी दिखायी देती। अब वह बदला-बदला-सा लगता। कभी-कभी मुझे अपनी आँखों-ही-आँखों से कहता, जो भेद तुमने छिपा रखा है, अब बता दो। ख़ुद पूछ रहा हूँ, तो जान लो, सुनने और सहन करने की शक्ति भी आ गयी है। वही भेद, जो मैं एक अर्से से जानता हूँ। लेकिन तुमने भेद समझकर सँभाले रखा।

लेकिन मैं उसके उन इशारों का जवाब नहीं देना चाहता था। उससे अब दूर ही रहता। मेरा काम सिर्फ़ इतना था कि हर सुबह तीन-चार मील का सफ़र करके डाक्टर की दूकान से दवाएँ लाऊँ और पुनियाँ को सौंप दूँ। मैं यह नहीं जानता था, उसे समय पर सब-कुछ मिल रहा है या नहीं। मुझे समय पर चाय मिलती थी, खाना मिलता था और कभी-कभी वह गीत भी सुन लेता था, जो धरती अपने किसान को सुनाती थी। कान्त अब दिन-पर-दिन अच्छा हो रहा था। उसे बुख़ार भी न रहा। पुनियाँ के सहारे घूमता-फिरता भी था। मैंने कई बार पुनियाँ की तारीफ़ की। वह चुप रहा। इन्टरव्यू के परिणाम की बात करता, तो वह सिर्फ़ एक जवाब देता—अब मुझे बड़ा आदमी नहीं बनना है।

—और चन्द्रा ?—मैं पूछता।

वह तुरन्त उत्तर देता—चन्द्रा एक ख़याल था। असली नक़्श नहीं। असली नक़्श सामने आया, तो सूरत दूसरी ही दिखायी दी।

❀

मेरी छुट्टी समाप्त हो रही थी। मुझे अपने काम पर हाज़िर होना था। पूरे दो महीने हम वहाँ रहे। मैं चाहता था, कान्त अभी वहीं रहे। लेकिन उसने एक न मानी। वह शहर लौटने का आग्रह करता रहा। ज़िन्दगी का वास्ता दिया। आख़िर मुझे अपने साथ ही उसे लाना पड़ा। जिस दिन हम वहाँ से चले, सुबह सवेरे ही पुनियाँ जाग उठी थी। हमारे लिए खाना तैयार किया, हमारा सामान सँभाला। वह बहुत प्रसन्न थी। अब कान्त बिल्कुल अच्छा हो गया था। उसके नन्हें-से दिल की तमन्ना पूरी हो गयी थी। उसके लिए मैं नीचे मंडी से कपड़े सिलवा लाया था। वह उसी नये कपड़े में थी। उसके चेहरे पर कोई हसरत न

थी, कोई मुहब्बत न थी। जैसे उसने कुछ खोया था, न पाया था। कान्त को उसने कई बार देखा था। बचपन से उसे जानती थी। वह नक़्श उसे धुँधला-धुँधला-सा दिखायी दिया। अपने हाथों से उसमें रंग भरा। जब रंग रगों में दौड़ने लगा और उसमें गतिशील होने की हिम्मत जाग उठी, तो उसे आज़ाद कर दिया।

मैंने कहा—तुम न होती, पुनियाँ, तो आज कान्त वापस न जाता।

वह मुस्करायी।

कान्त मौन रहा।

—अगले साल हम फिर आयेंगे। तेरे लिए रंग-बिरंगे कपड़े गठरी भरके लायेंगे। अब यह तेरी झाँझरें भी मैली और पुरानी हो गयी हैं। इनमें अब वह छनन-छनन नहीं, जो पहले थी। शहर से नयी झाँझरें लायेंगे तेरे लिए।

वह मुस्कराती रही।

कान्त ख़ामोश रहा।

पुनियाँ मुझसे भी अधिक प्रसन्न थी। कान्त से भी अधिक प्रसन्न थी। लेकिन उसके पास शब्द न थे। वह मुँह से कुछ न बोली। शायद वह अपने हर्ष का प्रदर्शन न कर सकती थी। वह मुस्कराती रही। मौन रही। मैंने उसके मौन और मधुर मुस्कानों को उजागर रखा। वह दूर तक हमारे साथ आयी। एक चट्टान पर बैठकर हमें देखती रही। कान्त ने एक बार भी पलटकर उसे न देखा।

आगे बस की यात्रा थी। मैं तुम्हारे और पुनियाँ के बारे में सोचता रहा? दो हृदयों की तुलना करता रहा। रेशमी धागे खोलता-लपेटता रहा। जब गाड़ी का सफ़र शुरू हुआ, तो कुछ अपनी-जैसी सूरतें भी देखीं। तब भी मैं तुम्हारे और पुनियाँ के बारे में सोचता रहा।

गाड़ी से उतरकर शहर का रुख़ किया, तो कान्त बोला—डाक्टर की शादी हुए आज कितने दिन हुए होंगे?

मैंने खिसियानी हँसी हँसकर कहा—तुम्हें कैसे पता है?

उसने गम्भीर होकर जवाब दिया—एक रात मेरे सपने में शहनाई बजी थी। मैंने पुनियाँ से पूछा था। उसने बताया कि चन्द्रा मेम साहब की शादी हो रही है किसी ग़ैर से...मैंने सोचा, ग़ैर तो बस एक डाक्टर ही था।

कान्त देर तक हँसता रहा। फिर एक ठंडी आह भरकर बोला—अब फिर याद सता रही है।

मैंने पूछा—किसकी याद सता रही है?

—इन्टव्यू के फल की।

—लेकिन वह सब तो चन्द्रा के लिए था।

—हाँ, चन्द्रा के लिए। तभी तो पूछ रहा हूँ।

—लेकिन चन्द्रा...

मेरी बात अधूरी रही।

घर पहुँचकर हमें मालूम हुआ कि कान्त सचमुच बड़ा अफ़सर बन गया था। ख़बर सुनकर वह सिर्फ़ मुस्कराया और आँखें बन्द करके चुपचाप बैठा रहा।

उसके चेहरे पर मुझे पुनियाँ की मुस्कराहट का रंग झलकता दिखायी पड़ा, जिसमें न कुछ खोने का दुख था और न कुछ पाने का सुख।

मैंने उसके पास पहुँचकर धीरे से पूछा—चन्द्रा का अब क्या हाल होगा?

उसने उसी तरह आँखें बन्द किये हुए जवाब दिया—मैं उससे कह आया हूँ, मेरा इन्तज़ार करना। एक महीने तक उसे लाने फिर पहाड़ पर जा रहा हूँ। तुम्हें भी मेरे साथ चलना होगा।

मेरे मुँह से चीख़ निकल गयी—तुम्हारा मतलब है पुनियाँ?

—पुनियाँ नहीं, चन्द्रा कहो। असली चन्द्रा! लेकिन झाँझरें साथ लेना न भूलना!

कान्त की आवाज़ भारी हो गयी। वह औंधे मुँह चारपाई पर लेट गया।

मेरी आँखों से बरबस आँसू निकल पड़े। ये कैसे आँसू थे? इनमें कौन-से उल्लास थे, कौन-सी वेदना निहित थी? मैं नहीं जानता। शायद मुझे भी तुम से प्रेम था।

आल इंडिया रेडियो,
नई दिल्ली।

का मन अब घर में न लगता था। आँखों की ज्योति मन्द हो गयी थी और शरीर की अवस्था कमज़ोर। रात-दिन खाँसी चलती रहती, सो अलग।

बुढ़िया सोचती कि उसके चार बेटे हैं और तीन बेटियाँ। छोटे को छोड़ सभी के बाल-बच्चे हैं, बड़ा-सा परिवार है, फिर भी वह अकेली है। बच्चे उसकी नक़ल करते हैं, बहुएँ टालना चाहती हैं, बेटे बेचारे मेहनत-मज़दूरी करते हैं, कमाते-खाते हैं और रात को आ थके-माँदे सो रहते हैं। किसे गरज़ पड़ी है, जो उसकी सुधि ले। उसे रह-रहकर अपने छोटे बेटे का ख़्याल आता है, जो कि बिहार में है। वहाँ उसकी रोज़ी है। वह नदी-किनारे के किसी कारख़ाने में काम-काज करता है। कभी साल में एकाध बार माँ से मिलने घर आ जाता है। अभी उसका ब्याह नहीं हुआ है। माँ का प्यार उसपर असीम है।

पर उसके बाद बुढ़िया का इस जग में जैसे कोई नहीं। पता नहीं, कब भगवान के घर से न्यौता आ जाय। फूलों में रंग नहीं है, खाने में स्वाद नहीं है, बादलों में घुमड़न नहीं, न ही बिजली में चमक। संसार में नीरसता है, फीकापन है। वह करे, तो क्या करे। इसके बाद क्या होगा, लोग कहते हैं, मौत आयगी। हाँ, वह मरेगी तो अवश्य, क्योंकि मानव अमर नहीं है, पर मरने के बाद न जाने क्या हो। वह सोचती कि जीवन में उसने क्या-क्या पाप किये हैं और क्या-क्या पुण्य। पर वह तो बहुत बड़ा लेखा-जोखा था, अथाह सागर की तरह। वह तरंगों की भाँति अपने जीवन की एक-के-बाद-दूसरी घटना का स्मरण करती, पर व्यर्थ। उसकी वही हालत होती, जैसी कि एक परीक्षार्थी की, जब कि अन्तिम घण्टा बजनेवाला हो और वह किसी एक प्रश्न में ही उलझा रहे और घड़ी की सुइयों के बढ़ने के साथ ही उसके हृदय की गति भी तीव्र हो जाय और वह घबरा उठे। सोचती, वह तपस्या तो कर नहीं सकती; भगवान का नाम भी ले तो कैसे, मन में स्थिरता नहीं; दान करे, तो कैसे, पास में टका नहीं; अफ़सोस, ज़िन्दगी बीत गयी। वह अपने लिए कुछ भी न कर सकी।

बुढ़िया लुढ़कती हुई-सी मन्दिर जाती, साधु-सन्तों को भोजन कराती, सत्यनारायण की पूजा करवाती, हनुमानजी को प्रसाद चढ़ाती, पर उसे कहीं भी विश्वास नहीं हो पाता था कि वह जो कुछ कर रही है, उसका कुछ फल मिलेगा।

धीरे-धीरे वह यह अनुभव करने लगी कि उसके लिए सबसे सरल उपाय उपकार और त्याग करना है, यही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। अतः उसने अपना स्वयं का भोजन भिखारियों को देना शुरू कर दिया और आप कभी खाती और कभी बेखाये समय गुज़ार देती। आप कैसे ही कपड़े पहन लेती और वस्त्रों को लुटा देती। जो कुछ भी उसके हाथ में आता, वह लुटा देती, मानो उसने सदावर्त खोल रखा हो।

बुढ़िया के पास नकद कुछ भी न था, पर गहने काफ़ी थे। उसने चुपके-चुपके गहने बेचना शुरू किया और उस पैसे को किसी-न-किसी उपकार-कार्य में लगाने लगी। जब बेटों को मालूम पड़ा, तो बड़े झल्लाये, तड़के-भड़के। पर बूढ़ी ने चार आँसू बहाये, अपने स्वर्गवासी पति की दुहाई दी, लोगों को इकट्ठा किया और ख़ूब जी भरके सुनायी कि वे कौन होते हैं उसे रोकनेवाले, वह जो चाहेगी, करेगी। उसके गहने हैं, किसी का उसपर कोई हक नहीं। बेचारे लड़के मुँह बाये रह गये।

उस दिन बुढ़िया का जी उचाट था, वह मौन बैठी थी कि छोटे पोते कैलाश ने आकर कहना शुरू किया—माँजी, ओ माँजी! आपने सुना, बिहार में बाढ़ आ गयी है, लाखों लोग बेघर-बार हो गये हैं, कितने आदमी बह गये, कितने चौपाये। वहाँ शहर में पन्द्रह-पन्द्रह फ़ुट तक पानी आ गया है। लोग पेड़ों पर रह रहे हैं। बेचारों की बड़ी दुर्दशा है।

—है-अं-अं, क्या कहता है, रे! यह क्या हो गया, भगवान!

—माँजी, अपने चाचा भी तो वहीं हैं।

—क्या बताऊँ, भैया, न जाने अब क्या होगा, न जाने मेरा बेटा कैसे होगा!

और बुढ़िया ने जी दुःखा-दुःखाकर सारे घर में उदासी का वातावरण तैयार कर दिया। और जब सन्ध्या को बिहारी, माधो और विष्णु घर आये, तो उन्हें बड़ा अजीब-अजीब-सा लगा। पता चला, माँ बिट्ठू के लिए बेचैन है। पर क्या किया जाय। रात के भोजन तक यही चर्चा चलती रही कि उसे यहीं बुला लिया जाय और उसे उसी समय तार दे दिया गया।

बुढ़िया को रात-भर नींद नहीं आयी। वह इन्तज़ार करती रही कि कब उसका बिट्ठू आ जाय। हवा के हर झोंके के साथ उसकी आँखें किवाड़ों पर जा टिकतीं, हर खटके साथ वह चौंक उठती कि कहीं उसका बिट्ठू ही तो नहीं आया। वह सोचती कि बिट्ठू तार ही के साथ आ जायगा। पर दूसरा दिन हुआ और सन्ध्या भी, फिर रात भी आयी और तीसरा दिन भी। पर न तो बिट्ठू ही आया, न उसका कोई जबाब ही। माँ का दिल रो उठा।

कैलाश रोज़ खबरें सुनाता। वह अख़बार में पढ़ता कि कैसे लोग निर्धन और असहाय हो गये हैं और कैसे उन्हें रोटी और कपड़े की आवश्यकता है और उनके बच्चे भूखों मर रहे हैं और कैसे उनके घर बह गये हैं, सब बेआसरा हो गये हैं।...

सुनकर बुढ़िया की बुझती हुई आँखों में हिलोर लेता समन्दर उभरता और उसमें डूबता-उतराता मनुष्यों का दारुण समूह दिखायी देता और उसमें उसका बिट्ठू... असहाय, हताश, घबराया हुआ, चिल्लाता हुआ, बचाओ, बचाओ!...और उसके साथ ही उसे लगता, बिट्ठू एक नहीं, हर मानव उसे बिट्ठू ही लगता और वह काँप जाती। ओफ़!...उसके इतने बेटे, इतने लाल काल के ग्रास होते जा रहे हैं।... और उसके प्राण जैसे घुटने लगते और वह सुबकियाँ लेने लगती। सोचती, वह कैसे उनकी ममद करे, क्या न कर दे उनके लिए, जो उसका सहारा माँग रहे हैं! वह धिक्कारती अपने-आपको कि क्यों वहीं वह कुछ करती!

फिर उसने सुना कि देश के कोने-कोने के लोगों से यह अपील की जा रही है कि वे जो-कुछ भी सहायता कर सकते हों, करें अपने पीड़ित भाइयों की, जो अन्न-वस्त्रहीन हैं, बेआसरा है, बेघरबार हैं, जिनके बच्चे भूख से बिलबला रहे हैं, रोग से पीड़ित हैं। अन्न, वस्त्र, पैसा...

बेचारी बूढ़ी का हृदय द्रवित था। उसने अपने बचे हुए सारे गहने बेचने की सलाह अपने बेटों से माँगी। वे बड़े अचम्भे में पड़े। कहने लगे—माँ, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। देश में आये दिन अकाल और अनावृष्टि होती रहती है। कितने ही नंगे और भूखे रहते हैं, तो कितने ही सड़कों के किनारे कुत्तों की मौत मरते हैं। हम किस-किसकी चिन्ता करेंगे?

बुढ़िया यह सुनकर रो पड़ी।

लड़के उसे रोती देखकर उठकर चल दिये, तो बहुओं की बारी आयी। सुना-सुनाकर कहने लगीं—सौ चूहे खाकर बिल्ली चली हज को! सब-कुछ दान दे देगी, यह कर देगी, वह कर देगी! क्या जानती नहीं कि पीछे भी बाल-बच्चे हैं? बड़ी कर्ण की दादी बनी है! बुढ़ापे में, सत्य ही कहा है, लोग सठिया जाते हैं। सासुजी, घर में आराम कीजिए, आपको क्या लेना देना बिहार से...

बुढ़िया ने उस दिन खाना नहीं खाया। वह रोती रही, उसे खाना कैसे भाता? उसका बिट्टू भूखा होगा, उसके सैकड़ों-हज़ारों बिट्टुओं के मुँह में अन्न का दाना तक न पड़ा होगा। वह रोती, फिर सो जाती, पानी का एक घूँट पीती और फिर उसकी आँखों के आगे वही हरहराता हुआ पानी आता और क्रुद्ध बाघ की तरह सामने आनेवालों को निगल जाता।

बेटे हैरान थे कि आख़िर उसे कैसे समझायें? घर-भर इसी उधेड़-बुन में था कि एक दिन सुबह की डाक से पत्र आया। पत्र बिट्टू का था और उसने इसे बेलगाँव से लिखा था। उसने माँ को बहुत-बहुत याद किया था और बच्चों को प्यार, भाभियों को नमस्ते लिखा था। विशेष बात यह थी कि वह बिहार के कुछ सत्याग्रहियों के साथ गोआ आया था। उसने लिखा था कि वह एक स्वतन्त्र देश का नागरिक है और वह अपने देश के एक हिस्से पर पराया शासन नहीं देख सकता और इन्हीं भावों से प्रभावित होकर वह आज बेलगाँव में है।

माँ को विशेष कुछ समझ में नहीं आया, तो उसने कैलाश से पूछा। उसने सब समझाकर कहा कि चाचा आज़ादी का जंग लड़ने गया है। सब ओर से लोग सत्याग्रह करने जा रहे हैं। उनकी सहायता के लिए देश के कोने-कोने में चन्दा इकट्ठा हो रहा है।

फिर उसने कैलाश से सुना कि कितने ही सत्याग्रही गोलियों के शिकार हो गये हैं, कितने ही घायल हो गये। कितनों का कुछ पता ही नहीं चलता कि वे कहाँ लोप हो गये। बेचारी बुढ़िया का हृदय टूक-टूक हो गया। वह क्या करे। उसे रह-रहकर अपने अस्तित्व पर क्षोभ होता। सोचती, काश, वह भी कुछ कर पाती!

पर अब उसके लिए यह-सब असह्य हो गया। वह पाँच दिन तक भूखी-प्यासी पड़ी रही, किसी ने उसकी परवाह न की। उसने सोचा और ख़ूब सोचा और उसने अपने हृदय को कड़ा किया और कैलाश को बुलाकर गुपचुप कहने लगी—बेटा कैलाश, तुम्हें क्या चीज़ पसन्द है?

—माँ जी, मुझे एक फुटबाल दिलवा दो और एक बहुत बढ़िया जूता, वैसा, जैसा सुरेश पहनता है।

—दिला दूँ, तो मेरा एक काम करेगा?

—हाँ-हाँ, क्यों नहीं, माँजी, ज़रूर करूँगा!

—अच्छा, बेटा, तो देखो, मैं तुम्हें कुछ गहने दूँगी, तुम उन्हें बेच आओ।

—पर यह तो बताओ कि मैं यह कहाँ बेचूँगा?

बुढ़िया एक महाजन का नाम जानती थी, उसी का नाम बता दिया और सन्ध्या के झुटपुटे में गठरी बनाकर कैलाश के हाथों में सँभला दी।

कैलाश तेरह-चौदह वर्ष का था। घर की परिस्थितियों से अनभिज्ञ न था। फिर भी था तो लड़का ही, लोभ में आ गया और माँजी का कार्य करने चल पड़ा। महाजन ने एक लड़के के पास इतना गहना देखकर चिकनी-चुपड़ी बातें बनायीं और पचास रुपये में टरका दिया। बेचारा लड़का झाँसे में आ गया और जो-कुछ मिला, वही माँजी के सामने उपस्थित कर दिया।

माँजी चौंकी—हैं-हैं! पचास रुपये ही!...बाप-रे-बाप!

—माँजी, मेरा फुटबाल दिला दो!—कैलाश चिल्लाने लगा।

—चुप, रे चुप! चिल्लाता क्यों है?

बुढ़िया बड़ी पछतायी कि वह यह क्या ग़ज़ब कर बैठी! अब यदि उसके लड़कों को पता चला, तो वह कहीं की न रहेगी। ठगी गयी सो अलग। इस पचास रुपये से वह क्या मदद कर सकेगी उन बिट्टुओं, उन हज़ारों बेटों की, जो हथेली पर जान लेकर गये हैं। दस रुपये तो कैलाश ही के लिए ख़र्च हो जायेंगे। वह क्या करे, क्या न करे? वह विमूढ़ हो गयी। पचास रुपये उसके सामने पड़े थे और कैलाश चिल्ला रहा था—माँजी, तुम झूठी हो, मेरी गेंद लाओ, मेरी जूतियाँ लाओ! माँजी, तुम बोलती क्यों नहीं? मैंने तो तुम्हें पहले ही कह दिया था!

माँजी की आँखों में अन्धकार छा रहा था, वह विक्षिप्त-सी हो रही थी। कमजोर थी ही, साथ ही पीड़ित और दुखी भी। उसके कान बहरे हो रहे थे, काटो तो खून नहीं। उसके लिए कहीं स्थान न था।

इसी समय डाकिये ने आवाज़ दी, तार था।

बिट्टू की मौत का तार था। बुढ़िया की हिचकियाँ बँध गयीं, उसे खाँसी के दौरे आने लगे। रुक-रुककर बोली—मेरे बेटो ! यदि तुम मुझे अपनी माँ समझते हो, तो तुम्हें गंगा मैया की सौगन्ध है, यह पैसा तुम बिहार के दुखियों या गोत्रा के शहीदों के बाल-बच्चों के लिए ही खर्च करना !

हिचकियों का दौरा बढ़ गया, मुँह से ख़ून बहने लगा। गले में थूक अटक रहा था, दम घुटा जा रहा था और सारा शरीर पसीना-पसीना हो रहा था। तभी एक-एक कर उसके सारे बेटे और बहुएँ और उनके बच्चे तमाशबीनों की तरह उसके इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गये।

विष्णु बोला—कैलाश, तू क्यों चिल्लाता है ?

—चाचा, तुम्हीं बताओ न ! माँजी कितनी बुरी है ! कहा था, मेरा काम कर दो, तो गेंद दूँगी, जूते दूँगी। जब काम करवा लिया, तो बस चुप ! इतना ग़ुस्सा आता है, चाचा, कि क्या बताऊँ ! मैंने तो उसके गहने बेचे और अब मेरी बारी आयी, तो...

सभी की आँखें विस्फारित हो गयीं। सब बोल उठे—ऐं, यह क्या किया तूने बुड्ढी ? हमें तो कंगाल कर दिया ! हाय रे भगवान !...

—हे राम !—बुढ़िया की अन्तिम साँस निकली और वह निष्प्राण हो गयी।

रात तब तक गहन हो चुकी थी और बाहर सर्वत्र सन्नाटा था।

खेतान भवन,
मिर्ज़ा इस्माइल रोड,
जयपुर।

एक बघेली लोककथा

तीन सूरदास

एक शहर में हर रविवार को बाज़ार लगता था। बाज़ार में तीन स्थानों पर तीन सूरदास चादर का घेरा तानकर उसके अन्दर बैठे हुए टीन बजाते थे, और बीच-बीच में ऐलान करते थे कि, एक पैसेवाला, एक रुपयेवाला, एक मोहरवाला तामाशा देखो। जिसको यह तमाशा पसन्द न आये, वह अपना पैसा वापस ले ले।

एक दिन वहाँ से बहुत-से व्यक्ति गुज़रे, पर किसी ने भी सूरदासों के तमाशे की ओर ध्यान न दिया।

एक व्यक्ति अपने को बहुत ही चालाक समझता था। कोई सौदा करने के लिए एक मोहर उसके पास थी। जब उसने ऐलान सुना, तो फौरन एक सूरदास के पास गया और मन में सोचने लगा कि कह देंगे कि तमाशा अच्छा नहीं लगा और अपनी मोहर वापस ले लेंगे। जब यही है, तो मोहरवाला तामाशा ही क्यों न देखें। उसने सूरदास को फौरन मोहर दी और बोला—सूरदास, मोहरवाला तमाशा दिखाओ।

सूरदास बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला—ऊपर देखो!

जहाँ उसने ऊपर देखा कि सूरदास ने मोहर इस प्रकार मुँह में दबा ली कि उसको कोई देख भी न सके और वह बोल भी सके।

व्यक्ति—ऊपर तो कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा है।

सूरदास—अच्छी तरह से ऊपर देखो!

व्यक्ति—मुझे कुछ नहीं दीखता, मेरा पैसा वापस करो।

सूरदास—वाह! तमाशा देख लिया, और अन्धा जानकर पैसा भी वापस लेना चाहते हो! नहीं दूँगा!

व्यक्ति ने कहा—तुमको देना पड़ेगा!

बातों-बातों में दोनों में लड़ाई हो गयी। राहगीरों ने जब यह देखा, तो दोनों को छुड़ा दिया। सूरदास को अन्धा जानकर लोगों ने उसी का पक्ष लिया और उस व्यक्ति को बहुत भला-बुरा कहा।

उस व्यक्ति को अब यह धुन सवार हो गयी कि देखें, यह आख़िर जाता कहाँ है। जब सूरदास ने अपनी चादर समेटी और टीन उठायी और घर को चला, तो वह उसके पीछे हो लिया।

बाज़ार से थोड़ी दूर पर एक टूटा-फूटा मिट्टी का घर था। उसमें केवल एक कमरा सुरक्षित था, जिसमें ताला लगा था। सूरदास ने कुंज़ी निकाली, ताला खोला और अन्दर जा, अन्दर से कुंडी लगा ली। सूरदास के पीछे-पीछे चुपके से वह व्यक्ति भी अन्दर पहुँच गया था। अन्दर एक आले में एक लोटा रखा था। उसका मुँह बँधा था। सूरदास ने लोटा उठाया और उसका मुँह खोला। उसमें अशर्फियाँ और दूसरे सिक्के रखे हुए थे।

सूरदास ने उनको उड़ेला और गिनकर लोटे में डालना शुरू किया। अन्त में...अपने मुँह से एक मोहर निकालकर कहा—इक्यावन!—फिर लोटा बाँधकर रखा ही था कि वह व्यक्ति लोटा उठाकर एक कोने में छिप गया। जब सूरदास ने ताक में रखने के लिए लोटे को टटोला, तो वह गायब था। सूरदास बड़ा घबराया और चिल्लाना शुरू किया। जब पड़ोसियों ने सुना, तो वे आये और चिल्लाने का कारण

पूछा। सूरदास ने पेट के दर्द का बहाना बना दिया और दरवाज़ा तक न खोला।

दूसरे सूरदास का भी यही पेशा था। जब उसने सुना कि उसका साथी सूरदास पेट के दर्द से व्याकुल है, तो वह अपने बन्धु की व्यथा के निवारण के हेतु चला और डंडा टेकते-टेकते सूरदास के यहाँ पहुँचा। कुंड़ी खटखटायी और आवाज़ दी। सूरदास ने पूछा कि तुम्हारे साथ और कौन है?

उसने कहा—कोई नहीं।

तब सूरदास फौरन उठा और किवाड़ खोल दिया। जब दूसरा सूरदास अन्दर आ गया, तो पहले ने जल्दी से कुंडी बन्द कर दी, और अपनी दुःख की कहानी सुनायी। दूसरा सूरदास जब अपने बन्धु की व्यथा सुन चुका, तो बोला—तुम बड़े बेवकूफ हो, कहीं लोटे में मोहरें रखी जाती हैं! देखो, मेरा डंडा खोखला है। मैं इसी में अपनी मोहरें रखता हूँ। देखो!

जैसे ही उसने दिखलाने के लिए डंडा बढ़ाया कि कोने में छिपे हुए व्यक्ति ने उसे भी ले लिया और अपने स्थान पर चुपचाप चला गया।

दूसरा सूरदास—देखा?

पहला सूरदास—ऐं! ऐं! अभी दिया भी है कि बात ही कर रहा है!

इसी पर दोनों में लड़ाई होने लगी। दूसरा सूरदास बोला—क्या तुम मुझे अपने घर में बैठाकर ठगोगे? मैंने तो डंडा अभी तुम्हारे हाथ थमाया है!

दोनों का चिल्लाना सुनकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि अभी तो मकान में एक था, अब दो कैसे हो गये? फिर सब लोग आये। पूछने पर पहले सूरदास ने उत्तर दिया—कोई बात नहीं है। यह भाई-भाई के बीच की बात है।

यह सुनकर सब लोग चले गये।

तीसरे सूरदास का भी यही धन्धा था। जब उसने लोगों से यह सुना कि उसके भाई लड़ रहे हैं, तो अपने भाइयों में समझौता कराने चल पड़ा।

पहुँचकर जब सब हाल सुना, तो कहा—तुम दोनों बेवकूफ हो। देखो, मैं अपनी मोहरें टोपी में रखता हूँ, जो सोते-जागते हर समय मेरे पास रहती है।

पहले और दूसरे सूरदास ने आश्चर्य से कहा—ऐं! ऐं!

तब तीसरे ने कहा—हाँ, यह देखो!

तब उस व्यक्ति ने टोपी भी ले ली और अपने स्थान पर जा छिपा।

जब तीसरे ने पूछा कि देखा या नहीं, तो पहले और दूसरे ने कहा—अभी दी भी है या यों ही बक रहा है!

तीसरे ने कहा—वाह! क्या तुम दोनों मिलकर हमीं को ठगोगे?

बातों-बातों में तीनों में लड़ाई छिड़ गयी। काफी हल्ला मचने लगा। जब लोगों ने देखा कि इन लोगों की संख्या बढ़ती ही जा रही है, तो एक ने यह खबर राजा को दे दी। राजा बड़े आश्चर्य में पड़े और देखने आये। सूरदासों से किवाड़ खोलने के लिए कहा। तीनों बहुत डरे। सोचा, हम लोगों की मोहरें यहीं होंगी, यदि हम लोग किवाड़ खोल देते हैं, तो यह रहस्य सबको मालूम हो जायगा। यह सोचकर उन लोगों ने किवाड़ नहीं खोले।

राजा ने किवाड़ तोड़ने की आज्ञा दे दी। जब किवाड़ टूटकर गिरने ही वाला था, तो उस व्यक्ति को बड़ी चिन्ता हुई। तब उसको केवल यही तरकीब सूझ पड़ी कि टोपी लगा ली जाय, डंडा एक हाथ में ले लिया जाय और लोटा दूसरे हाथ में ले इन तीनों सूरदासों के साथ आँख मूँदकर बैठ जाय। सो वह तीनों सूरदासों के साथ सूरदास बनकर बैठ गया।

जब किवाड़ टूट गया, तो राजा ने आज्ञा दी कि इन सबको कोड़े लगाये जायँ। सबसे आगे वह नेत्रवाला व्यक्ति ही आँखें मूँदे बैठा था। अस्तु, सबसे पहले उसी व्यक्ति के कोड़े लगने लगे। पहले तो वह सहन करता रहा। जब न सहा गया, तो उसने आँखें खोल दीं और राजा को आशीर्वाद देते हुए आगे बढ़कर कहा—मैं जन्मान्ध सरकार के कोड़े के प्रताप से अच्छा हो गया। मुझे आँखें मिल गयीं!

राजा ने शेष तीन सूरदासों के भी कोड़े लगाये जाने का आदेश दिया और कहा कि जब मेरे कोड़े में इतना प्रताप है

कि अन्धों को नेत्र मिल जाते हैं, तो इनके भी ज़रा जोर से जमाओ !

जब पहले सूरदास के कोड़े लगाये जाने पर उसकी आँखें न खुलीं, तो राजा ने सोचा कि शायद इसकी आँखें न खुलनेवाली हों। इसपर दूसरे को कोड़े लगाने की आज्ञा दी। उसकी भी आँखें न खुलीं। तब तीसरे को कोड़े लगाये गये। जब उसकी भी आँखें न खुलीं, तो राजा अचरज में पड़ गये। तब उन्होंने सूरदासों से पूछा—तुम तीनों की आँखें क्यों नहीं खुलीं ? पहलेवाले की तो तुरन्त खुल गयीं।

तीनों सूरदास—यह कौन था ? हम तो तीन ही थे !

राजा—ऐं ! चौथा कोई नहीं था ?—राजा ने नौकरों को आज्ञा दी कि जाओ, जो अभी आदमी यहाँ से गया है, उसे पकड़ लाओ।

राजा के सिपाही दौड़ पड़े।

सूरदास तो जैसे पहाड़ से गिर पड़े हों। जीवन-भर आँखोंवालों को ठगनेवाले उन अन्धों की समझ में ही न आ रहा था कि कोई आँखवाला उनसे भी चतुर कैसे निकला !

प्रेषक, रामप्रताप सक्सेना

पाँच चीनी लघु कथायें

फेंग-स-फेंग

शेर और डूबता हुआ सूरज

एक दिन एक बड़े-से रेगिस्तान के किनारे पश्चिम में डूबते हुए सूरज ने मुड़कर पीछे की ओर देखा और अपनी आग-जैसी लपटों से रेगिस्तान को सुखा दिया, यहाँ तक कि वह ख़ून का समुद्र मालूम होने लगा। एक शेर वहाँ शान्तिपूर्वक विचर रहा था। उसे लगा, जैसे यह शानदार दृश्य फिर कभी नहीं आयगा। और उसपर एक ऐसी अवर्णनीय इच्छा हावी हो गयी कि उसने दुखित हो कहा—अहा! मैं देख रहा हूँ कि यह चमकदार गोला ही मेरे राज्य को ऐसा आभायुक्त बना रहा है! लेकिन यदि मैं, रेगिस्तान का राजा, इसे तुरन्त पकड़ नहीं ले आता, तो पल-भर में यह चला जायगा।

फिर तो शेर का रक्तप्रवाह बहुत तीव्र हो गया। वह हवा की तरह तेज़ी से रेगिस्तान की लाल-लाल धूल के बादल उड़ाता पश्चिम की ओर दौड़ा, तो उसकी नसों में ख़ून की रफ़्तार और भी तेज़ हो गयी। लेकिन जितना ही वह आगे बढ़ता, सूर्य पश्चिम की ओर हटता जाता। रेगिस्तान ख़ूनी-लाल से हलका भूरा हो गया। जो हो, शेर अब एक झील के निकट पहुँच गया था। यह थी उन झीलों में से, जिसे मरुभूमि का मोती कहते हैं, क्योंकि वे इतनी साफ़ और मोहक होती हैं।

झील की नीली सतह पर आकाश के अन्तिम गुलाबी बादल की परछाईं पड़ रही थी, इसलिए शेर रुक गया और व्यग्रता से बोला—ओ-हो! मेरा शिकार तो यहाँ है!—और उछलकर उसने झील में एक छलांग लगायी, और डूबकर मरने लगा। लेकिन जब वह जीवन की आखिरी साँस ले रहा था, तो उसने कहा—एक भ्रम की टोह में मरने से अधिक अच्छा अन्त और क्या हो सकता है?

इतिहास में भी, जब एक बार शक्तिसम्पन्न वर्गों का पतन होता है और वे अपनी राह के छोर पर पहुँच जाते हैं, तो अक्सर ऐसे लोग भी आते हैं, जो यह सोचकर कि वे वीर हैं, और बीते हुए युगों को वापस ला सकते हैं, ख़ुद को धोखा देते हैं। कुछ हैं, जो खामोशी से मिट जाते हैं और अपने पीछे, नामोनिशान तक नहीं छोड़ते, जब कि दूसरे खुद को किन्हीं उद्देश्यों के लिए शहादत का आवरण देकर अपने इर्द-गिर्द एक ख़ूबसूरत और क्षणिक मायाजाल बुन लेते हैं।

भगोड़ा राजकुमार

एक था बत्तख़ का बच्चा। उसके भाइयों ने उसे झगड़ा हो जाने के बाद निकाल बाहर किया। काई के पास खड़ा-खड़ा वह फूट-फूटकर रोने लगा। तभी एक नेवला भागता हुआ आया और बोला—ऐ बच्चे! तुम इस बुरी तरह क्यों रो रहे हो? तुम तो बिल्कुल राजकुमार लगते हो। निश्चय ही दूसरों ने, जो तुम्हारा सिंहासन हड़पना चाहते हैं, तुम्हें भगा दिया है। है न?

बत्तख़ के बच्चे को इसमें बहुत-कुछ सच लगा। इसलिए वह बोला—जैसा आप कहते हैं, श्रीमान, मैं असली राजकुमार हूँ। वह लोग तो ज़ालिम हैं, लेकिन उन्होंने एक जन-आन्दोलन का फ़ायदा उठाया है।...

—मेरा अन्दाज़ सही था। सो आप भागे हुए राजकुमार हैं। यह सचमुच बड़ा अन्याय हुआ है। ठीक है, आप नेतृत्व कीजिए, बग़ावत को कुचलने में मैं आपकी मदद करूँगा। आप सिंहासन पर पुनः अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

बत्तख़ का बच्चा ऐसा ख़ुश हुआ, जैसे वह सचमुच ही राजकुमार हो और लड़खड़ा-लड़खड़ाकर चलने लगा, क्योंकि अभी भी वह ठीक से नहीं चल पाता था। अपने भाइयों को दबाने के लिए वह नेवले को लिये जा रहा था, ताकि स्वयं सिंहासन पर बैठ सके।

वह कुछ ही क़दम चल पाया था कि नेवले ने झपटकर उसे पकड़ लिया। बत्तख़ का बच्चा छटपटाकर चिल्लाया, जैसे वह कहना चाहता हो, अरे, तुम तो साम्राज्यवादी हो, तुम हो नेवला!

—तुम तो सचमुच मज़ेदार हो! अब तक तो मैं तुमसे खेल रहा था, और तुम ये भी नहीं जानते थे कि मैं कौन हूँ!

चूँकि नेवला बत्तख के बच्चे को चबा रहा था, इस लिए उसकी आवाज़ अस्पष्ट थी।

साँप और ख़रगोश

इसलिए कि घरू मामलों में ख़रगोश बाहरी हस्तक्षेप से मुक्त रह सके, साँप ने एक कानून बनाया और खुद जाकर ख़रगोश के सामने इसकी घोषणा की:

—सुनो!—वह बोला—अगर भविष्य में तुम्हारा दरवाज़ा खटखटाये और तुम्हारी इजाज़त लिये बिना मैं मनमाने ढंग से तुम्हारे घर में घुस पड़ूँ, तो तुम्हें मुझसे शिकायत करने का अधिकार होगा।

गोकि साँप ने इस कानून का ऐलान कर दिया था, फिर भी वह डर रहा था कि कहीं ऐसा न हो कि ख़रगोश पूरे तौर से कानून का पाबन्द न निकले और शुरू में वह मुझपर पूरा-पूरा विश्वास न करे। बस, उसने ख़रगोश की परीक्षा लेने का निश्चय किया।

जान बूझकर दरवाज़ा खटखटाये बिना साँप उसके घर में घुस पड़ा और उसने ख़रगोश के एक बच्चे को मार डाला। फिर वह ख़रगोश के दरवाज़े पर जा बैठा, इस उम्मीद में कि खरगोश आकर शिकायत करेगा।

उसने देर तक, बहुत देर तक इन्तज़ार किया, लेकिन ख़रगोश न आया, जबकि हर मिनट साँप का गुस्सा बढ़ता जा रहा था। फिर वह दुबारा ख़रगोश के घर जा धमका और उसे पकड़कर गरजने लगा—कानून क्यों नहीं मानता!

—कौन-सा कानून मनवाना चाहते हैं, श्रीमान! और किसके बारे में?

—रपट न करने की तुमने जुर्रत कैसे की?

—अभी आप सरकश थे और अब आप न्यायाधीश भी हैं। ज़रा बताइए, श्रीमान, मैं किस बदमाश को पकड़कर लाऊँ, और किस न्यायाधीश से फ़रियाद करूँ?

—सस्स !—अपने गुस्से को ज्यादा न रोक पाने के कारण एक ही निवाले में साँप ने ख़रगोश का सफाया कर दिया।

खरगोश को खा चुकने के बाद साँप ने सार्वजनिक घोषणा की :

—जिस तरह मैंने इस बार ख़रगोश को मारा है, वह पहले से भिन्न है। इस बार उसे कानून के मुताबिक मारा गया है और गिरफ़्तारी से लेकर मौत की सज़ा सुनाने तक सब काम बाज़ाप्ता हुआ है!

बढ़ई, जंगल और पेड़

इमारती काम के लिए एक ख़ास तौर से बड़ा पेड़ तलाशने एक बढ़ई जंगल में गया। उसने सारा जंगल छान मारा, लेकिन वह कोई भी पेड़ न चुन पाया।

—ये तो सभी एक बराबर हैं,—उसने कहा—कोई एक भी तो ऐसा पेड़ नहीं, जो दूसरों के एकदम अलग-थलग हो।

बहुत निराश होकर वह वापस जाने लगा, तो जंगल के छोर पर उसे एक मनचाहा पेड़ दिखायी पड़ा।

—अहा!—उसने ख़ुशी और ताज्जुब से कहा—यही तो वह है, जिसकी मुझे तलाश थी! जंगल में इसकी बराबरी का दूसरा पेड़ नहीं।

—नहीं,—पेड़ ने जवाब दिया—यही तो तुम ग़लती करते हो। लगता है, तुमने भी उन घिनोने लोगों की किताबें पढ़ी हैं, जो कहते हैं कि हमारा कोई व्यक्तित्व नहीं है। गोकि मैं अपने दल के पिछवाड़े खड़ा हूँ, लेकिन मैं भी उन्हीं में से एक हूँ। समूह में रहकर मैं औरों के साथ बड़ी इकाई का अंत हो जाता हूँ, जबकि अकेले मुझमें पूरी इमारत उठाने की सामर्थ्य है। अगर तुम समझते हो कि ये कोई ख़ास बात नहीं, तो हम-सब में भी कोई खुसूसियत नहीं। लेकिन अगर तुम समझते हो कि मुझमें विशेषता है, तो हममें से हरेक में विशेषता है।

मेहनतकश लोगों और उनकी प्रतिभा के बारे में मैं पेड़ के इस दृष्टिकोण से सहमत हूँ।

चीनी से अनु० तिलक

सच्चे कलाकार

एक किसान अपने खेत में गेहूँ की फ़सल काट रहा था। गौरैयों का एक झुंड आकाश से नीचे उतरकर गेहूँ की बालियों पर बैठ गया और गा-गाकर किसान से बोला—प्यारे किसान! तुम हमारे अन्नदाता हो। हम तुम्हारा उपकार नहीं भूली हैं। हमें याद है कि किस प्रकार अपना पसीना बहाकर तुमने हमारा पेट पाला है। तुम्हारे सौभाग्य से अब वह सुहाना गर्मी का मौसम आया है, जब तुम्हें अपनी मेहनत का फल मिलता है, तुम फ़सल काटते हो। इस शुभ अवसर पर हम तुम्हारे लिए विशेष गीत गाने आयी हैं। हम-सब तुम्हारी शुभचिन्तिका हैं।

इतना कहकर गौरैयों ने समवेत स्वर से गाना शुरू कर दिया और गीत के साथ ही अपनी शक्ति के अनुसार वे जल्दी-जल्दी गेहूँ के दाने चुगने लगीं।

किसान उनकी इस प्रशस्ति पर प्रसन्न होने के बजाय बहुत ही क्रुद्ध हुआ। उन्हें उड़ाने के लिए वह उनपर ढेले फेंकने लगा और चिल्लाया—क्या ख़ूब! दुष्ट चिड़ियो! एक तो तुम हमें लूटती हो और ऊपर से हमारी शुभचिन्तका होने का दम भरती हो! क्या तुम समझती हो कि मुझे गाना इतना प्रिय है कि मैं तुम्हारा गाना सुनने के लिए अपनी फ़सल नष्ट होते देखूँगा? मुझे ऐसे दोस्त नहीं चाहिए। तुम्हारी कविता और तुम्हारा संगीत सुनने की मुझे कोई इच्छा नहीं।

गौरैयों के उड़ जाने के बाद कुछ लावा चिड़ियाँ अपने भोजन के लिए कीड़े चुगने गेहूँ के खेत में उतरीं। जितने कीड़े उन्हें मिल सके, उन्होंने चुगे और पेट-भर लेने के बाद वे आकाश की ओर लौट चलीं। ऊपर जाते हुए उन्होंने

तेज़ ध्वनि से अपना मधुर गीत गाया, जिसे जिसने भी सुना, वही सिहर उठा। किसान जो कि अपनी फ़सल काटने में संलग्न था, एक क्षण को रुक गया। उसने अपनी कमर सीधी की और सिर उठाकर आकाश की ओर जाती हुई लावा को देखा और प्रशंसा-भरे स्वर में बोला—विद्वान् लोग ठीक ही कहते हैं कि लावा बहुत अच्छी चिड़ियाँ हैं। वे हमारी फ़सल नहीं छूतीं और कीड़ों का नाश कर खेती के काम में हमारी सहायता भी करती हैं। उसके बाद वे कितने उल्लास और कितनी स्फूर्ति के साथ गगन की ओर उड़ती हैं! वे कभी अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करतीं। उन्हें देखने से नेत्रों की तुष्टि होती है और वे इतना मधुर और इतना स्पष्ट गीत गाती हैं कि ऐसा लगता है, मानो उनके गीतों के प्रभाव से ही आकाश का निर्माण हुआ है।

लावा-जैसे कलाकार ही जनता के सच्चे मित्र होते हैं। वास्तव में उन्हें ही कलाकार कहना चाहिए, न कि गौरैयों को।

अंग्रेजी से अनु० विष्णु स्वरूप सक्सेना

पिछले अंक में हमने विचार-विनिमय के लिए विषय भेजने का निवेदन किया था। अभी तक चार पाठकों के सुझाव हमारे पास आये हैं। इनमें दो का कहना है कि पिछली बार जो विषय आरम्भ किया गया था, उसे ही चालू किया जाय। आप जानते हैं, वह विषय था, क्या कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है ?

एक नया विषय यह आया है, कथाकारों से हम पाठकों का कहना है।

दूसरा है, महीने की सबसे अच्छी कहानी।

ये सभी विषय अच्छे और उपयोगी हैं। इन्हें हम एक-एक कर ले सकते हैं। फिलहाल हम पहला विषय, क्या कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है, ले रहे हैं। आप-सब इस विषय पर लिखें। जुलाई-अंक से यह बहस जारी कर देंगे। आप अविलम्ब इसपर अपने मन्तव्य लिख भेजें।

यहाँ चालू अंकों पर आयी सम्मतियाँ दे रहे हैं।

रंगनाथ राकेश (बनारस)

दो आने पैसे नहीं थे आज, अतः पोस्टकार्ड की नंगी छाती पर ही अपने स्पष्ट विचार मई ५६ की 'कहानी' के प्रति भेज रहा हूँ। 'नंगा आदमी, नंगा ज़ख्म' अमृतराय की कहानी वर्तमान समाज के पालिशदार और गिरगिटपंथी आदर्शों के प्रति एक विद्रूप है, तीक्ष्ण कुनैन-जैसी, जो तीती होते हुए भी लाभप्रद है बीमारी में, उस नंगे आदम के बेटे को देखकर लगता है कि समाज का कोढ़ कितना बढ़ रहा है अनवरत, क्षण-क्षण। अपने बेटे का खून उस पागल ने किया है। क्यों ? यह तो ठेकेदार समझते हैं ही। नरेन्द्रनाथ मित्र की कहानी 'ऊदबत्ती' टेकनीक की दृष्टि से इस अंक में सर्वश्रेष्ठ कही जायगी। कथानक में जो गठन और जोर व्याप्त है, वह कम देखने को मिलता है। नारी-पुरुष के आकर्षण को लेकर बड़ी कलात्मकता से फेरीवाले के प्रति सहानुभूति प्रकट की गयी है। कहानी स्तुत्य है। मंटो की कहानी पढ़कर तो अलक्जेण्डर ड्यूमा की शैली की याद हो आयी, थ्री मस्केटियर्स की नायिका-जैसी शाहीना लगी। कितना लोमहर्षक अन्त होता है नबाब के यौवन का, उसकी बोटी-बोटी काटकर शाहीना पका देती है देगची में। हैबत खाँ उसके हाथों की कठपुतली-सा लगता है। लकवा मारे हुए आदमी की तरह वह सुनता है—जानमन ! यह पहली बार नहीं, दूसरी बार है। मेरा शौहर, अल्लाह उसे जन्नत में रखें, तुम्हारी ही तरह बेवफ़ा था। मैंने

खुद उसको अपने हाथों मारा था और उसका गोश्त पका कर चील-कौवों को खिलाया था !...कोई भी आदमी इसे सुनकर बेहोश हो सकता है। कहानी में नारी-ईर्ष्या का स्पष्ट रूप बड़े क्रूर धरातल पर खींचा गया है। यह मानवीय वृत्ति का एक उदाहरण है। मंटों ही ऐसी कहानियाँ दे सकते थे। विद्यासागर नौटियाल की कहानी जोरदार रही। ओवरकोट का वह इकलौता पाकेट मानव जीवन की तरह बहुत-कुछ अनुभव करता है। कहानीकार को स्वयं अनुभव है,' वह मध्यम बर्ग का शिल्पी है सशक्त, प्राणवान। राजेन्द्र यादव की कहानी 'ब्रह्म और माया' तो कई दृष्टियों से श्रेष्ठ है, उनकी पिछली कहानी 'त्याग और मुस्कान' से भिन्न। जो तीखा व्यंग शंकर के बहाने प्रकाशकों पर कसा गया है, वह बड़ा ही तीव्र विद्रूप-सा है। कहानी सोलहो आने अति यथार्थवादी है, पर बेआबरू हो-के निकलना शर्म की क्या बात रही ! लेखक तो सदैव यही कहेगा, और कहना चाहिए, उसे—

ख़त लिखेंगे गर्चे मतलब कुछ न हो,
हम तो आशिक हैं तुम्हारे नाम के।
राजेन्द्र यादव से बड़ी आशायें हैं।
गैरान्ड कर्श की कहानी सशक्त रही।

रमेश कुमार (डाल्टनगंज)

राँची में था, तो 'कहानी' बुक स्टाल पर खरीदने को मिल जाती थी, पर डाल्टनगंज (पलामू) में तो 'कहानी' आती ही नहीं। अतः मैं उसके लिए बेचैन-सा रहने लगा। पढ़ने को तो बहुत-से कहानी-प्रधान मासिक पत्र (जैसे, कहानियाँ, पटना; मनोहर कहानियाँ व माया, इलाहाबाद) आदि मिल जाते, पर 'कहानी' की कमी बुरी तरह खटकती रही। आख़िर में जब नहीं रहा गया, तो मैंने तेरह रुपए का मनीआर्डर तुरन्त भेज दिया, 'कहानी' व 'उपन्यास' दोनों के लिए। आर्डर दिया कि जनवरी से अप्रैल तक 'कहानी' के सभी अंक एक साथ ही भेज दें, क्योंकि मैं चाहता हूँ कि १९५६ की 'कहानी' के बारहों अंकों को जिल्द लगवाकर सुरक्षित करा लूँ और उसपर एक बृहत् समीक्षा तैयार कर 'कहानी' ५७ के जनवरी-अंक के लिए प्रकाशनार्थ भेज दूँ।

मेरे बहुत-से मित्र, क्योंकि इस शहर में किसी के पास 'कहानी' नहीं आती, मुझसे 'कहानी' माँगने आते हैं। प्रत्येक अंक की प्रत्येक कहानी की खूब दाद देते हैं। सबों की एक ही राय है और वह यह, कि 'कहानी' कहानी-साहित्य का सच्चा प्रतिनिधित्व कर रही है और पू' सफलता के साथ कर रही है।

मुझे कहानी-साहित्य से विशेष प्रेम है, अत्यन्त मीठा संबंध है मेरा उससे।

कल ही, जब 'कहानी' का मई-अंक मिला, मैं आनन्दातिरेक से भर उठा। शाम को घूमने के बाद, झूठ नहीं बोलूँगा, एक ही बैठकी में मैंने सात कहानियाँ पढ़ डालीं और जो बचीं उन्हें चार बजे सुबह में समाप्त कर दिया। हिन्दी की छः नयी कहानियों में 'वीना' (विजय चौहान) प्रादेशिक भाषाओं की पाँच कहानियों में 'सरकंड़ों के पीछे, (सआदत हसन मंटो) और पूरे अंक में विदेशी कहानी 'आतिथ्य' (गेराल्ड कर्श) सर्वश्रेष्ठ कहानी रही। पंजाबी लोककथा में अप्रैल अंक का 'शालगाम' कुछ दूर तक ठीक था, पर इस बार का 'खरबूजा' तो केवल बच्चों की कहानी बनकर रह गयी।

नये आवरण के लिए कमल बीस बधाई के पात्र हैं।

शलभ (अहमदाबाद)

'कहानी' का यह अंक कल मिला और मैं आज ही पूरा पढ़ गया हूँ। प्रस्तुत अंक का कलेवर अत्यधिक सुन्दर रहा और साथ ही आवरण भी। अमृतराय की कहानी 'नंगा आदमी, नंगा ज़ख्म' बहुत सुन्दर लगी। वह एक पागल आदमी था और इसी पागलपन की यह एक अलामत थी कि जहाँ उसे खुद अपनी लाज ढँकने की रत्ती-भर परवाह न थी, वहाँ उसने अपनी कौम की लाज नियाहत खूबी के साथ एक गांधी टोपी से ढाँक रखी थी।' वास्तव में देश में आज तबाही है, देश में इस समय अनाज, तेल व अन्य खाद्य पदार्थों के भाव बहुत तेज हैं, परन्तु अधिवेशनों में जनता से कहा जाता है, बुराई न देखो, बुरी बात न बोलो, बुराई न सुनो

'कर-मंत्री' कपूर की कहानी समाप्ति पर सोचने को मजबूर कर देती है। सगाई टैक्स, बकरी टैक्स...सब

टैक्स लग जाते हैं, परन्तु रेशमी गरारे पर टैक्स नहीं लगता, क्योंकि वह तो कर-मंत्री की श्रीमती पहनती हैं। खेजाव पर टैक्स नहीं लगता, क्योंकि वह तो कर-मंत्री के पिताजी प्रयोग में लाते हैं। वास्तव में कपूर ने वर्तमान कर-नीति का पर्दा फाश सीधे-साधे शब्दों में किया है, जो बहुत सुन्दर बना है।

'सरकंडों के पीछे' मंटो की कहानी बहुत सुन्दर बन पड़ी है। इसके साथ ही गैरहार्ड कर्श की कहानी भी उत्तम रही।

'कहानी' बहुत सुन्दर है और लोकप्रिय भी, क्योंकि सभी जगह इसने सम्मान पाया है और साहित्य में इसका सुन्दर स्थान बन गया है। मेरी शुभ कामनायें।

कैलाश कुमार (इलाहाबाद)

कल ही मई का अंक खरीदकर ले आया। एक-एक करके सम्पूर्ण कहानियों को पढ़ डाला, तिसपर भी जी चाहा कि यदि और इसी तरह की कहानियाँ मिलतीं, तो पढ़ता। वास्तव में यदि सच पूछिए, तो सुन्दर एवं सुरुचिपूर्ण तथा अश्लीलता से कोसों दूर, कहानियों के द्वारा जिस कुशलता के साथ आपने 'कहानी' को निकाला, वह इस बात का द्योतक है कि कहानी-साहित्य मानव को प्रेरणा एवं उत्साह दे सकता है।

एक बात समझ में नहीं आती कि आप अधिकतर अनूदित कहानियों को क्यों मान्यता प्रदान करते हैं। यदि मौलिक कहानियों का बाहुल्य 'कहानी' में होता, तो ज़्यादा अच्छा रहता। 'सरकन्डों के पीछे' नामक कहानी का अन्त देखकर दिल दहल जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस अंक में मन्टो की कहानी सर्वश्रेष्ठ है। 'ऊदबत्ती' 'मानव' एवं 'कर-मंत्री' नामक कहानियाँ सुन्दर हैं।

बच्चन पाठक 'सलिल' (जमशेदपुर)

'कहानी' का मईवाला अंक देखा। गोस्वामीजी के शब्दों में, बाँचन लागत खाटी मिट्टी, वाली उक्ति चरितार्थ हुई। विद्यासागर नौटियाल की 'ओवरकोट' अच्छी लगी। अच्छाई की मात्रा जरा-सी और बढ़ गयी, जब कि सम्पादकीय से उनके नये लेखक होने की बात मालूम हुई। 'बूढ़े का चित्र', 'कर-मंत्री' तथा 'ब्रह्म और माया' भी सुन्दर बन पड़ी हैं। यदि प्रतिमास एक लोक-कथा नियमित रूप से प्रकाहुआ करे, तो हिन्दी का सम्पर्क विभिन्न लोक भाषाओं से हुआ करेगा।

गेंदालाल राजावत (बैरागढ़)

अप्रैल का 'कहानी'-अंक पढ़ा। वैसे तो सभी कहानियाँ अच्छी हैं, लेकिन अनूदित कहानियाँ मौलिक कहानियों के से ज्यादा प्रौढ़ और कलात्मक हैं। मौलिक कहानियाँ कहानियों के रूप में ज्यादा सफल नहीं, पर स्केच के रूप में अधिक सफल हो पायी हैं। इस अंक की आकर्षक कहानी है 'बदबूदार गली', जिसको हम स्केच कह सकते हैं। वैदजी का चित्रण स्वाभाविक और यथार्थ है। लेखक ने बड़े कौशल से आज के वैज्ञानिक युग में भी दिल्ली-जैसे बड़े शहर की गंदगी का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह चित्रण भारत के हर शहर और हर गाँव का चित्रण है। लेखक ने बाहरी गंदगी के साथ-साथ आज की सामाजिक सड़ाँध का भी सजीव अंकन किया है। आज की हिन्दी कहानी में कहानीपन कम और स्केचपन ज्यादा पाया जाता है। दूसरी भाषाओं के लेखकों की कृतियाँ पढ़ने से यह महसूस होता है कि उनकी रचनाओं में कहानीपन अधिक है। मराठी कहानी-लेखक महादेव शास्त्री जोशी, जिनकी कहानियाँ सम-सामयिक विषयों पर ही रहती हैं, फिर भी उनमें कहानी के सभी प्रमुख तत्वों का समावेश रहता है। दुःख है कि हिन्दी के नये लेखकों में यह कमी अधिक मात्रा में पायी जाती है। आशा है, नवीन लेखक इस ओर ध्यान देंगे।

विमल किशोर (मोदीनगर)

११ ता० की शाम को मुझे मई का 'कहानी'-अंक मिला। चूँकि मैं आपका नया ग्राहक बना हूँ, इसलिए पिछले कुछ अंकों को पढ़ने में व्यस्त रहने के कारण नया अंक आते ही नहीं पढ़ सका। किंतु जब पढ़ना शुरू किया, तो एक ही साँस में पूरा पढ़ गया। कुछ ऐसा ही रोचक लगा। सोचता हूँ, ५॥) रु० जो उधार लेकर भेजे थे, व्यर्थ नहीं गये। इस अंक की कुछ कहानियाँ विशेष पसंद आयी, जैसे, 'ऊदबत्ती', 'सरकंडों के पीछे', 'कर-मंत्री,' 'ब्रह्म और माया,' 'मानव' और 'आतिथ्य'।

'ऊदबत्ती' की शैली मुझे बहुत ही पसंद आयी, बहुत। 'सरकंडों के पीछे' वास्तव में दिल को कँपा देनेवाली कहानी

है, जो कुछ सोचने पर अवश्य ही मजबूर करता है। समाज सचमुच ऐसी ही कलुषताओं से भरा है।

'करमंत्री' एक ऐसा तमाचा है, जिसका कि जवाब सरकार के पास नहीं है। बहुत सुन्दर व्यंग करते हैं कपूरजी।

'ब्रह्म और माया' से 'मायावी' कुछ लज्जित हों या नहीं, किंतु यादवजी का प्रयास सफल रहा कि कोई शर्मदार हो तो चुल्लू-भर पानी में डूब मरे। मैं भी उनके साथ हूँ, क्योंकि मैं भी तो माया के चक्कर में हूँ।

'मानव' में खांडेकरजी ने गधे के ऊपर से शेर की खाल खींचकर दिखाने का प्रयत्न किया है कि यह वास्तव में गधा ही है, शेर नहीं। आज समाज को सचमुच रघुनाथ-सरीखे व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो सच्चे 'मानव' होते हैं।

'आतिथ्य' के संबंध में कुछ कहना बड़ों की बात के बीच में टाँग अड़ाना होगा।

इनके सिवाय एक और भी कहानी पसंद आयी है, किंतु उसमें ऐसा लगता है, जैसे कि कोई व्यक्ति एक रुपये को फुटकर कराने बाजार में जाय और २ आना, ४ आना ८, आना, १२ आना मिलते-मिलते कोई दंगा-फिसाद हो जाय और हुल्लड़ में कुल १२ आने ही मिल सकें उस व्यक्ति को। वो कहानी है, 'नंगा आदमी, नंगा जख्म' अमृतराय की। कहानी बड़े ही रोचक ढंग से व्यंग कसती हुई शुरू होती है, आगे बढ़ती है और जब जिज्ञासा नंगे आदमी की ओर बढ़ती है, तब कहानी समाप्त हो जाती है। संभव है, लेखक जो-कुछ भी व्यक्त करना चाहता था, हो व्यक्त कर चुका हो, किंतु अपनी जिज्ञासा शांत नहीं हुई।

एक कहानी और कुछ अच्छी लगी है 'एक असफल आदमी' किंतु ऐसे व्यक्तित्व उंगलियों पर गिने जा सकते हैं, इसलिए कुछ स्वाभाविकता प्रतीत नहीं होती इसमें।

अंक बहुत सुंदर निकला है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

महेन्द्र सिंह (अमृतसर)

'कहानी' द्वारा आप हिन्दी कथा-साहित्य की जो सेवा कर रहे हैं, उसके लिए समस्त हिन्दी प्रेमी आपको जितना धन्यवाद दें, कम है। हिन्दी कहानियों के अतिरिक्त आप अन्य देशी-विदेशी भाषाओं की जो कहानियाँ दे रहे हैं, वह भी आपका अपने पाठकों पर बड़ा एहसान है। अनूदित कहानियों का इसलिए अधिक महत्व है कि वे हज़ारों कहानियों में से चुनकर सैकड़ों की संख्या में मौलिक रूप में छपती हैं और उन चुनी हुई सैकड़ों कहानियों में से अनुवादक एक कहानी चुनता है, अर्थात् हज़ारों में से एक चुनी हुई कहानी आपके द्वारा हिन्दी प्रेमियों को पढ़ने को मिलती है। मैं पंजाबी होने के कारण उर्दू भी जानता हूँ और इसलिए कह सकता हूँ कि अभी तक उर्दू की श्रेष्ठतम कहानियों के आपने अनुवाद छापे हैं। दूसरी हिन्दी पत्रिकाओं में भी उर्दू कहानियाँ छपती हैं, पर उनमें यह बात नहीं होती। यहाँ मुझे उर्दू कहानियों के प्रति होनेवाले एक अन्याय की विशेष रूप से चर्चा करनी है, क्योंकि यह आप ही के नगर में हो रहा है।

अभी-अभी मई की 'माया' में शफ़ीक़ुर्रहमान की एक कहानी 'तुरुप चाल' पढ़कर मैं और मेरे मित्र दंग रह गये। आपके नगर ही से शफ़ीक़ साहब का एक कहानी संग्रह हिन्दी में प्रकाशित हुआ है, जिसमें यह कहानी 'शैतान और ताश का खेल' के नाम मौजूद है। और मुझे ख़ूब याद है कि यही कहानी 'तुरुप चाल' के नाम से वर्षों पहले 'माया' में ही छप चुकी है। इस बार इस कहानी में कुछ पात्रों के नाम बदल दिये गये हैं। शफ़ीक़ साहब का एक पात्र 'शैतान' के नाम से उर्दू ही की तरह हिन्दी में भी बहुत लोकप्रिय हो चुका है। शैतान की बातें, हास्यपूर्ण हरकतें ऐसी होती हैं, जो पाठकों को बहुत दिनों याद रहती हैं। पता नहीं 'शैतान' को श्याम बनाकर 'माया' वालों ने हिन्दी के साथ क्या उपकार किया है। नामों का यह परिवर्तन ऐसा भोंडा हुआ है कि कहानी से अधिक हँसी आती है सम्पादक की समझ पर। एक पात्र जो अमरीकी है, उसे 'बड्डी' से 'बंडी' बना दिया गया है। इससे अच्छा तो 'शर्ट' या 'ओवरकोट' नाम होता, क्योंकि अंग्रेजी तो होता।

ऐसी ही हाल में एक और कहानी 'माया' में शफ़ीकुर्रमान की छपी थी 'कुमुदिनी'। यह वास्तव में उनकी प्रसिद्ध रोमैंटिक कहानी 'नसरी' का दूसरा रूप है और यह कहानी भी 'मनोहर कहानियाँ' में पहले छप चुकी है, अपने असली नाम से। और तो और शौकत थानवी की कहानी तक के

साथ यही अन्याय किया गया है। शौकत साहब हमेशा अपने जाने-पहचाने वातावरण का चित्रण करते हैं और उनके पात्र सदैव मुस्लिम होते हैं। ऐसी बहुत-सी कहानियों के नाम गिनाये जा सकते हैं। क्या ऐसा करना उचित है?

आज, जब कि तेज़ी से मुसलमान भी हिन्दी पढ़ रहे हैं, ऐसा करना क्या हिन्दीवालों या हिन्दुओं की संकीर्णता का प्रदर्शन करना नहीं है? वे क्या सोचेंगे, जब देखेंगे कि उर्दू कहानियों को बार-बार एक ही पत्रिका में हिन्दीवाले छापना भी चाहते हैं और उनका रूप भी बिगाड़ देते हैं। जब अंग्रेज़ी कहानियों और उपन्यासों के अनुवाद तक हिन्दीवाले प्रेम से पढ़ते हैं, अंग्रेज़ी पात्रों और स्थानों तथा अंग्रेज़ी सभ्यता और संस्कृति से सर्वथा अनभिज्ञ रहते हुए हम उन उपन्यासों, कहानियों का आनन्द लेते हैं, तो उर्दू कहानियों को उनके मौलिक पात्रों-सहित क्यों पसन्द न करेंगे? आख़िर 'कहानी' में भी तो उर्दू कहानियों के अनुवाद छपते हैं, क्या किसी ने आपसे शिकायत की कि उन कहानियों के मुस्लिम पात्रों या वातावरण से हमें चिढ़ है? राष्ट्रभाषा बन जाने के बाद समस्त हिन्दी प्रेमियों पर एक महान ज़िम्मेदारी आ गयी है। हम चाहे लेखक हों या अनुवादक, सम्पादक हों या प्रकाशक, हमारा धर्म है कि ऐसी कोई बात न करें, जिससे राष्ट्रभाषा की महानता को धक्का लगे और 'माया' का यह कार्य हिन्दी को बदनाम करने वाला है।

क्या आप मेरी इन पंक्तियों को प्रकाशित कर दूसरे हिन्दी प्रेमियों का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट करेंगे?

पुस्तकालय

पुस्तक-खरीद में भ्रष्टाचार

स्वरूप और उसके कारण

भी देश अथवा समाज के विकास में पुस्तकों की बड़ी भारी देन होती है। उन्नति के सिद्धान्त व विभिन्न मार्ग व्यावहारिक रूप ग्रहण करने से पहले पुस्तकों के पन्नों पर ही अपना स्थान बनाते हैं। उसके बाद पुस्तकों के वितरण के ज़रीये जन-जन तक उनकी पहुँच होती है। यह वितरण का कार्य भी आज के युग में अपना महत्व रखता है और इस सबकी जिम्मेवारी का अधिकांश भाग सरकारों ने अपने कन्धों पर ले लिया है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के शुरू होते ही केन्द्रीय सरकार-द्वारा विभिन्न प्रान्तीय सरकारों को पुस्तकालयों का जाल फैलाने के लिए बड़ी रकमें सहायता के रूप में दी जाती रही हैं। उन पुस्कालयों को सजाने के लिए श्रेष्ठ पुस्तकों के चयन का, ख़रीद और सम्बन्धित व्यवस्था का भार अधिकांशतः शिक्षा-विभाग पर ही पड़ा, रहा-सहा समाज-विकास, ग्राम-सुधार, समाज-कल्याण आदि विभागों के हिस्से आया।

निश्चित है, बड़ी ख़रीद करने के लिए नये-नये तरीक़े निकाले गये। अधिकतर टेण्डर से, बाक़ी बिना टेण्डर के भी। टेण्डर माँगने के तरीक़े भी भिन्न-भिन्न रखे जाते रहे हैं। किसी प्रान्त में कोई तरीक़ा, किसी में कोई। दुर्भाग्य है तो केवल इस बात का कि उन-सब का एक नतीजा तो प्रायः निकला ही, भ्रष्टाचार पनपना।

यह भ्रष्टाचार कहाँ से पैदा होता है और उसके विभिन्न स्वरूप क्या हैं? हम अब इसपर विचार करेंगे।

हक़ीक़त में भ्रष्टाचार उसी समय से अपना रंग दिखाना शुरू कर देता है, जिस समय पुस्तकों के खरीद के लिए टेण्डर-नोटिस दैनिक अखबारों में छपते हैं। कई बार इस से पहले भी, जब कि टेण्डर-सूचना में पुस्तकों का नाम या कुछ किस्मों की घोषणा हो। इस घोषणा के निकलते ही टेण्डर की विस्तृत जानकारी लेने के लिए पुस्तक-विक्रेताओं में भगदड़ शुरू होती है। हरेक अपने-आपको इस कार्य में विशेषज्ञ समझकर टेण्डर निकालनेवाले अफ़्सर, दफ़्तर के कर्मचारी तक अपनी पहुँच शुरू करता है। बस, यहीं पर लेनेवाले अपना रंग दिखाते हैं और देने की कला में अपने को माहिर माननेवाले अपनी कलाबाजियाँ शुरू करते हैं। इस कार्य में सबसे बड़ी कमी और दुर्भाग्य की बात तो यह है कि पुस्तक-विक्रेताओं को एक समान, एक तरह की सूचना देने की पद्धति ही नहीं होती। लेने की आदत है, तो न देने का संकेत करनेवाले को रत्ती-भर भी जानकारी नहीं मिलेगी, इसके साथ मानवोचित व्यवहार भी न होगा। देने की आदत है, तो सामनेवाले कर्मचारी या अफ़्सर को नाना भाँति से फ़ुसलाने की कोशिश की जाती है, पान-सिगरेट, चाय-लस्सी से शुरू होकर नक़द भेंट की बात द्व्यार्थक शब्दावली में कही जाती है। व्यवहार में अधिकतर यह देखा गया है कि लेने-देनेवाले की जोड़ी मिल ही जाती है। तरीक़े व मिलने के स्थान बात-बात में तय हो जाते हैं। आख़िरकार विस्तृत सूचनाएँ उन्हीं को मिलती हैं, जो अफ़्सर, उसके पी० ए०, सम्बधित कर्मचारी, अथवा कोई कमिटी हो, तो

उसके सदस्य तक पहुँच पाता है। एक तरह की सूचनाएँ ही सभी पुस्तक-विक्रेताओं को मालूम हुई हों, यह तो किसी बिरले ही मामले में हुआ होगा। पर हाँ, खुले रूप से दफ़्तर के अधिकृत अधिकारी यही कहेंगे कि जो बताना है, वह इतना ही है। सूचनाओं में प्रायः इस तरह की बातें मुख्य होती हैं, किस तरह की पुस्तकों को प्राथमिक रहेगी, टेण्डर लेने की तारीख बढ़ जायगी अथवा नहीं, किस तक किस तरीक़े के पहुँचा जाय, काम कैसे बन सकता है, किस अनियमितता के कारण नुक़सान हो सकता है, स्टेटमेण्ट कब बनेंगे, उसमें क्या-क्या मदद दी जा सकेगी, आदि-आदि। दूसरा मौक़ा आता है, **पुस्तकों की लिस्ट** बनाते समय। यह सबसे सुनहरा, सोना बनाने का अवसर होता है, लेनेवाले के लिए भी, देनेवाले के लिए भी। जो पुस्तकें लिस्ट में जायेंगी, उन्हीं की तो ख़रीद होगी। इस काम के लिए हायतोबा मच जाता है।

लिस्ट बनने के बाद ख़रीद **के समय सुविधाएँ व छूट** देने की बातें, दोनों तरफ़ रुचि रखनेवाले आपस में तय कर लेते हैं और सारा काम शुरू से आख़िर तक उसी प्रकार विधिवत्, कानून से बचते हुए, परिस्थितियों की आवश्यकता को गढ़ करके, सभी बचाव के तरीक़ों का उपयोग करके, मौक़ा पड़ने पर जानी-पहिचानी तय की हुई डाँट-डपट, माफ़ी-वाफ़ी, गिड़गिड़ाहट के रास्तों से चलकर सुचारु रूप से सम्पन्न होता है।

जहाँ दोनों ओर का रिश्ता न बैठा, तो वहाँ के मसले वैसे ज़्यादा लज़्ज़तदार होते हैं। आपने चाहे सबसे अच्छे र्स दिये हों, तो भी आपको परेशान करने में कोई कमी न हेगी। मसलन, अभी तो स्टेटमेण्ट नहीं बना पाये हैं, आज दौरे पर हैं, छुट्टी पर है क्लर्क, ऊपर के आर्डर्स अभी ख़रीद करने के नहीं हैं, ऊपर की मंजूरी नहीं आयी, साहब, आप तो जानते हैं, सरकारी काम यों ही थोड़े ही हो जाता है, कई मंज़िलें पार करनी पड़ती हैं, स्वीकृत लिस्ट में से पुस्तकों की छँटाई का काम आसान थोड़े ही है, समय लगेगा; बार-बार तंग क्यों करते हैं ? ख़रीद करने की हमें गरज है, अपने-आप आर्डर भेज देंगे, आप हमारे अफ़सर तो नहीं हैं, बार-बार मत आइए।...ऐसी बातें करते-करते मार्च का महीना, बजट का आख़िरी महीना आ जाता है और इसमें भी बात नहीं बनी, तो मार्च का दूसरा, तीसरा सप्ताह। जब आपकी अफ़सर से या किसी महत्वपूर्ण अधिकारी अथवा कर्मचारी से बिगड़ गयी, तो चाहे बजट लैप्स हो जाय, वे आपसे क़तई न खरीदेंगे। इस बीच आपकी पहुँच या पूछ-ताछ बन्द हो गयी, तो किसी दूसरे पुस्तक-विक्रेता से इस आधार पर ख़रीद कर ली जाती है कि क्या बतायें, साहब, समय कम रहा और आप नज़र नहीं आये; ऐसा हम न करते, तो बजट लैप्स हो जाता, अफ़सर हमारी जान खा जाते, आदि, आदि नाना भाँति के तर्क-सुतर्क गढ़े-गढ़ाये तैयार रहते हैं। अनेक उदाहरण देखे हैं, सुने हैं, इस अनुभव के आधार पर ये बातें लिखी जा रही हैं। और आप अनुभव करना चाहें, तो किसी जान-पहचान के पुस्तक-विक्रेता के एजेण्ट (सौखिया) बनकर स्वयं अनुभव कर लीजिए।

इस भ्रष्टाचारी कारोबार में **लेने-देने के संकेत** भी निराले होते हैं। चाय-पान, फलाहार, छोटी-मोटी भेंट, न हो तो पुस्तक-पत्रिका, बड़ा मुनाफा दिखने पर पुस्तक छापने का लालच (जो घूस नहीं होगी, और काम भी बन जायगा), अलेखक के लेखक बनाने का दावा, नाम का डर हो तो ग़ैर नाम ही अथवा छद्मनाम से पुस्तक का प्रकाशन, निःशंक हो, तो नकद, चेक आदि तक चलते हैं। कई जगह तो सोने के टुकड़े भी दिये जाने की चर्चायें सुनी हैं। भ्रष्टाचार-विरोधी अभियानों के सारे चक्र ऐसे लोगों को पहले से ही मालूम होते हैं। लेने-देने के संकेत हमेशा दो-अर्थवाली शब्दावली में शुरू होते हैं। यथा, क्या साहब, आप भी कोरे-कोरे काम निकालना चाहते हैं, न कोई ख़ातिर, न कोई सत्कार, यूँ कोई काम होता है ? (और आपने हल्का-सा भी विरोध प्रदर्शित किया, तो झट से) अरे, हम तो मज़ाक कर रहे थे, आदि-आदि। अगर आप भी देने की कला में माहिर हैं, तो कहेंगे, सेवा के लिए हमेशा हाज़िर हैं, जो कहें, जैसे कहें, तैयार हैं। फिर पहली मुलाकात हँसी में ख़त्म हो जायगी। पर विरोध की शंकाएँ ख़त्म होने से सौदा पटाने में दोनों को आसानी होती है और अन्त में सब-कुछ तय हो जाता है। भ्रष्टाचार का आख़िरी 'सभ्य' तरीका **जान-पहचान का दबाव** है। इस स्वरूप-व्याख्या की चर्चा आख़िर में हम यह कहकर समाप्त करेंगे कि जो पक्षपात व जान-पहचान के दबाव का उपयोग करना भी अनैतिक मानते हैं,

उनको भी काम को समय पर पूरा करा लेने के लिए परिचय का सहारा तो लेना ही पड़ता है, जिसके विना सरकारी कागज़ों में हज़ार में से एक भी सफलतापूर्वक अपना चक्कर पूरा नहीं कर सकता। इसे आप किस कोटि में रखना पसन्द करेंगे, यह आप पर ही छोड़ा जा रहा है। पर यह सच मानिए कि इस मर्ज़ से भले-बुरे कोई भी बाक़ी रहकर नहीं चल पाते, नहीं चल सकते, चाहे वह गाँधीवादी हो, समाजवादी हो अथवा नैतिकतावादी हो।

अब हम भ्रष्टाचार के मूल कारणों पर आते हैं :—

(१) नौकरशाही मशीनरी में परम्परागत भ्रष्टाचार जड़ों तक पैठा रोग रहा है। मध्यमवर्गीय व ग़रीब श्रेणी के कर्मचारियों में अर्थ-संकट का होना भी एक बड़ा कारण है। दोनों मिलकर एक भ्रष्टमूलक व्यवस्था का आम रूप धारण कर चुके हैं। ईमानदारी, हिम्मत, नैतिकता व सख़्ती का सर्वत्र अभाव है, विशेष कर बड़े लोगों में, जिसके कारण कार्यवाही न करने की आदत जड़ पकड़े हुई है। अन्यथा मंत्री, सेक्रेटरी व बड़े-से-बड़े अफ़सर ज़िन्दगी में इन बातों को जानने, अनुभव करने व सुन लेने पर कड़ी कार्यवाही अवश्य करते होते।

(२) वर्तमान कानूनी चक्करों में भ्रष्टाचारियों के बच निकलने की संभावनाएँ रहती हैं, जिससे भ्रष्टाचार में माहिर लोग पूरा फ़ायदा उठाते हैं और ईमानदार लोगों का उत्साह शीघ्र ही मन्द पड़ जाता है।

(३) लेने व देनेवाले—दोनों को व्यवस्था-जन्य कठिनाइयाँ महसूस होती हैं। देनेवाले का जो काम देने से दो घण्टे में हो सकता है, वही न देने से पूरा न होने की या महीनों-वर्षों से पूरा होने की गुंजाइश रहती है। व्यवहार में ईमानदारी बड़ी मुश्किल से व अनेक झंझटों का सामना करके चल पाती है। इसलिए देनेवाला व्यापारी या उसका प्रतिनिधि इस असफलता की रिस्क को मोल लेना पसन्द नहीं करता।

दूसरी ओर लेनेवाले, न लेनेवाले को टिकने नहीं देते। असहयोग और वहिष्कार का वातावरण (जो प्रायः नियमों की आड़ में खड़ा किया जाता है) उत्पन्न करके सच्चे व नेक आदमी को रास्ते का रोड़ा समझकर हटा दिया जाता है या फिर उसको कहीं का नहीं रहने दिया जाता। इससे परेशान होकर युवावस्था के भावुक कार्यकर्त्ता भी भ्रष्टाचार में फँसने को मजबूर किये जाते हैं।

(४) सम्बन्धित विषयों में विशेषज्ञ न होने के कारण मिनिस्टर तक भी कड़ाई को लागू करने में असमर्थ होते हैं। नौकरशाह अफ़सर क़ाग़ज़ी कार्यवाही में माहिर होने के कारण ईमानदार मिनिस्टरों व बड़े अधिकारियों तक को धता बताने में सफल हो जाते हैं।

(५) चाहे-अनचाहे शासक-वर्ग के कई व्यक्तियों-द्वारा राजनीतिक दबाव का डाला जाना, भाई-भतीजावाद का चलना व अर्थ का लोभ इस भ्रष्टाचार के जाने-पहचाने कारण हैं।

(६) भ्रष्टाचार-विरोधी अभियान प्रायः नाममात्र को होते हैं। विरोधी राजनीतिक पार्टियों व उनके कार्यकर्त्ताओं के विरुद्ध सरकारी गुप्तचर विभाग बड़ी सरगर्मी से काम कर सकता है, पर उसका काम भ्रष्टाचार-विरोधी अभियान में, पता नहीं क्यों, उत्साहहीन व लचर हो जाता है। इससे भ्रष्टाचार पनपने में सर्वाधिक मदद मिलती है।

और भी अनेक कारण व रहस्य हैं। समय-समय पर हम उनको आम जनता और सरकारों के सामने रखते रहेंगे। पर ये-सब बातें कार्यवाही करने के लिए जिम्मेदार लोगों के दिल पर कुछ असर भी तो करें! आप और हम-सबको देखना है कि जिम्मेदार अधिकारी इन बातों को कहाँ तक समझने की कोशिश करते हैं। हक़ीक़त में हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि सरकार ने यदि इन चीज़ों की ओर ध्यान देकर शीघ्र ही कार्यवाही नहीं की, तो पंचवर्षीय योजना का सुन्दर भवन, 'कल्पना में' व 'ऊपर से सुन्दर' होते हुए भी अन्दर से खोखला ही रहेगा। यही जन-जन में व्याप्त आम भावना है।

—हरीश कुमार

जुलाई १९५६

वर्ष ३ ❀ अंक ७

(शेष अगले पृष्ठ पर)

वार्षिक : साढ़े पाँच रुपये

सम्पादक-श्रीपतराय : भैरवप्रसादगुप्त

शेष सूची

सम्पादकीय नियम

१—'कहानी' में केवल कहानियाँ छपती हैं। कविताएँ, लेख आदि कृपया न भेजें।

२—जो रचना प्रकाशित हो चुकी है या प्रकाशनार्थ भेजी जा चुकी है उसे कहानी के लिए न भेजिए।

३—'कहानी' के लिए सुवाच्य लिखावट में कागज के सिर्फ एक ओर पंक्तियों में काफी फासला देकर लिखी हुई रचनाएँ भेजिए और अपनी रचना की प्रतिलिपि अवश्य रख लीजिए।

४—अनूदित कहानियों के साथ मूल रचना और मूल लेखक के नाम भी अवश्य भेजिए।

५—स्वीकृत रचना की ही सूचना सम्पादक द्वारा दी जाती है।

६—सम्पादक सम्बन्धी सारा पत्र-व्यवहार सम्पादक 'कहानी' के नाम से करना चाहिए।

व्यवस्थापकीय नियम

१—'कहानी' प्रति मास की पहली तारीख को प्रकाशित होती है।

२—एक प्रति का मूल्य छः आना और सालाना चंदा विशेषांकों के साथ साढ़े पाँच रुपये है। तिमाही और छमाही ग्राहक नहीं बनाये जाते।

३—वी० पी० भेजने में अधिक खर्च पड़ता है, इसलिए वी० पी० नहीं भेजी जाती। ग्राहक बननेवालों को साढ़े पाँच रुपये चन्दा मनीआर्डर से भेजना चाहिये।

४—नमूने के लिए छः आने का डाक टिकट भेजिए, नमूना मुफ्त नहीं भेजा जाता।

५—कार्यालय से सभी प्रतियाँ अच्छी तरह जाँच-पड़ताल करके भेजी जाती हैं। यदि १० तारीख तक प्रति न मिले तो डाकखाने में पूछ-ताँछ करके डाकखाने के अधिकारी का लिखित जवाब 'कहानी' कार्यालय को भेजना चाहिए।

६—पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए। बिना ग्राहक-नम्बर लिखे जवाब देने या कार्यवाही में देर हो सकती है और यह भी सम्भव है कि कोई कार्यवाही न की जा सके।

७—अगर आप एक साथ पाँच ग्राहकों का सालाना चन्दा साढ़े सत्ताइस रुपए मनिआर्डर से भेज दें, तो साल भर तक आप को 'कहानी' तथा विशेषांक बिना मूल्य मिलेगा।

८—व्यवस्था-सम्बंधी सारा पत्र-व्यवहार व्यवस्थापक 'कहानी' के ही नाम से कीजिये।

व्यवस्थापक, 'कहानी' कार्यालय,

सरस्वती प्रेस, सरदार पटेल मार्ग, पो० बा० नं० २४, इलाहाबाद—१

कहानी
'कहानी' की बात
उपन्यास
'उपन्यास' का पहला अंक प्रकाशित हो गया। इस अंक में मराठी के सुप्रसिद्ध कथाकार दत्त रघुनाथ कवठेकर का नया सामाजिक उपन्यास 'रेशम की गाँठें' पूरा-का-पूरा छपा है। आवरण कमल बोस ने बनाया है। इस अंक की बहुत कम प्रतियाँ छपी हैं। अभी तक आपने इसकी प्रति सुरक्षित न करायी हो, तो शीघ्र वार्षिक चन्दा भेजकर ग्राहक बन जायँ और इस श्रेष्ठ उपन्यास की प्रति प्राप्त करें।
दूसरा अंक
'उपन्यास' के दूसरे अंक में उर्दू के अमर कथाकार स्वर्गीय सआदत हसन मन्टो का अतीव रोचक उपन्यास 'राजो और मिस फ़रिया' छप रहा है। जैसा आपको ज्ञात है, मन्टो ने सैकड़ों कहानियाँ लिखीं, लेकिन उपन्यास के नाम पर यही एक छोड़ गये थे, जो उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित
सरस्वती प्रेस, सरदार पटेल मार्ग, इलाहाबाद
क्षेत्रीय कार्यालय:
सरस्वती प्रेस
पोस्ट बाक्स—२२
बनारस—१
बिहार प्रकाशन गृह
खजांची रोड
पटना—४
सरस्वती प्रेस बुकडिपो
३७८८, फैज़ बाज़ार
दिल्ली—७
सरस्वती प्रेस बुकडिपो
अमीनुद्दौला पार्क
लखनऊ

हुआ। इस उपन्यास में भी मन्टो की कहानियों का ही रंग है, वही ज़बान, वही शैली, वही बात कहने की बेबाकी।

यह अंक

'कहानी' के इस अंक में कुल दस कहानियाँ हैं, पाँच काफी लम्बी और पाँच छोटी।

पहली कहानी 'अरण्य' के लेखक बंगला के सुप्रसिद्ध कथाकार नवेन्दु घोष हैं। यह जंगल की कहानी है, जहाँ का जीवन शिकार करना और शिकार बनना है और जहाँ शिकारी भी शिकार करने ही जाते हैं। लेकिन ये शिकार कई तरह के होते हैं। कोई जानवर का शिकार करने जाता है, तो कोई जानवर के शिकार के बहाने कोई और शिकार करने। ज़मींदार नन्द्रेकर को भी शिकार के बीच एक शिकार करना है। इसके लिए वह अपनी मचान के सेवक और रक्षक अन्ना को बाघ के मुँह में फेंक देता है, तो उसे क्या कहा जाय? लेकिन कहानी यही नहीं है। कहानी तो दर-असल अन्ना और लछिया की है, जो एक-दूसरे पर जान देते हैं। लेकिन उसका अन्त....

'जीवन का विष' के लेखक रामकुमार की कई कहानियाँ आप 'कहानी' में पढ़ चुके हैं। इनकी अधिकतर कहानियों की तरह इस कहानी का वातावरण भी विदेशी है। लेकिन आप देखेंगे कि लेखक उस वातावरण से परिचित है और आपके सामने वहाँ के नक्शे उतारने में सफल है।

इस्मत चग़ताई की कहानी 'गुड्डा और गुड़िया' बिल्कुल ताजी है। गुड्डों और गुड़ियों से बच्चे खेलते हैं। इस कहानी में भी दो अनोखे बच्चे हैं और उनके गुड्डा और गुड़िया भी अनोखे हैं और वे खेल भी अनोखा ही खेलते हैं। खेल में खिलौना टूटता ही है, थोड़ा रंज भी होता ही है, लेकिन इस कहानी की गुड़िया का टूटना आप जल्दी भूलेंगे नहीं।

'कामदेव का धनुष' के लेखक ओमप्रकाश श्रीवास्तव आपके परिचित हैं। इस रोमान्टिक शीर्षक के भीतर छुपे दर्द को आपने देखा, तो लेखक को दाद दिये बिना न रहेंगे।

पंजाबी के प्रतिष्ठित कथाकार सन्तोष सिंह 'धीर' आपके सुपरिचित हैं। इनकी कहानियों की आप प्रशंसा कर चुके हैं। 'सुबह होने तक' एक बरसाती रात की कहानी है, जिसे भुक्तभोगी ही अच्छी तरह समझ सकते हैं।

हिन्दी के तरुण कहानी-लेखकों में हर्षनाथ अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। इनका लेखन-क्षेत्र ग्राम्य जीवन है। हाल ही में इनका नया उपन्यास 'टूटते बन्धन' निकला है। 'देवी का प्रसाद' कहानी का सम्बन्ध भी गाँव के अन्धविश्वासों से है।

अण्णा भाऊ साठे भी आपके सुपरिचित कथाकार हैं। 'भूत का साथ' एक सच्चे भूत की कहानी है, जो किसी भी झूठे भूत की कहानी से कम रोचक नहीं। आपको यह कहानी बहुत भायेगी।

मन्नो भंडारी की एक कहानी 'मैं हार गयी' आपने 'कहानी' में पढ़ी है। उस कहानी ने काफी लोगों की प्रशंसा प्राप्त की। 'श्मशान' कहानी प्रेम और जीवन से सम्बन्ध रखती है।

जैक लंडन अन्तरदेशीय ख्यातिप्राप्त कथाकार हैं। 'आग' इनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से है।

विशेषांक

'कहानी' के अगले विशेषांक की योजना बन रही है। अगस्त-अंक में वह आपके सामने रखी जायगी।

हवा में नरमांस की गंध पा बाघराज के मुँह में पानी भर आया। वह रुका और अपने कान खड़े कर लिये। उसे खड़ा देखते ही गिलहरियाँ कूदकर वृक्ष की डालों पर चढ़ गयीं। शालिक और चड़ुई चिड़ियाँ शाखाओं पर बैठकर भयकंपित स्वर से बाघराज की जयध्वनि करने लगीं। बाघराज ने पूँछ फटकारकर इशारे से कहा, चुप!

सब चुप हो गये।

ज़ोर-ज़ोर से नाक फुला बाघराज ने वायु का विश्लेषण किया। निश्चय ही वायु में नरमांस की उत्तेजक गंध थी।

बाघराज ने ऊपर की ओर ताका।

इमली के वृक्ष पर अभी-अभी एक बूढ़ा उल्लू आकर बैठा था। बाघराज की दृष्टि का मर्म समझकर वह बोला —मुझे मालूम है, कौन जा रहा है।

एक शालिक बोली—कौन?

—अन्ना लकड़हारा लकड़ी काटकर वापस जा रहा है।

बाघराज ने अपनी जीभ से एक बार नाक को पोंछा और आगे बढ़ा। नाम जानकर उसे ख़ुशी हुई। अन्ना जवान है।

विशाल शाल के वृक्ष पर अब तक चुप बैठी हुई कोयल बोल उठी—बाघराज, क्यों मारते हैं बेचारे को? अन्ना लछिया नाम की एक लड़की से प्रेम करता है।

कोयल की बात सुनकर चड़ुई और शालिक भयभीत हो गयीं, इन कलाकारों के मिजाज़ के भी क्या कहने, उन्हें तो राजा का भी डर नहीं लगता!

बाघराज के पिंगल नेत्र जल उठे। दाँत पीसकर गर्दन घुमा, वह बोला— अरी ओ काली चुड़ैल! जंगल में एक ही कानून होता है, शिकार करना या शिकार बनना। किसने किसे प्यार किया है, यदि मैं यही सोचता रहता, तो क्या पश्चिमी घाट के तानखाला के इस वन का राजा हो पाता। फिर उसने भी तो मेरे जंगल का एक बाघ और बहुत-से साँप मारे हैं।

बिजली से जले पीपल के वृक्ष पर बैठा बन्दर का बच्चा कपू कोयल का चेहरा देखकर ताल ठोंक खिलखिलाकर हँस पड़ा। यह छोकड़ा बाघराज की राजसभा का मुँहलगा विदूषक था।

गर्वीली कोयल आँख मटकाकर बोली—हँसते क्यों हो?

कपू देह खुजला, हँसते हुए बोला—राज का कानून भूल गयी हो तुम। हँसू नहीं?

कोयल बोली — कभी तुमने आकाश की नदी में डुबकी लगायी है? कभी तुम्हारी इन जली आँखों पर वसंत के कृष्णचूड़ा फूल की रंगीन छाया पड़ी है? यदि ऐसा होता, तो समझते कि प्यार क्या होता है और मेरी बात पर

बाघराज हल्का हुंकार छोड़ बोला—व्यर्थ न बको! हम लोग धरती के प्राणी हैं, धरती छोड़ हमें आकाश से क्या करना है!

कोयल ने मुख फिरा लिया।

बाघराज ने पुकारा—कपू!

—जी !

—ज़रा रास्ता तो दिखा, नरमांस की गंध आ रही है। अब रहा नहीं जाता।

—तो चलिए ना।

और इस डाल से उस डाल, इस वृक्ष से उस वृक्ष पर कूदता कपू आगे बढ़ने लगा। नीचे बाघराज बिना आवाज़ के हल्के पैर रखता आगे बढ़ रहा था। फिर भी सूखे, बिखरे पत्ते चरमरा रहे थे।

चलते-चलते हठात् कपू बोला — महाराज, वह देखिए, अन्ना चला जा रहा है। इस टीले को पार कर सीधे चले जा जाइए।

किन्तु ठीक उसी समय बाघ की गंध पा सियार चिल्ला उठा। जंगल में इधर-उधर घबराकर भागते हुए जन्तुओं और पशुओं के पैरों की आवाज़ें सुनायी दीं।

बाघराज गरज उठा—साले सियार !

कपू बोला—अन्ना भाग रहा है, महाराज, वह आपकी गंध पा गया है।

बाघराज कूदकर टीले पर आ गया और फिर दौड़ने लगा।

कपू पेड़ों और डालों पर कूदता-फाँदता भागने लगा। किन्तु कहाँ था अब वह युवक? वह तो बहुत दूर भाग चुका था।

—कपू !

—छोकड़ा गाँव की सीमा में पहुँच गया है, महाराज। अब कोई उम्मीद नहीं।

बाघराज क्रुद्ध होकर हुंकारा। वृक्षों पर नीड़ को लौटने वाले पक्षी उसका हुंकार सुन आर्त्त स्वर में चीख उठे।

बाघराज ने कपू की ओर देखकर कहा—साले, तू ठीक तरह से रास्ता भी नहीं दिखा सका !

कपू एक डाल पर बैठकर बोला—वाह, इसमें मेरा क्या दोष ?

—सब दोष तेरा ही है। आ, नीचे तो आ, तुझे इसका मज़ा चखाऊँ !

कपू झट से और भी ऊँची डाल पर जा बैठा। बोला —जाने भी दीजिए, महाराज, आप मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेंगे।—और वह ही-ही कर हँसने लगा।

बाघराज और भी सघन जंगल की ओर जाता बोला—अच्छा-अच्छा, हँस ले, पर एक-न-एक दिन तो तेरी हड्डी मैं चबाऊँगा ही !

कपू बोला—वह तो जब मर जाऊँगा, तब करना, हुज़ूर, किन्तु अभी जा कहाँ रहे हैं?—और आगेवाले पेड़ पर जा कूदा।

बाघराज दाँत पीसकर बोला—रोज़ क्या होता है, बेटा; जानता नहीं? मेरे साथ चुपचाप चल और देख।

शालवन जहाँ निविड हो गया है, जहाँ संध्या का अन्धकार उसकी छाया से और भी घना हो उठा है, वहीं एक गुफ़ा में बाघराज घुसा। इधर-उधर ताककर बोला—सुन्दरी, मैं आ गया हूँ।

गुफ़ा के अन्धकार को चीरती एक गूँज आयी। पलक मारते ही बिजली की गति से एक बाघिन बाहर आ बाघराज के शरीर से सटकर खड़ी हो गयी और मृदु गर्जना के स्वर में अभ्यर्थना कर वह बाघराज का शरीर चाटने लगी। परम आनन्द से पुलकित होकर बाघराज ने सामने के दाहने पैर से उसे थपथपाकर पुरुष का प्रेम दर्शाया।

हम् करता गुफ़ा के भीतर से निकल एक लंगड़ा बूढ़ा बाघ भी वहाँ आ खड़ा हुआ। सुन्दरी का पिता था वह। किसी समय वह इसी तानखाला के जंगल का राजा था। एक समय मनुष्यों ने उसपर आक्रमण कर उसे लंगड़ा कर दिया था और तभी से उसे राज्यासन से च्युत होना पड़ा। बाघराज की ओर देख अपनी पुत्री की निर्लज्जता से उसके मन में घृणा भर गयी। वह हुंकारा—हम् !

प्रत्युत्तर में हुंकारकर शालवन के अन्धकार को कँपाता बाघराज बोला—क्यों बड़बड़ा रहे हो, ससुर? भीतर जाकर बैठो। तुम लोगों का युग जा चुका, अब अरण्य में लज्जा नाम की कोई चीज़ नहीं रही।

लंगड़ाते-लंगड़ाते बूढ़ा बाघ गुफ़ा के भीतर जाकर छुप गया।

वृक्ष की डाल पर झूलता-झूलता कपू ही-ही करके हँसने लगा।

बाघराज उसे धमकाकर बोला—चुप रह ! सब सभासदों

को तुरन्त बुला ला !

कपू डाल-डाल पर कूदकर पुकारने लगा — हाज़िर होत्रो ! सब हाज़िर होत्रो ! राजसभा शुरू हो रही है है... है !

बाघराज और सुन्दरी बाघिन पास-पास बैठे। एक दूध-राज नाग फन उठाकर कुछ दूर पर बैठ गये। एक अजगर शालवृक्ष की चोटी से नीचे उतर आया। कोयल आयी, मैना आयी, चमगादड़ आया। सब के बाद आया बाघराज का प्रिय मित्र बूढ़ा काका। आते ही बोला— का-का !

बाघराज बोला—आओ !

सभा शुरू हुई। मैना ने वंदना गायी—महाराज की जय हो ! सारे अरण्य का सौन्दर्य महाराज के शरीर के रंग-बिरंगे बालों में अंकित है। अरण्य की हिंसा है महाराज की अग्निमय आँखों में, कठोर स्नायु-प्रसार में तथा नखों की वक्र तीक्ष्णता में। और महाराज की सुन्दरी बाघिन की देह में वसंत का सौरभ है, निश्वास में उत्तप्त वन-पत्रों क वाष्प है, निर्लज्ज प्रेम है उनकी आँखों की पुतलियों में,। अरण्य की जटिल रूपमयी कुटिलता है उनकी स्नायुओं में।

एक मोर ने के-के की आवाज़ कर मानो बाघराज की जयध्वनि की, तो दूधराज नाग अपने फन को समेटकर बिल में घुस गये।

सभी ने एक स्वर से ध्वनि की—महाराज की जय हो !

—के-का-आ-आ !

—का-का !

—हि-हि-हि-हि !

—चिक-चिक-चिक !

—हि-स-स-स !

अन्धकार घना हो गया।

जुगनूँ अन्धकार में चमकने और बुझने लगे। कोयल ने पंचम स्वर में तान छेड़ी—कु-हू ! कु-हू !

बाघराज राजसी गौरव में कुछ क्षण आँखें मूँदे रहा। फिर पुकारा— काका !

काका ज़मीन पर उतरकर बोला— क्या ?

—कोई नयी ख़बर सुनाओ !

काका ने हँसकर कहा— आज सवेरे मैंने अन्ना लकड़-हारे को देखा है।

बाघराज जीभ से नाक पोंछकर बोला—आज तो मैंने उसका पीछा किया था, लेकिन चूक गया।

काका बोला—अच्छा लड़का है, खासा जवान है।

—तुमने उसे देखा है ?—बाघिन ने पूछा।

—हाँ, अन्ना लछिया को चूम रहा था और लछिया रो रही थी।

—क्यों-क्यों ?—बाघराज ने उत्सुक होकर पूछा।

कोयल ने कान खड़े कर लिये। पखेरू पंख सँभालकर ठीक तरह से बैठ गये। कपू ही-ही कर हँस उठा।

बाघराज ने धमकाया—अबे बंदर ! चुप रह !

काका बोला—तब तो शुरू ही से सुनाता हूँ।

बाघिन बोली—सुनाओ, सुनाओ !

काका ने सुनाना शुरू किया—तुम लोग तो जानते ही हो कि मुझे घूमना-फिरना बहुत अच्छा लगता है। तानखाला के इस निविड अरण्य के कोने-कोने में, अरण्य के बाहर गाँव-रास्ते में, आकाश में, गृहस्थों के घर-आंगन में, सारी पृथ्वी पर कहाँ क्या हो रहा है, यह-सब देखना मुझे बहुत भाता है। इस अरण्य में कितने प्राणी हैं, कौन क्या करता है, कहाँ रहता है, यह सब मैं अच्छी तरह जानता हूँ। इसी तरह तानखाला में रहनेवाले मनुष्यों की ख़बर भी मैं रखता हूँ। अन्ना को भी बहुत दिनों से जानता हूँ।

—अन्ना इस समय बाईस वर्ष का है। घर में उसकी माँ है और उसका चौदह वर्षीय छोटा भाई, विठ्ठल, है। बड़ी तंगी में उनके दिन कटते हैं। चिराओया के बाज़ार में लकड़ी काट-कर बेचते हैं। बरसात के दिनों में तंगी और भी बढ़ जाती है, क्योंकि उस समय जंगल गीला हो जाता है और दुर्गम भी। उस समय चिराओया के बाज़ार में बाज़ार के दिन कुलीगीरी के लिए जाकर बैठते हैं। और कोई काम नहीं मिलता, तो फिर बेचारे भीख माँगते हैं।

—अन्ना की वसन्त ऋतु बहुत मज़े में कटती है, क्योंकि इस समय वह लकड़ी के सिवा और भी एक चीज़ बेचता है, शहद। जंगल और जौनिया पहाड़ में वसन्त के दिनों में

पुष्पवनों से लाकर छत्तों में मधुमक्खियाँ जो शहद संचय करती हैं, वह तानखाला के अनेक चोरों को आमंत्रण देता है। अन्ना इन चोरों में सबसे उस्ताद है।

—पिछले साल की बात सुनाता हूँ, महाराज। चैत का महीना था। शहद के छत्ते रस के भार से झुके पड़ते थे। जंगली फूलों की सुगंध से मस्त हो अरण्य चैत की कड़ी दुपहरी में झपकियाँ ले रहा था। तपते पहाड़ पर झरने यहाँ-वहाँ कल-कल शब्द करते बह रहे थे। अरण्य की छाया में तितलियाँ आँख-मिचौनी खेल रही थीं। हरिन जल की खोज में अरण्य में आकर समभूमि की ओर अवाक् होकर देख रहे थे। उसी समय की बात है।

—जौनिया पहाड़ का उत्तरी भाग तुम लोगों ने देखा नहीं है। देखने पर ऐसा लगता है, मानो पहाड़ का मुँह बढ़कर उस ओर झुक गया है। उस मुख के नीचे भी छोटे-छोटे लता-गुल्म और पीपल के वृक्षों का जटिल प्रसार है। उसके नीचे तीन सघन शाल वृक्षों के बाद ही धरती शुरू हो जाती है। इसी जटिल प्रसार में दो बड़े-बड़े मधुमक्खियों के छत्ते थे। शहद चुरानेवाले कई दिनों से बराबर चक्कर लगा रहे थे, इसलिए अन्ना को अवसर नहीं मिल रहा था। एक दिन अकेले एक रस्सी, एक मशाल, एक छोटी बाल्टी और एक बरछा लिये वह घूम रहा था कि अचानक उन छत्तों को देख लिया, जिनपर किसी की अभी तक नज़र न पड़ी थी। और अत्यन्त दुस्साहस से वह पागल हो गया।

—पर्वत के उसी झुके हुए मुख के ऊपर एक खूँटी गाड़ उसमें रस्सी बाँध वह लटक गया। मधु के छत्ते में मशाल का धुआँ लगते ही मधुमक्खियों के आर्त्त गुंजन से आसपास का स्थान ध्वनित हो उठा। ऊँघती दुपहरी हिल उठी।

—मधु मीठा होने पर मधुमक्खियों का दंश भी अन्ना को मीठा लगता है। किन्तु एक बुरी घटना घट गयी। खूँटी का भीतरी हिस्सा कीड़ों ने खा लिया था। अचानक वह चरमरा उठी और रस्सी आधा हाथ नीचे आ गयी। तेजी से अन्ना एक पीपल के वृक्ष की डाल को पकड़कर लटक गया। नीचे खाई थी, वह गिरता तो चूर-चूर हो जाता। पसीना-पसीना हो गया वह। उसने चारों तरफ देखा। फिर चिल्लाया,

-है-है! बचाओ-ओ-ओ! मैंने भी यह-सब देखकर आवाज़ लगाना शुरू कर दिया, का-का-का!

—ताँतिया किसान की भांजी लछिया उस समय पहाड़ो के मुख के नीचे से जा रही थी। मधुमक्खियों को उड़ते देख चौंककर वह ठिठकी कि अन्ना का चीत्कार उसके कानों में पड़ा। बाद में उसे अन्ना भी दिखायी दिया।

—लछिया चिल्लाकर बोली, आती हूँ!

—लछिया दौड़कर ऊपर गयी। खूँटी तब भी टूटी न थी। आधी खूँटी तब भी ठीक थी। रस्सी की गाँठ उसने खूँटी के दूसरी ओर बाँध दी। अन्ना ने उसके कहने पर रस्सी थोड़ी ढीली कर दी। रस्सी ठीक तरह से बँध जाने पर अन्ना ऊपर आ गया। उस समय तक वह पसीने से नहा चुका था। लछिया भी भय के मारे पसीना-पसीना हो चुकी थी। ज़मीन पर बैठकर दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा।

—अन्ना बोला, तुम ताँतिया की भांजी हो?

—हाँ!

—दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। दोनों एक-दूसरे को चेहरे से जानते थे, किन्तु वह तो दूर का परिचय था। पास आकर हठात् आँखों से आँख मिलाकर परिचय करना दूसरी बात है, महाराज! जिस तरह तुमने अपनी बाघिन को पहचाना है न, उसी तरह।

—अन्ना ने देखा एक सत्रह वर्षीय काली और चिकने पत्थर की तरह चमकती युवती को। फटी साड़ी और चोली से अधढँके यौवन पर मानो जौनिया पहाड़ पर फैली वसंत की छाया उतर आयी हो। लछिया ने देखा अन्ना को, मानो तानखाला का एक शाल वृक्ष हो, मानो कठोर पत्थर से बना एक पुरुष हो और उसकी आँखों में जौनिया पहाड़ में फूलने-वाले कृष्णचूड़ा फूल की रक्तिम आभा हो। ...दोनों की यह अवस्था देखते-देखते नशे से मेरी आँखें बंद हो आयीं, महाराज।

—उसके बाद वे दोनों छोकड़ा-छोकड़ी एक-दूसरे से प्रायः ही मिलने लगे। जौनिया पहाड़ के झुके हुए विपदसंकुल मुख के निचले हिस्से में मधु खोजते-खोजते अन्ना ने अपना जीवन-मधु ही खोज लिया था और ताँतिया मामा के उत्पीड़न

से लछिया के अँधेरे जीवन में भी प्रकाश की किरणें दावानल की अग्नि की तरह फैलने लगीं। लकड़ी काटते समय अन्ना देखता, लछिया सूखी डाल और पत्तियाँ इकट्ठा कर रही है।

—चिराओया के बाज़ार में अन्ना और लछिया मिलते। लछिया की लकड़ी बेचकर अन्ना अपनी लकड़ी बेचता।

—बीच-बीच में लछिया जंगली फल खोजती। अन्ना देखता, तो ढेर-से तोड़ देता।

एक दिन अन्ना ने बाज़ार से रंगीन चूड़ियाँ ख़रीद लछिया को भेंट कीं।

—लछिया बोली, नहीं-नहीं।

—क्यों?

—क्यों दे रहे हो यह तुम?

—तुमने मेरी जान बचायी थी न, यही सोचकर तुम्हें कुछ देने की इच्छा होती है। यह लो!

—लछिया ने चूड़ियाँ ले लीं। किन्तु दो दिन बाद मुलाक़ात होने पर अन्ना ने देखा कि लछिया ने वे चूड़ियाँ पहनीं नहीं।

—पहनीं नहीं?

—मामा-मामी नाराज़ होंगे।

—अन्ना रूठ गया।

—लछिया बोली, नाराज़ न हो। पास ही है, देखो, पहने लेती हूँ। और कमर से चूड़ियाँ निकालकर उसने पहन लीं। फिर हँसकर बोली, बस, खुश हो?

—अन्ना लछिया के पास आ गया। लछिया ने उसकी ओर देखा, किन्तु हटी नहीं।

—लछिया!

—क्या?

—अन्ना और भी पास आ गया। लछिया हटी नहीं। अन्ना की आँखों में आँखें डालकर बोली, मामा से कहो।

—अन्ना बोला, कहूँगा।

—किन्तु ताँतिया बहुत लोभी था। अन्ना की प्रार्थना सुनकर बोला, दो कोड़ी रुपये लाओ! नहीं तो नहीं हो सकेगा।

—दो कोड़ी रुपया क्या ठट्ठा है! थूक निगलता हुआ अन्ना चला गया। आड़ में खड़ी लछिया रोने लगी। क्या कहूँ, महाराज, उसे रोते देख तो मेरी इच्छा हुई कि आप ही की तरह ताँतिया की गर्दन पर झपट पड़ूँ।

—दो कोड़ी रुपये इकट्ठा करने की चेष्टा में गर्मी बीत गयी। बरसात आयी। तानखाला के अरण्य में घनी हरियाली फैल गयी। जौनिया पहाड़ के शरीर पर हरीतिमा झलमलाने लगी। फिर आया शरद और हेमन्त।

—उस दिन देखा, अन्ना हाथ में कुल्हाड़ी लिये अपने में डूबा इधर-उधर घूम रहा है। अचानक एक पेड़ की छाया के नीचे उसने लछिया को बैठे देखा। जंगली फल इकट्ठा कर वह सुस्ता रही थी।

—अन्ना बोला, दो कोड़ी रुपये जुटाये बिना तुम्हें न पा सकूँगा, लछिया।

—लछिया चुप रही।

—अन्ना ने फिर कहा, शायद दो कोड़ी रुपये दे तुम्हें और कोई ले जाय।

—लछिया बोली, नहीं!

—किन्तु इस तरह कितने दिन?

—लछिया ने अन्ना की ओर देखा। अन्ना चुप हो गया।...फिर महाराज, उसी वृक्ष की श्याम छाया के नीचे चीते के समान वे एक-दूसरे के ऊपर कूद पड़े। उसी छायामय निर्जन, केवल पक्षियों से मुखरित दुपहरी में दो कोड़ी रुपयों की शर्त को चुनौती-सी देकर दोनों एक-दूसरे की बाहुओं में आबद्ध हो गये।

—उस दिन से वे उसी तरह बीच-बीच में मिलते रहते। मैं देखता और उड़ जाता, अपनी कर्कश आवाज़ से उन्हें विरक्त करने की इच्छा नहीं होती थी।

—जाड़े के बाद अचानक एक दिन मैंने उन्हें चिन्तित देखा। समझ नहीं पाया कि वे क्यों चिन्तित हैं।...थोड़ी देर बाद देखा, अन्ना लछिया को काम पर जाने की बात कह ताँतिया के घर गया और पुनः लछिया से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। ताँतिया अपनी शर्त पर अड़ा था, दो कोड़ी रुपये लाओ!

—उस दिन से अन्ना और अधिक दौड़-धूप करने लगा। अधिक लकड़ीकाटने लगा।...इस बार उसी ने सबसे ज़्यादा मधु जुटाया है। मैं जानता हूँ, वह यह-सब दो कोड़ी रुपये इकट्ठा करने के लिए ही कर रहा है।

—आज समझाकि मैंने ठीक ही सोचा था। आज जब जौनिया पहाड़ के छोटे झरने के पास उन्हें देखा, तो उनकी बातचीत भी सुनी। लछिया रोकर बोली, अब तो पकड़ी ही जाऊँगी।...इसे तो छिपाने का कोई उपाय ही नहीं है।

—अन्ना ने उसे आदर से चूमा। बोला, तू चिन्ता मत कर। एक कोड़ी और सात रुपये जमा कर लिये हैं। बाकी इसी माह तक हो जायेंगे।

—लछिया आँख पोंछकर बोली, किन्तु न होने पर तो मामा मेरी जान ले लेगा।

—अन्ना बोला, कौन मारेगा तुझे, लछिया? तू मेरी बहू है! मैं तो अभी मर नहीं गया!

—लेकिन इज़्ज़त?

—हाँ, इज़्ज़त के लिए ही तो सोते-जागते रुपये जुटाने की कोशिश करता रहता हूँ। मैं कर लूँगा, लछिया।

—बस, इतनी ही बात सुनी है, महाराज। उसके बाद लछिया घर लौट गयी, अन्ना जंगल की ओर चला गया।

—का-का!—काका बोला।

—ही-ही-ही, हा-हा-हा!—कपू हँस उठा। बोला—काका, खूब हमदर्दी के साथ सुनायी यह कहानी तुमने। अरे भाई, इन आदमियों के लिए हम लोग इतनी चिन्ता कर बैठें, तो हो चुका।

बाघराज पूँछ हिलाकर बोला—ठीक कहते हो, हम लोगों के इस अरण्य में भावावेश की कोई जगह नहीं। अन्ना हम लोगों का शत्रु है!

हठात् बहुत दूर पर सियारों की प्रहर-घोषणा सुनायी दी।

बाघराजने खड़े होकर घोषणा की—रात हो चुकी है, अब तुम लोग अपने-अपने शिकार की खोज में जाओ।

कपू बोला—जाओ तुम लोग, महाराज, मरो औरमारो, अपने राम तो निरामिष ही खायेंगे।

कोयल, मैना और शालिक भी उड़ गयीं।

काका बोला—का-का, तुम्हारी मृगया सफल हो, महाराज!

बाघराज बाघिन से बोला—चलो, आज हिरन का शिकार कर आयें। और फिर उसके बाद खून से सना मांस खाकर उत्सव मनायेंगे।

बाघिन बोली—चलो, महाराज।

रात घनी होने लगी। पत्तों से ढँके अरण्य के झुरमुटों में अन्धकार निविड हो गया। मध्य रात्रि में जौनिया पहाड़ के उस ओर से एक टुकड़ा चाँद ऊपर उठ आया। शाल के पत्तों की जाली से छनता चाँद का आलोक, सूखे पत्तों से ढँकी धरती पर फैल गया। अभ्रक के टुकड़े के समान वह चाँद का प्रकाश जरा भी अन्धार को दूर न कर सका, फिर भी उसने एक विचित्र महिमा प्रदान की। शाल-पत्तों के नीचे जुगनूँ मुहूर्त्त गिनने लगे। अचानक पूर्व से बहने-वाली वायु से शालवन में मर्मरध्वनि गूँज उठी, सूखे पत्ते खड़क-खड़ककर गिरने लगे, मानो एक विचित्र और रहस्य-मय संगीत की ध्वनि जगी हो। रक्त-पिपासु जंगली जानवरों की आँखें यहाँ-वहाँ प्रदीप्त अंगारों के समान जलने लगीं। भूखे बाघ और हाइना के भीषण चीत्कार के साथ सियार चिल्लाने लगे, फेउ-फेउ! कीड़ों की गुंजार से मुखर तान-खाला के अरण्य से हड्डियों की कड़मड़ सुनायी पड़ने लगी।

दूसरे दिन दोपहर। बाघराज लेटे-लेटे झपकियाँ ले रहा था।

वसंत-वायु के झकोरों में शालवन गीत गा रहा था। कोयल, श्यामा सीटी बजा रही थीं। कबूतर के उदास स्वरों के ऊपर कोयल की ऊँची तान सुनायी दे रही थी। अपने राज्य के सौन्दर्य से अभिभूत हो बाघराज सोचने लगा कि वह नरमांस का स्वाद प्रायः भूल-सा रहा है। उसकी बाघिन मक्खियों से तंग हो, पास आ उसके शरीर से सटकर खड़ी हो गयी।

ठीक उसी समय काका आकर बोला—का-का, महाराज!

—क्या ख़बर है?

काका बोला—बहुत भयानक ख़बर है। मनुष्य शिकारियों का एक दल आ रहा है!

बाघराज विद्युत की गति से उठकर बैठ गया—कहाँ! कौन हैं वे?

—जंगल-विभाग के बंगले में ठहरे हैं। इसी इलाके के ज़मींदार, इस जंगल के मालिक विनायक नन्द्रेकर...

बाघराज गरजकर बोला—ख़बरदार, काका! इस जंगल का मालिक मैं हूँ!

काका बोला—वह तो हम लोग जानते हैं। किन्तु मनुष्य लोग तो नन्द्रेकर को ही मालिक कहते हैं।

—अच्छा, देख लूँगा। आगे?

ज़मींदार के साथ बहुत-से आदमी हैं। बहुत-सी बंदूकें हैं। चार मोटर गाड़ियों में आये हैं वह-सब लोग।

बाघराज बोला—जंगल में यह समाचार फैला दो। कपू के साथ तुम उन लोगों पर नज़र रखो। तब तक मैं जंगल देखता हूँ।

—का-का!

काका उड़ गया। अरण्य के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक उसने यह संकट-समाचार फैला दिया—का-का! अरण्य खतरे में है!

कपू एक इमली के झाड़ पर बैठ गया। इमली खाता जाता था और थूकता जाता था। का-का को देख हँसकर बोला—ज़रा अँचार खा रहा हूँ, तुम भी खाओगे, काका!

काका बोला—अरे बाबा, अँचार-वचार अभी रख सीके में, यहाँ तो मुसीबत आ रही है।

सुनकर डाल-डाल पर कूदता-झूलता कपू काका के साथ चलने लगा। मध्याह्न की उनींदी दुपहरी और भी औंघाने लगी। अरण्य के जंगली जानवर अपनी-अपनी गुफ़ाओं और विवरों में घुस अपने दाँत और नखों को तेज़ करने लगे। वसंत की वायु में जो शालवन गीत गा रहा था, किसी आसन्न क्रूर घटना की सम्भावना से आतंकित हो तेज़ साँसें छोड़ने लगा।

काका और कपू ज़मींदार के बंगले के किनारे खड़े बड़े आम के वृक्ष पर जा हाज़िर हुए।

बंगले के बागीचे में एक स्त्री और पुरुष बैठे हैं। बड़ी मेज पर चाय और केक सजाये रखे हैं। और एक मेज़ पर चमचमाती बंदूकें और गोलियों की पेटियाँ रखी हुई हैं। बैरा और नौकर पास ही खड़े हैं।

काका कपू की ओर देखकर दबी आवाज़ में बोला—बंदूक़!

कपू ने आँखें मिचकाकर शरीर खुजलाया।

कुछ देर बाद वे जान गये कि वे कौन-कौन हैं। ज़मींदार विनायक नन्द्रेकर की उम्र क़रीब तीस के होगी। सुन्दर और बुद्धिमान पुरुष हैं। लोगों की बात-चीत से पता चला कि नन्द्रेकर बहुत ही नामी और अचूक शिकारी हैं। लगभग चालीस के होंगे मिस्टर पटकर, एक बड़े भारी व्यवसायी। उनकी पत्नी नन्दिनी की उम्र लगभग पचीस वर्षके होगी, अपरूप सुन्दरी है वह। एक साहब और उनकी मेम भी दल में शामिल हैं। वे किसी विदेशी संस्था की ओर से इस देश में आये हैं। मिस्टर और मिसेज़ राबर्ट्स। छठवें व्यक्ति हैं। मिस्टर खन्ना, एक सकारी अफ़सर राबर्ट्स और खन्ना भी अच्छे शिकारी हैं।

कपू फुसफुसाकर बोला—यह मोटे की औरत तो बहुत अच्छी दिखती है, नहीं, काका?

काका ने आँखों से घूरकर कहा—आदमियों की तरफ़ क्यों देखता है, रे?

कपू ही-ही कर हँस उठा

नन्दिनी बोली—लुक, ए मंकी!

कपू ने पूछा—मुझे क्यों दिखला रही है, काका? गाली तो नहीं दे रही है?

काका बोला—तुझे मंकी कह रही है याने बन्दर।

अचानक राबर्ट्स ने एक बन्दूक़ उठा उसकी ओर गोली चलायी।

एक क्षण में ही यह घटना घट गयी। मुहूर्त्त-भर में ही भरी बन्दूक़ देख काका उड़ गया। कपू भी दूसरी डालपर कूद गया। आम के वृक्ष की पत्तियाँ चिर गयीं। आस-पास के सब पक्षियों के झुंड चीखने लगे। आकाश की चीलें और भी ऊँचे उड़ने लगीं। शिकारियों कादल हा-हा कर हँस उठा।

पत्तों से ढँकी एक डाल पर कूद कपू चिड़चिड़ाया। बोला—मैं तो ज़रा जंगल में जाकर छिपता हूँ, काका। साले बड़े हत्यारे हैं!

कहानी

—का-का !

कपू गायब हो गया ।

हठात् काका ने देखा कि तानखाला गाँव के आदमियों का एक दल घेरे के बाहर आ खड़ा हुआ और ज़र्मींदार साहब को सलाम ठोंका । उनमें अन्ना भी था । सब मिलकर लगभग सात--आठ जने होंगे । वे गाँव के सबसे साहसी आदमी थे ।

नन्द्रेंकर ने उन लोगों से बातचीत की । काका ध्यान से सुनने के बाद यह समझ पाया कि ज़र्मींदार उन्हें अगले दिन रात को बीटिंग के लिए बीस आदमी ठीक करने के लिए कह रहे हैं ।

दस-दस आदमियों का एक-एक दल होगा । दल केनायक और जो मचान के ऊपर बैठे शिकारियों की सहायता के लिए रहेंगे, उन्हें बीस-बीस रुपये मिलेंगे ।

अन्ना मचान में रहेगा, यह निश्चित हुआ ।

काका ने देखा,अन्ना का चेहरा चमकने लगा । ओंठों के कोनों में एक मृदुल हँसी खेलने लगी और आँखों में घना हो आया एक स्वप्न ।

बातचीत समाप्त होने पर वे लोग चले गये । काका स्वयं को सँभाल न सका । वह अन्ना के पीछे हो लिया ।

अन्ना दल से दूर जा गाँव के बड़े कुएँ के किनारे जा खड़ा हुआ । कुछ देर के बाद लछिया भी वहाँ आयी । अन्ना को उसने देख लिया था । जल्दी-जल्दी अन्ना पास आ हँसकर बोला—अब कोई डर नहीं है, लछिया, रामजी ने अब हमारी ओर नजर की है ।

—क्या हुआ ?

—ज़मींदार अपने साथियों के साथ शिकार करने आया है । मैं उसके साथ रहूँगा । एक कोड़ी मज़दूरी मिलेगी ।

—सचमुच ?—लछिया को मानो विश्वास ही न हो रहा था ।

—हाँ, री !

—मेरी कसम ?

—हाँ, रे पगली !

—हे राम !—लछिया की आँखों में जल भर आया ।

—जाऊँ अब ?

—जा, लेकिन कल कब मुलाक़ात होगी ?

—कल सारा दिन तो उनकी मचान बाँधने में लगा रहूँगा । उसके बाद शाम को वहाँ जाकर बैठना होगा मचान पर ।

अच्छा, ठीक है । एक बार आना उस जले ताड़ के पेड़ के पास, शाम के बाद, जब सूरज जौनिया पहाड़ के ठीक उस तरफ़ उतर जाय ।

—अच्छा ।

उन लोगों के हँसते चेहरे देखकाका को जैसे बहुत अच्छा लगा । अरण्य के हिंसापूर्ण वातावरण में रहता है, बाघराज का दोस्त है, फिर भी उसे कैसा आनन्द होता है ! कोयल की बात ही ठीक है !

काका बूढ़ा हो चुका है । ऊँचे आकाश में उड़ सके, इतना दम भी नहीं रहा । तब भी आकाश का थोड़ा-थोड़ा स्वाद वह जानता है । कभी-कभी उसकी कर्कश ध्वनि के बीच भी एक मधुर तान गूँज उठती है ।

धीरे-धीरे संध्या हो गयी । रात आयी । शालवन के ऊपर तारे चमकने लगे । चमगादड़ उड़गये । दिन में उड़ने-वाले पक्षी अपने-अपने अरण्य-आवासों को लौट आये ।

काका वापस आ बाघराज की सभा में हाज़िर हुआ ।

—का-का !

—क्या ख़बर है ? क्या ख़बर है ?

बाघराज और सभी मित्र-मण्डली ने उसकी ओर देखा । अन्धकार में सभी की आँखें चमकने लगीं ।

काका ने सब बातें कह सुनायीं ।

—किच्-किच्-किच् !— कपू डाल-पत्तों पर झूलता हाज़िर हुआ ।

—ही-ही,ही-ही-ही !

—क्या हुआ, कपू ?—बाघराज ने प्रश्न किया ।

कपू बोला—सालों को अच्छा पाठ सिखा आया हूँ !

—मतलब ?

—उस समय गोली चलायी थी ना, इसी लिए भाग आया था । अँधेरा होने पर जाकर देखा, औरत-आदमी सब मज़े में शराब पी रहे हैं और कौन--सा तो जन्तर गीत गा रहे हैं, हो-हुलोड़-ही-ही-ही !

—उसके बाद ?

—और एक मज़ेदार बात देखी, ज़मींदार की नज़र है पटकर की औरत पर।

—का-का ! और औरत ?

—पाजी ! बदज़ात ! उसने एक बार ज़मींदार की तरफ़ इस तरह कनखियों से देखा कि बस ! इसी को कहते हैं सभ्यता ! मालूम पड़ता है, मौक़ा नहीं मिलता, इसी लिए यह तिकड़म रचा जा रहा है।

—लेकिन तूने क्या किया ?

—और क्या करता ? जब ख़ूब हो-हल्ला होने लगा, तब मारा दो ढेले फेंककर।

—लगा किसी को ?

—वह-सब क्या देखने के लिए रुका रहा ? ढेला फेंकते ही भाग खड़ा हुआ कहीं गोली चला देता तो ?—हँसते-हँसते कपू रुक गया। सभी उत्तेजित और चिन्तित हो गये। अधिक हँसने पर गालियाँ न सुनने को मिलें।

बाघराज बोला—कल शिकार है। होशियार ! तुम-सब लोग तैयार रहो। अपने जंगल की मान-रक्षा हमें करनी ही होगी।

शीघ्र ही सभा भंग हो गयी। उस दिन फिर नहीं जमी। जुगनूँ भी उस रात डर-डरकर चमकते रहे। झींगुर गड्ढों में जाने लगे। केवल अरण्य के सैनिक भयावह आवाज़ में गरजते रहे और एक-दूसरे को होशियार करते, शिकारियों को धमकी देते रहे। उस रात शालवन के ऊपर उठ आया एक टुकड़ा चाँद भी, मानो भय से सफेद फक पड़ गया था। अरण्य के पत्रावरण को चीरकर अभ्रक के टुकड़े के समान, टूटे हुए पत्तों पर वह आलोक नहीं बिखेर सका।

दूसरे दिन दुपहर को कपू और काका घूम-घूमकर देखने लगे कि कहाँ-कहाँ मचानें बाँधी जा रही हैं। अरण्य के दक्षिण की ओर सघनतम कोने में दो सौ गज़ के फ़ासले पर अर्द्धवृत्ताकार रूप में वृक्षों की डाल पर तीन मचानें बाँधी गयीं। पहली में रहेंगे स्वयं ज़मींदार नन्द्रेकर, साथ में रहेगी नन्दिनी और सहायक के रूप में रहेगा अन्ना। दूसरी में रहेंगे खन्ना, पटकर और एक ग्रामीण। तीसरी में राबर्ट्स दम्पत्ति और एक ग्रामीण। पटकर शिकारी नहीं है और न नन्दिनी ही बन्दूक चलाना जानती है। अतः मजबूर होकर उन्हें एक-एक अच्छे शिकारी के साथ होना पड़ा। शिकारी न होने पर भी शिकार देखने में एक ख़ास मज़ा होता है। तालखाना में आकर पटकर यह जान पाया है। फिर भी आत्मरक्षा के लिए प्रत्येक के हाथ में एक बन्दूक देनी ही होगी।

समाचार एकत्र कर कपू बाघराज को सुनाने चला गया। काका एक डाल पर बैठ सब हाल-चाल देखने लगा। अन्ना वहाँ निरीक्षण कर रहा था।

संध्या हुई, तो अन्ना बंगले में चला गया।

जौनिया पहाड़ के उस ओर सूरज उतर चुका था। काका को याद आया, लछिया, उस जले ताड़ के पेड़ के पास आयगी। किन्तु कहाँ ? अन्ना तो यहाँ एक-के-बाद-एक काम करता ही जा रहा है।

काका की हठात् इच्छा हुई, एक बार जा लछिया को देखे, वह वहाँ अकेली क्या कर रही है।

—का-का !—आवाज़ कर वह वहाँ से उड़ गया।

जले ताड़ के पेड़ पर पहुँच काका ने नीचे की ओर देखा। पेड़ की पींड़ से टिकी लछिया बैठी हुई है। कुछ सोच-सी रही है। क्या ? उसके भीतर उसके प्यार का पौधा, जो इस अजीब हिंस्र पृथ्वी की सैर करने के लिए बाहर आने को बार-बार सिर उठाता है, लछिया उसी का हृदस्पन्दन तो नहीं सुन रही है !

कोयल आकर वृक्ष की डाल पर बैठकर बोली—कु-हू, कु-हू !

लछिया चौंक-सी गयी। फिर हँसकर बोली—कु-हू, कु-हू !

कई क्षण बीत गये। दिन का आलोक म्लान हो गया। लछिया दो कदम आगे बढ़कर फिर रुक गयी। न जाने क्या सोचकर बैठ गयी। फिर सिर हिला, उठकर धीरे-धीरे चली गयी।

कोयल काका की ओर देखकर बोली—बड़ी अच्छी लड़की है, मानो तालखाना गाँव की साक्षात लक्ष्मी हो।

काका ने सिर हिलाया, पर कुछ बोला नहीं। शायद उसकी कर्कश आवाज़ से उस लड़की की प्रशंसा भी बुरी लगे।

अब उड़े, अब उड़े, यही काका सोच रहा था कि उसने देखा, अन्ना दौड़ा चला आ रहा है।

—लछिया ! लछिया !—पेड़ के नीचे आकर उसने कई बार आवाज़ दी, फिर ओंठों-ही-ओंठों में बोला चली गयी शायद ।

काका बोला—का-का ।

अन्ना समझ नहीं सका । बड़बड़ाता हुआ बोला—जाने भी दो, मिलकर भी क्या होगा ? पैसा, रोज़गार मिलने पर तो बात करने को तमाम समय पड़ा है ।

जिस तरह आया था, उसी तरह दौड़ता-दौड़ता अन्ना चला गया ।

गोधूलि के विचित्र आलोक में उस जले वृक्ष के ऊपर अन्धकार फैलने के पहले तक किसी अनजान नशे से आत्म-विस्मृत हो काका बैठा रहा ।

फिर रात आयी । शिकार की रात ।

बाघराज ने हुक्म दिया—सब अपने-अपने ठीये पर जा बैठो ! हिलना-डुलना और आवाज़ बिल्कुल बन्द ।

उस दिन मौसम में बहुत उमस रही । संध्या के बाद से शालवन का एक पत्ता भी न हिला । तानखाला के अरण्य पर निस्तब्धता छायी रही ।

काका को मचानों पर घूमकर देखने का आदेश दिया गया । कपू बाघराज का प्रहरी नियुक्त हुआ ।

अन्ना जिस वृक्ष पर ज़मींदार के साथ था, वहीं काका जाकर हाज़िर हुआ । वृक्ष की डाल पर चुप बैठ गया । उसने सुना, नन्द्रेकर अँग्रेजी में नन्दिनी से बोल रहा है—तुम्हारे लिए ही सब इतना कांड रचा गया है ।

—मतलब ?—नन्दिनी हँसकर बोली ।

—वह तो तुम स्वयं समझ लो ।

—मैं तो बहुत बुद्धू हूँ ।

—तुम्हें बुद्धू समझूँ, इतना बुद्धू मैं नहीं हूँ, नन्दिनी ! सच कहता हूँ, तुम्हारी आँखों में मैंने जो निमन्त्रण पढ़ा था, उसी को लेकर इस शिकार-समारोह का आयोजन किया है ।

मतलब यह है कि वास्तव में आप मेरा शिकार करना चाहते हैं !—नन्दिनी निर्लज्ज हँसी ।

—यदि ऐसा ही हो, तो ?

—पहले बाघ का शिकार कीजिए, फिर सोच देखूँगी ।

काका हिल-डुलाकर बैठ गया । कई तरह के शिकार चलते हैं अरण्य में । ठीक है, ठीक है ।

समय बीत रहा है । रात बढ़ रही है ।

नन्दिनी बोली—बीटिंग कब शुरू होगी ?

रेडियम लगी हुई घड़ी देखकर नन्द्रेकर बोला—अभी और एक घन्टा बाक़ी है ।

इस देहाती के रहते बात करना अच्छा नहीं लगता ।

—किन्तु जंगल में सभी चीजें चांस पर नहीं छोड़ी जा सकतीं, नन्दिनी । यदि यहाँ हमेशा सतर्क न रहा जाय, तो मुसीबत ही हो जाय ।

—हूँ, बड़ी प्यास लगी है ।

—पानी पियोगी ?

—ना !

—थोड़ी व्हिस्की ?

—ना !

—पी लो ना !

—लेकिन मुझे बहुत भय लग रहा है ।

—और थोड़ा सरक आओ ।

अन्ना को शराब की गंध आयी । मीठी झार थी । ज़मींदार और इस औरत के वह भाव वह अच्छी तरह समझता था । किन्तु इससे उसका क्या जाता है । इस अरण्य के अंचल में भी तो उसने अनेक कुत्तों, बकरों और अन्य जानवरों को यह-सब करते देखा है । उन्हीं जन्तु-जानवरों में से दो जन सभ्य मनुष्यों की पोशाक पहन आज इस मचान पर भी आ बैठे हैं ।

—पटकर के कारण तो तुम्हारे साथ दो बात भी नहीं कर पाता ।

—इसी लिए तो यह शिकार...

—तुम काँप क्यों रही हो ?

—भय लग रहा है ।

—भय ?

—हाँ, भय-सा ही एक भाव ।

—क्यों ?

—नहीं जानती, क्यों ।

। सियार चिल्लाया ।

सूखे पत्ते पर किलबिल करता न जाने क्या चला गया साँप !

दूर कहीं से हरिन की आवाज़ आयी। शायद यह बनमुर्गी कहीं चिल्ला रही है। झींगुर की गुंजार के साथ ह्विस्की से उत्तेजित स्नायु-मंडल में एक लहर दौड़ गयी। जुगनूँ चमक रहे थे। हैट से ढाँककर नन्द्रेकर ने एक सिगरेट जलायी। नशा गाढ़ा हो रहा था।

हठात् दूर पर बीटिंग शुरू हो गयी। दस-दस जनों के तीन दल अरण्य के भीतर से अर्द्धवृत्ताकार रूप में उनकी तरफ़ आयेंगे। हरेक दल के पास बरछे के अलावा एक-एक बंदूक़ भी होगी।

कोई ढोल पीट रहा है, कोई टीन और कोई फटा बाँस। सभी ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहे हैं।

होई-होई! होई-होई! हा-रे-रे-रे!

आवाज़ सुन काका काँप उठा।

—बीटिंग हो रही है, —नन्द्रेकर बोला।

—कितनी देर में आयगा बाघ?

—अभी तो देर है।

—मुझे तो भय लग रहा है।

—पास सरक आओ, कोई डर नहीं है, नन्दिनी। मैं कितने ही बाघ मार चुका हूँ।

किच-किच-किच! किच-किच! कपू बाघराज के ऊपर की डाल पर जा बैठा। बोला—बाघराज, सुनते हो?

बाघिन को समीप कर, गर्दन घुमाकर बाघराज गंभीर स्वर में बोला—सुन चुका हूँ।

—बरछे, बंदूक़ के साथ-साथ मशाल जलाकर टीन और ढोल पीटते आ रहे हैं वे लोग।

—आने दो।

—किन्तु आवाज़ तो और बढ़ती आ रही है, महाराज।

बाघराज चंचल हो उठा। हाँ, आवाज़ तो बढ़ती ही आ रही है।

तानखाला का ज़मींदार अरण्य का स्वामी होने के लिए आ रहा है।

टन-टन-टन क्रांग!...

डुग-डुग-डुग!...

फट-फट-फट!...

हाई-होई, हाई-होई!...

हरिनों का झुंड भागा जा रहा है। पक्षी चीख़ रहे हैं। सियार दौड़े जा रहे हैं, हाइना भाग रही हैं, जंगली सूअर दिशा भूलकर, जहाँ पाते हैं, वहीं भागे जा रहे हैं।

हठात् दूर पर दौड़ता आलोक दिखायी दिया। मशाल! बीटर आ रहे हैं!

कपू बोला—भागिए, महाराज!

बाघराज की आँखें चमक उठीं—भागूँगा मैं!

—मूर्खता मत करो, महाराज। मौक़ा आने पर उनकी गर्दन पर टूट पड़ने के लिए ही तुम्हें भागना होगा।

हाई-होई-हाई, हाई-होई-हाई!...

बाघराज दूर पर जलते हुए प्रकाश को देखकर बाघिन से बोला—चलो, सुन्दरी, चलें। कपू की बात ही ठीक है। कपू, तुम आगे-आगे चलो।

कपू ने हाथ जोड़कर कहा—नहीं, महाराज, इस बार तो, एकला चलो रे! मुझे तो बंदूक देखते ही भय लगता है।

कपू की बात सुन, दाँत पीस, ख़ून का घूट पी, वे लोग भागने लगे। ज़्यादा समय नहीं था।

टन-टन-क्रांग! टन-टन-क्रांग! टन-टन-टन-क्रांग!...

डुग-डुग-डुग! डुग-डुग-डुग!...

शोर बढ़ता आ रहा है, शालवनों से टक्कर खाता-खाता, किन्तु एक विचित्र आदिम छंद में बँधकर।

काका के ख़ून में लहर-सी दौड़ गयी। कान खड़ा कर वह ज़मींदार और औरत की बातचीत सुनने लगा।

—यह आदमी तो पीछे ही खड़ा है, विनायक!

—क्या करूँ?

—इसे भगाओ।

—लेकिन...

—कम-से-कम कुछ देर के लिए। बोलो, राबर्ट्स के फ़्लास्क से चाय ले आये।

—लेकिन चाय तो है।

—तुम तो बुद्धू हो! फेंक दो ना वह चाय!

नन्द्रेकर हँसा—तुम तो वाक़ई रत्न हो!—फिर अपने फ़्लास्क की चाय फेंककर अन्ना को पुकारा—अरे, क्या नाम है रे तेरा? हाँ, अन्ना!

—जी ?

—यह फ़्लास्कलेकर साहब के पास जा, एक फ़्लास्क चाय ले आ।

—जी, अभी ? जंगल पीटनेवाले तो सब नज़दीक आ गये हैं।

—वे तो अभी भी काफ़ी दूर हैं। जा और चला आ जल्दी !

—जी !—इस तरह की नासमझी की बात सुन अन्ना को आश्चर्य हुआ।

—जा ना, सूअर का बच्चा !—नन्द्रेकर दाँत पीसकर बोला। ऐसा लगा कि वह तुरन्त न गया, तो ज़मींदार उसे गोली मार देगा।

—जी, जाता हूँ।

दाहिने हाथ में एक बरछा और बायें हाथ में एक टार्च ले अन्ना मचान से उतर पड़ा।

अन्ना के उतरते ही नन्द्रेकर ने नन्दिनी को अपनी ओर ज़ोर से खींचा और सीने से लगाकर हँसता हुआ बोला—बाघ आया है, नन्दिनी !

बूढ़ा काका क्रुद्ध होकर बोला—का-का, साला !—और और पंख खोलकर वह अन्ना के पीछे उड़ चला।

टन-टन-क्रांक ! टन-टन-क्रांक !...

हाई-होई, हाई-होई-ई-ई-ई !...

मशाल का प्रकाश दूर से दिखायी देने लगा।

अरण्य में कोलाहाल मचा है। जानवर भाग रहे हैं। खचमच आवाज़ें आ रही हैं। मोर और सियार चिल्ला रहे हैं।

इस बारबाघ की आवाज़ सुनायी दी, क्रुद्ध और भयानक।

चलते-चलते अन्ना चौंककर खड़ा हो गया। हवा में बाघ की गंध थी, तेज़ी से दौड़ा वह।

काका बोला—का-का !

किन्तु अन्ना समझ नहीं सका। वह भागता गया,भागता गया। हठात् दाहिनी तरफ़ से अन्धकार को चीरता, मूर्तिमान हिंसा के समान बाघ उसकी गर्दन पर कूद पड़ा। टार्च हाथ से छूट गयी और बरछा नीचे गिर गया। एक तीक्ष्ण, विपन्न आर्त्तनाद सुनायी दिया और उसके बाद बाघराज की वन को कँपाती गर्जना सुन शाल वृक्ष भी सिहर उठे।

—का-का ! महाराज, अन्ना को छोड़ दीजिए ! छोड़ दीजिए !

किन्तु बाघराज उस समय कुछ नहीं सुन सका। वह पंजे की चोटों से अन्ना को बेहोश कर खींचता-खींचता मचानों के बीच से भाग खड़ा हुआ।

बाघिन थोड़ी दूर पर ही खड़ी थी। बाघराज के साथ होने के लिए वह भी दौड़ पड़ी। उसके पीछे और एक बाघ था। राबर्ट्स ने उसी समय रायफल से गोली चलायी। नन्द्रेकर ने भी उसी समय फ़ायर किया। दूसरा बाघ मारा गया। अरण्य काँप गया।

किन्तु अरण्य में पश्चाताप नहीं किया जाता। इसी लिए बाघराज ने पीछे फिरकर नहीं देखा। वह और बाघिन अन्ना को लेकर बढ़ते गये। तीन तरफ़ से बीटर चले आ रहे थे, इसी लिए एक बार वे चौंककर खड़े हो गये और फिर दोनों दलों के बीच जंगली घास से ढँके एक खड्ड में अन्ना को खींचते उतर गये।

बूढ़ा काका लौट गया। इस समय वे लोग मरे बाघ के पास आग जला रहे थे। बीटर भी आ गये थे। राबर्ट्स की ही गोली से बाघ मरा था। बूढ़ा काका दुख की हँसी हँसा। नन्द्रेकर नामी शिकारी हैं। यद्यपि उन्होंने बाघ नहीं मारा, तब भी किसी और चीज़ का शिकार बहुत अच्छी तरह किया है। निशाना उनका अचूक है।

नन्द्रेकर बोला—हमारी मचान के आदमी को खींचकर बाघ ले गया।

पटकर बोला—एक बार खोज न की जाय, विनायक।

नन्द्रेकर बोला—लोग भले ही खोजें, लेकिन सब बेकार है।—एक बीटर की ओर देखकर उसने पूछा—उसके कौन-कौन हैं, रे ?

—जी, उसकी बूढ़ी माँ और उसका एक छोटा भाई है।

—औरत-वौरत नहीं है ?

—जी, नहीं।

काका चिल्लाया—का-का ! ना !

नन्द्रेकर बोला—उस बूढ़ी को ५० रुपये दिये जायेंगे।

इसमें हम लोगों का क्या दोष ? यह तो एक ऐक्सीडेंट है। वी कान्ट हेल्प।

नन्दिनी मधुर हँसकर बोली—राइट, मिस्टर नन्द्रेकर। किन्तु पचास नहीं, सौ से कम देना आपको ठीक नहीं जँचता।

—ठीक है। ऐसा ही होगा, मिसेज़ पटकर। आपका हुक्म सर-आँखों पर!

नन्दिनी अर्थपूर्ण दृष्टि से हँसी। काका ने वह देखा और समझा।

मध्यरात्रि।

बाघराज मांस खाता-खाता बाघिन से बोला—इसका ख़ून तो बहुत मीठा है।

—क्यों है भला इतना मीठा ?

—उसने प्रेम किया था न, इसी लिए। फूल खिलने पर जिस तरह सुगन्धित हो जाता है, फल पकने पर जिस तरह मीठा हो जाता है, मनुष्य भी प्रेम करने पर उसी तरह मीठा और सुरभित हो जाता है। खा-खा!

—का-का!—बूढ़ा काका आ पास ही बैठ गया और सब बात कह सुनायी।

बाघराज बोला—सौ रुपये से ज़्यादा वे देंगे क्यों? इस अरण्य में तो मनुष्य की अलग कीमत नहीं होती।

—किन्तु, बाघराज, क्यों मारा अन्ना को तुमने ? बेचारी लछिया का क्या होगा ? उसके पेट में तो···

ख़ून से भरे मुख से बाघराज हँसा। बोला—अरण्य में कोई किसी की चिन्ता नहीं करता। मौक़ा पाने पर मैं एक दिन उन-सब को ही खा डालूँगा। सुनो, काका, अरण्य का कानून सीधा और साफ़ है, मरो या मारो!

इसी समय आकाश में एक टुकड़ा चाँद उठ आया। शालवन के शिशिर-सिक्त बिखरे पत्तों पर अभ्रक के टुकड़े के समान चाँद का आलोक चमकने लगा। रात और गंभीर हुई। तानखाला के अन्धकारमय अरण्य में फिर हड्डियों की कड़मड़ सुनायी दी।

बंगला से अनु० लक्ष्मीनारायण गुप्त

जीवन का विष

रामकुमार

कल रात-भर पानी बरसता रहा। मैं अपने कमरे की बन्द खिड़की के ठंडे-ठिठुरे शीशों पर अपने गाल मसलता रहा, लेकिन जो तपन थी, जो असीम पीड़ा थी, मन में जो कोलाहल मच रहा था, वह रात्रि की घनी धुंध में धुल नहीं सका। मेरे नंगे पाँव ठंडे बर्फ-जैसे फर्श पर ठिठुर गये थे, नाइट गाउन में झूलते मेरे हाथ अकड़ चुके थे और बाहर सब-कुछ, मकानों की छतें, कोलतार की काली सड़कें, कूड़ों के ढेर, सब धुल-धुलकर बह गये, लेकिन मेरे हृदय पर छायी परछाईं वैसी-की-वैसी ही बनी रही। एक भयानक रिक्तता मेरे मन में उभरती जा रही थी। लिज़ा! लिज़ा! मैंने शीशे के पास अपने होंठ ले जाकर पुकारा, मानो वह खिड़की के बाहर खड़ी हो।

पास ही के गिरजाघर की घड़ी ने टन-टन करके घंटे बजाये, परन्तु मेरे कानों ने सुनकर भी उन्हें नहीं सुना। मेरी पीठ के पीछे चुपचाप सहमी हुई चारपाई मेरी प्रतीक्षा करती रही, लेकिन मेरे पाँव लकड़ी के फर्श से चिपक गये थे। वर्षा की बूँदें छत की टीन से खिड़की के सामने काली मुँडेर पर टप-टप, टप-टप टपकती रहीं, लेकिन चाहने पर भी मेरी आँखों से एक भी गरम कतरा मेरे गालों पर नहीं लुढ़का, जिसकी गर्माई पाने के लिए मेरे गाल बेचैन हो रहे थे। लिज़ा! तुम कहाँ चली गयीं?

खिड़की के शीशों में से कभी मेरी शिथिल दृष्टि बिजली की रोशनी में चमकते हुए 'काफे पीटर' के बोर्ड पर जा टिकती और कभी रात्रि की निस्तब्धता को चीरती हुई काफे के भीतर की हँसी मुझे झिंझोड़ जाती और मैं ठंडे शीशों पर अपना चेहरा और भी ज़ोर से चिपका देता।

सुबह जब मदाम इमे मेरे नाश्ते की ट्रे लेकर मेरे कमरे में घुसी, तो क्षण-भर के लिए रात्रि की सब घटनाओं को भूलकर अधेड़ चेहरे की ओर देखता रहा। उसने चारपाई के पास ही पड़ी तिपाई पर ट्रे रख दी और मुस्कुराते हुए मेरी ओर देखकर बोली—आज बहुत खूबसूरत दिन है, आसमान बिल्कुल नीला है, ढूँढने पर भी कहीं बादल का टुकड़ा तक

दिखायी नहीं देता।— फिर खिड़की के पास जाकर उसने उसे खोल दिया और ठंडी हवा के झोंके में एकवारगी मेरा सारा शरीर काँप उठा। धूप मेरी चारपाई तक आ गयी। तकिये को खड़ा करके उसे अपनी पीठ का सहारा बनाकर मैं चारपाई पर बैठ गया।

—ऐसे दिन मुझे हांस की बहुत याद आती है,—मदाम इमे का स्वर बहुत धीमा पड़ गया था। वह खिड़की के सामने मेरी ओर पीठ किये खड़ी कह रही थी —ऐसे दिन वह युनिवर्सिटी न जाकर शोनबर्ग या काहलेनबर्ग चला जाता था। शाम को पता चलने पर जब मैं गुस्सा होती थी, तो हँसते हुए अपनी कापी खोलकर मुझे वह सब सुनाता था, जो उसने दिन भर लिखा था। मैं कभी उसके लिखे का मतलब नहीं समझी।

मदाम इमे की ये-सब बातें बहुत पुरानी हो गयी थीं, जिन्हें मैं पिछले तीन सालों से सुनता आ रहा था। घुमा-फिराकर वह अपने पुत्र हांस की बातें करने लगती थी, जिसे पिछले युद्ध में नाज़ियों ने मार दिया था।

रात की घटना फिर धीरे-धीरे मुझपर अपना प्रभाव डालने लगी थी। मैंने कपड़े बदले और तुरन्त बाहर आ गया। आज के दिन युनिवर्सिटी जाने का प्रश्न नहीं उठता था। पहले सोचा कि काहलेनबर्ग जाकर किसी पेड़ के नीचे बैठकर सारा दिन बिता दूँ, लेकिन अकेले में मुझे अपने-आप से डर लग रहा था। मैं ट्रेम में बैठकर रिंग आ गया।

आपेरा के पास ही एक छोटे-से कैफ़े में बाहर धूप में बिछी कुर्सियों को देखकर मैंने वहीं बैठ जाने का निश्चय किया। मेज़ पर सुबह के ताज़े अख़बार पड़े थे। क्षण-भर तक कुछ सोचने के बाद मैंने एक अख़बार उठा लिया। पहले ही पन्ने पर आख़िरी कालम में लिज़ा का छोटा-सा फोटो छपा था, उसके नीचे दिया हुआ समाचार मैं पढ़ने लगा। मेरे हाथ में अख़बार काँप रहा था और अख़बार पर छपे अक्षर धुँधले पड़ते जा रहे थे।

❀

अक्तूबर के अन्तिम दिन थे और योरोप में मेरा पहला जाड़ा था। पतझड़ का ज़ोर दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा था, जिससे सड़कों पर लगे पेड़ ठूँठ बन रहे थे। शाम को मैंने आईस्लर के साथ एक जर्मन पिक्चर देखी, फिर कातनास्त्रासा के पास एक छोटे-से रेस्तराँ में खाना खाया। घर लौटने को अभी तबीअत नहीं कर रही थी। ओवरकोट की जेबों में हाथ डाले हम तेजी से चल रहे थे, जिससे शरीर कुछ गर्म हो सके।

—अब कहाँ चलें?—आईस्लर ने मेरी ओर देखते पूछा।

—घर को छोड़कर कहीं भी चलो।

क्षण-भर के लिए रुककर आईस्लर ने फिर पूछा—तुम हुए कभी 'रेनासाँ बार' गये हो?

मैंने ना में अपनी गर्दन हिला दी।

आईस्लर ने मेरा हाथ पकड़ा और कातनास्त्रासा की एक गली में मुड़ गया। उन दिनों वियना की सड़कें, गलियाँ, म्यूज़ियम, ऐतिहासिक इमारतें और प्रसिद्ध कैफ़े देखने का लालच बना हुआ था और मैं किसी भी ऐसे अवसर को छोड़ना नहीं चाहता था, जिसमें कोई ऐसी नयी चीज़ देखने को मिले।

हम दोनों 'रेनासाँ बार' के काउंटर पर ऊँची-ऊँची कुर्सियों पर जा बैठे। काउंटर पर खड़ी युवती आईस्लर को देखकर क्षण-भर के लिए मुस्कुरायी और उससे हाथ मिलाया —आज बहुत दिनों बाद आये!

आईस्लर ने मेरा परिचय कराते हुए कहा—यह मेरा हिन्दुस्तानी दोस्त है। यहाँ युनिवर्सिटी में डाक्टरी पढ़ने आया है।

वह बहुत स्वाभाविक ढंग से हँसी, न जाने मुझे देखकर या मेरी डाक्टरी की पढ़ाई की बात सुनकर। उसके छोटे-छोटे सफेद दाँतों की दो कतारें दो समानान्तर, सफ़ेद रेखाओं की भाँति चमक गयीं। उसने मेरा हाथ दबा दिया और न जाने क्यों मेरे सारे शरीर में एक सिहरन-सी दौड़ गयी। फिर वह अपने काम में लग गयी।

मैं कनखियों से चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ाता हुआ इस नये स्थान के वातावरण का जायज़ा लेने लगा। पीछे बड़ा-सा हाल था, जिसके बीचोबीच तीन संगीतकार प्यानो, वायलिन और एकाडियन पर 'चेम्बर म्युज़िक' के कुछ अंश बजा रहे थे। उनके ठीक सामने बड़ी-सी चिमनी में पत्थर

के कोयले दहक रहे थे, जिनके आगे 'एबस्ट्रैक्ट' डिज़ाइन का काले तारों का एक स्टैंड खड़ा था। अधिकतर लोग दो-दो, तीन-तीन की टुकड़ियों में बैठे धीमे स्वरों में गपशप कर रहे थे। काउंटर पर हमारे अतिरिक्त तीन पुरुष और एक स्त्री थी। स्त्री अधिक पी गयी थी और बार-बार अपना सिर हाथों से पकड़कर काउंटर पर टेक देती थी, परन्तु उसके पास बैठा पुरुष उसकी ठुड्डी ऊपर उठाकर उसका चेहरा चूमने की कोशिश करता था।

—क्या पिओगे?—आईस्लर ने धीमे स्वर में मुझसे पूछा।

—कुछ भी मंगा लो, लेकिन ज़्यादा स्ट्रांग न हो।

आईस्लर जानता था कि पीने के मामले में अभी तक मेरी पसन्द पक्की नहीं बनी है। उसने लिज़ा से 'वैरुज़' लाने के लिए कहा।

जब लिज़ा बोतल काउंटर पर ले आयी, तो आईस्लर ने मुस्कुराते हुए पूछा—तुम पियोगी, लिज़ा?

तेरा निमंत्रण स्वीकार नहीं करूँगी, नहीं तो तू बाद में कोसता रहेगा।—फिर मेरी ओर मुस्कुराते हुए देखकर कहने लगी—हाँ, अगर तेरा हिन्दुस्तानी दोस्त पिलाये, तो ज़रूर पिऊँगी। जो नया आदमी यहाँ आता है, उससे तो मैं ज़बरदस्ती पी लेती हूँ।

मैं हँसने लगा। जर्मन मुझे अधिक नहीं आती थी, सो लिज़ा अंग्रेजी में बातें कर रही थी, परन्तु उसका उच्चारण इतना अलग था, जिसे सुनकर मेरी हँसी रुक नहीं सकी। काउंटर पर बैठे दूसरे व्यक्ति मेरी ओर उत्सुकता से देख रहे थे। फिर लिज़ा ने लाल शराब के तीन पेग भरे। लम्बे घूँट से एक ठंडी-सी सिहरन मेरे सारे शरीर में दौड़ गयी। मैं लिज़ा की ओर देखकर मन-ही-मन मुस्कुराने लगा। लिज़ा की उम्र तीस के आस-पास रही होगी। चेहरे पर एक ऐसी ताज़गी और जिन्दगी थी, जिससे कोई भी सहज में ही आकर्षित हो जाता। सड़क पर अनायास ही लिज़ा को देखकर कोई अजनबी उसे अति सुन्दर एवं आकर्षक न समझता, लेकिन इस काउन्टर पर, रंग-बिरंगे लेबलों से भरी शराब की बोतलों की पृष्टिभूमि में, बिजली कि हल्की-हल्की रोशनी के नीचे खड़ी, मुस्कुराती लिज़ा का जो महत्व था, वह उससे कहीं अधिक सुन्दर वियनिज़ युवतियों को सहज में ही प्राप्त न होता। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो उसके हाव-भाव, उसके सहज-व्यवहार और उसके हँसने के ढंग में किसी को ललचाने या फुसलाने की प्रवृत्ति नहीं थी, वह सब उसके व्यक्तित्व का एक स्वाभाविक भाग जान पड़ता था।

लिज़ा ने काम से थोड़ी फ़ुरसत पायी, तो अपना पेग लिये मेरे बहुत पास आकर वह हँसती हुई बोली—जानते हो, तुम पहले हिन्दुस्तानी हो, जिससे मेरा परिचय हुआ है।

—हूँ-हूँ, लिज़ा! पुराने दोस्तों के सामने नये लोगों के साथ इतनी आत्मीयता?—आईस्लर ने कहा।

—क्यों? क्या तुझे ईर्ष्या होने लगी?

तभी एक अन्य व्यक्ति काउंटर पर आ बैठा और लिज़ा मुस्कुराकर उसकी ओर बढ़ गयी।

वहाँ बैठे-बैठे न जाने कितना समय बीत गया। 'रेनासाँ बार' के वातावरण में मुझे एक अपनापन-सा जान पड़ा, जो किसी दूसरे बार या कैफे में पहले कभी नहीं देखा था। लिज़ा बहुत व्यस्त थी। कभी हाल में बैठे लोगों की फरमायशें लेकर वेटर लिज़ा के पास आते और कभी अपने पेग समाप्त करके काउन्टर पर बैठे लोग लिज़ा से और माँगते। तीन अन्य व्यक्तियों ने लिज़ा को अपने साथ शराब पीने का निमंत्रण दिया था और लिज़ा ने तीन पेग भरकर एक कोने में रख दिये और क्षण-भर का अवकाश पाते ही वह एक पेग उठाकर उस व्यक्ति के सामने खड़ी हो जाती, जिसने लिज़ा को दावत दी थी। कभी-कभी पास लगे बड़े से शीशे में अपना मुँह देखकर वह बालों के गुच्छों को सँवार लेती और होंठों को रंग लेती और फिर हम--सबकी ओर इस प्रकार से मुस्कुराकर देखने लगती, मानो पूछ रही हो कि अब मैं कैसी लग रही हूँ?

जब हम चलने लगे, तो लिज़ा ने मुझसे हाथ मिलाते हुए कहा—किसी दिन शाम को आना, जब यहाँ ज़्यादा लोग नहीं होते। तब फ़ुरसत में तुमसे बातचीत करूँगी।—और फिर आईस्लर की ओर इशारा करके बोली—इसे अपने साथ मत लाना, नहीं तो यह ईर्ष्या से मर जायगा।

आईस्लर ने हँसते हुए लिज़ा की उँगलियों को अपने होंठों से लगा लिया।

रास्ते में पूछने की इच्छा होने पर भी मैं आईस्लर से लिज़ा के विषय में कुछ पूछ नहीं सका।

थोड़ी देर बाद आईस्लर ने बिना मेरी ओर देखे पूछा —तुम्हें लिज़ा कैसी लगी?

—ठीक है।

उस दिन युनिवर्सिटी नहीं गया। ग्रिंजिंग से बस में बैठकर मैं और लिज़ा बल खाती पहाड़ी सड़क को पार करके काहलेनबर्ग पहुँच गये। जब-जब मैं वहाँ गया था, इस सड़क को देखकर मुझे कालका-शिमला की यात्रा याद आती थी। मैंने लिज़ा को इस सड़क के बारे में विस्तार से बतलाया, उसे शिमला की बातें भी बतायीं, जहाँ मैंने अपने बचपन के कितने ही स्मरणीय वर्ष विताये थे। वह चुपचाप मेरी बातें सुनती रही। फिर बस से उतरकर हम एक पहाड़ी पर और भी ऊपर चढ़ गये और एक खुले स्थान में हरी-हरी घास पर जा बैठे। हवा तेज़ थी, जिससे धूप की गरमाई का हम पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ रहा था।

—लिज़ा, —परन्तु मेरा स्वर शायद उसके कानों तक पहुँचा नहीं। वह पीठ के बल अपने हाथों का तकिया बनाये लेटी हुई थी और ऊपर नीले आकाश की ओर ताक रही थी। उसके घुँघराले, भूरे बालों की लटें हरी-हरी घास पर बिखरी हुई थीं और आँखें बन्द थीं। साँस लेते वक्त उसका वक्ष ऊपर-नीचे उठ रहा था।

इन पाँच-छः महीनों के अरसे में भी मैं लिज़ा के विषय में अधिक नहीं जान सका। उसने कभी मुझे अपने घर नहीं बुलाया। गम्भीरता से अपने अतीत की चर्चा नहीं की। केवल एक दिन 'रेनासाँ बार' में उसने मेरा परिचय अपने पति विक्टर से बहुत ही स्वाभाविक ढंग से करा दिया, मानो वह कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसका अस्तित्व उसके जीवन में नहीं के बराबर ही हो। विक्टर के विषय में मैं केवल इतना ही जान सका कि वह एक प्राइवेट बैंक में क्लर्क है और इन दोनों का विवाह लगभग पाँच साल पहले हुआ था।

मुझे वियना में सबसे सुन्दर स्थान यही लगता है, लिज़ा,—मैंने घास पर अपनी कोहनियाँ टिकाकर लिज़ा के पास अपना मुँह ले जाकर कहा—यहाँ से सारा शहर बहुत अजीब-सा दिखायी देता है। देन्यूब के दोनों ओर बिखरे मकान, मकानों की सफेद छतें और छतों की काली-काली चिमनियाँ···मेरे ख्याल में योरोप में ऐसा कोई और शहर नहीं है, जिसके पास ही इतनी ऊँची पहाड़ी हो।

लिज़ा को कुछ न बोलते देखकर मैं चुप हो गया। कभी-कभी लिज़ा को इस तरह के गम्भीरता के फिट आते थे और वह गुमसुम-सी हो जाती थी। पूछने पर कभी उसने नहीं बतलाया। अपने बारे में कुछ भी कहना मानो उसके स्वभाव के विरुद्ध था। मैं पेट के बल लेट गया, जिससे अपने-आपको केवल आकाश पर ही सीमित न रखकर वियना और लिज़ा दोनों को देखता रहूँ!

—क्या सोच रही हो, लिज़ा?

—सोच कुछ नहीं रही। केवल अपनी थकान मिटा रही हूँ,—उसने आँखें बन्द किये ही मेरी बात का जवाब दिया।

ऊपर लगे पेड़ पर कुछ पत्ती आ बैठे थे और उनका कोलाहल उस नवीन वातावरण में एक नया-सा रंग भर रहा था।

—जानते हो, बचपन में मैं क्या बनने के स्वप्न देखा करती थी?—लिज़ा ने मेरी ओर करवट लेकर पूछा।

मैं चुपचाप फटी-फटी आँखों से उसकी ओर देखता रहा।

—आपेरा म्युज़िशियन,—और वह हँसने लगी। फिर तनिक गम्भीर होकर बोली—मैं उस दिन की कल्पना किया करती थी, जब पहली बार स्टेज पर आऊँगी। मैं अपने कमरे में शीशे के सामने खड़ी होकर ये-सब रिहर्सल किया करती थी, जब हाल में बैठे लोग मेरा गाना सुनकर तालियाँ पीटेंगे, तब किस तरह पर्दे को पीछे हटाकर मैं स्टेज पर आऊँगी और किस तरह झुकूँगी। आज वे-सब सपने जान पड़ते हैं।

आज पहला अवसर था, जब भावुकता में लिज़ा अपने विषय में बातें कर रही थी।

—जब लड़ाई छिड़ी, तो मैं 'कंजरवेतवार' में संगीत की शिक्षा पा रही थी। फिर यकायक सब-कुछ ख़त्म हो गया। वियना में ही हम पराये बन गये। मगर आज किसी से ये-सब बातें कहूँ भी, तो वह मेरी हँसी उड़ायेगा।

यकायक लिज़ा चुप हो गयी। मेरी तबीअत हो रही थी कि वह सब कहती जाये, जो-जो उसके मन में भरा है, वह,

सब उगल दे, रुकने की ज़रूरत नहीं। लेकिन लिज़ा ने फिर उस बात को आगे नहीं बढ़ाया। मुझमें इतना साहस नहीं था कि इस विषय में कुछ और पूछता। उसने फिर घास पर अपना सिर टिका दिया और ऊपर देखने लगी।

मैंने जेब में से सिगरेट का पैकेट निकाला और लिज़ा की ओर बढ़ा दिया। लिज़ा ने बिना कुछ कहे-सुने और बिना मेरी ओर देखे उसमें से एक सिगरेट निकालकर अपने होंठों में लगा ली। हमारी सिगरेटों का धुँआ अत्यन्त धीमी चाल से ऊपर उड़कर पेड़ की घनी शाखाओं में खोता गया। इतवार को यहाँ वियना में झुंड-के-झुंड लोग आकर बैठे रहते थे, लेकिन इस समय एक अजीब-सा सन्नाटा चारों ओर फैला हुआ था।

अनजाने ही में चारों ओर घूम-फिरकर फिर मेरी दृष्टि लिज़ा पर जा टिकती थी और मेरा मन हो रहा था कि उसके बन्द होठों को जबरदस्ती खोल दूँ।

अचानक लिज़ा एक झटके के साथ उठकर बैठ गयी, जिससे मैं स्तब्ध-सा उसकी ओर देखता रहा। उसने मुझे अपनी ओर ताकते देखकर मुस्कुराने की चेष्टा की, माथे पर बिखरे बालों को अपनी पतली-पतली उँगलियों से पीछे किया और धीमे स्वर में कहने लगी—कभी-कभी न जाने मुझे क्या हो जाता है, तब मेरी तबीअत करती है कि यहाँ से भाग जाऊँ, पेरिस, लन्दन, अमरीका...कहीं भी, लेकिन वियना को बर्दाश्त नहीं कर सकती!—उसका गला रूँधा जा रहा था।

मैं उठकर बैठ गया—आज तुम्हें क्या हो गया है, लिज़ा?

उसने मेरी ओर इस तरह से देखा, जिसमें मैं क्षण-भर के लिए काँप उठा। मुझे ऐसा जान पड़ा, जैसे वह अगले क्षण मेरे गले से चिमटकर रोने लगेगी।

वह खड़ी हो गयी। उसने दोनों हाथों से अपने स्कर्ट के पिछले भाग को झाड़ा, कमर पर बँधी काली पेटी से स्कर्ट को नीचे की ओर खींचा—चलो, थोड़ी सैर करें। नहीं तो रेस्तराँ में चलो। कुछ पीने को मेरी तबीअत कर रही है। हर रोज़ दूसरों के लिए पेग भरती हूँ, इसी से कभी-कभी दूसरे के हाथ से उड़ेली हुई शराब पीने को मेरी तबीअत बड़े ज़ोर से मचलने लगती है। चलो!—फिर क्षण-भर के लिए उसने मेरी ओर देखा और मेरा हाथ पकड़कर मुझे उठाते हुए बोली—तुम बहुत आलसी हो। सब छात्र आलसी होते हैं। एक ज़माने में मैं भी थी।

—तुममें अभी तक बहुत बचपना है, लिज़ा,—मैं हँसते हुए बोला।

उसने मेरा कान पकड़ लिया—और तुम अभी तक बच्चे हो।

हम दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़े पहाड़ी पर नीचे उतरने लगे। बीच में झाड़ियों के पास एक युवक और युवती प्रेम-क्रीड़ा में संलग्न थे। हमारी आहट पाकर उन्होंने चौंककर एक बार हमारी ओर देखा, फिर मुस्कुराने लगे। क्षण-भर के लिए लिज़ा ने मेरी ओर देखा, मैंने लिज़ा की ओर और फिर हम दोनों सामने नीले देन्यूब की चमकती धारा को देखने लगे।

रेस्तराँ के बाहर चबूतरे पर हम खुली धूप में दो आराम पर बैठ गये। मेरे कहने पर लिज़ा ने बीयर पीना स्वीकार कर लिया यद्यपि वह बीयर बहुत कम पीती थी। लिज़ा ने काले फ्रेम का धूप का चश्मा पहन लिया और मैंने सूरज की ओर अपनी पीठ कर ली।

—तुम्हारी कितनी उम्र है?—लिज़ा ने बिना मेरी ओर देखे पूछा।

मैं हँसने लगा—यह सवाल क्यों पूछा तुमने?

—मेरा जनाब तो दो।

—चौबीस।

लिज़ा मेरी ओर देखकर हँसने लगी—मुझे कम उम्र के लड़के बहुत अच्छे लगते हैं। शायद उनके साथ मैं अपनी उम्र को भूल जाती हूँ।

लिज़ा ने पहले भी अपनी बढ़ती हुई उम्र की चर्चा मुझसे की थी, इससे शायद उसे सान्त्वना मिलती थी, या जो विचार कभी-कभी उसके मन को कुरेदने लगता था, वह उसे प्रगट करके उससे मुक्ति पा जाती थी।

थोड़ी देर बाद मैं अचानक पूछ बैठा—तुम्हें 'रेनासाँ-बार' में काम करना अच्छा लगता है, लिज़ा?

उसने क्षण-भर के लिए मेरी ओर देखा, फिर शान्त स्वर में बोली—अच्छा लगने, न लगने का सवाल ही कहाँ उठता है ?

—फिर भी...

वह बीच ही में मेरी बात काटते हुए बोली—विक्टर की आमदनी से हम दोनों का पेट नहीं भर सकता, सो मैं काम करती हूँ। शाप-गर्ल न हुई, सेनिमा में सीट दिखानेवाली न हुई, रेस्तराँ में काम करने लगी। देखने-भालने में बुरी नहीं हूँ, सो काउंटर पर लग गयी। लोगों को मेरे हाथ से पीना अच्छा लगता है।...और जिस दिन लोग मुझसे ऊब जायेंगे, तब मुझे भी जवाब मिल जायगा। क्यों, ठीक कहती हूँ न ? तुम तो मुझसे अभी तक नहीं ऊबे न ? —और वह ज़ोर से खिलखिलाकर हँसने लगी।

—चुप हो जाओ, लिज़ा !

—क्यों, सच बात में क्या डर लगता है ?

मेरा सारा शरीर काँपने लगा। मेरा मन हुआ कि मेज़ पर रखी बीयर की बोतल लिज़ा के चेहरे पर दे मारूँ। इतनी नम्रता के साथ लिज़ा के मुख से यह-सब सुनने को मैं तैयार नहीं था। मैं लिज़ा के विषय में यह-सब नहीं जानना चाहता था। उस रात को 'रेनासाँ बार' से जब मैं लिज़ा को उसके घर तक छोड़ने गया था, तब दरवाजे पर पहली बार उसके होंठों का चुम्बन करके मेरे सारे शरीर में बिजली-सी दौड़ गयी थी।...और जब हँसती हुई लिज़ा मेरे गाल सहलाती है, तो मैं कितना सुख पाता हूँ ! बस...बस...इससे अधिक लिज़ा को जानने की न तो मुझे अभिलाषा ही है और न ही मुझमें उतना साहस है। उसके जीवन की एक तह के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी तह खुलने लगती है, तो मेरी आँखों के सामने अँधेरा-सा छाने लगता है।

—ओह, डियर !—और मेज़ पर झुककर वह मेरे बाल सहलाती हुई बोली—कितने काले बाल हैं तुम्हारे !

मैं रोज शाम को 'रेनासाँ बार' जाने लगा। तीन-चार बजे से ही मुझे 'रेनासाँ बार' का ध्यान आने लगता, शाम को युनिवर्सिटी में भी मेरी तबीअत नहीं लगती थी। बार में भी मुझे सब जानने लगे थे, क्योंकि शायद कोई भी ग्राहक इतने नियमित रूप से वहाँ नहीं आता था। दरवाजे से अन्दर घुसते ही ओवरकोट और टोप रखनेवाली बुढ़िया मुझे देखकर मुस्कुराने लगती और कभी-कभी अपनी प्रसन्नता में मैं उसे अधिक 'टिप' दिया करता था। यद्यपि वेटरों से कभी मेरा वास्ता नहीं पड़ता था, लेकिन मुझे देखकर वे सलाम करते और बार का मालिक हाथ मिलाता और कभी-कभी कुछ इधर-उधर की बातें भी करता। वे सब धीरे-धीरे जानने लगे थे कि मैं यहाँ क्यों आता हूँ। मैं अधिक पीता नहीं, संगीत में मुझे दिलचस्पी नहीं थी, खाना शायद मैंने एक-आध बार ही खाया हो, तब...तब महज़ काउंटर पर बैठने का आकर्षण ही तो था। कभी-कभी मैं रात के बारह बजे तक वहाँ बैठा रहता, जिससे लिज़ा की ड्यूटी ख़त्म होने के बाद उसे घर तक पहुँचा आऊँ।

कभी-कभी (विशेषकर शनिवार की शाम को) जब भीड़ अधिक होती, लिज़ा को मेरी ओर देखने तक का अवकाश नहीं मिलता था। दूसरे लोगों के साथ मैं उसे हँसते हुए देखता, जिनकी जेबें भरी होतीं। वे लिज़ा को अपने साथ कितने ही पेग पिलाते और मैं उसकी आँखों की बढ़ती हुई लाली को देखता रहता। मुझे ऐसा जान पड़ता, मानो कोई भीतर-ही-भीतर मेरी बनायी हुई इमारतों को ढहा रहा हो। मैं मन में कसमें खाता कि अब यहाँ कभी पैर न रखूँगा। लेकिन रात की प्रतिज्ञाओं को पूरा करने के सारे विचार सुबह गायब हो जाते थे।

कभी-कभी मैंने एक कोने में मेज़ पर अपनी दोनों कोहनियाँ टिकाये विक्टर को भी बैठे देखा था। वह सदा अकेला होता था। कभी उसके सामने बीयर से भरा गिलास होता और कभी पेग में कोई शराब। वह निर्निमेष दृष्टि से कभी हाल में बैठे लोगों को देखता, कभी काउंटर पर बैठे लोगों को ताकता और कभी हँसी-मज़ाक करती लिज़ा को अपनी कटी-फटी आँखों से घूरता। उसकी आँखों में मुझे एक प्रकार की रिक्तता और उदासीनता की छाया दिखायी देती। उसके अस्त-व्यस्त बाल, बिना क्रीज़ के उसका कोट-पैंट और गालों की उभरी हड्डियाँ देखकर मुझे उस पर दया

आती, अपने और उसके बीच में एक प्रकार की समानता की-सी दिखायी देती। यद्यपि मैंने कभी उसके साथ कोई बात-चीत नहीं की, लेकिन फिर मुझे उसके साथ हमदर्दी भी होने लगी। कभी उसे देखकर ईर्ष्या की भावना नहीं जागी।

एक रात बहुत कड़ाके की सर्दी थी। दिन-भर बर्फ गिरती रही और पिघलती रही। आकाश मेघाच्छन्न रहा और हवा फर्राटे के साथ वियना में धमाचौकड़ी मचाती रही। शाम होते-होते और भी तेज बर्फ गिरने लगी। मकानों की छतों पर और सड़क पर सफ़ेद बर्फ की हल्की-सी चादर बिछने लगी। शाम से ही मैं अनमना हो रहा था। ओवरकोट की जेबों में हाथ डाले उद्देश्यहीन कातनास्त्रासा की दूकानों के सामने खड़ा अन्दर सजे सामान को देखता रहा, लेकिन मन कहीं टिक नहीं पा रहा था।

फिर जब 'रेनासाँ बार' पहुँचा, तो काउन्टर पर केवल एक ही व्यक्ति को बैठे देखकर मुझे उतनी प्रसन्नता नहीं हुई, जितनी किसी और दिन होती।

लिज़ा ने मेरी ओर देखा और मुस्कुराने लगी—तुम आज भी आ गये?

मुझे क्रोध आ गया—अगर कहो तो चला जाऊँ?

—नाराज़ हो गया?—मैं कहती थी न कि तू अभी तक बच्चा है। बोल, क्या पियेगा? आज मुझे भी पिलाना पड़ेगा।—लिज़ा ने मेरे पास झुककर मेरे चेहरे के पास अपना मुँह लाकर कहा—कुछ ही पिला दो!—और मेरा सिर पकड़कर नीचे दबा दिया, जिससे मेरी नाक काउन्टर के ठंडे टीन से जा लगी—अब हँस!...फिर ऐसा मुँह फुलायेगा, तो कभी बात तक नहीं करूँगी।

क्षण-भर तक पीछे तरतीबवार लगी बोतलों का निरीक्षण करके उसने एक निकाली और दो पेगों को भरते हुए कहने लगी—इसे पी, तेरी सर्दी भाग जायेगी। तुझे पता नहीं कि तेरी नाक कितनी लाल हो रही है!—उसने हँसते हुए मेरी नाक को अपनी उँगली से छुआ—आ गया यहाँ हिन्दुस्तान से मरने के लिए! डाक्टर बनेगा!...जिस दिन तुझे डाक्टरी की डिग्री मिलेगी, मैं बड़ी भारी दावत दूँगी, समझा? ला, सिगरेट निकाल।

मैंने बिना कुछ कहे-सुने अपनी जेब में से सिगरेट का डिब्बा निकालकर उसकी ओर बढ़ा दिया। उसने जोर से एक कश लिया और ढेर-सा धुँआ अपनी नाक और मुँह से निकाल दिया।

फिर तनिक धीमे स्वर में उसने पूछा—तुझे स्कीपिंग करनी आती है?

—थोड़ी-थोड़ी आती है।

—तीन दिन के लिए मेरे साथ इन्सबुर्क चलेगा? हम दोनों स्कीपिंग करेंगे। बहुत अच्छी लगती है।

मैंने उत्साह-भरे स्वर में उसके चेहरे की ओर ताकते हुए पूछा—कब चलोगी?

—अगले सोमवार को चल। मैं यहाँ से तीन दिन की छुट्टी ले लूँगी, मेरी तबीअत इस 'बार' से घबराने लगी है।—क्षण-भर के लिए वह चुपचाप सामने की दीवार की ओर ताकती रही—और देख, किसी से कहना नहीं। अगर विक्टर को पता चल गया, तो वह बेचारा ईर्ष्या से आत्महत्या कर लेगा। मेरी बहन इन्सबुर्क में रहती है। मैं विक्टर से कह दूँगी कि मैं उससे मिलने जा रही हूँ।

—तो सोमवार को पक्की रही?

—पैसे हैं न? मैं तेरा खर्च नहीं उठाऊँगी। तेरे बदले अगर कोई और साथ चलता, तो वह मेरा खर्च उठाता, लेकिन तू...तू तो खुद ही अपने बाप के पैसों पर पल रहा है, तुझसे कैसे कहूँ?—वह फिर मेरे बाल सहलाने लगी। उसकी साँस मेरे मुँह पर आ रही थी और मुझे ऐसा जान पड़ रहा था, मानो किसी तेज़ शराब का नशा धीरे-धीरे मुझपर चढ़ रहा हो।

'बार' खाली ही रहा। काउन्टर पर बैठा दूसरा व्यक्ति शाम का अखबार पढ़ने में मग्न था। कभी-कभी उससे नज़र ऊपर उठाकर हम दोनों की ओर बड़ी लापरवाही से देख लेता था। शायद लिज़ा में उसे तनिक भी दिलचस्पी नहीं थी। सामने लगे शीशे में मुझे पीछे चिमनी में दहकते कोयलों की परछाईं दिखायी दे रही थी।

थोड़ी देर बाद लिज़ा ने कहा—अब घर जा, नहीं तो सर्दी लग जायेगी।

मैंने कलाई पर बँधी घड़ी पर एक नज़र डालते हुए कहा—अभी तो साढ़े छः बजे हैं।

—मेरी बात नहीं सुनेगा?—उसने हँसते हुए आदेश-भरे स्वर में कहा—जा!...तुझे पता नहीं कि वियना में ऐसे मौसम में बाहर नहीं ठहरते। घर जाकर आराम कर। अब उठ!—और मेरी कोहनियाँ पकड़कर उसने उठा दिया—अरे, बिल तो चुका जा, नहीं तो मुझे पैसे भरने पड़ेंगे।...

लिज़ा की बात मैं टाल नहीं सका। मैं सोच रहा था कि आज भीड़ न होने के कारण मुझे उससे बातें करने का बहुत-सा समय मिलेगा, लेकिन अगले ही क्षण इन्सबुर्क जाने की बात सोचकर मेरा मन प्रसन्नता और उत्साह से भर उठा। यह पहला अवसर था, जब मैं और लिज़ा वियना के बाहर एक साथ रहेंगे, हमारे प्रोग्राम में कोई बाधा डालने-वाला नहीं होगा। मैं एक बार पहले भी गर्मियों की छुट्टियों में इन्सबुर्क जा चुका था। शहर की सीमा से ही ऊँचे-ऊँचे पहाड़ ऊपर उठ गये हैं, हरी-हरी घास के मैदान और घाटियाँ...सब-कुछ मुझे बहुत सुन्दर जान पड़ा था। और अब तीन दिन तक केवल मैं और लिज़ा...

ओवरकोट के कालरों को मैंने कानों तक खींच लिया। एक बार मैंने अपनी नाक सहलायी और इस विचार से मुझे थोड़ी सिहरन-सी हुई कि अभी कुछ देर पहले उसे लिज़ा की उँगली ने स्पर्श किया था। कातनास्त्रासा के चौराहे पर पहुँचकर मैं क्षण-भर के लिए ठिठक गया। मैं निश्चय नहीं कर पा रहा था कि कहाँ जाऊँ। अभी घर लौटने को मेरी तबीअत नहीं कर रही थी।

बर्फ की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ ओवरकोट के कंधों पर जमने लगीं। पास ही शीशे के दरवाजे में से कैफे में बैठे लोगों पर मैंने एक उड़ती-सी निगाह डाली। एक कोने में विक्टर को अकेले बैठे देखकर क्षण-भर के लिए मैं चौंक पड़ा। वह मेज़ पर झुका बैठा था, पास ही बीयर से भरा गिलास और एक बोतल रखी हुई थी। कुछ समय तक मैं इसी दुविधा में पड़ा रहा कि भीतर जाऊँ या न जाऊँ। लेकिन मेरे पाँव जबरदस्ती मुझे उस कैफे के भीतर घसीट ले गये। कैफे भरा हुआ था। दिन भर काम करने के बाद अपने घरों को लौटने से पूर्व लोग इस गर्म स्थान में बैठ कर वियना की पहली बर्फ का आनन्द उठा रहे थे। मैं विक्टर की ही मेज़ पर एक खाली कुर्सी को खिसकाकर बैठ गया और वेटर से गरम काफ़ी लाने के लिए कहा।

विक्टर ने चौंककर मेरी ओर देखा। मैं अपनी परेशानी दूर करने के लिए मुस्कुराने लगा। परन्तु अगले ही क्षण उसने फिर अपनी नज़र मेज़ पर झुका ली। उसके व्यवहार को देखकर मेरा बातें करने का साहस नहीं हो रहा था। मैं चुपचाप सिगरेट के कश खींचने लगा। धीरे-धीरे मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो पहले-पहल मुझे अपने पास बैठे देखकर विक्टर जिस पसोपेश में पड़ गया था, वह अब धीरे-धीरे दूर हो रहा था।

—शायद आपने मुझे पहचाना नहीं,—मैं धीरे-धीरे जर्मन में बोलने लगा—एक बार लिज़ा ने मुझे आपसे परि-चित कराया था।

उसने अपनी नज़र उठाकर मेरी ओर देखा, लेकिन ऊपर चेहरे पर वही कड़ापन था, जिसे शायद कोशिश करने पर भी वह दूर न कर सकता था। वह मेरी शक्ल देखकर मेरे विषय में कुछ अनुमान लगाने का प्रयास कर रहा था।

थोड़ी देर तक फिर वही चुप्पी हम दोनों के बीच दीवार बनकर आ खड़ी हुई। वह निर्निमेष दृष्टि से मेरी ओर ताक रहा था, मैंने अपनी नज़र दूसरी ओर फेर ली।

—लिज़ा ने एकआध बार आपकी चर्चा मुझसे की थी,—विक्टर ने अत्यन्त धीमे स्वर में कहा—आज आप रेनासाँ बार नहीं गये?

—मैं वहीं से लौट रहा हूँ।

—लिज़ा वहाँ थी?

उसका प्रश्न सुनकर मैं चौंक गया और मैंने उसपर एक दृष्टि डाली—हाँ, थी।

—आप वहाँ रुके नहीं?

—नहीं, मुझे काम है।

वह थोड़ा मुस्कुराया, जिससे मेरा सारा शरीर सिहर उठा। उसने जेब से एक पाइप निकाली और उसे सुलगा-कर वह आराम से कुर्सी से अपनी पीठ टिकाये बैठ गया।

'रेनासाँ बार' में उसे अकेले बैठे देखकर जो सहानुभूति मेरे मन में जागती थी, उसका एक अंश भी मुझमें बाकी

नहीं बचा था। मुझे अपने ऊपर क्रोध आ रहा था कि नाहक कहाँ आकर बैठा। मुझे कुछ डर-सा लगने लगा था।

मैं धीरे-धीरे अपनी काफ़ी पीने लगा। आज पहली बार मुझे विक्टर को इतने समीप से देखने का अवसर मिला था। उसकी छोटी-छोटी भूरे रंग की निस्तेज आँखें, हल्की-हल्की मूँछें और लम्बा चेहरा देखकर ऐसा जान पड़ा, मानो कुछ वर्ष पूर्व वह अवश्य ही सुन्दर और आकर्षक रहा होगा, परन्तु आज जो भाव उसके चेहरे पर मँडराते रहते हैं,वे किसी भी व्यक्ति को उसकी ओर आकर्षित करने में रोकते हैं। मुझे उसके जीवन के विषय में कुछ भी मालूम नहीं था और नहीं कभी लिज़ा से यह पूछने का मेरा साहस हुआ था।

धीरे-धीरे उससे बातें करने की उत्सुकता मुझमें प्रबल होती गयी। मैं अपनी दोनों कोहनियाँ मेज़ पर टिकाकर आगे की ओर झुक गया। परन्तु विक्टर पत्थर की मूर्ति की भाँति निश्चल- सा बैठा रहा, उसने बीयर का गिलास नहीं छुआ, केवल मुँह में लगी पाइप के कश लेता रहा।

—आज बहुत सर्दी हो गयी है,—अनयास ही मेरे मुँह से निकल गया।

विक्टर ने एक बार मेरी ओर देखा और फिर अपने विचारों में खो गया।

रेडियो से जाज़ संगीत धीरे-धीरे सारे कैफ़े में फैल रहा था, परन्तु अन्दर बैठे लोगों का शोरगुल इतना अधिक था कि संगीत सुनायी नहीं दे रहा था। बाहर लोग बड़ी तेज़ी से अपनी बगलों में चमड़े के बेग दबाये अपने घरों को वापस लौटे जा रहे थे।

विक्टर को चुप बैठे देखकर मेरी निराशा बढ़ने लगी थी। उससे बातें करने का फिर कब ऐसा अवसर मिलेगा, यह सोचकर मुझे दुख हो रहा था। मुझे थोड़ी सर्दी लगने लगी और डर लगा कि कहीं सर्दी लगने से बीमार पड़ गया तो लिज़ा के साथ इन्सबुर्क नहीं जा सकूँगा। मैंने प्याले में बची काफ़ी को एक ही घूँट में समाप्त कर दिया और वेटर से बिल लाने के लिए कहा।

यकायक बिल की बात सुनकर विक्टर का ध्यान मेरी ओर आकर्षित हुआ। शायद वह इतनी जल्दी मेरे उठ जाने की आशा नहीं कर रहा था। वह मेज़ पर झुक गया। उसने बीयर का एक घूँट भरा और मेरी ओर देखता हुआ धीमे स्वर में बोला—अगर आपको ज़रूरी काम न हो तो रुकिए, थोड़ी देर के लिए रुकिए।

मैं उसके चेहरे की ओर देखता रहा। उसके स्वर में न जाने क्या था, जिससे 'न' करना मेरे लिए असम्भव हो गया। मैं अपना बिल चुकाकर बैठा रहा।

—आप कुछ और पियेंगे?

—नहीं, मैं काफ़ी पी चुका।

कुछ देर तक वह फिर चुप बैठा रहा। बीयर के गिलास को पकड़कर वह उसे घुमाता रहा और उसकी दृष्टि मेज़ पर ही झुकी रही। उसके होंठ कई बार फड़फड़ाये, परन्तु उनसे कोई आवाज़ नहीं निकल सकी।

अन्त में सफल हुआ—आप को पहली बार देखकर ही मैं जान गया था कि आप लिज़ा के दूसरे दोस्तों से बिल्कुल अलग हैं,— वह रुक-रुककर कह रहा था—पिछले कुछ दिनों से मैं आपसे मिलने की बात सोच रहा था। आप मेरी सहायता करेंगे, इसकी मुझे पूरी आशा है।

मेरा हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। मन से मैं सदा ही कायर रहा हूँ और किसी भी प्रकार की सनसनीदार बातों को सुनकर मुझे डर लगने लगता है। मैं साँस रोके हुए विक्टर की बातों को सुनने लगा।

— आप किसी तरह लिज़ा को समझाइए कि वह 'रेनासाँ बार' की नौकरी छोड़ दे। मेरी बात वह नहीं मानती। उसे कहीं और आसानी से काम मिल सकता है। कोशिश करके मैं उसे अपने बैंक में ही कोई काम दिलवा दूँगा। लेकिन यह 'बार' उसे छोड़ना ही पड़ेगा।

—लेकिन लिज़ा को 'रेनासाँ बार' का काम...

उसने बीच में ही मेरी बात काटते हुए कहा—यह काम उसे पसन्द है। आधी-आधी रात को नशे में चूर वापस घर लौटना, पराये लोगों के साथ हँसी-मजाक़ करते रहना। जब रात को वह घर लौटती है, मैं सोया होता हूँ और सुबह जब मैं बैंक जाता हूँ, तो वह सोयी होती है। इसे आप भले आदमियों की जिन्दगी कहेंगे? मैं इसे और सहन नहीं कर सकता। मैं ही क्या, कोई भी आदमी इसे सहन नहीं करेगा।—क्षण-भर के लिए वह फिर चुप हो गया। एक

घूँट बीयर का पीकर वह पहले से अधिक धीमे स्वर में कहने लगा—आज मैं आपसे कुछ छिपाऊँगा नहीं। जब मैं लिज़ा से यह-सब कहता हूँ, तो वह समझती है कि मैं अपने फ़ायदे के लिए यह कह रहा हूँ। आप कहेंगे, तो यह बात उसकी समझ में आयगी।

—लेकिन...

—न...न...इन्कार न कीजिए। लिज़ा को इस अँधेरे कुएँ से बाहर निकालने की जिम्मेदारी आप के ही ऊपर है। —यह कहते हुए उसने कसकर मेरा हाथ पकड़ लिया। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो कोई गिलगिली-सी चीज़ मेरे हाथ में आ गयी हो। मैंने उससे छुटकारा पाना चाहा, लेकिन उसकी उँगलियाँ मेरे हाथ से चिपक-सी गयी थीं।

—यह-सब लिज़ा के भले के लिए ही होगा। सच मानिए, इतनी अनुनय-विनय मैं वियना के किसी भी आदमी के सामने नहीं करता।

—सब ठीक होगा। आप बेकार में इतना घबरा रहे हैं। —मेरे आश्वासन से उसके हाथ की पकड़ तनिक ढीली हो गयी, जिससे मैंने तुरन्त ही अपना हाथ घसीटकर पैंट की जेब में डाल लिया।

—अगर वह 'रेनासाँ बार' में अधिक देर तक रही, तो ख़त्म हो जायगी। आपने शायद कभी उसकी सेहत पर ग़ौर नहीं किया। देखिए,—उसने अपने कोट की अन्दर की जेब में से एक मोटा-सा बटुआ निकाला और उसे मेरे सामने खोलकर दिखाते हुए बोला—यह पाँच साल पहले की लिज़ा है। आप तब और अबके अन्तर को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं क्योंकि पाँच साल पूर्व आपने लिज़ा को नहीं देखा था।

मैं उसके काँपते हाथों में मैले और घिसे हुए चमड़े के बटुए में लिज़ा की धुँधली फ़ोटो देखता रहा।

—पिछले साल जब वह बीमार पड़ी थी, तो डाक्टर ने कहा था कि उसे शराब नहीं पीनी चाहिए और यह आपसे छिपा नहीं है कि 'रेनासाँ बार' में वह कितनी पीती है। घर तक में उसने मुझसे छिपाकर बोतलें रखी हैं और दिन में भी वह पिया करती है।

वह मेरी ओर ताक रहा था। उसकी दृष्टि में क्रोध था, आत्मपीड़न की भावना थी, जिससे बचने के लिए मैं दूसरी दिशा की ओर देख रहा था, लेकिन उससे मुक्ति पाना मुझे असम्भव-सा प्रतीत हो रहा था। वह हाँफ रहा था, मानो कोई विकट चढ़ाई पार करके आया हो। फिर उसने पीठ कुर्सी से टेक ली। उसने पाइप को अपने दाँतों के बीच दबा लिया। उसे अपने-आप में फिर खोया जानकर मैं कनखियों से उसकी ओर देखने लगा। पाइप जलाने के लिए उसने दियासलाई सुलगायी, लेकिन उसका हाथ बड़े ज़ोर से काँप रहा था, पाइप जलाने में असफल होकर उसने दियासलाई फेंक दी। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो उसकी आँखें भरी हुई हों। यदि लोगों से घिरे इस कैफ़े में हम न बैठे होते, तो शायद वह रोता और रोकर सान्त्वना पाता।

मैं अपनी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ—अच्छा, मैं चलूँगा। मैं लिज़ा को समझाऊँगा।

परन्तु उसने मेरी ओर देखा तक नहीं। वह कुर्सी पर चुपचाप बैठा रहा। मैं आशा कर रहा था कि मेरे जाने से पूर्व वह एक बार फिर नाटकीय ढंग से मुझसे प्रार्थना करेगा, परन्तु अब वह इस प्रकार बैठा था, मानो मुझे न जानता हो। मेरे बढ़े हुए हाथ को उसने केवल छुआ।

बाहर आकर मैंने एक लम्बी साँस ली। सड़क पर चलते लोग मुझे परछाइयों से अधिक नहीं जान पड़े। अन्धकार धीरे-धीरे गाढ़ा होता जा रहा था। बर्फ़ जमती जा रही थी और मैं एक अन्धे व्यक्ति की भाँति सफ़ेद बर्फ़ पर जूतों के निशान बनाता हुआ अपने घर की ओर लौटा जा रहा था।

हम इन्सबुर्क नहीं जा सके। कारण बहुत ज़िद करने पर भी लिज़ा ने मुझे नहीं बतलाया। वह अत्यन्त गम्भीर थी, यद्यपि बीच-बीच में हँसने का विफल प्रयास उसने कितनी बार किया था। उस दिन पहली बार सब के निमंत्रण ठुकरा देने पर उसने कितने ही पेग अपने खर्च पर पिये। जब काउंटर पर बैठे अन्य लोगों ने उसकी गम्भीरता का कारण पूछा, तो उसने अपने अस्वस्थ होने का बहाना बनाया। उसने मुझसे बातें नहीं कीं, वह मेरी दृष्टि को टालती रही। मेरा मन हो रहा था कि वहीं काउंटर पर सिर पटककर रोऊँ।

मैंने विक्टर के साथ अपनी मुलाकात की चर्चा उससे कभी नहीं की और न ही कभी उससे 'रेनासा बार' छोड़ने

की बात कही। लेकिन उस शाम की विक्टर की कही बातें मेरे दिमाग़ से दूर न हो सकीं। जब रात को अपनी चारपाई पर लेटता, तो वे-सब बातें मेरे दिमाग़ में परछाइयों की भाँति घूमा करती थीं। किसी भावी आशंका से मेरा दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगता। 'बार' के काउंटर पर बैठकर जब लिज़ा को हँसते हुए देखता या पेग को उसके होंठों से लगता देखता, तो मेरा सारा शरीर एक बारगी सिहर उठता था।

मुझे ऐसा महसूस होने लगा, मानो लिज़ा पहले की भाँति मुझसे खुलकर बातें नहीं करती थी। जब कभी मैं उसे सेनिमा, थियेटर या दिन का भोजन खाने का निमंत्रण देता, तो कोई-न-कोई बहाना बनाकर वह उसे टाल देती थी। काउंटर पर भी वह ऐसा ज़ाहिर करती, मानो वह बहुत व्यस्त हो। उसकी अवहेलना का कारण लाख कोशिश करने पर भी मुझे समझ में नहीं आया।

एक बार किसी तरह दिन के भोजन का निमंत्रण उसने स्वीकार कर लिया। रिंग के पास इस एक छोटे-से रेस्तराँ में जा बैठे। अन्दर अधिक लोग नहीं थे, जिससे शोरगुल भी कम था।

—लिज़ा!—मैंने उसकी ओर देखते हुए कहा।

लिज़ा ने अपनी झुकी हुई नज़र मुझपर डाली। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो वह महीनों से बीमार हो। उसकी आँखों के नीचे काले गड्ढे-से पड़ गये थे।

—लिज़ा, यह क्या हो गया है तुम्हें? क्या तुम अपने प्राण स्वयं लेने पर तुली हुई हो?—मुझे अपना गला रुँधता-सा जान पड़ा।

उसने मुस्कराने की चेष्टा की, मानो मेरी बात का उपहास कर रही हो—न-न, मैं अभी मरना नहीं चाहती। तुम नहीं जानते कि मुझे अपने प्राणों का कितना मोह है!

—सब झूठ है। तुम जानती हो कि तुम्हें अधिक शराब नहीं पीनी चाहिए और पिछले दिनों से तुमने अपने पीने की मात्रा और भी बढ़ा दी है। यह-सब क्या प्राणों के मोह के लिए है?

लिज़ा ने तनिक ज़ोर से हँसी का ठहाका लगाया, जिससे न केवल मैं चौंक गया, आसपास बैठे लोग भी उत्सुकता से से हमारी ओर देखने लगे—तुम कुछ नहीं समझोगे। तुम केवल वर्त्तमान में जीवित रहते हो। हम लोगों की समस्याएँ कभी तुम्हारी समझ में नहीं आयेंगी।—फिर तनिक झुककर वह धीमे स्वर में बोली—लेकिन तुझे क्या, तू क्यों फिक्र करता है। तू यहाँ अपनी पढ़ाई करने आया है, सो किये जा। दूसरी बातों में क्यों मन को उलझाता है।

मैं मेज़ पर दृष्टि झुकाये बैठा रहा। वह मेज़ पर रखे मेरे हाथ को सहलाने लगी—तू फिक्र मत कर, मैं अभी मरूँगी नहीं।

—लिज़ा!—मैंने उसके हाथ को अपने दोनों हाथों में दबा लिया। मेरा मन हो रहा था कि उससे ये सब बातें कहूँ, जिनके विषय में पिछले कितने ही दिनों से सोच रहा था, लेकिन लिज़ा को मुस्कुराते देखकर और उसके हाथ की गरमाई पाकर मुझसे एक भी शब्द नहीं कहा गया। मेरी आँखें भर आयीं और बहुत कठिनाई से मैं अपने आँसुओं को रोक सका।

—अरे, छिः-छिः! यह क्या बचपना है। तूने अभी तक दुनिया में कुछ नहीं देखा, इसी से कुछ नहीं समझता। अच्छा, बता, तेरी पढ़ाई कैसी चल रही है? अगर फेल हो गया, तो इसका दोषी अपने को ही समझूँगी।

—नहीं, लिज़ा, मैं फ़ेल नहीं होऊँगा।

—अच्छा, जब तेरी गर्मियों की छुट्टियाँ होंगी, तो साल्सबुर्ग चलेंगे। ठीक है न?

मैं उसके चेहरे की ओर देख रहा था। जानता था कि इस हँसी और इन बातों के पीछे लिज़ा कुछ छिपा रही है।

—साल्सबुर्ग मुझे बहुत पसन्द है। मैंने अपना बचपन वहाँ बिताया था। तब तक,—वह क्षण-भर के लिए रुकी, मानो सोच रही हो कि अपना वाक्य पूरा करे या नहीं। फिर तेज़ी से कहने लगी—तब तक शायद मुझे विक्टर से भी मुक्ति मिल जाये। हम तलाक़ दे रहे हैं।...फिर एक महीना साल्सबुर्ग में रहेंगे।

और दिन बीतते रहे। लिज़ा से कभी फिर उस तरह की बातें नहीं हुईं। उसके चेहरे को देखकर मुझे प्रतीत होता था, मानो वह किसी बड़े भारी संकट से गुज़र रही हो। परीक्षाओं के कारण मैंने 'रेनासाँ बार' जाना भी कम कर

दिया था। लेकिन जब कभी लिज़ा से भेंट होती, तो वह पहले-जैसी बातें करने की कोशिश किया करती थी। जब मैं उसे अपनी पढ़ाई की व्यस्तता के विषय में बतलाता, तो वह बहुत खुश होती थी। वह कहती थी कि मेरी सफलता के लिए वह हर इतवार की सुबह गिरजे में जाकर प्रार्थना किया करती है। पीना भी उसने बहुत कम कर दिया था। हम दोनों साल्सबुर्ग के प्रोग्राम बनाते और मैं बड़ी उत्सुकता से गर्मियों की छुट्टियों की प्रतीक्षा कर रहा था।

और फिर...कल शाम को जब क्लास से निकला, तो दरवाज़े पर आईस्लर को खड़े देखा।

—हलो, आईस्लर !

उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और मुझे बरामदे में ले आया,जहाँ और कोई न था। उसके मुँहसे कोई आवाज़ नहीं निकली, उसका चेहरा पीला पड़ा हुआ था। जिस हाथ से वह मेरा हाथ भींचे हुए था, वह बड़े ज़ोर से काँप रहा था।

—क्या बात है, आईस्लर ? क्या बीमार हो ?

—तुमने.. तुमने शायद कुछ नहीं सुना,—उसने बहुत धीमे स्वर में कहा।

—क्या ?...क्या नहीं सुना ?—मैं काँप उठा—क्या नहीं सुना, आईस्लर ?—मैंने बहुत ज़ोर से पूछा, अँधेरे, सुनसान बरामदे में मेरी आवाज़ गूँज गयी।

—लिज़ा...विक्टर ने लिज़ा की हत्या कर दी।

—क्या ?—लेकिन शायद आवाज़ मेरे गले से बाहर न निकल सकी।

—आज सुबह विक्टर ने लिज़ा की हत्या कर दी। अभी-अभी 'रेनासाँ बार' के मालिक ने मुझे बतलाया। मैंने सोचा कि तुम्हारे वहाँ जाने से पहले ही तुम्हें यह समाचार सुना दूँ।—आईस्लर का स्वर मेरे कानों तक नहीं पहुँच रहा था।

न जाने कितनी देर तक हम दोनों अँधेरे में युनिवर्सिटी की सूनी इमारत में खड़े रहे। बाहर वर्षा होने लगी थी।

अख़बार अब मेरे हाथों में काँप नहीं रहा था। लिज़ा की हत्या का समाचार कितनी ही बार अख़बार में पढ़कर भी मैं कुछ भी समझ नहीं सका, मानो मुझे जर्मन भाषा न आती हो। मेज़ पर पड़ा गरम काफी का प्याला ठंडा हो चुका था।

१४ ए/२० डब्लू० ई० ए०,
कैरोल बाग, नयी दिल्ली।

—ख़बरदार, जो फिर मैंने तुम्हें उसके साथ देखा !—ख़ालाबी ने अपना पुराना घिसा-घिसाया जुमला दोहराया—यह भी कोई बात है, कल-कलाँ को कोई ऐसी-वैसी बात हो गयी, तो नाक-चुटिया मेरी कटेगी ! कितनी दफ़ा समझाया, जवान लड़के-लड़की का यों धड़ल्ले से मिलना अच्छा नहीं। जनम में लोग थूकेंगे तो अलग और जो...

—क्या और जो...खालाबी ?

—अब तुम इतनी नन्हीं नहीं हो, जो कुछ समझती ही नहीं । मर्द की ज़ात बेमुरव्वत होती है। हज़ारों मासूम लड़कियों को ख़राब करके छोड़ दें और लौटके न पूछें कि तुम्हारे मुँह में कै दाँत हैं ।

और मैं एकदम हँस पड़ी—इलियास मुझे क्या ख़राब करेगा ! कहीं मैं ही न ख़राब करके छोड़ दूँ !—और मैं हँसते-हँसते लोट गयी ।

—देखो, बी, मुझे तुम्हारी ये अल्हड़पने की बातें पसन्द नहीं। मेरी नहीं सुनोगी, तो, ख़ुदा की क़सम, सर पकड़कर उमर- भर न रोओ, तो मेरा नाम पलटके चमारी रख देना !

—मैं हिस्ट्री में कमज़ोर हूँ, ख़ालाबी,—मैं झूठ बोली—इसलिए ट्यूशन के पैसे बचाने को इलियास से पढ़ लेती हूँ । और आप हैं कि न जाने क्या सोच बैठी हैं ।

—ट्यूशन के पैसे बचाने की कोई ज़रूरत नहीं । मैं बाज़ आयी इस पैसे की बचत से ! ऐसा ही है तो उससे शादी कर लो ।

—शादी ?—मैंने चकित होकर कहा ।

—हाँ ! मगर इतना कहे देती हूँ, शादी गुड्डे-गुड़िया का खेल नहीं । बोर के लड्डू हैं, खाओ तो पछताओ, न खाओ तो पछताओ । फिर भी, मेरी बला से, तुम उस निकम्मे से शादी कर लो कि मेरे ऊपर इलज़ाम न आये ।

—शादी कर लूँ ? अभी ? इस वक़्त रात के ग्यारह बजे हैं, निकम्मा सो रहा होगा ? जगाऊँगी, तो काट खाने को दौड़ेगा ।

—फिर वही मज़ाक़ ! देखो, बी, मैं टाँग बराबर की छोकरी तो हूँ नहीं और न तुम्हारी पट्टी-तले पैदा हुई हूँ, जो तुम यों मुझे हौला ख़ब्ती समझो और...—वह फूटकर

रो पड़ीं—इसी दिन के लिए तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया था कि तुम मुझे यों उलटे-सीधे जवाब दोगी। मुझ नसीबों-जली की क़िस्मत में औलाद होती, तो यों मियाँ न सिधार जाते। निगोड़ी-नाठी समझती हो। ऐसा ही है, तो अपनी अम्माँ के पास सफ़ीपुर चली जाओ।

ख़ालाबी बरस पड़ीं और मैं बदहवास हो गयी। कितना प्यार करती थीं वह मुझे! किस अरमान से मेरी अम्माँ से मुझे माँगा! किस प्यार से पाला! सफ़ीपुर मैं कैसे जा सकती थी पढ़ाई अधूरी छोड़कर। अम्माँजान के पास इतना रुपया कहाँ कि वह मुझे पढ़ा सकें। यह मेरी ख़ुशक़िस्मती थी कि इन्होंने मुझे गोद ले लिया था। लेकिन इलियास भी तो प्यार करता है। उसका दिल कैसे तोड़ दूँ? और स्वयं अपना दिल कैसे सँभालूँ? मुझे इलियास से मिलना-जुलना बन्द करना होगा। कितना दम घुटेगा, ज़िन्दगी कितनी वीरान हो जायगी। पिछली दफ़ा लड़ाई हो गयी थी, तो जी चाहता था, मर जाऊँ कि अकेलेपन की मुसीबत से तो छुटकारा मिले। इलियास का भी पढ़ने में जी न लगता था। वह मेरे लिए ही तो पढ़ता है कि एक दिन मुझे पा लेने के योग्य बन जाय।

मैंने ख़ालाबी से माफ़ी माँगी। गले में बाँहें डालकर वायदा किया कि अब इलियास से न मिलूँगी। मगर इलियास ने सुना, तो भन्ना उठा।

—कितनी ठस है यह ख़ालाबी! इसने ख़ुद तो ज़िन्दगी में कभी प्यार नहीं किया। इसी लिए हमसे जलती है। कब मरेगी तुम्हारी यह ख़ाला?—उसने कहा।

—इलियास! दिमाग़ ख़राब हो गया है तुम्हारा? वह मेरे भले को ही तो कहती हैं!

—हूँ! तो यह कहो, तुम्हारा भी यही ख़याल है। लानत है! ठीक कहते हैं अब्बाजान। औरतें सब मक्कार होती हैं।...मगर मैंने कभी उनकी बात का यक़ीन ही नहीं किया। खैर, ठीक है। जाओ, अपनी ख़ाला के कूल्हे से लगकर बैठो!

—शुक्रिया आपकी क़ीमती राय का!—मैंने जलकर कहा—मगर इसमें तुम्हारा क्या क़सूर है? मर्द होते ही बेवफ़ा हैं।

—तुम्हारी ख़ालाजान फ़रमाती होंगी?

—और ठीक ही कहती हैं वह।

—समझ गये!—वह बड़ी कटुता से बोला!

—अच्छा?

—बुढ़िया ने कोई मोटी मुर्ग़ी फाँसी होगी, इसी लिए तुम्हें मेरे ख़िलाफ़ भड़काती है।

—बदतमीज़ी की कोई ज़रूरत नहीं! यह तुम हर वक्त बुढ़िया-बुढ़िया न कहा करो उन्हें!

—बुढ़िया न कहूँ, तो क्या जवान कहूँ? ख़ैर, छोड़ो, किसे उल्लू बनाया है तुम लोगों ने?

—उँह! दिमाग़ सड़ गया है तुम्हारा! ख़बरदार, जो तुमने मुझसे आइन्दा बात की!

—ज़रूर बात करूँगा! मेरा भेजा चाटने आओगी, तो ऐसे ही बात की जायगी!

—मेरी जूती चाटती है भेजा। चलो, ग़ारत हो!

—आप ही मेहरबानी फ़रमाकर ग़ारत होने की कोशिश कीजिए, क्योंकि इत्तिफ़ाक़ से यह हमारा बाग़ीचा है, जी!

और मैं बिल्कुल भूल गयी थी। ख़ालाबी ने बगीचे के दो हिस्से करके बीच में बाड़ लगवा दी थी और इलियास के अब्बा ने उसपर काँटे चढ़ा दिये थे। मगर हमने यानी इलियास ने और मैंने काँटों के बीच से एक रास्ता बना लिया था। अपनी हार पर आँसू बहने लगे।

—अरे बेवकूफ़!—उसने मुझे कुर्सी पर घसीट लिया—यहाँ हम बेवक़ूफ़ों की तरह बैठे लड़ रहे हैं, दुश्मन को पता चलेगा, तो घी के चिराग़ जलने लगेंगे!

—दुश्मन कौन?

—तुम्हारी ख़ाला और मेरे अब्बाजान, और कौन?

—ओह! तो उन्हें भी एतराज़ है।

—अजी, कुछ ऐसा-वैसा एतराज़! कहते हैं, माडर्न लड़कियाँ सब वाहियात होती हैं। तुम्हारा नाम तो नहीं लेते। बस, औरत ज़ात से उन्हें नफ़रत है।

—फिर?

—फिर क्या? अल्लाह मियाँ ने दो कान काहे को दिये हैं। एक कान से सुनता हूँ, दूसरे से उड़ा देता हूँ।

हम दोनों उदास बैठे बिछोह के उन क्षणों की कल्पना

से काँपने लगे, जिनके मिटने की अब कोई सूरत न दिखती थी।

एकदम इलियास चीख़ उठा—वाह !...वह मारा !...वह मारा ज़ालिम को !

—अरे, इतनी ज़ोर से न चिंघाड़ो !—मैंने डरकर कहा—ख़ालाबी को पता चल गया, तो अभी-अभी मुसीबत खड़ी हो जायेगी।

—बस ! एक तरकीब है।

—वह क्या ?

—तुम अपनी ख़ाला का किसी से इश्क़ करवा दो।

—लानत ! बिल्कुल सिड़ी हो तुम !—मैं हँस पड़ी।

—हाँ, सच कहता हूँ ! उन्हें जब किसी से प्यार होगा, तब पता चलेगा कि जुदाई क्या होती है।

—ख़ुदा के लिए आहिस्ता बोलो ! सुन लिया, तो कच्चा चबा डालेंगी।

मैंने बहुत समझाना चाहा, पर इलियास यही कहता रहा—बस, एक ही इलाज है। अपने पर पड़ेगी, तब पता चलेगा।

—उँह, इश्क़ भी कोई मुँह का निवाला है कि पछाड़ कर ठूँस दूँ ?

—पछाड़कर ठूँसना ही पड़ेगा।

मगर किससे इश्क़ करायें और कैसे ? तुम तो दीवाने हो।

—दीवाने की लाडली, उनको भी ज़रा ज़िन्दगी का मज़ा आ जायगा। क्या ज़िन्दगी है बेचारी की ! उबला हुआ कद्दू !

— अरे, तो मैं कहाँ उनके लिए आशिक ढूँढ़ने निकलूँ ?

—दूर जाने की क्या ज़रूरत है ? घर ही में लड़का मौजूद है।—इलियास शरारत से मुस्कुराया।

—क्या मतलब ?

—तुम्हारी गुड़िया, हमारा गुड्डा।...गाजर की पेंदी गुलखैरू का फूल, कहो मियाँ गुड्डे उन्हें गुड़िया क़बूल ?

हँसते-हँसते हम लोट-पोट हो गये। मगर मैंने उसे डाँटा—ख़ुदा के लिए अपने अब्बाजान का तो नाम भी न लेना। दुनिया के मर्दों से तो, ख़ैर, उन्हें सिर्फ नफ़रत है, मगर तुम्हारे अब्बा से तो बस उनके पर जलते हैं। घंटों बैठी कोसा करती हैं। जानते हो, उन्हें क्या कहती हैं ?

—नहीं।

—कहती हैं, इन्सान थोड़े ही है, जिन्नात है।

—बस-बस, इधर भी यही हाल है।...दोनों तरफ़ है आग बराबर लगी हुई ! अब्बाजान उन्हें लाउडस्पीकर कहते हैं। झाँड़ का काँटा, सारा दिन भूँकती है बुढ़िया !

इलियास किसी तरह हार मानने को तैयार न हुआ। मुझे डर लगा कि कहीं जूते न पड़ें। मगर इलियास ने कहा—आज़माने में ऐसा क्या हर्ज है।

और बड़े सोच-विचार के बाद डरते-डरते एक दिन मैंने भड़ों के छत्ते को छेड़ ही दिया। बारहवफ़ात की नियाज़ के लिए पिस्ता-बादाम काट रही थी। मैंने कहा—अगर खाने पर फैयाज़ साहब को बुला लिया जाय, तो ?

—तौबा करो, बेटी ! नौज मैं नज़र-नियाज़ की ची उस उजड्डु-गँवार को खिलाऊँ ?

—इसमें क्या हर्ज है ?

—ऐ बस, बीबी, उस ख़ब्बीस का नाम न लो। दम टूटता है मेरा उसकी आवाज़ से ही।

—हटिए, ख़ालाबी, आप भी कितनी ज़ालिम हैं ! वह तो बेचारे आपकी इतनी तारीफें करते हैं !—मैंने गप्प झाड़ी।

—उई, ख़ुदा की मार उसकी सूरत पर ! मुआ मेरी तारीफें काहे को करने लगा ?

—दिल से कभी-कभी आदमी मजबूर हो जाता है।

—अरे लौंडिया, तेरा दिमाग़ तो नहीं चल गया ?

—ख़ुदा क़सम !—मैंने झट झूठी कसम खा ली।

ख़ालाबी का मारे गुस्से के मुँह लाल हो गया। मेरी जान निकल गयी।

—बता तो, मूँडीकाटा मेरे बारे में क्या कहता था ? ठहर तो जाओ, बब्बन मियाँ से कहकर मुए की चूलें न ढ़ीली करा दी हों, तो बसक़ुदसिया नहीं चमारी कहना ! बता, क्या कहता था ?
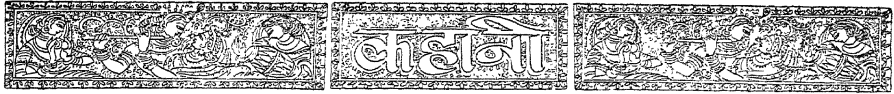
—कुछ भी नहीं, ख़ालाबी, वह बस, वह कहते थे, कितनी ऊँची आवाज़ है !—मैं बौखला गयी।

—हाँ है, तो, फिर उसके बाप का साझा ? फोड़ ले अपने कान !

—उँह, आप तो बस उल्टा ही मतलब निकालती हैं ! यह थोड़े ही कह रहे थे कि चीख़ती हैं। उनका मतलब था, साफ़, खुली हुई आवाज़ है, मौलानाओं-जैसी।

—जिन्नात कहीं का ! खब्ती, झंडूस !

—क्या समझती हैं आप उन्हें ? बेचारे को ग़म और रंज ने ऐसा कर दिया है। ज़्यादा-से-ज़्यादा चार-पाँच बरस बड़े होंगे, यही कोई चालीस के।

—हाँ, तो मैं तुझे तीस-पैंतिस की लगती हूँ ?

—बत्तीस की ! क़सम से जो ज़रा भी बड़ी लगती हो। फ़ैयाज़ साहब तो मुझे आपकी बहन समझते थे !

ख़ाला बी मुस्करा दीं—मक्कार है कमबख़्त।

—हटिए भी, खालाबी।...कसम से इतने नेक हैं, हमेशा आप ही के बारे में बातें करते रहते हैं।...खाना कितना मज़ेदार पकाती हैं, कशीदाकारी में तो जवाब नहीं। नुमायश में क्यों नहीं भेजती हो उनकी चीज़ें ?

—ऐ, चल हट, लड़की !

—सच ! और कहते थे, बड़ी क़ाबिल मालूम होती हैं !...कभी बात-चीत का मौक़ा नहीं मिलता, ऐसी क़ाबिल औरतें हिन्दुस्तान में गिनती ही की होंगी !

—उँह, बस, रहने भी दे !—मेरी बात टालकर वह काम में लग गयीं। मैंने चुपके से कनखियों से देखा। वह कुछ खोयी-खोयी-सी नजर आने लगीं।

थोड़ी देर बाद वह आईने के पास से गुज़रीं, तो ठिठक गयीं। मेरी आँख बचाकर उन्होंने चुपके से दो-चार सामने के सफ़ेद बाल चुन लिये और फिर काम में लग गयीं।

कहते हैं, आदमी कोशिश करे, तो पत्थर में भी जोंक लग जाती है और खालाबी पत्थर नहीं थीं। पहले तो बिगड़ीं, फिर टाल गयीं, फिर गौर से सुनने लगीं, फिर धीरे-धीरे काम छोड़कर सवाल करने लगीं।

उधर इलियास ने अपनी सारी चापलूसी खर्च कर दी। मेरी गवाही दिलवायी कि खालाबी उनके शिष्टाचार और योग्यता से बड़ी प्रभावित हैं।

और एक दिन हमारी मुरादें पूरी हो गयीं।

बागीचे में फ़ैयाज़ साहब ने गमलों को सजाने के बारे में बड़ी नर्मी से कोई राय दी, जो खालाबी ने मान ली।...इश्क वाक़ई अन्धा होता है। न आगा देखे, न पीछा। सच कहता था इलियास, बड़े-बूढ़े अपनी तनहा और सुनसान जिन्दगी के मुकाबिले में नौजवानों का बेक़रार और बेकल इश्क देखते हैं, तो जल जाते हैं। मगर यह भी सच है कि बुढ़ापे में इश्क जानलेवा होता है। कहाँ तो खालाबी की दुनिया सिर्फ मेरे अस्तित्व तक सीमित थी। ज़रा-सी को लेकर पाला, गुड़िया की तरह हर वक्त मुझसे खेला करतीं, मेरा खाना अपने हाथ से पकातीं और कभी-कभी अपने हाथ से मुँह में निवाले भी देतीं। मेरे कपड़े सीतीं, सोयटर बुनतीं और इसके बदले में वह चाहती थीं कि जिस तरह वह मुझमें डूबी थीं, मैं उनमें लीन रहूँ। वैसे मेरी शादी का बड़ा अरमान था। पर मुझे विश्वास था कि वह मेरी जुदाई सहन न कर सकेंगी। कुछ ही महीनों में उनकी बरसों की पड़ी हुई आदतें बदल गयीं। बजाय उजाड़ सूरत रहने के, बड़ी साफ़-सुथरी और अपटुडेट पोशाक पहनने लगीं।

ख़ालाबी बाग़ीचे में बैठी सोयटर बुन रही थीं। फ़ैयाज़ साहब खुरपा लिये क्यारियों की मुँडेरें दुरुस्त कर रहे थे और साथ-ही-साथ अपने पुराने क़ब्ज़ और वात रोग के बारे में भी बातें कर रहे थे। ख़ालाबी अपने पुराने ज़ुकाम का रोना रो रही थीं। कितनी बदल गयी थीं ख़ालाबी ! उनके सुन्दर मुखड़े पर से उम्र के कई साल झड़ गये थे, मानो उनकी रूठी हुई जवानी ने घूमकर दोबारा उनकी तरफ़ देख लिया हो। पहले तो, बस, वह हर वक्त मेरे पीछे पड़ी रहती थीं। कालिज से आयी तो, मुँह क्यों उतरा हुआ है ? मोसम्बी का रस पी ले, बिस्कुट ही खा ले। आग लगे इन मुए फ़ाक़ों का। अच्छा फ़ैशन चल गया है। अरी, कुछ मेवा साथ ले जाया कर रास्ते के लिए !

मैं चिढ़ जाया करती थी। मगर अब कुछ दिन से जैसे वह मेरे पीछे पड़ना भूलने लगीं। हर समय बस यही बातें हुआ करतीं...फ़ैयाज़ साहब को नर्गिसी कोफ़्ते बहुत भाते हैं।...फ़ैयाज़ साहब आलू-पालक की तैयारी पसन्द करते

हैं।...आलू की खीर बहुत पसन्द हैं उनको।...उड़द की दाल बाई पैदा करती है।.. मसूर की दाल ख़ुश्की पैदा करती है।...बस, जब देखो,या तो फ़ैयाज़ साहब से पेट की ख़राबी के बारे में विचार-विनिमय हो रहा है, या उनके लिए आलू की खीर तैयार हो रही है, या उनके लिए सोयटर बुने जा रहे हैं। उनके मोज़ों में रफ़ू हो रहे हैं। क़मीज़ों की मरम्मत हो रही है। हम दोनों, जितनी देर जी चाहता, मज़े से गप्पें लड़ाते। कौन रोकनेवाला था।

नदी में बाँध लगाओ, तो वह और चढ़ती है। इसी तरह रोक थाम से मुहब्बत में तड़प पैदा हो जाती है। ख़ाला बी की रोक-थाम न रही, तो जैसे इलियास से मिलने की वह तड़पती हुई चाहत ही न रही। हम मिलते, तो ज़्यादातर उन्हीं दोनों की बातें होतीं। कभी उन बातों पर लड़ाई भी हो जाती।

—भई, तुम्हारी गुड़िया तो हमारे गुड्डे पर बेतरह लट्टू है!—इलियास मज़ाक़ उड़ता।

—जी, आपके गुड्डे साहब ही जान को आये हुए हैं बेचारी के!—मैं जलकर जवाब देती।

—मगर ये दोनों घुट-घुटकर इतनी बातें क्या करते रहते हैं?

—वही पुराने क़ब्ज़ और ज़ुकाम की बातें।

हम लोग हँसते।

❀

एक दिन ख़ालाबी गीले बालों के साथ बाग़ीचे में बैठी फ़ैयाज़ साहब से रात-भर गप्पें लड़ाती रहीं। रात को एकदम तेज़ बुख़ार चढ़ आया। फ़ैयाज़ साहब को जो पता चला, तो बौखला-बौखलाकर सारे शहर के डक्टरों को फ़ोन कर डाला। इधर मुझे और इलियास को हुक्म दिया कि कालिज जाने की ज़रूरत नहीं। कोई मर रहा हो, तो भी आप लोग कालिज जायेंगे। हालाँकि हम कुछ नहीं कर सकते थे, सिवाय इसके कि उनके साथ ख़ुद भी बौखलायें। रात-भर उनके पलंग के पास कुर्सी डाले बैठे रहे।

दो दिन बाद जब बुख़ार उतरा, तो उन्होंने कसकर ख़ाला बी को डाँट पिलायी—कुदसिया, तुम्हें अपनी सेहत का बिल्कुल ख़याल नहीं। अव्वल तो शाम को नहाना हिमाक़त थी, दूसरे बाग़ीचे में इतनी रात तक बैठना...तीसरे... दिमाग़ ख़राब है, किसी की सुनतीं नहीं। कितनी बार कहा, टानिक पियो, यों मरने का शौक़ है, तो कुएँ में कूद पड़ो!

ख़ालाबी मुस्कराती रहीं—ऊँह, बके जाओ! सठिया गये हो!

इस बीमारी के बाद तो दोनों इतने निकट आ गये कि दो अलग घरों में रहने का सवाल ही फजूल मालूम होने लगा। बीमारी के दिनों में फ़ैयाज़ साहब और इलियास इधर ही खाना मंगवा लिया करते थे। उसके बाद भी यह सिलसिला न टूटा और दोनों घरों का खाना-पीना एक साथ ही हो गया। वैसे भी सिवाय इतवार के दोपहर का खाना फ़ैयाज़ साहब ख़ालाबी के साथ ही खाते-पीते। उन्हें अपने घर की कोई चीज़ पसन्द न थी। इसलिए तय हुआ कि दोनों घरों का खाना एक ही जगह पकने लगे। ख़ानसामा की ज़रूरत नहीं, बस, एक बेयरा काफ़ी है। बाप-बेटे के लिए किफ़ायत भी होगी।

और यों धीरे-धीरे एक दिन बाग़ीचे के बीच में खिंची हुई काँटों की बाड़ भी ग़ायब हो गयी

❀

इश्क़ और मुश्क छिपाये नहीं छिपते और ख़ास तौर पर यह निराले क़िस्म का इश्क़! कालिज में कई दफ़ा लड़कियों में इलियास तो हँसकर टाल गया, मगर मुझे बहुत बुरा लगा। ख़ालाबी की हँसी उड़े, यह मुझे पसन्द नहीं था। एक दिन जो किसी लड़की ने फब्ती कसी, तो मेरा ख़ून खौल गया। पर गुस्सा मुझे ख़ालाबी पर आया। बुढ़ापे में ये चोंचले ज़रा नहीं भाते। दूध-पीती बच्ची तो हैं नहीं।

घर आयी, तो दोनों बैठे पचीसी खेल रहे थे। फ़ैयाज़ साहब ने ख़ालाबी की गोट पीट ली थी और वह जीतने की कोशिश कर रही थीं। फ़ैयाज़ साहब बेतरह हँस रहे थे।

—मेरी पक्की गोट बेईमानी से पीट ली!—ख़ालाबी रुआँसी होकर बोलीं!

—हारती हो, ऊपर से रोती हो!—उन्होंने गोट अपनी जेब में डाल ली।

—गोट वापस वहीं रख दीजिए, नहीं तो हम नहीं खेलते!

—खेलोगी कैसे नहीं ? वरना बाज़ी हमारी। क्यों, बेटी, सफ़िया, तुम फैसला करो।—उन्होंने मुझे पुकारा।

—यह देखो, पूरे तीसों पर रख दी गोट और...

—यह रसूलन बुआ कहाँ मर गयीं ?—मैंने रुखाई से किताबें पटककर कहा। दोनों के मुँह उतर गये।

—फैयाज़ साहब के सिग्रेट लेने नुक्कड़ तक गयी हैं,—ख़ालाबी सहमकर बोलीं।

इलियास अपनी टीम लेकर आगरा गया हुआ था। कमबख़्त ने वहाँ जाकर एक पोस्टकार्ड तक नहीं लिखा। मैं जली-भुनी अपने कमरे में जाकर पड़ रही।

—मैं लाती हूँ चाय,—ख़ालाबी ने आवाज़ दी और मैं और भी जल गयी।

जी हाँ, आपको इश्क फ़रमाने से कब फ़ुरसत है! मैंने सोचा। इलियास का कोई ख़त नहीं आया। वह ज़रूर कृष्णा के साथ जयपुर चला गया। कई लड़कों का आगरे से जयपुर जाने का प्रोग्राम था। मगर कृष्णा के साथ इलियास का मेल-जोल बहुत बढ़ता जा रहा था। उँह, मेरी बला से! मेरे मना करने पर भी वह जयपुर चला गया, तो मेरी बला से!

—आपने क्यों तकलीफ़ की ?—मैंने चाय की ट्रे उनके हाथ से ले ली,—रसूलन बी कहाँ गयीं ?

—फैयाज़ साहब का नौकर निगोड़ा भाग गया। तुम चाय पियो, मैं ज़रा एक प्याली उनको भी दे आऊँ। लो, ये बिस्कुट खाओ, ताजे बनाये हैं।

—फैयाज़ साहब के लिए बनाये होंगे, उनको ही दे आइए!—मैंने ताना दिया।

ख़ालाबी जाते-जाते ठिठक गयीं—तुम खाओ, मैं उन्हें और दे दूँगी।—वह मरी हुई आवाज़ में बोलीं।

उनके जाने के बाद मेरी आँखों में आँसू आ गये कि मैंने ऐसी बुरी तरह तांना दिया। मगर हद होती है एक बात की। बस, हर वक्त फैयाज़ साहब दिमाग़ पर सवार हैं!

खाने पर कई बार रसूलन बुआ बुलाने आयीं, तब गयीं। खाने पर और भी जान जली। रोज की तरह दोनों चहक रहे थे। क्या ग़ैरदिलचस्प बातें होती थीं!... इसमें विटामिन कम है, इसमें ज़्यादा। यह चीज़ बादी, यह देर में हज़म होनेवाली है, इससे नफ़ख़ (वात) होता है। यह क़ब्ज़ नहीं होने देती।...जी मतलाने लगता था दोनों की इस किस्म की छान-बीन से। ख़ाला बी ज़िद कर रही थीं कि आलू की खीर फैयाज़ साहब और लें और वह कहते थे—भली आदमी, क्या सब मुझी को ठुंसा दोगी ? और भी खानेवाले हैं। सफ़िया बेटी, तुम लो।

—जी, मुझे खीर पसन्द नहीं,—मैंने बनावटी शिष्टता दिखाते हुए कहा।

इन दोनों का इश्क तो जान का जंजाल हो गया। खाने के बाद तय हुआ कि फ़िल्म का आख़िरी शो देखा जायगा, क्योंकि फैयाज़ साहब ख़ुद जाकर टिकट ले आये थे। मैं बिल्कुल सिनेमा न जाना चाहती थी, लेकिन इस ख़याल से चली गयी कि अकेले में तो और भी घबराहट होगी। अब वहाँ सिनेमा में न जाने क्या दुख-भरा सीन आया कि ख़ालाबी फस-फस रोने लगीं।

—चलो, नहीं देखते फ़िल्म!—फैयाज़ साहब बड़-बड़ाये!

उफ़! जी चाहा कि दोनों बुड्ढे-बुढ़िया का मुँह नोंच लूँ। ज़बरदस्ती करके लाये और अब लाडो रोने लगीं, तो आधी पिक्चर से कहते हैं कि नहीं देखते।

—भाई क़दसी, तुम्हारी तबीअत ख़राब हो जायगी!—वह परेशान होकर बोले।

—जी नहीं, मैं बिल्कुल ठीक हूँ,—ख़ालाबी ने कहा।

फ़िल्म कम देखी गयी, एक-दूसरे की ख़ैरियत ज़्यादा पूछते रहे।

—सर्दी तो नहीं लग रही है ?

—आपका घुटना मुड़े-मुड़े दुख तो नहीं गया ?

—ठीक दिखायी दे रहा है ? वरना मेरी सीट पर आ जाओ।

—जी नहीं, मैं बिल्कुल ठीक हूँ।

मैं कबाब हो गयी। या तो वह दिन था, बुड्ढा ख़ब्बीस और लाउड स्पीकर कहा जाता था, या आज ये लाड हो रहे हैं। ख़ून हो गया फ़िल्म का। फैयाज़ साहब फ़िल्म से ज़्यादा ख़ाला बी की नब्ज़ देख रहे थे। कहानी का

क्रम भला ख़ाक समझ में आता। बार-बार पूछते—यह कौन है?

—हीरो।

—यह कमबख़्त कहाँ जा रहा है?

—हीरोइन के यहाँ।

—आह, मगर इसके तो अभी उसने चाँटा मारा था।

—नहीं, वह तो वैम्प थी।

लाहौल विला कूवत! ख़ुदा इन बुड्ढों के साथ कभी फ़िल्म न दिखाये!

—भई कमर दुख गयी। बहुत लम्बी फ़िल्म है।

आख़िर किसी तरह फ़िल्म ख़त्म हुई।

इलियास का ख़त आया। दो लाइनें, बड़े लुत्फ़ आ रहे हैं। काश, तुम आ सकतीं!

मैं कैसे जा सकती थी, मेरे इम्तहान सर पर सवार थे। शाम को थकी-हारी, खिसियायी घर पहुँची, तो ड्राइंग-रूम में क़दम रखते ही मेरे पैरों-तले की ज़मीन खिसक गयी।

ख़ालाबी फ़ैयाज़ साहब के सीने पर सर रखे सिसकियाँ भर रही थीं और वह उनके बाल चूम रहे थे। गुम-सुम मैं दम-भर को खड़ी रह गयी। दोनों मुझे देखकर बुरी तरह बिदककर अलग हो गये।

मैं भन्नायी हुई सीधी अपने कमरे में चली गयी और अन्दर से कुंडी लगा ली और पलंग पर गिरकर फूट-फूटकर रोने लगी।

—चाय पी लो, सफ़्फ़ो बेटी!—डरी-डरी ख़ाला बी मेरे कमरे में आयीं। दरवाज़ा खोलकर मैं मुँह फेरकर लेट गयी।

—सफ़िया बेटी!...मैं...—उनकी जबान लड़खड़ा गयी—सफ़िया!—उन्होंने प्यार से मुझे अपने सीने से लगाना चाहा। मगर मैं मचलकर हट गयी।

—आप इतनी बच्ची तो नहीं, जो कुछ न समझती हों।...कालिज में सब आपका मज़ाक उड़ाते हैं और मुझे बड़ी शर्म आती है। मैं...आपकी इजाज़त हो, तो मैं बोर्डिंग में चली जाऊँ।

खालाबी के चेहरे पर एकदम नामुरादी और उदासी के बादल छा गये। खामोश, भोली, अनजान लड़की की तरह वह अपने हाथों का कम्पन छिपाती रहीं। मुझे बड़ा तरस आया, मगर जी बुरी तरह सुलगा हुआ था।

—अब तुम्हें शिकायत न होगी, बेटा,—उनका चेहरा दस साल बूढ़ा हो गया।

आँखों के गढ़े भयानक हो गये। उस समय वह बड़ी ही कुरूप लग रही थीं। मुरझाये हुए बूढ़े चेहरे पर काले भौंरा बाल बड़े बेतुके लग रहे थे। कनपटी पर ख़िज़ाब के भद्दे धब्बे बड़े बेढंगे लग रहे थे। यह उन्होंने अपना क्या खिलौना बना डाला था! वह मेरी गम्भीर और संजीदा ख़ालाबी कितनी छिछोरी लौंडिया बनने की कोशिश कर रही थीं! वह मुर्दा पैर घसीटती कमरे से चली गयीं।

न जाने उन्होंने फ़ैयाज़ साहब से क्या कहलवा दिया कि वह सर झुकाये लकड़ी टेकते चले गये। खाना भेजा गया, तो मालूम हुआ कि उनका कमरा बन्द है। ख़ालाबी ने सहमी नज़रों से मेरी तरफ़ देखा और सर झुका लिया। उनसे एक कौर भी न खाया गया।

मुझे मज़ा आ रहा था। मुझे भी तो डाँटा करती थीं ख़ालाबी। कभी नाव गाड़ी पर तो कभी गाड़ी नाव पर। जो चाहा, प्यार से गले में बाँहें डालकर मना लूँ। पर न जाने क्यों हिम्मत न पड़ी। सोचा, ख़ैर कल देखा जायगा। ज़रा-सी देर में मना लूँगी। ख़ालाबी ज़्यादा देर रूठनेवाली नहीं।

सुबह कालिज जाने से पहले उनके कमरे में गयी, तो वह मुँह ढाँके सो रही थीं। सोचा, शाम को सही। शाम को इलियास अपनी टीम-सहित वापस लौटा। कामियाबी के सिलसिले में खूब नौ-दस बजे तक उधम होती रही। मैंने इलियास को बताया। वह ख़ूब हँसा। मगर ख़ालाबी के साथ मेरा व्यवहार उसे पसन्द न आया।

रात को ग्यारह बजे जब हम घर पहुँचे, तो मालूम हुआ कि भूचाल आया हुआ है। नौकर इधर-से-उधर भाग रहे हैं। फ़ैयाज़ साहब पूरी पाटदार आवाज़ से गरज रहे हैं। टेलीफ़ोन पर डाक्टरों को गालियाँ दे रहे हैं। जो डाक्टर आ गये हैं, उनसे उलझ रहे हैं।

—सिविल सर्जन उल्लू का पट्ठा है। उससे कहो कि अगर वह इस वक़्त न आया, तो मैं उसपर क़त्ले-अमद का दावा ठोंक दूँगा!

ख़ालाबी को डबल निमोनिया हो गया था ।

रात को फ़ैयाज़ साहब ने ग़ुस्से में खाना वापस जो कर दिया था, इसलिए ख़ालाबी, जब सब सो गये, तो चुपके-चुपके खाना लेकर उनके कमरे पर गयीं और वापस आयीं और फिर गयीं। इसलिए कि खटके से किसी की आँख न खुल जाय, उन्होंने जूते उतार दिये। न जाने कितनी रात तक वह दरवाज़े पर खड़ी रहीं कि शायद फ़ैयाज़ साहब किसी ज़रूरत से बाहर निकलें, पर वह न निकले। दरवाज़ा खट-खटाने की हिम्मत न हुई कि कहीं फ़ैयाज़ साहब चिंग्घाड़ने न लगें। वह भूखे जो सो गये थे। इसलिए वह सारी रात वीरान घूमती रहीं। पुराना ज़ुकाम, उसपर यह सर्दी, डबल निमोनिया हो गया ।

❀

कई रातें आँखों में काट दीं। और फ़ैयाज़ साहब ने तो आँख झपकाने की भी क़सम खा ली। उनके चेहरे पर वहशत बरसने लगी ।

—क़ुदसिया से मैंने निकाह के लिए दरख़्वास्त की,—उन्होंने वीरान आँखों से मेरी तरफ़ देखा—उस वक्त तो राज़ी हो गयी।...फिर न जाने क्या हुआ कि उन्होंने मेरे पैर पकड़कर क़सम दिलायी कि अगर दोबारा इस बात का जिक्र हुआ, तो वह जान दे देगी। उस वक्त तो मैं खामोश हो गया, मगर मैंने सोचा कि सुबह देखा जायगा। सुबह आँख देर से खुली, क्योंकि रात ज़रा बेचैनी रही। रसूलन ने आकर खबर दी कि बीबी बुख़ार में बेहोश हैं।...मैं आया तो,—वह चुप हो गये। फिर बड़े दर्द से बोले—इलियास मियाँ, क़ुदसिया की तबीअत ठीक होते ही हम गाँव चले जायेंगे। हमने उनसे कह दिया है कि हमारे लिए उनका वजूद उतना ही ज़रूरी है, जितना हवा में साँस लेना।...इलियास मियाँ, हम क़ुदसिया के बग़ैर बुढ़ापे का बोझ नहीं उठा सकेंगे !—उन्होंने हसरत से मासूम बच्चे की तरह कहा और सर झुका लिया।

एकदम वह बहुत बूढ़े और कमजोर मालूम होने लगे।

ख़ालाबी बेहोशी से चौंकीं। उनका चेहरा हल्का दुधिया सफेद हो रहा था। ख़िज़ाब लगे बालों को छोड़कर सफ़ेद बाल बढ़ आये थे।

—बेटी, तुम परेशान न हो। फ़ैयाज़ साहब यों ही बकते हैं।—उन्होंने ज़रा देर को आँखें खोलकर कहा—मैं अच्छी नहीं होने की।

और फैयाज़ साहब के बुढ़ापे का भारी बोझ बाँटने के बजाय ख़ालाबी ने अपना बोझ दुनिया की छाती से हल्का कर दिया।

गुड़िया गुड्डे को वीरान और अकेला छोड़कर रूठ गयी।

इसके बाद किसी ने फ़ैयाज़ साहब को हँस-हँसकर पचीसी खेलते नहीं देखा। वह पहले की तरह बदमिज़ाज, ख़ुर्राट और ख़ब्बीस हो गये हैं।

मैं और इलियास अजनबियों की तरह एक-दूसरे की तरफ़ देखते हैं और बर्फ की एक दम घोंटनेवाली दीवार हम दोनों के बीच आकर हमें एक-दूसरे से बहुत दूर कड़वी यादों की सुनसान वादियों में फेंक देती है।

उर्दू से अनु० 'हुनर'
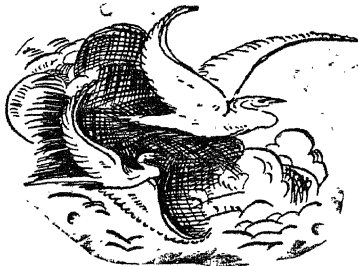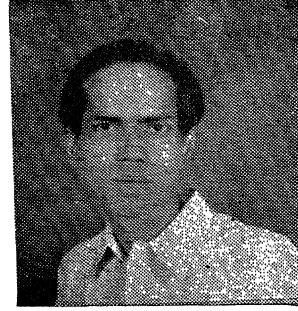
जो-कुछ हुआ, उसके बहुत-से कारण बताये जा सकते हैं, जैसे कि आज पहली तारीख थी, या यह कि मैं भाई साहब का मेहमान था, जो उनसे उस समय से घनिष्ठ था, जब वह विवाहित भी न थे, या यह कि ये बसन्त के दिन थे। लेकिन हर घटना हो जाने पर उसके कारण तो खोज ही लिये जाते हैं। इसलिए इसपर सर खपाना फ़िजूल है।

मैं महीने के उत्तरार्द्ध में उनके यहाँ पहुँचा था। इसकी खलिश भाई साहब को कई दिनों से थी। आज आगयी पहली तारीख़। इसलिए निहायत शानदर ढंग से दिन का आरम्भ हुआ। शेव करने के बाद उन्होंने साबुन, ब्रुश, रेज़र, सब वैसे ही छोड़ दिये और आज के प्रोग्राम के विषय में मुझे समझाने लगे—चार बजे सब लोगों के साथ घर से चल देना। मैं सीधा महाबीरवाले पार्क में मिल जाऊँगा। फिर पिक्चर देखी जायगी, चाट उड़ेगी, कुछ मार्केटिंग होगी और फिर घर।

भाभी चाय की केटिल ले अन्दर आयीं, तो उनकी दृष्टि शेव के सामान पर पड़ी—काहिल कहीं के! ब्लेड खराब हो जायगा कि नहीं? चलो, धोकर रखो।

—उँह!—भाई साहब ने बेज़ारी से हाथ के झटके से किसी कल्पित बाधा को दूर ढकेला। शायद उनका मतलब यह था कि अब पहली के बाद इस घिसे-घिसाये ब्लेड से दाढ़ी बनानेवाले पर लानत! और सचमुच ही उनके गालों के छिले और उधड़े हुए निशान ब्लेड की बदनीयती की गवाही दे रहे थे।

लेकिन भाभी ज़रा न पसीजीं और हुकुम सुनाया—चलो, धोओ, वर्ना चाय न मिलेगी!

भाई साहब ने दूसरा और तीसरा पैंतरा एक साथ ही बदला—एक दिन तुम ही धो दोगी, तो क्या हो जायगा? कुछ तो पति-सेवा किया करो!—फिर जल्दी से मुस्करा कर मेरी तरफ इशारा करते हुए बोले—ये भी शेव करेंगे।

—क्यों?—भाभी ने मुझसे पूछा।

यद्यपि उस ब्लेड से मुक़ाबिला करने का मेरा ज़रा भी इरादा न था, लेकिन भाई साहब इस तरह समझदारी-भरी नज़रों से मेरी तरफ़ ताक रहे थे, जैसे मैं ही उनका एकमात्र सहारा था। झक मारकर उनका उद्धार करना ही पड़ा। बोला—हाँ, भाभी पर चाय पीकर।

बात टल गयी, अब भाई साहब ने उत्साह से उन्हें भी आज के प्रोग्राम समझाने लगे। बातों-बातों में उन्होंने इसका भी जिक्र कर दिया कि उनका इरादा है कि भाभी के पुराने बुन्दे बदलकर कोई नयी डिज़ाइन के खरीदे जायँ। चर्चा भाभी को बुरी न लगी, लेकिन बदले में उन्होंने भी आत्म-

त्याग का उदाहरण पेश किया—इस बार तो तुम्हें अपने कपड़े ज़रूर बनवाने हैं। फिर देखा जायगा।

भाई साहब ने दुगने जोश से साबित करना चाहा कि कपड़े अभी वेटिंग लिस्ट में रखे जा सकते हैं।

अभी इस मसले का अन्तिम निर्णय न हो सका था कि आंगन से ज़ोर की चीख़ की आवाज़ सुनायी दी।

भाभी बेतहाशा दौड़ पड़ीं। नन्दन साहब ने ट्राईसिकिल को बरामदे पर चढ़ाने की कोशिश की थी, लेकिन वह ट्राइसिकिल थी, कोई टैंक तो थी नहीं, इसलिए पलटा खा वह स्वयं उनपर सवारी गाँठ बैठी। अब वह इतमीनान से उसके नीचे पड़े चिल्ला रहे थे। भाभी के पीछे ही चटपट हम लोग भी जा पहुँचे।

भाई साहब बिना समझे-बूझे ही चीखने लगे—गिर पड़े न? कह दिया, बेटा, शरारत न किया करो, लेकिन सुनता कौन है! अच्छा हुआ!

भाभी ने उसे उठाकर गोद में ले लिया। उसकी ज़ोरदार चीखों ने भाई साहब को नर्वस कर दिया और वह रौ में बोलते ही गये—दिन-ब-दिन शरारती होता जा रहा है, छोड़ तो कमबख्त को!

भाभी ने तीव्र भर्त्सना के साथ उनकी ओर देखा।

भाई साहब को, इस समय, जबकि वह भाभी के साथ बुन्दों की गंम्भीर समस्या सुलझा रहे थे, नन्दन का बेजा हस्तक्षेप खल गया था। आख़िर सवारी का कमाल दिखाने का यही मौक़ा था!

तभी ग़ुसलख़ाने के पास से भंगिन ने पुकारा—बहूजी, पानी डाल दो।

कुछ देर बाद फिर उसने अपनी याचना दुहरायी—देर हो रही है, बहूजी!

नन्दन भाभी की गोद में चुप था, लेकिन ज्योंही उन्होंने उसे उतारना चाहा, वह फिर सिसकने लगा। इसलिए भाभी हड़बड़ाकर बोलीं—ज़रा एक घड़ा पानी डाल दो, साफ़ कर दे।

भाई साहब भुन्नाते हुए नल की तरफ़ चले!

समय काफ़ी हो चुका था। इसलिए जैसे ही घर में शान्ति की स्थापना हुई, हम लोग खाने बैठ गये। साईकिल बरामदे में निकालकर भाई साहब चौके में आ गये। भाभी खाना परोसने लगीं।

सहसा भाभी की दृष्टि भाई साहब की बुशशर्ट के कालर पर पड़ी, जो फूचड़ों से भरे हुए थे—अरे, यह क्या पहन लिया? बदलो जाकर इसे!

—क्या हुआ?—भाई साहब ने पूछा।

—यह बुशशर्ट बाहर पहनकर निकलने लायक़ है? —शायद भाभी के दिमाग में आज के प्रोग्राम तैर रहे थे—जब अच्छी कमीज़ें पड़ी हैं, तो क्या ज़रुरत है कि यही पहनी जाय।...कुछ नहीं, सिर्फ़ आदत!—और उन्होंने बड़े प्यारे ढंग से अपने होंठ सिकोड़े, माथे पर कुछ शिकनें पड़ गयीं।

—चलो, चलो, खाना दो। फिर बदल लेंगे।—भाई साहब ने घड़ी पर नज़र डालकर ज़रा घबराहट में कहा।

—हमम् भी खाना खायेंगे,—नन्दन ने ऐलान किया।

—हाँ-हाँ बेटा, ज़रूर खाना,—भाभी ने उसे टाला—पहले इसमें से पसन्द कर लो कि क्या-क्या लोगे।—और उन्होंने एक पत्रिका उसे पकड़ा दी, जिसमें सचित्र विज्ञापनों की भरमार थी।

हम खाने में व्यस्त हो गये। नन्दन का मन पत्रिका के चित्रों में उलझ गया। भाभी थाली में समय-समय पर खाने का सामान डालती जाती थीं और बीच-बीच में नन्दन से बातें करती हुई उसे बहला भी रही थीं—क्या-क्या सामान लेगा, राजा बेटा?...यह क्या है, भई?...फाउन्टेनपेन!...अभी नहीं, जब बेटा बड़ा होकर पढ़ने जायगा, तब!...यह तो स्टोव है। वाह, भई, लेकिन राजा बेटा स्टोव का क्या करेगा?...तुम्हारी दुलहिन समय पर खाना पका दिया करेगी।...यह पिस्तौल?...अरे, नहीं। इससे जान मारी जाती है। इसे लेकर क्या करना है?....

लेकिन आख़िर तो राजा बेटा हाइड्रोजन युग में पैदा हुआ था। नन्दन ने पन्ने पर उँगली गड़ा दी—पिस्तौल लेगा!

भाभी को बात माननी पड़ी।

उन्होंने दो चम्मच शोरबा कटोरे में डाला और पिस्तौल का वर्णन पढ़ने लगीं : अमेरिकन माडेल पिस्तौल मानिन्द असली। यह पिस्तौल सिर्फ हमसे मिलेगा। नाटक, ड्रामे, सिनेमा और जान-माल की हिफाजत के लिए नायाब तोहफ़ा। इसकी शक्ल इतनी डरावनी और असली है कि जंगली जानवर, चोर-डाकू इसकी शक्ल देखते ही भाग खड़े होते हैं। घोड़ा दबाने से कड़कदार अवाज़ होती है और आग की चिनगारियाँ निकलती हैं। छोड़नेवाला स्वयं चौंक जाता है। मूल्य सिर्फ ८) चमड़े का केस २||) १०० अतिरिक्त कारतूस २||)।

नोट : इसे रखने के लिए किसी किस्म के लाइसेन्स की जरूरत नहीं है। थोड़ा-सा स्टाक रह गया है। जल्दी मँगवायें, वर्ना हाथ मलना पड़ेगा।

भाभी इस गद्य को भी ऐसे गा-गाकर लय से पढ़ रही थीं, जैसे वह कोई ऊँचे दर्जे की कविता हो। उनका पढ़ना नागवार भी लगता था और यह भी इच्छा होती थी कि अभी पढ़ना बन्द न करें।

—हाँ, ठीक तो है, अबकी इसे पिस्तौल खरीद दो।—भाभी बोलीं।

भाई साहब चौके से उठ चुके थे और हाथ धो रहे थे।

वह अनुरोध के स्वर में बोलीं—चलो, कमीज़ निकाले देती हूँ। ईश्वर के लिए इसे बदलकर जाना।

(२)

किसी दूसरे की फेमली को साथ लेकर निकलना, वह चाहे अपने भाई की ही क्यों न हो, कोई बहुत सुखद अनुभव नहीं होता। हर क्षण चौकन्ना रहना पड़ता है कि कहीं कोई कमी न रह जाय, जिससे उन्हें एहसास हो कि अगर वह होते, तो यह होता। इसलिए ज़रूरत से ज्यादा दिलजोई के लिए तैयार रहना पड़ता है। अगर फेमिली का मालिक साथ हो, तो डाँट-फटकार कर बच्चों को काबू में रखे, लेकिन यहाँ तो एकमात्र खुशामदों और रिश्वतों का ही सहारा रहता है।

पैराम्बुलेटर बाहर निकाला। छोटे बच्चे को आराम से उसमें लिटा दिया। खुदा-खुदा करके किसी प्रकार मेकअप का आखिरी टच देकर भाभी बाहर निकलीं। सहसा नन्दन को सूझी कि जब बेबी पैराम्बुलेटर में लेटा है, तो उनका पैदल चलना अपमान की बात है। उन्हें भी गाड़ी में ठूँसा, तो बेबी जाग पड़ा और चिल्लपों करके अपना विरोध प्रगट करने लगा। नतीजा यह कि बेबी भाभी की गोद में, पैराम्बुलेटर की हैंडिल मेरे हाथ में और नन्दन साहब उसके अन्दर। अब यह काफिला इस रूप में चौराहे की ओर चला, जहाँ तांगा मिलना था।

ख़ैर, किसी प्रकार लद-फँदकर हम महाबीरवाले पार्क में पहुँचे। सन्ध्या समय की चहल-पहल पार्क में व्याप्त थी। चारों ओर सड़कों पर शोर-गुल, साइकिल, एक्के-ताँगों और लाउडस्पीकरों की मिली-जुली आवाज़ें व्याप्त थीं। पानी पाँड़े बाल्टी और रस्सी सँभाले लोगों की पुकारों पर दौड़ रहे थे। खोमचेवाले, खिलौनेवाले फिरकियों की भाँति चक्कर काट रहे थे। एक व्यक्ति एक झोला लटकाये सीटी पर, छायी बहार है, के स्वर निकाल रहा था, जिसकी चिचियाती आवाज़ कानों में बुरी तरह चुभती जा रही थी। हमने सीढ़ियों के नीचे ज्योंही अपना अस्थाई अड्डा जमाया, हाकरों का ध्यान हमारी ओर आकर्षित हो गया।

—प्यास लगी है,—नन्दन ने प्रस्ताव किया।

—बढ़िया मिठाइयाँ लीजिए बहूजी,—एक खोमचेवाले ने अपने बकस का ढकना खोल दिया।

नन्दन के लिए थोड़ी-सी मिठाई ली गयी। उसे जब वह न खत्म कर सके, तो आधी मिठाई भाभी ने अपने मुँह में डाल ली और मुझसे बोलीं— लो, तुम भी खाओ।

—जी, नहीं।

उन्होंने और आग्रह किया और मैंने इन्कार।

रंगीन साड़ियों और दुपट्टों को परियों की तरह फड़फड़ाती कुछ लड़कियाँ हम पर ऐसी बेनियाज़ी की नज़र डालती गुज़र गयीं, जो ख़ास तौर से उन लोगों के लिए रिज़र्व होती हैं, जो बच्चे- मैं अपने में सिकुड़ गया जी में आया कि परिवार से थोड़ी दूर हटकर उनपर ज़ाहिर कर दूँ कि जो उन्होंने मुझे समझा है, वह मैं नहीं हूँ।

पानी पीकर नन्दन को पेशाब लगी। मैं उन्हें लेकर कोने की तरफ़ चला।

खैरियत गुज़री कि भाई साहब रेलिंग के सहारे साइकिल लाक करते नज़र आ गये। जैसे मेरे मन पर से एक भारी

बोझ उतर गया। मैंने अपने को बड़ा कृतज्ञ पाया कि वह आ गये।

वह भी हमारे साथ ही अन्दर पहुँचे। उनके थके-रूखे चेहरे पर एक तरल मुस्कान नाच उठी और वह धम से बैठ गये। सहसा कुछ याद आ जाने पर उन्होंने जेब से एक छोटा-सा पैकेट निकाल नन्दन को पकड़ा दिया और बोले—नन्दन बाबू, लो।

भाभी ने उत्सुकता से पैकेट खोला—अरे, चाकलेट! वाह, भई!

नन्दन ने एक चाकलेट चूसना शुरू किया और साथ ही दूसरा खोलने लगे।

—बेटा, यह ठीक नहीं। सबको खिलाओ।—भाई साहब ने उसके हाथ को पकड़कर चाकलेट अपने मुँह में डाल लिया—मम्मी को भी दो, चाचा को भी।

नन्दन के मुँह में चाकलेट भरे थे, इसलिए वह खासे उदार थे। एक अधखाया चाकलेट उन्होंने भाभी के मुँह में ठूँसना चाहा। भाभी ने मुँह पीछे हटाया, तो उनका लक्ष्य चूक गया और राल से भीगा चाकलेट उनके गले से लिसट गया।

—हत्! गन्दा कहीं का!—भाभी बोलीं।

—क्या बात है?— भाई साहब ने बड़े भोलेपन से पूछा। और उनकी गर्दन से चाकलेट पोंछ देने के लिए हाथ बढ़ाया।

—चलो, हटो!—भाभी ने पीछे हटते हुए कहा—सारी शरारत तुम्हारी है, ब्लाउज़ ख़राब करा डाला।

—देखूँ!—भाई साहब ने अनुरोध किया।

भाभी शरमाकर ज़रा और पीछे सरक गयीं।

थोड़ी देर में भाभी ने टिफिन-कैरियर खोला। हमने नाश्ता किया। बेबी को दूध पिला दिया गया और अब ताज़ादम होकर हम लोग सड़क की ओर चले।

पहले नन्दन साहब गुब्बारों पर मचले, वे ख़रीदे गये, फिर बाँसुरी पर, वह भी ले ली गयी। भाई साहब ऊँचे मूड में थे। कौन-सी पिक्चर देखी जाय, इसपर काफ़ी बहस रही। अन्त में हमने एक ऐसी पिक्चर देखने का निश्चय किया, जिसके गानों में गलियाँ गूँज रही थीं।

पैराम्बुलेटर और साइकिल स्टालवाले को सौंप, भाई साहब ने बेबी को सँभाला, भाभी ने नन्दन की उँगली पकड़ी और मैंने वह झोला सँभाला, जिसमें घर की चाभियों का गुच्छा, बेबी के दूध की शीशी, नन्दन के बिस्कुट, गिलास और क्या जाने क्या-क्या अला-बला भरी थी।

इश्तहार शुरू हुए। रेक्सोना के इस्तेमाल से हम फिल्म-ऐक्ट्रेसों की तरह आकर्षक बन सकते हैं। डाल्डा के पकवानों से फेमिली हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्न रहती है। भारतीय चाय ताज़गी और शान्ति देती है, लाइफबोय हमें गन्दगी के किटाणुओं से बचाता है। लेकिन इनके पीछे मानवता की आवश्यकता के आधार पर हम साफ देख सकते थे कि आज की मानवता कितनी बदसूरत, परिवार कितने कमज़ोर और उदास, व्यक्ति कितना थका और अशान्त और हर तरह के गन्दगी के किटाणुओं से भरा!

ट्रेलर में नाचती नर्तकी के विषय में नन्दन को समझाने में थोड़ा-सा विवाद चला कि यह मौसी नाच रही हैं या बुआ! भाई साहब बता रहे थे कि मौसी हैं और भाभी बुआ।

फिर पिक्चर शुरू हुई। वह वैसी ही थी, जैसी होनी चाहिए थी। एक ऐसी दुनिया, जहाँ देश-काल की सीमायें मिट जाती थीं, जहाँ सदैव संगीत की मधुर धार बहती रहती थी, जहाँ लोग नटों के-से कपड़े पहनकर तलवारों से लड़ते थे, लेकिन ऐलक्ट्रीफाईड मकानों में रहते थे! जहाँ प्रेम के प्रभाव से स्वर्ग लोक तक में हड़बड़ी मच जाती थी।...

कई बार भाभी के आँसू भर आये। कई बार भाई साहब रोमान्टिक मूड में आ गये। कई बार बेबी ने भोंपू बजाकर अपनी अनिच्छा प्रकट की। नन्दन ने कई बार पानी पिया, प्रत्येक बार भाई साहब को नन्दन को पानी पिलाने ले जाना पड़ा। कई बार वह बेबी को चुप कराने भी ले गये। मैं दम साधे बैठा रहा।

पिक्चर खत्म हो गयी। तब हम बाहर आये। लेकिन किसी आनन्द के बजाय एक थकान-सी सब पर छा रही थी। नन्दन और बेबी के नाज़ उठाते-उठाते भाई साहब परेशान हो उठे थे। आखिर इसके पहले भी तो आफिस में सात घंटे

पिसाई कर चुके थे।

भाई साहब ने सुझाव दिया कि पार्क में चलकर वे आराम करेंगे और बेबी जो सो रहा था, उसे भी देखेंगे, हम लोग जाकर मार्केटिंग कर आयें या चाहे तो चाट भी खा लें। उनकी ज़रा भी तबीअत नहीं है। उनके इस प्रस्ताव पर मैं सिहर उठा, क्योंकि नन्दन साहब का हमारे साथ जाना खतरे से ख़ाली न था।

पार्क में आकर हम जम गये। चाट और मार्केटिंग का प्रोग्राम टाल दिया गया। सहसा तोंदवाले एक लालाजी छड़ी के सहारे मचकते हुए हमारी ओर आते दिखायी दिये और भाईसाहब को एक बड़ी लम्बी 'जयगोपाल' की। फिर कनखिओं से ताकते हुए बोले—आज तो पहली है, बाबू साहब। बड़ी सख़्त जरूरत है!...अबकी सब हिसाब कर दीजिए।...फिर अगला हिसाब चलेगा।

यह मुहल्ले के लाला हजारी मल थे, जो टोह-लगाते लगाते यहाँ भी आ मरे थे। उनके यहाँ से भाई साहब के यहाँ सारा राशन, तेल, घी, साबुन, बीड़ी, शक्कर आदि वस्तुएँ आती थीं। पिछले दिनों जब बेबी का जन्म हुआ था, नन्दन की एक बुआ को सहायता के लिए लाकर दो महीने रखना पड़ा। इसलिए हिसाब कुछ लम्बा हो गया था। प्रसव के सिलसिले में, अतिरिक्त खर्च के कारण भाई साहब उन्हें कुछ दे न सके थे। इस तरह इस समय उनका हिसाब सत्तर-अस्सी से कम न था। भाई साहब ने सोचा था कि एक महीने का हिसाब और कुछ पिछला चुका देंगे और इस तरह धीरे-धीरे सब चुकता कर देंगे। लेकिन उनकी माँग कुछ ऐसी थी कि वह समझ गये कि अब, की सारा हिसाब चुकता करना ही पड़ेगा। और फिर पूरा महीना...

पूरा महीना, जिसमें दूधवाला, धोबी, मकान का किराया, नन्दन के लिए बिस्कुट-मक्खन, कोयला, चाय, महरी, बिजली का बिल, बून्दे, फूचड़ेदार कपड़ों का बदल, नये ब्लेड...ऐसी चीजें, जिन्हें हजारी मल की दुकान सप्लाई न कर सकेगी!

नन्दन ऊँघ रहा था। उसके सो जाने पर मुश्किल होती, इसलिए उसे बहलाने के लिए भाभी ने उसकी बाँसुरी में फूँकना शुरू किया।

—कल सब चुका दूँगा,—भाई साहब ने डूबते हुए-से स्वर में लाला जी को आश्वासन दिया।

लालाजी हें-हें करते हुए पीछे हटने लगे—मैं तो पहले ही समझता था कि आपसे कहने-भर की देर है। आदमी पहचानता हूँ, बाबू साहब! क्या करूँ, अगर इतनी जरूरत न होती, तो आपसे कहता ही न। आप तो बिल्कुल घर के आदमी हैं।

वह नजरों से ओझल हो गया। भाभी का ऐसे मौके पर बाँसुरी बजाना भाई साहब को सख़्त नागवार लगा था। भिन्नाकर बोले—क्या पीं-पीं कर रही हो? तुम भी कोई बच्चा हो?

बुरा मानने की बात ही थी। भाभी ने बाँसुरी हाथ से गिरा दी!

भाई साहब करवट ले लेट गये और शून्य भाव से घासों का निरीक्षण करने लगे। भाभी ने दूसरी तरफ से नन्दन को जगाये रहने के लिए उसके हाथ में बिस्कुट पकड़ा दिया।

उन्होंने खाया तो क्या, हाँ, प्यास का बहाना जरूर उन्हें मिल गया। भाभी बात करने के लिए उत्सुक हो ही रही थीं, इसी लिए भाई साहब की पीठ पर हाथ रखकर बोलीं—क्यों, यह पानी पीने को कह रहा है।

भाई साहब ने वैसे ही लेटे-लेटे कहा—अभी चलते हैं। बाहर पिला देंगे।

लेकिन अब नन्दन की ज़रूरत तेज़ होती जा रही थी। वह अड़ता हुआ बोला—अभी लेंगे। प्यास लगी है।

—पन्द्रह बार पी चुका है पानी!—भाई साहब कुछ झल्लाकर बोले।

भाभी को अच्छा न लगा—लग गयी होगी प्यास। बच्चा ही तो है।

भाई साहब ने एक पत्थर-सा खींच मारा—तो पिला क्यों नहीं लातीं जाकर?

भाभी ने अभी तक मामले की अहमियत न समझी, इसलिए उन्होंने हँसी में मामले को सुलझाना चाहा—तुम बस पड़े रहो काहिलों की तरह। बच्चे पैदा करना-भर जानते हैं, उनके लिए कुछ करना थोड़े ही।

भाई साहब ने एक लम्बी साँस ली और एक हूँ करके रह गये।

इस समय उनका यह निर्विकार उपेक्षा का व्यवहार भाभी को खल गया। अब जो नन्दन ने पानी माँगा, तो उन्होंने बड़े कड़े स्वर में उसे डाँटा—नहीं पीना है पानी! घर चलकर देंगे। खबरदार, अब जो पानी माँगा!

नन्दन ने फिर मुँह बिसूरा—हूँ, पानी पियेंगे।

मैंने मामला बिगड़ता देखकर कहा—चलो, मैं पिला लाता हूँ।

लेकिन भाभी ने ज़ोरों से उसका हाथ पकड़कर बैठा लिया—कह दिया एक बार! नहीं पीना है पानी!

नन्दन दहाड़ मारकर बोला—पानी पियेंगे।

और भाभी का हाथ छूट गया और उन्होंने उसे धुन डाला। तड़-तड़!—लो पानी पियो! और पियो!...तड़!

नन्दन दहाड़ मारकर रोने लगा। भाभी का हाथ चलता रहा—चुप! चुप!...कह दिया, आवाज़ न निकले! नहीं काटकर डाल देंगे!...कमबख़्त मरता भी नहीं!

भाई साहब जड़ की तरह बदस्तूर घासों का निरीक्षण करते रहे, जैसे जो-कुछ हो रहा है, उससे उनका लेश-मात्र भी सम्बन्ध न हो।

मैं भी परेशान था, स्थिति बिल्कुल मेरे हाथ में न रह गयी थी।

भाभी की धमकियों के डर से नन्दन का चीख़ना तो बन्द हो गया था, लेकिन सिसकियाँ किसी तरह बन्द न होती थीं। अब वह भाभी की गोद में चिपका था।

मैंने पैराम्बुलेटर में गद्दी बिछाकर बेबी को डाला और भाई साहब से बोला—चलिए, चला जाय,—क्योंकि मुझे डर था कि अगर मैंने कुछ न किया, तो शायद वह पूरी रात इसी तरह घासों का निरीक्षण करते रह जायेंगे।

सड़कों की तमाम चहल-पहल, आकर्षण जैसे बुझ-से गये थे। एक जान-पहचान के भाई साहब के दोस्त मिले, तो नमस्कार के बाद कुछ क्षण वह भाई साहब से बातें करते रहे। फिर फरमाया—भाभी कुछ नाराज मालूम होती हैं?

मैंने भी ध्यान से भाभी की ओर देखा, वह सचमुच भरी-सी थीं, आँखें छलछलाने को उत्सुक, नाक का बाँस फड़क रहा था। मैंने स्थिति सँभाली—निकल गया तिनका या नहीं, भाभी? कहिए तो पानी दूँ दूँ, छींटे मारने से...

—रहने दो,—भाभी ने मेरी सहायता स्वीकार की और आँचल से आँखें रगड़ने लगीं।

❀

नन्दन और बेबी सो चुके थे। बिस्तर ठीक किये जाने लगे। मुझे लग रहा था कि इस तनाव को समाप्त करने के लिए कुछ करना चाहिए। यह घुटन मेरी बर्दाश्त के बाहर थी। सहसा उस पत्रिका पर मेरी नज़र पड़ी, जिससे सुबह भाभी नन्दन को अमेरिकन माडेल पिस्तौल का वर्णन पढ़कर सुना रही थीं।

खँखारकर गला साफ किया। फिर बोला—भाई साहब!

वह मेरी ओर देखने लगे।

—ये बसन्त के दिन हैं,—मैंने कहा।

बात उन्हें बड़ी अजीब-सी लगी, आखिर मैं क्या कहना चाहता था? भाभी ने भी उत्सुकता से चुपके-चुपके ही कान मेरी ओर कर दिये!

—तो?—भाई साहब ने कहा।

—आजकल कामदेव बहुत पुष्प-बाण चलाता है।

भाई साहब अपनी नाराज़गी प्रकट करने ही वाले थे। लेकिन मैंने उन्हें मौक़ा न दिया—पहले पूरी बात को सुन लीजिए। बहुत सोचने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि जो आज हुआ, उसमें न आपका दोष था, न भाभी का और न ही नन्दन का।—दोनों गौर से मेरी बात सुन रहे थे—असल में मुझे लगता है कि यह साला कामदेव भी आजकल अमेरिकन माडेल मानिन्द असली बाण का व्यवहार करने लगा है, इस पिस्तौल की तरह। और फिर उसके निशाने के बीच में लाला हज़ारीलाल की मनहूस छाया भी आ गयी है।...

भाई साहब मुस्कुरा पड़े। पता नहीं भाभी ने बात समझी या नहीं, पर उन्होंने मुस्कराकर अनुमोदन किया।

आर० बी० एन० कालेज,
गोसाईंगञ्ज, फ़ैज़ाबाद।

सुबह होने तक

सन्तोष सिंह 'धीर'

बड़ी देर में चन्नन जाट पक्के कुएँ का खेत जोतकर थकावट से चूर घर लौटा। आषाढ़ की पहली वर्षा हो चुकी थी। ज़मीन में अभी सिंचाई की नमी थी। फिर पता नहीं, झड़ी लगे या इतना लम्बा सूखा पड़े कि फ़सलें ही पीछे पड़ जायँ।

बैलों को चारा डालकर उसने हाथ-पैर धोये, छत पर खाना खाया और आँख मूँदने के लिए खाट पर पड़ गया। भिनसारे ही परती की टुकड़ी में मक्की का बीज बिखेरना था और फिर साँझ में जोते पक्के कुएँ की दोहरायी करके मक्का छींटना था।

सुखपूर्वक टाँगें फैलाकर वह खिले हुए तारों की ओर ताकता हुआ नींद की लहर में आँखें मूँदने ही वाला था कि बगल की छत पर से चारपाई डालते हुए धुद्दा बोल उठा जान पड़ता है, पक्के का पूरा खेत जोत आया, चन्नन ? मैंने कहा, तू बोलता नहीं, थक गया होगा।

चन्नन खाट पर ही पड़ा-पड़ा बोला—ओ ! मैंने कहा, अब क्यों कसर रखूँ; जोताई जमके ही क्यों न कर डालूँ। एक तो मेरा बैल नहीं चलता साला, शुरू में ही अड़ गया।

—कौन, खैरा ?

—नहीं,मैना। पाँव ही नहीं बढ़ाता बराबर। इसी लिए तो इतनी बेर हो गयी।

—भइया, दाना की बात है सारी,—धुद्दे ने जैसे दैवी नियम को अभिव्यक्ति दी।

—दाना अब दिये तोजा रहे हैं जितनी समारथ है।—चन्नन की आवाज़ में विवशता थी।

—हाँ-हाँ,—धुद्दा चारपाई पर लम्बा हो गया।

तारों-भरी नीली छत की ओर ताकते हुए चन्नन की आँखों में नींद आने लगी। एक ही लहर में नींद का ऐसा झोंका आया कि तारे उसकी आँखों के सामने धूल के कण बन गये और पक्के कुएँ की लहरदार जुताई उसके सपनों में फैलने लगी। और कहीं दूर एक स्वर से भूँकते हुए कुत्तों का स्वर मद्धिम पड़ता हुआ उसकी चेतना में खो गया।

कटोरे में दूध लेकर बचनों चन्नन की चारपाई के पास आयी ले—पकड़, दूध पी ले।

चन्नन नींद के झोंके में था।

—मैंने कहा, सो गया क्या, सीबो का बापू ?—उसने

चन्नन का कन्धा हिलाया।

—हाँ-आँ!—चन्नन हड़बड़ाकर बोला।

—ले पकड़, दूध पी ले कुनकुना है।

चन्नन उठकर खटिया पर बैठ गया। और दूध का कटोरा पकड़कर ऊँघते-ऊँघते ही पीने लगा। अगल-बगल छतों पर लोग चुपचाप पड़े थे। बुद्दे की भी आँख लग गयी जान पड़ती थी। बचनों पैंताने खाट की पाटी पर बैठ गयी। हवा जैसे बिल्कुल थम गयी थी। गर्मी बढ़ गयी थी। तभी एक पानी से भीगी हवा की लहर आयी। दूर, पहाड़ की कोख में काली घटा घिरी हुई थी, जिसमें कभी-कभी बिजली आँख मार जाती थी। बचनों ने धीरे से कहा—बादल आज फिर कहीं चारपाइयाँ नीचे न उतरवायें।

खाली कटोरा बचनों की ओर बढ़ाते हुए उसने हँकार भरी—सोना कहाँ मिलता है। दो रातें हो गयीं इसी तरह।

नींद में जकड़ा चन्नन फिर चारपाई पर ढेर हो गया। पैंताने पड़े खेस को उसने टाँगों पर खींच लिया।

बचनों की खटिया पर छोटी बच्ची चिल्ला उठी, तो वह उठकर उसके साथ जा लेटी। बादल घिरते आ रहे थे।

दो घड़ी भी न बीती होगी कि चन्नन की देह पर एक सूई-सी आकर चुभी। उसने करवट ली। उसी तरह फिर एक दूसरी सूई, और उसकी नींद टूटने लगी।

—बूंदें लग गयीं गिरने एकाध,—उसके कानमें आवाज़ पड़ी, जैसे बुद्दा अपनी चारपाई से हिला हो।

—मैंने कहा, सीबो के बापू!—बचनों ने ज़ोर से कहा—चारपाइयाँ तो उतारनी ही पड़ेंगी।

—अरी, मैंने कहा, पड़े भी रहो!...कोई परलय नहीं आ रहा है।—चन्नन ने खेस और ऊपर खींचकर ठीक कर लिया।

—फिर हड़बड़ी पड़ जायगी,—बचनों चिन्ता से व्यग्र थी।

—कहीं नहीं पड़ती, तू पड़ी रह!

बात अभी चन्नन के मुँह में ही थी कि मोटी-मोटी बूँदों ने एकदम धावा बोल दिया। अगल-बगल सभी छतों पर हड़बड़ी मच गयी। चारपाइयों, खटोलों, कथरियों में पड़े नींद में माते बच्चे हड़बड़ाकर उठ बैठे। चन्नन खाट पर बिछी दरी को ओढ़ने लगा। बचनों ने तीखे स्वर में कहा—तू यहाँ गिनतियाँ क्या गिन रहा है? नीचे उतर-कर खाट पकड़, मैं ऊपर से लटकाती हूँ।

बौछार की मार खा अर्द्धनिद्रित बच्चे रोने लगे।

छत की बार पर खड़ा होकर चन्नन गली की ओर खाटें और बिस्तर पकड़ने लगा। बचनों वर्षा से आकुल जल्दी-जल्दी लटकाये जा रही थी। पता नहीं, सूखा अम्बर कहाँ से सेना लेकर चढ़ आया था। देखते-ही-देखते हहर-हहर पर-नालियाँ चलने लगीं।

दीया बालकर वर्षा में भींगे बच्चों को चन्नन ने चार-पाइयों पर फेंक दिया। दालान और कोठरियों की छत के रोशनदान गिराकर, पानी से लथपथ बचनों नीचे आयी और आँचल निचोड़ती हुई खीझ से खिसियाकर बोली—कब से कह रही थी, बादल सिर पर खड़ा है! तब तो इसने सिर ही नहीं उठाया!

सब जने दालान में चारपाइयों, खाटों पर कहीं-न-कहीं गिर पड़े। बौछार की बरसाती बूँदें जैसे आयी थीं, वैसे ही एकदम चली भी गयीं। परनालियाँ धीमी होती-होती खामोश हो गयीं। अन्दर दुस्सह उमस होने लगी। धीरे-धीरे हवा बिल्कुल बन्द हो गयी। दीये की शिखा बिल्कुल सीधी खड़ी थी। अंग-अंग में सूई चुभोते मच्छर कानों के पास बीन बजा रहे थे। सोये हुए बच्चे पसीने से तर हो गये। भींगी-सी गर्म वायु से घर जैसे भट्ठे की तरह तप रहा हो। बुद्धिशून्य हुआ चन्नन जैसे लड़ने के स्वर में बोला—ऊपर का रोशनदान तो खुला रहने देती!

—मेंह तो घटा बाँधकर आ गया, फिर कौन जाता ऊपर?

—अन्दर तो आग लगी जा रही है। ऊपर से छेदे जा रहे हैं मच्छर।—चन्नन ने देह खुजलाते हुए कहा।

पसीने में नहायी हुई कल्लो खटोले में ठिस-ठिस करने लगी। बिलखती छोटी लड़की को बचनों पंखा झलकर चुप कराना चाहा।

बड़ी लड़की सीबो पसीना-पसीना हुई अपने खटोले पर उठ बैठी—बाबा, नींद कहाँ आती है !

—अरी अम्माँ ! दीया ही बुझा दो !—सीबो से छोटा मिन्दर बोला । उसको दीये के प्रकाश से भी आँच लग रही थी ।

चन्नन उठकर बाहर गली में आया—बूँदें तो बन्द हैं ।...बादल तो दिखायी पड़ते नहीं कहीं अब ।

—अभागा ऐसे ही भागदौड़ मचा देता है आजकल का मेंह !—बचनों पड़ी-पड़ी अन्दर से ही बोली ।

—अरी अम्माँ ! गली में ही निकाल लो चारपाइयाँ !—सीबो ने घबराकर कहा ।

—हाँ-हाँ, मुन्नी, गली में ही डाल लेते हैं ।—चन्नन अन्दर आकर बाहर निकालने के लिए चारपाई उठाने लगा ।

बचनों उठकर द्वार पर आयी और ऊपर की ओर ताकने लगी—अब तो दिखायी नहीं पड़ता किसी तरफ़, बिल्कुल साफ़ है अम्बर ।

बग़ल से केसरी तरखानी ने हँकार भरी—अरी, चाहे अलग-अलग तारे गिन ले । जब आता है, तब आफ़त, जाता है, तब आफ़त । अजब मनहूस है यह आजकल का बादल ।

—बाबा, मालिक से कौन कहे ?—ऊपर चढ़ाने के लिए अपनी नीची बारी में चारपाई का पाया अड़ाते हुए बुड्ढा बोला ।

—मैंने कहा, अब ऊपर ही चढ़ा चारपाइयाँ । गली में ही नहीं सोये रहना है ।—बचनों ने गली में चारपाई डालते हुए चन्नन से कहा—गली में किसकी-किसकी डालेगा ? साथ में सौ डंगर पशू ! तू चल ऊपर, मैं पकड़वाती हूँ चारपाइयाँ ।...घड़ी आराम से तो बीते ।

—अच्छा, फिर पकड़ा । सीबो, उठा तो, भाई, बच्चों को । मिन्दर, उठ ओए ! चारपाई निकलवा बाहर ।—कहते हुए चन्नन सीढ़ी के डंडों पर चढ़ बारी पर जा बैठा ।

बचनों ने नीचे चारपाइयाँ और बिस्तर पकड़ाये ।

चन्नन ने फिर यथास्थान बच्चों को लिटाया । बचनों ने दीया बुझाकर ताला लगाया और सीढ़ी का आखिरी डंडा चढ़ती हुई बोली—है वाहे॰ यहाँ नीचे से साँस तो आती है ।

बच्चों को खटोलों पर ठीक तरह लिटाकर बचनों छत का रोशनदान खोलने गयी, तो उसकी एँड़ी धँस गयी, और फिर लौटी, तो बारी पर पैर फिसल गया । गिरती-गिरती बची, तो खीझकर वह बड़बड़ाने लगी—क्या कहूँ इस नारकी जीवन को ! खँडहरोंवाले भी कीकर के पेड़ काटकर दो कमरे ऊपर छतिया लेते हैं और साथ ही कोठरी के लिए कड़ियाँ भी निकाल लेते हैं । मगर मेरा जाट एक नहीं सुनता । लोग ऐशें लूटते हैं, यहाँ ज़िन्दगी बेज़ार...

—अरी, अब तिमंजला छाने बैठूँ या लड़...—वह कोठे-बराबर लड़की के शुभ-कार्य के सम्बन्ध में कुछ कहने लगा था कि उसको पास में लेटी हुई जवान पुत्री का लिहाज मार गया ।

—अरे, तू क्या कमाई करेगा ?—वह जैसे झगड़ा करने के लिए खाट के पास आ गयी ।

—अच्छा, लेट जा अब चुपचाप ! टें-टें लगाये हुई है बेकार !...अपने से नीचे को देखकर ज़िन्दगी कटती है, ऊँचे को देखकर जी जलाने से फ़ायदा ?

—हाँ, भाई, हाँ, यह बात सच है चन्नन की !—बगल के घर की नीची छत पर से करम सिंह की अम्माँ ने हाँ में हाँ मिलायी ।

उमस से फिर साँस घुटने लगी, जैसे मेंह कभी बरसा ही न हो । बीबी अत्तरी के आँगन में ऊँची कीकर चुपचाप खड़ी थी । गर्मी से आकुल होकर चन्नन प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध बोला—कोई मनहूस पापी बैठा है पहरे पर ! आज तो पत्ता ही नहीं हिलता ।

—दुखी को दुख ही दुख है ! नीचे पशुओंवाले घर के सामने गली में चारपाई डाले पड़ा हुआ आँगनवाला मैंगल बोला अपने स्थान पर वह आप तड़फड़ा रहा था ।

—अरी अम्माँ ! मच्छर काट रहे हैं ।—मिन्दर चारपाई की अदवान पर टखने रगड़ रहा था ।

बीबी अत्तरी के कीकर की शाखाएँ थोड़ी-थोड़ी हिलने लगीं । हठात् धीमी-धीमी हवा इठला उठी, जिसमें गीली छतों

को गर्म हवा मिली हुई थी। घुद्दे ने सुख की साँस लेते हुए अपनी चारपाई पर से कहा—ले, भई चन्नन, बदल गया पहरा, आ बैठा कोई धर्मी पुरूष!

—हाँ, बेटा,—दूर से करम सिंह की अम्माँ बोली—धर्मियों की कहाँ कमी है जग में!

—यह तो कोई ध्रुव है ध्रुव, अम्माँ!—घुद्दा इठलाती हवा की लहरों का मज़ा लूटता हुआ बोला।

चन्नन की आँखें लग रही थीं। उसको चुप देखकर घुद्दे ने उच्च स्वर से कहा—चन्नन, ओए, चन्नन!

—हो!—चन्नन निद्रामग्न था।

—नींद आती है?

—हाँ।

—अच्छा, फिर सो जा,—घुद्दे ने आप भी करवट ले ली।

मन्द-मन्द वायु ने जैसे सभी दुःख धो दिये। हल्के-हल्के हाथों प्यार से सहलाती हुई जैसे प्रकृति लोरियाँ दे रही हो। धीरे-धीरे सभी सो गये। चन्नन सिरहाने बाँह देकर, करवट लेकर, नींद में डूब गया।

सहसा भूखे शेर की तरह गाँव पर फिर बादल घिर आया। हड़बड़ाकर चन्नन की आँख खुल गयी। मोटे-मोटे, भूरे बादल, चाँद को ढाँककर, आकाश में फैल रहे थे। पतला-सा धूमिल अंधकार छाया हुआ था। चन्नन उठकर चारपाई पर बैठ गया और पैरों से जूता टोने लगा।

श्वेत प्रकाश की एक रेखा-सी तेजी से चीनियों के चौबारे पर काँपी और अगले क्षण ज़ोर से बिजली गिरने की आवाज आयी। भय के मारे बच्चे रोने लगे और कुत्ते भूँकने लगे। राम-राम होने लगी। चन्नन की चौंधियायी आँखों के सामने अन्धकार में कोई पीला, हरा और लाल तार अभी तक काँप रहा था। हवा की एक तीखी लहर कीकर की शाखाओं में उलझ रही थी।

—आग लग जाय इसको!—बचनों काँपकर छोटी लड़की को हृदय में समेटती हुई उठी—यह मनहूस बादल पीछे ही पड़ गया है आज, पता नहीं कहाँ से आ गया चढ़के!—और वह चन्नन से सचिन्त ऊँचे स्वर में बोली—अब तू बैठा क्या सोच रहा है? चारपाइयाँ तो नीचे उतारनी ही पड़ेंगी। फिर...

—नीचे कहाँ उतरेंगे अब?—चन्नन की हड्डियाँ दुख रही थीं।

—और क्या करेगा? देखता नहीं, बादल तो उठा खड़ा है। चल, उठ फटाफट!

—अभी-अभी तो कहीं देखने को बादल नहीं था, घंटा-भर पहले!—घुद्दा अपनी चारपाई पर उठकर बैठता हुआ बोला।

हवा थम गयी, बादल घुलता जा रहा था।

चीनी, लम्बरदार तथा अन्य चौबारोंवाले दरवाज़े-खिड़कियाँ खोले आराम से चौबारों में पड़े थे। चन्नन ने एक क्षण सोचकर कहा, बच्चों की चारपाइयाँ बरसाती के नीचे खिसका देते हैं, तू सीबो के साथ नीचे चली जा, मैं अभी यहीं...

एकाध बूँदें टपकने लगी थीं।

बचनों चन्ना से तड़पकर बोली—ओ, तेरी तो मति मारी गयी है! क्या बात करता है। बरसाती के नीचे किस-किस को लेटायगा? तू नीचे पकड़ा चारपाइयाँ!

—अरी,...अच्छा,—वह ऊबकर भारी कंठ से ऊँचे स्वर में चीखा।

बचनों और सीबो जल्दी-जल्दी कपड़े लपेटकर और बच्चों को सँभालकर नीचे चली गयीं। कल्लो और मिन्दी अर्द्धनिद्रित-अवस्था में सीढ़ी के डंडे टोह-टोहकर उतरने लगे। चन्नन ऊपर ही पैताने की ओर दरी गुमेट करके नंगी खाट पर लम्बा हो गया।

बूँदें गिरती जा रही थीं।

—आज नहीं, भई, सोने देता, चन्नन!—बूँदों से अकुला घुद्दा बोला।

—ओह, हमारी तो जिन्दगी ही ख़राब है, न दिन को चैन, न रात को नींद।—चन्नन की आँखों में कंकड़ चुभ रहे थे।

—मौजें तो चौबारेवाले लूटते हैं,—चीनियों के चौबारे में दिये की लौ देखकर घुद्दे ने ईर्ष्या से कहा।

—कुदरत है, भइया, मालिक की,—चन्नन ने ठंडी

कहानी

साँस ली—घर की तंगी बुरी...रात कितनी होगी, बुद्दे, अभी ?

—अभी बहुत पड़ी है ।

—कहीं बादलों के कारण ही अँधेरा तो नहीं ?

—क्यों, आधी रात बीती है मुश्किल से, अभी तारा भी नहीं चढ़ा होगा । बादलों के कारण दीखता नहीं एक तो आज । तुझे तो देर से जाना होगा कल ?

—हाँ !

—फिर पड़ा रह, अभी बहुतेरी देर है । घड़ी आराम भी चाहिए मानुस को ।

—ओए ! जाट को आराम कहाँ ?

—वह तो तेरी बात ठीक है,—बुद्दा हँकार कर चुप हो गया ।

धीमी-धीमी झरती हुई बूँदे धीरे-धीरे और छितरा गयीं । घुले हुए बादलों के नीचे अड़कर खड़ी उमस को हवा की उच्छृङ्खल लहरों ने चीथड़े-चीथड़े कर डाला था । और बुद्दे तथा चन्नन के बीच की आपसी बातें मीठी-मीठी हिलोर में समाप्त हो गयीं । चन्नन की आँखें चाहे भिंची हुई थीं, पर अब उसके मन में नई धुकधुकी थी, कहीं लेटे-लेटे दिन ही न चढ़ जाय !—उसने लेटे-लेटे ही अपना कान गली की आवाज़ पर लगा दिया ।

बूँदों के स्वर, देह की क्लान्ति और बुद्दे की बातों को बिसराकर वह मन-ही-मन परती क्यारी की तरफ़ चल पड़ा । पौ फट रही थी । अगल-बगल लोगों की चरी हरी होकर मन्द-मन्द पवन से काँप रही थी । मोठ, उरद, गुवारे की छीमियों और मूंग ने कान खड़े कर लिये थे । दूर ऊँचे पर जीते लम्बर का हल चल रहा था । घंटियों की मन्द-मन्द ध्वनि के साथ 'मिर्ज़ा साहिब' (एक काव्य) का स्वर ऊँचा उठ रहा था !...

वह हड़बड़ाकर उठा । बारी पर मुँह-अँधेरे ही, मुर्गा बाँग दे रहा था । गली में से जाते हुए बैलों की घंटियाँ ठनक रही थीं । और उषा का प्रकाश बादलों के पीछे से फूटने ही वाला था ।

आँगन में से बैलों को खोलकर चबूतरे की ओर बढ़ता हुआ चन्नन बोला—नाश्ता देकर सीबो को जल्दी भेज देना, बचन कोरे ! चाय जरा तेज रखना !—उसका स्वर फटे हुए बाँस की तरह था ।

पँजाबी से अनु० तिलक राज चोपड़ा

मंडी गोविन्दगढ़,

पेप्सू !

आँचल फैलाकर कातर स्वर में फुलबसिया ने बिनती की—हे देवी मइया! तुममें बड़ी सक्ती है। हमसे कोई भूल-चूक हुई हो, तो छमा करना। हमारे बेटे की जान बखस दो!—फिर आँचल को गले में लपेटकर, दोनों हाथों को पीठ पर बाँधकर उसने धरती पर सर टेक दिया।

फुलबसिया का एकलौता लड़का खेलावन दस दिन से चारपाई पर पड़ा था। उसकी हालत दिन-पर-दिन खराब होती जा रही थी। करवट बदलना भी मुश्किल हो गया था। जो देखता, वही चेहरा गम्भीर बना लेता। फुलबसिया हर देखने वाले के मुँह की ओर आशा-भरी नज़रों से देखती कि कोई कह दे, कुछ नहीं हुआ है तुम्हारे लड़के को। दो दिन में उठकर खड़ा हो जायगा।

पर देखनेवाले अपना गम्भीर मुँह लटकाकर उखड़ी ज़बान में ढारस बँधाते—भगवान से बिनती करो। तुम्हारा लड़का चंगा हो जायगा। नहीं, हालत तो ठीक नहीं है। आगे जैसी भगवान की मरज़ी।

फुलबसिया सर्वहारे की तरह टुकुर-टुकुर मुँह तकती। उसका दिल डूबने-डूबने लगता और फिर अपना माथा पीट लेती—जाने पहले जनम की कौन कमाई चुक गयी कि माँग का सेनुर पुंछ गया। जिनको रहना चाहिए, वो चले गये, और मैं अभागी दुख भोगने के लिए रह गयी। अब बेटवा ने अलग खाट पकड़ लिया है। हे भगवान, एक तिवई की तू ही रच्छा करना!

तब कोई बुढ़िया आकाश की ओर हाथ उठा कहती· सब उनकर माया हव। रामजी क इच्छा। आखिर ऊ जवन करिहैं तवनै होई। बाकी पूजा-पाठ म तोसे कउनो चूक त ना होय गइल?

फुलबसिया निरीह-सी जवाब देती—बहिन, हम तो अगियानी हैं। पर अपनी ओर से तो कुछ भी उठा न रखा। डीह बाबा के पिठार और माल, काली माई के जोड़ा खस्सी

और महाबीर स्वामी के लाल लँगोट और सवा पाँच सेर का रोट तो मनौती मान चुकी हूँ।

कोई श्रद्धालु बुढ़िया सुझाती—आ सम्मै माई के पियरी मान दे। बड़ी जागता देवी हई।

और बुढ़िया सर झुका लेती। जैसे देवी के प्रताप से उसका माथा नत हो गया हो।

आज जब खेलावन की हालत और भी ख़राब हो गयी, तो फुलबसिया एकदम घबरा उठी। आरत स्वर में देवी-देवताओं की बिनती करने लगी।

खेलावन बेदम-सा चारपाई पर पड़ा था। कभी अपनी माँ की ओर देखता, उसके सन-से सफेद बाल, हाथ-पाँव का चमड़ा सिकुड़कर झूलता हुआ, बूढ़ी आँखों में अथाह बेचारगी भरी हुई। वह खोयी-खोयी आँखों से अपनी माँ की ओर देखता रह जाता। कभी पास में बैठी अपनी स्त्री सुभागी की ओर देख लेता, मौन, मूक, नत शिर, जैसे वेदना की प्रतिमा हो। और जब थक जाता, तब अपनी आँखें बन्द कर लेता।

फुलबसिया ने खेलावन के सरपर स्नेह से हाथ फेरते हुए पूछा—अब कैसा जी है, बचवा?

खेलावन ने कोई जवाब नहीं दिया। उसकी स्त्री सुभागी उसकी चारपाई की पाटी पकड़कर बैठी हुई थी, सर झुकाये हुए। एक बार उसने अपने बीमार पति के निस्तेज मुँह की ओर देखा और फिर अपनी सास से अनुनय के स्वर में कहा—अम्माँ!...

आगे की बात कहने के लिए वह जैसे साहस बटोर रही हो। बात मुँह तक आकर जैसे रुक गयी हो।

फुलबसिया ने उसकी ओर आँखें उठाकर देखा और फिर आहत स्वर में कहा—बोलो, बेटी।

एक बार फिर अपने पति के निस्तेज मुँह की ओर सुभागी ने देखा और सहमते हुए कहा—न हो तो, अम्माँ-जी, किसी डकदर को...

पूरी बात उसके मुँह से न निकल पायी। सहमकर वह चुप हो गयी।

फुलबसिया ने झिड़ककर कहा—छिः, बहू! तुम भी नादान की तरह बातें करती हो! तुझे कितनी बार समझाया कि हमारे घर में डकदर-वइद का आना नहीं सहता। नहीं तो हम कुछ उठा रखते। बेटवा से बढ़कर कौन हमारे लिए पियारा बैठा है!

खेलावन ने क्षीण स्वर में कहा—माँ, तू तो अपनी जिद पकड़े है। आज सात दिन से बुखार नहीं उतरा। किसी को बाजार भेजकर डकदर को बलवा ले न।

रुआँसी होकर फुलबसिया ने उत्तर दिया—तुमसे भी बढ़कर अपना कोई है क्या, बेटा? पर तुम समझकर भी कुछ समझना नहीं चाहते। इसी तरह जिद करके तुमने अपने बाबू के लिए डकदर को बुलाया था और...

इतना कहकर वह फफक-फफककर रो उठी। रोते-रोते बोली—डकदर नहीं आया होता, तो तेरे बाबू की जान बच गयी होती। तू तो मानता ही नहीं, डकदर की दवा देने से ही देवी मइया का परकोप बढ़ गया था। देखा नहीं, ओझा के सिर जब आयीं, तो कैसी बिरोग की बातें कर रही थीं!...अरे, भक्तिन तू हमार विश्वास न कइली। डकदरी ओखद दे के तु हमार मरजाद बिगाड़ देहली न।...अब ले भोग। तोर त हमरे पर से बिसवासै उठ गईल रे, तिवाई।...

फुलबसिया ने अपना माथा पकड़ लिया। फिर बोली—बचवा, तू घबरा मत। उठकर खड़े हो जाओगे। अभी कल तेरे सामने ही तो ओझा के सिरे आकर परतच्छ हो देवी ने कह दिया, करमभोग अब पूर गयल हव।...बाकी तनिक धीरज धर। ठाढ़ हो जाई तोर लड़िका आ घोड़ा के सरीखे दउड़ी। बाकी फिर कउनो ओखद-बीरो मत दीहे रे, तिवई। हाँ समझ लीहे।

और श्रद्धा-भक्ति के साथ उसने धरती पर अपना सर टेक दिया। फिर सुभागी से बोली—बहू, तू यहीं बैठ। खाट छोड़के मत हटना। बीमार आदमी पर बहुत जल्दी छाया पड़ जाती है। मैं जरा जाकर बरम बाबा की भभूत लेती आउँ।

❀

हफ्ते-भर के भीतर ही खेलावन की तबीअत सुधर गयी। कमज़ोर तो अभी था, पर बीमारी चली गयी थी। दीवाल से

पीठ टिकाकर तकिये के सहारे वह लेटा हुआ था। सुभागी एक तरफ बैठी चावल बीन रही थी और कभी-कभी अपनी नज़रें बचा कर संतोष और तृप्ति की भावना से अपने पति के मुख की ओर देख लेती थी। फुलबसिया, चारपाई की पाटी पर बैठी स्नेह से खेलावन के सर पर हाथ फेर रही थी। स्नेह से बोली—बेटा, अब तो तूने देखी लिया न कि देवी में क्या सक्ती है! ओझा के सर पर चढ़कर बोली थीं, जा, रे तिवई, जा, एतना बिरोग मत कर। आज के अठवें दिन तोर बेटवा उठके ठाढ़ हो जाई। बाकी हमार पूजा गह-गह पियरी चढ़ायके करिहे।...अब तो पता चल गया न तुमको कि देवी-देवता में कितनी सक्ती है।...अब तो सरधा-भक्ति चहिए। आजकाल के नवछ्टियन के तो किसी बात का विश्वास ही नहीं है। लेकिन देवी का परताप कहीं छिपा रह सकता है!

खेलावन ने मुस्कराकर कहा—हाँ माँ, देवी का प्रताप देख लिया!—यह कहकर उसने अपनी माँ की नज़रें बचा-कर सुभागी की ओर देखा। सुभगी ने अनुनय- भरी आँखों से पर किंचित क्रोध से अपनी आँखें तरेर कर खेलावन की ओर देखा।

फुलबसिया खेलावन के सर पर उसी तरह हाथ फेरती रही। बोली—बड़ी महिमा है देवी की, बेटा,।

—हाँ, माँ, देवी में बड़ी सक्तो है। मैं तो देवी के प्रसाद से ही अच्छा हुआ हूँ।...तू नहीं जानती, माँ, कि जब उस दिन तू भभूत लाने चली गयी थी, तब सुभागी ने तुमसे छिपाकर डकदर को बुलवाया था। विश्वास न हो तो पूछ ले इससे! यह झूठ तो बोलेगी नहीं।—शरारत से मुस्कु-राते हुए खेलावन ने सुभागी की ओर देखा।

सुभागी की भौंहें किंचित क्रोध से टेढ़ी हो गयीं। पर ओठों के कोरों पर मुस्कुराहट की एक पतली रेखा खिंची हुई थी।

फुलबसिया ने अपना माथा ठोंककर कहा—तुम लोगों की जो मरजी हो करो। हमें अब कौन गिनता है। और मैं कोई अमृत की घरिया पीके तो आयी नहीं हूँ कि सदा बैठी रहूँगी। अब तुम लोगों का जमाना है, जो मन में आये, करो। पर देवी-देवता से मजाक करना ठीक नहीं। ओझा ने उसी दिन कह दिया था, देवी मइया लाल-पियर होत हईं। कउनो निसाचर बाधा दे रहल हव...अब हमारी समझ में आया कि यही डाकदरी दवाई बाधा दे रही थी। बाकी हमारा करम अच्छा था कि तुम चंगे हो गये।—और झल्लाकर वह उठ गयी।

सुभागी ने आँखें चढ़ाकर खेलावन से कहा—तुम्हारे पेट में क्या मजाल कि कोई बात पच जाये। लवार कहीं के! मुझसे कहा कि डकदर को बुला लो और फिर अम्मा से मेरी ही सिकायत! चलो हटो!

खेलावन ठठाकर हँस पड़ा।

संकेतलिपि विद्यालय,
२५, मछुआ बाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता ७।

कम-से-कम मेरा तो यह विश्वास हो गया है कि बड़ों की कही हुई बातों को ठीक से ध्यान में रखा जाय, तो आगे चलकर कभी-न-कभी फ़ायदा ज़रूर होता है।

जब मैं छोटा था, यानी यही कोई दस-ग्यारह बरस का, तब मेरी माँ, पिताजी और तीन भाई बम्बई चले गये और मुझे मेरे चाचा के घर छोड़ गये। इसके लिए वैसे कारण भी थे। एक तो यह था कि सब लोगों का बंबई तक का राह-खर्च नहीं जुट सकता था। दूसरी बात यह थी कि हमारे पास एक मरियल गाय थी और सवाल यह उठ खड़ा हुआ कि उसका क्या किया जाय? सभी लोग चले जाते, तो गाय अनाथ हो जाती। इसलिए वे लोग गाय को अनाथ होने से बचाने के लिए मुझे ही अनाथ करके मेरे चाचा के घर छोड़ गये।

मेरे चाचा का लड़का गनपत और मैं हम-उम्र थे। इसलिए हम दोनों में घनिष्ठ मैत्री हो गयी थी। घर में हम लोग चार ही थे। मैं, गनपत, चाचा और बुआ। चाचाजी को हम लोग अप्पा कहते थे। इन चार व्यक्तियों में दो थे बूढ़े और हम दो लड़के।

मेरे चाचा काले रंग के, खूब ऊँचे-पूरे, पर ज़रा दुबले-पतले थे। वह धोती या कुरता कभी न पहनते थे। लंगोटी, सिर पर साफ़ा, काँधे पर कम्बल और एक लाठी, बस इन्हीं से गुज़ारा कर लेते। उनके सिर के बाल काले थे, पर दाढ़ी के सफ़ेद थे और उनकी बायीं आँख अन्धी होने के कारण उन्हें एक आँख से काम चलाना पड़ता था। उन्हें एक बार एक काले नाग ने, जिसके फन पर दस की संख्या थी, किचकिचाकर डस लिया था, फिर भी हज़रत मरे नहीं थे।

मैं और गनपत मवेशी चराकर संध्या को घर लौटते थे और जो-कुछ मिल जाता, उसे गटककर बाहर निकल पड़ते। फिर किसी खेत से मूंगफली, किसी की बाड़ी से गाजर, किसी के बगीचे से मिरच, जो-कुछ भी जहाँ मिल जाता, उसे हम चुराकर घर ले आते। चाँदनी रात में थूहर की झाड़ियों में घुसड़र हम पेड़की का शिकार करते, अथवा उसके अंडे-बच्चे, जो भी मिल जाता, उठाकर ले आते और अपने पास रखे रहते। कभी-कभी कुम्हारों के गधों को पकड़कर, उनपर सवार होकर उन्हें बेतहाशा दौड़ाते। हमारी यह दौड़ शुरू होती, तब गाँव-भर के कुत्ते हमारे पीछे लग जाते। एक कुहराम मच जाता। और लोग हमारे नाम ले-ले चिल्लाने लगते। एक बार तो हमने एक गधी के सफ़ेद बच्चे को कैद कर लिया था और उसे शान से अपने घर ले आये थे।

इसपर अप्पा ने गनपत की पीठ का ढोल बनाया। मैं ज़रूर साफ़ छूट गया।

एक बार हमारे घर के पास मदारियों ने डेरा डाला था। उनमें के एक मदारी के यहाँ एक सुअरनी ने बच्चे जने थे। हम उसका एक बच्चा चुराकर घर ले आये और उसे मुर्गियों के दड़बे में रख दिया। यह मामला थाने पहुँचा, पर हम लड़के थे, इसलिए छोड़ दिये गये।

उस दिन से अप्पा ने हमारे लिए एक नया कानून जारी किया। वह यह था कि शाम को खाना खाने के बाद हम लोगों का घर से बाहर निकलना बन्द। और जो भी इस कानून को तोड़ेगा, उसे चमगादड़ बनाया जायगा, यानी उल्टे टंगे रहने की सज़ा मिलेगी।

अब जरूर हम विवश हो गये। उस अत्याचारी कानून को भंग करना कठिन हो गया, क्योंकि जब कभी उस कानून को भंग करने की बात हमारे दिमाग में आती, हमारी नज़रों के सामने चमगादड़ लटकने लगता।

इसलिए हम लोग भोजन के बाद दरवाज़े के नज़दीक बिछावन बिछाकर पड़ रहते। और हमारे अप्पा बड़े होने की हैसियत से हमें कहानियाँ सुनाते, जिन्हें सुनते हुए हम दोनों सो जाते।

आप सोचते होंगे कि ये कहानियाँ शिवाजी महाराज की वीरता की या महाभारत या रामायण की भक्ति-पूर्ण कहानियाँ होंगी। परन्तु ऐसी कोई बात न थी। हमारे अप्पा हमें जो कहानियाँ सुनाते थे, सिर्फ भूतों की हुआ करती थीं। और हम उन कहानियों को कान लगाकर सुनते। हमें नींद आने तक अप्पा की कहानी बराबर चलती रहती। वह कहते—भूत बड़ा भयंकर होता है। रात को बाहर निकलता है। जो भी उसे मिल जाता है, उसे पकड़ लेता है, उससे कुश्ती लड़कर उसे थका देता है और अंत में मार डालता है। भूत कभी मनुष्य बन जाता है, कभी बैल। वह भैंसा भी बन सकता है, साँप का भी रूप धारण कर सकता है। यही नहीं, भूत भैंस, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, स्त्री, पुरुष, याने सभी-कुछ हो सकता है। वह किसी से भी नहीं डरता। कोई लंगड़ा-लूला मर जाय, तो उसका भूत भी लंगड़ा-लूला होता है। पर लंगड़े-लूले होने के बावजूद वह पेड़ पर चढ़कर बैठ सकता है और तुम-सरीखे लड़कों को मार डाल सकता है।

इस तरह की कहानियाँ सुनते हुए हम लोग डरकर सो जाया करते। मैं तो बिछावन के भीतर सिर घुसेड़कर मुर्दे की तरह पड़ा रहता।

सुबह उठते ही हम रात की बातों पर विचार करते।

एक दिन इसी तरह विचार करते हुए मैंने गनपत से पूछा—क्यों रे, अप्पा हमें रोज भूतों की कहानियाँ क्यों सुनाते हैं?

इसपर गनपत ने कहा—वो शायद हमें भी भूत ही समझते होंगे।

मैंने कहा—नहीं, वो अगर हमें भूत समझते, तो हमसे डरते और हमें आज़ादी दे देते। हमें चमगादड़ नहीं बना सकते थे।

इस तरह बहुत सोच-विचारकर हमने यह निष्कर्ष निकाला कि दरअसल हमारे अप्पा हमें ये कहानियाँ सिर्फ इस उद्देश्य से सुनाते हैं कि हम डरें और रात को कहीं बाहर न घूमें, कहीं चोरी न करें, पक्षियों को न पकड़ें और गधे पर न बैठें। यह बात हम दोनों की समझ में अच्छी तरह आ गयी। फिर हम सोचने लगे कि ऐसी परिस्थिति में हमें क्या करना चाहिए। गनपत ने एक उपाय सुझाया। अपना सिर खुजलाते हुए वह बोला—हम अप्पा को क्यों न जान से ही मार डालें। किस्सा खत्म हो जायगा। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।

उसका यह उपाय मुझे भी जँच गया। हम दोनों को बड़ी खुशी हुई। पर एक क्षण के भीतर ही सारी खुशी हवा हो गयी, क्योंकि अप्पा को जान से मार डालने के षड्यंत्र को कार्यान्वित करना कोई हँसी-खेल न था। बिल्ली के गले में चूहा घंटी बाँधे, कुछ इसी तरह का मामला था वह।

हमारे सामने फिर एक विकट समस्या उपस्थित हो गयी। हमने फिर विचार किया। आख़िर एक उपाय निकला। झट से हम दोनों हनुमानजी के मन्दिर के सामने जाकर आँखें बन्द कर खड़े हो गये और प्रार्थना की—हे हनुमानजी, तुम्हारे एक फोटो में हमने देखा है कि तुम राक्षस की पीठ पर चरण

रखकर हाथ में एक बड़ा-सा पहाड़ लिये खड़े हो। इससे हमें विश्वास होता है कि एक केवल तुम्हीं हो, जो हमारे अप्पा को मार सकते हो। इसलिए कुछ भी ऐसा करो, कि अप्पा का काँटा हमारी राह से निकल जाय। हम आगामी शनिवार को तुम्हारे सामने कपूर जलायेंगे।

और हनुमाजी को यह सुझाने के लिए कि हमारे अप्पा की कमज़ोरी कहाँ है और कहाँ मारने से वह तुरंत ढेर हो जायेंगे, हमने आगे चलकर यह भी कहा—हे बजरंग बली, हमारे अप्पा और उनकी घोड़ी दोनों को बायीं आँख से नहीं दिखता। इसलिए अप्पा जब गाँव से लौटें, उस वक्त तुम उन्हें सड़क के बायीं ओर जो कुआँ है, उसमें ढकेल देना।

और अंत में यह कहकर कि यह बात बिल्कुल गुप्त रखी जाय, तुम इसे किसी से भी न कहना, हमने हनुमानजी को सावधान किया और फिर हम घर लौट आये।

इसके बाद हम अप्पा के कुएँ में गिरने की राह देखने लगे। परन्तु अप्पा को वह हनुमान मार न सका और अप्पा की भूतों की कहानियाँ हमें मजबूर होकर बराबर सुननी पड़ीं।

(२)

आगे चलकर, बारह साल के बाद, उन बातों की मुझे अचानक एक दिन याद आयी। वह इस तरह।

मैं वारणा नदी की उपत्यका में पहुनाई करने गया था। उस वक्त मेरी शान कुछ और ही थी। हाथ में लम्बी, कान तक पहुँचनेवाली बेंट की कुल्हाड़ी, मलमल का कुर्ता, मलमल का साफा, पैरों में कोल्हापुरी चप्पलें। उस समय तक मैं पटा-बनैठी के उस्ताद और नट-विद्या के ज्ञाता के रूप में विख्यात हो चुका था। इसके कारण सब ओर मेरा बड़ा मान था। जब मैं सातवा (एक गाँव का नाम) पहुँचा, तो वहाँ मुझे बहुत-से प्रशंसक मिले। उस गाँव में मैं आठ दिन रहा। हमारे एक यजमान ने मुझे एक त्यौहार के लिए एक दिन और रोक लिया।

उस त्यौहार के दिन ही मांगले गाँव से मेरा एक घनिष्ठ मित्र माँगलेकर सातवा आ पहुँचा। वह उसी त्यौहार के लिए मुझे अपने घर चलने का आग्रह करने लगा। मेरे यजमान ऐसा न चाहते थे। आखिर यह तय हुआ कि मैं पहले मांगलेकर के साथ उसके गाँव चला जाऊँ और वह दिन का खाना खाकर रात के खाने के वक्त सातवा आ-जाऊँ। तदनुसार मांगलेकर के साथ मैं सातवा से उसके गाँव के लिए चल पड़ा।

सातवा और मांगलेकर का गाँव, दोनों नदी के आर-पार, तट से करीब डेढ़ मील की दूरी पर हैं। वहाँ पहुँचे, तो खाना तैयार था। परन्तु वहाँ दो-तीन मेहमान और आये थे। उनमें से एक कहीं बाहर चला गया था और अब तक लौटकर न आया था। इसलिए हम लोगों को उसके आने तक रुकना पड़ा। आखिर वह हज़रत दिन ढले पर आये और हम लोगों ने खाना खाया। एक तो खाने में ही बहुत देर लगी, बाद में पान-सुपारी और गप्पों का कार्य-क्रम चल पड़ा। इस झंझट में रात हो गयी।

तब मैं सातवा के लिए रवाना हुआ। मांगलेकर मुझे नदी तक पहुँचाने आया। हम बातें करते-करते करीब एक मील आ गये। मुझे नदी तक पहुँचाकर मांगलेकर को जल्द घर लौट जाना था, क्योंकि उसके दूसरे मेहमान वहाँ उसकी राह देख रहे थे। पुनः एक बार पान-तमाकू खाकर मांगलेकर अपने गाँव लौट गया और मैं अकेला आगे सातवा की ओर लपका।

(३)

उस दिन चाँदनी दूध की तरह फैली थी। सारा प्रदेश शान्त दिख रहा था। जैसे वारणा नदी की उपत्यका बदन पर शुभ्र चद्दर ओढ़े हुए शान्ति से सोयी हुई थी। आगे विशाल पन्हालगढ़ (एक किला) की काली आकृति और उसी के तले वारणा नदी का पाट और नदी के दोनों किनारों पर पेड़-पौधे काले-काले दिख रहे थे। वारणा नदी और पन्हालगढ़, दोनों में एक-सी ही भव्यता दिख रही थी। उस चाँदनी में सारा खित्ता साफ-साफ दिखायी दे रहा था। सातवा गाँव के टीन की चद्दरों के छप्परोंवाले घर चमक रहे थे। परन्तु उस समय कहीं भी, किसी भी प्रकार की हरकत नहीं थी। किसी खेत में कोई कुत्ता भी नहीं भौंक रहा था। किसान भी, जो गाँव से आते-जाते रहते हैं, आज न दिख रहे थे, क्योंकि आज त्यौहार था। सभी किसान दावत में

आसपास के गाँवों में गये हुए थे। फिर कुत्ते ही क्यों पीछे रह जाते। ऐसा आभास हो रहा था, जैसे सारे खेत मुझ-जैसे ही अकेले हैं।

मैं सातवा की ओर कदम बढ़ाये चला जा रहा था। बीच-बीच में एकाध घुग्घू भयानक आवाज़ से जैसे भविष्य-वाणी कर रहे थे। बीच-बीच में एकाध उल्लू भी उनका साथ दे देते थे। मैं जिस पगडण्डी से चल रहा था, उसके दोनों किनारों पर झिंगुर झंकार रहे थे। मैं जल्दी-जल्दी कदम आगे बढ़ाये जा रहाथा।

नदी से थोड़ी ही दूर पहले एक किसान मेरे सामने आया। उसने मुझसे पूछा—किस गाँव के हो? कहाँ जा रहे हो?—और तमाकू मांगी। मैं उसे तमाकू देने के लिए रुका। उस किसान का चेहरा मुझे न दिखा, क्योंकि उसके सिर पर रखे घास के गट्ठे में छिप गया था। परन्तु उसके पैर और जंघाएँ बबूल के तने की तरह दिख रही थीं। जब उसने बायें हाथ से तमाकू मुँह में डालकर, उससे गट्ठे को सहारा दे दायाँ हाथ नीचे किया, तब उसके हाथ की हँसिया उसके घुटनों को छूती चमकाने लगी।

तमाकू मुँह में डालकर वह बोला—तुम सातवा जा रहे हो न?

—हाँ, खाना खाने मंगल गया था।

फिर वह एक सयाने की तरह बोला—तो रात वहीं रह जाते, सुबह चले आते। इतनी क्या जल्दी पड़ी थी?

मैंने कहा—तुम ठीक कहते हो। परंतु सातवा में भी मेरे यजमान हैं। वह भोजन के लिए मेरी राह देखते होंगे।

उसके हाथ का हँसिया एकदम बिजली की तरह चमका। वह अपनी जांघों पर ठीक तरह से खड़ा हो बोला—तो फिर किसी को साथ ले आना था, क्योंकि आगे रास्ता बिल्कुल सूना और खतरनाक है। थोड़ा डर है। सड़क से थोड़ी दूर पर भैंसा दह है। तुम देखोगे ही, उस दह में बड़े-बड़े भैंसे डूबे रहते हैं। तीन-तीन, चार-चार दिन के बाद वे बाहर निकलते हैं। उस दह में भूत निवास करते हैं, हाँ! तुम देखोगे ही। उस दह के ऊपर एक देवालय है, म्हासोबा दादा का। वहाँ बीच-बीच में मनुष्य मरता रहे, तो ठीक रहता है। नहीं तो ऊपर म्हासोबा के मंदिर में कोई बैठा रहता है। मैंने खुद सुना है। एक बार वह कह रहा था, एँ, अँब मैं क्याँ खाऊँ?...तुम देखोगे ही अब।

उस मनुष्य की वह रामकहानी खत्म ही न होती थी। अंत में मैंने उसे रोककर कहा—अच्छा, तो अब मैं चलूँ।

—हाँ-हाँ, जाओ। पर ज़रा सँभलकर जाना।—ऐसा कहकर वह ठहाका मारकर हँसने लगा।

उसकी इस डरावनी हँसी से मेरे रोंगटे खड़े हो गये। न जाने क्यों, उसकी हँसी रोके नहीं रुक रही थी। उसकी उस हँसी की प्रतिध्वनि वारणा नदी के गहरे पाट में गूँज उठी और मुझे भ्रम हुआ, जैसे वहाँ भी कोई हँस रहा है। और उसी समय नज़दीक ही एक घुग्घू घूमने लगा। मुझे लगा, यह शख्स मनुष्य नहीं, भूत है और उसकी हँसी के साथ उसके भाईबन्द भी नदी में हँस रहे हैं। मैं थोड़ा चौंका। इस समय तक वह व्यक्ति दूर निकल गया था। उसके जूतों की आवाज़ज़रूर मुझे सुनायी पड़ रही थी। मैंने चंचल होकर अपनी कुल्हाड़ी सड़क के एक पत्थर पर दे मारी और नदी की तरफ मुड़ ही रहा था कि मेरी नज़र सामनेवाले बबूल के पेड़ पर पड़ी और वहीं स्थिर रह गयी।

वह पेड़ सीधा ऊपरजाकर एक ओर झुक गया था और छाते की मूठ की तरह दिखायी दे रहा था। परन्तु मज़ा यह कि उस पेड़ में तने दो दिख रहे थे! पेड़ एक और उसके तने दो! यह क्या माजरा है? इसलिए मैंने ध्यान से देखा। परन्तु अक्ल हैरान थी, कुछ भी समझ में नहीं आता था। पेड़ एक और उसके तने दो! यह क्या बला है?

मैंने हिम्मत बाँधी। उस ओर नदेखने का निश्चय किया और सातवा की ओर कदम बढ़ाने लगा।

दस-बारह कदम बढ़कर एक बार अनायास पीछे मुड़कर देखा, तो उन दो तनों में से एक चल रहा था। मैं थथमकर खड़ा हो गया।

इसपर बबूल का वह तना भी हो खड़ा गया।

और इसी समय बारह वर्ष पहले सुनी अप्पा की वे कहा-नियाँ मुझे स्मरण होने लगीं। पहले तो एक पेड़ के दो तने दिखे और अब उनमें से एक चलने लगा है! हे भगवान! यह

क्या झमेला है ? मेरी दृष्टि उस पेड़ पर से हटाये नहीं हटती थी और दिमाग़ में अप्पा की कहानियों ने ताण्डव आरम्भ कर दिया । यह माननेवाला मैं कि भूत नाम की कोई चीज़ नहीं है, यह-सब ढकोसला है, उस समय भय से काँप उठा और मेरे मन ने स्वीकार किया कि दुनिया में भूत अवश्य हैं ।

अब मेरे सामने प्रश्न था, आगे क्या करूँ ?

अन्त में हिम्मत बाँधकर मैं चार कदम आगे बढ़ा और एकदम ठहरकर पीछे देखा, तो देखता हूँ कि वह तना भी पीछे-पीछे चला आ रहा है । मेरे ठहरते ही वह भी ठहर गया है ।तब मुझे विश्वास हो गया कि अब जान ख़तरे में है । क्या किया जाय ? यदि लौटता हूँ, तो लोग भीरु कहकर मुझे बद-नाम करेंगे । इसके सिवा लौटता भी कैसे ? मेरे मार्ग में एक भूत आकर खड़ा हो गया था । आगे जाता हूँ, तो न जाने और कौन-सी आफत का सामना करना पड़े । इन विचारों से मैं घबरा गया । अन्त में, मन में पक्का निश्चय करके कि चाहे जो हो, चाहे जान भी चली जाय, मैं सातवा जरूर जाऊँगा, मैं नदी में उतर पड़ा । मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया था । मुझे विश्वास था कि कम-से-कम नदी में तो वह संकट मेरे पीछे नहीं जायगा । मैं तेज़ चलने लगा । परन्तु अना-यास मेरी गर्दन पीछे घूमी, तो देखा, पेड़ का वह तना मुझसे भी अधिक वेग से चलता हुआ मेरा पीछा कर रहा है । मुझे लगा, अप्पा जो कहते थे कि भूत चाहे जो बन सकता है, वह बिल्कुल ठीक है । मैं अब अपनी आँखों के सामने ही यह देख रहा था ।

मैं नदी में उतरा और अपनी रफ़्तार और तेज़ कर दी-वैसे नदी में पानी अधिक न था । थोड़ा ही था । मैं उस पार कब पहुँच गया, इसका खुद मुझे ही कोई पता न चला । मेरा सारा ध्यान पीछे चले आ रहे उस बबूल के तने की ओर लगा था । भैंसा-दह पर भी मेरी नज़र थी । मैं जब उस पार पहुँचा, तो एकाएक एक टिटहरी का दल टप-टप करता हुआ उड़ा और मेरे सिर पर ही मँडराने लगा । अब ज़रूर मेरे छक्के छूट गये । मैं पसीने से तर-बतर हो गया । परन्तु मैंने हाथ की अपनी कुल्हाड़ी को मज़बूती से पकड़ा और सारी ताकत मुट्ठी में समेटा कि जो भी मुझे छेड़े, उसपर आक्रमण करने के लिए तैयार रहूँ । मैं अब दौड़ने लगा । एक तो जन्म से ही मैं चंचल था, दूसरे भूत मेरे पीछे लगा था । इसके कारण मेरा वेग स्वयं मुझसे ही कम न हो रहा था । मैं रह-रहकर चुपके से पीछे देखता जाता था और हर बार पेड़ का वह तना मेरे ही वेग से मेरे पीछे आता हुआ दिखायी देता था । मैं जब नदी के पार हो गया, तब मैंने उस तने को भी नदी में उतरते देखा । तब मैंने अपनी चाल और भी अधिक तेज़ कर दी । मैंने ऊपर की ओर देखा । म्हासोबा का देवालय और वह भैंसा-दह ! और पीछे भूत ! कुछ न पूछिए । ऊपर से वे अप्पा की भूत की कहानियाँ मेरे दिमाग़ में प्रवेश करतीं और मेरा कलेजा कँपा देतीं । मैंने एक बार फिर उस दौड़ते आते तने की ओर देखा और अपनी चाल और भी अधिक तेज़ कर दी ।

परन्तु मैं जिस वेग से दौड़ रहा था, उसी वेग से मेरे पीछे लगी वह बला भी दौड़ी आ रही थी । आगे चलकर मुझे महसूस हुआ कि मेरी चाल आप-ही-आप कम हो रही है । और मैंने मुड़कर देखा, तो मुझे दिखायी दिया कि वह तना अब मेरे काफ़ी नज़दीक आ गया है । उस समय तक मैं सातवा के खार में पहुँच गया था । चाँद सिर पर आ गया था । मुँह पर पसीना आ जाने से मुझे आगे का कुछ ठीक से सूझता न था । मैं भागते हुए पसीना पोंछ रहा था । मेरे पैरों में जैसे गुठले पड़ गये थे, वे जड़-से लग रहे थे, उन्हें उठाना कठिन हो रहा था, और भूत नज़दीक आ रहा था ।

अन्त में प्राणों पर उदार होकर मैं खट से खड़ा हो गया और वार करने के अन्दाज़ से मैंने कुल्हाड़ी पकड़ ली । मेरे खड़े होते ही वह आकृति भी खट-से खड़ी हो गयी ।

इस सयय देखा, तो निकट आ जाने के कारण, मुझे लगा कि वह पेड़ का तना नहीं है, बल्कि एक स्त्री की आकृति है । मैंने डाँटकर कहा—कौन है तू ? भूत या मनुष्य ?

—भूत ,—मुझे उत्तर मिला ।

—भूत ? फिर तू क्या चाहती है ?—मैंने डरते-डरते पुनः प्रश्न किया ।

—मुझे साथ की जरूरत है ।

यह सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ और मैंने फिर पूछा—तू भूत है, तो तुझे साथ की क्या ज़रूरत ?

—इसलिए कि मुझे डर लगता है।

मैं और भी अधिक चकराया। पूछा—डर ? भूत को किसका डर लगता है ?

यह सुनकर वह आकृति कुछ आगे बढ़ती हुई बोली—मुझे भूत का डर लगता है।

—भूत का ? फिर तू कौन है ?

मेरा यह प्रश्न सुनकर वह भूत बोला—तुम अपनी कुल्हाड़ी नीचे कर लो। मुझे मारो मत और मुझे थोड़ा और अपने निकट आ जाने दो, तो मैं तुमसे सब-कुछ कहे देती हूँ।

उस व्यक्ति के शब्दों में दुख, विरक्ति और चिढ़ का मिश्रण था। परन्तु उसका स्वर मधुर था। अब उससे भय लगने के बजाय मुझे उस भूत पर दया आने लगी। मैंने कहा—तू आगे बढ़ सकती है। पर जब मैं कहूँ कि ठहर, तो तुझे फौरन रुक जाना होगा।

अप्पा कहा करते थे कि भूत लोहे से डरता है। जब वह मुझसे आठ-दस फुट दूरी पर आ गयी, तब चन्द्रमा के प्रकाश में मुझे उसका मुँह स्पष्ट दिखायी देने लगा। वह सोलह-सत्रह वर्ष की गोरे रंग की मध्यम ऊँचाई की एक सुन्दर युवती थी। उसका भी सारा शरीर पसीने से तर-बतर था। उसकी नाक की चमकी और गालों पर के स्वेद-विन्दु एक-से ही चमक रहे थे। उसने बायें हाथ से अपनी साड़ी का पल्ला पकड़ रखा था और दाहिने हाथ में पेट से सटाये एक गठरी पकड़े थी। वह थक गयी थी। लुहार की धौंकनी की तरह उसका वक्षस्थल ऊपर-नीचे हो रहा था। उसने मुझ जैसे हमेशा पर्वतों और घाटियों में दौड़नेवाले व्यक्ति के साथ डेढ़-दो मील की दौड़ लगायी थी। उससे बात करते न बनता था। वह अपने सीने मेंभरी हवा को एकदम छोड़ती तब बातें करती। रह-रह कर अपने सूखे हुए होंठों पर जीभ घुमाकर गीला करती। थोड़ी देर सुस्ताकर वह बोली—मैं थक गयी हूँ। नीचे बैठ सकती हूँ ?

मैं भी यही चाहता था। कहा—हाँ-हाँ, बैठ जाओ।

वह बैठ गयी। बैठते समय उसे मालूम हुआ, उसके पैर अकड़ गये थे। वह घुटने पर हाथ रखकर धीरे-धीरे बैठी।

(४)

मैं पास पड़े हुए एक पत्थर पर युद्ध के सैनिक की तरह चौकन्ना हो बैठ गया। अप्पा ने मुझे भूत की पहचान बतायी थी। उन्होंने कहा था कि जिस व्यक्ति की एड़ियाँ आगे और पंजे पीछे की तरफ हों, तो पक्की तरह समझ लो कि वह भूत है। इसलिए मैं उसके पैर देखने की कोशिश करने लगा। तभी उसने पैर ढाँक लिये। पुनः मेरा संशय बढ़ने लगा और मुझे डर लगने लगा।

वह बोली—मैं छः महीने पहले भूत हुई थी। उससे पहले मैं मनुष्य थी। मैं अपने माँ-बाप के घर सुख का जीवन बिता रही थी। मैं जब बड़ी हुई, मेरे पिता को मेरे विवाह की चिन्ता हुई। वह कहा करते, लड़की सड़ा हुआ किराना होती है। उसे घर में रखना ठीक नहीं। उसे अपने पति के घर ही मरना चाहिए। इसके बाद कहीं से मेरी मंगनी आयी। फिर मेरी शादी हुई और मैं ससुराल चली गयी। ससुराल में हम लोग कुल मिलाकर पाँच व्यक्ति थे, मैं, मेरा पति, सास, ससुर और एक देवर। मैं इन-सब लोगों की मर्जी के मुताबिक रहने लगी। परन्तु जिस महीने में मैं ससुराल गयी, उसी महीने में किसी संक्रामक रोग से हमारा एक बैल मर गया। दूसरे महीने में मेरे हाथ से एक भैंस गुम हो गयी। अब यह सिद्ध हो गया कि मैं बड़ी अशुभ हूँ। और फिर घर के सब लोग मेरे साथ बड़ी सख्ती से पेश आने लगे। तीसरे महीने में साहूकार ने हमारे खेतपर कब्जा कर लिया, क्योंकि मेरे विवाह के लिए उसने कर्जा दिया था। उसे तीन महीने में लौटाने का वादा हुआ था और यह शर्त थी कि यदि कर्जा वक्त पर अदा न होगा, तो साहूकार ज़मीन अपने कब्जे में कर लेगा। जब खेत हाथ से निकल गया, तो मेरे पति को कर्जा अदा करके जमीन छुड़ाने के लिए नौकरी करनी पड़ी। यह सोचकर कि बैल, भैंस, खेत और पति के घर से निकल जाने का मैं ही कारण हुई, सासु मुझसे कहने लगीं, मेरे घर में भूत घुस गया है। वह भूत मैं थी। तब से मुझे मज़दूरी करनी पड़ी। मैं लोगों के घर काम पर जाती। आगे चलकर

मेरे बालों में जटायें पड़ गयीं, और वे जूओं के खोते बन गये। उनके कारण मेरी नींद हराम हो गयी। सास मेरे लिए रोज कहीं न कहीं काम खोजती।...

उसकी बातें सुनते हुए मेरे मस्तिष्क में भिन्न-भिन्न विचार आ रहे थे। मुझे लगने लगा कि अप्पाजी यह कहते थे कि भूत लोहे से डरता है, यह बात कदाचित सच होगी। यही भूत कुछ समय पहले तक मेरे पीछे लगा हुआ था। वही अब होश में आकर मुझसे अंड-बंड बातें कर रहा है, और चुपचाप शायद देख रहा है कि कब मैं अपनी कुल्हाड़ी हाथ से दूर करता हूँ। इसलिए यह विचार कर कि चाहे कुछ भी हो, मैं अपनी कुल्हाड़ी हाथ से हरगिज़ दूर नहीं करूँगा, मैं उसकी बातें सुनने लगा।

वह आगे बोली—एक दिन मैं कहीं से एक कैंची ले आयी और बाल काटने के लिए तैयार हो गयी। परन्तु यह काम करने से पहले मैंने अपने पति की इजाजत ले लेना उचित समझा। इसलिए सास की चोरी से मैं अपने पति से जाकर मिली। उसे अपना सिर दिखाया और खूब रोयी। मेरी वह दशा देखकर मेरा पति भी रोने लगा।

—मैंने एक बार आत्म-हत्या भी करने का विचार किया था, परन्तु यह सोचकर कि इसमें मेरी बदनामी होगी, मैंने वह काम न किया। मैं अब एक सेठजी के खेत में काम करने जाया करती थी। वह सेठ मेरी ओर पाप की दृष्टि से देखने लगा। मैंने यह बात सास से कहा। परन्तु वह बोली, तू काम नहीं करना चाहती, इसलिए तू उस भले आदमी को बदनाम कर रही है। मैं असहाय हो गयी। मुझे किसी का भी सहारा न रहा।...अन्त में, मनुष्य होकर मैं भूत क्यों और कैसे हो गयी, यह पूछने के लिए मैं अब अपने पिता के घर जा रही हूँ। सब लोग मुझे भूत कहते हैं, इसलिए मैं भी अपने को भूत समझती हूँ।

मैंने कहा—मतलब यह कि तू भूत नहीं है?

उसने अपना सिर ठोंका और बोली—नहीं जी, मनुष्य को जब चारों तरफ़ से आफतें घेर लेती हैं, तो विरक्त होकर वह भूत ही हो जाता है।

—अच्छा, तो अब तू चाहती क्या है? तुझे कहाँ जाना है?

—मुझे जावली जाना है और इसके लिए तुम्हारा मुझे साथ चाहिए।

—नहीं, इसका नाम भी न ले। मुझे डर लगता है।

इसपर वह हँसती हुई बोली—क्योंजी, जब भूत का साथ है, तो डर किस बात का?

पऱ्याची चाल,
चिराग़ नगर, घाटकोपर,
बम्बई।

मराठी से अनुवाद—रा० र० सर्वटे

रात के दस बजे होंगे। श्मशान के एक ओर डोम ने बेफ़िक्री से खाट बिछाते हुए कबीर के दोहे की ऊँची तान छेड़ दी—जेहि घट प्रेम न संचरै, सोइ घट जान मसान...

श्मशान का दिल भर आया। एक सर्द आह भरकर उसने अपने पहलू में खड़ी पहाड़ी से कहा—मैं इन्सान को जितना प्यार करता हूँ, उतनी ही घृणा उससे पाता हूँ। सभी मनुष्य यही चाहते हैं कि जीते-जी उन्हें मेरा मुँह न देखना पड़े। पर वास्तव में मैं इतना बुरा नहीं हूँ। संसार में जब मनुष्य को एक दिन के लिए भी स्थान नहीं रह जाता, तब मैं उसे अपनी गोद में स्थान देता हूँ। चाहे कोई अमीर हो या ग़रीब, वृद्ध हो या बालक, मैं सबको समान दृष्टि से देखता हूँ। पर इससे क्या होता है? मेरे पास वह प्रेम नहीं, जो मनुष्य की सबसे बड़ी निधि है। मेरे दिल में मोहब्बत का चिराग़ रोशन नहीं होता, जिसके बल पर मैं उसके दिल में अपने लिए थोड़ा-सा स्थान बना सकता। नहीं जानता, खुदा ने मेरे साथ ऐसी बेइन्साफ़ी का सलूक क्यों किया?

शहर और श्मशान के बीच खड़ी पहाड़ी मुस्करा दी। उसकी यह व्यंग्यात्मक मुस्कराहट श्मशान के हृदय में चुभ गयी। उसने पूछा—क्या तुम्हारी कभी यह इच्छा नहीं होती कि तुम्हारे पास भी इन्सान की तरह प्रेम-भरा दिल होता, जिसमें अपने प्रिय के लिए मर-मिटने की तमन्ना मचलती रहती? कभी-कभी दूर-दूर से हवाएँ आती हैं और लैला-मजनूँ और शीरी-फ़रहाद की प्रेम-कहानियाँ मुझे सुना जाती हैं, और, सच मानना, मैं तड़पकर रह जाता हूँ कि काश, मैं भी मजनूँ होता, तो लैला के वियोग में अपने को क़ुर्बान कर देता। प्रिय की प्रतीक्षा में राह में पलकों के पाँवड़े बिछाकर बैठा रहता। सावन की ऊदी घटाएँ मेरे मन में हूक उठातीं और बसन्त की सुरमई साँझे मेरे मन में तड़प बनकर रह जातीं। प्रिय का जीवन ही मेरा जीवन होता और उसकी मौत मेरी मौत। पर क्या करूँ, ईश्वर ने तो मुझे श्मशान बनाया है, जिसके हृदय में मोहब्बत नहीं, प्रेम नहीं, स्निग्धता नहीं, सरसता नहीं, केवल धू-धू करती आग की लपटें हैं।

एक आँख से श्मशान को और दूसरी आँख से शहर को और उसमें बसे इन्सानों को देखनेवाली पहाड़ी ने पूछा—

बड़ी तमन्ना है इन्सान बनने की !

श्मशान ने कहा—तमन्ना ! मनुष्य के पास जैसा प्रेम-मय हृदय है, उसे पाने के लिए मैं अपने-जैसे सौ जीवन क़ुर्बान कर सकता हूँ ।

पहाड़ी मुस्करा दी ।

इतने में ही किसी के करुण क्रन्दन ने श्मशान के शुष्क हृदय को दहला दिया । एक छोटी-सी भीड़ किसी शव को लिये चली आ रही थी । उसमें एक सुन्दर नवयुवक फूट-फूटकर रो रहा था, मानो किसी ने उसका सर्वस्व लूट लिया हो । लाश उतारी गयी । वह उस नवयुवक की पत्नी थी । युवक का क्रन्दन श्मशान के हृदय को बेध गया ।

सारा क्रिया-कर्म समाप्त कर जैसे-तैसे उस युवक को सँभालकर वे लोग ले गये और श्मशान सोचता रहा, कितना प्यार करता होगा यह अपनी पत्नी को ! काश, मैं भी किसी को इतना प्यार कर सकता !

दूसरे दिन साँझ के धुँधले प्रकाश में श्मशान ने देखा, वही युवक आ रहा है । उसके कल के और आज के चेहरे में ज़मीन-आसमान का अन्तर था । एक रात में ही जैसे वह बूढ़ा हो गया था । आँखें सूजकर लाल हो गयी थीं । वह पागलों की तरह लड़खड़ाता हुआ आया और अपनी पत्नी की राख बटोरने लगा । कुछ देर तक वह हिचकियाँ लेता रहा और उसकी आँखों से निरन्तर अश्रु बहते रहे । पर फिर जैसे भावनाओं का बाँध टूट गया, वह सिर फोड़-फोड़कर रोने लगा और चीखने लगा—तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली गयीं, सुकेशी ? याद है, कितनी बार तुमने कसमें खायी थीं कि ज़िन्दगी-भर तुम मेरा साथ दोगी । पर यों दो वर्षों में ही तुम मुझे अकेला छोड़कर चली गयीं । अब मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकता ! तुम मुझे अपने पास बुला लो, नहीं तो मुझे ही तुम्हारे पास आने का कोई उपाय करना पड़ेगा । तुम नहीं, तो मेरे जीवन का कोई अर्थ नहीं, कोई सार नहीं, कोई रस नहीं ! तुम्हीं तो मेरा जीवन थीं, प्राण थीं, प्रेरणा थीं । अब मैं जीवित रहकर करूँगा ही क्या ? मुझे अपने पास बुला लो, मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता, नहीं रह सकता, तरह भी नहीं रह सकता !—इसी प्रकार विलाप कर-कर के वह रोता रहा, सिर फोड़ता रहा और मूक श्मशान अपनी सूखी, पथरायी आँखों से इस दृश्य को देखता रहा । इन्सान बनने की, प्रेम करने की और अपने प्रिय के वियोग में इसी नवयुवक की भाँति मर-मिटने की तमन्ना और अधिक ज़ोर पकड़ती रही । वह यही सोचता रहा, काश, मैं भी किसी को इसी तरह दिलोजान से प्यार कर सकता ! और उसके पहलू में खड़ी पहाड़ी मुस्कराती रही ।

रो-धोकर वह व्यक्ति तो चला गया, पर श्मशान के हृदय को उसके आँसू गर्म सलाखों की तरह दग्ध करते रहे। उसने पहाड़ी से कहा—इस व्यक्ति की व्यथा ने मेरे हृदय को मथ डाला । यों तो यहाँ रोज़ ही ऐसे कितने ही व्यक्ति आते हैं, पर जाने क्यों इसके दुख में, इसकी वेदना में ऐसा क्या था, जो मैं कभी नहीं भूल सकूँगा । तुम देखना, अब यह जीवित नहीं रहेगा । एक दिन में ही अपनी प्रेयसी के वियोग में जिसने अपने शरीर को आधा बना डाला हो, वह भला कितने दिन इस प्रकार जीवित रह सकेगा ? वह अवश्य ही रो-रोकर प्राण दे देगा, और मैं चाहता भी हूँ कि यह मेरी गोद में आ जाय और मैं दोनों को हमेशा के लिए मिला दूँ ।

सारे दिन वह युवक के शव की प्रतीक्षा करता रहा, पर शव न आया। हाँ, आसमान में जब साँझ का धुँधलका छाने लगा, तो वह युवक स्वयं आया और पागलों की तरह प्रलाप करता रहा । तीन-चार दिन तक यह क्रम बना रहा । फिर युवक का आना बन्द हो गया । पर श्मशान उसे भूल न सका । प्रत्येक शव को वह जाने किस उत्सुकता से देखता, और फिर कुछ खिन्न हो जाता ।

एक दिन उसने पहाड़ी से पूछा—तुम्हें तो शहर का कोना-कोना दिखायी देता है, बता सकती हो, उस युवक का क्या हाल है ?

पहाड़ी ने मुस्कराते हुए कहा—नहीं ।

श्मशान ने कहा—मेरा अन्तःकरण रह-रहकर कह रहा है कि अवश्य ही उसने आत्महत्या कर ली होगी । वह शायद नदी में डूब गया होगा , या किसी ऐसे ही उपाय से उसने अपना अन्त कर लिया होगा कि मैं उसकी लाश को भी नहीं

पा सका। मेरी कितनी बड़ी तमन्ना थी कि मैं उसे उसकी प्रिया के पास पहुँचा देता। पर वह भी पूरी न हो सकी।

पहाड़ी ने पूछा—तुम्हें विश्वास है कि वह मर गया होगा ?

श्मशान खीझ उठा—तुम तो बिल्कुल ही पत्थर हो! जिसके हृदय को प्रेम की पीर ने बेध दिया हो, वह कभी जीवित नहीं रह सकता!

पहाड़ी केवल मुस्करा दी।

दिन आये और चले गये। अपने ही आँचल में इन्सानों को अपने प्रेमियों के वियोग में आँसू बहाते देख श्मशान का मन इन्सान के प्रति और अधिक श्रद्धालु होता गया, और यह एक क्रम-सा हो गया कि श्मशान इन्सान के अलौकिक गुण गाया करता और पहाड़ी मुस्कराया करतीं।

इसी प्रकार तीन वर्ष बीत गये। तीन वर्ष की लम्बी अवधि भी श्मशान के मन से उस सुन्दर युवक की व्यथा को पोंछ न सकी। वह अक्सर उसकी बात करता। उसके उन आँसुओं की बात करता, जो उसने अपनी प्रेयसी के वियोग में बहाये थे। उसके उस अनुपम प्रेम की बात करता, जिसने अवश्य ही उसे आत्महत्या के लिए बाध्य कर दिया होगा। उससे उस करुण विलाप की बात करता, जो आज भी उसके हृदय को मथे डाल रहा था।

तभी एक दिन फिर उसका हृदय किसी परिचित स्वर के करुण चीत्कारों से दहल उठा। उसने देखा, वही सुन्दर युवक एक छोटी-सी भीड़ के साथ किसी शव को लिये आ रहा है। श्मशान ने सोचा, यह अभी जीवित है ? अब इस अभागे पर ईश्वर ने और कौन-सा दुख डाला है ?

पर वहाँ जो बातचीत हो रही थी, उससे यह समझने में देर न लगी कि यह भी उसकी पत्नी ही थी। सब लोग यही कह रहे थे, इसके भाग्य में पत्नी का सुख ही नहीं लिखा है; वर्ना पाँच ही वर्ष में यों दो-दो पत्नियाँ न छोड़ जातीं। अभी बेचारे की उम्र ही क्या है ?...

आज भी युवक का क्रन्दन अत्यन्त करुण था, आज भी उसके चीत्कार हृदय को दहला देनेवाले थे, आज भी उसके आँसू गर्म सलाखों की भाँति दग्ध कर देनेवाले थे। उसके पहले दिन के रूप में और आज के रूप में कोई विशेष अन्तर नहीं था। जैसे-तैसे धीरज बँधाकर और पकड़-पकड़ाकर वे लोग उसे ले गये।

श्मशान के मन में वर्षों से मनुष्य के अलौकिक प्रेम की जो धारणा जमी हुई थी, उसको आज पहली बार हल्का-सा धक्का लगा। सन्ध्या समय वह युवक फिर आया और अपनी पत्नी की राख में लोट-लोटकर विलाप करने लगा—मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि तुम मुझे इस प्रकार छोड़कर चली जाओगी। यदि इसी तरह मुझे मँझधार में छोड़कर जाना था, तो मेरा साथ ही क्यों दिया था ? और साथ दिया, तो यों बीच में क्यों छोड़ दिया ? अब मैं तुम्हारे बिना कैसे जीवित रहूँगा ? तुमने अपनी मधुर मुस्कानों से एक दिन में ही मेरे मन से सुकेशी की व्यथा को पोंछ दिया था। मैं मन-प्राण से तुम्हारा हो गया। तुम ही तो मेरा प्राण थीं। अब यह निष्प्राण देह कैसे जीवित रहेगी, कितने दिन जीवित रहेगी ? मुझे अपने पास बुला लो, अब मैं इस संसार में नहीं रह सकूँगा। सुकेशी तो मेरी अनुगामिनी थी, इसी लिए मुझे उसका अभाव इतना नहीं खटका, पर तुम तो मेरी सहगामिनी थीं, हम तो दो शरीर एक प्राण थे। जब प्राण ही चले गये, तो शरीर का क्या प्रयोजन ?

इसी प्रकार वह रोज़ आता, घंटों विलाप करता और चला जाता। उसके आँसुओं में कुछ ऐसी शक्ति थी, उसके विलाप में कुछ ऐसी सत्यता थी कि श्मशान के मन में पहले जो एक हल्की-सी संदेह की रेखा उभर आयी थी, वह भी मिट गयी।

एक बार फिर श्मशान उसके शव की प्रतीक्षा करने लगा, और अधिक दृढ़ विश्वास से कि इस बार के धक्के ने अवश्य ही उसके जीवन का अन्त कर दिया होगा। श्मशान बराबर मन में यह साध सँजोये बैठा रहा कि कब वह उस युवक और उसकी पत्नी को अपनी गोद में सदा के लिए मिला दे, ऐसा मिलाप, जिसमें वियोग का भय न हो। पर उसका शव न आया। उसके हृदय की लालसा लालसा ही बनी रही।

फिर वही ढर्रा चल पड़ा। रोज़ कितने शव जलते, मनुष्य रोते, श्मशान मनुष्य के अलौकिक प्रेम का गुण

गाता और पहाड़ी मुस्कराती। अन्तर था, तो केवल इतना कि श्मशान के स्वर में कुछ उतार आ गया था और पहाड़ी की मुस्कराहट में व्यंग कुछ अधिक स्पष्ट और प्रखर हो गया था।

दो वर्ष भी नहीं बीत पाये होंगे कि श्मशान के कानों में फिर वही परिचित स्वर सुनायी पड़ा और उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि वह युवक इस बार अपनी तीसरी पत्नी के शव को जलाने आया है। उसने सोचा, शायद बिना प्रेम के ही उसने मजबूरी की हालत में यह विवाह कर लिया हो। पर जब उस युवक का विलाप सुना, तो यह भ्रम भी जाता रहा। आज भी उसका क्रन्दन उतना ही करुण था, आज भी उसके चीत्कार हृदय को दहला देनेवाले थे, आज भी इसके अश्रु गर्म शलाखों की भाँति हृदय को दग्ध कर देनेवाले थे। उसके पहलेवाले रूप में और आज के रूप में कोई अन्तर न था। उसकी बातें भी वही थीं, केवल इतना अन्तर था कि आज उसे अपनी तीसरी पत्नी ही सबसे अधिक गुणी दिखायी दे रही थी। वह दावा कर रहा था कि तीसरी पत्नी से ही उसका सच्चा प्रेम था, पहली दो स्त्रियों का प्रेम तो बचपना था, नासमझी थी। पहली स्त्री उसकी अनुगामिनी थी, दूसरी सहगामिनी, तो तीसरी उसकी प्रिया, मित्र, और पथ-प्रदर्शिका थी, जिसके बिना एक क़दम भी वह आगे नहीं बढ़ सकता है। उसको अब मरना ही होगा, उसके बिना वह एक दिन भी जीवित नहीं रह सकता। वही पुरानी बातें, वही विलाप, वही क्रन्दन, मानो इसका भावना के साथ कोई सम्बन्ध ही न हो, कंठस्थ पाठ की तरह वह उसे दुहरा रहा हो।

मनुष्य के अलौकिक प्रेम की भावना को श्मशान अपने जिस हृदय में बड़े यत्न से सँजाये बैठा था, उसका वही हृदय इस दृश्य से पत्थर का हो गया। वह अवाक्, विमूढ़-सा देखता रहा। उसकी दृष्टि पथरायी हुई थी, फिर भी उसमें एक प्रश्न साकार हो उठा था।

पहाड़ी ने उसकी यह हालत देखी, तो तरस खाकर बोली—सचमुच तुम मूर्ख हो। इतना भी नहीं समझते कि जो इन्सान प्रेम करता है, उसे जीवन भी कम प्यारा नहीं। वह प्रेम की स्मृति, कल्पना और आध्यात्मिक भावना पर ही ज़िन्दा नहीं रहता। वह जीवन की पूर्णता के लिए फिर-फिर प्रेम करता है, जीवित रहने का हर प्रयत्न करता है, वह हर वियोग झेल लेता है, व्यथा सह लेता है,

१६५/१ लैंसडाउन रोड,
कलकत्ता-२६।
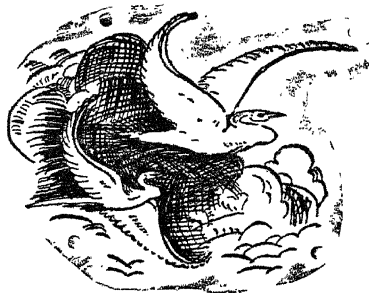
जैक लंडन

दिन निकला, लेकिन बेहद सर्द, बिलकुल बेरौनक़। और वह आदमी युकन नदी की ओर जानेवाली मुख्य पगडंडी को छोड़कर ऊँचे टीले पर चढ़ गया। वहाँ से एक पतली पगडंडी पूरब की ओर देवदार के घने जंगलों को चली गयी थी। टीला सीधा, खड़ा-सा था। चोटी पर जाकर वह आदमी घड़ी देखने के बहाने दम लेने को रुका। नौ बज रहे थे। आसमान में बादल नहीं था, फिर भी सूरज का कहीं पता न था। कहने को दिन था, लेकिन सभी चीज़ों पर एक पर्दा-सा पड़ा था। सूरज के अभाव में एक सूक्ष्म उदासी दिन को अँधियारा बना रही थी। मगर इसकी परवाह उस आदमी को न थी। वह सूरज की अनुपस्थिति का आदी था। सूरज देखे कई दिन बीत गये थे और वह जानता था कि कुछ दिनों बाद ही वह प्रकाश-पिंड सीधे दक्षिण में क्षण-भर के लिए क्षितिज से झाँकेगा और फिर फौरन डूब जायगा।

उसने एक बार पीछे मुड़कर देखा। मील-भर चौड़ी युकन नदी जमी पड़ी थी। पानी तीन फ़ुट की गहराई तक जम गया था। उसपर कई फ़ुट मोटी बर्फ़ आसमान से गिरी थी। दूर तक स्वच्छ, सफेद बर्फ़ की लहरदार परतें पड़ी थीं। उत्तर-दक्षिण जिधर भी नज़र जाती थी, सफेदी-ही-सफेदी थी। सिर्फ़ दक्षिण में एक काली, पतली रेखा देवदार से ढँके टापुओं के गिर्द बल खाती हुई उत्तर के टापुओं की ओर चली गयी थी। यह रेखा उस मुख्य पगडंडी की थी, जो ५०० मील दक्षिण चीलकूट की घाटी और खाड़े समुद्र को चली जाती थी, फिर वहाँ से उत्तर मुड़कर ७० मील दूर डौसन और ढाई हज़ार मील दूर बेरिंग सागर के तटवर्त्ती नगर सेंट माइकेल को।

लेकिन इन तमाम बातों का, कि वह रहस्यमय, पतली पगडंडी दिगन्त तक चली जाती है, कि आसमान में सूरज नहीं है, कि बेहद ठंड है और सर्वत्र वीरानगी और अस्पष्टता का साया फैल रहा है, उस आदमी पर कोई असर नहीं था। इसका यह माने नहीं कि वह इन-सबका आदी था। नहीं, वह पहली बार इस इलाके में आया था और उसके लिए इधर का यह पहला जाड़ा था। उसकी मुसीबत बस इतनी ही थी कि उस बेचारे को कोई सूझ-बूझ न थी। भौतिक जीवन के प्रति वह जागरूक और सचेष्ट तो था, मगर उसकी नज़र पार्थिव वस्तुओं तक ही जाती थी। उन वस्तुओं के क्या माने-मतलब हैं, वह सोच नहीं पाता। शून्य के नीचे ५० डिग्री तापमान का अर्थ उसके लिए करीब ८० डिग्री का पाला था। और इसी से वह समझता था कि बेहद सर्दी पड़ रही है। बस, इतना ही। वह सोच ही नहीं सकता था कि तापमान पर निर्भर रहनेवाला इंसान कितना कमज़ोर है, वह ख़ुद कितना कमज़ोर है कि वह सर्दी और गर्मी की निश्चित सीमाओं के भीतर ही ज़िन्दा रह सकता है। फिर तो सृष्टि में इंसान की हैसियत और अमरता आदि की कल्पना करना उसके लिए दूर की बात थी।

शून्य के नीचे ५० डिग्री तापमान का मतलब था, पाले का घोर कष्ट, जिससे बचने के लिए दस्ताना और कनटोप चाहिए, हिरण के चमड़े का गर्म जूता और मोटा मोज़ा

चाहिए। शून्य के नीचे ५० डिग्री तापमान का अर्थ बस शून्य के नीचे ५० डिग्री-भर था। इसके बाद भी कोई चीज़ हो सकती है, वह सोच नहीं पाता।

टीले से आगे बढ़ने के पहले उसने थूका। तेज़ खट्-सी आवाज़ हुई, जिससे वह चौंक पड़ा। उसने फिर थूका। तीसरी बार उसने हवा में थूका और नीचे की बर्फ़ पर गिरने के पहले थूक से चट्-चट् की आवाज़ निकली। वह जानता था कि शून्य के नीचे ५० डिग्री तापमान में थूक बर्फ पर गिरकर चिटखती है, लेकिन यहाँ तो हवा में ही थूक चिटख रही थी। निश्चय ही तापमान ५० डिग्री से भी नीचे जा गिरा था, लेकिन कितना नीचे, यह भला वह कैसे जाने? ख़ैर, तापमान की कोई बात नहीं, उसे तो हेन्डरसन की खाड़ी के दक्षिण तट तक जाना था। उसके लड़के पहले ही वहाँ पहुँच गये थे। वे इण्डियन खाड़ी की राह गये थे, और वह खुद दूसरे घुमावदार रास्ते से जा रहा था। इधर आने का भी खास कारण था। वह देखना चाहता था कि वसंत ऋतु में युकन नदी के टापुओं से लकड़ी ले जाने की कितनी सुविधा है।

वह कई मील जंगल पार कर गया। फिर समतल फैलाव लाँघकर कगार के नीचे उतरा। पानी की पतली धारा जमी पड़ी थी। यही हन्डरसन की खाड़ी थी। यहाँ से १० मील पर खाड़ी की दुमुहानी थी। घड़ी में १० बज रहे थे। वह फी घंटे ४ मील की गति से चल रहा था। इस हिसाब से वह साढ़े बारह बजे दुमुहानी तक पहुँच सकेगा। इस खुशी में उसे खाने का ख्याल आया।

वह खाड़ी के किनारे-किनारे चलने को मुड़ा। कुत्ता फिर पाँव के पीछे लग गया और पूँछ गिराकर मानो उस ओर बढ़ने से मना करने लगा। बर्फ-गाड़ी के चलने का निशान स्पष्ट था, किन्तु उसपर एक फ़ुट मोटी बर्फ जम गयी थी। करीब एक महीने से इधर कोई आदमी नहीं निकला था।

ख़ैर, वह स्थिर भाव से बढ़ रहा था। ज्यादा सोचने की उसकी आदत नहीं थी और विशेषतः इस समय, जबकि कुछ सोचने को भी था, तो, बस, यही कि दुमुहानी पर पहुँचकर भोजन करेगा और छै बजते-बजते वह अपने लड़कों के पास पहुँच जायगा। इस समय उसके पास बात करने-वाला कोई न था। यदि कोई होता भी तो क्या वह कुछ बोल पाता? उसके मुँह पर तो बर्फ की जाबी लगी हुई थी। वह उदास भाव से तम्बाकू चबा रहा था। जर्द दाढ़ी की लंबाई बढ़ती जाती थी।

कभी-कभी ख़्याल आता कि बेहद ठंड पड़ रही है। ऐसी ठंड उसने कभी न झेली थी। चलते-चलते अपने कपोलों की हड्डियों और नाक को दास्ताना-मंडित हथेली से मलता जाता था। वह अनायास ही ऐसा करता था और बारी-बारी से हाथ बदलता था। जैसे ही मलना बन्द होता, नाक और कपोलों की हड्डियाँ ठंड से सुन्न हो जातीं। उसको यक़ीन हो गया की पाला गालों को काट खायगा। ऐसा उसका अनुभव था। अफ़सोस होने लगा कि क्यों न नाक ढँकनेवाली एक पट्टी बना ली। वह पट्टी नाक के साथ गालों को भी ढँकती। ख़ैर, कोई बात नहीं। पाला के काटने से होगा क्या? महज़ थोड़ी-सी पीड़ा, और वह बिलकुल मामूली-सी।

चूँकि उसके दिमाग़ में किसी तरह का ख़्याल नहीं था, निगाह बड़ी तेज़ हो रही थी। पतली खाड़ी के तमाम परिवर्तनों को उसने एक नज़र में देख लिया कि कहाँ-कहाँ किनारे कटे-फटे और घुमावदार हैं और कहाँ-कहाँ लकड़ियाँ अटकी हुई हैं। चलते समय वह ख़ूब देख भालकर अपना पाँव रखता था। एक जगह मोड़ पार करने के बाद वह अचानक ठिठक गया और बिदके हुए घोड़े की तरह अपनी राह छोड़-कर कई क़दम पीछे हट गया। वह जानता था कि इस समय यह पतली खाड़ी तली तक जम गयी है। उत्तरी ध्रुव-प्रदेश में इस समय किसी भी धारा में पानी नहीं है। सब-की-सब जमी पड़ी हैं। किन्तु वह यह भी जानता था कि पहाड़ियों पर से झरने उतरते हैं, जिनकी धार बर्फ के नीचे-नीचे बहती हैं। ये धारायें खाड़ी की ऊपरी तह पर बर्फ जमे रहने पर भी नीचे चलती रहती हैं और कठिन-से-कठिन शीत में भी इनका पानी नहीं जमता है। ऐसी धाराएँ बड़ी ख़तरनाक होती हैं। इनमें जहाँ-तहाँ गढ़े भी पड़ जाते हैं, जो तीन इंच से लेकर तीन फ़ुट तक गहरे हो सकते हैं। इन गढ़ों के

भी ऊपर बर्फ़ की आध इंच पतली पपड़ी पड़ी रहती है। कहीं-कहीं तो पानी और बर्फ की कई-कई परतें रहती हैं। एक परत के टूटते ही सभी परतें टूटती चली जाती हैं और चलनेवाला बेचारा इंसान कमर तक भींग जाता है।

यही कारण था कि वह चौंककर पीछे लौट गया। उसे महसूस हुआ था कि पाँव नीचे धँस रहे हैं और बर्फ टूटने की चट्-चट् आवाज़ आ रही है। इस ठंड में पैर भींगने का माने साफ़ था। तकलीफ़ ज़्यादा नहीं होती, तो भी देर तो होती ही, क्योंकि उसे रुककर आग जलानी पड़ती, मोज़े और जूते सुखाने पड़ते। वह रुककर धारा और तट को ग़ौर से देखने लगा। लगा, पानी दाहिनी ओर बह रहा है। सोच-समझकर वह नाक-गाल मलता हुआ बायीं ओर हो रहा। हर कदम पर पाँव तौलकर रखता था। ख़तरा पार कर लेने पर तम्बाकू चबायी और अपनी पुरानी चार मीलवाली रफ़्तार से चल पड़ा।

अगले दो घंटों के सफ़र में उसे इस तरह के कितने फन्दों से बचना पड़ा। बहुधा गढ़ों पर बर्फ जमी रहती थी। जहाँ कहीं ऊपर से धँसा-धँसा लगता था, वह ख़तरे से आगाह हो जाता। एक बार उसे ख़तरा बिल्कुल करीब लगा, तो उसने कुत्ते को ही आगे-आगे चलने को मजबूर किया। कुत्ता आगे बढ़ना नहीं चाहता था, लेकिन उस आदमी ने ठेल-कर उसे बढ़ाया। बेचारा जानवर सफ़ेद सतह पर चलता चला गया कि अचानक उसके अगले पाँव धँस गये और बाहर निकलते-निकलते बदन पर का लगा पानी जम गया। उसने फ़ौरन चाटकर बर्फ हटानी चाही, फिर बर्फ पर बैठकर पँजों के बीच से बर्फ निकालने की कोशिश शुरू की। यह सहज ज्ञान की बात थी। बर्फ नहीं हटाने का मतलब था कि पाँव में घाव हो जायगा। माने-मतलब की वह बात उसकी समझ से परे थी, पर अन्तर की कोई सहज चेतना कहती थी कि बर्फ हटा लेनी चाहिए। कुत्ता इसी आदेश का पालन कर रहा था। मगर आदमी तो समझदार था। उसे भले-बुरे की तमीज़ थी। वह दस्ताना खोलकर उसके पाँव से लगे हिम-कणों को हटाने में मदद करने लगा। एक ही मिनट तो उसकी उँगलियाँ खुली रहीं और इतने में ही लगा कि वे ठिठुर जायेंगी। बेशक कड़ी ठंड पड़ रही थी। उसने जल्दी-जल्दी दस्ताना चढ़ा लिया और वहशी की तरह कलेजा पीटने लगा।

बारह बजे दिन की रौनक़ सबसे ज्यादा थी। लेकिन सूरज सुदूर दक्षिण में क्षितिज-रेखा पार करने की तैयारी में तेज़-तेज़ भाग रहा था। उसके ज्वलित पिण्ड और हेन्डरसन की खाड़ी के बीच एक ऊँचा टीला था, जिस पर वह आदमी चल रहा था। दोपहर का स्वच्छ आसमान, परछाईं का पता नहीं। ठीक साढ़े बारह बजे वह खाड़ी के सिरे पर जा पहुँचा। अपनी चाल पर उसे खुशी हो रही थी। इस तरह अगर चलता रहा, तो निश्चय ही वह छै बजे अपने लड़कों के पास पहुँच जायगा।

जाकिट और कमीज़ के बटन खोलकर उसने अपना भोजन निकाला। मुश्किल से २५ सेकेण्ड लगे होंगे, इतने में ही ठंड ने उसकी नंगी उँगलियों को सुन्न कर दिया। लेकिन दस्ताना चढ़ाने के बजाय उसने पाँव पर खड़े हो उँगलियाँ पटकीं। फिर हिम-मंडित लकड़ी के कुन्दे पर बैठकर भोजन करने लगा। लेकिन उँगलियों की गर्मी फ़ौरन ख़त्म हो गयी। वह बिस्कुट का एक निवाला भी नहीं ले सका। उस हाथ में दस्ताना लगाकर उसने दूसरा हाथ खोला। कौर भर खाना मुँह में रखना चाहा, लेकिन बर्फ से उसका मुँह ढँका था। आग जलाकर मुँह पर की जाबी हटाना वह भूल ही गया था। उसे अपनी बेवकूफी पर हँसी आ गयी।

उसने जल्दी दस्ताना पहन लिया और खड़ा हो गया। थोड़ा भय हो रहा था। वह उछल-कूदकर सुन्न हाँथ-पाँवों में गर्मी लाने की चेष्टा करने लगा। निश्चय ही कड़ी सर्दी थी। सलफ़र खाड़ी के तट पर रहनेवाले उस बूढ़े ने ठीक ही कहा था कि इस इलाके में कितनी ठंड गिरती है। उसपर वह हँस दिया था कि आदमी को किसी बात पर निश्चित मत नहीं देना चाहिए।

जिस्म में थोड़ी गर्मी आ जाने पर उसने दियासलाई की डिब्बी निकाली। तटपर सूखी की जगह से, जहाँ पिछले वसन्त में बाढ़ के पानी ने सूखी टहनियाँ डाल दी थीं, उसने थोड़ी जलावन बटोर ली। थोड़ी मेहनत में ही तेज़ आग धधकने

लगी। उस आग के पास बैठकर उसने बिस्कुट खाया। क्षण-भर के लिए खुली प्रकृति की सर्दी परास्त हो गयी। कुत्ता भी गर्मी पा संतोष से फैलकर आग के पास बैठा था, मगर इतनी दूरी पर कि आग से पके नहीं।

खाना खा लेने के बाद वह बड़े इत्मीनान से पाइप सुलगाकर पीने लगा। फिर दस्ताना चढ़ाया, कानों को कनटोप से ढँका और बायीं ओर की धार के किनारे-किनारे चल पड़ा। कुत्ते को बड़ी निराशा हो रही थी। आग के पास वह लौट जाना चाहता था। इस आदमी को पता नहीं था कि सर्दी क्या होती है, सम्भवतः उसके पुरखों को भी पता नहीं था कि दरअसल सर्दी क्या होती है, हिम-बिन्दु से १०७ डिग्री नीचे की सर्दी। लेकिन कुत्ता यह-सब जानता था, उसके पुरखे भी जानते थे। उसने यह जानकारी सहज ज्ञान के रूप में पायी थी। वह यह भी जानता था कि ऐसे खुले में, और ऐसी कड़ी ठंड में पैदल चलना ठीक नहीं। ऐसे में तो बर्फ में खोल बनाकर गुड़मुड़ बैठ रहना चाहिए, और इन्तजार करना चाहिए कि कब आसमान पर बादल की चादर तन जाती है। लेकिन कुत्ते और आदमी के बीच भाव-प्रकाश का कोई आत्मीय साधन नहीं था, कुत्ता बेचारा आदमी का मेहनतकश ग़ुलाम था। कभी चटकार सुनने को मिली भी, तो सिर्फ कोड़े की अथवा घुड़कन की, जो कि कोड़े की फटकार की पूर्वसूचना होती है। फिर, क्यों और कैसे वह कुत्ता अपने मालिक को ख़तरे से अगाह करे? उसे आदमी की फ़िक्र नहीं। सिर्फ अपनी फ़िक्र थी, जिसके कारण वह आग के पास लौट जाना चाहता था। किन्तु आदमी ने सीटी बजायी, फिर कोड़े की मार सूचित करनेवाली आवाज़ में घुड़क दिया और कुत्ता दुबककर पाँवों से आ लगा, पीछे-पीछे चलने लगा।

उसने फिर तम्बाकू चबायी और नयी, पीली बर्फ की दाढ़ी बढ़ानी शुरू की। नम साँसों ने मूँछ, भौं और पलकों पर सफेद बुरादा छिड़क दिया। लगता था, हेन्डरसन खाड़ी की बायीं धार पर ज्यादा चश्मे नहीं उतरते हैं। आध घंटे तक एक भी नहीं मिला। लेकिन अचानक दुर्घटना हुई। एक जगह जहाँ ज़मीन कड़ी मालूम पड़ती थी, उसने पाँव रखा और नीचे आ रहा। ज़्यादा गहराई नहीं थी, लेकिन सूखे में आते-आते वह घुटने तक भींग गया।

उसे गुस्सा आया, और वह ज़ोर-ज़ोर से भाग्य को कोसने लगा। वह चाहता था कि ६ बजे तक अपने लड़कों के पास पहुँच जाय। लेकिन अब तो निश्चित रूप से एक घण्टे की देर हो जायगी। आग जलाकर उसे अपने पाँव, मोज़े और जूते सुखाने पड़ेंगे? यह निहायत ज़रूरी है, इतना वह जानता था।

वह ऊपर, किनारे पर चला गया। चीड़ के छोटे-छोटे पेड़ों की जड़ में सूखी लकड़ियाँ झाड़ियों में उलझी पड़ी थीं। पारसाल की महीन सूखी घास भी थी। उसने बर्फ पर मोटी लकड़ियाँ बिछा दीं, ताकि उनपर आग जलायी जाय, तो बर्फ गलकर आग को बुझा न दे। फिर जेब से बर्च (एक प्रकार की कड़ी लकड़ी) की सूखी छाल निकाली और उसमें सलाई लगा दी। छाल काग़ज़ से भी बेहतर जलने लगी। बिछी हुई लकड़ियों पर उस जलती छाल को रख दिया, फिर सूखी घास और नन्हीं टहनियाँ डाल-डालकर आग जिलाने लगा।

उसे अपने ख़तरे का एहसास था और वह बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे काम कर रहा था। आग की लपक जैसे-जैसे तेज़ होने लगी, वह क्रमशः बड़ी टहनियाँ डालने लगा। बर्फ पर पालथी मारकर बैठा था और बगल की झाड़ी से लकड़ियाँ खींच-खींचकर आग में डालता जा रहा था। वह समझता था, कोशिश नाकामयाब नहीं होनी चाहिए। शून्य के नीचे ७५ डिग्री तापमान पर इन्सान की आग जलाने की पहली कोशिश बेकार नहीं जानी चाहिए, ख़ासकर जबकि उसके पाँव भींगे हुए हों। पाँव अगर सूखे हों, और आग नहीं जल पायी, तो वह आध मील की दौड़ लगाकर ख़ून की हरारत तेज़ कर सकता है। लेकिन शून्य के नीचे ७५ डिग्री के तापमान में भींगे, ठिठुरे पाँवों की हरारत दौड़कर तेज़ नहीं की जा सकती। कितना भी तेज़ वह क्यों न दौड़े, भींगे पाँव ठिठुरते ही जायेंगे।

वह इन सारी बातों को जानता था। सलफ़र खाड़ी के उस बूढ़े ने पिछले साल के जाड़े की बातें बतलायी थीं। उसक

नसीहतें अभी याद आ रही थीं। उसके पाँव अभी ही बिल्कुल सुन्न हो गये थे। आग जलाने के लिए उसे दस्ताना उतारना पड़ा था और उँगलियाँ स्पन्दनहीन हो गयी थीं। ४ मील प्रति घंटे की चाल से चलते समय उसका हृद्पिंड जिस्म के पोर-पोर में खून उलीचता था। लेकिन जैसे ही चलना रुका, कलेजे का ख़ून उलीचना भी धीमा हो गया। सूने आसमान की ठंड धरती के इस अरक्षित छोर को काटे खा रही थी और वहाँ पर रहनेवाले इन्सान पर आघात का पूरा जोर पड़ रहा था, खून रुक रहा था। खून में जान थी, कुत्ते की तरह, और उसी तरह ढँक-छुप भी जाना चाहता था। जब तक वह चल रहा था, खून बदन की सतह तक दौड़ रहा था। लेकिन अब तो हरारत रुक गयी थी और खून की लहरें अंतस्तम में छुप जाना चाहती थीं। ख़ून की कमी का पहला एहसास बदन के छोरों को हुआ। भींगे पाँव तेज़ी से जम रहे थे, टाँग और उँगलियाँ तेजी से सुन्न पड़ रही थीं, पर उनका अभी जमना शुरू नहीं हुआ था। नाक और गाल तो जम ही गये थे, ख़ून की कमी से बदन का चमड़ा भी ठिठुर रहा था।

लेकिन अभी वह निरापद था। पैर की उँगलियों, नाक और गालों पर सिर्फ पाले का स्पर्श-भर बचा रहेगा, क्योंकि आग तेज़ी से जलने लगी थी और उसमें उँगलियों के आकार की लकड़ियाँ वह डालता जाता था। थोड़ी देर में अपनी कलाई जितनी मोटी लकड़ियाँ वह डाल सकेगा और तब वह अपने भींगे मोज़े और जूते खोलेगा। जब तक वे सूखेंगे, वह अपने पाँवों को आग के सहारे गर्म रखेगा। हाँ, अलबत्ता शुरू में, बर्फ मलकर उन्हें गर्म करना होगा।

आग जल पड़ी, और अब निरापद था। उसे सलफ़र खाड़ी के बूढ़े की बात याद आयी और मुस्कराने लगा। उसने कहा था, इन्सान को क्लोनडाइक में ५० डिग्री के नीचे कभी सफ़र नहीं करना चाहिए।...और, वह तो यहीं था; दुर्घटना का शिकार भी उसे होना पड़ा। लेकिन कितना ताज्जुब था कि उसकी उँगलियाँ इतनी जल्दी निस्पन्द हो गयीं। वे सचमुच बेजान हो रही थीं, क्योंकि वह लकड़ी को पकड़ नहीं पाता था। लगता था कि उँगलियाँ उसके जिस्म से जुदा हैं। लकड़ी पकड़ते वक्त उसे देखना पड़ता था कि सचमुच लकड़ी पकड़ में आयी अथवा नहीं। उँगलियों की नोंक से बाकी बदन को जोड़नेवाले तार मानों ढीले पड़ रहे थे।

लेकिन इन-सब की क्या पर्वाह। आग धधक रही थी, चट्-चट् की आवाज़ होती थी और लपटों की थिरकन में जिन्दगी का पैग़ाम था। वह जूते खोलने लगा, उनपर बर्फ पड़ी थी। मोटा जर्मन मोज़ा घुटने तक लोहे की म्यान बन रहा था। जूतों के फीते लोहे की छड़-से लगते थे। कुछ देर तक तो वह अपनी सुन्न उँगलियों से उन्हें खोलने की कोशिश करता रहा। फिर अपनी बेवक़ूफी का ख्याल आया और म्यानवाला चाकू निकाला।

लेकिन फीतों को काटने के पहले ही सब-कुछ हो गया। यह उसका अपना कसूर था, बल्कि कहना चाहिए ग़लती थी। चीड़ के पेड़ के नीचे आग जलाना ही नहीं चाहिए था। जलाना ही था, तो खुले में जलाता। यहाँ जलाने से एक सहूलियत तो जरूर थी, वह आसानी से झाड़ियों में से लकड़ियाँ निकाल-निकालकर आग में डाल सकता था। किन्तु जिस पेड़ के नीचे उसने आग जलायी थी, उसकी डालें बर्फ से लदी थीं। कई रोज़ से हवा नहीं चली थी और हर डाल बर्फ के बोझ से झुकी जा रही थी। जितनी बार वह लकड़ी तोड़ता था, डालियों में थिरकन होती थी, सूक्ष्म थिरकन, जिसका उसे ज्ञान भी न था, किन्तु जो आफत न्योतने के लिए काफी थी। पेड़ की ऊँची डाल से बर्फ छूटकर नीचे की डालों पर गिरी और उनपर जमी बर्फ को झकझोर दिया। यह सिलसिला आगे बढ़ता गया; यहाँ तक कि तमाम पेड़ की बर्फ धारा को वेग से झड़कर नीचे गिरने लगी, बिना किसी पूर्व सूचना के आग बुझ गयी और उसकी जगह पर नयी, बेतरतीव बर्फ का अम्बार लग गया।

उस आदमी का दिल धक्-से रह गया, मानो उसने मौत का परवाना सुना हो। एक क्षण तक बैठा-बैठा वह आगवाली जगह को घूरता रहा, फिर स्थिर हो गया। शायद सलफ़र खाड़ीवाले बूढ़े ने ठीक ही कहा था। अगर कोई हमराही होता, तो शायद खतरा नहीं था। वह साथी फिर से आग

जला देता। लेकिन यहाँ तो उसे ही दुबारा आग जलाना था, और इस बार ऐसी दुर्घटना नहीं होनी चाहिए। लेकिन अगर आग जल भी गयी, तो भी उसे सम्भवतः दो-एक उँगलियों से हाथ धोना पड़ेगा। उसके पाँव अब तक निश्चय ही जम गये होंगे और दुबारा आग जलने में वक्त लग ही जायगा।

ऐसे ही ख़्यालात उसके दिमाग में उठे, लेकिन वह बैठकर उनपर ग़ौर नहीं कर सका। एक ओर ये ख्यालात उठ रहे थे, दूसरी ओर वह अपने काम में लगा था। आग जलाने के लिए नयी पीठिका तैयार की, इस बार खुले में, ताकि दग़ाबाज़ पेड़ फिर बुझा न दे। सूखी घास और नन्हीं टहनियाँ जमा कीं। उन्हें वह उँगलियों से नहीं उठा पाता, हाथ से पकड़कर इकट्ठा करना पड़ता था। इस तरह से वह सड़ी लकड़ियाँ और हरी काई भी बटोर लाया। लेकिन और कुछ वह कर ही क्या सकता था? तरतीब से काम करता जा रहा था। वह भर-पाँजा बड़ी लकड़ियाँ भी उठा लाया, ताकि आग जल जाने पर उनका इस्तेमाल हो। इसी बीच वह कुत्ता बैठा हुआ चाहत-भरी निगाह से उसे देख रहा था कि यह इन्सान उसके लिए आग जला रहा है, हालाँकि इस बार आग जलाने में देर हो रही है।

सब-कुछ जमा कर लेने पर उसने जेब से बर्च की छाल का दूसरा टुकड़ा निकाला। छाल को वह पकड़ नहीं सकता था, मगर इतना एहसास जरूर था कि जेब में छाल है। उसे निकालने की कोशिश में सर-सराहट की आवाज़ होती थी। कोशिश करने पर भी वह निकाल नहीं सका और हर लमहे मालूम हो रहा था कि उसके पाँव जम रहे हैं। इस ख़्याल ने एक दहशत-सी पैदा कर दी। फिर भी वह स्थिर बना रहा। दाँतों से दस्ताना चढ़ा लिया और आगे-पीछे उन्हें भाँजने लगा। फिर अपने हाथों से बग़ल को पीटा। पहले तो वह बैठे-बैठे यह-सब करता रहा, फिर खड़ा हो गया। उधर कुत्ता था, जो बर्फ पर बैठा हुआ था और भेड़िया-नुमा उसकी झाड़ूदार पूँछ अगले पाँवों के गिर्द गरमाई हुई पड़ी थी। भेड़िये-जैसे उसके कान उत्सुकतावश आगे की ओर गिरे हुए थे। वह आदमी की हरकतों को देख रहा था, और उधर वह आदमी अपने हाँथ भाँजते समय इस जानवर के प्रति गहरे द्वेष से भर रहा था कि यह कैसे अपनी क़ुदरती ढाल में बचाव और गरमाई के मजे ले रहा है।

कुछ देर के बाद उसे अपनी भाँजी-पीटी उँगलियों में सुगबुगाहट का आभास मिला। धीमा स्पन्दन क्रमशः तेज़ हो गया और अन्त में एक तीखी पीड़ा बेचैन करने लगी, किन्तु इससे उस आदमी को संतोष ही हुआ। दाहिने हाथ से दस्ताना उतारकर बर्च की छाल निकाली। नंगी उँगलियाँ फिर सर्द पड़ने लगीं। इस बार उसने गंधक की दियासलाई निकाली। किन्तु तेज़ ठंड ने अब तक उँगलियों को बेजान कर दिया था। एक तिल्ली निकालने की कोशिश में उसने उन्हें उठाना भी चाहा, तो कोशिश बेकार गयी। बेजान उँगलियाँ न छू सकती थीं, न पकड़ सकती थीं।

वह सावधान हो गया। ठिठुरते हुए पाँव, नाक और गालों का ख्याल दिल से निकाल दिया और सारा ध्यान उन सलाइयों की ओर लगाया। स्पर्श-ज्ञान के बजाय उसने दृष्टि का भरोसा किया। जब देखा की तिल्लियाँ उंगलियों के बीच आ गयी हैं, तो उँगलियों को बाँधना चाहा, लेकिन तार ढीले पड़ गये थे। उँगलियाँ हुक्म बजाने से लाचार थीं। दाहिने हाथ में दस्ताना पहन लिया और ज़ोर-ज़ोर से घुटने पर पीटने लगा। फिर दस्ताना-मढ़े दोनों हाथों की अँजुरी में बहुत-सी बर्फ के साथ तिल्लियों को समेटकर गोद में रख लिया। फिर भी काम बनता नज़र नहीं आया। थोड़ी कोशिश से कलाई के नीचे दोनों तलेथियों की जड़ से तिल्लियों को पकड़कर मुँह तक लाया। खूब ज़ोर लगाकर मुँह खोला, बर्फ की जाबी चट्-चट् करके टूट गयी। निचले जबड़े को उसने कुछ पीछे सिकुड़ाया, ऊपर के ओंठ को दाँतों के ऊपर समेट लिया और एक तिल्ली अलग करने लगा। एक निकली भी, मगर गोद में जा गिरी और जहाँ-की-तहाँ रह गयी। तब उसने दूसरा रास्ता निकाला। इस बार तिल्ली को दाँत से पकड़कर उससे पाँव खुरचने लगा। बीसेक बार घिसने के बाद वह जल उठी। उधर वह लहक उठी, इधर तिल्ली दाँतों के बीच में बर्च की छाल से सटी थी। धुआँ नाक की राह फेफड़े तक पहुँच

गया। जोर की खाँसी उठी और वह तिल्ली बर्फ पर गिरकर बुझ गयी।

सलफ़र खाड़ी का वह बूढ़ा ठीक ही कहता था, ५० डिग्री नीचे के तापमान में इंसान को किसी साथी के साथ ही सफर करना चाहिए।

इसने हाथों को पीटा, लेकिन इस बार चेतना नहीं लौटी। अकस्मात् उसने दोनों दस्ताने उतार लिये, तमाम तिल्लियों को दोनों हथेलियों की जड़ के बीच दबा लिया। चूँकि बाँहों की पेशियाँ नहीं ठिठुरी हुई थीं, वह तलेथियों की जड़ से तिल्लियों को पकड़े रहा। फिर तमाम तिल्लियों को एक साथ पाँव पर घिसना शुरू किया। ७० तिल्लियाँ एक बार ही भक् से जल उठीं। हवा थी नहीं, जो लपक बुझ जाती। दम घोंटनेवाले धुएँ से बचने के लिए मुँह घुमा लिया। बर्च की छाल को जलती तिल्लियों से लगा दिया। इस तरह छाल में आग पकड़ती गयी। तिल्लियाँ तलेथियों के बीच जल रही थीं। उसे अपने हाथों में सुगबुगाहट का आभास मिला, उसका मांस जल रहा था। गंध नाक तक आती थी। चमड़े के बहुत नीचे जलन का एहसास हो रहा था। सुगबुगाहट दर्द बन रही थी, दर्द बढ़ता जा रहा था। फिर भी वह दर्द बर्दाश्त करता रहा, और तिल्लियों की लौ को जैसे-तैसे छाल से लगाये रखा। अधिकांश लौ तो खुद उसके ही हाथों में लगाकर मांस जला रही थी। फलतः छाल में आग पकड़ने में देर हो रही थी।

आख़िर जब बर्दाश्त नहीं हो सका, उसने अपने हाथों को अलग कर लिया। जलती सलाइयाँ काँपती हुई बर्फ़ में जा गिरीं। छाल की आग जल ही रही थी, इसलिए उसपर सूखी घास और टहनियाँ रखने लगा। चुनने की ताकत तो थी नहीं, तलेथियों से समेटकर जलावन इकट्ठा कर रहा था। टहनियों से काई और सड़ी लकड़ियाँ उलझी हुई थीं। दाँत के सहारे उन्हें यथा-सम्भव अलग करता जाता था। बड़ी सावधानी से आग की ज्वाला को बचा रहा था। यह उसकी ज़िन्दगी का सवाल था, इसको किसी भी हालत में बुझना नहीं चाहिए।

बदन के ऊपरी तल का खून नीचे भाग गया था, जिससे कँपकँपी हो रही थी। वह और भी बेचैन हो रहा था। हरी काई का बड़ा टुकड़ा आग को ढँकता हुआ आ गिरा। उसने अपनी उंगलियों से हटाने की चेष्टा की, किन्तु देह के काँपने से उंगलियों ने आग को ज़रूरत से ज़्यादा उधेड़ दिया। आग छितरा गयी, जलती घास और नन्हीं टहनियाँ भी बिखर गयीं। उन्हें फिर से एकत्र करने की चेष्टा की, किन्तु तमाम कोशिशों के बावजूद काँपना नहीं छूटा और आग और भी बिखर गयी। हर टहनी धुआँकर बुझ गयी।

आग जलानेवाला नाकामयाब हो गया। उसने अन्य-मनस्क भाव से चारों ओर देखा। बिखरी-बुझी आग से हटकर कुत्ता बर्फ़ में बैठा हुआ था। वह बड़ी बेचैनी से पीठ सिकुड़ाकर हरकत कर रहा था, बारी-बारी से अगले पाँव उठाता और बड़ी हसरतों के साथ उन्हें आगे-पीछे रखता था।

कुत्ते को देखकर एक वहशी ख़्याल आया। उसे उस आदमी की कथा याद आ गयी, जो बर्फ़ की आँधी में फँस गया था। उसने हिरण मारा था और उसी के पेट में छिपकर अपनी जान बचायी थी। यह भी उस कुत्ते को मार डालेगा, उसके गर्म-गर्म जिस्म में हाथ डालकर जड़ता दूर करेगा। तब फिर आग सुलगा लेगा।

उसने कुत्ते को बुलाया, लेकिन उसकी आवाज़ में अजीब दहशत गूँज रही थी। कुत्ता डर गया, क्योंकि उसने कभी आदमी को इस तरह बुलाते नहीं सुना था। सोचा, ज़रूर कोई खास बात होगी। जानवर के शंकालु स्वभाव ने ख़तरे की सूचना दी। वह नहीं जानता था कि वह कौन-सा ख़तरा है, लेकिन उसके दिमाग़ में इस आदमी के प्रति कहीं किसी तरह की आशंका पैठ गयी। कान चिपटे हो गये। पाँव का पटकना, पीठ का सिकुड़ना भी पहले से बढ़ गया। लेकिन वह आदमी के पास आया नहीं। तब वह आदमी ही घुटनों और हाथों के बल रेंगकर कुत्ते की ओर बढ़ने लगा। इस अजीब-सी शरीर-भंगी ने जानवर को और भी सशंकित कर दिया, वह सिर झुकाकर एक ओर खिसक गया।

क्षण-भर के लिए वह आदमी बर्फ़ पर बैठ गया और स्थिर होने का प्रयास करने लगा। दाँतों की मदद से दस्ता

ना पहना और फिर खड़ा हो गया। जड़ता के कारण पाँवों में धरती के सम्बन्ध का ज्ञान बिल्कुल नहीं था। इसलिए उसने नीचे नजर डाली, ताकि उसे खुद विश्वास हो जाय कि वह सचमुच खड़ा है। उसके खड़े हो जाने-भर से सन्देह की जाली, जो कुत्ते के दिमाग़ में तैयार हो गयी थी, फट चली, और जब आदमी ने कोड़े की फटकारवाली आवाज़ में हुक्म दिया, तो कुत्ते ने भी बदस्तूर हुक्म बजाया और पास चला आया। उसके क़रीब आते ही, आदमी और पास चला आया और उसने अपने ऊपर से अधिकार खो दिया। उसकी बाहें कुत्ते की ओर बढ़ीं। उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब उसे मालूम हुआ कि वह हाथ से कोई चीज पकड़ नहीं पाता। उंगलियाँ न मुड़ सकती हैं, न उनमें कोई चेतना ही है। वह भूल गया था कि वे जमी हुई हैं और हर क्षण जमती ही जाती हैं।

यह-सब बड़ा तेजी से हुआ, और कुत्ते के भागने के पहले ही आदमी ने उसको अपनी बाहों में जकड़ लिया। फिर बर्फ़ में बैठ गया और उसी तरह कुत्ते को पकड़े रहा। कुत्ता गुर्रा रहा था, भूँक रहा था, मुक्त होने की कोशिश कर रहा था।

लेकिन वह आदमी भी कुत्ते को अपनी बाँहों में समेट-कर बैठे रहने के सिवा और कुछ कर नहीं सकता। वह कुत्ते को मार डालने में असमर्थ था। अपने लाचार हाथों से वह न तो चाकू निकाल सकता था, न कुत्ते का गला ही घोंट सकता था। आख़िर उसने कुत्ते को मुक्त कर दिया और कुत्ता दुम दबाकर गुर्राता हुआ दूर छिटक गया, करीब ४० फ़ुट अलग हटकर वह उसको घूरता रहा।

उस आदमी ने अपने हाथों को ग़ौर से देखा, ताकि वह जान सके कि वे हैं कहाँ? और पाया कि वे बाहों के सिरे पर साबित लगे हुए हैं। ताज्जुब हुआ कि अपने हाथों का पता पाने के लिए उसे आँखों की मदद लेनी पड़ती है। तब वह अपनी बाँहों को मोड़ने, फैलाने लगा। पाँच मिनट तक तेज़ी से ऐसा करने के बाद हृद्‌पिंड ने बदन में काफ़ी ख़ून उलीच दिया और उसकी कँपकँपी रुक गयी। लेकिन हाथों की जड़ता दूर नहीं हुई। ख़्याल आया कि उसके हाथ बाँहों के छोर पर भार बनकर लटक रहे हैं।

दिल में मौत का भारी, तकलीफ़देह भय समा गया। लगा कि यह हाथ-पाँव की उँगलियों के जमने का या हाथ-पाँव खोने का सवाल नहीं, ज़िन्दगी और मौत का सवाल है, जिसमें मौत का पलड़ा भारी पड़ता जा रहा है। दहशत के मारे वह धारा के किनारे-किनारे तेज़ी से भागा। कुत्ता भी साथ हो लिया। वह निरुद्देश्य भागा जा रहा था। ऐसा भय ज़िन्दगी में कभी भी न लगा था। कुछ देर तक दौड़ने के बाद उसे आस-पास की चीज़ों का पुनः भास होने लगा। यह धारा का किनारा है, पुरानी लकड़ी के बल्ले हैं, ये पत्रहीन पेड़ हैं, वह आसमान है। दौड़ने से कुछ फरहरी आयी। कँपकँपी बन्द हो गयी थी। मुमकिन है, दौड़ने से पैरों पर जमी बर्फ़ गल जायगी। और हर हालत में, काफ़ी दौड़ने के बाद वह अपने बाल-बच्चों के पास पहुँच जायगा। निस्संदेह कुछ उँगलियाँ गल जायँगी, चेहरा भी कुछ गल जायगा, लेकिन वहाँ पहुँच जाने पर उसके बच्चे उसकी खोज-ख़बर लेंगे और तीमारदारी करेंगे।

एक और ख़्याल उसके दिमाग में घर कर रहा था कि शायद ही वह अपने लड़कों तक पहुँच पायगा, कैम्प अभी कई मील दूर है, वह काफ़ी जम चुका है और वहाँ तक पहुँ-चने के पहले ही वह जमकर मर जायगा। मगर इस ख़्याल को दबाये रहा, हालाँकि यह ख़्याल बार-बार उभरता था और तजवीज़ तलब करता था।

उसे ताज्जुब हुआ कि वह इतने जमे पैरों से कैसे दौड़ सका है। पैर इतने जमे हुए हैं कि वह जान नहीं पाता, वे कैसे धरती पर पड़ते हैं और उसकी देह का भार ढोते हैं। उसे तो लगता था कि वह धरातल के ऊपर-ऊपर तैर रहा है, धरती से उसका कोई वास्ता नहीं है। कभी उसने पंखदार देवदूतों की तस्वीरें देखी थीं। सोचा, क्या देवदूत भी चलते समय ऐसा ही महसूस करते हैं, जैसा कि वह अभी कर रहा है?

दौड़कर कैम्प तक पहुँचने के ख़्याल में एक नुक़्स था, उसमें इतनी सहनशक्ति ही नहीं बची थी। उसने कई ठोकरें खायी और अंत में लुढ़ककर गिर गया।

उठने की कोशिश की, परन्तु बेकार। तब सोचा, बैठकर आराम करना चाहिए, तब फिर उठकर धीरे-धीरे चलना चाहिए। बैठकर दम लेने के बाद गर्मी और आराम मालूम हुआ। कँपकँपी दूर हो गयी थी और सीने में, देह में गर्म लहक फैल रही थी। फिर भी नाक और गाल छूने पर उनमें किसी प्रकार का स्पन्दन नहीं मिला। दौड़ने से भी उनपर की बर्फ़ नहीं गलेगी। हाथ-पाँव पर की बर्फ़ भी नहीं हटेगी। तभी लगा कि बदन के और हिस्से भी जम रहे हैं। लेकिन इस एहसास को दबाकर वह और कुछ सोचना चाहता था। वह इस डरावने ख़्याल से वाक़िफ़ था और डर से बचना चाहता था। मगर झुठलाने के बावजूद उसका भय बढ़ता ही गया, और अंत में लगने लगा कि उसका तमाम शरीर जम जायगा। यह बेहद ख़तरनाक ख़्याल था। इसलिए वह फिर पागल की तरह दौड़ पड़ा। फिर चाल सुस्त हो गयी और वह धीरे-धीरे चलने लगा। लेकिन जैसे ही जमने का ख़्याल आया, वह फिर तेजी से भागा।

कुत्ता लगातार उसके पीछे-पीछे दौड़ रहा था। जब आदमी दुबारा गिर पड़ा, तो वह अपनी पूँछ को अगले पाँवों के पास समेटकर गिरे-पड़े आदमी के सामने बैठ गया और उत्सुकतावश उसके चेहरे को ग़ौर से देखने लगा। कुत्ते की गर्मी और निरापदता से इंसान को क्रोध हो रहा था। वह गाली बकने लगा और कुत्ते ने आज़िज़ी से सर झुका लिया।

इस बार बड़ी तेज़ी से कँपकँपी आयी। वह पाले से लड़ते-लड़ते हार रहा था। पाला उसके तमाम जिस्म पर फैलता जा रहा था। इस ख़्याल ने उसे फिर दौड़ने को मजबूर किया। मगर करीब १०० फ़ुट दौड़कर पुनः मुँह के बल गिर गया। यह उसकी आख़िरी दहशत थी। साँस लौटने पर वह उठ बैठा और इज़्ज़त से मरने की बात सोचने लगा। यह ख़्याल बेशक इतने साफ़ तौर पर पैदा नहीं हुआ था। वह तो सोच रहा था कि वह मूर्खों की तरह हरकत कर रहा है। चूज़ेका सिर काट लेने पर रुंड जिस तरह दौड़ता है, उसी तरह तो वह भी दौड़ रहा है। यही उपमा उस समय उसे सूझी। और आख़िर जब जम ही जाना है, तो इज़्ज़त के साथ ही जमे। अब उसे अजीब मानसिक शान्ति मिल रही थी और साथ ही नींद भी आने लगी। अच्छा है, उसने सोचा, सोते-सोते मौत के पास पहुँच जाऊँगा। यह तो बेहोशी की दवा लेने-जैसा होगा। जमना उतना बुरा नहीं है, जितना कि कुछ लोग समझते हैं, इससे भी बुरी तरह की मौत होती है।

कल्पना की आँखों से देखा, कल उसके लड़के उसकी लाश खोजेंगे। तभी अचानक लगा, वह ख़ुद उन लड़कों के साथ है और अपनी देह खोज रहा है। उनके साथ चलते-चलते रास्ते का एक घुमाव पार करने पर वह अपने शरीर को बर्फ़ पर पड़ा पाता है। वह ख़ुद अपने शरीर से अलग है, लड़कों के बीच खड़ा है और बर्फ़ पर पड़े अपने शरीर को देख रहा है। उसने सोचा, यह शरीर बेशक ठंडा है। वह देश वापस लौटकर लोगों को बतलायेगा कि वास्तव में सर्दी क्या होती है।

इस दृश्य के बाद उसने सलफ़र खाड़ी के बूढ़े को देखा। फिर देखा, बड़े आराम के साथ वह पाइप पी रहा है और उस बूढ़े से कह रहा है, हाँ भाई, तुम ठीक ही कहते थे।

इसके बाद वह सो गया। ऐसी गहरी, आरामदेह नींद पहले कभी आयी ही न थी। कुत्ता सामने इन्तज़ार में बैठा था। मुख़्तसर-सा दिन लम्बी गोधूलि में बदल रहा था। आग का निशान तक नहीं था। कुत्ते ने आज तक इंसान को बर्फ़ पर इस तरह बिना आग के बैठे नहीं देखा था। जैसे गोधूलि बढ़ रही थी, आग की ख्वाहिश भी तेज हो रही थी। बड़ी तेज़ी से उसने अगले पंजों को उठाया और धीमी आवाज़ में रिरियाने लगा। फिर इंसान की डाँट के इंतजार में कान लटकाकर सिर झुका लिया। लेकिन वह इंसान मौन रहा। तब कुत्ता और भी ज़ोर से रिरियाया और उसके पास खिसक आया। मौत की गंध मिली, जिससे रोआँ-रोआँ काँटा हो गया और वह उछलकर हट गया। फिर आसमान की ओर देखा, तारे बड़ी चमक के साथ नाच रहे थे।

वह कैम्प को जानेवाले रास्ते की ओर भागा, उस कैम्प की ओर जहाँ आग जलानेवाले और भोजन देनेवाले लोग मौजूद थे।

अँग्रेज़ी से अनु० विश्वमोहन सिनहा

लितेविया की एक लोककथा

कबूतर का घोंसला

कबूतर के अतिरिक्त प्रत्येक पक्षी का घोंसला होता है, जिसको वास्तव में घोंसला कहा जा सकता है। किन्तु कबूतर का घोंसला हमेशा बेढंगे तरीके से बना होता है, जिसमें से कभी भी अंडे गिर सकते हैं।

परन्तु इसका कारण क्या है?

इसकी एक रोचक कहानी है।

बहुत पुराने समय की बात है। उस समय कबूतर अपना घोंसला नहीं बनाया करता था। समय आने पर उसकी साथिन ज़मीन पर धीरे से सटकर अंडे दे देती थी।

एक दिन एक चालाक लोमड़ी आँख बचाकर सारे अंडे खा गयी। कबूतर और कबूतरी का दिल टूक-टूक हो गया। कबूतर आकाश में उड़ानें भरता, झाड़ियों की कोमल टहनियों पर बैठकर निश्वास लेता। वह सिसक-सिसककर कहता, छै अंडे थे, अब एक भी नहीं बचा। लोमड़ी मेरे सब अंडों को चुराकर ले गयी।

कई दिनों तक कबूतर इस घटना पर शोक मनाता रहा। अन्त में उसने घोंसला बनाने का फ़ैसला किया। उसने कुछ तिनके इकट्ठे किये। तिनके इकट्ठे करने पर उसे महसूस हुआ कि वह यह तो जानता ही नहीं कि घोंसला कैसे बनाया जाता है। आख़िर उसने घोंसला बनाना सीखने के लिए सारे जंगल के पंछियों को आमन्त्रित किया।

पंछी इकट्ठा हो उसका घोंसला बनाने और उसे सिखाने लगे। परन्तु अभी पंछियों ने कुछ तिनके ही जमाये थे कि कबूतर ने उनको रोक दिया। कहा—मुझे पता है कि घोंसला किस तरह बनाया जाता है।—वह जोर से चिल्लाया—मैं अपने-आप बना सकता हूँ।

कोई स्वयं अपना काम कर सकता है, तो अन्य कोई क्यों अपने को कष्ट दे? पंछी तिनके पटककर उड़ गये।

कबूतर ने एक तिनका एक टहनी पर रखा, दूसरा दूसरी टहनी पर, इस तरह दरख़्त की हर शाख पर उसने कोशिश की, कई बार कोशिश की, परन्तु वह घोंसला न बना सका।

तो अब क्या किया जाये?

उसने फिर सब पंछियों को बुलाया और घोंसला बनाना सिखा देने की मिन्नत की।

वह-सब उड़कर आ पहुँचे और उन्होंने अपना काम शुरू कर दिया। लेकिन ज्योंही उन्होंने मिलकर घोंसले का आधा हिस्सा पूरा किया कि कबूतर फिर चिल्ला उठा—मैं जानता हूँ, यह कैसे बनता है। मैं खुद बना सकता हूँ।

—अच्छा, तुम खुद बना सकते हो, तो बना लो। हमें नाहक क्यों परेशान करते हो?—पंछिओं ने कहा और वहाँ से उड़ गये।

कबूतर अपने काम में जुट गया। उसने एक तिनका इधर रखा, एक उधर। परन्तु उससे कुछ भी बन ही न पा रहा था।

उसने पंछियों को तीसरी बार बुलाया, परन्तु इस बार वे नहीं आये।

जो यह सोचता-समझता हो कि वह सब-कुछ समझता है, तो उसको कुछ सिखाने से क्या लाभ!

यही कारण है कि कबूतर का घोंसला आज तक बेढंगे तरीके से बना चला आ रहा है।

प्रेषक, अजीत मधुकर

हर्ष है कि इस बार कई सदस्यों ने 'क्या कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है' पर अपने मन्तव्य लिख भेजे हैं। यहाँ कुछ के प्रकाशित हो रहे हैं। शेष अगले अंकों में क्रमशः प्रकाशित होंगे। हम चाहते हैं कि अधिक-से-अधिक लोग इस विषय पर लिखें और काफी दिनों तक यह बहस चलायी जाय। जो मन्तव्य छप रहे हैं, आप चाहें, तो इन पर भी अपनी सम्मति लिख सकते हैं। निवेदन यही है कि जो भी लिखें, अपने अनुभव से ं, मन से लिखें, जैसा सचमुच आप समझते हैं।

क्या कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है

कपिलदेव नारायण (आरा)

सबसे पहले मैं धन्यवाद देना चाहता हूँ कि हम-जैसे साधारण पाठकों को भी अपने विचार प्रगट करने का अवसर आप लोग 'कहानी' के कहानी क्लब में देते हैं। जो विषय विज्ञ जनों के लिए अब तक सुरक्षित थे, उनपर हम साधारण पाठकों की सम्मति जानने का प्रयत्न करना यह सिद्ध करता है कि सच्चे जनवाद की ओर हम तेज़ी से बढ़ रहे हैं, साधारण लोगों की सम्मति का आदर करना भी हम सीख रहे हैं। और फलतः एक-दूसरे की सम्मति से लाभान्वित होते हैं, हम-सबकी शिक्षा होती है।

'क्या कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है?' एक महत्वपूर्ण विषय है। पूँजीवादी व्यवस्था में 'मनोरंजन' जीवन का एक आवश्यक अंग समझा जाता है। किसी को कोई काम करने की आवश्यकता नहीं, समय काटना कठिन होता है, तो उसे मनोरंजन की आवश्यकता होती है, वह क्लब जाता है, शराब पीता है, नाचता है, फ्लाश खेलता है, सिनेमा जाता है, सैर करता है, पिकनिक पर जाता है, मन-मस्तिष्क पर ज़रा भी ज़ोर न पड़े ऐसा साहित्य पढ़ता है या बागवानी, पाल्ट्री, गोल्फ़ आदि की हाबी पालता है। और किसी को इतना काम करना पड़ता है, इतनी पिसाई करनी पड़ती है, इतनी परेशानी उठानी पड़ती है कि वह हमेशा थका-थका ही रहता है। बेचारा अपना दिल कैसे बहलाये, कहाँ बहलाये?

सबसे नीचे के दर्जे में वह सिनेमा देखता है, ताड़ी या ठर्रा पीता है। ताश खेलता है। कुछ पढ़ा-लिखा हुआ, तो सस्ती पत्रिकायें, यथासम्भव कबाड़ियों के यहाँ से खरीदकर, पढ़ता है। उद्देश्य यही होता है कि किसी तरह कुछ मनोरंजन हो जाय। यही कारण है कि अमेरिका और इंगलैंड-जैसे देशों में सस्ता साहित्य (गटर साहित्य) इतना बिकता है।

यही दूसरे वर्ग के लोग हैं, जो कभी-कभी अपने जीवन के बारे में सोचने को मजबूर होते हैं और जब ऐसा होता है, तो उनका जीवन बदल जाता है, जीवन के उद्देश्य बदल

जाते हैं। वहीं मनोरंजन का भी उद्देश्य बदल जाता है। ये लोग ऐसा मनोरंजन चाहते हैं, जो उन्हें बल दे, स्फूर्ति दे, प्रेरणा दे, समझ और शिक्षा दे, जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संघर्ष-रत करे।

इन लोगों के लिए कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं होता, मनोरंजन के साथ-साथ उसका उद्देश्य जीवन को समझना जीवन को ऊँचे उठाना होता है। ऐसे लोग कहानी से प्रकाश पाना, चेतना प्राप्त करना, आत्मा को जगाना, बल तथा स्फूर्ति प्राप्त करना चाहते हैं, केवल समय काटना नहीं, थकान मिटाना नहीं।

जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव (बनारस)

आपका यह स्तम्भ पाठकों, लेखकों तथा सम्पादकों के मध्य अच्छा माध्यम है।

प्रायः कहानी इसी लिए पढ़ी और सुनी जाती है, जिससे पाठक एवं श्रोता का मनोरंजन हो। जब मनुष्य जीवन की तिक्तता से ऊब जाता है, तो उसे मनोरंजन की आवश्यकता होती है। वह मनोरंजन के लिए कहानी पढ़ता है, प्रत्यक्ष सिनेमा या नाटक देखता है। अतः यह निर्विवाद मान लेना पड़ेगा कि मनोरंजन कहानी का प्रमुख आवश्यक तत्व है। पर यह कदापि न समझना चाहिए कि कहानी का उद्देश्य केवल मनोरञ्जन है। पहले की कहानियाँ मनोरंजन पर विशेष ध्यान देती थीं। पर इतना पर्याप्त न था, और कहानी-साहित्य में एक बड़ी क्रान्ति हुई। परियों के देश में उड़ती हुई कहानी समाज के वास्तविक धरातल पर आ खड़ी हुई, जिसका उद्देश्य मनोरंजन के साथ ही समाज के प्राणियों को समझना था, जीवन के उतार-चढ़ाव तथा मन के अन्तर्द्वन्द का मनन करना था। आज तो कहानी का क्षेत्र काफ़ी विस्तृत है। समाज का पूरा प्रतिबिम्ब इसपर पड़ रहा है।

अतः आज की कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन न होकर जीवन की यथार्थता का चित्रण कर समाज का गठन करना है।

बलवन्त सिंह (छपरा)

सामान्यतः कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन होता है।

प्राचीन कहानियों का उद्देश्य नीति, ज्ञान, उपदेश एवं मनोरंजन ही था। साथ ही पाठकों की जिज्ञासा बनाये रखने के लिए अनेक प्रकार के यत्न किये जाते थे और साफ तौर पर उपदेश की नियोजना की जाती थी। परन्तु आधुनिक कहानियों के उद्देश्य प्राचीन कथाओं की अपेक्षा गंभीर हैं। आधुनिक कहानी-लेखक स्पष्टतः व्यावहारिक जीवन के प्रति अपने व्यक्तिगत अनुभवों, दृष्टिकोण एवं अपने उद्देश्यों को अपनी कहानी में नियोजित करता है।

मैं कहानी क्यों पढ़ता हूँ? इस प्रश्न का उत्तर देना कुछ टेढ़ी खीर-सी प्रतीत होती है, क्योंकि इस विषय पर मैंने अभी तक कुछ भी विचार नहीं किया है। साधारणतः जब संध्या को थका हुआ वापस आता हूँ, तो तबीअत कुछ खिन्न-सी रहती है और इसी खिन्नता को दूर करने के लिए मैं कहानी पढ़ता हूँ। साथ ही कहानी पढ़ने का एक दूसरा उद्देश्य भी है। वह यह कि कई ऐसी बातें प्राप्त होती हैं, जिनका मानव जीवन में महत्व है। मैं कहानियाँ पढ़ता हूँ, इसका मतलब यह नहीं कि मैं जासूसी, अपराध, कत्ल, रहस्य रोमांस की कहानियाँ पढ़ता हूँ। ये कहानियाँ निम्नकोटि की एवं मानव के जीवन-स्तर को नीचा गिरानेवाली होती हैं। मैं तो केवल वैसी कहानियाँ पढ़ना चाहता हूँ, जो उच्च-कोटि की स्फूर्तिदायिनी, जीवन-स्तर को उँचा उठाने वाली, स्वस्थ मनोरंजन का आनन्द प्रदान करनेवाली, जीवन की कुरूपता, दैन्य और कुण्ठा के विरुद्ध एक सफल अस्त्र की भांति प्रयुक्त की जा सकने वाली हों। साथ ही यही बात कहानी में भी अपेक्षित है, जो दिनचर्या से थके हमारे दिल और दिमाग को मनोरंजन के अतिरिक्त यथार्थ जीवन की उलझी समस्याओं के सुलझे हल दे सकें। ऐसी कहानियों में कृशन चन्दर की कहानी "एक खत, एक खुशबू" की भी गणना हो सकती है। प्रस्तुत कहानी में एक निराश प्रेमी रेल के डिब्बे में बैठा हुआ अपनी प्रेमिका को एक खत लिखता है, जो किसी दूसरे की हो चुकी है। वह लिखता है, तुम्हारा खत मेरे हाथ में है। नीले रंग का लिफ़ाफ़ा, नीले रंग का काग़ज़, बेरहम नीली लिखावट, जिसमें तुमने लिखा है, मैं रोज़ारियों की हो चुकी। तुम मुझे भूल जाओ या मर जाओ।...

मैं तुम्हें भूल नहीं सकता, इसलिए मैं मर जाऊँगा। जिस वक्त मेरा खत तुम्हें मिलेगा, मेरी मौत हो चुकी होगी।

मगर बीच ही में उसके विचार एक गोवाई सुन्दरी की कहानी सुनते ही बदल जाते हैं और वह अपने खत के अंत में लिखता है कि मैं मरूँगा नहीं, न तुम्हें भूलूँगा। मैं तुम्हारी बोदी और कमज़ोर मुहब्बत का जवाब एक बहुत बड़ी और ज़ोरदार मुहब्बत से दूँगा!

और वह ज़ोरदार मुहब्बत क्या होगी? केवल कहानी पढ़ने वाले ही जान पायेंगे।

रतनप्रकाश बुधिया (राँची)

आज प्रथम बार मैं कहानी क्लब में कुछ लिखकर भेजने का प्रयास कर रहा हूँ। यों तो मैं 'कहानी' का पाठक इसके प्रथम अंक से ही हूँ। पहली प्रति मुझे उस समय मिली थी, जब वह विक्रेता के पास नमूने के तौर पर आयी थी। उसके बाद से आज तक मैं बराबर कहानी का पाठक हूँ। यह तो हुई 'कहानी' की बात। अब मैं बहस के विषय पर आता हूँ।

कहानी का प्रमुख उद्देश्य मेरे देखने में मनोरंजन होना चाहिए। लेकिन कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है, यह मैं नहीं मानता। मनोरंजन के साथ कहानी में कुछ तत्व या शिक्षा कहीं होनी ही चाहिए, जो कि हमारे जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक हो। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक कहानी में शिक्षा और मनोरंजन दोनों ही होनेचाहिए। इतना ही नहीं कहानीकार को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह जो मनोरंजन उसमें उपस्थित कर रहा है, वह सस्ता और बाज़ारू न हो।

अतः मेरे विचार में कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है, पूर्ण ठीक नहीं। मनोरंजन के साथ उपरोक्त चीज़ें भी कहानी में होनी चाहिए, तब ही कहानी पूर्ण कही जा सकती है, अन्यथा नहीं।

श्रीकृष्ण गुमाश्ता (जबलपुर)

चूँकि बचपन से ही बच्चों की प्रवृत्ति कहानी सुनने की ओर स्वाभाविकतया पायी जाती है, यह तो मानना ही होगा कि कहानी का प्रथम तथा मुख्य उद्देश्य मनोरंजन ही है। लेकिन कहानी सुननेवाले पर होने वाले प्रभाव को भी कैसे भुलाया जा सकता है? कहने का मतलब यह कि श्रोता के अथवा पाठक के मन पर कहानी का क्या प्रभाव पड़ता है, यह भी एक मुख्य बात हो जाती है। इसका स्पष्ट अर्थ हुआ कि कहानी मनोरंजन के अलावा कुछ और कार्य भी करती है। कहानी श्रोता या पाठक पर जिस प्रकार का भाव-विकार पैदा करती है, वही मनोरंजन के बाद की चीज है।

अनुभूति ही पर कल्पना जीवित होती है, लिहाजा वास्तविकता से दूर की कहानी उद्देश्यहीन होती है। उससे न तो मनोरंजन का उद्देश्य सफल हो पाता है और न ही वह और उद्देश्य से उपयोगी सिद्ध होती है।

कहानी के बारे में

सच्चिदा (सिताब दियारा)

आज एक साल हो गये, मैं 'कहानी' खरीद-खरीद कर पढ़ता रहा हूँ। कई 'कहानी' के विशेषांक भी पढ़ डाले तथा सभी कहानियाँ पचा डालीं। आज दो दिन हुए, 'कहानी' का जून-अंक जंकशन बुकस्टाल से खरीद लाया और एक बैठक में ही पढ़ डाला। किन्तु आश्चर्य कि इस अंक की दो कहानियों के कारण मुझे अपच की शिकायत हो गयी है। इसलिए मैं आज पहली बार एक निरे देहात के कोने से अपनाविचार कहानी क्लब में भेज रहा हूँ। यही समझिए कि इस अंक के लिए मुझे तीन कोस की पहली मेहनत खरीदने के लिए तथा दूसरी मेहनत पोस्ट आफिस अपने विचार भेजने के लिए डेढ़ कोस, कुल साढ़े चार कोस चलने पड़े। तब कहीं सन्तोष हुआ।

ये दो कहानियाँ जिनका जिक्र मैंने किया है, वे थीं, ठाकुर पुंछी की कहानी 'झाँझराँ दा छनकार' तथा अजीज असरी की कहानी 'अभिनेता'। वैसे तो 'कहानी' की हर कहानी अपने क्षेत्र में बढ़ी हुई होती है, पर ये दो कहानियाँ मुझे जैसे जँच-सी गयी हैं।

मैं हर दफे तटस्थ-सा रह जाया करता था, किन्तु इस दफे मैं अपने को न रोक सका।

सुखवीर तो भुलाये नहीं भूलते। 'रात बीत रही है' के बाद मैंने अबकी दफे 'फूल खिलता है' ही पढ़ा। उनसे अनुरोध है कि चुप न लगा जाया करें।

'कहानी' दिन-दूनी-रात-चौगुनी तरक्की पर है। इसके भविष्य के लिए शुभ कामनाएँ।

एम० सी भार्गव (दोहद)

श्री महेन्द्र सिंह (अमृतसर) का पत्र हिन्दी के कहानी मासिकों की एक निन्दनीय प्रवृत्ति को हमारे सम्मुख रखने में सहायक हुआ है। किसी भी भाषा के साहित्य का मूल्य उस देश के आचार-व्यवहार और वातावरण के बिना नहीं के बराबर ही रह जाता है; उस साहित्य का हिन्दूकरण किसी भी रूप में सराहनीय नहीं कहा जा सकता! 'माया' व 'मनोहर कहानियाँ' में हम कई बार इसी प्रकार की कहानियाँ पढ़ चुके हैं, जिनके लेखकों तक का नाम कोई छद्म नाम होता है। आशा है, पाठकगण ऐसी पत्रिकाओं से दूर रहकर उनके प्रकाशकों की बुद्धि ठिकाने लगाने में सहयोग देंगे। यह तो कुछ उसी प्रकार का है, जैसे साहित्य की चोरी, और अंग्रेजी फिल्मों के कथानकों का हिन्दी रूपान्तर!

सविंजय कुमार सिन्हा (सासाराम)

'कहानी' का जून अंक मेरे समक्ष है। पता नहीं, किस प्रेरणा से मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूँ। कदाचित पत्र लिखने का प्रमुख कारण है, कीर्ति चौधरी की कहानी 'प्रतियोगिता'।

आज सभी कहानियों के अन्त में मैंने इस कहानी को पढ़ा, जो मुझे अत्यन्त ही भा गयी। सभी कहानियों के श्रेष्ठ होने में तनिक भी सन्देह नहीं, परन्तु मैं इस कहानी को पढ़ते-पढ़ते अपनी हँसी न रोक सका और फलस्वरूप मेरी कुर्सी तक उलट गयी, जिसका मुझे ज्ञान गिर जाने के बाद ही हुआ। मेरी हँसी का कारण था, कमल की यह बात, हर वक्त काँव-काँव! घर है कि कुंजड़ों का बाजार! हूँ! ऐसे में कोई पढ़ भी सकता है...एक जगह नहीं! हूँ-हूँ! फिर भाई का कहना, किस सम्बन्ध में गोत्रोच्चार हो रहा है? स्पष्ट किया जाये!... पार्सल कर दिया जाये।...नानसेन्स फर्स्ट डिवीज़न कोई खेल नहीं?...फिर अन्त की कुछ पंक्तियाँ, रजंना का वज़न पूरे दस सेर घट गया...कमल को रात भर पढ़ने के कारण रक्ताल्पता की बीमारी हो गयी।...और मेरी कुर्सी के गिरने का कारण ये ही पंक्तियाँ थीं, प्रमोद के नौकर ने गहनों-कपड़ों सहित प्रयाण कर दिया। रिश्तेदार साहब ने रेडियो लौटाया, तो उसके अंजर-पंजर ढीले थे। वास्ताव में मैं लेखिका को बधाई दूँगा। तीनों लड़कियों की अलग-अलग परिस्थितियों का वर्णन करके फिर हँसी तथा व्यंग का पुट भर देना किसी योग्य कलाकार की योग्यता का परिचायक है। प्रत्येक परीक्षार्थी की परिस्थित यही होती है। मगर हाथी के दाँत खाने के और होते हैं, दिखाने के और। तीनों लडकियां हाथी की ऊपरी दाँत हैं। थर्ड! थर्ड! थर्ड! वास्तव में एक मज़ेदार ऐलान और अन्त है।

अन्य कहानियों में पिछले अंक की कहानी 'सरकंड़ों के पीछे' तथा इस अंक की 'अभिनेता' अति सुन्दर है। 'सरंकडों के पीछे' कहानी वास्तविकता के धरातल पर खड़ी है।

अन्त में, मैं अपनी सारी कामनाओं के साथ आपके इस कार्य की सराहना करता हूँ कि आपने हमारे समक्ष 'कहानी' पत्रिका रखकर अन्य सभी पत्रिकाओं को पीछे कर दिया। मैं आपका वार्षिक ग्राहक नहीं हूँ, परन्तु बुक-स्टाल से खरीदकर प्रत्येक मास 'कहानी' अवश्य पढ़ता हूँ; मेरी 'कहनी' पोस्ट द्वारा मुझ तक कभी भी नहीं पहुँच सकती।

राजपाल आर्य 'आनन्द' (रंगवासा)

'कहानी' के मई अंक में 'ऊदबत्ती' में जो यथार्थ चरित्र-चित्रण हुआ है, वह वस्तु-स्थिति को सामने रखता है। 'नंगा आदमी नंगा जख्म' यथार्थवाद के नाम पर अतिशयोक्ति पूर्ण कटाक्ष लगा। 'सरकड़ों के पीछे' कहानी मौलिकता लिये हुए तो है ही पर उसका भयानक अंत दिल हिला देता है। 'ओवर कोट' मनुष्य-स्वभाव की कमजोरी का अच्छा नक्शा प्रस्तुत करती है। 'बीना' की नायिका उदार हृदय स्त्री का ज्वलंत उदाहरण है। प्रयास प्रशंसनीय है। विदेशी कहानी 'आतिथ्य' पढ़कर लगा, जैसे राजस्थानी इतिहास का कोई अध्याय सामने आ गया हो। 'मानव' एक सबल व्यक्तित्व रघुनाथ को सामने लाता है। बरसों मजदूरों में बिताने, बमीर पड़ने और बीमारी की हालत में भी मजदूरों की हड़ताल का समाचार पढ़कर चल पड़ने वाले रघुनाथ को हम न भूलेंगे! शेष कहानियाँ, निम्मो, कर-मंत्री 'ब्रह्म और माया' में हास्य है, तथ्य है और है मनोरंजन।

'बूढ़े का चित्र' तो मुझे हिला गया है और रुला भी।

रमेश श्रीवास्तव (रायगढ़)

मई की 'कहानी' समय पर मिली, जिसके लिए धन्यवाद। विभिन्न भाषाओं के प्रति एक सर्वमान्य दृष्टिकोण रखने के कारण 'कहानी' के साधारण अंक लोकप्रिय हुए ही हैं। इसके विशेषांक हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखेंगे। 'उपन्यास' के प्रकाशन का समाचार पढ़कर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ। हिन्दी के लिए यह एक नवीन सद्प्रयत्न है।

मई के अंक की अधिकांश कहानियाँ अच्छी लगीं। 'बीना' के नये लेखक विजय चौहान अपने प्रयत्न में सफल हुए हैं। 'मानव', 'आतिथ्य' और 'ऊदबत्ती' निस्संदेह प्रभावशाली एवं मार्मिक कहानियाँ हैं। 'काष्ट की कला' की तरह लाडली मोहन की 'एक असफल आदमी' बिल्कुल छोटी कहानी होते हुए भी अत्यन्त स्वस्थ और सुन्दर है। 'नंगा आदमी, नंगा जख्म' में तीक्ष्ण व्यंग्य है। 'निम्मो' की सहज गाह्य वर्णनशैली पसंद आयी।

गेंदालाल राजावत (बैरागढ़)

माह मई के 'कहानी'-अंक का आवरण पृष्ठ जितना कलात्मक है, वैसी ही सुन्दर व पुष्ट कहानियाँ इसमें छपी हैं। स्वर्गीय मन्टो की 'सरकंडों के पीछे' कहानी पढ़कर तो हम दंग रह गये। नग्न यथार्थ का इतना सुन्दर चित्रण कर पाने में शायद ही कोई अन्य भारतीय भाषा का कलाकार समर्थ हो। वास्तव में मन्टो मन्टो ही थे। ऐसे कथानक को लेकर लिखना किसी दूसरे के बस की बात नहीं। ठीक इसी तरह की एक कहानी 'लाइसेन्स' अभी-अभी नव भारत टाइम्स के अन्तरप्रान्तीय कहानी-अंक में निकली है।

दूसरी कहानी जो पाठक को अपनी ओर आकर्षित करती है, वह है 'नंगा आदमी, नंगा जख्म'। इस कहानी में आज की लीडरी का अच्छा पर्दाफ़ाश हुआ है। देश की खुशहाली का ढोल पीटने वालों का लेखक ने पोल खोल दिया है।

अनूदित कहानियों में 'ऊदबत्ती' और 'मानव' उत्कृष्ट रचनायें हैं। कपूर की 'करमन्त्री' भी हास्य रस की अच्छी कहानी है।

राजेन्द्र यादव और लाडली मोहन की 'ब्रह्म और माया' और 'एक असफल आदमी' भी सफल रचनायें हैं!

'कहानी' देश की दरिद्र मानवता की वकालत करती हुई सही माने में अपना साहित्यिक कर्त्तव्य निभा रही है।

शशिभूषण (जगदीशपुर)

'कहानी' ९ जून को मिली। इधर-उधर देखकर पढ़ना आरम्भ किया और पाँच चीनी लघु कथायें और बघेली लोक कथा पढ़कर, एक आवश्यक कार्य वश बाजार चला गया। रात में 'पंच-प्रिया पांचाली' पढ़कर एक मित्र को सुनाया। वास्तव में पंच पाण्डव की कथा हास्य रस की अनुपम कलाकृति है। एक दो और कहानियों के पढ़ने के बाद 'आलू' पर नजर पड़ी, पर 'आलू' चोर बाज़ार की निकली। वास्तव में इसके व्यंग ने तो नहीं, पर इसकी चौर कला ने मुझे आश्चर्य-चकित कर दिया। 'आलू' की मुख्य कथा-वस्तु (केवल नायक का नाम का छोड़कर) आज से प्रायः दोसाल पूर्व 'पाटल' में निकल चुकी है। हर प्रसाद दास जैन कालेज के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर रामेश्वर नाथ तिवारी की दो घुल कथायें 'पाटल' में निकली थीं। उसमें 'ईमानदारी' नामक लघु कथा तथा 'आलू' दोनों में एक ही कथा में वस्तु है।

श्रीमाली जी जो मुख्याध्यापक हैं, रायथल स्कूल में, उनका यह कर्म कैसा है? वास्तव में श्रीमाली जी ने अपने छात्रों के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित किया है और हिन्दी कहानियों पर अत्यन्त कृपा!

क्या श्रीमाली जी इस सम्बन्ध में प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे?

रामसेवक श्रीवास्तव (गोरखपुर)

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में 'कहानी' का अपना अकेला और निराला व्यक्तित्व हैं, जिसके माध्यम से पाठक को एक ही साथ शिक्षा, स्वस्थ मनोरंजन तथा पथ प्रदर्शन इकट्ठे ही मिल जाते है। और यही कारण है कि हर पाठक जो प्रबुद्ध है, जीवन और अपने वातावरण के प्रति जागरूक है, 'कहानी' को एक बार पढ़ लेने के बाद उसे अपनाने का लोभ संवरण नहीं कर पाता। और 'कहानी' भी चूँकि अपने इस अभियान में सतत् प्रयत्नशील है, अपने संकल्प के प्रति

ईमानदार है, हमारे इर्द-गिर्द की बिखरी जिन्दगी को बिना किसी आवरण और बनावट के सही अर्थों में दिखाने की चेष्टा कर रही है, अतः उसका भी मार्ग प्रशस्त है, उसका पुष्पित, पल्लवित होना असन्दिग्ध है।

'कहानी' का प्रत्येक अंक जितना लेता है, उससे अधिक दे जाता है। इस समय मई का अंक मेरे सामने है। अनुवादित कहानियों के स्तर के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं है, वे एक से एक हैं। 'ऊदबत्ती' का वातावरण, उसमें घुटती-पिसती रेणु की भावनायें तथा 'सरकंडों के पीछे' नृत्य करती वीभत्सता का अनुमान करके, करुणा और क्षोभ ही अधिक होता है, कँपकपाहट कम। हिन्दी कहानियों में 'नंगा आदमी नंगा जख्म' 'ओवरकोट' तथा 'एक सफल आदमी' अपेक्षाकृत अधिक पसन्द आयी। नंगी इन्सानियत के रिसते हुए नंगे ज़ख्म को ढँकने की (ठीक करने की नहीं) कोशिश और मंत्री जी की योजनायें अमृतराय के शब्दों में ढलने के बाद अपने नये रूप में कुछ सोचने को मजबूर कर देती हैं। मंत्री जी को भी जिस ढंग से प्रस्तुत किया गया है, वह कमाल का है। नौटियाल की प्रतीकात्मक कहानी 'ओवरकोट' घर-घर की जिस समस्या को सामने लाती है, उसकी सत्यता से कौन इन्कार कर सकता है। मनुष्य के अन्दर कमजोरियाँ होती हैं; और कभी-कभी परिस्थितियाँ उसपर बुरी तरह हावी हो जाती हैं। उन कमजोरियों को मिटाने लिए जरूरी है कि उन परिस्थितियों को पनपने के पहले ही रोका जाय, नहीं तो... और 'एक असफल आदमी' भी अपनी दुर्बलताओं के बावजूद काफी सशक्त है, यह मानना पड़ेगा ! ये तीनों लेखक विशेष बधाई के पात्र हैं।

मेरी शुभकामनायें सदा ही 'कहानी' के साथ हैं।
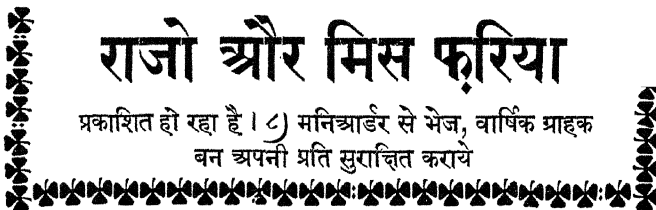
पुस्तकालय

लियो तालस्ताय की पाण्डुलिपियों का संग्रहालय

एन० लोगिनोव

सोवियत सरकार लियो तालस्ताय की विरासत की देख रेख बड़ी सतर्कता से कर रही है। महान् रूसी लेखक की पाण्डुलिपियों के १६५००० पृष्ठ और उनसे सम्बन्धित विविध सामग्री (पात्रों, संस्मरणों, दस्तावेजों और सेंसर की फाइलों) के ५००,००० पृष्ठ मास्को के तालस्ताय राज्य संग्रहालय में जमा किये गये हैं।

हम संग्रहालय में प्रवेश करते हैं। विरासत की अमूल्य सामग्री से भरे सेफ (बहुत मज़बूत बक्स) तहखानों में सुरक्षित रखे हैं। बड़े यत्न से सब पाण्डुलिपियों को फाइलों में नत्थी किया गया है। उनकी कृतियों की योजना-विधि, रूपरेखा, पुस्तकों के मूल-पाठ के साथ जुड़ी हुई उनकी पांडुलिपियाँ, जिन्हें आरम्भिक नोटों से लेकर अन्तिम संस्करण तक, कालक्रम से रखा गया है—यहाँ हमें यह सब देखने का अवसर मिलता है। यहाँ न केवल हमें उनकी पुस्तकों के हस्त-लिखित मूल-पाठ उपलब्ध होते हैं, बल्कि उनकी सब कृतियों की अधिकृत प्रतियाँ और प्रूफ़ के पन्ने भी मिलते हैं, जिनमें उनका अन्तिम लेख भी शामिल है जो उन्होंने ओप्तीना-पुस्तिन में, अपनी मृत्यु के नौ दिन पूर्व २६ अक्तूबर, १६१० को लिखा था। यहाँ लेखक की १०० से ऊपर डायरियाँ और कापियाँ मौजूद हैं, जिनमें युवा तालस्ताय की प्रथम कापी से लेकर वह कापी तक शामिल है, जिस पर मृत्यु के चार दिन पहले लेखक ने काँपते हाथों से कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं। तालस्ताय के १०,००० पत्र और ५०,००० वे पत्र जो उन्हें लिखे गये थे, भी संग्रहालय में रखे हुए हैं। तालस्ताय ने एन० नेकरासोव, इवान तुर्गनेव, वी० कोरोलेंको, आई० रेपिन, एन० लेस्कोव, ए० फेत, एम० साविना, के० स्तानिस्लावस्की, वी० नेमीरोविच-दांचेन्को इत्यादि अनेक व्यक्तियों से पत्र-व्यवहार किया था। यहाँ हमें वह पत्र भी देखने को मिलता है, जो भारत के राष्ट्रीय स्वतंत्रता-आन्दोलन के महान् नेता, महात्मा गाँधी ने तालस्ताय को लिखा था। तालस्ताय पत्रों को स्वयं पढ़ा करते थे और उनके सम्बन्ध में अपनी टिप्पणियाँ लिखा करते थे।

संग्रहालय में रखी हुई उनके कथा-साहित्य से सम्बन्धित कला-कृतियों की पाण्डुलिपियों का अमूल्य महत्व है। तालस्ताय बहुत बारीक अक्षरों में लिखा करते थे, जिन्हें पढ़ पाना कभी-कभी असाध्य हो जाता है। पन्ने का कोई कोना खाली नहीं बचा रहता था—यहाँ तक कि कभी-कभी उनकी पाण्डुलिपियाँ कागज़ के छोटे-छोटे पुरजों पर पायी जाती हैं। संग्रहालय के कर्मचारी हाथ में मैगनी-

फाइङ्ग ग्लास (जिससे छोटी चीज़ बड़ी दिखती है) लेकर उन पाण्डुलिपियों को पढ़ने की चेष्टा करते हैं, जिन्हें उसके बिना पढ़ना असम्भव है। प्रसंगवश यह बतला दें कि इनमें से कुछ ऐसी पाण्डुलिपियाँ हैं, जिन्हें लेखक के जीवन-काल में भी पाण्डुलिपियों की नकल करने वाले नहीं पढ़ सके।

पुरालेख संग्रह में वे १५ विभिन्न रूप संग्रहीत हैं जिन रूपों में लेखक ने 'युद्ध और शान्ति' उपन्यास का आरम्भ किया था। कुल मिलाकर इस उपन्यास की पांडुलिपि के ५००० पन्ने हैं, जिन्हें लेखक ने ७ वर्षों की अवधि में पूरा किया था। और इसका अन्त केवल यहीं नहीं हो जाता। गेली-प्रूफ के पन्नों पर भी तालस्ताय ने उपन्यास पर काम करना जारी रखा। उदाहरणतः 'नव जागरण' (रिसरेक्शन) उपन्यास के प्रूफ़ के पन्नों पर चौड़े हाशियों के बीच तालस्ताय ने अनेक संशोधन और परिवर्द्धन किये हैं।

तालस्ताय की पांडुलिपियों को जमा करने का काम अभी समाप्त नहीं हुआ है। हाल में सुविख्यात कलाकार एन० गे के पुत्र ने तालस्ताय के अनेक पत्र संग्रहालय को भेंट किये हैं। ये ६८ पत्र स्विट्ज़रलैंड से संग्रहालय को भेजे गये हैं। तालस्ताय के सैकड़ों पत्रों की टाइप की हुई प्रतियाँ संग्रहालय में मौजूद हैं, किन्तु इन पत्रों के मूलपाठ अभी तक उपलब्ध नहीं हो पाये हैं।

पिछले वर्ष पुरालेख संग्रहालय के कर्मचारियों ने 'तालस्ताय के कथा-साहित्य की पांडुलिपियों का विवरण' शीर्षक से एक वृहत् ग्रंथ प्रकाशित किया है। तालस्ताय के कला और साहित्य से सम्बन्धित पत्रों का एक टीका सहित सूचीपत्र भी प्रकाशन के लिए तैयार किया गया है।

तालस्ताय की पांडुलिपियों का विश्लेषण करने से उनकी महान् कृतियों के सृजन-इतिहास का अध्ययन करने की सम्भावनाएँ बढ़ती हैं। एक महान् लेखक की आरम्भिक योजनाएँ, उसका क्रमिक-विकास, एवं उसकी जटिल सृजनात्मक प्रक्रिया को समझने के लिए हमें इन पांडुलिपियों से प्रचुर सहायता मिल सकती है।

अनेक वैज्ञानिक और विद्यार्थी संग्रहालय के कोष से आर्थिक-सहायता प्राप्त करते हैं। अनेक मित्र विदेशों से यहाँ आते हैं। हाल ही में यहाँ भारतीय प्राध्यापकों और विद्यार्थियों का स्वागत किया गया था।

—: ० :—

पुस्तकालय बनाने के ये तरीके

अब तक तो हमारे 'पुस्तकालय' के पाठक यही जानते होंगे कि पुस्तकालय का निर्माण पुस्तकें खरीद कर किया जाता है। भारत में चार राष्ट्रीय पुस्तकालयों के लिए यह बात नहीं कही जा सकती, यह भी वे जानते होंगे। पर मैं उन्हें आज पुस्तकालय बनाने के एक निराले तरीके का रहस्य बताने जा रहा हूँ। निहित स्वार्थ के कल-पुर्जे उसे एक आवश्यक तरीका कह सकते हैं, पर मेरी नजर में उसे "४२०" कहा जाना चाहिए।

यह सर्व विदित है कि राज्य सरकारें प्रति वर्ष हजारों रुपयों की खरीद करती हैं और केन्द्रीय सरकार से सहायता प्राप्त कर अनेक पुस्तकालयों को पुस्तकों से सजाया जाता है। राष्ट्र की उन्नति में ऐसे कार्य आवश्यक भी हैं। यह बात अलग से देखने की है कि ऐसा करते समय क्या क्या अनावश्यक एवं अनुचित माध्यम अपनाए जाते हैं।

पुस्तकों की खरीद करने से पहले राज्य सरकारें अथवा उनके शिक्षा विभाग खरीद के टेण्डर निकालते समय एक विशिष्टि माँग लेखकों, प्रकाशकों व पुस्तक-विक्रेताओं से अक्सर करते हैं : कि प्रत्येक पुस्तक की ३-३ ६-६ अथवा इनसे कुछ कम-अधिक प्रतियाँ साथ में भेजी जायँ, जो 'लौटाई' नहीं जायँगी। इस माँग के समर्थन में तर्क यह दिया जाता है कि पुस्तकों की 'रिव्यू' करवानी पड़ेगी। प्रारम्भ में बात भी जंचती हुई लगती है। पर

अन्त में 'रिव्यू' वाले तर्क की जो बेइज्जती होती है, उसको देखकर हमें बड़ा दुःख होता है। अब इस बात को व्याख्या और उदाहरण के साथ समझिए।

जब टेण्डर के साथ पुस्तकों के नमूने माँगे जाते हैं तो हजारों पुस्तकें सरकार के पास इस उम्मीद के साथ पहुँचती हैं कि हमें भी पुस्तकालय के लिए चुना जाएगा। हमें मालूम हुआ है कि कई बार तो पुस्तकों के अम्बार लग जाते हैं और सरकार के कर्मचारी उनका मिलान तक नहीं कर पाते। जैसे एक रिक्त स्थान के लिए कई बार सैकड़ों निवेदन-पत्र पहुँचते हैं और उम्मीदवारों की कतारें लग जाती हैं, उसी प्रकार पुस्तकों की कतारें दफ्तरों में लग जाती हैं। पिछले वर्ष एक छोटे से प्रान्त के शिक्षा विभाग को इस तरह ४०,००० पुस्तकों को संभालना पड़ा, जिसकी अनुमानतः कीमत आप लाख-अस्सी हजार रुपये लगा सकते हैं। खरीद इससे कुछ ज्यादा रकम की करनी थी। शायद अधिकारियों को कुछ छूट और होती तो वे इस आधार पर कि मुफ्त में पुस्तकें काफी आ चुकी हैं, खरीद करना भी आवश्यक न समझते। अब आप कल्पना कीजिए कि हजारों पुस्तकों की रिव्यू महीने-बीस दिन में करना क्या शिक्षा विभाग के चन्द अफसरों के बस की बात थी या है। नहीं, नहीं, नहीं! हजारों छोड़कर सौ-दो सौ पुस्तकों की रिव्यू आज के नौकरशाही वातावरण में पलनेवाले लोग नहीं कर सकते। यह तथ्य किसी से छिपा हुआ न रहा है, न है। पर फिर भी 'रिव्यू' के नाम पर पुस्तकें इकट्ठी करना आवश्यक हो गया है। यही वह ४२० है कि जिससे पुस्तकालय बनाने का ढोंग रचा जाता है। ऐसा ही नहीं, फिर उन पुस्तकों को संभालने वाला भी कोई नहीं होता और जो जैसा चाहता है, उनकी मनमानी दुर्गति करता है। अतः इसे पुस्तकालय बनाना भी कहना उचित न होगा।

इस प्रकार माँगी हुई पुस्तकों की न तो रिव्यू होती है, न वे लौटाई जाती हैं, न सँभाल कर रखी जाती हैं। कई जगह तो वे बोरों में कचरे की तरह बंद करके किनारे पटक दी जाती हैं—ऐसा देखा गया है। यह पुस्तकों, लेखकों, प्रकाशकों व पुस्तक-विक्रेताओं का दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है!

पर आखिर यह सब होता क्यों है? प्रकाशक और विक्रेता अपनी आवाज बुलन्द क्यों नहीं करते? शायद उनके मजबूत संगठन के अभाव ने उन्हें हीन कर रखा है। और तभी कई अफसर मनमाने तौर पर उनसे जो चाहे करवा सकते हैं। इससे लेखकों को भी हानि होती है। सैकड़ों पुस्तकें मुफ्त में इधर उधर चली जाने से वे रायल्टी से वंचित हो जाते हैं। अतः यह बात इन सबके सोचने की है।

हम तो उन शिक्षाधिकारियों और मंत्रियों से यह निवेदन करना चाहेंगे कि अपनी आँखों से इस अव्यवस्था को देखते हुए आप नाहक में हरेक का नुक्सान क्यों होने देते हैं? आप तत्काल इस व्यवस्था को बंद कीजिए। हिन्दी का प्रकाशन यों भी बाल्यावस्था में है। उनकी मदद करके उसे जिन्दा रखना और उसका विकास करना जरूरी है—इस तथ्य को समझें। अन्यथा इस पद्धति पर विस्तार से अमल होने पर किसी भी लेखक की पुस्तक का एक संस्करण तो योंही समाप्त हो जाएगा—क्योंकि राज्य सरकारें एक नहीं, उनके विभाग भी एक-दो नहीं। और तो और, हर इन्सपैक्टर को टेण्डर के साथ नमूना चाहिए—इस तरह हजार, दो हजार प्रतियाँ भी पूरी न पड़ेंगी।

इसलिए शिक्षा के नाम पर चलने वाले इस ४२० को बन्द कीजिए।

तब प्रश्न उठाया जाएगा—पुस्तक के भले-बुरे का ज्ञान कैसे होगा। एक सीधा तरीका तो अभी मेरे सामने है—खरीद करने वाली कमेटी के मेम्बरों को किसी बड़े सुसज्जित पुस्तकालय का आश्रय लेना चाहिए। कुछ दिन जमकर पुस्तकालय में पुस्तकें देखें और तब तय कर लें। कमी महसूस हो तो बाजार में जा कर पुस्तकें देखें। इस कार्य में शर्म को अपने पास न आने दें। आपको उत्तम पुस्तकें छाँटनी हैं, तो मेहनत करनी ही होगी। और भी अनेक मार्ग हो सकते हैं, पर रिव्यू के नाम पर हजारों रुपयों

की पुस्तकें बटोरने का हक किसी को नहीं होना चाहिए—यह बिल्कुल साफ है।

इसी तरह इससे सम्बन्धित एक बात और है, पर कुछ भिन्न। शिक्षा विभाग किसी पुस्तक को स्वीकृत करने से पूर्व उसकी ४-६ प्रतियाँ अपने यहाँ माँगता है। ये प्रतियाँ भी रिव्यू के लिए मंगाई जाती हैं। प्रायः इन पुस्तकों की रिव्यू भी कई महीनों बाद पूरी होती है, कई बार तो वर्ष लग जाते हैं और कई बार उन पुस्तकों का पता ही नहीं लगता। अजीब हालत है। इस प्रक्रिया पर भी फिर से विचार किया जाए, हमारा यह नम्र निवेदन है। इस समय इस सम्बन्ध में हम कुछ सवाल ही उठा कर अपनी बात समाप्त करेंगे। क्या उपरोक्त तरीका इस कार्य के लिए ठीक न होगा? क्या माने हुए लेखक जैसे प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण आदि की पुस्तकों की भी स्वीकृत कराने से पहले ६-८ प्रतियाँ शिक्षा विभाग की भेंट चढ़ाई जानी जरूरी हैं? क्या अधिकारी विद्वानों की कमिटी लेखक-प्रकाशक को कोई नुक्सान पहुँचाए बिना स्वीकृति का कोई और तरीका निकाल ही नहीं सकते?

—हरीशकुमार

राजस्थान में पुस्तकों की खरीद

लोक-लेखा समिति की रिपोर्ट

राजस्थान विधान सभा की लोक-लेखा समिति ने अपनी तीसरी रिपोर्ट में पुनः यह बात दुहराई है कि व्यय के नियंत्रण और आय-व्ययक के स्तर में कोई सुधार नहीं हुआ है। समिति ने कुछ ऐसी अनियमितताओं पर भी प्रकाश डाला है, जिनसे पता लगता है कि सरकारी विभागों ने समिति की सिफारिशों पर कितनी उदासीनता से काम किया है।

[यहाँ केवल पुस्तकों की खरीद सम्बन्धी-हिस्सा दिया जा रहा है। सं०]

पुस्तकों की खरीद के सम्बन्ध में किस्सा यह है कि शिक्षा विभाग ने तीस केन्द्रीय, प्रादेशिक और जिला पुस्तकालयों के लिए ७५,००० रु० के मूल्य की पुस्तकों की खरीद के लिए टेंडर जारी किए थे जब कि भारत सरकार से पुस्तकालयों की स्थापना के लिए शिक्षा विभाग ने कोई स्वीकृति नहीं ली थी। इसके अलावा, एक फर्म ने कुल मिलाकर २६ प्रतिशत कमीशन देने का प्रस्ताव रखा था, जब कि आर्डर दिए गए तीन अन्य फर्मों को जिन्होंने केवल २५ प्रतिशत कमीशन देना माना, और सबसे बुरी बात यह कि अदायगी के समय केवल २१ प्रतिशत, १६॥ प्रतिशत और ७॥ प्रतिशत के हिसाब से पैसा चुकाया गया। समिति ने इस खरीद के सम्बन्ध में ये खास बातें देखीं: (१) पुस्तकालयों की स्थापना के लिए भारत सरकार से स्वीकृति नहीं ली गई और किताबें इस स्वीकृति से पहले ही खरीद ली गईं, (२) टेंडरों के लिए केवल एक सप्ताह का समय रखा गया जिसके फलस्वरूप प्रतिस्पर्धात्मक दरें नहीं आ सकीं; (३) खरीद गैरजरूरी जल्दबाजी में की गई—इस जल्दबाजी का कारण केवल विभाग को ही मालूम है, (४) टेंडर के नोटिस में पुस्तकों की विशिष्टता के बारे में जिक्र नहीं था; (५) अदायगी २५ के एक समान कमीशन के हिसाब से नहीं की गई, किन्तु अपेक्षाकृत कम प्रतिशत पर की गई, जिससे राज्य सरकार को हजारों रु० का घाटा हुआ। समिति ने इस सौदे की जांच की माँग की है और कहा है कि इस प्रकार अनधिकृत अधिक अदायगी करने वाले अफसरों से यह घाटा पूरा किया जाए।

—'दैनिक हिन्दुस्तान' से साभार

अगस्त १९५६

वर्ष ३ ❁ अंक ८

(शेष अगले पृष्ठ पर)

वार्षिक : साढ़े पाँच रुपये

सम्पादक-श्रीपतराय : भैरवप्रसादगुप्त

सम्पादकीय नियम

१—'कहानी' में केवल कहानियाँ छपती हैं। कविताएँ, लेख आदि कृपया न भेजें।

२—जो रचना प्रकाशित हो चुकी है या प्रकाशनार्थ भेजी जा चुकी है उसे कहानी के लिए न भेजिए।

३—'कहानी' के लिए सुवाच्य लिखावट में कागज के सिर्फ एक ओर पंक्तियों में काफी फासला देकर लिखी हुई रचनाएँ भेजिए और अपनी रचना की प्रतिलिपि अवश्य रख लीजिए।

४—अनूदित कहानियों के साथ मूल रचना और मूल लेखक के नाम भी अवश्य भेजिए।

५—स्वीकृत रचना की ही सूचना सम्पादक द्वारा दी जाती है।

६—सम्पादक सम्बन्धी सारा पत्र-व्यवहार सम्पादक 'कहानी' के नाम से करना चाहिए।

शेष सूची

व्यवस्थापकीय नियम

१—'कहानी' प्रति मास की पहली तारीख को प्रकाशित होती है।

२—एक प्रति का मूल्य छः आना और सालाना चंदा विशेषांकों के साथ साढ़े पाँच रुपये है। तिमाही और छमाही ग्राहक नहीं बनाये जाते।

३—वी० पी० भेजने में अधिक खर्च पड़ता है, इसलिए वी० पी० नहीं भेजी जाती। ग्राहक बननेवालों को साढ़े पाँच रुपये चन्दा मनीआर्डर से भेजना चाहिये।

४—नमूने के लिए छः आने का डाक टिकट भेजिए, नमूना मुफ्त नहीं भेजा जाता।

५—कार्यालय से सभी प्रतियाँ अच्छी तरह जाँच-पड़ताल करके भेजी जाती हैं। यदि १० तारीख तक प्रति न मिले तो डाकखाने में पूछ-ताँछ करके डाकखाने के अधिकारी का लिखित जवाब 'कहानी' कार्यालय को भेजना चाहिए।

६—पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए। बिना ग्राहक-नम्बर लिखे जवाब देने या कार्यवाही में देर हो सकती है और यह भी सम्भव है कि कोई कार्यवाही न की जा सके।

७—अगर आप एक साथ पाँच ग्राहकों का सालाना चन्दा साढ़े सत्ताइस रुपए मनिआर्डर से भेज दें, तो साल भर तक आप को 'कहानी' तथा विशेषांक बिना मूल्य मिलेगा।

८—व्यवस्था-सम्बंधी सारा पत्र-व्यवहार व्यवस्थापक 'कहानी' के ही नाम से कीजिये

व्यवस्थापक, 'कहानी' कार्यालय,

सरस्वती प्रेस, सरदार पटेल मार्ग, पो० बा० नं० २४, इलाहाबाद—१

कहानी

'कहानी' की बात

विशेषांक

'कहानी' के अगले विशेषांक की एक विज्ञप्ति इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित हो रही है। य अबकी २०० पृष्ठों का होगा। हम प्रयत्न करेंगे कि इसमें हिन्दी, प्रादेशिक तथा विदेशी भाषाओं की बेहतरीन कहानियाँ जायँ और 'कहानी' के विशेषांकों की परम्परा और आगे बढ़े। पूरी रूप-रेखा विस्तृत रूप से हम अगले अंक में प्रस्तुत करेंगे।

यह अंक

इस अंक की पहली कहानी 'परमेश्वर सिंह' के लेखक अहमद नदीम क़ासिमी की कई कहानियाँ आप 'कहानी' में पढ़ चुके हैं। 'परमेश्वर सिंह' एक सच्चे इन्सान की कहानी है। उस ज़माने में, जब लोग बर्बर, पागल और अन्धे हो गये थे, परमेश्वर सिंह-जैसे इन्सान न होते, तो इन्सानियत को मुँह छुपाने की जगह कहाँ मिलती!

सरस्वती प्रेस, सरदार पटेल मार्ग, इलाहाबाद

क्षेत्रीय कार्यालय:

सरस्वती प्रेस	बिहार प्रकाशन गृह	सरस्वती प्रेस बुकडिपो	सरस्वती प्रेस बुकडिपो
पोस्ट बाक्स—२२	खजांची रोड	३७८८, फैज़ बाज़ार	अमीनुद्दौला पार्क
बनारस—१	पटना—४	दिल्ली—७	लखनऊ

'डायनासर का दिमाग़' के लेखक प्रबोधकुमार सागर विश्वविद्यालय में एम० एस-सी० (मानव विज्ञान) के छात्र हैं। इनकी यह पहली कहानी हम हर्षपूर्वक छाप रहे हैं। आशा है, यह और आगे बढ़ेंगे।

नवतेज का नाम पंजाबी के युवक प्रगतिशील कथाकारों में सबसे पहले लिया जाता है। इनकी एक कहानी पर, जिसे हमने 'कहानी' के वार्षिक विशेषांक १९५५ में छापा था, अन्तरदेशीय पुरस्कार मिल चुका है। 'कोट और आदमी' एक अध्यापक की करुण कथा है। अध्यापक-जीवन का यह यथार्थ चित्रण आपको अवश्य द्रवित करेगा।

'हृदयेश' की कई कहानियाँ आप पहले भी 'कहानी' में पढ़ चुके हैं। 'कौवा' देश की आन पर जान देनेवाले एक खिलाड़ी की कहानी है। ऐसे खिलाड़ी अपने देश का मुख तो उज्ज्वल करते ही हैं, साथ ही फैले हुए कुछ भ्रमों को भी दूर करते हैं।

उरूब केरल (मलयालम) के सुप्रतिष्ठित, लोकप्रिय कथाकार हैं। इसका पूरा नाम पी० सी० कुट्टिकृष्णन है। 'नील कुयिल' फ़िल्म, जिसपर राष्ट्रपति का पदक मिला था, की कहानी तथा संवाद के लेखक यही हैं। इनके दो कहानी-संग्रह, दो उपन्यास, तीन नाटक तथा एक कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'नयी धरती' केरल के संघर्षशील किसानों और वहाँ के जन्मी (ज़मींदारों) और पुलीस-ज़ुल्म की कहानी है।

'ठुइठलिङ और डाम्बङ' एक कुकी लोककथा है। कुकी जाति का परिचय कहानी के साथ दिया गया है। इस कहानी को लिपिबद्ध करनेवाली अनु सेन लंदन विश्वविद्यालय में एम० एड० में पढ़ रही हैं। कुकी जाति की कुछ और लोककथायें यह भेजेंगी।

बंगला के सुप्रसिद्ध कथाकार नारायण गंगोपाध्याय आपके सुपरिचित हैं। इनकी कई कहानियाँ आप पहले भी 'कहानी' में पढ़ चुके हैं। 'मृत्युबाण' बंगाल के एक पिछड़े इलाक़े की कहानी है। गाँव के गुनी के प्रति भले ही आपको सहानुभूति न हो, किन्तु उसके अन्त से आप अवश्य प्रभावित होंगे।

बहुत दिनों से हमारे पाठकों की माँग ऐतिहासिक कहानी की थी। हम ऐतिहासिक कहानियाँ प्रकाशित नहीं करना चाहते, यह बात नहीं। अच्छी ऐतिहासिक कहानियाँ मिलें, तो हम सहर्ष प्रकाशित करेंगे। अजीत कुमार की कहानी 'पारो' गदर की एक कहानी है। 'पारो' के सिवा इसमें सब-कुछ ऐतिहासिक है, लेकिन 'पारो' भी इस ऐतिहासिक भूमि में इस तरह घुल-मिल गयी है कि वह अनैतिहासिक नहीं लगती। लेखक की यही सफलता है।

'धारा और जाल' के तरुण लेखक विद्यासागर नौटियाल आपके सुपरिचित हैं।

'पावडर' के लेखक हक्सले जगत-प्रसिद्ध कथाकार हैं।

उपन्यास

'उपन्यास के दूसरे अंक में उर्दू के अमर कथाकार स्व० सआदत हसन 'मन्टो' का इकलौता उपन्यास 'राजो और मिस फ़रिया' प्रकाशित हुआ है, साथ में उन्हीं का अपने पर लिखा एक लेख और उनकी एक मशहूर कहानी 'जानकी' भी है। 'उपन्यास' के तीसरे अंक में बंगला के सुप्रसिद्ध कथाकार प्रेमेन्द्र मित्र का उपन्यास 'जलूस' प्रकाशित होगा।

अख़्तर अपनी माँ से यों अचानक बिछुड़ गया, जैसे भागते हुए किसी की जेब से रुपया गिर पड़े। अभी था और अभी ग़ायब। ढुँढैया पड़ी, लेकिन बस इस हद तक कि लुटे-पिटे क़ाफ़िले के आख़िरी सिरे पर एक हंगामा साबुन के झाग की तरह उठा और बैठ गया।

—कहीं आ ही रहा होगा,—किसी ने कह दिया—हज़ारों का तो क़ाफ़िला है।

और अख़्तर की माँ इस तसल्ली की लाठी थामे पाकिस्तान की तरफ़ रेंगती चली आयी थी।

आ ही रहा होगा, वह सोचती, कोई तितली पकड़ने निकल गया होगा, और फिर माँ को न पाकर रोया होगा और फिर... फिर अब कहीं आ ही रहा होगा। समझदार है, पाँच साल से तो कुछ ऊपर हो चला है, आ जायगा। वहाँ पाकिस्तान में ज़रा ठिकाने से बैठूँगी, तो ढूँढ़ लूँगी।

लेकिन अख़्तर तो सीमा से कोई पन्द्रह मील उधर यों ही बस बिना किसी कारण के इतने बड़े क़ाफ़िले से कट गया था। अपनी माँ के ख़याल के मुताबिक़ उसने तितली का पीछा किया या किसी खेत में से गन्ना तोड़ने गया और तोड़ता रह गया। अन्त में जब वह रोता-चिल्लाता एक तरफ़ भागा जा रहा था, तो कुछ सिक्खों ने उसे घेर लिया था और अख़्तर ने तैश में आकर कहा था—मैं नारए-तकबीर मार दूँगा!—और यह कहकर सहम गया था।

सब सिक्ख एकदम हँस पड़े थे, सिवाय एक सिक्ख के, जिसका नाम परमेश्वर सिंह था। ढीली-ढीली पगड़ी में से उसके उलझे हुए केश झाँक रहे थे और जूड़ा तो बिल्कुल नंगा था। वह बोला—हँसो नहीं, यारो। इस बच्चे को भी तो उसी वाह गुरू ने पैदा किया है, जिसने तुम्हें और तुम्हारे बच्चों को पैदा किया!

एक नौजवान सिक्ख, जिसने अब तक कृपान निकाल ली थी, बोला—ज़रा ठहर, परमेशरे, कृपान अपना धर्म पूरा कर ले, फिर हम अपने धर्म की बात करेंगे!

—मारो नहीं, यारो!—परमेश्वर सिंह की आवाज़ में पुकार थी—इसे मारो नहीं, इतना ज़रा-सा तो है। और इसे भी तो उसी वाह गुरू ने पैदा किया है, जिसने...

—पूछ लेते हैं इसी से,—एक और सिक्ख बोला। फिर उसने सहमे हुए अख़्तर के पास जाकर कहा—बोलो, तुम्हें

किसने पैदा किया ? खुदा ने कि वाह गुरू ने ?

अख़्तर ने उस सारी ख़ुश्की को निगलने की कोशिश की, जो उसकी ज़बान की नोक से लेकर नाभि तक फैल चुकी थी। आँखें झपकाकर उसने उन आँसुओं को गिरा देना चाहा, जो रेत की तरह उसके पपोटों में खटक रहे थे। उसने परमेश्वर सिंह की ओर इस प्रकार देखा, जैसे माँ को देख रहा है। मुँह में गये हुए एक आँसू को थूक डाला और बोला—पता नहीं।

—लो और सुनो !—किसी ने कहा और अख़्तर को गाली देकर हँसने लगा।

अख़्तर ने अभी अपनी बात पूरी नहीं की थी। बोला—
—अम्माँ तो कहती है, मैं भूसे की कोठरी में पड़ा मिला था।

सब सिक्ख हँसने लगे। मगर परमेश्वर सिंह बच्चों की तरह बिलबिलाकर कुछ यों रोया कि दूसरे सिक्ख भौंचक्के-से रह गये। और परमेश्वर सिंह रोनी आवाज़ में जैसे बैन करने लगा—सब बच्चे एक-से होते हैं, यारो। मेरा कर्तारा भी तो यही कहता था। वह भी तो अपनी माँ को भूसे की कोठरी में पड़ा मिला था।

कृपान म्यान में चली गयी। सिक्खों ने परमेश्वर सिंह से अलग थोड़ी देर खुसुर-फुसुर की, फिर एक सिक्ख आगे बढ़ा और बिलखते हुए अख़्तर को बाजू से पकड़े वह चुपचाप रोते हुए परमेश्वर सिंह के पास आया और बोला—ले, परमेशरे, सँभाल इसे। केस बढ़वाकर इसे अपना कर्तारा बना ले। ले, पकड़।

परमेश्वर सिंह ने अख़्तर को यों झपटकर उठा लिया कि उसकी पगड़ी खुल गयी और केसों की लटें लटकने लगीं। उसने अख़्तर को पागलों की तरह चूमा, उसे अपनी छाती से भींचा और फिर उसकी आँखों में आँखें डालकर और मुस्करा-मुस्कराकर कुछ ऐसी बातें सोचने लगा, जिन्होंने उसके चेहरे को चमका दिया। फिर उसने पलटकर दूसरे सिक्खों की ओर देखा, अचानक वह अख़्तर को नीचे उतारकर सिक्खों की ओर लपका, मगर उनके पास से गुज़रकर दूर तक भागा चला गया। झाड़ियों के एक झुण्ड में बन्दरों की तरह कूदता और झपटता रहा, और उसके केस उसकी लपक-झपट का साथ देते रहे। दूसरे सिक्ख हैरान खड़े उसे देखते रहे। फिर वह एक हाथ को दूसरे हाथ पर रखे भागा हुआ वापस आया। उसकी भींगी हुई दाढ़ी में फँसे हुए होंठों में मुस्कुराहट थी और लाल आँखों में चमक थी और वह बुरी तरह हाँफ रहा था।

अख़्तर के पास आकर वह घुटनों के बल बैठ गया और बोला—नाम क्या है तुम्हारा ?

—अख़्तर,—अबकी अख़्तर की आवाज़ भर्रायी हुई नहीं थी।

—अख़्तर बेटे !—परमेश्वर सिंह ने बड़े प्यार से कहा—ज़रा मेरी उँगलियों में से झाँको तो !

अख़्तर ज़रा-सा झुक गया। परमेश्वर सिंह ने दोनों हाथों में ज़रा-सी झिरी पैदा की और तुरन्त बन्द कर ली।

—आहा !—अख़्तर ने ताली बजाकर अपने हाथों को परमेश्वर सिंह के हाथों की तरह बन्द कर लिया और आँसुओं में मुस्कराकर बोला—तितली !

—लोगे ?—परमेश्वर सिंह ने पूछा।

—हाँ !—अख़्तर ने अपने हाथों को मला।

—लो !—परमेश्वर सिंह ने अपने हाथों को खोला।

अख़्तर ने तितली पकड़ने की चेष्टा की, परन्तु वह रास्ता पाते ही उड़ गयी और अख़्तर की उँगलियों की पोरों पर अपने परों के रंगों के चमकते कण छोड़ गयी। अख़्तर उदास हो गया और परमेश्वर सिंह दूसरे सिक्खों की ओर देखकर बोला—सब बच्चे एक-से क्यों होते हैं, यारो ! कर्तारे की तितली भी उड़ जाती थी, तो योंही मुँह लटका लेता था।

—परमेश्वर सिंह तो आधा पागल हो गया है,—नौजवान सिक्ख ने दूसरे सिक्ख से कहा और फिर सारा गरोह वापस जाने लगा।

परमेश्वर सिंह ने अख़्तर को कन्धे पर बिठा लिया और जब उसी तरफ़ चलने लगा, जिधर दूसरे सिक्ख गये थे, तो अख़्तर फड़क-फड़ककर रोने लगा—हम अम्मा पास जायेंगे !...अम्मा पास जायेंगे !

परमेश्वर सिंह ने हाथ उठाकर उसे थपकने की कोशिश की, पर अख़्तर ने उसका हाथ झटक दिया। फिर जब परमे-

श्वर सिंह ने यह कहा कि, हाँ, बेटे, तुम्हें तुम्हारी अम्माँ के पास ही लिये चलता हूँ, तो अख़्तर चुप हो गया। सिर्फ़ कभी-कभी सिसक लेता था और परमेश्वर सिंह की थपकियों को ज़बरदस्ती सहन करता जा रहा था।

परमेश्वर सिंह उसे अपने घर में ले आया। पहले यह किसी मुसलमान का घर था। लुटा-पिटा परमेश्वर सिंह जब ज़िला लाहौर से ज़िला अमृतसर में आया था, तब गाँववालों ने उसे यह मकान एलाट कर दिया था। वह अपनी पत्नी और बेटी-सहित जब इस चारदीवारी में दाख़िल हुआ था, तब ठिठक-कर रह गया था। उसकी आँखें पथरा-सी गयी थीं और वह बड़े रहस्यपूर्ण स्वर में बोला था—यहाँ कोई चीज़ कुरान पढ़ रही है।

ग्रंथीजी और गाँव के दूसरे लोग हँस पड़े थे। परमेश्वर सिंह की पत्नी ने उन्हें पहले से बता दिया था कि कर्तार सिंह के बिछुड़ते ही उसे कुछ हो गया है।...जाने क्या हो गया है इसे। उसने कहा था, वाह गुरूजी झूठ न बुलवायें, तो वहाँ दिन में कोई दस बार यह कर्तार सिंह को गधों की तरह पीट डालता था और जब से कर्तार सिंह से बिछुड़ा है, तो मैं तो, ख़ैर रो-धोकर चुप हो गयी, पर इसका रोने से भी मन हल्का नहीं हुआ। वहाँ, मजाल है, जो बेटी अमरकौर को मैं भी ज़रा गुस्से में देख लेती। बिफ़र जाता था। कहता था, बेटी को बुरा मत कहो। बेटी बड़ी मिसकीन होती है। यह तो एक मुसाफ़िर है बेचारी। हमारे घरौंदे में सुस्ताने बैठ गयी है। वक़्त आयगा तो चली जायगी।...और अब अमरकौर से ज़रा-सी भी भूल हो जाय, तो आपे में ही नहीं रहता। यह तक बक देता है कि बीवियाँ-बेटियाँ भागते सुनी थी, यारो, यह नहीं सुना था कि पाँच-छः बरस के बेटे भी उठ जाते हैं।

वह एक महीने से इस घर में रह रहा था। पर हर रात जब वह लेटता, तो पहले सोते में बेतहाशा करवटें बदलता, फिर बड़बड़ाने लगता और फिर उठ बैठता। बड़ी डरी हुई कानाफूसी में पत्नी से कहता—सुनती हो, यहाँ कोई चीज़ कुरान पढ़ रही है।

पत्नी उसे केवल 'उँह' कहकर टालकर सो जाती थी। मगर अमरकौर को इस कानाफूसी के बाद रात-भर नींद न आती। उसे अँधेरे में बहुत-सी परछाइयाँ हर तरफ़ बैठी कुरान पढ़ती नज़र आती और फिर जब ज़रा-सी पौ फूटती, तो वह कानों में उँगलियाँ दे लेती थी। वहाँ ज़िला लाहौर में उनका घर मसजिद के पड़ोस में ही था और जब सुबह अज़ान होती थी, तो कैसा मज़ा आता था! ऐसा लगता था, जैसे पूरब से फूटता हुआ उजाला गाने लगा है। फिर जब उसकी पड़ोसिन प्रीतम कौर को कुछ नौजवानों ने ख़राब करके चीथड़े की तरह घूरे पर फेंक दिया था, तो जाने क्या हुआ कि अज़ान की आवाज़ में भी उसे प्रीतम कौर की चीख़ सुनायी दे जाती थी। अज़ान की कल्पना तक उसे भयभीत कर देती थी और वह यह भूल जाती थी कि अब उनके पड़ोस में मसजिद है। योंही कानों में उँगलियाँ दिये हुए वह सो जाती और रात-भर जागते रहने के कारण दिन चढ़े तक सोयी रहती और परमेश्वर सिंह इस बात पर बिगड़ जाता—ठीक है। सोये नहीं तो और क्या करे। निकम्मी तो होती ही हैं ये छोकरियाँ। लड़का होता, तो अब तक जाने कितने काम कर चुका होता, यारो!

परमेश्वर सिंह आँगन में दाखिल हुआ, तो आज रोज की तरह उसका चेहरा उदास न था, बल्कि उसके होंठों पर मुस्कराहट थी। उसके खुले केस कंघे-सहित उसकी पीठ और एक कन्धों पर बिखरे थे और उसका एक हाथ अख़्तर की कमर थपके जा रहा था। उसकी पत्नी एक तरफ़ बैठी छान्द में गेहूँ फटक रही थी। उसके हाथ जहाँ थे, वहीं रुक गये और वह टुकुर-टुकुर परमेश्वर सिंह को देखने लगी। फिर वह छान्द पर से कूदती हुई आयी और बोली—यह कौन है?

परमेश्वर सिंह पूर्ववत् मुस्कराते हुए बोला—डरो नहीं, बेवकूफ़। इसकी आदतें बिल्कुल कर्तारे की-सी हैं। यह भी अपनी माँ को भूसे की कोठरी में पड़ा मिला था। यह भी तितलियों का आशिक़ है, इसका नाम अख़्तर है।

—अख़्तर?—उसकी पत्नी के तेवर बदल गये।

—तुम इसे अख़्तर सिंह कह लेना,—परमेश्वर सिंह ने कहा—और फिर केसों का क्या है। दिनों में बढ़ जाते हैं। कड़ा और कच्छा पहना दो। कंघा केसों के बढ़ते ही लग जायगा।

—पर यह है किसका?—पत्नी ने फिर सवाल किया।

—किसका है ?—परमेश्वर सिंह ने अख्तर को कन्धे पर से उतारकर ज़मीन पर खड़ा कर दिया और उसके सर पर हाथ फेरने लगा—वाह गुरू का है, हमारा अपना है, और फिर, यारो, यह औरत इतना भी नहीं देख सकती कि अख्तर के माथे पर जो यह ज़रा-सा तिल है, यह कर्तारे का ही तिल है। कर्तारे के भी तो एक तिल था और यहीं था। ज़रा बड़ा था वह, पर हम उसे यहीं तिल पर ही तो चूमते थे, और यह अख्तर के कानों की लवें गुलाब के फूल की तरह गुलाबी हैं, तो, यारो, यह औरत यहाँ तक नहीं सोचती कि कर्तारे के कानों की लवें भी तो ऐसी ही थीं। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि वे ज़रा मोटी थीं, ये ज़रा पतली हैं, और···

अख्तर, जो अब तक मारे अचरज के चुप था, बिलबिला उठा—हम यहाँ नहीं रहेंगे, हम अम्माँ पास जायेंगे, अम्माँ पास !

परमेश्वर सिंह ने अख्तर का हाथ पकड़कर उसे पत्नी की ओर बढ़ाया—अरी लो, यह अम्माँ पास जाना चाहता है !

—तो जाये !—पत्नी की आँखों और चेहरे पर वही आसेब आ गया था, जिसे परमेश्वर सिंह अपनी आँखों और चेहरे में से नोचकर बाहर खेतों में झटक आया था। बोली—डाका मारने गया था सूरमा और उठा लाया यह हाथ-भर का लौंडा ! अरे, कोई लड़की ही उठा लाता, तो हज़ार में न सही, एक-दो सौ में तो बिक ही जाती। इस उजड़े घर का खाट-खटोला बन जाता। और फिर···पगले ! तुझे तो कुछ हो गया है। देखते नहीं, यह लड़का मुसल्ला है। जहाँ से उठा लाये हो, वहीं डाल आओ। ख़बरदार, जो इसने मेरे चौके में पाँव रखा !

परमेश्वर सिंह ने इलतिजा की—कर्तारे और अख़्तर को एक ही वाह गुरू ने पैदा किया है, समझी ?

—नहीं !—अबकी पत्नी चीख उठी—मैं नहीं समझी, न कुछ समझना चाहती हूँ ! मैं रात-ही-रात झटका कर डालूँगी इसका, काटकर फेंक दूँगी ! उठा लाया है वहाँ से··· ले जा इसे, फेंक दे बाहर !

—तुम्हें न फेंक दूँ बाहर ?—अबके परमेश्वर सिंह बिगड़ गया—तुम्हारा न कर डालूँ झटका ?—वह पत्नी की ओर बढ़ा और पत्नी अपनी छाती को दुहत्थड़ों से पीटती, चीखती-चिल्लाती भागी। पड़ोस से अमर कौर दौड़ी आयी। उसके पीछे गली की दूसरी औरतें भी आ गयीं, पुरुष भी जमा हो गये और परमेश्वर सिंह की पत्नी पिटने से बच गयी। फिर सबने उसे समझाया कि यह एक अच्छा काम है। एक मुसलमान को सिक्ख बनाना कोई मामूली काम तो नहीं। पुराना ज़माना होता, तो अब तक परमेश्वर सिंह गुरू मशहूर हो चुका होता। पत्नी की ढाड़स बँधी, पर अमर कौर एक कोने में बैठी घुटनों में सर दिये रोती रही। अचानक परमेश्वर सिंह की गरज ने सारे हुजूम को दहला दिया—अख़्तर किधर गया ?—वह चिंघाड़ा—अरे, वह किधर गया हमारा अख़्तर ? अरे, वह तुममें से किसी कसाई के हत्थे तो नहीं चढ़ गया, यारो ?···अख़्तर, अख़्तर !

वह चीख़ता हुआ मकान के कोनों-खुदरों में झाँकता हुआ बाहर भाग गया। बच्चे मारे दिलचस्पी के उसके पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। औरतें छतों पर चढ़ गयी थीं और परमेश्वर सिंह गलियों में से बाहर खेतों में निकल गया था।

—अरे, मैं तो उसे अम्माँ पास ले चलता, यारो ! अरे वह गया कहाँ ?···अख़्तर, हे अख़्तर !

—मैं तुम्हारे पास नहीं आऊँगा !—पगडंडी के एक मोड़ पर ज्ञान सिंह के गन्ने के खेत की आड़ से, रोते हुए अख़्तर ने परमेश्वर सिंह को डाँट दिया—तुम तो सिक्ख हो।

—हाँ, बेटे, सिक्ख तो हूँ,—परमेश्वर सिंह ने जैसे लाचार होकर अपना जुर्म स्वीकार कर लिया हो।

—तो फिर हम नहीं आयेंगे,—अख़्तर ने पुराने आँसुओं को पोंछकर नये आँसुओं के लिए रास्ता साफ़ किया।

—नहीं आओगे ?—परमेश्वर सिंह का लहजा अचानक बदल गया।

—नहीं !

—नहीं आओगे ?

—नहीं,नहीं,नहीं !

—कैसे नहीं आओगे ?—परमेश्वर सिंह ने अख़्तर को कान से पकड़ा और निचले होंठ को दाँतों में दबाकर उसके मुँह पर चटाख़ से एक थप्पड़ मार दिय—चलो !—वह कड़का।

अख़्तर इस प्रकार सहम गया, जैसे एकदम उसका सारा ख़ून निचुड़कर रह गया हो। फिर एकाएक वह ज़मीन रप

गिरकर पाँव पटकने और धूल उड़ाने और बिलख-बिलख-कर रोने लगा—नहीं चलता, बस नहीं चलता ! तुम सिक्ख हो। मैं सिक्खों के पास नहीं जाऊँगा। मैं अपनी अम्माँ पास जाऊँगा, मैं तुम्हें मार दूँगा !

और जैसे अब परमेश्वर सिंह के सहमने की बारी थी। उसका भी सारा ख़ून जैसे निचुड़कर रह गया था। उसने अपने हाथ को दाँतों में जकड़ लिया। उसके नथुने फड़कने लगे और वह इस ज़ोर से रो दिया कि खेत की परली मेंड़ पर आते हुए चन्द पड़ोसी और उनके बच्चे भी सहमकर रह गये और ठिठक गये। परमेश्वर सिंह घुटनों के बल अख़्तर के सामने बैठ गया, बच्चों की तरह यों सिसक-सिसक कर रोने लगा कि उसका निचला होंठ भी बच्चों की तरह लटक आया और फिर बच्चों की-सी रोनी आवाज़ में बोला—मुझे माफ़ कर दे, अख़्तर ! मुझे तुम्हारे ख़ुदा की कसम, मैं तुम्हारा दोस्त हूँ ! तुम अकेले यहाँ से जाओगे, तो तुम्हें कोई मार देगा। फिर तुम्हारी माँ पाकिस्तान से आकर मुझे मारेगी। मैं ख़ुद जाकर तुम्हें पाकिस्तान छोड़ आऊँगा। सुना ? सुन रहे हो न ? फिर वहाँ अगर तुम्हें एक लड़का मिल जाये न, करतारा नाम का, तो तुम उसे इधर इस गाँव में छोड़ जाना, अच्छा ?

—अच्छा !—अख़्तर ने उलटे हाथों से आँसू पोंछते हुए परमेश्वर सिंह से सौदा कर लिया।

परमेश्वर सिंह ने अख़्तर को कन्धे पर बिठा लिया और चला। मगर एक ही क़दम उठाकर रुक गया। सामने बहुत-से बच्चे और चन्द पड़ोसी खड़े उसकी सारी हरकतें देख रहे थे। अधेड़ अवस्थावाला एक पड़ोसी बोला—रोते क्यों हो, परमेशरे। कुल एक महीने की तो बात है। एक महीने में इसके केस बढ़ आयेंगे, तो बिल्कुल करतारा लगेगा।

कुछ कहे बिना परमेश्वर सिंह तेज़-तेज़ क़दम उठाने लगा। फिर एक जगह रुककर उसने पलटकर अपने पीछे आनेवाले पड़ोसियों की ओर देखा—तुम कितने ज़ालिम लोग हो, यारो ! अख़्तर को करतारा बनाते हो। और अगर उधर कोई करतारे को अख़्तर बना ले, तो ? उसे ज़ालिम ही कहोगे न ?—उसकी आवाज़ में फिर गरज आ गयी—यह लड़का मुसलमान ही रहेगा। दरबार साहब की कसम, मैं कल ही अमृतसर जाकर इसके अंग्रेजी बाल बनवा लाऊँगा ! तुमने मुझे समझ क्या रखा है। ख़ालसा हूँ ! सीने में शेर का दिल है, मुर्ग़ी का नहीं !

परमेश्वर सिंह अभी अपने घर में दाख़िल होकर अपनी पत्नी और बेटी को अख़्तर की ख़ातिरदारी के सम्बन्ध में हुक्म दे ही रहा था कि गाँव का ग्रंथी सरदार संतोख सिंह अन्दर आया और बोला—परमेशर सिंह !

—जी !—परमेश्वर सिंह ने पलटकर देखा। ग्रंथीजी के पीछे उसके सब पड़ोसी भी थे।

—देखो !—ग्रंथीजी ने बड़े दबदबे से कहा—कल से यह लड़का ख़ालसे की-सी पगड़ी बाँधेगा, कड़ा पहिनेगा, धर्मशाला आयेगा और इसे प्रसाद खिलाया जायेगा। इसके केसों को कैंची नहीं छुयेगी, छू गयी तो, कल ही से यह घर ख़ाली कर दो। समझे ?

—जी,—परमेश्वर सिंह ने धीरे से कहा।

—हाँ !—ग्रंथीजी ने आख़िरी चोट दी।

—ऐसा ही होगा, ग्रंथीजी,—परमेश्वर सिंह की पत्नी बोली—पहले ही इसे घर के कोने-कोने से कोई चीज़ कुरान पढ़ती सुनायी देती है। लगता है, पहले जन्म में मुसल्ला रह चुका है। अमर कौर बेटी ने तो जब से यह सुना है कि हमारे घर में मुसल्ला छोकरा आया है, बैठी रो रही है। कहती है, घर पर कोई और आफ़त आयगी। परमेशरे ने आपका कहा न माना, तो मैं भी धर्मशाला में चली आऊँगी और अमर कौर भी। फिर यह पड़ा इस छोकरे को चाटे। मुआ निकम्मा, वाह गुरु का भी लिहाज़ नहीं करता !

—वाह गुरुजी का कौन लिहाज़ नहीं करता, गधी ?—परमेश्वर सिंह ने ग्रंथीजी की बात का ग़ुस्सा पत्नी पर निकाला। फिर वह कुछ देर होंठों-ही-होंठों में गालियाँ देता रहा। कुछ देर के बाद वह उठकर ग्रंथीजी के सामने आ गया—अच्छा, जी, अच्छा !—उसने कहा और कुछ इस ढंग से कहा कि ग्रंथीजी पड़ोसियों के साथ तुरन्त चले गये।

चन्द ही दिनों में अख़्तर को दूसरे सिक्ख लड़कों से पहिचानना मुश्किल हो गया। वही कानों की लवों तक कस-कर बँधी हुई पगड़ी, वही हाथ का कड़ा और वही कछेरा। सिर्फ़ जब वह घर में आकर पगड़ी उतारता था, तब उसके

असिक्ख होने का भेद खुलता था । लेकिन उसके बाल धड़ा-धड़ बढ़ रहे थे । परमेश्वर सिंह की पत्नी उन बालों को छूकर बहुत प्रसन्न होती थी—ज़रा इधर तो आ, अमर कौर ! यह देख, केस बन रहे हैं । फिर एक दिन जूड़ा बनेगा, कंघा लगेगा और इसका नाम रखा जायगा कर्तार सिंह ।

—नहीं, माँ !—अमर कौर वहीं से जवाब देती—जैसे वाह गुरूजी एक हैं और ग्रन्थ साहब एक हैं और चाँद एक है उसी तरह मेरा भाई भी एक ही है । मेरा नन्हा-मुन्ना भाई !—वह फूट-फूटकर रो देती और मचलकर कहती—मैं इस खिलौने से नहीं बहलूँगी, माँ ! मैं जानती हूँ, यह मुसल्ला है और जो कर्तारा होता है, वह मुसल्ला नहीं होता ।

—मैं कब कहती हूँ कि यह सचमुच कर्तारा है । मेरा चाँद-सा लाडला बच्चा ! —परमेश्वर सिंह की पत्नी भी रो देती ।

दोनों अख़्तर को अकेला छोड़कर किसी कोने में जा बैठतीं । खूब-खूब रोतीं, एक दूसरे को तसल्लियाँ देतीं और फिर रोने लगतीं । वे अपने कर्तारे के लिए रोतीं, इधर अख़्तर कुछ दिनों अपनी अम्माँ के लिए रोता रहा, अब किसी और बात पर रोता । जब परमेश्वर सिंह शरणार्थियों की सहकारी पंचायत से कुछ गल्ला या कपड़ा लेकर आता, तो अख़्तर भागकर उसकी टाँगों से लिपट जाता और रो-रोकर कहता—मेरे सर पर पगड़ी बाँध दो, परमूँ, मेरे केस बढ़ा दो, मुझे कंघा खरीद दो !

परमेश्वर सिंह उसे छाती से लगा लेता और भर्राये हुए स्वर में कहता—यह सब हो जायगा, बच्चे, सब-कुछ हो जायगा । पर एक बात नहीं होगी । वह बात कभी नहीं होगी । वह नहीं होगा मुझसे, समझे ? ये केस-वेस सब बढ़ आयेंगे ।

अख़्तर अपनी माँ को बहुत कम याद करता था । जब तक परमेश्वर सिंह घर में रहता, वह उससे चिमटा रहता और जब वह कहीं बाहर जाता, तो अख़्तर उसकी पत्नी और अमर कौर की ओर इस प्रकार देखता रहता था, जैसे उनसे एक-एक प्यार की भीख माँग रहा है । परमेश्वर सिंह की पत्नी उसे नहलाती, उसके कपड़े धोती और फिर उसके बालों में कंघी करते हुए रोने लगती और रोती रह जाती, अलबत्ता अमर कौर ने अख़्तर की ओर जब भी देखा, नाक चढ़ा ली । शुरू-शुरू में उसने अख़्तर को एक धमाका भी जड़ दिया था । मगर जब अख़्तर ने परमेश्वर सिंह से इसकी शिकायत की, तो परमेश्वर सिंह बिगड़ गया और अमर कौर को बड़ी नंगी-नंगी गालियाँ देता उसकी ओर यों बढ़ा कि यदि उसकी पत्नी रास्ता रोककर उसके पाँव न पड़ जाती, तो वह बेटी को उठाकर दीवार पर से गली में पटक देता ।

—उल्लू की पट्ठी !—उस दिन उसने कड़ककर कहा था—सुना तो यही था कि लड़कियाँ उठ रही हैं, पर यहाँ यह मुस्टंडी हमारे साथ लगी चली आयी और उठ गया तो पाँच साल का लड़का, जिसे अभी तक अच्छी तरह नाक तक पोंछना नहीं आता । अजीब अन्धेर है, यारो !

इस घटना के बाद अमर कौर ने अख़्तर पर हाथ तो ख़ैर कभी न उठाया, पर उसकी नफ़रत अख़्तर के प्रति और बढ़ गयी ।

एक दिन अख़्तर को तेज़ बुखार आ गया । परमेश्वर सिंह वैद्य के पास चला गया और उसके जाने के कुछ ही देर बाद उसकी पत्नी पड़ोसिन से पिसी हुई सौंफ़ माँगने चली गयी । अख़्तर को प्यास लगी ।

—पानी !—उसने कहा ।

फिर कुछ देर के बाद उसने लाल-लाल, सूजी-सूजी आँखें खोलीं, इधर-उधर देखा और पानी शब्द एक कराह बनकर उसके गले से निकला । कुछ देर के बाद वह रज़ाई को एक तरफ़ झटककर उठ बैठा । अमर कौर सामने ड्योढ़ी पर बैठी खजूर के पत्तों से डलिया बना रही थी ।

—पानी दे !—अख़्तर ने उसे डाँटा ।

अमर कौर ने भवें सिकोड़ उसे घूरकर देखा और अपने काम में जुट गयी ।

अबकी अख़्तर चिल्लाया—पानी देती है कि नहीं ! पानी दे, नहीं तो मैं मार दूँगा !

अमर कौर ने इस बार उसकी ओर देखा ही नहीं । बोली—मार तो सही ! तू कर्तारा तो नहीं कि मैं तेरी मार सह लूँगी ! मैं तो तेरी बोटी-बोटी कर डालूँगी !

अख़्तर बिलख-बिलखकर रो दिया और आज बहुत

दिन के बाद उसने अपनी अम्माँ को याद किया। फिर जब परमेश्वर सिंह दवा ले आया और उसकी पत्नी भी पिसी हुई सौंफ लेकर आ गयी, तो अख़्तर ने रोते-रोते बुरी हालत बना ली थी, और वह सिसक-सिसककर कह रहा था—हम तो अब अम्माँ पास चलेंगे। यह अमर कौर सुअर की बच्ची तो पानी भी नहीं पिलाती। हम तो अम्माँ पास जायेंगे।

परमेश्वर सिंह ने अमर कौर की तरफ़ गुस्से में देखा। वह रो रही थी और अपनी माँ से कह रही थी—क्यों पानी पिलाऊँ? कर्तारा भी तो कहीं इसी तरह पानी माँग रहा होगा किसी से। किसी को उस पर तरस न आये, तो हमें क्यों तरस आये इस पर, हाँ!

परमेश्वर सिंह अख़्तर की ओर बढ़ा और अपनी पत्नी की ओर इशारा करते हुए बोला—यह भी तो तुम्हारी अम्माँ है, बेटे।

—नहीं!—अख़्तर बड़े गुस्से से बोला—यह तो सिक्ख है। मेरी अम्माँ तो पाँच वक्त नमाज़ पढ़ती है और बिस्मिल्लाह कहकर पानी पिलाती है।

परमेश्वर सिंह की पत्नी जल्दी से एक प्याला भरकर लायी, तो अख़्तर ने प्याला दीवार पर दे मारा और चिल्लाया—तुम्हारे हाथ से नहीं पियेंगे। तुम तो अमर कौर सुअर की बच्ची की माँ हो। हम तो परमूँ के हाथ से पियेंगे।

—यह भी तो मुझी सुअर की बच्ची का बाप है!—अमर कौर ने जलकर कहा।

—तो हुआ करे!—अख़्तर बोला—तुम्हें इससे क्या?

परमेश्वर सिंह के चेहरे पर विचित्र-से भाव धूप-छाँह-सी पैदा कर गये। वह अख़्तर की माँग पर मुस्कराया भी और रो भी दिया। फिर उसने अख़्तर को पानी पिलाया, उसके माथे को चूमा, उसकी पीठ पर हाथ फेरा, उसे बिस्तर पर लिटाकर उसके सर को हौले-हौले खुजाता रहा और कहीं शाम को जाकर उसने पहलू बदला। उस समय अख़्तर का बुख़ार उतर चुका था और वह बड़े मजे से सो रहा था।

आज बहुत दिन के बाद रात को परमेश्वर सिंह भड़क उठा और बहुत धीरे से बोला—अरी, सुनती हो? सुन रही हो? यहाँ कोई चीज़ कुरान पढ़ रही है।

पत्नी ने पहले तो इसे परमेश्वर सिंह की पुरानी आदत कहकर टालना चाहा, लेकिन फिर एकदम हड़बड़ाकर उठी और अमर कौर की खाट की तरफ़ हाथ बढ़ाकर उसे हौले-हौले से हिलाकर धीरे से बोली—बेटी!

—क्या है, माँ?—अमर कौर चौंक उठी।

माँ ने फिर धीरे से कहा—सुनो तो। सचमुच कोई चीज़ क़ुरान पढ़ रही है।

यह एक क्षण का सन्नाटा बड़ा भयानक था। अमर कौर की चीख़ उससे भी भयानक थी और फिर अख़्तर की चीख़ भयानकतर थी।

—क्या हुआ, बेटा?—परमेश्वर सिंह तड़पकर उठा और अख़्तर की खाट पर जाकर उसे अपनी छाती से भींच लिया—डर गये, बेटा?

—हाँ!—अख़्तर लिहाफ़ में से सर निकालकर बोला कोई चीज़ चीखी थी।

—अमर कौर चीखी थी,—परमेश्वर सिंह ने कहा—हम-सब ऐसा समझे, जैसे कोई चीज़ क़ुरान पढ़ रही है।

—मैं पढ़ रहा था,—अख़्तर बोला।

अबकी भी अमर कौर के मुँह से हल्की-सी चीख निकल गयी।

परमेश्वर सिंह की पत्नी ने जल्दी से दिया जला दिया। और अमर कौर की खाट पर बैठकर वे दोनों अख़्तर को यों देखने लगीं, जैसे वह अभी धुआँ बनकर दरवाजे की झिरियों में से बाहर उड़ जायगा और बाहर से एक डरावनी आवाज आयगी—मैं जिन्न हूँ। मैं कल रात फिर आकर क़ुरान पढ़ूँगा।

—क्या पढ़ रहे थे भला?—परमेश्वर सिंह ने पूछा।

—पढ़ूँ!—अख़्तर ने पूछा।

—हाँ-हाँ,—परमेश्वर सिंह ने बड़े चाव से कहा।

और अख़्तर कुरान की एक सूरे पढ़ने लगा! सूरे खत्म करने के बाद उसने अपने गले में मुँह डालकर 'छू' की और फिर परमेश्वर सिंह की तरफ़ मुस्कराकर देखते हुए बोला—तुम्हारे सीने पर भी छू कर दूँ?

—हाँ-हाँ!—परमेश्वर सिंह ने गले का बटन खोल दिया और अख़्तर ने छू कर दी।

अबकी अमर कौर ने बड़ी मुश्किल से चीख़ पर काबू पाया।

परमेश्वर सिंह बोला—क्या नींद नहीं आती थी ?

—हाँ,—अख़्तर बोला—अम्माँ याद आ गयी । अम्माँ कहती हैं, नींद न आये, तो, तीन बार कुलहुअल्लाह पढ़ो, नींद आ जायगी । अब आ रही थी, पर अमर कौर ने डरा दिया ।

—फिर से पढ़कर सो जाओ,—परमेश्वर सिंह ने कहा—रोज पढ़ा करो, ऊँचे-ऊँचे पढ़ा करो । इसे भूलना नहीं, नहीं तो तुम्हारी अम्माँ तुम्हें मारेंगी । लो, अब सो जाओ ।

उसने अख़्तर को लिटाकर लिहाफ़ ओढ़ा दिया । फिर दिया बुझाने के लिए बढ़ा, तो अमर कौर ने पुकारा—नहीं-नहीं, बाबा, बुझाओ नहीं, डर लगता है ।

—डर लगता है ?—परमेश्वर सिंह ने हैरान होकर पूछा—किससे डर लगता है ?

—जलता रहे, क्या हर्ज है ?— पत्नी बोली ।

और परमेश्वर सिंह दिया बुझाकर हँस दिया—पगलियाँ !—वह बोला—गधियाँ !

रात के अँधेरे में अख़्तर धीरे-धीरे कुलहुअल्लाह पढ़ता रहा । फिर कुछ देर बाद ख़र्राटे लेने लगा । परमेश्वर सिंह भी सो गया और उसकी पत्नी भी, मगर अमर कौर रात-भर कच्ची नींद में 'पड़ोस' की मसजिद की अज़ान सुनती रही और डरती रही ।

अब अख़्तर के अच्छे-खासे केस बढ़ आये थे । नन्हें-से जूड़े में कंघा भी अटक जाता था । गाँववालों की तरह परमेश्वर सिंह की पत्नी भी उसे कर्तारा कहने लगी थी और उससे काफ़ी स्नेह का व्यवहार करती थी । लेकिन अमर कौर अख़्तर को ऐसी दृष्टि से देखती थी, मानो वह कोई बहुरूपिया है और अभी पगड़ी और केस उतारकर फेंक देगा और कुलहुअल्लाह पढ़ता हुआ ग़ायब हो जायगा ।

एक दिन परमेश्वर सिंह बड़ी तेज़ी से घर आया और हाँफते हुए अपनी पत्नी से पूछा—वह कहाँ है ?

—कौन ? अमर कौर ?

—नहीं !

—कर्तारा ?

—नहीं ।—फिर कुछ सोचकर बोला—हाँ-हाँ, वही, कर्तारा .

-बाहर खेलने गया है । गली में होगा

परमेश्वर सिंह वापस लपका । गली में जाकर भागने लगा । बाहर खेतों में जाकर उसकी रफ़्तार और तेज़ हो गयी । फिर उसे दूर ज्ञान सिंह के गन्ने की फ़सल के पास चन्द बच्चे कबड्डी खेलते दिखे । खेत की ओट से उसने देखा कि अख़्तर ने एक लड़के को घुटनों-तले दबा रखा है । लड़के के होंठों से ख़ून बह रहा है, मगर 'कबड्डी-कबड्डी' की रट लगाये है । फिर उस लड़के ने जैसे हार मान ली और जब अख़्तर की पकड़ से छूटा, तो बोला—क्यों बे कर्तारे, तूने मेरे मुँह पर घुटना क्यों मारा ?

—अच्छा किया, जो मारा !—अख़्तर अकड़कर बोला और बिखरे हुए जूड़े की लटें सँभालकर उनमें कंघा फँसाने लगा ।

—तुम्हारे रसूल ने तुम्हें यही समझाया है ?—लड़के ने व्यंग से पूछा ।

अख़्तर एक क्षण के लिए चकरा गया । फिर कुछ सोचकर बोला—और क्या तुम्हारे गुरू ने तुम्हें यही समझाया है ?

—मुसल्ला !—लड़के ने उसे गाली दी ।

—सिखड़ा !—अख़्तर ने उसे गाली दी ।

सब लड़के अख़्तर पर टूट पड़े, मगर परमेश्वर सिंह की एक ही कड़क से मैदान साफ़ था । उसने अख़्तर के सर पर पगड़ी बाँधी और उसे एक तरफ़ ले जाकर बोला—सुनो बेटे, मेरे पास रहोगे कि अम्माँ पास जाओगे ?

अख़्तर कोई निर्णय न कर सका । कुछ देर तक परमेश्वर सिंह की आँखों में आँखें डाले खड़ा रहा, फिर मुस्कराने लगा और बोला—अम्माँ पास जाऊँगा ।

—और मेरे पास नहीं रहोगे ?—परमेश्वर सिंह का रंग यों सुर्ख़ हो गया जैसे वह रो देगा ।

—तुम्हारे पास भी रहूँगा,—अख़्तर ने समस्या सुलझा दी ।

परमेश्वर सिंह ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया और वह आँसू जो मायूसी ने उसकी आँखों में जमा किये थे, खुशी के आँसू बनकर टपक पड़े । वह बोला—देखो, बेटे, अख़्तर बेटे ! आज यहाँ फौज आ रही है । ये फौजी तुम्हें मुझसे आ रहे हैं, समझे ? तुम कहीं छिप जाओ । फिर जब

चले जायेंगे न, तो मैं तुम्हें ले जाऊँगा !

परमेश्वर सिंह को उस समय दूर तक ग़ुबार का फैलता हुआ बवंडर दिखा। मेंढ़ पर चढ़कर उसने लम्बे होते हुए बगूले को गौर से देखा और अचानक तड़पकर बोला —फौजियों की लारी आ गयी।

और वह मेंढ़ पर से कूद पड़ा और गन्ने के खेत का पूरा चक्कर काट गया—ज्ञाने, ओ ज्ञानसिंह?—वह चिल्लाया। ज्ञान सिंह फसल के अन्दर से निकल आया। उसके हाथ में दराँती और दूसरे में थोड़ी-सी घास थी। परमेश्वर सिंह उसे अलग ले गया, उसे कोई बात समझायी, फिर दोनों अख़्तर की तरफ आये। ज्ञान सिंह ने फसल में से एक गन्ना तोड़ कर दराँती से उसके पत्ते काटे और उसे अख़्तर को देकर बोला—आओ, भई कर्तारे, तुम मेरे पास बैठकर गन्ना चूसो, तब तक ये फौजी चले जायेंगे। अच्छा-खासा बना-बनाया खालसा हथियाने आये हैं, हूँ-ह !

परमेश्वर सिंह ने अख़्तर से जाने की इजाज़त माँगी—जाऊँ ?

और अख़्तर ने दाँतों में गन्ने का लम्बा-सा छिलका जकड़े हुए मुस्कराने की कोशिश की। इजाज़त पाकर परमेश्वर सिंह गाँव की ओर भाग गया। बवंडर गाँव की ओर बढ़ता आ रहा था।

घर जाकर उसने पत्नी और बेटी को समझाया। फिर भागमभाग ग्रंथीजी के पास गया। उनसे बात करके इधर-उधर दूसरे लोगों को समझाता फिरा। और जब फ़ौजियों की लारी धर्मशाला से उधर खेत में रुक गयी, तो सब फ़ौजी और पुलीसवाले ग्रंथीजी के पास आये। उनके साथ इलाके का नम्बरदार भी था। मुसलमान लड़कियों के बारे में पूछ-ताछ होती रही। ग्रंथीजी ने ग्रंथ साहब की कसम खाकर कह दिया कि इस गाँव में कोई मुसलमान लड़की नहीं।

—लड़के की बात दूसरी है,—किसी ने परमेश्वर सिंह के कान में कहा और आस-पास के सिक्ख परमेश्वर सिंह-सहित होंठों-ही-होंठों में मुस्कराने लगे। फिर एक फ़ौजी अफसर ने गाँववालों के सामने एक भाषण दिया। उसने उस मामला पर बड़ा ज़ोर दिया, जो उन माओं के दिल में उन दिनों टीस बनकर रह गयी थी, जिनकी बेटियाँ छिन गयी थीं, और उन भाइयों और शौहरों के प्यार की बड़ी दर्दनाक तस्वीर खींची, जिनकी बहनें और पत्नियाँ उनसे हथिया ली गयी थीं।

—और मज़हब का क्या है, दोस्तो !—उसने कहा था —दुनिया का हर मज़हब इन्सान को इन्सान बनना सिखाता है और तुम मज़हब का नाम लेकर इन्सान को इन्सान से चुरा लेते हो, उनकी आबरू नोचते हो और कहते हो, हम सिक्ख हैं, हम मुसलमान हैं। हम वाह गुरू के चेले हैं, हम रसूल के गुलाम हैं।

भाषण के बाद मजमा छँटने लगा फ़ौजियों के अफ़सर ने ग्रंथीजी को धन्यवाद दिया, उनसे हाथ मिलया और लारी चली गयी।

सबसे पहले ग्रंथीजी ने परमेश्वर सिंह को बधाई दी, फिर दूसरे लोगों ने परमेश्वर सिंह को घेर लिया और उसे बधाई देने लगे। लेकिन परमेश्वर सिंह लारी के आने से पहले बदहवास हो रहा था, तो अब लारी के जाने के बाद लुटा-लुटा-सा लग रहा था। फिर वह गाँव में से निकलकर ज्ञान सिंह के खेत में आया। अख़्तर को कन्धे पर बिठाकर घर में ले आया। खाना खिलाने के बाद उसे खाट पर लिटाकर कुछ यों थपका कि उसे नींद आ गयी। परमेश्वर सिंह देर तक अख़्तर की खाट पर बैठा रहा। कभी-कभी डाढ़ी खुजाता और इधर-उधर देखकर फिर से सोच में डूब जाता।

पड़ोस की छत पर खेलता हुआ एक बच्चा अचानक एँड़ी पकड़कर बैठ गया और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा—हाय, इतना बड़ा काँटा उतर गया, पूरे-का-पूरा !—वह चिल्लाया और फिर उसकी माँ नंगे सर ऊपर भागी। उसे उठाकर गोद में बिठा लिया, फिर नीचे बेटी को पुकारकर सूई मँगवायी। काँटा निकलने के बाद उसे बेतहाशा चूमा और फिर नीचे झुककर पुकारी—अरे मेरा डुपट्टा तो ऊपर फेंक देना। कैसी बेहयाई से ऊपर भागी चली आयी।

परमेश्वर सिंह ने कुछ देर के बाद चौंककर अपनी पत्नी से पूछा—सुनो, क्या तुम्हें कर्तारा अब भी याद आता है ?

—लो और सुनो !—पत्नी बोली और फिर एकदम रो दी—कर्तारा तो मेरे कलेजे का नासूर बन गया है, परमेशरे !

कर्तारा का नाम सुनकर उधर से अमर कौर आयी और रोती हुई माँ के घुटने के पास बैठकर रोने लगी।

परमेश्वर सिंह यों बिदककर उठा, जैसे उसने शीशे के बर्तनों से भरा हुआ थाल ज़मीन पर दे मारा है।

शाम को खाने के बाद वह अख़्तर को उँगली से पकड़े बाहर दालान में आया और बोला—आज तो दिन-भर ख़ूब सोये हो, बेटा! चलो, आज ज़रा घूमने चलते हैं। चाँदनी रात है।

अख़्तर तुरन्त मान गया। परमेश्वर सिंह ने उसे एक कम्बल में लपेटा और कन्धे पर बिठा लिया। खेतों में आकर वह बोला—यह चाँद जो पूरब से निकल रहा है न, बेटे, यह जब हमारे सर पर पहुँचेगा, तो सुबह हो जायेगी।

अख़्तर चाँद की ओर देखने लगा।

—यह चाँद जो यहाँ चमक रहा है न, यह वहाँ भी चमक रहा होगा, तुम्हारी अम्माँ के देश में।

अबकी अख़्तर ने झुककर परमेश्वर सिंह की तरफ़ देखने की कोशिश की।

—यह चाँद हमारे सर पर आयगा, तो वहाँ तुम्हारी अम्माँ के सर पर भी होगा।

अख़्तर बोला—हम चाँद देख रहे हैं, तो क्या अम्माँ भी चाँद देख रही होगी?

—हाँ,—परमेश्वर सिंह की आवाज़ में गूँज थी—चलोगे अम्माँ के पास?

—हाँ,—अख़्तर बोला—पर तुम ले तो जाते नहीं। तुम बहुत बुरे हो, तुम सिक्ख हो।

परमेश्वर सिंह बोला—नहीं, बेटे, आज तो तुम्हें ज़रूर ही ले जाऊँगा। तुम्हारी अम्माँ की चिट्ठी आयी है। वह कहती है, मैं अख़्तर बेटे के लिए उदास हूँ।

—मैं भी तो उदास हूँ,—अख़्तर को जैसे कोई भूली हुई बात याद आ गयी।

—मैं तुम्हें तुम्हारी अम्माँ के पास ही लिये जा रहा हूँ।

—सच!—अख़्तर परमेश्वर सिंह के कन्धे पर कूदने लगा और ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगा—हम अम्माँ पास जा रहे हैं! परमू हमें अम्माँ पास ले जायगा! हम वहाँ से परमू को चिट्ठी लिखेंगे!

परमेश्वर सिंह चुपचाप रोये जा रहा था। आँसू पोंछकर और गला साफ़ करके उसने अख़्तर से पूछा—गाना सुनोगे?

—हाँ।

—पहले तुम कुरान सुनाओ।

—अच्छा,—और अख़्तर ने कुलहुअल्लाह की पूरी सूरे पढ़कर अपने सीने पर छू की और बोला—लाओ, तुम्हारे सीने पर भी छू कर दूँ।

रुककर परमेश्वर सिंह ने गले का एक बटन खोला और ऊपर देखा। अख़्तर ने लटककर उसके सीने पर छू कर दी और बोला—अब तुम सुनाओ।

परमेश्वर सिंह ने अख़्तर को दूसरे कन्धे पर बिठा लिया। उसे बच्चों का कोई गीत याद नहीं था। इसलिए उसने क़िस्म-क़िस्म के गीत गाने शुरु किये और गाते हुए तेज़-तेज़ चलने लगा। अख़्तर चुप-चाप सुनता रहा :

> बन्तो दा सर बन वरगा जे
> बन्तो दा मुँह चन्न वरगा जे
> बन्तो दा लक चितरा जे
> लोको
> बन्तो दा लक चितरा...

—बन्तो कौन है?—अख़्तर ने परमेश्वर सिंह को टोका।

परमेश्वर सिंह हँसा, फिर कुछ देर के बाद बोला—मेरी बीवी है न, अमर कौर की माँ, उसका नाम बन्तो है। अमर कौर का नाम भी बन्तो है। तुम्हारी अम्माँ का नाम भी बन्तो ही होगा।

—क्यों?—अख़्तर ख़फ़ा हो गया—वह कोई सिक्ख है?

परमेश्वर सिंह चुप हो गया।

चाँद बहुत ऊँचा हो गया था। रात ख़ामोश थी। कभी-कभी गन्ने के खेतों के आस-पास गीदड़ रोते और फिर सन्नाटा, छा जाता। अख़्तर पहले तो गीदड़ों की आवाज़ से डरा, मगर परमेश्वर सिंह के समझाने से बहल गया और एक बार लम्बी ख़ामोशी के बाद उसने परमेश्वर सिंह से पूछा—अब क्यों नहीं रोते, गीदड़?

परमेश्वर सिंह हँस दिया। फिर उसे एक कहानी याद आ गयी। यह गुरु गोविन्द की कहानी थी। लेकिन उसने बड़ी कुशलता से सिक्खों के नामों को मुसलमानों के नामों में बदल दिया और अख्तर फिर-फिर की रट लगाता रहा। और कहानी अभी जारी ही थी कि अख़्तर एकदम बोला—अरे, चाँद तो सर पर आ गया!

परमेश्वर सिंह ने भी रुककर ऊपर देखा। फिर वह पास के टीले पर चढ़कर दूर देखने लगा और बोला—तुम्हारी अम्माँ का देश न जाने किधर चला गया?

वह कुछ देर टीले पर खड़ा रहा। जब अचानक कहीं बहुत दूर से अज़ान की आवाज़ आने लगी, तो अख़्तर मारे खुशी के यों कूदा कि परमेश्वर सिंह उसे बड़ी मुश्किल से सँभाल सका। उसे कन्धे पर से उतारकर वह ज़मीन पर बैठ गया और खड़े हुए अख़्तर के कन्धों पर हाथ रखकर बोला—जाओ, बेटे, तुम्हें तुम्हारी अम्माँ ने पुकारा है। बस, तुम इस आवाज़ की सीध में...

—शश!—अख़्तर ने अपने होंठों पर उँगली रख दी और बहुत धीरे से बोला—अज़ान के वक्त नहीं बोलते।

—पर मैं तो सिक्ख हूँ, बेटे,—परमेश्वर सिंह बोला।

—शश!—अबकी अख़्तर ने बिगड़कर उसे घूरा।

और परमेश्वर सिंह ने उसे गोद में बिठा लिया। उसके माथे पर एक बहुत लम्बा प्यार दिया और अज़ान ख़त्म होने के बाद आस्तीनों से आँखों को रगड़कर भर्रायी हुई आवाज़ में बोला—मैं यहाँ से आगे नहीं आऊँगा। बस, तुम...

—क्यों? क्यों नहीं आओगे?—अख़्तर ने पूछा।

—तुम्हारी अम्माँ ने चिट्ठी में यही लिखा है कि अख़्तर अकेला आये।—परमेश्वर सिंह ने अख़्तर को फ़ुसला लिया—बस, तुम सीधे चले जाओ। सामने एक गाँव आयगा। वहाँ जाकर अपना नाम बताना, कर्तारा नहीं, अख़्तर फिर अपनी अम्माँ का नाम बताना, अपने गाँव का नाम बताना, और देखो, मुझे एक चिट्ठी जरूर लिखना।

—लिखूँगा,—अख़्तर ने वायदा किया।

—और, हाँ, तुम्हें कर्तारा नाम का कोई लड़का मिले न, तो उसे इधर भेज देना। अच्छा।

—अच्छा?

परमेश्वर सिंह ने एक बार फिर अख़्तर का माथा चूमा और जैसे कुछ निगलकर बोला—जाओ।

अख़्तर चन्द क़दम चला, मगर पलट आया—तुम भी आ जाओ न!

—नहीं, भयी,—परमेश्वर सिंह ने उसे समझाया—तुम्हारी अम्माँ ने चिट्ठी में यह नहीं लिखा।

—मुझे डर लगता है,—अख़्तर बोला।

कुरान क्यों नहीं पढ़ते?—परमेश्वर सिंह ने सलाह दी।

—अच्छा,—बात अख़्तर की समझ में आ गयी और वह कुलहुअल्लाह पढ़ता हुआ जाने लगा।

नर्म-नर्म पौ क्षितिज के दायरे पर अँधेरे से लड़ रही थी और नन्हा-सा अख़्तर दूर धुँधली पगडंडी पर एक लम्बे तड़ंगे सिक्ख जवान की तरह तेज़-तेज़ जा रहा था। परमेश्वर सिंह उसपर नज़रें गाड़े टीले पर बैठा रहा। और जब अख़्तर का बिन्दु वायुमंडल का एक अंश बन गया, तो वह वहाँ से उतर आया।

अख़्तर अभी गाँव के करीब नहीं पहुँचा था कि दो सिपाही लपककर आये और उसे रोककर बोले—कौन हो तुम?

—अख़्तर!—वह यों बोला, जैसे सारी दुनिया उसका नाम जानती है।

—अख़्तर?—दोनों सिपाही कभी अख़्तर के चेहरे को देखते थे और कभी उसकी सिक्खों की-सी पगड़ी को। फिर एक ने आगे बढ़कर उसकी पगड़ी झटके से उतार ली, तो अख़्तर के केस खुलकर इधर-उधर बिखर गये।

अख़्तर ने भन्नाकर पगड़ी छीन ली और फिर सर को एक हाथ से टटोलते हुए वह ज़मीन पर लेट गया और ज़ोर ज़ोर से रोते हुए बोला—मेरा कंघा लाओ! तुमने मेरा कंघा ले लिया है! दे दो, वरना मैं तुम्हें मारूँगा!

एकदम दोनों सिपाही ज़मीन पर धब्ब से गिरे और राइफ़लों को कंधे से लगाकर जैसे निशाना बाँधने लगे।

—हाल्ट!—एक ने पुकारा और जैसे जवाब का इन्तज़ार करने लगा। फिर बढ़ते हुए उजाले में उन्होंने एक-दूसरे की ओर देखा और एक ने फ़ायर कर दिया।

अख़्तर फ़ायर की आवाज़ से दहलकर रह गया और सपाहियों को एक ओर भागता देखकर वह भी रोता-चिल्लाता उनके पीछे भागा।

सिपाही जब एक जगह जाकर रुके, तो परमेश्वर सिंह अपनी रान पर कसकर पगड़ी बाँध चुका था, मगर खून उसकी पगड़ी की सैकड़ों परतों में से भी फूट आया था और वह कह रहा था—मुझे क्यों मारा तुमने ? मैं तो अख़्तर के केस काटना भूल गया था। मैं तो अख़्तर को उसका धर्म वापस देने आया था, यारो !

दूर अख़्तर भागा जा रहा था और उसके केस हवा में उड़ रहे थे।

उर्दू से अनु० रवीन्द्र और 'हुनर
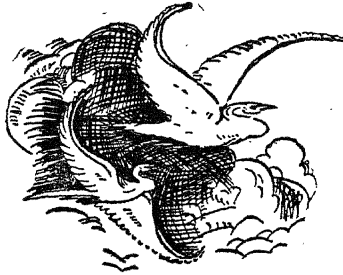
डायनासर का दिमाग़

प्रबोधकुमार

प्रोफ़ेसर नीलरतन सक्सेना का जीव-विज्ञान का क्लास चल रहा था।

सामने की दीवार पर प्राचीन अस्थिधारी जीवों के चित्र लटक रहे थे और ब्लैक बोर्ड पर उन्हीं के पिंजरों की विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ खिंची हुई थीं।

प्रोफेसर सक्सेना कह रहे थे—कल मैंने आपको प्राचीन काल के जीवधारियों के बारे में बतलाना प्रारम्भ किया था। आज मैं आपके सामने उसी काल के एक अनोखे जानवर 'डायनासर' का वर्णन करूँगा।—इतना कहकर प्रोफेसर साहब ने रूमाल से मुँह पोंछा और सामने की सीटों पर बैठी लड़कियों की ओर सरसरी दृष्टि से देखकर पुनः कहना प्रारम्भ किया—प्रमाणों के अनुसार डायनासर नाम के विशालकाय जानवर आज से कम-से-कम दस करोड़ बरसों से भी पहले दुनिया के ठण्डे भागों में पाये जाते थे।....

सबसे पीछे की कतार में बैठा असित सोच रहा था, देखो तो सही इन बेईमानों को! एक ही दिन में शक्कर का दाम तेरह आने से बढ़ाकर पन्द्रह आने कर दिया! बाप का राज समझ रखा है सुअरों ने! अगर ऐसा ही जानता, तो पहले ही से एक दुअन्नी और न दे देता कालीचरण को। जाने किस बदनसीब का मुँह देखकर उठा था कि चाय तक नसीब न हुई सबेरे से।....

मैं भी तो हूँ कि हमेशा गिनकर नौकर को पैसे देता हूँ! इतना अविश्वास नहीं करना चाहिए उनपर।....मगर सारी गलती मेरी ही तो नहीं है। आख़िर इस रोज़-रोज़ के भाव बदलने के क्या मानी?

हर महीने अस्सी रुपये ही तो घर से आते हैं। कैसे निबटाऊँ इन बढ़ते हुए ख़र्चों को?

जीना मुहाल कर रखा है इन सफ़ेद चोरबाजारियों ने! लोग कहते हैं कि काजल की कोठरी में जो भी जाय, काला होकर ही निकलेगा। हुँ! शायद साबका न पड़ा होगा किसी काले बाजारवाले से, नहीं तो पता पड़ जाता कि जितना ही ये काला काम करते हैं, उतने ही उजले होते जाते हैं। काम काला, पर खुद उजले, कपड़े लत्ते उजले, बँगले उजले, बीवियाँ उजली....ग़र्ज़ कि हर तरफ़ से उजले, साफ़-सफ़ेद, ज़र्क़-बर्क़! यही-सब सोच रहा था असित, जब उसे प्रोफ़ेसर के शब्द सुनायी पड़े, डायनासर नाम के जानवर आज से........ठण्डे मुल्कों में....

उसके विक्षिप्त मस्तिष्क को आज कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। उसने मन में कहा, काश! इन्हीं डायनासरों की भाँति ये चोरबाजारिये भी हज़ारों-लाखों साल पहले की बात होते, एक बीती बात, जिसे सुनने से प्रसन्नता भी हो सकती है और दुःख भी, पर प्रकट भय के लिए जहाँ कोई स्थान नहीं रहता। बस, बड़े लोगों से सुनते भर कि किसी समय में अमुक नगरी में अमुक चोरबाज़ारिया रहता था, जिसके तीन लड़के थे, कपट, झूठ

और द्वेष। वह बड़ा बेईमान था और ऐसा करता था, इत्यादि, इत्यादि....

असित का दिमाग़ बुरी तरह से मथा जा रहा था, पर कान सक्सेना साहब की आवाज़ पर लगे थे। वह कह रहे थे—इस शक्तिशाली डायनासर की ओर देखिए, जो न सिर्फ़ अपनी शक्ति और स्फूर्ति के लिए, वरन अपनी प्रकाण्ड बुद्धिमत्ता के लिए भी पूर्व ऐतिहासिक काल से प्रसिद्ध है।

बिल्कुल मिलते हैं, असित ने सोचा, कहीं ये चोर-बाज़ारिये ही तो नहीं थे उस ज़माने में डायनासरों के रूप में? जहाँ तक शक्ति तथा स्फूर्ति का सवाल है, ये डायनासर से हर्गिज कम न होंगे। यह दूसरी बात है कि डायनासर की शक्ति आन्तरिक थी और इनकी तिजोरी में बन्द रुपयों के रूप में। यही-सब तो बातें हैं, जिन्होंने इस देश की लोककथाओं को अनुभूति दी है।....एक राक्षस रहता था, जिसके प्राण सात तालों में बन्द एक पिंजड़े में रहनेवाले तोत में बसते थे।....और जहाँ तक बुद्धिमत्ता का सवाल है, मैं तो समझता हूँ कि डायनासर क्या, उसके बाप-दादे भी आ जायँ, तो इनके सामने हलके ही पड़ेंगे।

इनकी बुद्धि की महिमा तो अपरम्पार है, अवर्णनीय है। सारी दुनिया में सफ़ेद बाज़ार लगा करता था, इन महानुभावों ने एक नया बाज़ार खोल डाला, और बुद्धि का करिश्मा देखिए कि लहमे-भर ही में सफ़ेद को भी काला कर डाला। और तो और, भला कोई रात में बाज़ार लगाने की बात भी सोच सकता था? यारों ने वह भी कर दिखाया। बलिहारी है इनकी!....

डायनासर और चोरबाजारियों से बेख़बर चपरासी बाहर स्टूल पर बैठा ऊँघ रहा था और प्रोफ़ेसर का लेक्चर जारी था—आपको इन चिह्नों से पता चलेगा कि इस जानवर के दो दिमाग़ होते थे। इनमें से एक तो अपने यथा-स्थान, सिर में होता था और दूसरा रीढ़ के नीचे के भाग में, और इन्हीं दोनों दिमागों के कारण डायनासर भूत या भविष्य, किसी के लिए भी चिन्तित नहीं होता था।....भई, वाह! असित धीरे से बुदबुदा उठा, लगता है, आज सक्सेना साहब का भी किसी ब्लैक-मार्केटियर से साबका पड़ा है। बराबर व्यंग-पर-व्यंग किये जा रहे हैं और ये लड़के हैं कि उन्हीं में परीक्षा के लिए 'इम्पारटेन्ट' ढूँढ़ रहे हैं और मीना पटेल तो फ़ाइल पर इस बुरी तरह से झुकी हुई है, मानो सक्सेना साहब पेपर ही आउट कर रहे हों और एक शब्द भी छोड़ देना मूर्खता होगी।

मीना पटेल!

कई शक्कर की मिलों के मालिक और शेयर मार्केट के किंग, मोती भाई पटेल की बेटी मीना! शक्कर की ही तरह झक और मीठी। एक-एक अंग साँचे में ढला हुआ। लगता है, उसके बाप ने बहुत सी शक्कर इकठी करके कभी मज़ाक के मूड में एक लड़की का ढाँचा बना डाला होगा और उसका नाम मीना रख दिया होगा।

असित को काफ़ी पुरानी एक बात याद आ रही थी, कॉलेज में कोई उत्सव था, जिसका आयोजन लड़कों ही ने किया था।

शाम की चाय हो रही थी।

असित की मेज़ पर उसके दो दोस्तों के साथ मीना भी बैठी थी। मीना उसी के पास क्यों बैठी, इसमें कोई रहस्य न रहा होगा, पर आज, जब वह उसी के बारे में सोच रहा था, तो उसे यह बात काफ़ी अजीब-सी मालूम हुई।

कहीं मीना उससे....नहीं, नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है? मीना करोड़पति बाप की बेटी और वह शायद कौड़ीपति भी न हो। लेकिन फ़िल्मों में तो क़रीब-क़रीब हमेशा ही ऐसे बेजोड़ जोड़े रहते हैं।....कुछ तथ्य तो होता ही होगा फ़िल्मी कहानियों में भी।....मेरा सोचना भी शायद सच हो सकता है....सच हो सकता है....सच होगा....सच है....है!

असित ने बलपूर्वक अपना ध्यान इस ओर से हटाया। पुनः वही शाम उसकी आँखों के सामने उपस्थित हो गयी। मीना ने चाय का प्याला उसकी तरफ़ सरकाते हुए कहा—लीजिए।

वह कुछ चौंक-सा गया, पर शीघ्र ही प्रकृतस्थ

हो प्याला ले लिया। बोला—धन्यवाद देने की मेरी आदत तो नहीं है, परन्तु यदि आप चाहें, तो आपको दे सकता हूँ!

जवाब में मीना कुछ न बोली और प्याला मुँह से लगा लिया, पर दूसरे ही क्षण मेज़ पर रख, झेंपती हुई-सी बोली—अरे! शक्कर तो है ही नहीं!—और फिर शक्करदानी में से शक्कर निकाल उसे देने को हुई, तो वह बोला—नाहक तकलीफ़ करती हैं, अंगुलियाँ ही डाल दीजिए न चाय में!

उसे इस समय भी मीना का बेहद शर्माया हुआ चेहरा याद आ रहा है और वह सोच रहा है कि क्या वह हमेशा से ही मीना को शक्कर की पुतली समझता रहा है?

एक बार फिर उसने लेक्चर सुनने की चेष्टा की। प्रोफ़ेसर कह रहे थे—बोर्ड पर खिंची आकृति से आपको डायनासर के दोनों दिमाग़ों की स्थिति का अनुमान लग गया होगा। इस अजीब जानवर के लिए किसी भी समस्या का समाधान करना बहुत ही आसान बात थी। यदि आगेवाला दिमाग़ कोई ग़लती कर जाता था, तो रीढ़ की तह में स्थित दूसरा दिमाग़ उसे सुधार लेता था और यदि कभी यह जानवर विपत्ति में पड़ जाता था, तो फ़ौरन ही उससे बच निकलने का रास्ता भी ढूँढ लेता था। कहने का तात्पर्य यह कि डायनासर में किसी भी प्रश्न के दोनों पहलुओं को शान्तिपूर्वक सोचने की विलक्षण शक्ति थी।....

असित किसी भी ओर मन एकाग्र नहीं कर पा रहा था। सोचने लगा, आज हो क्या गया है सक्सेना साहब को? और तो और, यह मीना भी इतनी बड़ी होकर व्यंगों को समझ नहीं पा रही है, नहीं तो अब तक खड़ी होकर कह न देती, सर! आप व्यक्तिगत आक्षेप कर रहे हैं। माना कि मेरा बाप चोरबाज़ारी करता है, पर इससे आपका क्या बिगड़ता है? शक्कर तो आपको मिल ही जाती है, हाँ, दाम ज़रूर कुछ ज़्यादा देने पड़ते होंगे। लेकिन हाँ, यदि आप इसी तरह बकते-झकते रहे, तो हम अपने गोदाम बिल्कुल नहीं खोलेंगे। फिर देख लेंगे आप क्या कर लेते हैं हम लोगों का!....

लेकिन मीना तो कुछ बोल ही नहीं रही है। इस तरह से 'नोट्स' लेने में व्यस्त है, जैसे उसे अपने बाप की भलाई-बुराई से कोई मतलब ही न हो?

असित की आँखों के सामने वे दिन घूम रहे हैं, जब वह मीना को पिकनिक या सिनेमा इत्यादि के लिए आमन्त्रित किया करता था। तब उसकी आर्थिक स्थिति भी ख़राब न थी।

हर बार मीना का जवाब रहता था, पापा को यह सब पसन्द नहीं है।....पापा चाहते हैं कि मैं उनके विरुद्ध न जाऊँ।....उनके विचार में कॉलेज के तमाम लड़के आवारे होते हैं और मुझे उनके साथ मेल-जोल न करना चाहिए। इत्यादि।

असित के मन में एक बात उठी, संभव है, इन्हीं बन्धनों के कारण मीना को अपना बाप अच्छा न लगता हो। ठीक भी तो है, क़ैद भी भला किसी को अच्छी लगती है! छुट्टी होने की देर नहीं और मीना की कार कॉलेज के पोर्टिको में दाख़िल, इसी प्रकार सवेरे भी बिल्कुल ठीक वक़्त पर कॉलेज पहुँचना।....आख़िर दोस्तों के बीच कुछ वक़्त गुज़ारना सभी को अच्छा लगता है, कुछ उनकी बातें सुनते हैं, कुछ अपनी सुनाते हैं, और फिर इस शक्कर की पुतली का सामीप्य तो सभी को पसन्द है। कितनी मिठास घोल देती है उनमें, जो इसके संसर्ग में आते हैं! लेकिन आ ही कितने पाते हैं! यही मिठास घोलना, शक्कर ख़र्च करना उसके बाप को अच्छा नहीं लगता और कदाचित इसी लिए मीना को भी अपने पापा से चिढ़ है। और हो न हो, यही कारण है कि वह सक्सेना साहब की बातों का प्रतिवाद नहीं कर रही है, नहीं तो भला अपने पिता की बुराई सुनना भी किसी को अच्छा लगता है।

वह पूर्णतया विचारों के भँवर में था।

मोती भाई पटेल अपने गोदामों में शक्कर इकट्ठी कर रहा है, क्योंकि वह उसकी 'मार्केट वैल्यू' बढ़ाना चाहता है। लेकिन मीना पर इतने प्रतिबन्ध क्यों? इतना अच्छा गाना जानती है, पर गा नहीं सकती, क्योंकि इससे मीना

का नाम होगा, जो मोती भाई को क़तई पसन्द नहीं है। किसी संगी-साथी से हँस-बोल नहीं सकती। उसका बाप डरता है कि कहीं उन लोगों की काली-कलूटी चमड़ी का साया उसकी लड़की की सफ़ेद चमड़ी पर पड़ उसे बदरंग न कर दे। और तो और, अब तो शायद मीना की पढ़ाई भी ठप्प होने जा रही है। पढ़ने से आँखों के नीचे काले दाग़ बन जाते हैं, जो काफ़ी बुरे दिखते हैं।

तात्पर्य यह कि इस शक्कर की पुतली पर उसका बाप अब रोक लगाने जा रहा है। बहुत हो चुका, अब वह दूसरों को मीना की मिठास से फ़ायदा न उठाने देगा! अब तो वह शीघ्रातिशीघ्र मीना की शादी किसी ऐसे आदमी से कर देगा, जिसके गोदामों के दरवाजे शक्कर के बोरों के भार से टूटने-टूटने को हो रहे होंगे। असित के क़िलों को ढहा देगा और मीना की हसरतों की तो ख़ैर उसे कोई फ़िक्र ही नहीं है। मीना का तो वह भविष्य बनाने जा रहा है न!

ससुर और दामाद एक ही थैली के चट्टे-बट्टे होंगे। ऐसे दामाद को पढ़ी लिखी लड़की की ज़रूरत नहीं होती, लड़की होना ही काफ़ी है। पढ़ी-लिखी, समझदार लड़कियों से तो ये लोग कुछ शंकित ही रहते हैं, कहीं रूस-चीन की बातें न करने लगें, नहीं तो फिर हो गया सब गुड़ गोबर!....

घंटे की आवाज़ से वह चौंक गया। देखा, क्लास धीरे-धीरे खाली हो रहा था। शक्कर की पुतली जा चुकी थी।

उसकी इच्छा उठने की नहीं हुई। वहीं हाथ के ऊपर सिर रखे बैठा रह गया गया। सिर में दर्द हो रहा था और रह-रहकर दिमाग़ में एक विचार घर करता जा रहा था, चतुर डायनासर शक्कर और मीना, दोनों की 'मार्केट वैल्यू' बढ़ा रहा है!

नज़र बाग,
सागर।
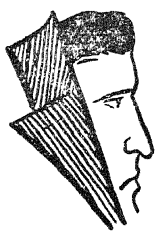
घर में रज़ाइयाँ सिर्फ़ तीन थीं और वे भी पुरानी कथरियों-सी, और ज़ोरों का जाड़ा पड़ रहा था। मँझले बहन-भाई एक रज़ाई में सोते और सबसे बड़ी सीतो तथा सबसे छोटी मुन्नी दूसरी में और तीसरी में उनका पिता, मास्टर ईशरदास। और उनकी माँ भागवन्ती खेसों को जोड़-जाड़कर, दरी साटकर कुछ ढंग निकाल लेती थी। पर कुछ दिनों से लगातार रात में सर्दी लग जाने से सारा-सारा दिन उसकी देह टूटती रहती थी, और हिलने-डुलने को भी उसका जी नहीं करता था।

छोटे तीन तो सो चुके थे, पर बड़ी सीतो अभी जाग रही थी। उसको वह खाँसी का दौरा पड़ा था कि ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की नीचे। यह नामुराद खाँसी इस जवान उम्र में ही उसका पीछा नहीं छोड़ रही थी। पूरे दो सालों से खाँसी-ज़ुकाम का यम उसके साथ चिपटा हुआ था। एक बार मास्टर ईशरदास ने अपने किसी शागिर्द के डाक्टर बाप से बिना फ़ीस सीतो का मुआयना कराया था। डाक्टर ने बतलाया था, इसके गले का आपरेशन बड़ा ज़रूरी है। यदि और कुछ समय तक इसी तरह असावधानी की गयी, तो इसके कानों को कम सुनायी पड़ने लगेगा और इसके फेफड़े पर भी असर हो सकता है। और डाक्टर ने प्रतिदिन सीतो को दूध, अण्डे, पत्तियोंवाली तरकारियाँ, फल और विटामिन की गोलियाँ खिलाने के लिए कहा था।

पर सीतो दो सालों से इसी तरह खाँस रही थी। बनफ़शा के अतिरिक्त वह उसके लिए और कोई दवा ला नहीं सका था। आपरेशन, प्रतिदिन दूध, अण्डा, फल.... दो सालों से, और तो और वह अपने सत्तर रुपये मासिक वेतन में से घर के लिए एक रज़ाई भी मोल नहीं ले सका था।

—सीतो !....सीतो !

सीतो ने न सुना, शायद खाँसी के दौरे के कारण।

डाक्टर ने कहा था, अगर गले का आपरेशन जल्दी न हुआ, तो इसके कानों पर भी असर हो जायगा।....

सीतो की माँ चौका-भांडा सँभालकर आ गयी थी, और अपनी चारपाई पर घिसी-पुरानी खेसियों और दरियों को जोड़ने में लगी हुई थी।

—सीतो की माँ, आज तू मेरी रज़ाई ले ले, और मैं खेसियों में सो रहूँगा।

—नहीं जी मैं तो दिन-भर घर में धूप सेंकती रहती हूँ। आप को तो भिनसार ही इन तीन कपड़ों में ही इतना रास्ता चलकर दूसरे गाँव पढ़ाने जाना पड़ता है। और फिर स्कूल से भी आगे राय साहब के बंगले पर ट्यूशन पढ़ाकर रात पड़े लौटना होता है। अगर रात में भी ज़रा आपको रज़ाई का सुख न मिले, तो सवेरे क्यों कर इस कठोर मेहनत की चक्की पीस सकोगे।

भागवन्ती आज दिन-भर जाड़े में बच्चों के कपड़े और जो भी छोटे-मोटे बिस्तर घर में थे, धोती रही थी, और उसके सभी जोड़ों में दर्द हो रहा था। फिर भी वह बारी-बारी अपने हर बच्चे पर साझी रज़ाइयों को ठीक-ठाक करने में लग गयी।

इन तीन कपड़ों में....और मास्टर ईशरदास को अपनी रज़ाई में पड़े ही कँपकँपी होने लगी। सवेरे-सवेरे वह तीन कोस चलकर अपनी नौकरी पर पहुँचता था। उसके पास कितने ही सालों से कोट कोई नहीं था, स्वेटर भी कोई नहीं था। स्कूल पहुँचकर पहले घण्टे में तो वह हाज़िरी लेने के लिए अपनी अंगुलियों में कलम भी नहीं पकड़ सकता था। पहले तो शाम को जल्दी लौट आने के कारण जाड़े से वह बच जाता था, पर अब उसे सैकड़ों सिफारिशों के बाद राय साहब के सुपुत्र की ट्यूशन मिली थी। स्कूल से छुट्टी हो जाने के बाद कोस-भर की दूरी पर वह राय साहब के बंगले में रायज़ादा को पढ़ाने जाता था। और रायज़ादा वहाँ पढ़ने को थोड़े तैयार बैठा होता था। कभी वह मटक-मटककर चाय पी रहा होता, कभी उसके लिए कोई विशेष पकवान बन रहा होता और पकने पर खाकर फिर कहीं वह मास्टर के पास आता। इस तरह चाहे रायज़ादा को एक घण्टा ही पढ़ाना होता था, पर पूरे दो घण्टे उसे राय साहब के बंगले पर रुकना पड़ता था। प्रतिदिन इस दो कोस के चक्कर, दो घण्टे की दिमागी थकान और शाम को लौटते हुए पुनः सवेरे की तरह दाँत किटकिटाने का मूल्य उसे पन्द्रह रुपये मासिक मिलता था। और कुल तीन महीने यह ट्यूशन चलनेवाली थी। पन्द्रह तियें पैंतालिस। एक रज़ाई आखिर बन ही जायगी सीतो की माँ के लिए, और सीतो के आपरेशन की फीस भी शायद निकल आय। मार्च तक......डाक्टर ने बतलाया था, आपरेशन हो सकता है।.......और सीतो के लिए पाव-भर दूध....

भागवन्ती ने अपनी खाट पर लेटते हुए कहा—ट्यूशन के पैसे आयें, तो ऊन मुझे ला देना। मैं तुमको एक स्वेटर ही बुन दूँगी। इतनी सर्दी तीन कपड़ों से बर्दाश्त कर जाते हो। भगवान् न करे, कहीं कुछ हो जाय।—भागवन्ती अपने बर्फ की तरह ठंडे बिस्तर पर सिमटी हुई काँप रही थी, और यह कँपकँपी उसकी आवाज़ में भी थी।

—मुझे स्वेटर की ज़रूरत नहीं, मैं एक कोट आज ले आया हूँ।

—कहाँ है कोट? मुझे तो दिखाया ही नहीं! और हाँ, तुमने ले कैसे लिया? ....अभी तो न तनख्वाह मिली, न ट्यूशन के पैसे....

सीतो को फिर खाँसी का दौरा आ गया। भागवन्ती उसकी खटिया पर उसकी छाती सहलाने चली गयी।

मास्टर ईशरदास ने कोट अपने घर के किसी आदमी को भी नहीं दिखाया था। घर में कोट पहनकर वह आता, तो भागवन्ती और सीतो के सिवा उसको और कोई शायद पहचान भी न पाता। तीनों छोटों ने जब से होश सँभाला था, कभी उसके पास कोट नहीं हुआ था। अपने ब्याह पर उसने एक गरम कोट सिलवाया था, जो कितने ही वर्ष चलता रहा। पर जब देश स्वतंत्र हुआ था और वे पाकिस्तान से इधर आये थे, वह गरम कोट पाकिस्तान में ही रह गया था। और उसके बाद नया कोट नहीं बन सका था। और आज वह कोट ले आया था, पर उसने यह कोट अपनी पत्नी को नहीं दिखाया था।

जो कोट पाकिस्तान रह गया था, उसके ब्याह का था, उसके दायीं तरफ के कालर के पास शौकीन, शहरी दर्ज़ी ने फूल खोंसने के लिए जगह बना दी थी। ब्याह के कुछ समय बाद ही उसकी पत्नी ने उसमें एक फूल खोंसकर उससे पूछा था—इस फूल का नाम जानते हो?—उसने जानते हुए भी जवाब में नकारात्मक ढंग से सिर हिला दिया था। और जवान भागवन्ती ने एक कटाक्ष

का सहारा लेते हुए कहा था—इश्कपेंचा !—और कैसी ललाई थी वह, जिसकी बाढ़-सी तब उसके गालों पर घूम गयी थी। ....इश्कपेंचा....इश्कपेंचा....

और आज मास्टर ईशरदास ने कोट भागवन्ती को नहीं दिखाया था। कल से वह स्कूल से लौटते समय पूरे रास्ते कोट पहनकर आता था, पर घर की तरफ मुड़नेवाली गली के पहले ही इसको उतारकर पुराने अख़बार में लपेट लेता था। और घर में प्रवेश करते ही आँख बचाकर छिपा देता था, क्योंकि यह कोट उसने नहीं सिलाया था।

जब वह छोटा था और स्कूल में पढ़ता था, तो उसके पिता ने उसे एक कहानी सुनायी थी कि एक लड़के ने पुरानी किताबें किसी से माँगकर पढ़ाई शुरू की और उसको तपेदिक हो गया। पुरानी किताबों में पुराने बीमार मालिक के तपेदिक के कीड़े पड़े हुए थे। और छुटपन में ईशरदास ने जब एक बार अपने पड़ोस से माँगकर कुछ मिठाई खा ली थी, तो उसके पिता ने पहले उसे दो थप्पड़ रसीद कर दिये थे, और फिर मिठाई की थाली मँगवाकर उसके सामने रखते हुए कहा था, खा ले, जो-जो जी में आये ! पर, ख़बरदार, अगर किसी से माँगकर कुछ खाया !

और यह गरम कोट उसे मिल गया था।

सीतो की खाँसी कुछ शान्त हुई। भागवन्ती ईशरदास की खटिया पर आकर बैठ गयी—बतलाओ, किस रंग का है कोट, उधार लिया है कहीं से ?

—नहीं, मैं तो ऐसे ही तुझे बना रहा था,—एक अकथनीय व्यथा को अन्दर समेटते हुए ईशरदास ने कहा, हमारे नसीबों में कहाँ है गरम कोट !

भगवान् भला करे, ऐसे न कोसा करो अपने नसीबों को !—भागवन्ती ने बड़ा बल समेटते हुए कहना चाहा, पर पता नहीं क्यों उसके आँसू निकल पड़े।

भागवन्ती बड़े सबल हृदय की नारी थी। वह ऐसे-वैसे कभी रोती नहीं थी। पर इस समय, पता नहीं क्यों, उससे आँसू न रोके जा सके, और उसने अपना सिर पति के सीने पर रख दिया। दोन के हृदयों के बीच इतने बरसों की पुरानी चीथड़े हुई रजाई थी। और भागवन्ती के गरम-गरम आँसू पहले रज़ाई में जज़्ब होते रहे, और फिर मास्टर के हाथों में, और वह रोती रही।

मास्टर ईशरदास ने बड़ी नरमाई के साथ अपने बच्चों की माँ को अपनी रज़ाई में कर लिया। नींद की तरह ही रोना भी अपने-आपही भागवन्ती को आता रहा। और इतने समय से उसकी हड्डियों में जमे हिम को जैसे यह रोना कुछ पिघला रहा था, देहतोड़ काम से पीड़ित, व्यथित उसके अंगों को जैसे यह रोना थपथपा रहा था।.... और जैसे वह कितनी ही रज़ाइयों में लिपटी, अलसायी पड़ी हुई थी।....और रज़ाइयों में रूई नहीं, धूप भरी हुई थी।....

*

सवेरे-सवेरे स्कूल जाने के लिए जब मास्टर ईशरदास घर से बाहर निकला, तो पुराने अख़बार में लिपटा हुआ कोट उसने बग़ल में रखा था। जाड़ा खूब था, तब भी उसने कोट गली पार कर लेने के बाद ही पहना। यद्यपि मिला हुआ कोट था, फिर भी खूब गरम था।

रायसाहब की पत्नी ने कोट देते हुए कहा था—यह रायसाहब ने विलायत में सिलाया था।—इसपर रायसाहब ने कहा था—अनपढ़ों के लिए सभी देश विलायत हैं। यह आस्ट्रिया में मैंने सिलाया था। मास्टरजी, साइकालाजी की साइंस सुनी है न, आस्ट्रिया में साइकालाजी के बड़े-बड़े गुरू रहते हैं।—और फिर रायसाहब साइकालाजी की एक मोटी-सी पुस्तक लेकर अपने कमरे की ओर चले गये थे।

रायसाहब की पत्नी एक देवी थी। यदि और कोई देता, तो मास्टर को कोट लेने का बिल्कुल ही साहस न होता।

परसों शाम काफी ज़ोरों की हवा चल रही थी, और वह सर्दी थी कि भगवान् ही बचाये, और फिर मास्टर की तबीअत भी ठीक नहीं थी। रायज़ादा को पढ़ा लेने के बाद काफी देर तक गर्म अंगीठी के पास से उठने का उसको साहस नहीं हुआ। और जब उठा, तो बराम्दे में

ही उसको एक-पर एक कितनी ही छींकें आयीं, और फिर एक चक्कर-सा आ गया।

भाग्य से ही पास से रायसाहब की पत्नी गुज़रीं। उन्होंने पूछा—क्या है, मास्टरजी?

—कुछ नहीं। ऐसे ही जरा सर्दी लग गयी है।—होश सँभालते हुए मास्टर ने कहा।

—और आपको जाना भी तो चार कोस है इस जाड़े में। कोई कोट-वोट पहन लिया कीजिए।

मास्टर ने पहले रायसाहब की पत्नी की ओर देखा और फिर नज़र नीचे झुका ली, और पता नहीं कैसी विवशता से उसके मुँह से निकल ही गया—कोट तो, माताजी, मेरे पास है नहीं। स्वेटर भी कोई नहीं है।

मास्टर की आँखों में देखकर रायसाहब की पत्नी कुछ काँप-सी गयी थी।

और पहले कभी मास्टर ने रायसाहब की पत्नी को माताजी नहीं कहा था, यद्यपि उसने यह कई बार सोचा था कि रायसाहब की पत्नी की मुखाकृति और स्वभाव, दोनों ही उसकी अपनी मृत माँ के साथ कितनी मिलती थीं?

वह उसको माँ की तरह अन्दर अंगीठी के पास ले गयी थी, और फिर आप उसके लिए चाय भिजवाने रसोई की तरफ चली गयी थी। कुछ देर तक अकेले ही वह अंगीठी सेंकता रहा था। फिर एक नौकर उसको गर्म-गर्म चाय और साथ में कुछ खाने को दे गया था। मास्टर ने बहुत मना किया, पर नौकर ने कहा था, बीबीजी का हुक्म है। और चाय का गिलास अनचाहे ही उसने पकड़ लिया था। चाय के ऊपर मलाई की एक मोटी परत तैर रही थी।

अभी चाय का गिलास खत्म हुआ ही था कि रायसाहब की पत्नी एक गरम कोट लेकर आ गयी थी—मास्टरजी, यह ले लीजिए आप।

—नहीं, माताजी।

—माताजी का हुक्म ही समझ ले लीजिए!

और जैसे ड्रिल करते हुए बायें या दायें घूमने का आदेश सुनकर बिना सोचे घूम लिया जाता है, उसी तरह से मास्टर ने कोट ले लिया था। और वह कुछ भी नहीं कह सका था, धन्यवाद का एक शब्द भी नहीं।

और इसी समय ऊपर से रायसाहब आ गये थे और आस्ट्रिया में कोट सिलाने की तथा साइकालाजी की चर्चा हुई थी।........

और परसों से वह घर इस कोट को पहनकर जा रहा था। कल से यह कोट पहनकर घर से आ रहा था। पर कोट घर में प्रवेश करने से पहले ही वह पुराने अख़बार में लपेटकर छिपा लेता था, और सवेरे घर से बाहर जाकर पहनता था। स्कूल के दूसरे मास्टरों को, जिनमें से अधिकांश उसी की तरह बिना कोट के थे, उसने झूठ-मूठ इस कोट के बारे में कुछ बतला दिया था। पर भागवन्ती को क्या बतलाये? रोज़ वह सोचता, ऐसे समझायेगा, नहीं ऐसे समझायेगा....पर अन्त में घर के पास आते ही वह कोट को पुराने अख़बार में लपेट लेता और घर जाकर चोरी के माल की तरह उसे छिपा देता था।

कल उसने यह कोट रायसाहब की पत्नी को लौटा देने का निर्णय कर लिया था, पर जब उसने शाम को पढ़ा लेने के बाद रायज़ादा से उसकी माँ के बारे में पूछा, तो रायज़ादा ने बतलाया कि माताजी मामाजी के पास अमृतसर एक सप्ताह के लिए गयी हैं।

वह इस कोट को माताजी के पास ही लौटा सकता था, माताजी का हुक्म ही समझ लीजिए....और किसी को तो दे नहीं सकता था। और अब वह उसके अमृतसर से लौट आने की प्रतीक्षा कर रहा था। सप्ताह-भर बाद आने वाली थी, इतने दिनों के बाद वह कहीं कोट वापस लेने से इन्कार न कर दे? और वह सीतो की माँ को क्योंकर समझायेगा? और एक सप्ताह दोनों बेज़ा पुराने अख़बार में छिपाकर....

इस कोट ने एक जाल-सा मास्टर ईशरदास के इर्द-गिर्द तान दिया था। उसने इस जाल में से अपने-आपको झिंझोड़कर दूसरी किसी तरफ ध्यान लगाने का यत्न किया। पन्द्रह दिन रायज़ादा की ट्यूशन करते हो गये थे, और ढाई महीने ट्यूशन और चलनी थी। पन्द्रह रुपये मासिक। पन्द्रह तिये पैंतालिस। पूरे पैंतालिस रुपये मार्च में परीक्षाओं के दिनों में उसे मिल जायेंगे। इस बार सीतो का आपरेशन ज़रूर कराना होगा, और सीतो की

माँ के लिए रज़ाई भी जरूर बनवा लेनी है।....रूई तो भागवन्ती ने कंजूसी कर-कराके जुटा ही ली है।

और फिर स्कूल पहुँचकर लड़कों को पढ़ाते हुए पूरा दिन उसको कोट का कोई ध्यान न रहा। पर आज जब भी कक्षा में किसी लड़के को खाँसी आती, तो सीतो उसकी आँखों के सामने आकर खड़ी हो जाती थी।... सीतो, तू अब रत्ती-भर चिन्ता न कर। बेटी, इस बार परीक्षाओं के बाद तेरा आपरेशन ज़रूर करवा दूँगा। वह मन-ही-मन अपनी आँखों के सामने घूमती हुई सीतो को कह देता।

पन्द्रह तियें पैंतालिस, पन्द्रह चौके साठ... उच्च स्वर से विद्यार्थी पहाड़ा दोहरा रहे थे। पन्द्रह तियें पैंतालिस........ और मास्टर ईशरदास सोचता रहा, जनवरी पन्द्रह रुपये; फरवरी, तीस रूपये और मार्च, पैंतालिस।....रज़ाई.... ज़रूर, आपरेशन भी ज़रूर....

सन्ध्या समय ट्यूशन पढ़ाते हुए रायज़ादा में उसे कुछ तबदीली महसूस हुई। शरीफ तो वह पहले भी नहीं था, पर आज उसकी आँखों में एक शरारत खेल रही थी। ईशरदास ने सोचा, माँ घर पर नहीं है, उच्छृंखल हो गया है।

मास्टर ने चुप होकर उसकी सवालों की कापी देखनी शुरू कर दी। पर रायज़ादा निष्क्रिय न बैठ सका, और मास्टर के कोट को हाथ से छूता रहा। फिर अकस्मात् ही उसने पूछ लिया—मास्टरजी, आज डैडी ने मुझे एक मैगज़ीन दी थी, उसमें एक बड़ा सुन्दर चुटकुला था। आपको सुनाऊँ ?

मास्टर ने कापी से आँखें उठाये बिना ही कहा—सुना।

—एक मास्टर ने क्लास में एक लड़के को ग़लत सवाल निकालने के अपराध पर कहा, कान पकड़ो। लड़के ने झटपट मास्टर के दोनों कान पकड़ लिये!— और रायज़ादा खूब ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा।

फिर रायज़ादा ने मास्टर से कहा—एक सवाल आपसे पूछूँ ?....पर हिसाब का नहीं है। बतलाइएगा ? —और रायज़ादा ने इस बार मास्टर की ओर से हाँ की प्रतीक्षा किये बिना ही सवाल पूछ दिया—भला मास्टर और नौकर में क्या फर्क होता है ?

रायज़ादा ने अभी सवाल पूछा ही था कि एक नौकर मास्टर ईशरदास को बुलाने आ पहुँचा—मास्टरजी, रायसाहब आपको अन्दर बुला रहे हैं।

मास्टर नौकर के पीछे-पीछे हो लिया। रायसाहब एक गोल कमरे में अपने मित्रों के साथ बैठे हुए ताश खेल रहे थे। इस कमरे में एक कोने में नौकर मास्टरजी को खड़ा कर गया।

बड़ा शानदार कमरा था। एक बार छुटपन में मास्टर ईशरदास लाहौर का अजायबघर देखने गया था। अजायबघर की ही तरह सजा हुआ था कमरा। दो अंगीठियाँ जल रही थीं। और बड़ी मीठी-सी गर्मी थी।

नौकर ने जाकर रायसाहब को सूचना दी। उन्होंने कुछ देर तक प्रतीक्षा करने का संकेत किया। इस बार की चाल बड़ी मुश्किल मालूम पड़ रही थी और वह सोच रहे थे।

मास्टर ईशरदास जहाँ खड़ा था, उसके बायें हाथ एक बहुत बड़ी शीशोंवाली आलमारी थी, और इस आलमारी में इतनी पुस्तकें थीं, जितनी उनके स्कूल की पूरी लाईब्रेरी में भी नहीं थीं। आलमारी के एक ओर अंग्रेज़ी में छपा हुआ लेबल लगा हुआ था, साइकालाजी।

पुस्तकों की ओर से हटकर मास्टर ईशरदास रायसाहब के कमरे में हो रही बातें सुनने लगा।

—रायसाहब, आजकल तो बहुत जाड़ा पड़ रहा है। दो-दो स्वेटर, कोट और ओवरकोट....फिर भी तीर की तरह चुभता है।

—लीजिए, भोले बादशाहो! आप तो पूरे कूपमंडूक हैं। यह भी कोई सर्दी है! न कुछ पीने का मज़ा, न पहनने का। सर्दी तो आस्ट्रिया में पड़ती थी। जनवरी, उन्नीस सौ तीस की बात है जब मैं वियना में....

मास्टर ईशरदास जिस कालीन पर खड़ा था, उसमें उसके पैर धँसते जा रहे थे। और कितनी बड़ी थी यह कालीन! तीन रज़ाइयों के बराबर, नहीं, तीन से भी बड़ी

चार रज़ाइयों के बराबर। चार रज़ाइयाँ....चौथी सीतो की माँ के लिए।

रायसाहब मास्टर के पास आ गये। मास्टर ईशरदास ने हाथ जोड़ लिये।

—यहाँ बैठ जाइए, मास्टरजी,—रायसाहब ने स्वयं बैठते हुए बग़ल की कुर्सी की तरफ इशारा करते हुए कहा—जो बात मुझे आपसे आज कहनी है, वह कुछ मुश्किल-सी बात है। पर, खैर, जो होना चाहिए, वह कहना ही पड़ेगा। आप बैठते क्यों नहीं ?

मास्टर ईशरदास बैठ गया। जिस कुर्सी पर वह बैठा था, उसकी गद्दी उसे अपने घर की सभी रज़ाइयों से मोटी और कहीं ज्यादा नर्म लगी।

—वह सामने की आल्मारी में जितनी पुस्तकें आप देख रहे हैं, ये सब साइकालाजी की पुस्तकें हैं। ये मैंने दिखावे के लिए नहीं रखी हैं। मैंने सब पढ़ी हैं। और एक तरह से इनका अर्क निकाल लिया है, अर्क ! और यह अर्क मैं अपने दैनिक जीवन में इस्तेमाल करता हूँ।—रायसाहब यहाँ कुछ रुके, उन्होंने मास्टर की ओर देखा और फिर अपनी बात जारी रखी—साइकालाजी की स्टडी यह बतलाती है कि जब तक शागिर्द के मन में मास्टर की गहरी इज़्ज़त न हो, वह कुछ नहीं सीख सकता। यहाँ, अब परसों से, जब से आपने वह कोट लिया है....

मास्टर ईशरदास को लगा, जैसे उसके नीचे पड़ी हुई गद्दी में से कोई तीखी सुई निकलकर उसके चुभ गयी हो।

—जब से आपने वह कोट लिया है, बच्चे का आप से इज्ज़त का रिश्ता टूट गया है। साधारण मूर्ख माता-पिता को तो इतनी बारीक-सी तबदीली का पता ही नहीं चलता, पर मैं हूँ साइकालाजी का माहिर, मुझसे भला क्या छिपा रह सकता है। अब लड़का आपसे कुछ भी नहीं सीख सकेगा। वह आज मुझसे पूछ रहा था, हमारे भंगी और मास्टर में क्या फर्क है ? लालू भंगी ने भी आपका कोट मांगकर पहना है, और मास्टरजी ने भी।

एक नहीं, गद्दी में से असंख्य सुइयाँ उभर आयी जान पड़ती थीं।....

मास्टर ईशरदास ने हाथ जोड़कर कहा—रायसाहब, वह तो माताजी ने हुक्म देकर मुझे पहनवा दिया था और दूसरे दिन से वह शहर ही चली गयीं।—और मास्टर इशरदास कोट उतारने लगा—मैं तो इन्तज़ार कर रहा था कि वह आ जायँ, तो उनको धन्यवादपूर्वक यह कोट वापस कर दूँ।—और मास्टर ने कोट उतारकर उसको तहाना शुरू कर दिया।

—नहीं, नहीं, मास्टरजी, कोट लौटने की तो बिल्कुल ही कोई ज़रूरत नहीं है। आप कोट पहन लीजिए।—और रायसाहब ने मास्टर की आँखों में आँखें डालते हुए फिर कहा—आप कोट पहन लीजिए,—और जैसे ड्रिल करते हुए हुक्म सुनकर बिना सोचे बायें या दायें घूम जाया जाता है, मास्टर ने कोट पहन लिया।

—अपने किसी बच्चे के लिए भी ज़रूरत हो, तो लड़के का कोई पुराना कोट ले जाइएगा। कोट की तो कोई बात नहीं।....हाँ, यह लीजिए पन्द्रह दिनों के साढ़े सात रुपये। कल से आपको पढ़ाने के लिए आने की कोई ज़रूरत नहीं। मुझे उम्मीद है कि आप सब-कुछ समझ-गये होंगे और बात की तह तक पहुँच जायेंगे। आपका कोई क़सूर नहीं, आपने बड़ी मेहनत की है। सिर्फ साइ-कालाजी....

मास्टर ईशरदास जब लौट रहा था, तो ऐसा जान पड़ रहा था कि एक आदमी नहीं, सिर्फ एक कोट जा रहा है।

पंजाबी से अनु० तिलकराज चोपड़ा
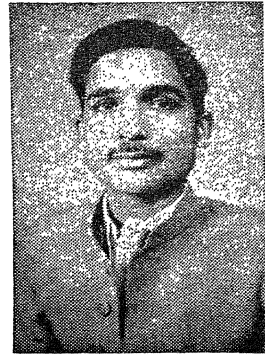
न जाने क्यों, उसका नाम नूरहसन रखा गया था। क्या उसमें जरा भी नूर था? अमावस की काली रात-जैसा रंग, चुसे हुए आम के छिलके-जैसे गाल, उसपर फटे हुए दूध की फुटकियों-जैसे मुहासों और फुन्सियों की भरमार। कबूतर की तरह छोटी-छोटी गोल-गोल आँखें, नाक के नाम पर मांस का तोले-डेढ़-तोले का लोथड़ा, जो बड़े बेढंगे तौर पर अपेक्षाकृत कुछ नीचे हटकर चिपकाया गया था और जिसमें नथनों के सूराख बड़े-बड़े और फैले हुए। ऊपरवाला ओंठ निचले ओंठ से काफ़ी निकला हुआ, ऐसा कि जबरदस्ती मुँह बंद करने पर भी तीन-चार सूत का अन्तर रह जाय। सिर पर गंज की शुरुआत और कद नाटा, साढ़े चार फुट से भी कम ही। पर इसपर भी लोग-बाग उसे नूरहसन कहते थे।

उसके पिता एक प्राइमरी स्कूल में मुदर्रिस थे, जो अब पाकिस्तान चले गये थे। उसकी माँ एक टुटपुँजिया वकील के मुंशी की बेटी थी, जो अब अल्लाह की प्यारी हो गयी थी। दोनों वंशों के नाम उजागर करनेवाले जो उसके दो भाई थे, उनमें से एक सींखचों के पीछे था, और दूसरा बिना अता-पता दिये घाट-घाट का पानी पी रहा था, और ताज़ी ख़बर यह थी कि हीरो बनने के चक्कर में आजकल वह बम्बई के फ़ुटापथों पर बसेरा डाले हुए है। अपने इस पुश्तैनी शहर और बरसात में सैकड़ों आँखों से आँसू बहानेवाले इस पुश्तैनी घर में बस अब वह अकेला ही था।

आजकल वह सिपाहीगीरी कर रहा था। इससे पहले उसने अपने नाना का पेशा अख्तियार किया था। पर वह इसलिए छोड़ना पड़ा, क्योंकि उसको यह गवाँरा न हुआ कि मुवक्किल से मिली उसकी तहरीरी की फीस वकील साहब स्वयं हड़प लें। उससे पहले जो उसने बिजलीघर में मिस्त्री का काम किया था, वहाँ से इसलिए हटना पड़ा था, क्योंकि एक दिन इंजीनियर ने उसे 'डैमफूल' कह दिया था, जिसपर वह लोहे का पाइप लेकर उसे मारने दौड़ा था। और इससे भी पहले उसे नहर की नौकरी से इसलिए निकाल दिया गया था, क्योंकि वहाँ के हुक्कामों ने इस बात में गुस्ताख़ी समझी थी कि वह ठीक साढ़े चार बजे काम छोड़ दे और कहे कि अब मेरे खेल का वक्त हो गया है।

यह तो कहो कि नये पुलीस कप्तान ने, जो स्वयं एक

अच्छा खिलाड़ी था, एक दिन मैच में उसको खेलते हुए देख लिया और उसके खेल पर ऐसा फ़िदा हो गया कि बुलाकर पूछा—वैल ! तुम क्या करता है ?

—बेकार हूँ ।

—वैल ! हम तुमको अपने यहाँ भरती कर लेगा । तुम सुबह लाइन पर हाज़री देगा और शाम को हमारे साथ खेलेगा ।

और आज इन्हीं कप्तान साहब ने बुलाकर उसे बताया था कि वह पाकिस्तान जानेवाली टीम के लिए चुन लिया गया है । लगभग तीन सप्ताह पूर्व उसे ट्रायल के लिए लखनऊ बुलाया गया था और वहाँ उसे तीन मैचें खेलायी गयी थीं । इन तीनों में वह खूब जमा था और निर्णयकों की आँखों में उतर गया था ।

—वैल ! तुम दस तारीख को लखनऊ पहुँचेगा । वहाँ तुमको दूसरा खिलाड़ी मिलेगा । हमारा मुबारकबाद लो !—कप्तान बोला था ।

फिर यह ख़बर नगर के खिलाड़ियों में बिजली की तरह फैल गयी थी कि नूरहसन पाकिस्तान टेस्ट मैच खेलने जा रहा है । जहाँ मित्रों ने आकर उसे बधाइयाँ दीं और पाकिस्तान में रहनेवाले अपने संबंधियों से मिल आने की नेक सलाह दी, वहाँ कुछ शत्रुओं ने उसके विरुद्ध भाँति-भाँति की आशंकायें भी प्रकट कीं ।

एक बोला—इसका चुनाव करके बड़ी भारी ग़लती की गयी है । यह वहाँ शर्तिया मिल जायगा । वहाँ इसके सब भाई-बन्धु ही तो हैं ।

दूसरे ने कहा—ज़रूर-ज़रूर यह दग़ा देगा ! मुसलमान रहते यहाँ हैं और भला चाहते हैं पाकिस्तान का ।

तीसरा यों बोला—मरदूद का खेल थोड़े इतना अच्छा है । यह तो कप्तान साहब की सिफ़ारिश काम कर गयी, नहीं तो क्या गनेश यों रह जाता ! गनेश अभी इसे वर्षों खेलना सिखायगा ।

और यह बधाइयाँ, सराहने, विरोधी प्रचार और ईर्ष्या तब तक चलते रहे, जब तक दस तारीख नहीं आ गयी और वह सुबह की गाड़ी से लखनऊ नहीं चला गया । इन बधाइयों और विरोधी प्रचारों के मध्य वह निर्लिप्त-सा रहा । इन दिनों न जाने वह कितना ऊँचा उठ गया था कि अपनी प्रशंसा सुनकर उसके चेहरे पर हर्ष की चमक न आती और बुराइयाँ सुनकर क्रोध की छाया न दौड़ती । दार्शनिक की-सी गम्भीरता उसके चेहरे पर सर्वत्र छायी रही थी ।

*

पेशावर में भारतीय टीम तीन दिन रही और इन तीन दिनों में उसने तीन मैचें खेलीं । पहली और दूसरी मैचें, जो क्रमशः पुलीस और क्षेत्रीय टीम से हुई थीं, उसने तीन-तीन गोलों से जीतीं । पर तीसरा मैच जो टेस्ट था, अनिर्णीत रहा । कोई भी टीम किसी पर कोई गोल न निकाल सकी । इस टेस्ट के दौरान में ही एक मनचले दर्शक ने नूरहसन के रंग, शक्ल और उड़ान की कौवे से तुलना कर उसे कौवे का उपनाम दे दिया, और यह फिर बिजली की तेजी से ऐसा फैला कि जबान-जबान पर वह कौवा हो गया और उसका असली नाम दब गया ।

लाहौर में टेस्ट के अतिरिक्त भारतीय टीम को चार मैचें खेलनी पड़ीं । इन चारों को भी उसने सहजता से जीत लिया । संयुक्त युनिवर्सिटी की टीम तो उससे पूरे छः गोलों से पिटी थी । पर यहाँ का भी टेस्ट अनिर्णीत ही रहा । प्रथम गोल भारतीय टीम के कप्तान ने नूरहसन के पास पर पहले दस मिनट में निकाल लिया था, पर कुछ ही देर बाद पाकिस्तान के दायें फारवर्ड ने गोल मारकर निर्णय को बराबर कर दिया । फिर दोनों ओर से सतत प्रयास हुए और गोल-क्षेत्र पर रहरह कर आक्रमण हुए, पर निर्णय न होना था, सो न हुआ । पेशावर में नूरहसन को जहाँ केवल कौवे का नाम मिला था, लाहौर में एक मसखरे दर्शक ने उसे चाँदी का एक कौवा पुरस्कार में भेंट किया । इसपर जो कहकहे उड़े और चुटकियाँ ली गयीं, वह देखते ही बनती थीं ।

तीसरा टेस्ट मैच जो अन्तिम था, कराची में खेला जानेवाला था । पाकिस्तान की ओर से यह प्रस्ताव रखा गया कि इस टेस्ट को तब तक खेला जाय, जब तक हार-जीत का कोई फ़ैसला न हो जाय । इस प्रकार यह निर्णय हो जायगा कि रबर किसने जीता । भारतीय टीम के मैने-

जर भाटिया ने हाकी बोर्ड के प्रेसीडेंट के नाम इस आशय का एक तार उड़ाया और वहाँ से रातो-रात स्वीकृति आ गयी।

*

कराची का वह मैदान खचाखच भरा था। चारों ओर सिर-ही-सिर दिखायी देते थे। पैवेलीयन और विशेष दर्शकोंवाली गैलरी में भी एक सीट खाली न थी। भारत के हाई कमिश्नर, पाकिस्तान के उच्च अफ़सर, सेक्रेटेरियट का स्टाफ़, एक-दो मंत्री, हाईकोर्ट के जज, पुलीस और फ़ौज के अफ़सर-जैसे विशेष जन वहाँ उपस्थित थे। कल खेल खेला जा चुका था और फिर भी आज भीड़ में रंचमात्र कमी न आयी थी। कल दोनों टीमों का परिचय प्रधान मंत्री से कराया गया था, जिन्होंने पन्द्रह मिनट तक मैच देखी थी।

कल खेल में हार-जीत का निर्णय दस मिनट का अतिरिक्त समय देने पर भी न हो सका था। मध्यान्तर से दो मिनट पूर्व जब पाकिस्तान के एक खिलाड़ी ने डी में घुसकर पुट कर दिया था और गोल हो गया था, तब यह लगा था कि रबर पाकिस्तान ने ले लिया। उस समय दर्शकों का उत्साह-उल्लास देखते बनता था। टोपियाँ उछली थीं, जूते आकाश मे फेंके गये थे, टीनें पिटी थीं और गोले दगे थे। दोनों काँटे की टीमें थीं, इसलिए ऐसी धारणा थी कि गोल लद जाने पर उतारे न उतरेगा।

खेल समाप्त होने से पाँच मिनट पूर्व नूरहसन को एक सुनहला अवसर मिला था। वह अग्र पंक्ति के एक खिलाड़ी के पास पर पाकिस्तान के फ़ुल बैक को चकमा देकर डी में धँस गया था। इस समय डी के अन्दर या तो वह था या गोलकीपर। मात्र पुश से गोल निकल सकता था। पर वैसा करते-करते वह एकाएक रुक गया था और गेंद छोड़कर पीछे हट आया था।

—मिस्टर, यह तुमने क्या किया?—कप्तान, जो उसके कुछ पीछे था, निकट आकर बुदबुदाया।

—कैरियड का फाउल हो गया था, उसने निर्भीकता से उत्तर दिया।

—पर यह तुम्हारी नहीं, अम्पायर की ड्यूटी थी।

—अम्पायर कुछ पीछे रह गया था, इसलिए वह बेचारा देख न सका था।

—हम गाँधी और नेहरू के वतन के हैं। हार-जीत हमारे लिए उतनी अहमियत नहीं रखती, जितनी सच्चाई और अपना अख़लाक!

यह-सब बातचीत एक मिनट के अन्दर हो गयी थी, क्योंकि गेंद कप्तान के इर्द-गिर्द नाच रही थी और वह उस ओर आकृष्ट हो गया था।

गेंद को लेकर बढ़ता हुआ कप्तान मन ही-मन बड़-बड़ाया, यह बेटा अख़लाक और सच्चाई को अहमियत देंगे! यह न कहो, बच्चू ने कुछ साट-गाँठ कर ली है।

पीछे खड़े भारतीय फ़ुलबैक ने निकट टहलते हुए साथी से निश्चिन्तता से कहा, क्योंकि गेंद उस क्षेत्र से काफ़ी दूर थी—सुबह जब इसका अब्बा इससे मिलने आया था, तो मैंने कहा नहीं था कि दाल में कुछ काला है। अब देख लो!

गोल पर खड़े गोलकीपर ने मन-ही-मन सोचा, लगता है, अच्छी पोस्ट का लालच काम कर गया!

जब से टीम कराची आयी थी, यह अफ़वाह उड़ी थी कि नूरहसन से पाकिस्तान का नागरिक बनने को कहा जा रहा है और इसके लिए उसे अच्छी नौकरी और टीम की कप्तानी-जैसे लालच दिये जा रहे हैं। इसी संबंध में कुछ लोग उससे मिले भी थे।

तभी मैदान में एकाएक एक हल्की-सी उत्तेजना फैल गयी, क्योंकि भारतीय टीम को एक शार्ट कारनार मिल गया था। गेंद लाइन पर से लगी, तेजी से एक हाथ से रोकी गयी, कप्तान का शाट लगा, तख्ते पर से आवाज़ आयी, एक लम्बी-सी सीटी बजी और भारतीय खिलाड़ी हवा में कुलाँचे भरने लगे। गोल उतर गया था। ऊफ! कुल दो मिनट का समय रह गया था। एक बहुत बड़ी हार बच गयी। राहत के साथ-साथ उनमें मरा उत्साह फिर जिन्दा हो गया। और अनन्तर जो अतिरिक्त समय दिया गया, उसमें वे मुस्तैदी से डटे रहे, बढ़-बढ़कर खेलते

रहे और यदि कोई गोल मार न सका, तो अपने ऊपर होने का कोई अवसर भी नहीं दिया।

आज सुबह कप्तान और टीम के मैनेजर में नूरहसन को लेकर गुप्त मंत्रणा हुई थी। कप्तान कल की घटना को लेकर इस मत का था कि नूरहसन को टीम में न रखा जाय। पर मैनेजर कुछ दूर की सोचनेवाला था। उसने इसमें टीम की बदनामी के साथ-साथ अनेकानेक गलत धारणायें फैलने की आशंका देखी। नूरहसन अब तक पाकिस्तान में अपने खेल से इतना सुप्रसिद्ध हो गया था कि बिना विशेष कारण के उसे टीम में न रखना संभव न था। विशेष कारण क्या हो सकता था? काफी विचार-विमर्श के बाद यही निश्चित हुआ कि कम-से-कम आज उसे और खेलने का अवसर दिया जाय।

सीटी बजी और आज का खेल प्रारम्भ हुआ। गेंद नाचने लगी, पास चलने लगे, डाज दिये जाने लगे, स्टिक का कौशल दिखाया जाने लगा। दोनों ओर के खिलाड़ी उत्साह से भरे थे। दोनों ओर से प्रयास होने लगे। एक खिलाड़ी को गेंद मिली। उसने चकमा देकर दूसरे के पास फेंकी और गोल की ओर दौड़ा। तालियाँ पिटीं। पर दूसरी ओर के खिलाड़ी ने डी के अन्दर प्रवेश करने से पहले गेंद रोक ली और हिट जड़ दिया। फिर दूसरी ओर के खिलाड़ी विपक्षी के गोल की ओर दौड़े। पास दिया, डाज देकर काटी, पर डी तक पहुँचते-पहुँचते गेंद यहाँ भी छिन गयी।

—इसमें कौवा कौन-सा है?—एक नये दर्शक ने समीप बैठे दर्शक से, पूछा।

—वह जो काला-काला-सा रेफरी के पास खड़ा है।

—वही, जो नंगे पाँव है?

—हाँ-हाँ, वही।

—ससुरे के पास जूते भी नहीं।

—गरीब मुल्क का है।

—गरीब मुल्क का नहीं, वहाँ मुसलमानों के साथ ऐसा ही सलूक होता है।

—अच्छा तो क्या यह मुसलमान है?

—हाँ, भाई। असली नाम इसका नूरहसन है।

गेंद नाचती रही। स्टिकों से पिटती रही। खिलाड़ी ले-ले कर बढ़ते रहे। चकमा देते रहे। छीनते रहे, छिनवाते रहे। गोल तक पहुँचने का लक्ष्य बनाते रहे।

नूरहसन ने पाकिस्तान के खिलाड़ी से गेंद छीन ली। गेंद लेकर बढ़ा। बढ़ा नहीं उड़ा। उसने फुलबैक को चकमा दिया और सामने खड़े विपक्षी को डाज देकर साथी के पास डी के अन्दर पास फेंका। पर साथी ठीक से बढ़ न पाया और पास बेकार गया। गेंद विपक्षी के खिलाड़ी के अधिकार में चली गयी।

—यार, यह तो बड़ा ख़तरनाक खेल खेलता है।

—मज़ा आ जाय अगर यह पाकिस्तान में आ जाय!

—ससुरे को जब अकल आये, तब न!

गेंद लेकर भारतीय टीम का कप्तान बढ़ा। पास फेंका, पास लिया और डी के अन्दर धँसकर पुनः पास फेंका। पर पास ग़लत था। वह वास्तव में नूरहसन को जाना चाहिए था, जहाँ से सीधा कट लगता था। पर कप्तान ने उसे जान-बूझकर पास नहीं खिलाया था।

—ओलम्पिक में, सुना है, हिन्दुस्तान सन २६ से बराबर जीत रहा है।

—पर अब उसकी यह बपौती ज़्यादा दिन न रहेगी।

—मौला ने चाहा, तो इस साल हमारी फ़तह है।

—भाई जान! देखिए, घड़ी में कितना टाइम हो गया है?

—हाफ टाइम होने में बस एक मिनट है।

तालियाँ गड़गड़ाने लगीं। बक अप-बक अप! शाबाश! के नारों से मैदान गूँज उठा। आगे बैठे हुए लोगों ने सामने लगी रस्सी पकड़ ली और उकड़ूँ-से होकर गोल की ओर झाँकने लगे। पीछे खड़े हुए लोग अपने अँगूठों के बल खड़े हो गये। पाकिस्तान का एक खिलाड़ी गेंद लिये हुए बहुत तेज़ी से बढ़ रहा था। भारतीय खिलाड़ी जब पीछे थे, तभी उसे अचानक गेंद मिल गयी थी। उसने फुलबैक को भी चकमा दे दिया था। अब वह डी में था और उसके सामने बस गोलकीपर। पर तभी एका-

एक खिलाड़ी जमीन पर लोटने लगा, साथ ही गोल कीपर। गेंद आउट में थी।

—उफ़, गजब हो गया!

—यह सरासर बेईमानी हुई।

—क्यों?

—देखा नहीं, मियाँ, स्लिप लगा गया।

—या अल्लाह!

—स्लिप लगाते हुए कमबख्त की टांग नहीं टूटी!

कमबख्त की टांग तो न टूटी, पर हाँ, पैर मुड़ने से मोच ऐसी तगड़ी आयी कि उठकर चलने से भी लाचार हो गया।

मध्यान्तर की सीटी बज गयी।

पाकिस्तान के खिलाड़ी एकत्रित होकर जब गोल निकालने की योजनाएँ बना रहे थे, तब भारतीय खिलाड़ी गोलकीपर को लेकर खड़ी हुई पेचीदा समस्या से जूझ रहे थे। गोलकीपर राज ने आगे खेल सकने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी थी। उसके पैर में सूजन दौड़ चली थी और कदम उठाये न उठता था।

—देखिए, चाहे हम हारें या जीतें पर इस हालत में हमें अपने रिजर्व खिलाड़ियों में से गोल के लिए कोई लेना न चाहिए।—नूरहसन ने कहा—उसमें हमारी बदनामी होगी। हममें से एक गोल पर चला जाय और हम बाक़ी नौ से खेलेंगे।

बात ठीक थी। मैनेजर भी इसी मत का था। अच्छी टीमें चोट-फोट-जैसी दशा में बीच में अपने खिलाड़ी नहीं बदलतीं। पर गोलकीपरी कौन करे?

—दिनेश, तुम गोल पर खेलोगे?—कप्तान ने पूछा।

—मैंने आज तक गोलकीपरी नहीं की।

—महावीर, तुम?

—नहीं।

—गनन, तुम?

—भई, मैं गोल रोक न पाऊँगा।

—तिवारी, तुम?

—उहूँ।

गोल पर खड़े होने पर खिलाड़ियों को अपना कौशल दिखाने का अवसर नहीं मिलता है और वे दर्शकों से प्रशंसा और वाहवाही नहीं लूट पाते हैं। गोल का स्थान अमहत्वपूर्ण समझा जाता है, पर जब गोल होता है, तो पूरी बदनामी गोलकीपर के ही सिर आती है। भला ऐसे स्थान के लिए स्वयं कौन तैयार होता?

जब सीटी बजने को ही थी, नूरहसन बोला—अगर कोई गोलकीपरी करने के लिए तैयार नहीं है, तो मैं करूँगा।—उसने अपने पैरों में पैड बँधवा लिये और गोल की ओर बढ़ गया।

कप्तान कुछ डरा। उसके चेहरे पर रंग आया और गया। कमबख्त कहीं ऐसा न करे कि गोल हो जाने दे। पर अब उसे वापस बुलाना भी ठीक नहीं। सीटी बज चुकी थी और वह सशंकित हृदय से बुली करने के लिए बढ़ गया।

खेल प्रारम्भ होते ही गेंद इस बार जो भारतीय क्षेत्र की ओर दबी, तो दबी ही रही। यदि वह कभी पाकिस्तान के क्षेत्र में गयी, तो मात्र मिनट-आधा मिनट के लिए।

—अब तो गेंद इधर ही दब रही है।

—अल्लाह को मंजूर हुआ, तो चंद मिनटों में गोल है।

—भाईजान, यह तो चाल होती है। पहले थका लिया, फिर चढ़ बैठेंगे।

—मियाँ उस्मान, अपना गोला तैयार रहे। सबसे पहले वही दगेगा।

—अबकी कौवे की काँव-काँव नहीं चलेगी। यह बेचारा गोल रोकना क्या जाने!

यद्यपि गेंद भारत की ओर ही दबी थी, पर वह कभी गोल तक न जाने दी गयी थी। आगे बढ़ते हुए पाकिस्तानी खिलाड़ियों को रह-रहकर पीछे हट आना पड़ता था। सफलता उनके हाथों में आ-आकर मुट्ठी से फिसल जाती थी। भारत के खिलाड़ियों ने आक्रमणकारी खेल छोड़कर रक्षात्मक खेल अपना लिया था।

पन्द्रह मिनट बीत गये और गेंद बिना निर्णय के नाचती रही।

—मियाँ, मैच क्या आज भी बराबर छूटेगी?

—मालूम तो अब यही होता है।

—कुछ वक्त शायद आज भी और दिया जाय।

—उस्मान, क्या यह गोला बिना दगे ही घर वापस जायगा?

—नहीं, यह कहता है, आज मैं दगकर ही रहूँगा।

पाँच मिनट और बीत गये।

—भई हफीज़, चाहे जीतें या हारें, इस वक्त तगड़े हमी हैं।

—वह देखो, इसरार को गेंद मिली। बढ़ मेरे मिट्टी के शेर, बढ़! शाबाश! हाँ, यहीं से पास! धत्! छिना बैठा।

पाँच मिनट और बीत गये। तभी एकाएक एक तगड़े हिट से पाकिस्तान के क्षेत्र में गेंद निकल गयी। इसी के साथ भारत का एक खिलाड़ी बढ़ गया। और इस बार जो वह बढ़ा, तो डी के अन्दर तक धँसता चला गया। फिर उसने तेज़ी से पुश किया, जिससे गेंद गोलकीपर के पैडों पर लगी, पर वह उछलकर गोल के अन्दर हो गयी। एक लम्बी-सी सीटी बजी।

भारत के हाई कमिश्नर ने उल्लास से ताली बजायी और साथ ही उनके स्टाफ़ ने। आखिर वे मानव थे। निकट बैठे हुए पाकिस्तानी विशेष जनों ने भी खिलाड़ी मनोवृत्ति का परिचय देने के लिए साथ दिया, पर बेमन और उतरे चेहरों से, क्योंकि वे भी मानव थे।

—यार, यह तो बहुत बुरा हुआ।

—डूब मरने की बात है।

—एक खिलाड़ी कम होते हुए भी गोल मार ले गये!

—यह सरासर अपने गोलकीपर का गधापन है।

सीटी बजी। बुली पुनः शुरू हुई। इस बार गेंद मिलते ही पाकिस्तान की ओर से गोल पर आक्रमण हुआ। कुल पाँच मिनट का समय शेष था। इस बात की सूचना देने के लिए झण्डा झुक चुका था। वे मरने-मारने पर आमादा हो गये। गोल पर शाट लगाया गया, पर एक भारतीय खिलाड़ी ने स्टिक द्वारा रोककर खतरा मिटा दिया।

एक मिनट बीत गया।

पाकिस्तान के कप्तान ने गेंद पाते ही इस बार डी के अन्दर से ६० के कोण से कट लगाया, पर भारतीय कप्तान ने उसे रोक लिया।

दूसरा मिनट बीत गया।

आँधी की तरह पुनः आक्रमण हुआ। डी के अन्दर स्टिकों की खटपट हुई। कई खिलाड़ी थे। गोल पर शाट पुनः लगा। पुनः भारतीय कप्तान ने उसे स्टिक-द्वारा विफल कर दिया। वह गोल के आगे इधर बराबर डटा था।

तीसरा मिनट बीत गया।

—भई, यह तो सब हमले बेकार जा रहे हैं।

—हाँ,भई, लगता तो यही है।

—कमबख्तों ने शुरू से ऐसा खेल खेला होता, तो खुद हारने के बजाय आधे दर्जन गोलों से हराया होता।

गोल पर शाट पुनः लगा, पर पुनः बाहर ही रोक लिया गया।

चौथा मिनट बीत गया।

पाकिस्तान के कप्तान को गेंद फिर मिली। वह फिर डी में बिजली की तरह धँस गया। दर्शकों की साँस रुक गयी। कलाइयों पर बँधी घड़ियाँ कह रही थीं कि यह अंतिम मिनट है। कप्तान ने शाट फिर जड़ा। इस बार वह बहुत तगड़ा था और सामने खड़े भारतीय कप्तान से न रुका, क्योंकि गेंद अचानक पृथ्वी से काफी ऊँची उठ गयी थी। नूरहसन हड़बड़ाकर ज़मीन से उछला। सिर कुछ झुका। चट की आवाज़ हुई और गेंद लौटकर डी के बाहर गयी।

ओवर की लम्बी सीटी बज गयी।

नूरहसन को पृथ्वी पर गिरते देखकर साथी दौड़े आये। तिवारी ने उसका सिर गोद में रख लिया। नूरहसन ने बेहोशी की ही हालत में लड़खड़ाते हुए कहा—गोल.... तो....न....हीं हुआ....अ....अपना वत....वतन, जीता.... न!....

उस समय आकाश में सैकड़ों कौवे मँडरा रहे थे, क्योंकि मैदान के पास ही एक कौवा अपने घोंसले की रक्षा एक बन्दर द्वारा नोच डाला गया था।

—बकसरिया,
शाहजहाँपुर (उ० प्र०)।

नयी धरती

उरूब

हुश !....बाप रे !....उफ़ !....

घर के अन्दर से चीख़ने-कराहने की आवाज़ रह-रहकर आ रही थी। अपने दोनों हाथ कमर-पीछे बाँधे कुंजप्पन बरामदे में चहलक़दमी कर रहा था। चीख़ने और कराहने की आवाज़ उसके दिल में बरमा की तरह छेद कर रही थी। चीखना जब सुनायी पड़ता, वह थोड़ी देर के लिए रुक जाता; जब बंद होता, तो फिर वह टहलने लगता। यों बरामदे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक घड़ी के पेण्डुलम की नाईं वह डोल रहा था।

विचार उसके मन में लहरों की तरह उठते थे और थम जाते थे। वह चाहता था कि अपने भावों को चुन-चुनकर देखे। सोच पाना ही मुश्किल काम था। वहाँ किसी को सृष्टि की कठोर पीड़ा हो रही थी। एक आत्मा से दूसरी आत्मा बाहर खिंची जाती थी। इन्सान कितने दर्द और पीड़ा सहने के बाद पैदा होता है! मनुष्य से सम्बन्ध रखनेवाली सारी बातों का क्या इसी तरह जन्म होता है?

हुश !....अम्मा ! उफ़ !....फिर वही चीख़।

कुंजप्पन को लगा, माधवी की आवाज़ लड़खड़ा रही है। उसके दिल में दर्द-सा हुआ। वह दोनों पैर नीचे लटकाये बरामदे में बैठ गया, मूक और निश्चल। उसे धुँधली चाँदनी भी विषादमूलक-सी लगी। न कहीं कोई आवाज़, न हरकत। कहीं पत्ती तक न हिलती थी। फिर भी जो दूसरा प्राणी अभी इस दुनिया में आनेवाला था, वह उसके सामने सारी दुनिया को गतिशील बना रहा था। उसे हर चीज़ बोलती-सी लग रही थी।

उस घर में सिर्फ़ तीन जने थे। प्रसव-पीड़ा से व्याकुल पत्नी, उससे विह्वल पति और दाई। और चौथी आत्मा उनके बीच अभी उतरनेवाली है। क्या वह आयेगी?.... जरूर आयेगी, अगर आ गयी,....ऐसी बातों का विचार करना बेकार है। फिर भी कुंजप्पन कभी-कभी ऐसा सोचने लगता है।

उसकी नज़र आँगन में खड़े केले के पेड़ों पर पड़ी, जिनके पत्ते फटकर झुक गये थे। फिर नारियल के छोटे पेड़ों पर उसकी नज़र गयी। ये पेड़ उसके बूढ़े बाप ने अपने काँपते हाथों से लगाये थे। मगर....जब वह मर रहे थे....कुंजप्पन आगे सोच नहीं पाया। उन पेड़ों को देख, उसे गुस्सा आ रहा था। पिता जब मरनेवाले थे, अपने लाडले बेटे से थोड़ा नारियल का पानी माँगा था। लेकिन वहाँ कौन था, जो उस आधी रात को नारियल के पेड़ पर चढ़े? उसे तो उस वक़्त पेड़ पर चढ़ना आता नहीं था। उसने अपनी पढ़ाई को कोसा। बचपन में ही उसे स्कूल भेजा गया था। पाँचवीं श्रेणी पास हो गया था। तभी से वह अपने परिवार का शरीफ आदमी बन बैठा था। फिर पेड़ पर चढ़ना उसे क्यों और कैसे आता!

पिताजी का वह अंतिम आग्रह था। वह क्या करता। उसने अपने अंगौछे का फंदा बनाया, आधी ऊँचाई तक

चढ़ा। उसकी छाती पेड़ से छिलकर दर्द करने लगी। छाती पर खरोंच लगी, और नीचे फिसल गया। दुबारा वह चढ़ने की कोशिश कर ही रहा था कि अन्दर से माँ ने बुलाया। वह दौड़ा-दौड़ा गया। तब तक नारियल के पानी की ज़रूरत ही नहीं रह गयी थी। 'अंतिम पानी' के बिना ही पिता चल बसे। उस घर में उस दिन रोना-पीटना रहा। मगर बेटे के दिल में अब भी उसकी कसक है। इसी लिए उस पेड़ को देख उसे गुस्सा आ रहा था। जिसने उसे लगाया था, उसी को उसका पानी न मिला!

ऊ...श...हाऊ...हु...श...फिर वही चीख़ अंदर से ज़ोर-ज़ोर से सुनायी पड़ रही थी।

उसने जेल में तकलीफ़ें झेली थीं, लाठी की मार खायी थी, तब भी ऐसा अनुभव, ऐसा घुटन का-सा अनुभव उसे नहीं हुआ था। वहाँ उसे कोई रास्ता दिखायी देता था। तकलीफ़ें उसके लिए कोई नयी चीज़ नहीं थीं। उसी समय से वे शुरू हुईं, जब से पिता चल बसे। घर-गृहस्थी का बोझ उसके कन्धों पर आ पड़ा। खेती के लायक थोड़ी ज़मीन थी। बस, यही उसकी जायदाद थी। जन्मी (केरल के भूस्वामी) का लगान और दूसरे देने के बाद उसे सिर्फ़ बचा-खुचा पुआल मिलता था। उसकी हथेली पर कुदाल से छाले पड़ जाते थे।

कुंजप्पन अपने खेत पर जब काम करता, आगे की ज़मीन पर उसकी नज़र पड़ती। सामंती परिवार की वह ज़मीन ऊबड़-खाबड़ परती पड़ी थी। वह उसे साफ़ करके धान बो सकता था। अच्छी पैदावार कर सकता था। वह खुद जवान था और होशियार भी। मगर वह ज़मीन थी पराई। वे लोग उसमें न खुद खेती करते थे और न किसी को करने देते थे। मिट्टी नरम और उपजाऊ थी। मगर वह कुआँरी पड़ी हुई थी। वहाँ आपस में मिली-जुली नसों-जैसे पौधे उगे थे। अजीब मिट्टी थी। वह बरसात में गीली हो जाती और गर्मियों में रेतीली। मौसम बराबर आते-जाते थे, मगर वहाँ धान का एक तिनका भी न लगता था। वह वंध्या-सी छोड़ी हुई थी। उसके एक कोने में साँप की बाँबी धीरे-धीरे बड़ी हो रही थी। काम के बीच में जब वह कुदाल के सहारे खड़ा हो, सोचता, यह ज़मीन कितनी अच्छी है! उसे धान का एक कण देंगे, तो वह सौ लौटायेगी। कम्बख्त, न खुद खायेंगे, और न दूसरों को खाने देंगे! वह थोड़ी देर रुकता और वहाँ की थोड़ी-सी मिट्टी उठाकर सूंघता। ज़मीन कितनी अच्छी है, मगर पराई है।

वह परिवार भूखा प्यासा किसी तरह चलता था। पौ फटते ही कुंजप्पन कुदाल अपने कन्धे पर रख, खेत में चला जाता। और उसकी माँ रसोईघर में। दोपहर को उसके आते-आते, वह कुछ पका लेती। कभी क्राब (माँड) हो, तो कभी और कुछ। माँ और बेटा दोनों पास-पास बैठे। उसे पीते। माँ क्राब से चावल छाँटकर बेटे को देती।

—नहीं, माँ तुम्हीं खा लो।

—नहीं खाओगे, तो कैसे तुम कुदाल उठाओगे? देखो, तुम्हारा शरीर कैसा हो गया! पिता ने तुमको कैसे पाला-पोसा था!

पुरानी स्मृतियाँ बुढ़िया की आँखें भर देतीं। अगर बेटा पूरा खाकर न जाता, तो वह ज़रूर उससे झगड़ पड़ती—अरे, तुम खाकर जाओगे कि नहीं?

वे दिन कभी के चले गये। कुंजप्पन ने एक लंबी साँस ली।

वही चीख़ अन्दर से रेंगती-सी आयी, ऊ...शू...हा उ...मुझसे...नहीं होगा!...

—क्या?—कुंजप्पन अनजाने में ज़रा जोर से पूछ बैठा।

—कुछ नहीं,—अन्दर से दाई बोली।

कुंजप्पन निश्चल बैठा रहा। उसके दिमाग में भाव कभी रेंगते-से और कभी दौड़ते-से आते। नारियल का पेड़ उसके सामने वैसे ही खड़ा था। उसको बेहद गुस्सा आया। नमकहराम कहीं का! कैसे बेहया की तरह खड़ा है!

जब पिता चल बसे, तो उसे घर-गृहस्थी बोझ-सी लगती थी। फिर भी माँ सहारा थी। आखिर एक दिन वह भी चली गयी। उसने बेटे का नाम रटते-रटते, अपनी आँखें हमेशा के लिए मूँद लीं। उस समय कुंजप्पन को लगा कि जीवन का कोई ममलब नहीं रहा। घर बिलकुल सूना-सा हो गया। कमरतोड़ वह काम अब

किसके लिए करें ? क्यों करें ? सिर्फ़ अपने एक पेट के लिए ? उसको पहले लगा, क्यों कहीं तीर्थयात्रा के लिए न निकल जाय ।....मगर फिर भी अपनी ज़मीन का वह टुकड़ा वह छोड़ नहीं पाया । मिट्टी की ख़ुशबू और नवाँकुरों का झूमना, उसे लगा, कि उसको जाने से मना कर रहे हैं ।

शाम को जब वह घर लौटता, अब क़ाव को ठंडा कर दरवाज़े पर कोई खड़ा नहीं रहता ।....अरे बेटा, यह पीकर जाओ, यह कहने के लिए भी कोई नहीं रहता । उसका दिल भारी-सा होने लगा । फिर भी उस ज़मीन का टुकड़ा छोड़, वह कहीं नहीं जा पाया ।

उसे लगा, कहीं कुछ कमी है । उस दिन की बात है । वह रात को लेटे-लेटे बहुत देर तक सोचता रहा और वह एक निर्णय पर पहुँच गया ।

दूसरे दिन अपने बहनोई के पास गया और बोला—घर पर किसी को रहना चाहिए न ?

उसका बहनोई कुंजप्पन का मतलब ताड़ गया । बहनोई और बहन दोनों ने मिलकर सोचा, हाँ, तीन गाँवों के परे एक लड़की है । काफ़ी मेहनती । देखने में भी बुरी नहीं ।

पाँचवें दिन कुंजप्पन लड़की देखने गया । माधवी कोई सोलह-सत्रह की थी । चेहरा साफ़, शरीर सुघड़ । घर और खेत, दोनों जगह जीतोड़ काम कर सकती थी । उसने माधवी की ओर देखा । माधवी ने शरम से अपना सिर झुका दिया । कुंजप्पन को लगा, लड़की एकदम छलाँग मार उसके दिल में बैठ गयी हो । वह घर लौटा, तो बहनोई से कहा—अच्छा, मुहूर्त ठीक कीजिए ।

रात को उसे नींद नहीं आ रही थी । वह कैसे बोलेगी ? क्या बोलेगी ? कैसे बुलाना चाहिए ? उसने धीमी आवाज़ में बुलाया, अरी ओ लड़की !....छि: ! दिल ने रोक लिया, अरी मेरी ला....डाली !...शरम से वह पूरा बोल ही नहीं पाया ।

उ....शू....अम्-मा........हुश-हाऊ....अंदर से वही चीख़ ज़ोर से सुनायी पड़ रही थी ।

कुंजप्पन ने चारों ओर देखा । चाँदनी फैल रही थी । छोटा-सा चाँद बादलों के झुण्ड में अपना मुखड़ा दिखा रहा था । पाँच मिनट । चीख ज़रा कम हो गयी । वह ठोड़ी पर हाथ देकर झुका बैठा रहा ।

माधवी जिस दिन घर आयी थी, वह दिन अब भी उसे ख़ूब याद है । घर में जान-सी आ गयी, रौनक-सी छा गयी । चौथे दिन जब नाते-रिश्ते के सभी वापस चले गये, कुंजप्पन ने अपनी कुदाल कंधे पर रख ली । माधवी एक टोकरी ले उसके साथ हो ली ।

—अरी, तुमको खाद देना आती है ?

—वाह, यह क्या कोई नयी बात है ?

और दोनों खिल-खिलाकर हँस पड़े । दोनों एक-साथ खेत चले । कुञ्जप्पन ने मिट्टी खोदी और मेंड लगायी । माधवी ने खाद दी । कई घंटे ऐसे गुज़र गये । एकदम नशीले और रसीले घंटे, आह्लाद और आवेश में !

—अरी !....

—ओ !....

—जब यह खेत पकेगा....

—तब ?

—तब....तब एक बच्चा देगी ?

माधवी का सिर शरम से झुक गया । वह बोली—तुम्हें क्या हो गया है ? मिट्टी ज़रा यहाँ फेंको तो ।—और उसकी आँखें खिल उठीं ।

उसके पसीने से तर चेहरे पर कुञ्जप्पन की नज़र थोड़ी देर जमी रही ।

खेत पक गया । धान के सुनहले पंख हवा में झूमने लगे । मगर माधवी ने बच्चा नहीं दिया ।

—अरी !

—ओ !

—ऊँ !

फिर दोनों कुछ नहीं बोले ।

अब भी कुञ्जप्पन को याद है, माधवी की वे दोनों आँखें !

कटाई और दौनी हो गयी । जन्मी की वसूली के बाद थोड़ा धान रह गया । दोनों चुप बैठे रहे ।

—अरी, यही होता हो, तो कुदाल क्यों पकड़ें ?

—काम न करें तो गुज़ारा कैसे ?

इस सवाल का कुञ्ञप्पन के पास कोई जवाब न था। दूसरे दिन दोनों काम के लिए निकले। ख़ूब काम करते रहे। फिर भी वह परिवार मुसीबतों की ओर फिसलता जाता था।

—अरी लड़की! देख तो, यह सोने-सी मिट्टी पड़ी हुई है!—एक दिन कुञ्ञप्पन माधवी से बोला—कम्बख़्त न ख़ुद खायेंगे, न दूसरों को खाने देंगे!

दोनों उस ज़मीन की तरफ़ देखते रहे, जो परती छोड़ी हुई थी। उसके कोने में बाँबी और भी बढ़ गयी थी।

लड़ाई आयी। चीज़ों का दाम बढ़ा। उस परिवार ने सुबह से शाम तक एँड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया। बिना खाये-पहने कैसे रहें? माधवी के गहने सभी गिरवी रखे गये। कुछ तो अवधि बीत जाने से दूसरों की तिजोरी ही में रह गये। फिर भी वह दुखी नहीं हुई और न ही फुस-फुसायी। कुञ्ञप्पन जब कभी दुखी होता, तब वह उसे डाँटती—क्या तुम पागल हो गये हो? आदमी रहे, तब न गहने!

यह वाक्य कुञ्ञप्पन को तसल्ली देता था। फिर भी अन्दर-अन्दर घुटता रहा। वह एक लड़की है न!

दिन-प्रति-दिन हालत बिगड़ती जाती थी। आशा की एक किरण भी दिखायी न देती थी। घरेलू चीजें भी गिरवी में जाने लगीं।

उन दिनों फ़ौज में भर्ती हो रही थी।

—अरी, मैं भी शामिल हो जाऊँ?—कुञ्ञप्पन ने माधवी से पूछा—चार पैसे मिलेंगे।

—तुमको क्या हो गया है?—माधवी ने उसे डाँटा—वह पैसा हमें नहीं चाहिए। बन्दूक लेकर आदमी को मारते फिरोगे। तकलीफ़ें....ये तो मामूली हैं।

कुञ्ञप्पन उसके सामने लाजवाब था। उसने अपनी कुदाल ली और खेत की तरफ़ चल दिया, पीछे-पीछे माधवी थी।

ओ!....हू!....ऊ!...श....या....भगवान!....ऊ!....श! घर के अन्दर से चीखना सुनकर कुञ्ञप्पन से बैठा नहीं रहा गया। उसने अपना सिर दरवाज़े के अन्दर घुसेड़ दिया और दाई को बुलाया। वह दरवाज़े के पास आकर बोली—डरो मत, अभी समय नहीं हुआ है।

वह बरामदे में आया, वैसे ही घूरता बैठा रहा। नारियल का पेड़ चाँदनी में नहाता-सा अब भी खड़ा था। उसकी हल्की-हल्की हिलती डालियाँ छोटी-छोटी परछाइयाँ बनाती जाती थीं। कुञ्ञप्पन के दिल में भूत की परछाइयाँ जैसे फैलती जाती थीं।

उस युनियन की बात अचानक उनके बीच आ गिरी थी। उसे लेकर पहले जो आया, उससे वह नाराज़ हो गया था।

यह आदमी कोई-न-कोई गड़बड़ी कर बैठेगा, माधवी को शंका हुई। वह आदमी फिर आया। कुञ्ञप्पन को बहुत-सी नयी बातें समझायीं। एक तरफ़ जन्मी ने ज़मीन परती छोड़ी है, दूसरी तरफ़ मेहनतकश भूखों मरते हैं। यह बात कुञ्ञप्पन के दिमाग़ में ठीक बैठ गयी। धीरे-धीरे उसकी आँखों से कोई मोटा परदा हटता-सा लगा। जो हो, सब मिलकर ज़मीन माँगें, तो क्या होगा? जन्मी क्या कर लेगा। कुञ्ञप्पन सोचने लगा।

—अरी! सुनो तो! युनियन की बात चल रही है।—कुञ्ञप्पन एक दिन माधवी से बोला।

—क्या?—माधवी ने सशंक पूछा।

कुञ्ञप्पन से सारी बातें माधवी को समझा दीं।

—मगर जन्मी मानेगा क्या?

कुञ्ञप्पन को भी यह शंका पहले से ही थी। फिर भी एक बार कोशिश करके क्यों न देखा जाय कि क्या होता है, यही उसका ख़्याल था।

आख़िर एक दिन वे-सब मिलकर, जिनकी हथेलियों में कुदाल पकड़े-पकड़े छाले पड़ गये थे, जन्मी के पास गये। जन्मी ने सब-कुछ सुन लिया, और अंत में पूछा—तुम लोग युनियनवाले हो क्या? मैं अपनी ज़मीन युनियन-शुन्यनवालों को देनेवाला नहीं!—यह कहकर उसने ज़ोर से ठहाका मारा, मानो कोई मजेदार बात कही हो।

वे लोग लौट आये। बैठक बुलायी गयी। चर्चा हुई। फिर माँग पेश की गयी। और फिर निराश हो लौट आये। इस तरह चर्चा और निवेदन के साथ दिन गुज़रते गये।

कोई फायदा नहीं हुआ। आखिर रास्ता क्या है? उन लोगों के बीच रहकर कुञ्ञप्पन में चेतना जागी। उसमें कहीं से नया बल, नयी जान-सी आयी।

वह आगे बढ़ा और बोला—एक रास्ता मुझे सूझता है। हमने अब तक शान्ति के साथ माँगा, कानून के मुताबिक काम किया। अब कानून के खिलाफ करेंगे। जबरदस्ती खेती करेंगे। बस!

—अच्छा, वही ठीक है,—जवानों ने कुञ्ञप्पन की ताईद की, मगर बूढ़ों की भौंहें तन गयीं।

—कुञ्ञप्पन, तुमने बड़ी आसानी से कह तो दिया, मगर तुम जानते हो, वे कौन हैं? पुलीस उनके इशारे पर है।

—भले ही हम-सबको वे मार डालें। आखिर कितने दिन ऐसे भूखों रहेंगे?

युनियन के प्रेसिडेंट ने ताकीद की कि काफी सोच-विचार करके यह काम करना चाहिए। चार दिनों तक चर्चा रही। हर बात में कुंजप्पन भी था। जब यह बोलने लगता, सब कान लगाकर सुनते। वह पढ़ा-लिखा है, बात जानता है। उसमें चेतना आ गयी थी।

जब वह घर आया, अपनी पत्नी से बोला—अरी, सब-कुछ तय हो गया है।

—क्या?

—जबर्दस्ती हल जोतना।

माधवी सब-कुछ सुनती रही, जो कुछ कुञ्ञप्पन बोला। आखिर उसने पूछा—तुम लोगों को हो क्या गया है? जन्मी चुप बैठेगा क्या? क्यों बला मोल लेते हो?

उस दिन तक वह माधवी की बात मानता था, लेकिन उस दिन कुञ्ञप्पन के लिए यह मुश्किल था। नयी ज़मीन मिलना, नया हल जोतना, नये बीज बोना, सिर हिलाते बैल, पीछे उसका चलना, यह दृश्य उसके मन में गड़ा-सा जाता था। उसे माधवी की सलाह भी हटा नहीं पायी।

—तुमको किसी ने बहका दिया है।

—अरी, तुम चुप रहो।

—चुप कैसे रहूँ? मैं कह ही तो सकती हूँ। मुसीबत में क्या तुम्हीं लोग अकेले पड़ोगे। जिसे बोलने की आदत है, वह कहीं चुप बैठ सकता है!

कुञ्ञप्पन ने ठहाका मारा और माधवी का गाल थप-थपाया।...उसे अब भी याद है, उसकी स्त्री उस दिन रात-भर लंबी-लंबी साँसें लेती रही। उसने सोचा, क्या करूँ, क्या न करूँ। मगर दूसरे दिन सुबह तड़के साथी आये। तब सोचने का मौका न रहा। कुदाल ले कंधे पर रखते-रखते माधवी थोड़ी बासी काब ले आयी और उससे बोली—यह पीकर जाओ!—ये वाक्य कुञ्ञप्पन के कान में आज भी गूँज रहे हैं।

उस दिन जैसी मेहनत उसने की, वैसी कभी नहीं की थी। सौ से ऊपर आदमी थे। सभी मिट्टी खोद रहे थे। उन लोगों ने मिट्टी खोदी, ज़मीन साफ़ की। साँप की बाँबी हटा दी। नयी धरती की सोंधी-सोंधी सुगंध वहाँ फैल गयी। दोपहर होते-होते वहाँ रतालू की गाँठें फैल गयीं।

उस समय किसी ने भी नहीं सोचा कि आगे क्या होगा। यह सही है या नहीं। अधिकार के बारे में कोई सवाल ही न था। ज़मीन थी, सब लोगों ने मिलकर जोती थी।

जब लौटा, कुञ्ञप्पन ने अपनी स्त्री को बुलाया—अरी लड़की!

—ओ!

—यह क्या? तुम मुर्दा-सी लगती हो?

—कुछ नहीं, कल काम नहीं है क्या?

—क्यों नहीं?

—मैं भी जाती हूँ।

कुञ्ञप्पन हँसता हुआ नहाने चल दिया।

उस रात को साला-साली आये और कुञ्ञप्पन को समझाया। उसे आनेवाली मुसीबतों से आगाह किया। कुञ्ञप्पन और माधवी दोनों ने कोई जवाब नहीं दिया। और दूसरे लोग भी समझाने-बुझाने आये। पर कुञ्ञप्पन ने जोर देकर कहा—हम लोगों ने निश्चय कर लिया

उसके बाद स्त्री ने पति को डाँटा नहीं, उसकी जिद को मान लिया।

रतालू की कोंपलें निकलीं। उस दिन जन्मी के कारिन्दे ने आकर पूछा—अरे कुञ्जप्पन, यह-सब क्या है ?

—जब भूख लगे, तो कुछ-न-कुछ पकाकर खा सकें, यह सोच हमने लगा दिया।

—हमने माने ? युनियनवालों ने ?

—हाँ।

—अच्-छा !

वह चला गया। आज कोई बला आयेगी, कुंजप्पन को शक हुआ। दूसरे दिन इंतजार किया। कोई नहीं आया। दिन गुज़रते गये। रतालू हरा-भरा होता गया। कंद पकने लगा। दो हफ्तों बाद उखाड़ने लायक हो जायेंगे, ऐसी आशा थी। उस दिन, जन्मी के कारिन्दे, चार-पाँच पुलीसवाले और कुछ नौकर आये। किसी ने कुछ नहीं कहा। उन लोगों ने कंद उखाड़ना शुरू कर दिया।

—कंद उखाड़ रहे हैं !—माधवी दौड़ी आयी और बोली।

—हाँ, कौन ?

—पुलीस भी है।

कुंजप्पन ने आकर देखा। वह सिहर उठा। वह अपने साथियों के पास दौड़ा-दौड़ा गया। देखते-देखते सभी दौड़े आये। उनसे सहा नहीं गया। कुदाली की हर चोट उनकी छाती पर लग रही थी। कंद क्या उखाड़े जा रहे थे, उनकी नसें खींची जा रही थीं।

—यह क्या कर रहे हैं ?

—हूँ ?—कारिन्दे ने सिर उठाया और घूरकर देखा। बस।

—यह अपने बाल-बच्चों के लिए हमने मेहनत की थी।

—ज़मीन क्या तुम्हारे बाप की है ?—कारिन्दे के सवाल में कानून का बल छलक रहा था।

किसान तैश में आ गये। बातें बढ़ गयीं। झगड़ा हो गया। आखिर मारपीट हुई।

उस घड़ी को कुंजप्पन ने याद किया। कहाँ से वह जोश आ गया ? मार के लिये मार ! पुलीस की लाठी बराबर पीठ पर पड़ती थी। फिर भी उन लोगों ने मुकाबला किया। बिल्कुल लड़ाई-सी ठन गयी। आख़िर उन पाँच पुलीसवालों को किसानों से हारकर भागना ही पड़ा।

कुंजप्पन घर वापस आया। माधवी ने उसकी तरफ़ देखा। वह फूट-फूटकर रो पड़ी। वह कुछ बोला नहीं। उस दिन रात को कुछ रतालू उखाड़ लाया। सुबह होते-होते उस गाँव में कोई पुरुष नहीं रहा।

दोपहर हुई। पुलीस आयी। ऐसे आयी, जैसे ईख के खेत में हाथी घुस आते हैं। रास्ते में जिस किसी से मिले, रोक लिया, सवाल किया और मारा। घर के अंदर घुसकर स्त्रियों को भी मारा। उन लोगों को माधवी ने, सबकी तरह, एक ही जवाब दिया—मैं नहीं जानती।

उसके बाद की कहानी कुंजप्पन को नहीं मालूम। उसको अब भी वे दिन याद हैं, जब वे जंगल में छुके-छिपे रहते थे, जहाँ लाल बत्तियाँ और काली परछाइयाँ घूमती-फिरती थीं। एक दिन उसने सुना कि पुलीसवाले माधवी को पकड़ ले गये।

वह खौल उठा। वह गाँव की तरफ़ दौड़ा और पुलीस के पंजे में पड़ गया। उसके बाद क्या हाल हुआ। मुक्के-पर-मुक्के, चारों ओर से, जब तक होश रहा, पड़ते रहे। जब होश आता, फिर घूँसे पड़ने लगते।....

वह जेल में बंद रहा छै महीने तक। उसके साथी भी सब धीरे-धीरे जेल में आने लगे थे। उन्हीं से मालूम हुआ कि सात दिन के बाद माधवी को छोड़ दिया गया। सात दिन ! ओफ़ ! कैसे सात दिन ? और उनके साथ ?

जेल से रिहा हो कुंजप्पन जब घर आया, तो उसने देखा, माधवी अपने फूले-उभरे पेट को लिये अकेली बैठी हुई है। वह उसके पास न दौड़ी-दौड़ी आयी, न उसको गले लगाया। जब वह नज़दीक आया, माधवी फूट-फूटकर रो पड़ी।

दोनों कुछ बोले नहीं। बोलें भी क्या ? पास-पड़ोस और नाते-रिश्ते के लोग कुंजप्पन के पास आये। वह गर्भिणी कैसे हुई, यह उसको समझाया। कुछ लोगों ने राय दी कि वह माधवी को छोड़ दे। उसे साथ रखना

कहानी

अपमान की बात है। कुंजप्पन का सिर चकरा-सा गया।

ऊश!....ओ!....हौ!....या!....भगवान!....

अचानक अंदर से एक चीख़ निकली। उससे कुंजप्पन के विचार टूट गये। उससे उसको नफ़रत-सी हुई। बच्चा पैदा होनेवाला है। किसका बच्चा?

उसके दुश्मन का है। उसको पालना-पोसना, उसे अपना बच्चा कहना....छिः!....वह बच्चा मुर्दा पैदा होगा! ....मगर पहली संतान! वह मुर्दा पैदा होगा और होना चाहिए। उसकी नसें चरमरायीं, जो पैदा नहीं होना चाहिए, वह पैदा होनेवाला है! माधवी बच जाये! उसने ईश्वर से भीख माँगी। मगर बच्चा?

उ!.श!.. हु!. य! जोर की चीख निकली। घर की छत हिल-सी गयी। वही चीख धीरे-धीरे सिसक में बदल गयी।

कुंजप्पन ने कान लगाकर सुना। अपने दिल की धड़कन अपने ही कानों में पड़ी। एक पल गुज़र गया। दाई ने दरवाज़ा ज़रा खोला और अपना सिर ज़रा बाहर कर कहा—बच्चा है! एक नारियल चाहिए! जल्दी करो!

बच्चा!...लड़का!...उसके कानों में गूँजता रहा। कुंजप्पन ने देरी नहीं की। अंगौछे से फंदा बनाया। आँगन में उतरा। उसी नारियल के पेड़ के पास गया। वह पेड़ पर चढ़ा। नारियल तोड़, नीचे उतरा। हाथ काँपे नहीं, छाती छिली नहीं। उसे उस समय ख़्याल हो आया कि पिता को जिस नारियल का पानी नहीं पिला पाया, उसी नारियल का पानी अपने दुश्मन के बच्चे को पिलाने लिये जा रहा है।

नारियल का पानी बच्चे के मुँह में जब लगा, वह रोने लगा। कुंजप्पन देखता रहा। छोटी, नन्हीं आँखें बार-बार इस प्रपंच को घूरती-सी लगीं। बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा, जैसे प्रतिशोध ले रहा हो।

दबी खुशी से माधवी ने कुंजप्पन की तरफ़ देखा। वह मुस्करायी। कुंजप्पन बच्चे के होंठ पानी से पोंछता रहा।

उस नयी जान की हलकी आवाज़ ने वहाँ की ख़ामोशी को तोड़ दिया। एक नयी पीढ़ी उग रही है। कुंजप्पन ने उस ज़मीन की तरफ़ देखा। वह उस समय भी परती पड़ी थी।

एस. वी. कालनी,
कोजीकोडे—४

मलयालम से अनु०
पी. एन. भट्टतिरि

कुकी

डुइठलिङ और ङाम्बङ

अनुसेन

[त्रिपुरा की पहाड़ी तथा इसके आस-पास की पहाड़ियों में कुकी जाति रहती थी। काछारी लोग इन्हें लुछाई कहते थे। यही अब लुसाई बन गया है। कुकी भाषा में इस जाति का नाम 'रे-एम्' है। 'लुछाई' शब्द का अर्थ है, सिर काटनेवाले (लु = सिर, छाई = काटना), ये 'खचाक्' भी कहे जाते हैं। पूर्वी बंगाल के लोगों ने इन्हें 'कुकी' नाम प्रदान किया है।

कुकी लोग पाइतु, बेलाठुट, थाङ्लुया, लाइफङ्, बङ्खई, मिजेल, नामते, छाल्या, फुन्, कुन्तेई, लेनतेई, जङ्तेई, राङ्चन, बल्ते, खरेङ आदि कबीलों में विभक्त हैं। पहले पाँच कुकी कबीले त्रिपुरा में बसते हैं। इनकी आबादी ६-७ हज़ार से अधिक नहीं होगी। इनमें कुछ ईसाई हो गये हैं। ईसाई कुकियों में शिक्षा का थोड़ा-बहुत प्रचार हो रहा है।

कुकियों के सरदार उनपर शासन करते हैं। आपसी झगड़ों और सामाजिक मामलों में इन्हीं का फ़ैसला अन्तिम माना जाता है।

कुकी ईश्वर को मानते हैं। ये ईश्वर को 'पाथियेन पृ' कहते हैं। कितने ही वनदेवों और देवियों की ये पूजा करते हैं। शिव-पूजा से मिलती-जुलती एक प्रकार की पूजा भी इनमें प्रचलित है। हिन्दुओं की शिव-पूजा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। पूजा में गोकुशी की जाती है। कुकी 'जूम खेती' करते हैं, अर्थात् जङ्गल जलाकर खेती करते हैं। खेती की जगह बराबर बदलती रहती है। खेती के पहले पूजा की जाती है और पूजा की सफलता पर ही उस साल की फसल वगैरह की सफलता निर्भर करती है।

कुकी नर-नारी अर्द्ध-नंग रहते हैं। स्त्रियाँ कपड़े बुनती हैं, स्फटिक

के गहने, हाथी और सूअर के दाँत के गहने, धनेश चिड़िया की चोंच और फूलों के गहने पहनती हैं। स्त्री-पुरुष, दोनों जूड़ा बाँधते हैं। स्त्रियाँ कान छिदाकर सूराख को खूब बड़ा बनाती हैं। सुराख जितना बड़ा होगा, सुन्दरता उतनी अधिक समझी जायगी।

कुकी सर्वभोजी होते हैं। शराब बहुत अधिक पीते हैं। ये शिकारी परिश्रमी साहसी और हिंस्र होते हैं। तीर-कमान, भाला और अब बन्दूक इनका प्रधान अस्त्र है। ये मछली-मांस भूनकर खाना पसन्द करते हैं। नमक के अलावा और किसी मसाले का ये उपभोग नहीं करते।

कुकियों में बाल-विवाह नहीं है। विधवा विवाह दोष नहीं समझा जाता। ब्याह जवान होने पर ही होता है। इनमें नाममात्र का दहेज प्रचलित है। ब्याह लड़के-लड़कियों की मंजूरी लेकर होता है। पुरुषों में बहुपत्नीत्व दिखायी पड़ता है, मगर पति के रहते स्त्री दूसरा ब्याह नहीं कर सकती। इनका पारिवारिक जीवन सुखी होता है।

स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर खेतों में काम करते हैं। 'जूम खेती' में हल और बैल की आवश्यकता नहीं होती।

पदस्थ कुकी के मरने पर उसकी लाश ९० दिनों तक लकड़ी के खोखले में या सन्दूक में बन्द रखी जाती है। इस अवधि में रोज सन्दूक के चारों ओर चौबीसों घंटे आग जलायी जाती है। मृत व्यक्ति की आत्मा की शान्ति के लिए प्रतिदिन काफी शराब और खाद्य पदार्थ उसके सामने रखा जाता है। थोड़ी देर के बाद उपस्थित लोग इन चीजों को बड़े समारोह के साथ खाते पीते हैं। ९० दिनों के बाद लाश गाड़ दी जाती है। लाश के साथ जितने नरमुण्ड गाड़े जा सकें, उतनी ही इज्जत बढ़ती है। पशु-पक्षियों का सिर भी लाश के साथ गाड़ा जाता है।

अब कुकी 'सभ्य' और 'शान्त' हो रहे हैं]

पहाड़ पर पहाड़ और फिर पहाड़। काले पहाड़ों का कहाँ अन्त हुआ है, कोई नहीं बता सकता। एक छोटे पहाड़ पर एक छोटा-सा गाँव बसा हुआ है। गाँव छोटा होने पर भी आबादी कम नहीं है।

दो सखियाँ गाँव में रहती थीं। वे एक-दूसरे को प्राणों से भी अधिक चाहती थीं। एक सखी के एक छोटा-सा बच्चा था, दूसरे के अभी कुछ नहीं हुआ था। निस्सन्तान सखी ने एक दिन दूसरी से कहा—सखी, मेरे अगर एक लड़की होती, तो तेरे डामूबङ के साथ उसका ब्याह कर देती। तेरा लड़का तुझसे भी अधिक सुन्दर है।

डामूबङ की माँ बोली—क्या कहना है! तेरे बेटी होगी, तो मेरे बेटे से ब्याहेगी, ऐसा वचन दिया है, तो इसे पूरा करना।

कुछ दिनों के बाद सखी के सचमुच ही बेटी हुई। लड़की क्या थी, आसमान का चाँद। लड़की का रूप बखाना नहीं जा सकता। माँ-बाप ने उसका नाम रखा,

ढुइठ्लिङ । अड़ोस पड़ोस के सभी लोग लड़की को प्यार करते, उसका रूप बखानते नहीं अघाते । इससे माँ-बाप की ख़ुशी की सीमा नहीं थी । धीरे-धीरे ढुइठ्लिङ सयानी होने लगी ।

देखते-देखते ढुइठ्लिङ और ङाम्बङ में स्नेह हो गया । ङाम्बङ को छोड़कर ढुइठ्लिङ और किसी के साथ नहीं खेलती । ढुइठ्लिङ को देखे बिना ङाम्बङ को चैन नहीं पड़ता ।

ढुइठ्लिङ की माँ ने सखी से कहा—देखा, सखी, हमारे बच्चे एक-दूसरे को कितना चाहते हैं ! एक के बगैर दूसरे से रहा नहीं जाता ।

ङाम्बङ की माँ ने कहा—हाँ, सखी, मैं रोज़ प्रार्थना करती हूँ, पाथियन (ईश्वर) इनकी रक्षा करे, इन्हें दीर्घ-जीवी बनाये, इनका जीवन सुखी हो !

एक दिन अनजाने जवानी ढुइठ्लिङ और ङाम्बङ की संगी हो गयी । दोनों में से किसी को यह बात मालूम नहीं हुई । ङाम्बङ ने इतना-भर जाना कि उसके जीवन का सारा आनन्द, सारा उत्साह न जाने कैसे ढुइठ्लिङ के साथ बँध चुका है, उसके बिना अब उसका जीना ही दूभर है । ढुइठ्लिङ को पहली बार मालूम हुआ कि उसके अनजाने ही ङाम्बङ उसका दिल चुरा ले गया है, उसके समग्र हृदय पर अधिकार कर लिया है । ङाम्बङ के बिना क्षण-भर भी उसके लिए जीना दूभर हो गया है ।

ङाम्बङ के सारे शरीर से शक्ति फूटी पड़ रही है और ढुइठ्लिङ के शरीर से मानो रूप की ज्योति फूट रही है ।

ङाम्बङ की माँ ने एक दिन सखी से कहा—सखी, अब देर किस बात की ? अब लड़की मुझे सौंपकर अपना वचन पूरा करो ।

सखी बोली—हाँ, सखी, मैं तैयारियाँ कर रही हूँ ।

उसी समय एक अफ़वाह उड़ी कि सर्प देवता के औरस से ङाम्बङ का जन्म हुआ है । इस बात को सुनकर ढुइठ्लिङ का पिता उसे अपनी लड़की देने को राज़ी नहीं हुआ । ढुइठ्लिङ की माँ बहुत रोयी-धोयी, लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला । दूसरे गाँव के एक लड़के के साथ ढुइठ्लिङ का ब्याह हो गया ।

प्रथा के अनुसार एक महीने के बाद ढुइठ्लिङ मैके आयी और जब ससुराल जाने का समय आया, तो वह किसी भी तरह जाने के लिए तैयार नहीं हुई । बहुत चिरौरी-विनती की गयी, डाँटा-फटकारा गया, लेकिन वह टस-से-मस नहीं हुई । अन्त में ढुइठ्लिङ बोली कि अगर ङाम्बङ उसे ससुराल पहुँचाने जाय, तो वह जा सकती है । नहीं तो वह कदापि नहीं जायगी । अन्त में माँ-बाप इस बात पर राज़ी हो गये ।

जिसे जीवन-संगिनी बनाने की उसने आकांक्षा की थी, जिसके बिना एक क्षण भी जीना उसके लिए दूभर था, उस प्राणों की प्रतिमा को दूसरे के हाथों सौंपने उसे साथ जाना पड़ेगा, ङाम्बङ के दुःख की सीमा नहीं थी, मगर प्यार ने अन्त में उसे साथ जाने के लिए बाध्य किया ।

ढुइठ्लिङ जा रही थी । ङाम्बङ उसके पीछे-पीछे चला जा रहा था । न जानें कितनी बातें, मन की, हृदय की, सुख दुःख की बातें होने लगीं । राह बात-बात में ख़तम हो गयी, मगर मानो अभी सब-कुछ कहने-सुनने को रह ही गया था । वे दोनों ढुइठ्लिङ की ससुरालवाले गाँव के निकट पहुँच गये । ङाम्बङ बोला—ढुइठ्लिङ, देखो, तुम्हारा गाँव दिखायी दे रहा है, अब मुझे छुट्टी दो ।

ढुइठ्लिङ बोली—नहीं, हमारे घर तक चलो ।

—मार डालने पर भी मैं तुम्हारे घर नहीं जाऊँगा । सिर्फ़ तुम्हारे लिए इतनी दूर तक चला आया ।

—तो चलो, खेत में जो कुटिया दिखायी दे रही है, उसमें बैठकर कुछ देर बातचीत करें । अभी शाम होने में बहुत देर है ।

एक झोपड़ी में बैठकर दोनों सुस्ताने लगे । उनकी बातें मानो ख़तम ही नहीं हो रही थीं । झोंपड़ी के सामने दो बाँस के पेड़ एक ही साथ उगकर बड़े हुए थे । हवा के झोंके से वे बीच-बीच में बिछुड़ते और फिर एक हो जाते । उन्हें देखकर ढुइठ्लिङ बोली—ङाम्बङ, देखो-देखो, दोनों बाँस हमारी ही तरह एक साथ जन्मे थे । उन्होंने समझा था, सारी जिन्दगी एक

साथ बिता देंगे। लेकिन हवा उन्हें अलग किये दे रही है। फिर भी वे अधिक आवेश से बार-बार मिल रहे हैं। हमारे प्रेम की भी अन्त में विजय होगी। तुम दोनों बाँस को काट लाओ और इनकी जड़ों से फावड़े की दो बेंटें बनाओ।

ङामूबङ दोनों बाँसों को काट लाया और फावड़े की दो बेंटें बना डालीं। एक बेंट को ठुइठ्लिङ ने उठा लिया और ङामूबङ के हाथों में देते हुए बोली—इसे तुम लो, यह मेरा स्मृति-चिह्न है। जब देखना कि बाँस फटने लगा है, तब जान जाना कि मैं बीमार हुई हूँ। जब देखना कि पूरी बेंट फट गयी है, तो जान जाना कि मेरे जीवन का अन्त हो गया है।

ङामूबङ ने दूसरी बेंट ठुइठ्लिङ को स्मृति-चिन्ह के तौर पर भेंट की।

अब विदा होने की बारी आयी। जब-जब ङामूबङ विदा होना चाहता था, ठुइठ्लिङ कहती—जरा और बैठो!

ङामूबङ ने देखा कि इस तरह ठुइठ्लिङ से विदा लेना सम्भव नहीं होगा। दूसरे, उसके पति के घर के पास बैठकर इस तरह बातचीत करना भी ख़तरे से खाली नहीं है। ङामूबङ ठुइठ्लिङ से बहाना बनाकर भाग निकला। ठुइठ्लिङ रोते-रोते ससुराल चली गयी।

ङामूबङ के सिवा ठुइठ्लिङ और किसी बात को सोचती-विचारती ही नहीं थी। गृहस्थी का काम-धाम वह करती जाती, मगर उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। देखते-देखते काल ने उसे आ घेरा। उसका वह रूप, वह स्वास्थ्य नहीं रहा। थोड़े ही दिनों में ठुइठ्लिङ को बिस्तर पकड़ना पड़ा।

भाग आने पर भी इधर ङामूबङ को शान्ति नहीं मिली। उसके हृदय में निरन्तर आग जल रही थी। वह रोज़ ठुइठ्लिङ की दी हुई बेंट को देखता। बेंट को देखकर वह विह्वल हो उठता। उसके बदन में जैसे एक आग जल उठती। फिर भी देखना उसे अच्छा लगता, बिना देखे नहीं रहा जाता। एक दिन ङामूबङ ने देखा कि फावड़े की बेंट फट रही है। उसके हृदय में मानो सैकड़ों आवाज़ें चिल्ला उठीं, तुम्हारी प्रिया बीमार है, वह नहीं बचेगी, वह नहीं बचेगी! ङामूबङ वहीं-का-वहीं बैठ गया।

ङामूबङ का गठीला शरीर काला और सूखकर काँटा हो गया। वह खाता नहीं, सोता नहीं, दिन-भर जंगल में बैठा न जाने क्या सोचता रहता। ङामूबङ का बाप चिन्तित हुआ, माँ सब-कुछ समझ गयी। अन्त में दोनों ने सलाह करके लड़के का ब्याह करने की चेष्टा की। लेकिन वह किसी तरह राजी नहीं हुआ।

एक दिन सवेरे ङामूबङ ने देखा कि ठुइठ्लिङ की दी हुई फावड़े की बेंट ऊपर से नीचे तक फट गयी है। उसे समझते देर नहीं लगी कि उसकी प्रिया का प्राण-पखेरू उड़ गया है। उसके हृदय में एक भयंकर तूफान उठा, किन्तु बाहर से वह बिल्कुल चुप हो गया। उफ़ तक न की।

ठुइठ्लिङ के मैके मौत की ख़बर लेकर आदमी आया। उसकी माँ फूट-फूटकर रोयी। ठुइठ्लिङ को अन्तिम बार देखने के लिए उसके नाते-रिश्ते के लोग रवाना हुए। ङामूबङ सब-कुछ देख रहा था, सब-कुछ सुन रहा था, फिर भी चुपचाप बैठा हुआ था।

रीति के अनुसार सब जाकर शव का नया कपड़ा ओढ़ाने लगे, मगर किसी भी कपड़े से ठुइठ्लिङ का शरीर ढँक ही नहीं रहा था। एक-एक करके ठुइठ्लिङ के पिता के गाँव के सभी लोगों ने कपड़े ओढ़ाये, मगर शव नहीं ढँका।

तब किसी को याद आया कि ङामूबङ नहीं आया है, हो सकता है कि उसके कपड़े से शव ढँक जाय। तब ङामूबङ को बुलाने के लिए आदमी दौड़ाया गया। वह आया। आकर उसने शव के ऊपर पड़े सारे नये कपड़ों को हटा दिया और अपनी चादर ओढ़ा दी। सहज ही में शव ढंक गया।

अब शव को शवाधार में रखने की बारी आयी। नाते-रिश्ते के सभी लोग चेष्टा करने पर भी शव को उठाकर शवाधार में नहीं रख पाये। अन्त में ङामूबङ ने शव को आसानी से उठाकर शवाधार में रख दिया। फिर शवाधार उठाने की बारी आयी, तो भी यही हुआ। किसी

से शवाधार न उठा, पर जब ङामूबङ ने उठाया, तो उठ गया। उसने ले जाकर सहज ही में घर के अन्दर रख दिया।

ङामूबङ वहाँ से अपने घर नहीं लौटा। दिन-भर वह जंगलों-पहाड़ों में लकड़ी काटता रहा। फिर सारी लकड़ी बटोरकर ले आया और उसे जलाकर ठुइठ्लिङ के शवाधार को सेंकने लगा। एक महीने के बाद शवाधार खोला गया, तो लोग देखकर हैरान थे कि शव गला नहीं था, पहले की ही तरह ज्यों-का-त्यों पड़ा था। फिर शवाधार बन्द करके मोम से लकड़ी का मुँह जोड़ दिया गया। पहले की ही भाँति फिर खाना-सोना छोड़कर ङामूबङ आग की गरमी से शवाधार को सेंकने लगा। एक महीने के बाद शवाधार फिर खोला गया। तब भी शव ज्यों-का-त्यों था। अब क्या था, गाँव के लोग ङामूबङ की तरह-तरह से निन्दा करने लगे। यहाँ तक कि किसी-किसी ने उसे मार डालने की भी धमकी दी।

घोर शोक से और आहार-निद्रा छोड़ देने के कारण ङामूबङ बहुत दुर्बल और क्लान्त हो गया था। अब उससे चुप नहीं रहा गया। एक दिन शव के सामने खड़ा होकर वह कहने लगा—ठुइठ्लिङ! तुम्हारे प्यार के लिए मैंने अपने सम्मान, लज्जा, सब-कुछ की तिलांजलि दे दी है, अब शायद प्राण भी देना पड़ेगा! ठुइठ्लिङ! मुझे बिदा दो!

तब आकाशवाणी हुई—जमीन पर कपड़ा बिछा दो! कपड़े पर जो-कुछ मिले, उसे मेरा स्मृति-चिह्न समझकर अपने पसन्द की किसी जगह पर गाड़ रखना!

ङामूबङ ने अपनी चादर जमीन पर बिछा दी। उसी दम ऊपर से ठुइठ्लिङ का कलेजा कटकर उसपर आ गिरा। बड़ी सावधानी से उसे लेकर ङामूबङ अपने गाँव चला आया।

ठुइठ्लिङ के पिता की जमीन सबसे अच्छी और चौरस थी। ङामूबङ ने उसके बीचोबीच कलेजे को गाड़ दिया। कुछ दिनों के बाद देखा गया कि वहाँ एक बड़ का पेड़ जमा है। साल-भर में देखते-देखते पेड़ इतना बड़ा हो गया कि उसने सारे खेत को ढँक लिया। पेड़ का काटना तो दरकिनार, किसी को उसकी डाल काटने की भी हिम्मत नहीं होती थी, लेकिन इधर डालों के काटे बग़ैर खेती की कोई सम्भावना ही नहीं रही।

सभी समझ गये कि अगर कोई डाल काट सकता है, तो वह ङामूबङ ही है। डालें काटने के लिए उससे अनुरोध करने के सिवा दूसरा चारा नहीं था। एक दिन ठुइठ्लिङ का पिता ङामूबङ के पास गया, मगर डाल काटने के लिए कहने में उसे बड़ी लाज लगी। इधर-उधर की बातें कर वह घर लौट आया। फिर ठुइठ्लिङ की माँ अनुरोध करने गयी, मगर वह भी मारे लाज के कुछ न कह सकी और लौट आयी। ठुइठ्लिङ की एक छोटी बहन थी। उसका नाम था तुइनू। अब डाल काटने की बात कहने के लिए तुइनू गयी। ङामूबङ के पास बैठी उसने बहुत देर तक बातें कीं, मगर डाल काटने की बात नहीं कह सकी। आखिर चलते समय दरवाजे पर खड़ी होकर तुइनू ने कहा—पेड़ की डालें काट दो,—और वह भागती हुई अपने घर चली गयी।

ङामूबङ सारी बात समझ गया। वह तनिक भी गुस्सा नहीं हुआ। उसने ठुइठ्लिङ के पिता से जाकर कहा कि अगले दिन वह पेड़ की डालें काटेगा। ङामूबङ के साथ बेटी का ब्याह न करना कितनी भारी भूल हुई, इसे ठुइठ्लिङ का पिता समझ गया। उसने सोचा कि अगर तुइनू को ङामूबङ के हाथों सौंपा जा सके, तो अच्छा हो। पति-पत्नी ने सलाह की। मगर ङामूबङ के सामने इस बात को कहने की किसी को हिम्मत नहीं हुई। फिर उन्होंने सोचा, तुइनू जवान हो चली है और देखने में भी सुन्दर है। अगर वह ङामूबङ का मन हर सकती, तो अच्छा होता। उन्होंने होशियारी से तुइनू को सारी बात समझा दी।

अगले दिन पेड़ की डालें काटने के लिए ङामूबङ खेत की ओर रवाना हुआ। तुइनू उसके साथ गयी। ङामूबङ बहुत बुद्धिमान था। वह पहले ही समझ गया था कि शीघ्र ही उसे परीक्षा का सामना करना पड़ेगा। अपनी मदद के लिए वह अपने दो-तीन समवयस्क मित्रों से कह गया था। दिन-भर मेहनत से वह पेड़ की डालें काटता और गाता रहा। इसी समय दूर से ङामूबङ के मित्र चिल्ला उठे—दुश्मनों ने तेरे गाँव पर हमला किया है,

लोगों को मार रहे हैं! और तू कायर, पेड़ पर बैठा गा रहा है!

ङामूबङ जल्दी से पेड़ से उपर पड़ा।

इधर पास ही तुइनू तरह-तरह की चीजें बनाकर ङामूबङ की बाट जोह रही थी। उसके उतरते ही तुइनू उसका हाथ पकड़कर बोली—आओ, तुमने बड़ी मेहनत की है। तुम्हारे लिए भोजन बना रखा है, चलो खाओ। आज तुम्हें घर नहीं जाने दूँगी, हम यही सुस्तायेंगे और रात आनन्द से गुजारेंगे।

ङामूबङ बोला—नहीं, यह सुस्ताने और भोजन करने का समय नहीं है। सुना नहीं? दुश्मनों ने हमारे गाँव पर आक्रमण किया है। तुम अगर मेरे साथ नहीं चलती हो, तो मैं अकेला ही चला।

अब तुइनू ने ब्याह की बात चलायी। ङामूबङ राजी नहीं हुआ; वह अपने घर चला गया।

इसके बाद ङामूबङ ने अपने आँगन में अपनी प्रियतमा के नाम पर एक फूल का पेड़ लगाया। कुछ ही दिनों के बाद फूल फूलने लगा। रोज़ सवेरे उठकर ङामूबङ देखता कि पेड़ में एक भी फूल नहीं है, कोई सारे फूल चुरा ले जाता है। छोटे भाई-बहनों को उसने डाँटा-फटकारा और सावधान कर दिया। अगले दिन भी फूल नदारद। भाई-बहनों पर फिर फटकार पड़ी। अगले दिन फिर फूल नदारद। अगली रात जागकर ङामूबङ पहरा देता रहा। रात के अन्तिम पहर में उसने देखा कि एक बनबिलाव फूलों को तोड़ रहा है। चुपके से जाकर ङामूबङ ने उसे पकड़ लिया और उसे मार डालने पर उतारू हो गया।

बनबिलाव बोला—मुझे मत मारो। जिसके लिए पेड़ लगाया है, उसी के लिए फूल तोड़कर मैं ले जाता हूँ।

—वह कहाँ है?

—स्वर्ग में।

—तुम मुझे उसके पास ले चलो।

—कोई जिन्दा आदमी वहाँ नहीं जा सकता।

—तुम आ-जा सकते हो और मैं नहीं जा सकता? अगर तुम मुझे नहीं ले जाते हो, तो मैं तुम्हें मार डालूँगा!

—अच्छा, मेरी पूँछ पकड़ो और आँखें बन्द कर लो।

ङामूबङ ने कसकर उसकी पूँछ पकड़ी और आँखें बन्द कर लीं। बिलाव उसे लेकर रवाना हुआ। बिलाव किस रास्ते से जा रहा है, इसे ङामूबङ नहीं जान सका। जो भी हो, जल्द ही वे ट्ठइठ्लिङ की कोठरी में जा पहुँचे। ङामूबङ को देखकर ट्ठइठ्लिङ अवाक् रह गयी! उसके आनन्द की सीमा नहीं रही।

बड़ी खुशी में कुछ दिन बीत गये। ङामूबङ को अब स्वर्ग में रहने में कष्ट होने लगा। ट्ठइठ्लिङ इस बात को समझ गयी। वह बोली—आदमी मरने पर स्वर्ग में आता है। धरती का शरीर यहाँ काम नहीं देता। तुम इतने दिन रह सके, यही अचरज की बात है। तुम अब घर लौट जाओ। तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे लिए चिन्तित हो रहे हैं।

ङामूबङ ने जवाब दिया—ट्ठइठ्लिङ! मेरे दिन किस तरह से बीत रहे हैं, इसे क्या तुम समझ नहीं पा रही हो? मुझे बताओ, मैं किस तरह जल्द-से-जल्द तुम्हारे पास आ सकता हूँ?

ट्ठइठ्लिङ बोली—अगर जल्द मेरे पास आना चाहते हो, तो घर जाकर गो-मेध करो। अगर देर से आना चाहते हो तो पक्षी-यज्ञ करो।

आँसुओं की धारा बहाकर प्रेमिक-प्रेमिका ने एक-दूसरे को बिदा किया। बनबिलाव ने ङामूबङ को उसके घर पहुँचा दिया।

बेटे को देखकर माँ-बाप बहुत प्रसन्न हुए। ङामूबङ ने गोमेध की बात कही, तो वे तत्काल राजी हो गये। खूब धूमधाम से यज्ञ हुआ।

यज्ञ हो जाने पर ङामूबङ अपनी कोठरी में जाकर लेट गया। तभी एक मुर्गी उड़कर घर के छप्पर पर जा बैठी। छप्पर से लकड़ी का एक टुकड़ा गिरा और ङामूबङ की छाती में धँस गया। उसी दम उसकी मौत हो गयी।

ङामूबङ की आत्मा अपनी प्रियतमा ट्ठइठलिङ की आत्मा से मिलकर चिरशान्ति से रहने लगी।

४४ लेक टेम्पुल रोड,
कलकत्ता।

मृत्युबाण

नारायण गंगोपाध्याय

गुनी के ऊपर शीतला सवार थी। गाँव के बाहर नीम का एक बड़ा-सा वृक्ष था। उसके नीचे की वेदी को दीप के तेल और मिटे सिन्दूर ने एक विचित्र रंग दे दिया था। दीप में से काला, जला तेल रह-रहकर नीचे टपक रहा था। सिन्दूर से रंगी वेदी का एक हिस्सा ऐसा लग रहा था, मानो वहाँ सिन्दूर नहीं, खून जमा हुआ हो। धूनी की गन्ध के मारे साँस अटक रही थी।

वेदी के ऊपर एक काला पत्थर था, जिसपर जगह-जगह सिन्दूर के दाग़ थे। यही माँ शीतला का प्रतीक था। पत्थर के बीचोबीच एक बड़ी-सी दरार थी, शायद कभी किसी ने उसे दो टुकड़े करने की कोशिश की थी। यह भी हो सकता है कि वह पत्थर कभी किसी मूर्त्तिपूजा के विरोधी की तलवार के कोप का भाजन बना हो।

फाल्गुन की धूप से उद्भासित दोपहर में भी नीम की विस्तीर्ण, शान्त छाया के नीचे अन्धकार का राज्य था। धूनी जल रही थी। गुगुल जल रहा था। पटपट की आवाज़ें हो रही थीं। काला धुआँ साँप की कुन्डली की भाँति चक्राकार ऊपर उठ रहा था। ढोल और नगाड़े की आवाज़ दिशाओं में गूँज रही थी। कासे की खन-खन आवाज़ किसी प्रेतनी के रुदन-सी प्रतीत हो रही थी। और इन-सबके बीच बैठा हुआ गुनी एक स्वर से मंत्र-पाठ कर रहा था। उस मंत्र-पाठ में कुछ संस्कृत के शब्द थे और कुछ बंगला के। अशुद्ध उच्चारण पर ज़ोर देकर वह चिल्लाता जा रहा था—हाड़ कट्टन, मांस चर्बन...

चारों ओर स्त्री-पुरुषों की एक छोटी-सी भीड़ जमा हो गयी थी। गले में आँचल डाले स्त्रियाँ खड़ी थीं और मर्द विस्फारित, विह्वल दृष्टि से देख रहे थे। ढोल, नगाड़े और कासे की आवाज़ में मंत्रपाठ अलौकिक लग रहा था। धूनी के धुएँ में जिनका सिर चकरा रहा था, जिनकी आँखें सिर्फ़ अन्धकार ही देख रही थीं, उन लोगों को ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो यह काला पत्थर हठात् एक भयंकर काले चेहरे में बदल जायगा और अपने बड़े-बड़े दाँतों से हाड़-मास चबाना शुरू कर देगा।

—ए गुनी! ज़रा ठीक से मन्तर पढ़ो, भैया! माँ का क्रोध कम न हुआ, तो जीना मुश्किल हो जायगा। —यह लोगों की भीड़ में से किसी काका तर अनुनय था।

गुनी ने एक बार पीछे की ओर मुड़कर देखा। धूनी की आग और नशे के कारण उसकी दोनों आँखें किसी

राक्षस की-सी प्रतीत हो रही थीं। चौड़ा, बड़ा, गोल मुँह, सिर पर के अधिकांश रूखे केश कपाल पर आकर बिखरे पड़े थे।

जिस तरह मलेरिया के रोगी को कँपकँपी आती है, उसी तरह गुनी के भी सारे शरीर में कँपकँपी आ गयी। वह सिहर उठा। धूनी में से दो जलती लकड़ियों को दो हाथों में लेकर वह उठ खड़ा हुआ। उसका सारा शरीर लड़खड़ा रहा था। फिर तांडव नृत्य का प्रारम्भ हुआ।

गुनी के ऊपर शीतला सवार थी। गले से गों-गों की एक वीभत्स दबी आवाज़ निकल रही थी। कभी-कभी पछाड़ खाकर वह मिट्टी में गिर पड़ता, फिर तुरत ही उठकर द्रुतगति से नाचना शुरू कर देता।

अचानक हाथ से छूटकर एक लकड़ी ज़मीन पर आ गिरी और टूट गयी। चारों ओर आग के टुकड़े बिखर पड़े। हटो-हटो कहते लोग पीछे हट गये।

गुनी फिर उठ खड़ा हुआ। नाच फिर शुरू हो गया। लेकिन इस समय पैर ताल के साथ ज़मीन पर नहीं पड़ रहे थे। पैरों में अब वह गति भी न थी। मुँह से निकलती आवाज़ भी विकृत और अस्वाभाविक हो गयी थी।

इस बार गुनी रुक गया। वह सिहर उठा। फिर ज़मीन पर ऐसे गिरा, मानो जान-बूझकर नहीं, बल्कि किसी ने एक जबर्दस्त धक्का देकर उसे पटक दिया हो। चारों ओर की जनता चञ्चल हो उठी। गुनी की आँखें मानो बाहर निकल आने को तत्पर थीं। भयार्त्त स्वर में वह गों-गों करता रहा, फिर फेन के साथ कुछ ख़ून मुँह से बाहर निकल आया। बलि दिये गये पशु की भाँति कुछ देर हाथ-पैर फेंकता रहा, फिर सब-कुछ शान्त हो गया, हाथ-पैर अकड़ गये। किसी लहर की भाँति सारे शरीर को हिलाकर अन्तिम दीर्घ साँस निकल पड़ी, नाक के सामने की कुछ धूल हवा में उड़ गयी।

हे-हे कहती जनता दौड़ पड़ी। लेकिन तब तक जो होना था, हो चुका था। गुनी मर कर पत्थर हो चुका था।

नगाड़े की आवाज़ बन्द हो गयी। कासे का आर्त्तनाद स्तब्ध हो गया। स्तम्भित जनता उसके चेहरे की ओर देखती रह गयी। डर के मारे किसी के भी गले से कोई आवाज़ न निकली।

एक ने कहा—गुनी ज़रूर अपवित्र शरीर से पूजा में बैठा था, इसी लिए....

धूनी के धुएँ में शीतला का पत्थर ख़ून-जैसा सिन्दूर लगाकर क्षुधार्त्त नेत्रों से देख रहा था। ऊपर वृक्ष के पत्तों से होकर साँ-साँ करती हुई हवा चल पड़ी, मानो कोई अदृश्य व्यक्ति दबी आवाज़ में गर्जन कर उठा—इस बार तुम लोगों की बारी है, गुनी की भाँति तुम लोग भी....

मुहूर्त्त-भर में वह स्थान जनशून्य हो गया। सब जान लेकर भाग निकले। सिर्फ़ असमाप्त पूजा की सामग्री के सामने गुनी का शव रह गया। मुँह के पास गिरा ख़ून धीरे-धीरे घना हो उठा। धूप और गुगुल का धुआँ एक काले पर्दे की भाँति आस-पास फैल गया।

२

गुनी का असली नाम था अभिराम दास, जात का वह चाण्डाल था।

चाण्डाल, वर्णसंकरों के असीम धैर्य की प्रतीक है यह जाति। अन्तर्जातीय विवाह को ब्राह्मण-चालित समाज कभी क्षमा नहीं कर सकता। ब्राह्मण की बेटी के अब्राह्मण को पति रूप में ग्रहण करने पर उनकी सन्तान होगी, वर्णसंकर, अन्त्यज। समाज के सारे रास्ते उनके लिए बन्द हो जायेंगे। इन्हें श्मशान में वास करना होगा, अखाद्य आहार करना होगा और मुर्दे के कफ़न से लज्जा निवारण करनी होगी। उनकी छाया पड़ने पर क्षण-भर में ही सत्रह बार के विश्वनाथ-दर्शन का पुण्य लुप्त हो जाता है।

मगर आजकल ये अन्त्यज श्मशान के बासी न रहे। इनमें कुछ-कुछ उन्नति हुई है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। इस समय ये लोग सभ्य लोगों के मुहल्ले के कुछ आप पास सरककर आ गये हैं। सुअर चराते हैं, सूप-टोकरी बनाते हैं। भद्र-समाज के लिए ये रोज़ के काम की चीजें हैं। कोई-कोई खेती करते हैं, तरकारी लगाते हैं और उन्हें बाज़ार में बेंचते हैं। दो-एक अच्छी साग-सब्जी के उपहार देने पर न्याय-रत्न और स्मृति-रत्न खुश-खुश ग्रहण

करते हैं, मगर हाँ, लेते वक्त उनपर थोड़ा-सा गंगाजल अवश्य छिड़क देना पड़ता है। इन-सबके अलावे उनमें एक और भी गुण है, जिसके कारण भद्र लोग उनसे डरते हैं, उनकी इज़्ज़त करते हैं। वे मन्त्रसिद्ध होते हैं।

अभिराम का बाप निधिराम इस गाँव का पक्का गुनी था। वह न जानता हो, ऐसा कोई मन्त्र न था। वह न कर सकता हो, ऐसी कोई झाड़-फूँक न थी। कुत्ते का काटा वह पानी छिड़ककर अच्छा कर देता। साँप के डँसने पर, पीठ पर पीतल का थाल रख, उसपर मिट्टी फेंककर विष उतार देता था। भूत सवार होने पर, निधिराम के सिवा और किसमें ताक़त थी, जो भूत उतारता। वह बाण मार सकता था, कटोरा चला सकता था, जलती हुई बाती आकाश में उड़ाकर किसी दूर के निश्चिन्त, निद्रित गाँव में आग लगा सकता था।

इसके अलावे वे वंश-परम्परा से शीतला के पुजारी थे। सिर्फ़ पुजारी ही नहीं, देवी की उनपर विशेष कृपा थी। इस देवी की पूजा के वे ही अधिकारी थे। किस अनादि काल से वे शीतला की पूजा करते आये हैं, यह किसी को पता नहीं। ब्राह्मण का प्रवेश वर्जित था। कहते हैं, कुछ दिन पहले एक तन्त्रसिद्ध ब्राह्मण उस गाँव में आये थे। चांडाल को देवी-पूजा करते देख आपे से बाहर हो गये। बोले—देवी अपवित्र हो गयी हैं! उन्हें शुद्ध करके ब्राह्मण से पूजा करवानी होगी।

गाँव के लोगों ने मना किया, रोका, पर उस तन्त्रसिद्ध ने एक न सुनी। देवी की शुद्धि की व्यवस्था करके वह पूजा पर बैठे। और दूसरे ही क्षण एक विचित्र घटना घट गयी। न जाने कहाँ से एक थप्पड़ की आवाज़ हुई। अदृश्य हाथ का थप्पड़ खाकर वह तन्त्रसिद्ध ब्राह्मण उलटकर जो गिरे, फिर उठे नहीं।

उस दिन से पूजा करने का स्थायी अधिकार चाण्डालों को ही मिल गया। उन लोगों की इज़्ज़त बढ़ी, इतज़्ज़ से भी ज्यादा ख्याति बढ़ी। गाँव के ऊँची जाति के लोग उनकी देवी की पूजा करने लगे, उनके हाथ का प्रसाद सिर-आँखों पर लेकर खाने लगे। और चेचक की चिकित्सा के मामले में तो उन लोगों का अधिकार सर्वोपरि था।

एक दिन न जाने कहाँ से एक चुड़ैल उतारकर निधिराम घर आया और दोपहर के समय गटगट एक घड़ा पानी गले के नीचे उतार डाला और मरा भी दो घन्टे के ही अन्दर। दो-चार लोग कहने को 'लू' कह गये, पर सबों ने विश्वास कर लिया कि निधिराम की मृत्यु चुड़ैल के हाथों हुई।

उसी का लड़का था अभिराम। बाप की ही तरह इसकी भी मौत अचानक ही हुई। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, यह जैसे इतिहास की सहज और स्वाभाविक धारा थी। लेकिन इसकी भी कहानी है।

(३)

उन दिनों बंगाल के ऊपर से दुर्भिक्ष का तूफान गुज़र गया था, उसकी निशानी बच गयी थी।

जिनकी तक़दीर अच्छी थी, वे मरकर भी बच गये। लेकिन जो मर न सके, उनकी दुर्गति की कोई सीमा न रही। हर गाँव श्मशान, और गाँव-गाँव में श्मशान के भूत-सरीखे आदमी भटकने लगे। मुट्ठी-भर कंकड़-मिला भात उनका सम्बल था। दो गज़ का फटा चिथड़ा ही लाज का आवरण था। मानो रातोरात प्रपञ्चमय इस संसार को सब पहचान गये थे, देह और मन से, वेश और वास से सब अनासक्त थे, वैराग्य प्राप्त कर चुके थे! आँखों की दृष्टि अर्थहीन थी, जैसे इस पृथ्वी से कोई मोह न था, जैसे सब तन-मन से ब्रह्मलोक में निहित होते जा रहे थे!

शास्त्रों में कहा है कि जब दुख और विपत्ति सिर पर मंडराये, तो छुटकारा पाने का एक ही रास्ता है, वह है, साधु-संगत। ईश्वर करुणामय है, उसने साधुओं के एक झुण्ड को उधर भेज दिया।

दुर्भिक्ष के समाप्त हो जाने पर, देश के लोगों को दुर्भिक्ष के हाथों से बचाने के लिए, जहाँ-तहाँ सरकारी धान के गोदाम खुलने लगे। महाजनों के विकराल ग्रास से देश को बचाने का कठोर सेवा-व्रत लेकर, लाइसेन्स-प्राप्त सरकारी एजेन्टों का दल आ खड़ा हुआ! उन लोगों के साथ सिविल-सप्लाई इन्सपेक्टर आया, बोट अफसर आया, एनफोर्समेन्ट आया और कौन नहीं आया!

यहाँ से बारह मील की दूरी पर धान-चावल की एक
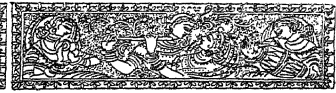
बहुत बड़ी मण्डी थी। उसके पास से होकर जो नदी गयी थी, उसमें वर्षा के समय को छोड़कर नाव कभी नहीं चलती थी। घुटने तक पानी के ऊपर जिस परिमाण में कंकड़-पत्थरों का स्तूप जमा हो जाता था, उसपर से मोटर चला लेना आसान था, लेकिन नाव नहीं। अतएव....

अतएव रास्ता तैयार करना होगा।

कृष्णप्रसाद ने इसका ठीके लिया। ठीके के काम में पाँचों अँगुलियाँ घी में होती हैं। बस, टेन्डर लेने-भर की देर थी।

धान के खेतों को पार कर कृष्णप्रसाद साइकिल पर आया। गाँव के बाहर नीम के वृक्ष के नीचे रुककर सिगरेट सुलगाया। ठंडी छाया और ठंडी हवा बड़ी अच्छी लग रही थी।

—हुज़ूर, आप ?—एक लम्बा सलाम ठोंककर अभिराम ने सविनय पूछा।

—मैं ?—बायें हाथ को हाफपैंट की जेब में ठूँसकर, सिगरेट का धुआँ उड़ाता हुआ कृष्णप्रसाद बोला—सरकारी आदमी हूँ। सड़क बनवानी है यहाँ। अठारह मील की सड़क। यहाँ से होकर सरकारी लारी जायगी। गाड़ी जायगी, समझे ?

—जी, रास्ता, सड़क ?

—हाँ-हाँ, सड़क!—कृष्णप्रसाद तोते की तरह रटी हुई बात बोलता गया—यह-सब देश की भलाई के लिए होगा। चावल की ईज़ी सप्लाई होगी, गाँव की उन्नति होगी, भविष्य में दुर्भिक्ष का रास्ता बन्द हो जायगा। बिल्कुल पक्का बन्दोबस्त होगा।

अभिराम विस्मित नेत्रों से देखता रह गया। कृष्णप्रसाद जैसे आकाश से बातें कर रहा था। देश को दुर्भिक्ष के हाथों से बचाने के लिए हाफपैंट पहने साइकिलधारी एक देवता स्वर्गलोक से पृथ्वी पर उतर आया है! पत्थर की शीतला शान्त और सोयी हुई थी, मगर ये देवता जैसे जाग्रत थे, वैसे ही मुखर भी।

इस गाँव से होकर सड़क निकलेगी, भला किसी ने कभी सोचा भी था ? जिस जगह से काला धुआँ छोड़ती हुई रेलगाड़ी जाती है, जिसके हर चक्के में सभ्यता का गर्जन होता है, वह स्थान यहाँ से बहुत दूर था। वहाँ तक पहुँचने के लिए एक मरियल नदी, तीन गाँव, छै खेत पार करके एक कोस जिला बोर्ड की सड़क पर चलना पड़ता था। यहाँ के मनुष्यों ने अपना घर बसाया था जीवन के कूल-किनारे से दूर, एक टापू के बीच में। एक प्राइमरी स्कूल था, वह भी तीन मील की दूरी पर। रात के अँधेरे में बहुत दूर से जिस तरह महानगरी के ऊपर एक ज्योतिर्मण्डल दिखायी देता है, उसी तरह यहाँ से भी नागरिक जीवन के अदृश्य ज्योति-संकेत का अनुभव किया जा सकता था। फिर भी यहाँ से टैक्स वसूला जाता था। यहाँ आमदनी का रास्ता नहीं था, मगर नयी वस्तुओं पर लगाये करों का प्रभाव यहाँ के निवासियों पर भी जरूर पड़ता था।

यहाँ सड़क बनेगी, गाँव की उन्नति होगी।

सिर्फ़ अभिराम ही नहीं, अभिराम-जैसे दो-चार व्यक्ति ही नहीं, सारा गाँव आनन्द और विस्मय से सजग हो उठा। और उस विस्मित आनन्द को एक ओर ठेलकर खेत के पास तम्बू तनकर खड़े हो गये, जैसे वे हवा में उड़कर आ गये थे।

पाँच सौ वर्ष पहले शीतला के थान पर मूर्तितोड़कों की तलवार पड़ी थी। उसके बाद फिर कोई लहर यहाँ नहीं आयी थी। पाँच सौ वर्ष के मृत ग्राम में एक बार फिर तूफ़ान आया। इस बार तूफ़ान राष्ट्र-विप्लव का नहीं, दुर्भिक्ष का था।

नीम की ठंडी छाँह में खड़ा हीरालाल बागदी बोला—इन लोगों की हरकत देखते हो, गुनी भाई ?

अभिराम सन्दिग्ध आँखों से देखता हुआ बोला—हूँ ?

—उफ़्! ये क्या-क्या कर डालेंगे, पता नहीं। बन-जंगल, पेड़-पौधे, सब गिराकर सड़क बनायेंगे। सुनता हूँ, लोगों को रोटी की चिन्ता ही नहीं रहेगी। अगर यही था, तो ये बच्चू लोग पहले क्यों नहीं आये थे ? सब खत्म होने के बाद अब....

—उस समय उन लोगों को फ़ुरसत नहीं थी!

—उन लोगों को ज़रा देर से फ़ुरसत होती है, यही न ?—हीरालाल ने हँसने की कोशिश की—सेंध मारकर और सब-कुछ चुराकर चोर जब गाँव से तीन मील दूर निकल जाता है, तब चौकीदार आकर हाँक लगाता है !

अभिराम चुप रहा। न जाने क्यों वह अन्यमनस्क हो गया था। सामने जो-कुछ हो रहा था, वह प्रलय ही था। पत्थर-जैसे सख्त टीले चूर-चूर होकर ज़मीन पर गिर रहे थे, जंगल साफ़ होता जा रहा था, अर्से से सड़ते हुए ताल, गड्हे वग़ैरह देखते-देखते भर गये और सपाट हो गये। कहते हैं, इस देश में मलेरिया का अब नाम तक नहीं रहेगा। सब्बल, गँइता, कुदाल ! एक सौ मजदूर खट रहे हैं। झप-झप-झपास !.... ठन-ठन-ठनाठन !.... कुदाल की चोट पर ज़मीन से बादामी रंग की हड्डी बाहर आ निकलती थी, कौन जाने कितनी पुरानी हड्डी है।

सहसा अभिराम की दोनों आँखें संकुचित हो उठीं। मोटी-मोटी दोनों भौंहें एक-दूसरे को छूने लगीं और उनके ऊपर एक अर्द्धवृत्ताकार रेखा खिंच गयी।

—लच्छन तो मुझे अच्छे नहीं दीखते, हीरू।

—क्यों, गुनी भाई, क्यों ?

कौन जाने क्यों। ख़ुद अभिराम को भी इसका पता नहीं था। शायद वह इस आकस्मिकता से डर रहा था, शायद वह इस नवीनता पर विश्वास नहीं कर पा रहा था। कुदाल और सब्बल की चोट खाकर मानो पुरानी मिट्टी यन्त्रणा से रो रही थी, अभिशाप दे रही थी। या यह-सब उसका रक्तार्जित संस्कार था। आकाश और हवा में जो अदृश्य शक्ति घूमती थी, इस सभ्यता से अछूते, नगण्य ग्राम में जिसका एकाधिपत्य था, मध्यरात्रि के समय या दोपहर को जो अकारण ही विशाल वट-वृक्षों की शाखाओं को हिला दिया करती थी, अमावस्या की रात्रि को मुर्दे का सिर लेकर जो गेंद खेला करती थी और अट्टहास करती थी, प्रेतसिद्ध गुनी के अनुभवों पर क्या इसी शक्ति के अलौकिक प्रतिवाद का प्रभाव पड़ा था ?

रहस्यमय चेहरे को और भी रहस्यमय बनाता हुआ गुनी बोला—अभी रहने दो।

उस ओर सड़क क़रीब-क़रीब बन चुकी थी। ग़ज़ब की सड़क थी, ऊँची-नीची असमतल मिट्टी को दीर्ण-विदीर्ण करके लारी के चलने-योग्य मनोरम पथ का निर्माण हुआ था। राजपथ ! मगर काम ज़ोरों से नहीं हो रहा था। कृष्णप्रसाद ने हिसाब लगाकर देखा, इस तरह काम होता रहा, तो निश्चित समय के अन्दर पूरा होना असम्भव है। उधर ऊपरवालों के भी तक़ाज़े-पर-तक़ाज़े आ रहे थे। अतः और आदमी की ज़रूरत है। तूफ़ान की तेजी से काम पूरा करना है। युद्ध, खाद्य-संकट, एमर्जेन्सी !

मज़दूरों के लिए ऊपरवालों को चिट्ठी लिखी गयी। लेकिन मज़दूरों का भी बाज़ार-भाव बढ़ गया था। बर्मा से लेकर आसाम-फ्रन्ट तक उनकी माँग थी। ऊपरवालों ने लिखा, लोकल रिक्रूट करो।

कृष्णप्रसाद के अब वह ठाट नहीं रहे। हाफ-पैन्ट के नीचे घुटने तक धूल जम गयी। घर-घर का चक्कर लगाना पड़ा—तुम लोग आ जाओ, सब-के-सब काम में लग जाओ।

सबों के आगे अभिराम खड़ा हुआ।

—हम लोग कुली का काम नहीं करेंगे, हुज़ूर।

विस्मत और क्रुद्ध होकर कृष्णप्रसाद ने पूछा—क्यों ?

—हमारे बाप-दादा ने कभी मिट्टी पर कुदाल नहीं चलायी है। हम छोटे काम नहीं कर सकते।

छोटा काम ! कृष्णप्रसाद अट्टहास कर उठा। खाने को एक जून एक दाना तक का ठिकाना नहीं, और, और दिमाग़ है सातवें आसमान पर। दूसरे ही क्षण वेदना के कारण कृष्णप्रसाद का गला भारी हो उठा।

—छीः-छीः ! यह क्या पागलपन है ! मिहनत करोगे, बदले में पैसे पाओगे, इसमें अपमान की क्या बात है ! इसी लिए तो तुम लोगों की यह दुर्दशा है। इसी दुर्बुद्धि के कारण भूखे तड़पकर मरना पड़ता है। बाहर के लोग यहाँ आकर मज़दूरी करते हैं और इस देश को लूटकर चले जाते हैं। और....

पाँच मिनट तक कृष्णप्रसाद भाषण देता रहा। उसने तरह-तरह की बातें समझायीं। भाषण के समाप्त होने पर

लोगों ने देखा, कृष्णप्रसाद की आँखों के एक कोने में आवेग के कारण आँसू आ गये थे।

—ज़रा सोचकर देखो। एक जून तो भर पेट खाना नहीं मिलता। मज़दूरी करोगे, तो रोज़ दो रुपये पाओगे।

भूखी आँखें लोभ के कारण चञ्चल हो उठीं। आँखों के सामने नोट तैरने लगे। जब ज़मीन पर हल चलाने में दोष नहीं है, तो फिर कुदाल चलाने में कौन-सी मान-हानि हो जायगी?

अभिराम ने सिर हिलाकर कहा—लेकिन, बाबू....

लेकिन कृष्णप्रसाद लोगों के हृदय को खूब जानता था। अभिराम के अंग-अंग में विद्रोह फड़क रहा था। गाँव के लोगों के ऊपर उसका एकाधिपत्य था, उस अधिकार को कोई शहरी आकर उससे छीन लेगा, इसकी उसने कभी कल्पना तक नहीं की थी। मगर वह अधिकार सिर्फ़ आध्यात्मिक था, भौतिक प्रयोजन का दावा इससे कहीं अधिक वास्तविक और ज़ोरदार था। इतनी बात समझने की अक्ल कृष्णप्रसाद में थी।

होंठों को कुछ फैलाकर कृष्णप्रसाद ठहा मारकर हँस पड़ा।

अभिराम के सिवा और सब लोभ और दुविधा के कारण विचलित हो उठे। मुहूर्त्त-भर के लिए कृष्णप्रसाद को लगा, अभिराम उसका प्रतिद्वन्दी है, उसके रास्ते का रोड़ा है, मगर वह जानता था, जय उसी की होगी।

जेब से नोट बुक निकालकर बोला—बोलो, कौन-कौन तैयार हो?

सबों ने एक-एक कर अभिराम और कृष्णप्रसाद की ओर देखा। अभिराम की आँखों से आग बरस रही थी। जैसे नाम लिखानेवाले पर वह बाघ की तरह टूट पड़ेगा।

जय उपदेवता की नहीं, सरकारी कन्ट्राक्टर की हुई। कुछ क्षण चुप्पी में बीत गये। उसके बाद गले को साफ़ कर हीरालाल बोला—लिखिए......

अभिराम क्रोध से काँप उठा। क्षण-भर के लिए उसने आग्नेय नेत्रों से हीरालाल की ओर देखा। फिर बड़ी तेजी से वहाँ से चला गया।

इस बार कृष्णप्रसाद जी खोलकर हँस पड़ा—पगला है क्या?

गाँव के लोग उस हँसी में शरीक नहीं हुए।

गुनी की आँखों के सामने ही सड़क बनने लगी। हीरालाल, मोतीलाल, जनक, सब वहाँ खटते थे। दो-चार दिनों में ही उनकी हालत बदल गयी। रातोंरात सब बड़े आदमी हो गये। इतने दिनों के बाद गाँव का दुख दूर हुआ। कृष्णप्रसाद के भाषण में धोखा नहीं था। देश के दुख की बात कहते-कहते कृष्णप्रसाद की आँखों में जो आँसू आ गये थे, वे एकदम स्वाभाविक और अकृत्रिम थे, इसमें कोई सन्देह न रहा।

पहले एक पैसे की बीड़ी तक नहीं जुटती थी, अधजली बीड़ियों को चुन-चुनकर जनक को धुम्रपान की तृष्णा मिटानी पड़ती थी। वही जनक उस दिन एक पैकट सिगरेट लेकर हाज़िर हुआ—लो, गुनी, एक सिगरेट लो। अच्छी चीज़ है, ठीकेदार बाबू ने दिया है।

अभिराम ने विरक्त होकर कहा—ना।

—ना क्यों? क्या हर्ज है? सच कहता हूँ, भैया, तुम्हीं ठगे गये। सिर्फ़ भूत उतारने से कहीं पेट भरता है आजकल। चलो, आओ मेरे साथ, दो टोकरी मिट्टी उठाना, दिन-भर की मज़दूरी दो रुपया कौन रोकता है?

—एक थप्पड़ लगाकर सिर का खाल उखाड़ दूँगा।

धीरे-धीरे जनक पीछे हटता गया। भीत स्वर में बोला—क्यों? मैंने कौन-सी वैसी बात कह डाली है? सभी जब दो पैसे कमाते हैं....

—दो पैसे?—हठात् राक्षस की भाँति गुनी गरज उठा—अपनी इज़्ज़त को खोकर वैसे पैसे लेने में शर्म नहीं आती? मुझे अपने मान-सम्मान का ख़याल है। ऐसे पैसे पर मैं थूकता हूँ। माँ शीतला अभी जागी ही हैं, समझे? धर्म के गाँव में अधर्म नहीं होने देंगी।

जनक का हृदय काँप उठा। कहीं गुनी श्राप तो नहीं दे रहा है। वह मन्त्रसिद्ध है, कोई भी काम उसके लिए असाध्य नहीं है। बात-ही-बात में दुनिया का नाश कर सकता है। लेकिन, लेकिन उसका कुसूर क्या था? सभी तो खट रहे हैं। घर में भूख से तड़पने पर भी कोई पूछता
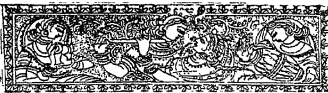
तक नहीं, पीने को एक बूँद पानी तक नहीं देता कोई। अब अगर शरीर से खटकर दो पैसे का रोजगार किया, तो किसी का क्या जाता है। गुनी क्यों ऐसी बातें करता है? वह हिंस्र क्यों हो उठा है? जनक की समझ में कोई बात न आयी।

लेकिन आग अपने ही घर में लगी थी, यह अभिराम न जान सका।

शाम के समय अभिराम की पत्नी पद्मा सामने आकर खड़ी हुई। बोली—एक बात कहना है।

किरासिन की ढिबरी जलाकर अभिराम सूप बना रहा था। बोला—क्या कहना है?

—गाँव की सभी औरतें ठीकेदार के यहाँ काम करती हैं। दो पैसे पाती भी हैं। सो....

—सो?—अभिराम ने सन्दिग्ध दृष्टि से देखकर पूछा—तो हुआ क्या है?

—सूप-टोकरी बेचकर और भूत उतारकर घर चलना असम्भव है। जमाना बदल गया है। अगर मैं भी वहाँ जाकर काम करूँ, तो कम-से-कम एक रुपया....

अभिराम सर्प की भाँति उठ खड़ा हुआ।

—खबरदार! खबरदार, पद्मा! फिर कभी ऐसी बात मुँह पर लायी, तो खून कर दूँगा! हम गुनी के वंश के हैं। हम पर माँ शीतला की कृपा है। घर में भूखों मर जाना अच्छा है। गुलामी नहीं करेंगे, छोटे काम नहीं करेंगे!

चाण्डाल के घर की सुन्दरी वहू पद्मा के होंठ फड़क उठे। चाञ्चल्य तथा अविश्वास के कारण उसके स्वस्थ शरीर में नदी की-सी लहर दौड़ पड़ी।

—मान-सम्मान के पीछे ही तो तुम सब-कुछ खो बैठे। सभी ने नौकरी पकड़ ली है, लेकिन तुम....

अभिराम की आँखों से आग बरस रही थी। शरीर क्रोध के मारे काँप रहा था। पद्मा को मारने के लिए उसने मुक्का ताना। इसी समय किसी ने बाहर से पुकारा—गुनी! गुनी!

—कौन?

अपराधी के-से स्वर में उत्तर आया—मैं हीरालाल।

घूँघट खींचकर पद्मा अन्दर चली गयी, और किरासन की क्षीण रोशनी के सामने हीरालाल आ खड़ा हुआ। उसकी दोनों आँखें डर के मारे विस्फारित तथा विह्वल थीं।

—क्या बात है?

—एक बार आओ, भैया! मेरी बड़ी बेटी को न जाने क्या हो गया है। बुखार-उखार कुछ नहीं है, शाम से सिर्फ़ तड़प रही है और रह-रहकर उल्टी होती है। एक बार चलो, भैया!—हीरालाल रुआँसे स्वर में बोला।

—हूँ! तो अब तुम्हें गुनी की याद आयी!

—गुस्सा न करो, भैया, चलो! अगर तुम गुस्सा करोगे, तो फिर हम कहाँ जायेंगे।

अभिराम का मन आत्मप्रमाद से भर उठा। सिर्फ़ कृष्णप्रसाद ही नहीं, उसका भी दाम है, उसका भी प्रयोजन है। माँ शीतला के अनुग्रह से सभी रोगों को दूर करने का भार उसी पर है, यह उसका पैतृक अधिकार है। पेट की भूख मिटाने का लोभ दिखाकर कृष्णप्रसाद गाँव के लोगों को वशीभूत कर सकता है, लेकिन जिस शत्रु को आँखों से देखना मुश्किल है, उसे कौन वशीभूत करेगा? माँ चण्डी और शीतला के जो सारे अनुचर दृष्टि की ओट में मृत्युबाण लेकर घूमते हैं, उनके हाथों से मनुष्य की रक्षा कौन कर सकता है? कोई भी सरकारी ठीकेदार रुपये दिखाकर इस अदृश्य शक्ति को वशीभूत नहीं कर सकता।

बेंत की छोटी छड़ी लेकर अभिराम ने कहा—चलो।

हीरालाल के दरवाज़े पर उस समय लोगों की भीड़ लगी थी। वह छोटी लड़की पागल की भाँति तड़प रही थी, रह-रहकर कै कर रही थी, दो बड़ी-बड़ी अमानुषिक आँखों से शून्य की ओर देख रही थी, और रह-रहकर हिचकियाँ ले रही थी। हीरालाल की पत्नी दहाड़ मारकर रो रही थी।

अभिराम कुछ देर तक उस ओर देखता रह गया। उसके बाद संक्षेप में बोला—हूँ! इसपर भूतनी सवार है।

घर में खलबली मच गयी। रोने की आवाज़ पहले
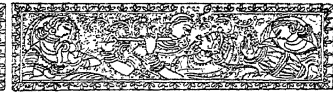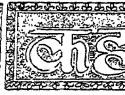
से बढ़ गयी। गुनी ने धमकी देते हुए कहा—चुप! कुछ सरसों का बन्दोबस्त करो।

भूत उतारने का काम शुरू हुआ। सरसों पर सरसों डाला जाने लगा, सारे शरीर पर पानी छिड़का गया। मगर भूतनी के उतरने का लक्षण नहीं दिखायी दिया। वह लड़की उसी तरह ज़मीन पर लोट रही थी। रह-रहकर वह ऐसी हिचकियाँ ले रही थी कि किसी भी समय साँस के रुक जाने का डर था। अभिराम के कपाल पर पसीने की बूँदें दिखायी देने लगीं। दिल शंकित होता जा रहा था। उसकी सारी कोशिश निष्फल होती जा रही थी। घर में अँधेरा था, सिर्फ़ एक कोने में एक दीया जल रहा था, पता नहीं, वह कब बुझ जाय। उस धुँधले प्रकाश में उस लड़की की भयावह आँखों को देख उसकी भी अन्तरात्मा सिहर उठी। कामरू-कामाख्या की डाकिनी का आदेश कोई काम न आया, लड़की को बचाना असम्भव था।

टार्च की ज़ोरदार रोशनी उस अँधेरे आँगन में पड़ी।

जूते की मचमच आवाज़ के साथ कृष्णप्रसाद अन्दर दाखिल हुआ। साथ में एक और सज्जन थे।

कृष्णप्रसाद ने हँसकर कहा—सुना था कि तुम्हारी बेटी की तबीअत ख़राब है, सो डाक्टर बाबू को लिये आया। ये मेरे दोस्त हैं, किसी काम से यहाँ आये थे।

हीरालाल द्विधाग्रस्त होकर बोला—गुनी उसे झाड़ रहा था, हुज़ूर, इसी लिए........

डाक्टर ने क्रोध और घृणा-भरे स्वर में कहा—गुनी! इस-सब बेवकूफ़ी से रोग दूर नहीं होता है। लो, अपनी थैली समेटो और एक किनारे हो जाओ। एक बार रोगी को देखूँ।

अड़ियल घोड़े की तरह गर्दन हिलाकर अभिराम चुप रह गया। तिल-भर भी न हटा।

कृष्णप्रसाद टार्च की रोशनी अभिराम के मुँह पर फेंकते हुए बोला—ज़रा हटकर बैठो। तुमने तो बहुत कोशिश की, मगर देखता हूँ, तुमसे कुछ न हुआ। एक बार डाक्टर बाबू को देखने दो।

अभिराम अटल रहा। बोला—मुझे हीरालाल ने बुलाया है। मैं इसे झाड़कर रहूँगा। मुझे किसी डाक्टर-वाक्टर की परवाह नहीं है।

—नानसेन्स! इडियट!—डाक्टर ने धीरज खो दिया—यह रोगी को मार डालेगा क्या? इन लोगों के नाम क्रिमिनल केस डायर करना उचित है!

अभिराम का ख़ून खौल उठा। एक अश्लील गाली देकर अभिराम बोला—ख़बरदार!

मुहूर्त्त-भर में क्या से क्या हो गया। डाक्टर ने जूते-सहित कसकर एक लात अभिराम की छाती पर लगायी। अभिराम छिटककर तीन हाथ दूर जा गिरा। ऐसी घटना घटेगी, इसकी किसी ने कल्पना तक नहीं की थी।

जनता मौन थी। कृष्णप्रसाद ने कहा—छिः, छिः, यह तुमने क्या किया!

सेन उस वक्त रोगी के ऊपर झुका हुआ था। शान्त स्वर में बोला—जो उचित था, वही मैंने किया। एक तो यह सुअर का बच्चा पेशेन्ट को मार डालने की तैयारी में था, ऊपर से मुझे गाली बकने लगा। चौधरी, एक काम करो, कल ही इस स्काउन्ड्रल को पुलीस के हाथ सुपुर्द कर देने की व्यवस्था करो। रेगुलर मर्डर! न जाने कितने लोगों को इसने यों मार डाला है!

सेन मौके पर पहुँचा था। एक ही इन्जेक्शन में रोगी धीरे-धीरे चंगा होता गया, हिचकियाँ क्रमशः कम होती गयीं।

खड़े होकर सिगरेट सुलगाते हुए डाक्टर बोला—अब डरने की कोई बात नहीं, संकट टल गया है। और हाँ, वह गुनी कहाँ है?

डाक्टर की लात खाकर गुनी दूर अँधेरे में छिटक-गिर कर गया था। वह वहाँ से कब भाग निकला, इसका किसी को पता नहीं चला।

(४)

रात का समय था। चाँद की क्षीण चाँदनी में खेत में गड़े तम्बू किसी सफ़ेद पक्षी की तरह दिखायी दे रहे थे। कुछ देर पहले तक यहाँ प्रकाश था और कुली-मज़दूरों के गीत और ढोल की आवाज़ वहाँ से आ रही थी। मगर

अब सब-कुछ शान्त था, जैसे सब किसी विषाद-सागर में डूब गये थे। तम्बुओं के आगे वह नया रास्ता साँप की भाँति पड़ा हुआ था, राजपथ! वह सड़क नहीं, साँप था। उसकी विषैली साँस का अनुभव अभिराम इस समय भी कर रहा था, उसका सारा अंग जला जा रहा था।

उसके हृदय में अब भी रह-रहकर दर्द उठ रहा था। डाक्टर ने उसे लात से मारा था। गुनी बिछावन छोड़ उठ बैठा। पास ही पद्मा लाश-सी बेहोश, बेखबर सोयी हुई थी।

अभिराम ने उठकर दीया जलाया। एक कोने से लाल कपड़े से बँधी एक छोटी-सी पोटली निकाली। उत्तेजना के कारण उसके हाथ काँप रहे थे, आँखों में प्रतिशोध की ज्वाला जल रही थी। सिर्फ़ एक का, डाक्टर का ख़ून वह नहीं करेगा। इस अधर्म को, इस लाञ्छना और अपमान के कारण को वह जड़ से उखाड़ फेंकेगा।

एक काली बोतल में रखी कुछ बुकनी को उसने गौर से देखा। कृष्णप्रसाद और डाक्टर कभी कल्पना तक नहीं कर सकते कि इस बोतल के अन्दर देशव्यापी महामारी क़ैद है। इस बोतल में रखी सफ़ेद बुकनी और कुछ नहीं, बसन्त के बीज, चेचक की सूखी पपड़ी थी। वे लोग इसका संग्रह दवा के काम में लाने के लिए करते थे, लेकिन ज़रूरत पड़ने पर इसका व्यवहार हिंस्र काम में भी होता था। अविश्वासी को कठिन दण्ड देने का यह एक अच्छा साधन था। गुनी के वंश में प्रतिशोध लेते समय बराबर इसका उपयोग किया गया था। दुश्मन के घर में छिड़क दिया, या हवा में उड़ा दिया, या कुएँ में डाल दिया। और कुछ ही दिनों के अन्दर हाथ-नाक पर इसका प्रत्यक्ष फल दिखायी देता। बहुत दिनों के बाद इस अस्त्र का प्रयोग करने का मौक़ा आया था। बोतल के अन्दर क़ैद राक्षस को बस एक बार मुक्ति मिलने की देर थी, फिर वह किसी को क्षमा नहीं करेगा, क्षण-भर में सबको ग्रास बना लेगा। वह डाक्टर, वह कृष्णप्रसाद, कुलियों की वह कालनी, सब-के-सब दो ही दिन में मृत्यु के मुँह में चले जायेंगे।

अभिराम चुपचाप बाहर चला आया। फीकी-फीकी चाँदनी में गुनी की छाया-मूर्त्ति देख मुहल्ले के कुत्त आतंक से चीत्कार कर उठे, मगर दूसरे ही क्षण शान्त हो गये। शाम को किसी ने सुअर भूना था, इस समय भी उसकी दुर्गन्ध वातावरण में भरी थी। सामने के पेड़ पर से कोई कौवा शायद स्वप्न देखकर सहसा चिल्ला उठा, (रात के समय कौवे की चीख अशुभ मानी जाती है।) का-का-का! गुनी को लगा, जैसे वह कह रहा था, खा-खा-खा!

अभिराम धीरे-धीरे शीतला के थान तक आया। कुछ देर के लिए वह वहाँ रुक गया। एक बार उसने शीतला को प्रणाम किया। मन-ही-मन देवी की विकराल मूर्त्ति की कल्पना उसने कर ली। उसके सारे रोम खड़े हो गये। फिर धीरे-धीरे वह हल्की चाँदनी में अदृश्य हो गया।....

इसके बाद का इतिहास बहुत संक्षिप्त है।

शहर से किसी डाक्टर के आने के पहले ही कृष्णप्रसाद की कॉलनी में चेचक फैल गया।

भीत कृष्णप्रसाद ने कहा—स्ट्राइक दि टेन्ट, तम्बू गिरा दो!

नये रास्ते को अधूरा छोड़कर कृष्णप्रसाद दस मील पीछे हट गया। सामान से लदी गाड़ियों को जाते देख अभिराम राक्षस की भाँति अट्टहास कर उठा। जीत उसी की हुई। देवी उसके साथ थी, जीत उसी की होनी थी!

लेकिन महामारी का राक्षस कृष्णप्रसाद के तम्बू तक ही सीमाबद्ध न रहा। भूख मिटाने के लिए वह गाँव की ओर बढ़ा। जो बाहर से आये थे, उन्होंने तो भागकर प्राण बचा लिये, लेकिन जिनका बाहर कहीं कुछ नहीं था, चेचक का कोप उनपर बुरी तरह पड़ा।

अब कृष्णप्रसाद वहाँ नहीं था। अभिराम के सिवा लोगों का कोई नहीं था। एक ब्रह्मास्त्र से उसने खोया सम्मान प्राप्त कर लिया।

—बचाओ, गुनी! बचाओ!

अभिराम के होंठ विकृत हो उठे। हँस पड़ा—क्यों? सरकारी बाबू कहाँ है, उसे बुला लो!

—गुस्सा न करो, भैया! हम पर दया करो! तुम्हारे

सिवा हम लोगों का और कौन है ? तुम नहीं चलोगे, तो कौन....

इसके बाद एक दिन अभिराम की हँसी भी बन्द हो गयी। पद्मा को भी चेचक हो गया। लक्ष्यभेद करने के बाद ब्रह्मास्त्र फिर उसी की छाती की ओर लौट आयगा, गुनी यह नहीं जानता था।

असह्य यन्त्रणा से तड़प-तड़पकर पद्मा एक दिन मर गयी, चाण्डाल की सुन्दर वहू, पद्मा ! ऐसी सुन्दर देह सड़ गयी, शरीर इतना वीभत्स हो गया था कि उस ओर देखते नहीं बनता था। सौन्दर्य के आवरण के अन्दर भीषण नरककुण्ड था।

इस बार अभिराम मिट्टी में लोट-लोटकर रो पड़ा—अरे, यह मैंने क्या कर डाला, पद्मा !

लेकिन सबसे बड़ा आघात उस समय भी उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। पद्मा की लाश हटाते वक्त बिछावन के नीचे से एक सुन्दर सोने की अँगूठी मिली। अभिराम को याद हो आयी, उसने किसी की अँगुलियों में ऐसी अंगूठी देखी थी। डाक्टर बाबू की ? न, न, कृष्णप्रसाद की ! तो ? इसका मतलब ? क्या पद्मा....

उसका शोक दूर हो गया। खून खौल उठा। नसें फड़क उठीं। सिर में मानो आग जल रही थी। तो आखिर जीत किसकी हुई ? चरम अपमान और चरम पराजय के बीच उसे कौन फेंक गया ? गाँव के घर-घर से लाशें निकल रही थीं, घर-घर से रोने की आवाज़ें आ रही थीं। क्या अभिराम ने यही चाहा था ? और पद्मा ? पद्मा ? यह सोने की अंगूठी ?

गुनी पत्थर की मूर्त्ति-सा निश्चल बैठा रहा। उसकी लाल पोटली में तरह तरह के तीव्र प्राणघातक विष सञ्चित थे। अभिराम हार नहीं मानेगा ! नहीं, कभी नहीं !

*

लेकिन कृष्णप्रसाद एक अच्छा आदमी था, सज्जन ! सरकारी डाक्टर, सैनिटरी इन्सपेक्टर और वैक्सिनेटरों का एक दल लेकर वह गाँव आया। गाँव के बाहर नीम के वृक्ष के पास पहुँचकर वह दल सहसा रुक गया। दिन दोपहर के समय ही गुनी के विष-जर्जरित शरीर को सियार नोच-नोचकर खा रहे थे।

—अनदर विक्टिम !—डाक्टर ने कहा।

बंगला से अनु० कृष्णचन्द्र चौधरी

पारो

अजीत कुमार

बरेली का वह मधुर संगीत और वह सुन्दर पंक्तियाँ यहाँ के निवासी आज भी गुनगुनाया करते हैं। बाज़ार की औरतें आज भी अपने श्रोताओं को पायलों की झनक के साथ 'बरेली के बज़ार में झुमका गिरा रे' कभी दादरे और कभी कहरवे के ठेकों के साथ सुना ही दिया करती हैं। एक पक्की, लम्बी-चौड़ी दीवार से घिरा हुआ शहर, पूर्वी दरवाज़े से पश्चिमी दरवाज़े तक रेंगती हुई एक पाँच मील लम्बी सँकरी सड़क, जिसपर बरेली का मशहूर बाज़ार आबाद है। कहीं तिकोनी सुरमे की दुकानें, कोई अपने-आपको हाशम कहता है, कोई हानम और कोई हामम, बहरहाल सब यही चाहते हैं कि वह जनाब हाशम के खानदान के समझे जायँ और देहात से आया हुआ मेवाती या ठाकुर अपनी बीवी के लिए सुरमा-दुकान-हाशम खरीद कर ही दूसरा काम करे। इसी बाज़ार के चुड़िहार दावा करते हैं कि उनके पूर्वज लैला को चूड़ियाँ पहना चुके हैं। गाँव से कपड़ा लाये हुए जुलाहों की भीड़, सुनारों की दुकानों पर औरतों का जमघट, सब्जी बेचते हुए बरेली के खास तरीके के ठेले, जिनपर अक्सर बेगमें में भी परदा डालकर घूमने निकल पड़ती हैं, सड़क पर तरह-तरह की सवारियों की हट-बच, याने एक अच्छा-खासा पाँच मील लम्बा ताँता लगा रहता है। यह है रुहेलखंड के पठान राजाओं की राजधानी।

मगर आज वह सुल्तान नहीं, वह सल्तनत नहीं। फिरंगी आगे बढ़ता चला जा रहा है। फतेहगंज का मैदाने-जंग और फिर मीरानपुर कटरा। यहाँ के हिन्दू और मुसलमान जमके फिरंगी तोपों का मुकाबला कर सकते थे, पर उसकी कूटनीति को पार न पा सके। उनका सुल्तान हाफ़िज़ रहमत खाँ हज़ारों योद्धाओं के साथ मैदाने-जंग में काम आया। हज़ारों घर उजड़ गये। इस इलाक़े के २०,००० सपूतों को देश से निकाल दिया गया। पहले अवध में और फिर अपनी हुकूमत में ईस्ट-इन्डिया कम्पनी ने इस इलाक़े को मिला लिया।

—बेगम, आख़िर कब तक हम फिरंगी के ज़ुल्मों को बरदाश्त करें! हमारी रियासत को हड़प लिया, अवध को हड़प लिया, मुगलिया खानदान को अपने हाथों की कठपुतली बना रखा है, सारा हिन्दुस्तान अपनी आज़ादी खोये बैठा है और हम हैं कि हाथ-पर-हाथ धरे बैठे हैं। —खान बहादुर खान साहब ने कहा।

—मेरे सरताज, सब्र ! हमें सब्र से काम लेना है। —बेगम गुलनार ने उत्तर दिया—हमला करने से पहले हमें अपने बाज़ुओं की ताक़त को देखना है, अपने दुश्मन को अपने से कभी कमज़ोर न समझना चाहिए। हमें सिर्फ़ अपने बहादुरों का सर दे देना ही नहीं प्यारा है, हमें आज़ादी प्यारी है। ग़ैरवाजिब बहादुरी उतनी ही बेकार होती है, जितनी कायरता। हमें अभी एक वक़्त का इन्तज़ार है। उस दिन जब हम कलकत्ता से पेशावर तक एक वक़्त और एक साथ उठेंगे, तो फिरंगी क्या उसके फ़रिश्ते भी कम्पनी की हुकूमत को न सँभाल सकेंगे। आने वाला वक़्त यह न कहे कि रुहेलों ने जल्दबाज़ी और बेसब्री से काम लिया। हमें तवारीख़ का सिर्फ़ ख़ून से नहीं लिखना है, फ़तह से लिखना है !

—मुझे नाज़ है तुम पर, मेरी बेगम गुलनार !

रुहेलखंड के आखिरी स्वतन्त्र सुलतान हाफ़िज रहमत ख़ाँ के उत्तराधिकारी ख़ान बहादुर ख़ान बड़ी बेसब्री से स्वतन्त्रता के महान् युद्ध का इन्तज़ार कर रहे थे। वह दमदम की छावनी के मंगल पाण्डे या मेरठ के २० वें रेजिमेन्ट से, जो समय से पहले ही उठ खड़े हुए, कम बेसब्र नहीं थे। पर असलियत यह थी कि बेगम गुलनार उन्हें सँभालकर रखना जानती थीं। वह ख़ान बहादुर ख़ान साहब को हक़ीक़त और सब्र के रास्ते से ले चलकर फ़तह की मंजिल पर पहुँचाना चाहती थीं। वह जानती थीं कि रुहेले ख़ून को अगर सँभालकर न रखा गया, तो वह समय से पहले फट पड़ेगा, यह तासीर है रुहेले ख़ून की !

बेगम साहिबा बरेली की एक तवायफ़ के गहरे प्रभाव में थीं, जिसने बेगम साहिबा को अपने से ज़्यादा ज़हीन बना दिया था। या यों कहिए कि इस तवायफ़ की स्वतन्त्रता और स्वधर्म की बातों से बेगम साहिबा ने एक नये ढर्रे से सोचना शुरू कर दिया था। बेगम साहिबा बहादुर शाह, मुग़ल ख़ानदान के अन्तिम बादशाह, नवाब अवध, जो कि उस समय कलकत्ता में अँग्रेजों की हिरासत में थे, नाना साहब, ताँतिया टोपे, झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, जगदीशपुर के महराजा कुँवर सिंह और इलाहाबाद के मौलवी लियाक़त अली साहब से पत्र-व्यवहार कर रही थीं। कम्पनी की बरेली में स्थापित हिन्दुस्तानी फ़ौज के सूबेदार मोहम्मद बख़्त ख़ाँ, जिनको आगे चलकर हिन्दुस्तान के प्रधान सेनापति का पद ग्रहण करना था, बेगम साहिबा से रातों में परामर्श किया करते थे। हिन्दुस्तान में षड्यन्त्र रचे जा रहे थे, हिन्दुस्तानी संगठित किये जा रहे थे। अब सिर्फ़ इतना ही बाक़ी था कि विद्रोह का दिन और समय निश्चित कर दिया जाय।

बेगम गुलनार ने कहा—नाना साहब के कुछ आदमी आये हुए हैं। उनके ठहरने का माकूल इन्तज़ाम करा दिया गया है। और हाँ, बहादुर शाह के ख़त का जवाब भिजवा दिया गया। उन्हें यक़ीन दिलाया है कि रुहेलखंड उनके साथ है, वक़्त आने पर हमारी तलवारें एक साथ बाहर आयेंगी। मसजिदों में फ़तवा और मन्दिरों में घन्टे मुग़ल बादशाह के नाम पर बजाये जायेंगे। हिन्दुओं के अलख नाथ बाबा भी हमारे साथ हैं। मैंने बख़्त ख़ाँ को आज रात में बुलवाया है। उनके साथ में शाहजहाँपुर के २८ वें और मुरादाबाद के २९ वें इन्फैन्ट्री रेजिमेन्ट और बदायूँ के तोपख़ाने के नुमायन्दे भी आयेंगे। आज रात का दरबार हिन्दुस्तान की तवारीख़ लिखेगा।

(२)

ईरान की मख़मली कालीन पर पारो के बाहुपाश में पड़े हुए बख़्त ख़ाँ ने शराब का एक और प्याला माँगा। लौंडी ने जाम भर दिया। पारो बरेली की एक मशहूर नर्तकी थी। उसका आना-जाना बड़े-बड़े घरानों में था, सिर्फ़ गायन के लिए। पारो अगर अपने-आपको समझने में ग़लती नहीं करती थी, तो वह बख़्त ख़ाँ से प्रेम करती थी। और उधर बख़्त ख़ाँ का भी कुछ ऐसा ही हाल था। सिर्फ़ यह ही नहीं, दोनों विवाह के बन्धन में बँध जाना चाहते थे, परन्तु निकाह का प्रस्ताव दोनों में से कोई भी रखने का साहस नहीं करता था। बख़्त ख़ाँ का आत्म-गौरव ऐसा करना अपने लिए एक ओछापन समझता था और पारो की हीनता की भावनायें छोटे मुँह बड़ी बात। कभी-कभी पारो बख़्त ख़ाँ को स्वतन्त्रता और स्वधर्म के

लम्बे-चौड़े भाषण दे दिया करती थी, बख्त खाँ पड़े-पड़े मुस्करा दिया करते थे।

—मेरे प्यारे बख्त! अब बस भी करो! आज तो तुम कुछ बात ही नहीं करते।

बख्त खाँ कुछ अपनी ही धुन में था। उसे कल रात का महत्वपूर्ण दरबार याद आ रहा था, जबकि ख़ान बहादुर ख़ान साहब ने कहा था, मैं बख्त ख़ाँ को रुहेलखंड का सिपहसालार मुक़र्रर करता हूँ। रुहेलखंड को हासिल करने के बाद हमारा सिपहसालार ख़ज़ाने और फौज के साथ मुगल बादशाह की मदद के लिए दिल्ली जायगा।

बख्त ख़ाँ कुछ चौंक उठे—हूँ? कुछ बात करूँ? क्या वक्त हो रहा है?

—अभी तो रात का सिर्फ दूसरा पहर है,—पारो ने उत्तर दिया।

—तो फिर कोई राग छेड़ो, आज मैं बहुत .खुश हूँ।—बख्त खाँ ने पारो को अपने और नज़दीक खींचते हुए कहा।

यह मधुर मिलन एक ख़रीदार और फ़रोश का नहीं था, दो प्रेमियों का था!

—कौन-सा राग सुनोगे?

—जो रात के दूसरे पहर में गाया जाता हो,—बख़्त खाँ ने उत्तर दिया।

—राग देस गाया जाता है रात के दूसरे पहर, राग जयजयवन्ती भी गायी जाती है।—पारो पुनः बोली।

—और दिन के दूसरे पहर में कौन राग गाये जाते हैं?

—राग पीलू। और राग जौनपुरी भी गाये जा सकते हैं? मालूम पड़ता है, जनाब मेरा इम्तहान ले रहे हैं!—पारो आवेश में आकर बोली।

बख़्त ख़ाँ का जाम फिर ख़ाली हो गया। लौंडी भरने लगी। पारो का तेवर बदलता जा रहा था—बस कर, मक्खनियाँ! जा, अब बाहर बैठ।

पारो ने फिर कुछ सोचकर खुद ही बख्त खाँ का प्याला भर दिया।

—हाँ, तो फिर दिन के तीसरे पहर में कौन-सा राग गाया जाता है?—बख्त खाँ फिर बोला।

पारो ने आवेश में आकर अपने-आपको बख़्त ख़ाँ से छुड़ाने की चेष्टा की, परन्तु बख़्त ख़ाँ की शक्तिशाली बाहों ने ऐसा होने न दिया।

—देखिए, ख़ाँ साहब, अब बहुत हो चुका। आज मैं आपसे कुछ ख़ास बातें करना चाहती हूँ। आपको क्या मालूम, हिन्दुस्तान में क्या हो रहा है! सारे मुल्क में आग लगी हुई है। हिन्दुस्तान सुर्ख़ होनेवाला है और आप हैं कि मुझसे बिना मतलब मज़ाक कर रहे हैं, जाम के ऊपर जाम चढ़ाये जा रहे हैं!

बेचारी को क्या मालूम था कि वह रुहेलखंड के भावी प्रधान सेनापति के बाहुपाश में कसी हुई थी। पारो को अपने-आप पर गर्व था, क्योंकि वह क्रान्तिकारियों के संगठन में थी। वह रुहेलखंड की नर्तकियों की नेत्री थी। कहा जाता है कि इस इलाक़े की नर्तकियाँ अपनी आमदनी का तीन-चौथाई हिस्सा इस महान क्रान्ति के लिए जमा करती थीं और पारो का काम था इस रक़म को ख़ान बहादुर ख़ान साहब के ख़ज़ाने में जमा कर देना।

बख़्त ख़ाँ फिर बुदबुदाया—दिल मचलता रहे, दौरे-शराब चलता रहे!

पारो तैश में आ गयी और अपने-आपको बख़्त ख़ाँ से छुड़ाकर खड़ी हो गयी। परन्तु आज बख़्त ख़ाँ पारो को इतने सस्ते छोड़ देने को तैयार न था। बख़्त ख़ाँ ने उसे बैठे-ही-बैठे अपने अंक में खींच लिया। पारो तैश दिखाती हुई बैठ गयी।

बख़्त ख़ाँ को क्या मालूम था कि उसके अंक में पड़ी हुई तवायफ़ रुहेलखंड की एक नेत्री थी। यह था इस महान क्रान्ति का रहस्यमय संगठन। क्रान्तिकारियों ने हर बात को इस तरह गुप्त रखा था कि फिरंगी को मेरठ के उठने तक किसी भी बात की कानों-कान सूचना न मिलनेवाली थी। क्रान्तिकारी सिर्फ़ अपने अफ़सर बाला को जानता था। उसे सिर्फ यह मालूम था कि किस दिन और किस समय किस फिरंगी का सर कलम कर देना है, किस बंगले में आग लगा देनी है, और किस ख़ज़ाने को लूट लेना है।

लौंडी ने आकर सूचना दी कि कोई फिरंगी साहब आया है। पारो आवेश में बोली—कह दो उससे कि मेरे नाच और गाने हिन्दुस्तान की महफिलों के लिए हैं !....

—नहीं, मेरी प्यारी पारो, ऐसा मत करो, हमें सब्र से काम लेना है। कुछ थोड़े वक्त के लिए फिरंगी को और बरदाश्त करो। मक्खनियाँ, साहब को बुला लाओ, मैं पिछले दरवाज़े से बाहर चला जाता हूँ।—बख़्त ख़ाँ कहके पिछले दरवाजे से छावनी चला गया और पारो साहब को खुश करने में जुट गयी।

३

बरेली की छावनी में रात के करीब १२ बजे ज्वाला-प्रसाद और बख़्त ख़ाँ एक तहखानें में एक टिमटिमाते हुए दीये के पास बैठकर कुछ बातें कर रहे थे। हो सकता है, यह वार्ता आगामी क्रान्ति के विषय में हो। नौबत माली के साथ मक्खनियाँ ने प्रवेश किया और बतलाया कि ख़ान बहादुर साहब उपस्थित सज्जनों को शीघ्र अपनी हवेली पर याद फरमाते हैं। बख़्त ख़ाँ के मक्खनियाँ से बहुत पूछने पर भी उसने और कुछ न बतलाया।

ख़ान बहादुर ख़ान साहब ने आवेश में आते हुए कहा—बेगम, अब मुझसे रुकने को मत कहो ! मेरठ और दिल्ली में आज़ादी का झण्डा उठा दिया गया है ! क्या रुहेलखंड आज भी पड़ा सोता रहेगा ? यह मुझसे नहीं हो सकता ! अब ३१ मई तक रुकना मेरे लिए नामुमकिन है, नाक़ाबिले बरदाश्त है। हमारी आनेवाली सन्तान आज के दिन को याद करके क्या कहेगी ! जब कि हिन्दुस्तान की तवारीख़ खून से लिखी जा रही थी, रुहेले पड़े हुए सो रहे थे, ख़ान बहादुर ख़ान की तलवार म्यान में पड़ी हुई थी ! अब यह नहीं हो सकता !—रुहेला .खून खौल उठा। ख़ान बहादुर ख़ान साहब ने एक झटके में अपनी कमर में पड़ी तलवार को म्यान से बाहर खींच लिया।

—आज रात में रुहेलखंड प्लासी के मैदान का बदला लेगा ! मैं अभी जाकर सिपाहियों को कमर कसने का हुक्म देता हूँ !—आवेश में काँपते हुए चित्रगुप्त-वंशज ज्वालाप्रसाद चिल्ला पड़ा।

पारो ने भी अपने वस्त्रों में छिपी हुई कटार नंगी कर ली—आज मैं फिरंगी के .खून से फतेहगंज के मैदान पर काम आये हिन्दुओं को पानी दूँगी !—बख़्त ख़ाँ ने बड़े इतमीनान से पारो का हाथ पकड़कर कटार को वापस म्यान के अन्दर भेज दिया। आज उसने अपनी प्यारी पारो को पहली बार क्रान्तिकारिणी के रूप में ख़ान बहादुर ख़ान साहब की हवेली में देखा था।

—मुझे भी अब यही सोचने को मजबूर होना पड़ता है, हमें अब फिरंगी को सँभलने का मौक़ा न देना चाहिए। ३१ मई तक वे होशियार हो जायेंगे।—बख़्त ख़ाँ भी कुछ बोला।

—नहीं, अभी नहीं। हमें सिर्फ फिरंगी का ख़ून करना या उससे बदला नहीं लेना है, हमें आज़ादी लेनी है। बदला लेना वहशियों और फिरंगियों का काम है। हम तहजीबयाफ़्ता रुहेले हैं। हम फिरंगियों के साथ भी मुहज़्ज़बाना बरताव करेंगे। हम उतनी ही जानें लेंगे, जितनी ज़रूरी होंगी। ऐ मेरे वतन के क़ौमपरस्त बहादुरो ! सब्र और बरदाश्त से काम लो, वक्त के साथ बचपना न करो ! गैरवाजिब बहादुरी किसी काम की नहीं होती। अगर आज ही हम आज़ादी का झण्डा उठाते हैं, तो हमारे सारे इन्तज़ाम बेकार हो जायेंगे। अभी हमें बाहर के जंगी जहाज़ों और हथियारों का भी तो इन्तज़ार है। अज़ीमुल्लाह ख़ाँ की सारी दौड़-धूप को हम बेकार कर दें ?—बेगम गुलनार ने हवेली में जमा क्रान्तिकारियों को समझाते हुए कहा।

सब धीरे-धीरे शान्त और ठण्डे होने लगे। सुलतान से लेकर तवायफ़ तक, सबको बेगम साहिबा की बातें माननी ही पड़ीं और फिर सब बिदा हो गये।

प्रेमी रात में फिर मिले। आज सूबेदार बख़्त ख़ाँ और तवायफ़ पारो नहीं मिले, दो आत्मायें मिलकर एक हो गयीं। अब उनके बीच में कोई बात गुप्त न रह गयी थी। दोनों को एक-दूसरे पर गर्व था। आख़िर आज साहस करके बख़्त ख़ाँ ने पारो के सामने निकाह का प्रस्ताव रख ही दिया। पारो की आँखों में आनन्द के आँसू छलछला आये। उसकी ख़ामोश निगाहों ने प्रस्ताव

की स्वीकृति दे दी—मगर अभी नहीं, मेरे सरताज !—पारो ने कहा—जब तुम जीत का डंका बजाते हुए, फ़तह का सेहरा बाँधे हुए दिल्ली से लौटोगे....

आख़िर वह निश्चित दिन और समय आ ही गया। आज़ादी का शोला सारे प्रान्त में भड़क उठा। सारा रुहेलखंड, बरेली, बदायूँ, शाहजहाँपुर और मुरादाबाद एक ही दिन और एक ही वक्त उठा और शाम होने तक रुहेलों ने फिरंगी हुकूमत को धूल में मिला दिया। वतन सुर्ख़ हो गया। आज रात का चाँद गुलामी नहीं देखेगा। फिरंगी क़त्ल कर दिये गये। कुछ नैनीताल की तरफ़ भाग गये और जो बच गये, बन्दी बना लिये गये। शाम के वक्त बरेली का फिरंगी ज़िला-न्यायाधीश और बरेली गवर्नमेन्ट कालिज का प्रिन्सिपल अपने चार फिरंगी साथियों के साथ ख़ान बहादुर ख़ान साहब के सामने पेश किये गये। आज ख़ान सुल्तान था और फिरंगी बन्दी। यह महत्वपूर्ण दिन था ३१ मई सन् १८५७।

इतिहासकार को अभी तय करना है कि मेरठ में गड़बड़ी हो जाने पर सारे हिन्दुस्तान को उसी समय स्वतन्त्रता की रण-भूमि में उतर पड़ना चाहिए था या निश्चित समय का इन्तज़ार करना चाहिए था। पर यह मानना ही पड़ेगा कि रुहेलों ने इतिहास को अजीब व ग़रीब घटना दी। संसार के इतिहास ने ऐसा अनुशासन और क्रान्ति-संचालन नहीं देखा था, जिसका कि रुहेलों को आज भी गर्व है। आज भी तिलहर में चौहट्टियाँ की पानवालियाँ मेरठ की औरतों को ताना देती हैं, जिन्होंने मेरठ की फ़ौज को समय से पहले ही स्वतन्त्रता का झण्डा ऊँचा कर देने को मजबूर किया।

रात में बख़्त ख़ाँ, सिपहसालार रुहेलखंड, पारो से मिलने गया। मर्दाना लिबास में घोड़े पर सवार हो पारो आज मैदान में उतरी थी। जब वह हाथ में मशाल लिये हुए फिरंगी खेमों में आग लगा रही थी, एक फिरंगी की पिस्तौल की गोली पारो के बायें हाथ में लग गयी थी। पारो घोड़े से गिर पड़ी थी। उसकी दाहिनी जाँघ की हड्डी भी टूट गयी थी।

—मैं तुम्हें ऐसी हालत में छोड़कर दिल्ली कैसे जाऊँ, पारो ?

—जज़बात में पड़कर वक्त मत ख़राब करो, प्यारे ! मेरी-जैसी हज़ारों पारो दुनिया में आयेंगी और चली जायेंगी, मगर यह वक्त फिर हाथ नहीं आयगा ! मैं तुम्हारा इन्तज़ार करूँगी। जब तुम जीत का डंका बजाते हुए, फ़तह का सेहरा बाँधे हुए दिल्ली से लौटोगे....

४

हिन्दन नदी और बुन्देल की सराय की लड़ाई के बाद फिरंगी दिल्ली के उत्तरी पश्चिमी टीलों पर जमा हुआ था। अनुशासनहीनता के कारण दिल्ली से पेशावर तक के हिन्दू और मुसलमान रेजिमेन्ट कुचल डाले गये, निहत्थे कर दिये गये। जो दिल्ली भागकर स्वतंत्रता के संग्राम में शामिल होना चाहते थे, वे सिक्ख-राज्यों में खतम हो गये। जो भागकर काश्मीर की सीमा पर पहुँचे, काश्मीर के महाराज के हुक्म से क़त्ल कर दिये गये। और जो बच गये, उन्हें अजनाला की काल कोठरी में डालकर सुला दिया गया। होती मरदान के ५५ रेजिमेन्ट के एक हज़ार हिन्दुओं को भून दिया गया। पटियाला, नाभा और जिन्द की सिक्ख रियासतें फिरंगी की मदद पर थीं। पंजाब में रसद आने के साधन खुले हुए थे। मगर कोई परवाह नहीं, रुहेलखंड का जान-माल मुग़ल बादशाह के कदमों में लोट रहा था। रुहेलों ने अपने-आपको अपने वतन पर न्योछावर कर दिया था। दिल्ली के पूर्वी दरवाज़े से, यमुना नदी के पुल को पार कर, रुहेलखंड की फ़ौज, ख़ज़ाने और सैन्य-संगीत के साथ, बख़्त ख़ाँ दिल्ली में दाख़िल हुए। फिरंगी ने भी दूरबीन लगाकर रुहेलखंड की फ़ौज को देखा और काँप उठा। बहादुर शाह शहनशाहे-हिन्दुस्तान ने बख़्त ख़ाँ को सिपेहसालारे-हिन्द नियुक्त किया था।

बरेली में शय्या पर पड़ी हुई बीमार पारो ने जब सुना कि आज उसका प्यारा बख़्त सिपहसालारे-हिन्द हो गया, तो वह ख़ुशी से चीख़ उठी और इस चीख़ के साथ ही निकाह की आशा लिये हुए उसने दम तोड़ दिया। अच्छा हुआ, पारो, तुम चली गयी, मरकर अमर हो गयी ! तुम गुलामी में बड़ी हुई तो क्या हुआ, तुमने आज़ादी

देखी और आज़ादी में ही बिदा हो गयी। तुम कितनी .ख़ुशक़िस्मत थी कि तुमने फ़िरंगी को रुहेलखंड में वापस लौटते हुए नहीं देखा, तुमने बरेली का क़त्लेआम और बदायूँ के जलते हुए शहर की लपटें नहीं देखीं।

पारो को तिलक विद्यायल के पास दफ़ना दिया गया, मगर फ़िरंगी ने रेल की पटरियाँ लगाते वक़्त उसकी क़ब्र को भी न रहने दिया!

४, टैगोर टाउन,
इलाहाबाद।
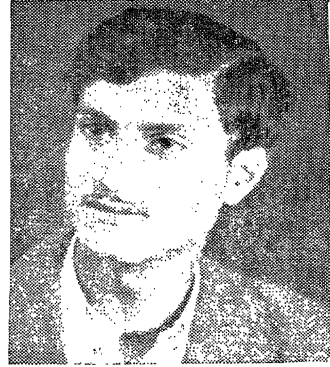
मेरे कमरे की उत्तरवाली खिड़की से थोड़ी ही दूर पर नदी बहती दिखायी देती है। नदी में हम लोगों को नहाने की मनाही है। यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि पुरखों ने नदी के इतने करीब मकान क्यों बनाया, जब वे भली भाँति जानते थे कि इसमें हमारे परिवार का कोई व्यक्ति नहा नहीं पायगा। शायद वे स्वयं नहाते हों। लेकिन यह बात मैं अन्दाज के आधार पर कह रहा हूँ, प्रमाण मेरे पास कुछ नहीं है।

नहाने के लिए हम लोगों को नदी से पानी घर लाकर स्नान-गृह में नहाना होता है। पीने के लिए भी पानी घर ले आते हैं और गिलास से पीते हैं। कुछ समय पहले मेरे पिता ने मेरे लिए एक चाँदी का गिलास ख़रीद दिया था और कहा था—तुम इस गिलास से पानी पिया करो।

—और नदी?—मैंने प्रश्न किया।

यह सुनकर मेरे पिता क्रुद्ध हो उठे—नदी-वदी कुछ नहीं, पानी पीना हो, तो गिलास से पिया करो!

—मेरा मतलब नहाने से था,—मैंने सहमकर कहा।

—नदी में नहाना कोई अच्छी बात नहीं, लोग डूब जाते हैं।

—लेकिन डूबते तब हैं, जब बरसाती बाढ़ आती है।

—वैसे भी डूब जाते हैं, नदी का क्या भरोसा। कौन कब डूब जायगा, नहीं कहा जा सकता। बाढ़ में डूब जाने पर तो पता भी नहीं चलता।

—लेकिन आजकल तो पानी एकदम साफ है, तल के पत्थर तक दिखायी दे रहे हैं।—मैंने नदी की ओर देखते हुए कहा।

—हर बात में बक-बक नहीं किया करते!—मेरे पिता ने मुझे डाँटते हुए कहा—लोग आजकल भी डूब सकते हैं। नदी के पास जाओ ही मत!

मुझे अपने कमरे को व्यवस्थित ढंग से रखना बहुत पसन्द है। कोई मित्र आ जाय और किसी चीज़ को उलट-फेर दे, तो उसके कमरा छोड़ते ही मैं ठीक करने में लग जाता हूँ। मेरे कमरे को देखकर लोगों को हैरत होती है। अपने कमरे की हर चीज़ को यथा-स्थान रखने की इसी आदत के कारण मैं रात-बिरात अँधियारे में भी ज़रूरत पड़ने पर कोई चीज़ साफ़ निकाल सकता

हूँ। जब मुझे गिलास मिला, तो उसके लिए भी मैंने एक स्थान चुन लिया, सिरहाने के पास खिड़की पर, हाथ की पहुँच के अन्दर।

गाँव में तीन-चार जने ऐसे भी हैं, जो नदी पार कर जाते हैं, उसके बहते, निर्मल, शीतल जल में तैरते हैं। डुबकियाँ लगाते हैं और घंटों वहीं पड़े रहते हैं। इन लोगों से सारा गाँव थर्राता है और लोगों का कहना है कि ये बड़े ख़तरनाक आदमी हैं। इस विषय में मैंने कभी सोचने की तकलीफ नहीं की। मैं तो अपनी खिड़की पर बैठा उन्हें नदी की लहरों को काटकर पार जाते देखता रहता हूँ और पता नहीं क्यों, मुझे इसमें बड़ा मज़ा आता है। उन्हें देखते रहना भी एक सुख है। कभी वे किसी ऊँचे पत्थर से छलाँग मारेंगे। कभी डुबकी यहाँ लगायेंगे और निकलेंगे कहीं और कभी हाथ-पाँव चलाना छोड़ लहरों के ऊपर बहते जायेंगे, कभी सूर्य की ओर मुँह करके दोनों हाथ जोड़ लेंगे और पाँवों से पानी को काटते रहेंगे। ये सब दृश्य किसी को भी लुभा सकते हैं। और जब मैं इन्हें ऐसी बहादुरी के साथ नदी की प्रचण्ड लहरों को चीरकर पार होते देखता हूँ, तो मेरी समझ में नहीं आता कि लोग उन्हें खतरनाक क्यों कहते हैं?

एक दिन उन्हें ऐसे ही तैरता देख रहा था। प्यास लगने पर मैंने अपना गिलास उठाया। एक घूँट पिया, तो तबीअत फीकी हो गयी। गिलास का पानी गरम-सा लगा। मेरे सामने ठण्डे पानी की निर्मल धारा बहे और मैं कमरे में बैठा गिलास का गर्म पानी पिऊँ, यह बात मुझे मूर्खता-पूर्ण लगी। कमरे की गर्मी भी बढ़ने लगी और मेरे जी में आया कि नदी के ठण्डे पानी में एक गोता लगा आऊँ।

यह पता लगाने कि कहीं मेरे पिता तो मुझे नहीं देख रहे हैं, मैं उनके कमरे में गया। वह सो रहे थे। इसे उचित अवसर समझ, मैं गिलास को खिड़की पर छोड़ नदी की ओर लपका।

तट पर पहुँचने पर मुझे जो अपूर्व सुख मिला, वह अवर्णनीय है। जी में आया कि किनारे खड़ा-खड़ा सारी नदी सोख जाऊ।

मैंने कपड़े उतारे और छलांग मारने की तैयारी में नदी की ओर मुँह करके खड़ा हो गया। तभी अचानक मेरी नंगी पीठ पर एक लचलचाती बेंत का प्रहार हुआ। दर्द के मारे कराहते हुए मैंने पीछे घूमकर देखा। मेरे पिता हाथ में बेंत लिये खड़े थे। उन्होंने दूसरी बेंत न मारी, मुँह से कुछ बोले भी नहीं। मैंने चुपके से अपने कपड़े उठा लिये और घर की ओर चल पड़ा। हम दोनों के बीच कोई वार्तालाप न हुआ। दोनों अपने-अपने खयालों में डूबे, एक-दूसरे की ओर न देखने की कोशिश करते हुए घर चले आये। सच्ची बात तो यह है कि हम दोनों में एक-दूसरे की ओर देखने का साहस न रह गया था।

घर पहुँचकर मैं सीधा अपने कमरे में दाख़िल हुआ। देखा, गिलास खिड़की के नीचे लुढ़का पड़ा है, पानी से फर्श भींग गया है। मेरी माँ ने आकर बताया कि मैं जो गिलास खिड़की पर छोड़ गया था, वह शायद हवा के झोंके से लुढ़क गया था। उसका गिरना सुन मेरे पिता नींद से हड़बड़ाकर उठ बैठे थे। मेरे कमरे में आये, तो देखा, मैं ग़ायब था।

उस दिन मुझे पता चला कि हर चीज़ को यथा-स्थान रखने के बारे में और अधिक सतर्क रहने की ज़रूरत है। अगर गिलास खिड़की पर न रखता, तो मेरी पीठ को बेंत की सज़ा न मिलती और मैं तैर भी लेता। खिड़की पर रखा गिलास जैसे देख रहा था कि मैं नदी-तीर जा रहा हूँ और उधर से आनेवाले एक ही झोंके से वह भूमि पर लुढ़क गया।

मैंने गिलास को उठाकर उसके स्थान पर रखा और उससे बातें करने लगा—मेरे प्यारे गिलास! तुम्हें लुढ़कने की क्या ज़रूरत थी? मैं मानता हूँ कि तुम्हें मेरे लिए एक अच्छी-सी रकम देकर ख़रीदा गया है और मुझे तुमसे पानी पीना चाहिए, लेकिन अगर यदा-कदा मैं नदी की ओर चला जाऊँ, तो इससे तुम्हारी क्या हानि होती है? तुम्हें चोट आ गयी है, यह बहुत अफ़सोस की बात है। और फिर तुम यह क्यों नहीं सोच सकते कि तुम गिलास हो, चाँदी के हो, मैं मानता हूँ, लेकिन तुम्हें तो कोई भी ख़रीद सकता था। तुम्हें बनाते वक्त कारीगर ने यह कभी

कहानी

नहीं सोचा होगा कि तुम मेरे ही घर आओगे। उसका काम तो तुम्हारा निर्माण कर देना था, किसके लिए, यह उसे मालूम न था। हाँ, इतना वह ज़रूर जानता रहा होगा कि तुम्हें कोई ख़रीदकर ले जायगा।

गिलास के उत्तर की प्रतीक्षा में मैं क्षण-भर मौन रहा। धातु का गिलास भला क्या उत्तर देता। सामने से नदी की लहरों का गरजता हुआ स्वर सुनायी दिया।

उससे कोई उत्तर न पा, मैंने खीझकर फिर कहना शुरू किया—नदी की लहरों का शोर सुन रहे हो? देखो, इस स्वर में संगीत है, जो कितने ही कवियों की वाणी को मुखरित करता है! तुम्हारी समझ में यह बात नहीं आयगी। ख़ैर। मैं चाहता हूँ, कि तुम बातें करो।

गिलास से कोई आवज़ न आयी। धत् तेरे की! कहते हुए मैंने उसे एक धक्का दिया, गिलास फर्श पर जा गिरा। गिरते वक्त एक आवाज़ हुई, जैसे वह रो उठा हो। मुझे अपने ऊपर ग्लानि हो आयी। गिलास से भला कहीं उत्तर मिलता है? हृदय में पीड़ा का अनुभव करते हुए मैंने उसे ऊपर उठाया, उसपर एक निशान और पड़ गया था। उसमें मैंने पानी भरा और फिर यथा-स्थान रख दिया।

मैंने चाहा कि नदी की ओर देखूँ, पर गिलास के दो-दो घावों से नज़र हटाने की हिम्मत न हुई। नदी से अब भी संगीत-लहरी प्रवाहित हो रही थी। गिलास अब भी चुप था। तब मैं गिलास को मनाने के लिए उसे धीरे-धीरे अपने नाख़ूनों से बजाने लगा। गिलास से भी एक संगीत फूट पड़ा। मैंने आँखें बन्द कर लीं और उसे बजाने में तन्मय हो गया। गिलास से विभिन्न प्रकार के स्वर निकल रहे थे, और मुझे लग रहा था कि मैं किसी निर्जन स्थान में किसी सुन्दरतम वाद्ययन्त्र से अपने मन के माफ़िक राग निकाल रहा हूँ। फिर अनजाने मैं बेसुध-सा होकर गीत गाने लगा।

मुझे गाते सुन मेरे पिता चिल्लाये—तुम्हें हो क्या गया है? सारे घर को सर पर उठा रहे हो! गिलास कोई बाजा है, जिसे तुम इस तरह बजा रहे हो? गिलास पानी पीने के लिए है, बजाने के लिए नहीं।

गीत, संगीत रुक गये। लेकिन अपने पिता की टोकाई मुझे बहुत बुरी लगी, इतनी बुरी कि उसके बाद मैं जीवन-भर कभी गाने-बजाने की सोच तक न सका। उसके बाद मैंने कभी कोई गीत न गाया, गिलास से सिर्फ़ पानी पीता रहा, उससे कभी कोई कोमल स्वर न निकाल सका।

मैंने फिर न गाया, लेकिन नदी की लहरों के संगीत को तो मेरे पिता बन्द नहीं कर सकते थे। अपनी खिड़की पर बैठा मैं घंटों उसका संगीत सुनता रहता। कभी-कभी प्रबल इच्छा होती कि गिलास में पानी भरकर उसे बजाऊँ, पर पिताजी के डर का ख़याल आते ही मैं उसे भूल जाता। उस वक्त मेरा दुःख जैसे सौगुना, हज़ारगुना बढ़ जाता। मन मारकर अन्दर के आँसू अन्दर ही पीते हुए मैं नदी की स्वर-लहरी सुनता रहता।

इस तरह कुछ दिन बीते। इस बीच अपना मन बहलाने के लिए मैं गिलास को जेब में लिये फिरने लगा, ताकि जहाँ प्यास लगे पानी पीऊँ और गिलास भी अपने घाव भूल सके।

*

पूरे चाँद की रात थी। हमारे घर में सबने पूर्णमासी का व्रत किया था। रात सत्यनारायणजी की कथा हुई। विविध भाँति का भोजन बना। हम-सबने खूब डटकर खाया। गर्मियों का मौसम, दिन-भर के भूखे, ज्यादा खा लिया था। सो प्यास बढ़ने लगी। मैं गिलास से पानी पीता रहा। पानी गर्म हो गया था और मेरे सोने के वक्त तक तो पानी खत्म भी हो गया। घर-भर में पानी की एक बूँद न रह गयी। मन मारकर मैं लेट गया।

कुछ देर तक लेटे-लेटे करवट लेता रहा। बार-बार गिलास को उठाकर देखता, तो रोता! आसमान में पूर्ण-मासी का चाँद सोलहो शृंगार करके मुस्कराने लगा। मेरी खिड़की के अन्दर भी उसकी चमकीली किरणें झाँकने लगीं। थोड़ी ही देर में वे मेरे कमरे के अन्दर चली आयीं। उसी चाँद की किरणें नदी की लहरों पर भी चमकने लगीं। पहाड़ों पर, खेतों के लहलहाते धानों पर एक ही चाँद की किरणें चमक रही थीं। उस वक्त मुझे लगा कि हम-सब किसी एक ही ज्योति के दर्शन कर रहे हैं,

जिससे हमें प्रकाश, जीवन और शीतलता मिल रही है। मैं कभी नदी की ओर देखता, कभी अपनी ओर और कभी चाँद की ओर।

देखते-देखते कुछ समय तक मैं अपनी प्यास भूल गया। लेकिन कब तक भूलता? धीरे-धीरे मेरा गला सूखने लगा और मेरी बगल में रखा गिलास उसे मिटाने का कोई उपक्रम तक करने को तैयार न हुआ। उल्टे उसे रीता देखकर मेरी प्यास और भी बढ़ने लगी, जैसा कि होता ही है।

मेरे लिए लेटे रहना अब असम्भव हो गया। उठकर तुर्गनेव का 'पहला प्यार' पढ़ने के लिए, जिसका कुछ अंश मैंने दिन में खत्म किया था, मैंने लैम्प जलाना चाहा, लेकिन इस डर से कि कहीं मेरे पिता रात के इस बेवक्त लैम्प को जला देख नाराज़ न हों, जैसा कि वे एक-दो बार हो चुके थे, मैं चाँद की किरणों के प्रकाश में ही उसे पढ़ने लगा।

मोहब्बत के चाँद की जोत हो, तुर्गनेव का-सा साहित्य हो, पूरे चाँद की रात हो, और रात्रि के मध्य में मदमाती, बलखाती किसी पहाड़ी नदी का स्वर हो, तो मुझे लगता है कि स्वर्ग मिल गया, जीवन की सर्वोत्तम चीज मिल गयी।

मैं पढ़ता रहा, काफ़ी देर तक। पता नहीं, कितने घंटे तक पढ़ता रहा। 'पहला प्यार' के नायक ने रात के वक्त अपनी प्रेमिका के घर से अपने पिता को आते देखा और मेरी खिड़की से चाँद की किरणें हटकर दूसरी ओर चल दीं। मैंने पुस्तक बन्द कर दी और नदी की ओर देखने लगा। वहाँ अब भी चाँद, हजारों, लाखों चाँद खेल रहे थे। अचानक मुझे लगा कि अगर अपनी प्यास मैंने अभी न मिटायी, तो मैं जीवित न रह सकूँगा और कल सुबह इस चारपाई से, जिसपर मैं बैठा हूँ, मेरी लाश ही उठेगी।

मैं नदी की ओर भागा। किनारे पर पहुँचा, तो ख़याल आया, क्यों न पानी में उतरा जाय? दो गोते भी मार लूँ, जरा अन्दर जा साफ़ ठण्डा पानी पिऊँ। यह अवसर आख़िर बार-बार तो नहीं आयगा।

मैंने चाँद की ओर देखा, वह मुस्करा रहा था। मैंने जल्दी-जल्दी अपने कपड़े उतारे और पानी में उतर गया।

डुबकी लगाने के लिए एक हाथ से नाक पकड़ मैंने साँस रोकी, ताकि नाक में पानी न भरे। सहसा पानी के अन्दर मेरे पावों से कोई टकराया। मैं आशंका से भर उठा। पीछे की ओर घूमकर देखा, तो मेरे पिता पानी के अन्दर से ऊपर उठ रहे थे। आँखें फैलाकर मैंने फिर उधर देखा, तो वह ग़ायब हो चुके थे। थोड़ी देर में मैंने उन्हें किनारे पर देखा और फिर घर की ओर जाते हुए। मेरा ख़याल है कि उन्होंने मुझे नहीं देखा होगा, क्योंकि ऊपर उठते वक्त मेरी ओर उनकी पीठ थी।

घर पहुँचकर मैं बीती हुई घटना के बारे में सोचने लगा। मेरे पिता, जिन्होंने मुझे नदी-किनारे देख बेंत से पीटा था, स्वयं रात के उस बेवक्त....आख़िर इसका मतलब क्या है?

*

उस घटना को भूल सकना, मेरे लिए असम्भव था। आज कई दिनों के बाद मैंने अपने कमरे की दशा पर विचार किया, हर चीज़ अपने स्थान से हट गयी थी। मुझे यह सोचकर ताज्जुब होता है कि क्या सचमुच मैं इतना बेसुध हो गया था, जो कमरे की, मेरी आँखों के सामने ही, ऐसी हालत हो गयी। चारों ओर गन्दगी, हर चीज़ अव्यवस्थित, धूल की पर्तें जमी हुई।

कमरे का सामान ठीक तरह से सँवारकर मैं खिड़की पर जा बैठा। वहाँ एक मकड़ी जाला बुनने में व्यस्त थी, नदी का दृश्य कुछ-कुछ धुँधला-सा दिखायी दे रहा था। दरवाज़े की ओर देखा, एक मकड़ी हवा में लटकती हुई, वहाँ भी तेजी से जाला बुन रही थी।

मैंने चाहा कि उन्हें हटाकर उनके जाले तोड़ दूँ, ताकि मेरा रास्ता साफ़ रहे, किन्तु तभी मेरी पत्नी ने सकुचाते हुए मेरे पास आकर कहा—अब इस घर में एक खिलौना आनेवाला है, जी!—और उसने सर झुका लिया।

मैं मकड़ी के जाले की ओर देखता रहा और अपनी पत्नी के शब्दों पर सोचता रहा, सोचता रहा।

पीपुल्स बुक स्टाल,
युनिवर्सिटी गेट, बनारस।

कोई चालीस मिनट से वे लगातार लड़-झगड़ रहे थे। फ्लैट के उस छोर से आनेवाली मन्द, अस्पष्ट आवाज़ें दहलीज़ में आ-आकर तैर रही थीं। सोफ़ी अधिक ध्यान न देते हुए सिलाई की मशीन पर झुके-झुके सोचने लगी कि यह भिनभिनाहट कैसी है? मालकिन की आवाज़ ही अधिकतर सुनायी देती है। क्रोध से कर्कश और आँसुओं से भींगी आवाज़ का बहाव और झोंके आ लगते हैं। मालिक की आवाज़ अधिक सधी हुई है। उसकी गम्भीर आवाज़ आहिस्ते से जमकर बन्द दरवाज़ों को भेदती हुई दहलीज़ तक आ पहुँचती। अपने छोटे, ठंडे कमरे में सोफी को झगड़ा ऐसा लग रहा था, मानो मालकिन के एकाकी भाषणों के बीच-बीच अद्भुत प्रकार का अशुभ सन्नाटा आ दबोचता है। किन्तु कभी-कभी मालिक को भी गुस्सा आ जाता और तब इन झोंकों के बीच सन्नाटे के बजाय एक कर्कश, गम्भीर तथा रुष्ट चीख़ निकलने लगती है। मालकिन का ऊँचा, कर्कश स्वर पूरे वेग के साथ उठता। क्रोधित होने पर आवाज़ में एक सपाट एक-स्वरता आ जाती थी। किन्तु मालिक कभी ऊँचे, कभी धीमे स्वर से बोलता, शब्दों को चढ़ा-उतारकर और आकस्मिक वेग के साथ, जिससे झगड़े में उसका भाग सुनायी पड़ जाने की अवस्था में ऐसा लगता, जैसे धमाकों की एक अलग-सी लड़ी हो, भु-भू-भु-भु-भुः! मानो धीरे-धीरे कुत्ता भौंकता हो। कुछ समय बीत जाने पर सोफ़ी ने इस कलह से उत्पन्न होनेवाली आवाज़ की ओर ध्यान देना बिल्कुल बन्द कर दिया। वह मालकिन की बाडिस की मरम्मत कर रही थी और इस कार्य को उसके सारे ध्यान की आवश्यकता थी। काम करते-करते अब वह बहुत थक गयी थी। सारा शरीर दर्द करने लगा था। आज के दिन इतना काम जो किया था। कल का दिन भी ऐसा ही रहा था और परसों भी। उसके लिए सारे ही दिन एक-से रहते। शरीर भी तो अब पहले-जैसा नहीं रहा। दो वर्ष बीतने पर वह पूरे पचास की हो जायगी। जब से याद पड़ता है, हर दिन काफी काम करना पड़ता था। छुटपन में, उसे याद आया, वह कैसे देहात में आलुओं के बोरे ढोती थी। आहिस्ते-आहिस्ते धूल उड़ती सड़क पर कन्धों पर बोरा लादे वह चली जाती थी, दस कदम चलकर निर्दिष्ट स्थान पर जाती, किन्तु अन्त अभी कहाँ? हर फेरे के अन्त के माने होते एक नये फेरे का आरम्भ।

उसने अब अपनी दृष्टि मशीन से उठायी। सर को इधर-उधर किया। चकाचौंध-सी लगी। आँखों के सामने रंगीन चित्तियाँ तथा रंग-बिरंगी रोशनी नज़र आने लगी। प्रायः ऐसा होता ही है अब। लग रहा था, मानो एक पीले रंग का चमकीला कीड़ा एक रंगीन पट की दाहिनी ओर से ऊपर को रेंग रहा है। वह ऊपर, और अधिक ऊपर चढ़ने का प्रयत्न करता है, किन्तु वह वहीं रुक जाता है और उसके चारों ओर अनगिनत लाल-हरे सितारे आँखों के

सम्मुख झिलमिलाकर गायब होते रहे। वे उसके और बाडिस की बखिया के बीच चल-फिर रहे थे। उसके आँख बन्द कर लेने पर भी वे वहीं रुके रहते। एक क्षण पश्चात् मशीन फिर कर-कर करने लगी। मालकिन को निश्चय ही कल सवेरे बाडिस चाहिए थी। किन्तु इन कीड़ों ने तो परेशान कर रखा है!

एकाएक दहलीज़ के दूसरे कोने से तेज-तेज आवाज़ें आने लगीं। एक दरवाज़ा खुल गया था। शब्दों ने जो फ्रेंच भाषा में थे, अपना अस्तित्व अपनाना आरम्भ कर दिया। मालकिन की बड़बड़ाहट के उत्तर में मालिक ने रुक्षता से एक ठट्ठा मारा, जिसे सुनकर भय उत्पन्न होने लगा। गेलरी में भारी-भारी कदमों की चाप सुनायी दी। छतरी के स्टैंड के पास चर-चर-सी हुई और दरवाज़ा फट से बन्द हो गया।

सोफ़ी अब फिर अपने काम में लग गयी। किन्तु वे निष्ठुर कीड़े! वे रंग-बिरंगे सितारे जाने का नाम ही न लेते थे। उसपर सारे जोड़ों में बल खाती पीड़ा। क्या अच्छा हो यदि एक दिन के लिए बिस्तर पर आराम करने को मिल जाय, एक बड़े बिस्तर पर, उसी गर्म, मुलायम, परोंवाले बिस्तर पर, जो मालकिन का है। केवल एक ही दिन के लिए।

घंटी की टन्-टन् ने उसे चौंका दिया। भिड़ों-जैसी भयानक भिनिर-भिनिर को सुनकर वह सदा ही कूद जाती थी। वह उठ बैठी। मशीन मेज़ पर रखकर एपरन को बराबर किया। टोपी सीधी की और दहलीज़ की ओर चल दी। घंटी अपनी भयानक आवाज़ के साथ फिर बजी। मालकिन आपे से बाहर थी।

—उफ! सोफ़ी! मैं तो समझी तू मर ही गयी!

सोफ़ी ने कुछ न कहा। कहती भी क्या। कपड़ों का बकसा खुल गया था। मालकिन उसके सामने खड़ी थी। बाज़ू में कई तरह के कपड़ों का पुलन्दा लदा था और उससे भी अधिक कपड़े बिस्तर पर ढेर बने पड़े थे।

मालिक जब तरंग में आता था, तो अपनी स्त्री को 'ब्यूटा रूबाँ' कहकर पुकारता था। उसे यह भारी-भरकम स्त्रियाँ ही पसन्द थीं। सींक जैसी बेकार स्त्रियों से क्या लाभ! 'हेलेना' के नाम से तो वह उठते-बैठते ही सम्बोधित करता।

मालकिन भी अपनी सहेलियों को जोड़कर कहती—बहिन, अब तो बहुत दिन हो गये। अपनी पोटरेट लाने के लिए अब तो लूवर जाना ही होगा। यह भी कोई बात है कि पेरिस में रहते-रहते जीवन बीत जाय और लूवर एक बार भी न जा पायें। ठीक है न?

आज की रात मालकिन बड़ी ही सुन्दर लग रही थी। गालों पर सुर्खी दौड़ रही थी। नीली-नीली आँखों में अद्भुत प्रकार की चमक थी, जो लम्बी-लम्बी पलकों के बीच और भी सुहानी लगती थी और उसके छोटे-छोटे, लाल, सुनहरे बाल बिखर गये थे।

मालकिन ने नाटकीय ढंग से कहा—सोफी! कल हम लोग रोम जा रहे हैं, कल ही सवेरे!—साथ ही खूँटी के हुक से और पोशाक उतारकर बिस्तर पर फेंक दी। ऐसा करते समय उसका गाउन कुछ-कुछ खुल गया, जिससे उसकी बाडिस नज़र आ गयी, जो बारीक, नाज़ुक, जरी के काम से चमचमा रही थी। उसके नीचे दूधिया रंग का भरा-भरा शरीर था।

—हमें तुरन्त तैयार हो जाना चाहिए!—आदेश हुआ।

—किन्तु, मालकिन, कितने समय के लिए?

—पन्द्रह दिन के लिए....तीन मास के लिए....मैं कैसे बताऊँ?—मालकिन चीखी।

—किन्तु उसमें तो बड़ा अन्तर है, मालकिन।

—मुख्य बात यह है कि हमें तुरन्त चल देना है। मैं ही जानती हूँ, जो मुझसे आज की रात कहा गया है! मैं अब इस घर में लौटकर आऊँ, तो....कोई नम्रता से पेश आये, यह बात दीगर रही।

—तो हम बड़ावाला ट्रंक लिये लेते हैं। मालकिन, मैं तुरन्त जाती हूँ और ले आती हूँ।

बाक्स-रूम की हवा में धूल तथा चमड़े की मिली-जुली गन्ध थी। बड़ा ट्रंक एक कोने में अकड़ा पड़ा था। इसको बाहर निकालने के लिए सोफ़ी को झुककर ज़ोर लगाना पड़ा। कीड़े तथा रंगीन सितारे उसकी आँखों के सामने

टिमटिमा रहे थे। जब वह सीधी होकर खड़ी हुई, तो उसका सर चकरा गया।

नौकरानी जब भारी ट्रंक खींचकर निकालने लगी, तो मालकिन आकर बोली—सोफ़ी, आओ, मैं तुम्हारी सहायता करूँ।

सोफ़ी का चेहरा मुर्दों-जैसा लग रहा था। मालकिन बूढ़े, बदसूरत चेहरों को अपने पास फटकने भी न देती थी। किन्तु सोफ़ी इतनी निपुण और होशियार थी कि उसे निकालना पागलपन में शुमार होता।

—आप कष्ट न करें, मालकिन,—सोफ़ी जानती थी, मालकिन ने हाथ लगाया नहीं कि दराजें खुल जायेंगी, चीजें बिखर जायेंगी और बस, इसका कोई अन्त ही न होगा—मालकिन इतनी रात हो गयी है, अब आप आराम करें, सोयें, मालकिन।

नींद! मालकिन को नींद कहाँ? वह अत्यन्त परेशान थी।

—ये पुरुष!....ये पिशाच! कोई लौंडी तो हूँ नहीं! ऐसा व्यवहार मैं नहीं सहन कर सकती!

सोफ़ी कपड़े बाँध रही थी। काश, केवल एक दिन के लिए मालकिन का बिस्तर मिल जाता! काश, उस बड़े मुलायम बिस्तर में मैं एक दिन खर्राटे लेकर सो लेती! कभी उँघती, कभी क्षण-भर के लिए जाग जाती। केवल एक ही दिन के लिए!

मालकिन बड़बड़ा रही थी—और इनकी सबसे बड़ी चाल क्या है? पैसा है ही नहीं। मुझे कपड़ा ख़रीदने की कोई आवश्यकता नहीं। क्या खूब! तो मैं नंगी घूमूँ?—वह अपने हाथ फेंकती हुई बोली—और यह कहना कि वे पैसों का प्रबन्ध कर ही नहीं सकते, ऊँचे दर्जे की मक्कारी है। बेकार की कवितायें लिखना और उनको अपने खर्चे पर छपवाना! इससे तो बेहतर है, कोई दूसरा काम करें!—वह अब कमरे में इधर-उधर टहल रही थी—उसके ऊपर इनके महान पिताजी! मैं पूछती हूँ बुड्ढा है किस काम का? ऊपर से फरमाते हैं, हेसिप्पी मेरे विषय में क्या सुन्दर कवितायें लिखता है! उसमें कितना बल है, कितनी शक्ति! उसपर तो मुझको गर्व होना चाहिए! उसकी आवाज़ बूढ़ों की भाँति कँपकँपाने लगी—क्या यह कम है कि उस बुड्ढे को उसके सामने ही नहीं झाड़ देती?—और बुड्ढे का ध्यान आते ही उसके मन में घृणा की एक झुरझुरी आयी, जिससे उसकी नाक-भौं अद्भुत प्रकार से खिंच गयीं और उसका सर, उँगलियाँ, पैर, सब हिलकर रह गये। वह कह रही थी—और आपके हेसिप्पी के क्या कहने हैं! गंजे! और बचे-खुचे बाल हैं, उनपर होती है खिज़ाब की पालिश! ऊपर से वे कवितायें!—उसका ध्यान आते वह हँस पड़ी—किन्तु, सोफ़ी, तुम किस विचार में हो? उस पुरानी हरी जाकेट को क्यों रख रही हो?

सोफ़ी ने कुछ कहे बग़ैर ट्रंक से जाकेट निकाल दी।

आज की रात सोफ़ी मरीज़-जैसी क्यों लग रही है? चेहरा पीला हो रहा है और दाँत नीले। मालकिन काँप गयी। बड़ी भयानक शक्ल है। उसको अब छुट्टी दे देनी चाहिए। किन्तु काम तो होना ही है। वह अब क्या करे? उसकी व्यथा कुछ और बढ़ गयी।

—व्यथा का दूसरा नाम ही जीवन है!—वह कहती हुई बिस्तर के किनारे बैठने लगी, पलंग की स्प्रिंग उसको दो-तीन बार धीमे से झुलाकर स्थिर हो गयी।

—गाँठ भी बँधी, तो ऐसे व्यक्ति से! निश्चय ही मैं शीघ्र ही बूढ़ी तथा मोटी हो जाऊँगी। दूसरे व्यक्तियों के साथ लग-लगाव का अवसर भी तो नहीं आने दिया। इसपर आपका यह व्यवहार....—वह फिर उठी और कमरे में निरुद्देश्य इधर-उधर चलने-फिरने लगी—मैं अब यह बर्दाश्त नहीं कर सकती!—वह अब लम्बे शीशे के सामने खड़ी होकर अपने पूरे शरीर पर नज़र दौड़ा रही थी। कोई भी उसे देखकर तीस से ऊपर नहीं बतायगा। शीशे में अपनी सुन्दर आकृति के पीछे उसने एक दुबला, वृद्ध और पीड़ित शरीर देखा, जिसका चेहरा पीला हो रहा था तथा दाँत नीले हो रहे थे। वह ट्रंक के पास बैठी थी। दृश्य सचमुच बड़ा ही असाधारण था। सोफ़ी कँपकपाते जाड़े में सड़क के किनारे खड़ी किसी भीख माँगनेवाली दुर्बल की भाँति दुखी लग रही थी। क्या इन भिखारियों को देखकर पैसे देने के साथ हमको दुख और सहानुभूति नहीं

होती ? किन्तु यह दृश्य तो पैदल चलनेवालों को दिखायी देते हैं, कार पर चलनेवालों को नहीं, और कार रखने के प्रति उदासीनता ! यह हेसिप्पी की दूसरी नीचता है ! मालकिन अब शीशे से दूसरी ओर मुड़ गयी ।

किन्तु फिर विचार आया एक ऐसे प्रेमी का, जिसका चेहरा ऐसा ही पीला हो और दाँत ऐसे ही खुरदुरे तथा नीले-नीले । वह काँप गयी । उसका दिल घबरा उठा । सोफ़ी की हरी-हरी, सूखी आँखों की ओर उसका फिर ध्यान गया । सोफ़ी का चेहरा देखकर जो आज उसकी दशा हुई, वह तो कभी भी न हुई थी ।

सोफ़ी आहिस्ते से अपने घुटनों के सहारे उठी । पीड़ा की एक लहर उसके चेहरे पर दौड़ गयी । उसने दराज़ से निकालकर मोज़ों की छः जोड़ियाँ गिनीं । वह अब ट्रंक की ओर बढ़ रही थी । वह क्या थी, एक चलती-फिरती लाश !

—ओफ़ !—मालकिन ने उसकी ओर देखकर कहा—जीवन क्या है, एक व्यथा है !—सोफ़ी को अब वह सोने के लिए भेज देगी, किन्तु स्वयं उससे काम समाप्त न हो पायगा । प्रातः जाना है ही । हेसिप्पी से भी उसने कह दिया है, जिसने यह बात हँसकर टाल दी थी । उसको विश्वास नहीं कि मैं चली जाऊँगी । वह इस बार हेसिप्पी को एक सबक़ देगी । रोम पहुँचकर वह लीनो से मिलेगी। कितना सुन्दर है लीनो और बड़ा आदमी भी तो है वह ! सम्भवतः....किन्तु फिर वह सोफ़ी के चेहरे के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सोच पायी । सोफी की सूखी आँखें, नीले दाँत और पीला, झुर्रीदार शरीर !

वह चीख़नेवाली ही थी कि सँभलकर उसने कहा—सोफ़ी, मेरे ड्रेसिङ्ग टेबिल पर जाओ और पाउडर लगा लो । वही डारिन नं० २४ । और सीधे हाथ दराज़ में लिपस्टिक है, वह भी ।

सोफ़ी उठी । मालकिन ने अपनी आँखें कसकर बंद कर रखी थीं । सोफ़ी के उठने से उसके शरीर के जोड़ किस भयानक आवाज़ के साथ चटखे थे ! वह आहिस्ते-आहिस्ते चलकर ड्रेसिङ्ग टेबिल के पास थोड़ी देर खड़ी रही । कैसी धीमी एक सर्-सर् की आवाज़ आयी ! अब वह आहिस्ते-आहिस्ते लौट रही थी । मालकिन ने आँखें खोलीं । सोफ़ी अब बहुत ठीक थी । पहले से कहीं बेहतर ।

—धन्यवाद, सोफ़ी !—अब तुम्हारी थकन कम हो गयी होगी ।—मालकिन ने तेज़ी से उठते हुए कहा—और अब हमको जल्दी करना चाहिए ।—मालकिन बाक्स-रूम में पहुँची—अरी, यह क्या, चुड़ैल !—उसने हाथ फेंकते हुए चिल्लाकर कहा—सोफ़ी ! तू मेरी सायंकाल की नीली पोशाक तो रखना भूल ही गयी !

अंग्रेजी से अनु० अलख जौहरी

उपन्यास

के तीसरे अंक में

बंगला के सुप्रतिष्ठित कथाकार

प्रेमेन्द्र मित्र

का सुप्रसिद्ध उपन्यास

जलूस

'क्या कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है' पर आये कुछ और मन्तव्य हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। खेद है कि स्थानाभाव के कारण एक साथ इससे अधिक हम प्रकाशित नहीं कर सकते। आप अपने मन्तव्य कुछ और ठोस और संक्षिप्त करें, तो इन चार पृष्ठों में कम-से-कम आठ मन्तव्य प्रकाशित हो सकते हैं। हम स्वयं किसी के मन्तव्य को भरसक काटना पसन्द नहीं करते। हम अवश्य यह प्रयत्न करेंगे कि सभी आये मन्तव्य क्रम से प्रकाशित हो जायँ।

क्या कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है?

विमलकिशोर (ग्वालियर)

'हंस' जिन दिनों प्रकाशित होता था, बात तब की है। मेरे मामाजी ने मुझसे एक दिन कहा—प्रेमचंदजी के समय में जब 'हंस' निकलता था, तब कितनी सुन्दर रचनाएँ होती थीं उसमें, किन्तु अब तो (अमृतरायजी के संपादकत्व में) हाय-हाय के सिवा और कुछ भी नहीं रहा इसमें।

मुझे भी उत्तर देना पड़ा—अब हाय-हाय होने लगी है, तो हाय-हाय आने भी लगी।....

उन्हें चुप हो जाना पड़ा। बात ठीक थी। लेखक समाज से परे तो नहीं है और जब परे नहीं है, तो जो समाज में हो रहा होगा, उसी का तो चित्रण करेगा, जिसका वह स्वयं अनुभव करेगा। समाज खुशहाल है, तो साहित्यकार भी मनोरंजन की बात सोचेगा, अन्यथा इस ओर उसका ध्यान जायगा ही कैसे यदि वास्तव में वह जन-जीवन से प्रेरणा लेनेवाला साहित्यकार होगा। यदि जाता है, तो उसका प्रयत्न अवांछनीय ही समझा जायगा, ठीक उसी प्रकार, जैसे किसी क्षुधित के समक्ष हम पुलाव खायें।

मैं अपने से ही इसकी सत्यता का और निकट से और स्पष्ट अनुभव करता हूँ। मैं आजकल बेकार हूँ, इसलिए सुबह से शाम तक दफ्तरों के चक्कर काटता रहता हूँ कि कहीं कलम घिसने का अवसर मिल जाय, मिल और कारखानों के अधिकारियों की खुशामद करता हूँ कि कहीं खड़े होने का स्थान मिल जाय, किन्तु सब प्रयत्न व्यर्थ होते हैं और मन खिन्न हो उठता है। दूसरे व्यक्तियों को हँसते-गाते और मनोरंजन करते देखता हूँ, तो सोचता हूँ कि ये-सब मेरी ओर से उदासीन क्यों हैं! वे क्यों नहीं सोचते कि मेरी भी उनके ही समान घूमने-फिरने की इच्छा होती होगी! क्यों नहीं सारे लोग मिलकर प्रयत्न करते कि बेकारी दूर हो और तब हम-सब मिलकर हँसें-गायें, उछलें-

कूदें ? मन करता है कि सारे संसार में आग लगा दूँ, नहीं तो कोई मुक्ति का मार्ग बताये। मेरे लिए मनोरंजन कुछ भी मूल्य नहीं रखता। मैं समझता हूँ कि मेरे-सरीखे न जाने कितने लाखों-करोड़ों व्यक्ति बेकार होंगे, बीमार होंगे, अपाहिज होंगे, जो तरह-तरह के कष्ट भोगते हुए मेरी ही तरह सोचते होंगे। ऐसी दशा में मनोरंजन की बात करना कहाँ तक युक्तियुक्त होगा, सोचा जा सकता है। तब हम साहित्य से अपेक्षा करते हैं कि वह हमें जीवन के संघर्ष में विजयी होने का उपाय बताये।

कहानी साहित्य का एक ऐसा रूप है, जो थोड़े में, सरलता से, विषय को नीरसता से बचाते हुए हमारा मार्ग प्रशस्त करती है। किन्तु आज का पूँजीवादी युग कभी नहीं चाहता कि हम अपनी समस्याओं का निराकरण ढूँढ़ लें, अन्यथा हम इस व्यवस्था ही को न उखाड़ फेंकेंगे। इसलिए वह ऐसे साहित्यकारों को प्रश्रय देता है, जो थोथे मनोरंजन की बात करते हैं। बेशक, मनोरंजन में ऐसी शक्ति होती है, जो गम्भीर से-गम्भीर व्यक्ति को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। किन्तु क्या यह अफ़ीम या शराब के नशे के समान हानिकारक नहीं है, जो हमें वास्तविकताओं की ओर से विमुक्त कर देता है ? तब कुछ लोग कहेंगे कि, नहीं, भई, निपट मनोरंजन तो भाड़ों का काम है। कहानी में मनोरंजन भी हो और कुछ और भी हो, साथ-साथ, जैसा कि जुलाई अंक में प्रकाशित कुछ व्यक्तियों की सम्मत्ति से प्रकट होता है। किन्तु मैं तो इसे भी ठीक नहीं समझता। मैं तो चाहूँगा कि जब किसी के मकान में आग लगी हो, तो सारे ही व्यक्ति उसके शमन के लिए जुट जायें। बैठ के 'आग तापना' या 'थोड़ा तापकर फिर बुझाना' कहाँ तक उचित होगा ? 'देवदास' की कहानी से तो हम सभी परिचित हैं। कितना गांभीर्य है उसमें। किन्तु क्या हम विमुख होते हैं उससे ? नहीं। क्योंकि संताप प्रेरणाप्रद भी होता है और आनन्दोल्लास आत्मम्भीर बना देता है। तब यदि 'कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन ही है' ऐसा मान लिया गया, तो मैं समझूँगा कि कहानी पथभ्रष्ट हो गयी। इसलिए मैं उसे, वर्तमान परिस्थितियों में, मनोरंजन से बचाये रखना चाहता हूँ। किन्तु विभ्रम न हो, इसलिए स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि 'लगाव' और 'मनोरंजन' में अन्तर है। किसी कहानी को हम इसी लिए ही पसन्द नहीं करते, उसके प्रति हमारी रुचि मात्र इसलिए ही नहीं होती है कि उससे हमारा मनोरंजन होता है। उसके प्रति हमारे लगाव का कुछ और भी कारण हो सकता है, जैसा कि 'देवदास' के सम्बन्ध में मैंने अभी बताया।

अन्त में 'कहानी' को धन्यवाद देना चाहूँगा, जिसने ऐसे विषय को हमारे समक्ष रखकर हमें भी अवसर दिया कि हम भी कुछ सोचने पर विवश हों। आशा है, भविष्य में भी हमारे सामने ऐसे ही प्रश्न आते रहेंगे और यह क्रम टूटेगा नहीं। 'कहानी' का यह कार्य प्रशंसनीय है।

ए० एन० कंठ (मुज़फ्फ़रपुर)

मैं आपके इस नये स्तम्भ का स्वागत करता हूँ। मैं कहानी का ग्राहक भी हूँ और इसकी प्रगति में दिलचस्पी भी रखता हूँ। आज का हमारा जीवन इतना व्यस्त हो गया है कि समय की कमी बराबर खटकती रहती है। और इस व्यस्त जीवन में मनोरंजन की भी बहुत अधिक आवश्यकता है। 'कहानी' पत्रिका से मनोरंजन भी होता है। लेकिन मैं नहीं मानता कि कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन ही है। मनोरंजन के साथ साथ और भी बातें हैं। आज की कहानी हमारे जीवन से सम्बन्ध रखती है। जीवन और कहानी दोनों अन्योन्याश्रय हैं। जीवन में कटुता भी है और विषमता भी है। तो आज की कहानी, अगर सचमुच हमारी कहानी है तो, इसमें मनोरंजन के साथ तीखी वेदना भी होनी चाहिए। ऊपरी सतह पर भले ही मुस्कुराहट हो, मगर भीतर तो कटु व्यंग्य अनिवार्य ही है। और तभी कहानी का प्रभाव शाश्वत हो सकता है। दुख और पीड़ा हमें जीवन के निकट पहुँचा देती है। कहानी का उद्देश्य जीवन की समस्याओं से पलायन नहीं है, वरन् उसके मार्मिक स्थलों को स्पर्श करना है।

ललितकिशोर (पटना)

'कहानी' के जुलाई अंक में प्रकाशित अपने कुछ साथियों के विचार मैंने देखे।

'क्या कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है' यह प्रश्न जब आता है, तो अनायास ही सन् १९३६ में हुए साहित्य और साहित्यकारों के आन्दोलन की याद ताजी हो आती है। इससे मिलती-जुलती अनेक समस्याएँ उस समय भी विवाद के विषय बन रही थीं, और संभवतः इसी कारण 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना कर देश में नयी चेतना के प्राण फूँकनेवालों ने एक मत होकर स्वीकार कर लिया कि कला जीवन के लिए है।

वैसे देखने में ये बातें पुरानी भले ही हो गयी हों, परन्तु इनके भीतर जो समस्याएँ उस समय थीं, वे आज भी वैसी ही हैं।

एक युग पहले कहानियों का जो रूप था, आज वह नहीं है। युग-परिवर्तन ने कहानियों की परम्परा को विकसित और परिमार्जित किया, उसके रूप को निखारा और सँवारा और उनके प्राणों मे नयी प्रेरणा भरी। प्रकाश चन्द्र गुप्त के मतानुसार आज की कहानी कहानीकार के सामाजिक दायित्व के प्रति आग्रह दिखाती है और एक नवीन शोषण-रहित संस्कृति में आस्था रखती है। आज के युग में कहानी का प्रयोग अस्त्र की भाँति होता है। ऐसी परिस्थिति में मनोरंजन का स्थान नहीं है।

कथा साहित्य का क्रम-विकास देखने से यही पता चलता है कि दिनों-दिन कहानी की जड़ें जिन्दगी के भीतर धँसती गयीं और जीवन की कुरूपता, दैन्य और कुण्ठा के विरुद्ध अपनी समस्त शक्तियों के साथ वह लड़ रही है। यह लड़ाई उस समय तक चलती रहेगी, जब तक इस कुण्ठा, कुरूपता और दैन्य का पूरी तरह अन्त न हो जाये।

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब माना गया है और कहानी जीवन की प्रतिच्छाया है। कहानी अपनी मंज़िलें तय कर आज जहाँ पहुँच गयी है, उसके आगे जीवन का क्षेत्र बिखरा है।

हिन्दी कहानी की सबसे ऊँची उड़ान प्रेमचन्द की कहानियों पर ख़त्म होती है। प्रेमचन्द ने केवल जिन्दगी का चित्रण किया। इसमें संदेह नहीं कि उनमें भी मनोरंजन है, परन्तु जान-बूझकर केवल मनोरंजन के लिए उन कहानियों की रचना नहीं हुई थी। वह प्रेमचन्द के मन में उठनेवाली भावनाओं की तस्वीरें थीं। प्रेमचन्द की कहानियाँ मनुष्य का उच्चतम रूप सामने लाती हैं और पाठकों को अपने चरित्र के निर्माण में सहायता पहुँचाती हैं।

आज का पाठक पहले तिलस्मी और जासूसी उपन्यास पढ़ता था, किस्सा तोता-मैना और बैताल पचीसी पढ़ता था। इस नये कथा-साहित्य में पाठक को तिलिस्मी और जासूसी कथाओं के समान आकर्षक रोचकता मिली, किन्तु साथ ही साथ उसके मनुष्यत्व को निखारने और परिष्कृत करनेवाला एक गुण भी मिला। कहानियों में पाठकों को सामाजिक समस्याओं के चित्र मिले, जिनकी उपेक्षा कहानी-साहित्य अब तक करता आया था।

मैं इस घोषणा का विरोध करता हूँ कि कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है। ऐसी बात प्रतिक्रियावादी लेखक या पाठक कुछ देर के लिए कह सकते हैं, क्योंकि जनता को गुमराह बनाना और सब्ज बागों में भुलाये रखना उनका काम है।

ओ० हेनरी की विश्व प्रसिद्ध कहानी, 'अन्तिम पत्ता', कहती है कि कला की तिरछी-सीधी रेखाएँ किसी की जिन्दगी में नया प्राण फूँककर बहार की नयी रंगीनी भी ला सकती हैं।

मनोरंजन का प्रश्न तब आता है, जब जीवन हो। जिस देश में अपना दर्द भुलाये रखने के लिए सस्ती शराब, सस्ता साहित्य और सस्ती फिल्मों की अवास्तविकता की शरण में जाना पड़ता है, उस देश की कहानी का उद्देश्य मनोरंजन न होकर, इस कुण्ठा और गन्दगी से लड़ना होना चाहिए। मैं समझता हूँ कि जीवन का दूसरा नाम कहानी है। जीवन केवल मनोरंजन के लिए नहीं होता। बहुत-से काम करने होते हैं जीवन में। बहुत प्रकार की जिम्मेदारियों का निबाह करना होता है। इसी तरह कहानी की भी कई जिम्मेदारियाँ हैं।

मेरी राय में कहानी का उद्देश्य बहती हुई नदी के समान है, जो अपनी चंचलता, गति और लहरों से लोगों का मन क्षण-भर के लिए मोह भले ही ले, परन्तु उसका

वास्तविक काम खेतों को हरा-भरा रखना और जड़-चेतन सब की प्राण-रक्षा करना है। नदी लोगों को नया जीवन देती है, खेतों में हरियाली बनकर अन्न उपजाती है और लोगों के बाजुओं को मजबूत एवं पुष्ट बनाती है।

कहानी का उद्देश्य लोगों में जीवन के प्रति जागरुकता फैलाना है। लोगों को जीना सिखाना है। रास्ते में घिर आये अन्धकार को काट फकना है। उसे जीवन का निर्माण करना है।

यहाँ पर मैं यदि प्रेमचन्द की कहानियों, 'नमक का दारोगा', 'ईदगाह', 'कप्तान साहब', 'सवा सेर गेहूँ' आदि का उल्लेख करूँ, तो बात कहने में आसानी हो जायगी। इन कहानियों से हमें चरित्र-निर्माण की प्रेरणा मिलती है।

मैं सच्चे अर्थों में कहानी उसे ही कहूँगा, जो देश की भूख, गरीबी और दैन्य का चित्र प्रस्तुत करे। ऐसा चित्र, जिसे देखकर शरीर रोमांचित हो जाये, जिसे समझ कर इस दुर्व्यवस्था के प्रति मन में घोर असन्तोष हो और जिसे पढ़कर हम अपने अधिकारों के प्रति सचेत हों।

प्रेमचन्द की राय में साहित्य एक जलती हुई मशाल की तरह आगे रहनेवाली सच्चाई है।

'कहानी' में ऐसी कई कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं जिनसे कहानी के वास्तविक उद्देश्य का पता चलता है। जैसे 'कार्टून' (अब्बास), 'सैनिक, नेता और लड़की' (क्षीरसागर), 'मुजरिम' और 'हाथ' (रजिया सज्जाद जहीर), 'विद्रोही आत्माएँ' (खलील जिब्रान), 'गदल' (रांगेय राघव) आदि....। बहुत-से नाम हैं, कितनों को गिनाऊँ।

आज कहानी के लिए सबसे बड़ा प्रश्न जीने का है। हमारी उलझ गयी समस्याओं को सुलझाना आज की कहानी पर ही निर्भर है। आज की कहानी एक नये मोड़ पर खड़ी है। कहानी को नयी शक्तियों का सृजन करना है। कहानी में मनोरंजन भी अपेक्षित है, परन्तु वहीं तक ही; जहाँ तक कहानी की गति, नाटकीयता और तकनीक का सम्बन्ध है। इसके आगे नहीं।

इसके आगे कहानी के लिए जीवन का खुला पृष्ठ है, जहाँ संघर्ष है, भूख, गरीबी और तंगी है। जहाँ इन्सान बिकते हैं, भावनाएँ बिकती हैं और इन्सानों की ख़रीद-बिक्री का दरिन्दापन और हविश दिनों-दिन बढ़ती जा रही है।

कहानी को उन गिरे, दलित और शोषित लोगों को उठाना है, उनमें विद्रोह फैलाकर ऐसी क्रान्ति लानी है कि समाज का यह कोढ़ और दरिन्दापन सदा के लिए दूर हो जाये। कहानी को एक नये समाज, एक नयी दुनिया का निर्माण करना है, जहाँ ज़िन्दगी अपनी पूरी खिलखिलाहट के साथ धरती पर पूनम की चाँदनी बरसा सके। जहाँ सब के लिए समान अवसर हो, सबको जीने का समान अधिकार हो।

जब इतनी लम्बी दूरी कहानी को तय करनी है, तो ऐसी अवस्था में केवल मनोरंजन और रंगरेलियों में डूबने का उसे अवकाश कहाँ है!

सुरेशप्रसाद शर्मा (राँची)

कहानी का उद्देश्य क्या है, एक व्यापक विषय है। इसे तो अस्वीकार नहीं ही किया जा सकता है कि मनोरंजन कहानी का एक आवश्यक तत्व है, पर कहानी का मात्र-उद्देश्य मनोरंजन है, इससे मैं असहमत हूँ। यों तो कुछ विचारकों ने कहानी को 'अनुरंजक आख्यायिका' कहा है और 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पचीसी' तथा परियों की कहानियों के सम्बन्ध में यह उक्ति उपयुक्त भी जँचती है, पर आज की कहानी तो वैसी नहीं है। आज का कथाकार जन-जीवन का कथाकार है। आज की कहानी हमारे व्यावहारिक जीवन से संबद्ध होती है। उसमें समाज की तथा सामाजिक प्राणियों की गति-विधि का यथार्थ चित्रण होता है। उसमें बाहर की घटना तथा अन्तर की सहानुभूति का योग होता है। ऐसी हालत में कहानीकार का काम चौराहे पर खड़े पुलीस की नाईं युग की गाड़ी को संकेत देने का होता है। कहानी का उद्देश्य उसके मर्म में छिपा होता है। कहानी का उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ जीवन तथा समाज की वास्तविक स्थिति तथा प्रवृति की ओर पाठकों का ध्यान इंगित कराते हुए संदेश दे देना है।

कहानी के बारे में

ए० एन० कंठ (मुजफ़्फ़रपुर)

इस मास की कहानियों में 'अरण्य' मुझे बहुत अच्छी लगी। समाज के ये 'सुसंस्कृत' और 'सभ्य' कितने अधिक खूँखार हैं, इसकी छाया हमें ज़मींदार नन्द्रेकर में मिलती है और शहरी वातावरण में पली नन्दिनी की वह 'निर्लज हँसी' ! सुन्दर चित्रण है। और अन्ना और लछिया का वह अमर प्रेम तथा उसका दुखद अन्त ! बाघराज की उक्ति कि मनुष्य भी प्रेम करने पर मीठा और सुरभित हो जाता है, सुन्दर उक्ति है। इस्मत चग़ताई की कहानी 'गुड्डा और गुड़ियाँ' भी काफी अच्छी लगी। गुड़िया गुड्डे के बुढ़ापे के बोझ को उठाने में असमर्थ रही। ऐसी गुड़िया का टूटना हम भूल नहीं पाते। ढलती उम्र के प्रेम के ऐसे दर्द-भरे अन्त का चित्रण बहुत सुन्दर है। 'कामदेव का धनुष' में आज के मध्यम वर्ग का सुन्दर और सजीव चित्रण है। आज का मध्यम वर्ग बड़ी विषम परिस्थिति में से गुजर रहा है। ऐसे सफल चित्रण के लिए लेखक बधाई के पात्र हैं।

मन्नो भण्डारी की कहानी 'श्मशान' ने एक अमिट छाप मुझपर छोड़ी है। आज के प्रेम का सुन्दर विश्लेषण है। आज का इन्सान प्रेम की स्मृति और कल्पना में जीवित नहीं रह सकता। क्या जीवन की पूर्णता के लिए फिर-फिर प्रेम करना आवश्यक है, एक उलझी हुई समस्या है। लेखिका के विचार से इन्सान को जीने के लिए ठोस आधार चाहिए। पहाड़ी की मुस्कुराहट में तीखा व्यंग्य है, जो मीठा भी है और तल्ख भी।

हरिशंकर सक्सेना (मुरादाबाद)

'कहानी' के जन्म से ही मैं इसका पाठक हूँ। जहाँ तक हिन्दी कहानी का प्रश्न है, वह 'कहानी' के अतिरिक्त कुछ अन्य पत्रिकाओं में भी पढ़ने को मिल जाती हैं। लेकिन अन्य भाषाओं की कहानियाँ नहीं के बराबर पढ़ने को मिलती थीं, जैसे ऊँट के मुँह में ज़ीरा। भाषाओं के साहित्य का आदान-प्रदान न होने से हम उनके साहित्य की श्रेष्ठता के विषय में अनजान ही रहते थे। बहुत हुई तो कुछ उर्दू की और एक-दो बँगला की कहानियाँ पढ़ने को मिलती थीं और उनका भी अनुवाद बड़ा कमज़ोर होता था। अगर गहराई से देखा जाय, तो 'कहानी' ने 'देवनागर' की परम्परा में बड़ा योग दिया है। तमिल, तेलुगू, कन्नड़ इत्यादि प्रादेशिक भाषाओं में इतनी श्रेष्ठ कहानियाँ लिखी जाती हैं, इससे मैं सर्वथा अनभिज्ञ था।

'कहानी' प्रति मास अन्य भाषाओं की कहानियों का अनुवाद छाप कर हमारी आँखें खोल रही है कि इन भाषाओं के लेखक हिन्दी से कहीं अधिक तीव्र अनुभूति, भाषा-सौष्ठव और रचना-शिल्प के अधिकारी है। नवेन्दु घोष का नाम हमारे लिए एक प्रकार से अज्ञात था, लेकिन उनकी पिछली कहानी 'कूड़ा' और जुलाई मास में छपी कहानी 'अरण्य' ने उन्हें कहानी-साहित्य के आकाश में एक चमकदार तारे का स्थान दिया है। क्या भाषा और क्या कथानक, इन्हें तो दोनों में ही कमाल हासिल है। सआदत हसन मन्टो, वेंकटेश माडगूलकर, इस्मत आपा, अण्णा भाऊ साठे, पालगुम्मि पद्म राज आदि की क़लम से परिचित कराने का सेहरा 'कहानी' के ही सिर है, किसी अन्य पत्रिका के नहीं।

लेकिन जहाँ तक हिन्दी कहानीकारों का प्रश्न है, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें आप कुछ संकीर्णता से काम लेते हैं। शायद आपके लेखकों का दायरा अन्य पत्रिकाओं की तरह ही सीमित है और लौट-फेरकर उनकी रचनाओं को ही महत्व देते हैं।

'कहानी' का जुलाई अंक पिछले अंक से अधिक श्रेष्ठ रहा। 'जीवन का विष', 'गुड्डा और गुड़िया' 'कामदेव का धनुष', 'भूत का साथ' श्रेष्ठ लगीं, लेकिन 'अरण्य' का तो कोई मुकाबिला ही नहीं। इतनी सबल, सीधे हृदय पर चोट करनेवाली, नयी टैकनिक में वर्णित कहानी महीनों में पत्रिकाओं की खाक़ छानने पर पढ़ने को मिलती हैं। नवेन्दु घोष निस्सन्देह बधाई के पात्र हैं। जानवरों

की 'मानवता' और मनुष्यों की 'पशुता' का बहुत जोरदार दिग्दर्शन कराया है। शेष कहानियाँ अभी नहीं पढ़ पाया हूँ, लेकिन अभी इन्हीं कहानियों का नशा नहीं उतरा है।

अन्त में आपके 'उपन्यास' की योजना के लिए आपको बधाई देता हूँ। आजकल उपन्यास छप तो खूब रहे हैं, लेकिन पाँच-छः रुपये से कम का कोई नहीं होता, जिनका प्रति मास खरीदना प्रत्येक के लिए सम्भव नहीं है। आपकी इस योजना के फलस्वरूप एक पत्रिका के मूल्य से स्वयं ही प्रत्येक के पास अपना एक अच्छा संग्रह हो सकता है।

राजमोहन झा (पटना)

जुलाई की 'कहानी' इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि 'कहानी' दिन-प्रति-दिन सुन्दर होती जाती है। इस अंक की अधिकांश कहानियाँ बहुत अच्छी रहीं। 'अन्ना' की कहानी हृदय पर अमिट छाप छोड़ जाती है। 'कामदेव का धनुष' हमारी ही विवश अनुभूति का सर्वथा सफल और सुन्दर चित्र है। 'गुड्डा और गुड़िया' जितनी मज़ेदार है, उतनी ही मार्मिक भी।

'कहानी' के हर अंक में मुझे कम-से-कम एक कहानी ऐसी मिलती है, जिसके लिए उस कहानी के लेखक को, और आपको, धन्यवाद देने को जी चाहता है। लेकिन कुछ आलस्यवश, कुछ समयाभाव के कारण, हमेशा ऐसा नहीं कर पाता। इस बार एक ऐसी कहानी मिली है, जिसके बारे में लिखना, कार्य-बाहुल्य के बावजूद भूल नहीं सका। वह है 'श्मशान'। 'मैं हार गयी' पढ़कर भी कुछ ऐसी ही प्रतिक्रिया हुई थी। यह एक के बाद दूसरी बेजोड़ कहानी पढ़कर लेखिका को धन्यवाद दिये बग़ैर नहीं रह सकता। लगता है, जीवन को बहुत निकट से देखा है इन्होंने।

जब कभी कोई अच्छी कहानी पढ़ने को मिलती है, बहुत ही हर्ष होता है। इस बार एक साथ ही कई इतनी अच्छी-अच्छी कहानियाँ देने के लिए, उन कहानियों के लेखकों के साथ-साथ आपको भी बहुत-बहुत धन्यवाद।

हाँ, जून के अंक की कहानी 'आलू' के सम्बन्ध में मैं भी वैसा ही एक पत्र लिखने की सोच रहा था, जैसा एक पत्र आप जुलाई के अंक में छाप चुके हैं। लेखकों के ऐसे कृत्य आपकी पत्रिका की प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं।

धर्म नाथ 'आजाद' (तालपुकुर)

दो वर्ष से 'कहानी' का ग्राहक हूँ। प्रत्येक मास 'कहानी' समय पर प्राप्त हो जाती रही। पर जुलाई अंक देर से मिलने का उलाहना है। मैं निराश हो गया था। क्यों? इसलिए कि २१ जुलाई समाप्त हो रही थी और अभी तक 'कहानी' नहीं मिली थी। मैं प्रति दिन पोस्टमैन से पूछता और निराशा-भरा उत्तर पाता।

'कहानी' मिली और साँस रोककर पढ़ डाला। राम कुमार की कहानी 'जीवन का विष' मुझे अच्छी लगी। एक नारी और समाज की तस्वीर बड़े निराले ढंग से उतारा गया है। 'सुबह होने तक' धीर जी की कहानी भारतीय किसानों के कष्टों और परिश्रम का जीता-जागता नमूना है। नवेन्दु घोष की 'अरण्य' हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ जाती है। 'गुड्डा और गुड़िया', 'कामदेव का धनुष,' 'देवी का प्रसाद,' 'भूत का साथ' भी अपने-अपने स्थान पर अच्छी हैं। मन्नो भंडारी की कहानी 'श्मशान' के विषय में कुछ कहना है। कहानी जँची नहीं। वैसे भाषा, शैली और कल्पना की उड़ान अच्छी है।

पुस्तकालय

रूसी साहित्यकार की दृष्टि में—

भारत का महान् लेखक—प्रेमचन्द

ले० वी० बालिन

भारत के विख्यात् लेखक प्रेमचन्द की कृतियाँ अपनी जनता के प्रति निष्ठापूर्ण सेवा का उज्ज्वल एवं उदात्त दृष्टांत हैं। उनकी कृतियाँ हिन्दी और उर्दू साहित्य की क्लासिक बन गई हैं।

प्रेमचन्द कहते थे कि उत्पीड़ित का समर्थन एवं रक्षण करना लेखक का कर्तव्य है। यावज्जीवन उन्होंने अपने नागरिक कर्तव्य का पालन किया और इस प्रकार जनता के एक सच्चे लेखक के रूप में गौरव प्राप्त किया।

वर्त्तमान शती के आरम्भ में भारत एक औपनिवेशिक देश था। अधिक जनता, विशेषकर कृषकवर्ग की कठिन परिस्थिति विविध सामंती अवशेषों के कारण जिन्हें सुरक्षित रखना उपनिवशवादियों ने लाभदायक समझा था और भी अधिक खराब हो गई थी। भारतवासियों को न्यूनतम राजनीतिक अधिकार भी नहीं प्राप्त थे। जनता को पूर्ण पराधीनावस्था में रखने के प्रयास में विदेशी शासकों ने कठोर संवाद-नियंत्रण और पुलिस-आतंक का सहारा लिया। भारत में उपनिवेशवादियों की निरंकुशतापूर्ण पद्धतियों के विरुद्ध जनता का क्रोध अबाध गति से बढ़ता गया। राष्ट्रीय चेतना का भाव उत्तरोत्तर ज़ोर पकड़ता गया। १६०५-१६१० के राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में भारत की जनता ने दासता की बेड़ियों को उतार फेंकने के लिए जोरदार प्रयास किया। इसी काल में प्रेमचन्द का साहित्यिक जीवन शुरू हुआ।

बचपन से ही लेखक ने (इनका असली नाम धनपतराय श्रीवास्तव था) जनता के दुःख-क्लेश देखे थे। वह गाँव के पटवारी के पुत्र थे। उन्होंने स्वयं कठिन अभाव का अनुभव किया था। वह भूख और बेकारी से परिचित थे। कठिन प्रयास करने के बाद वह किसी तरह शिक्षा प्राप्त करने में सफल हुए थे। वह एक स्कूल में शिक्षक बन गये और इस प्रकार साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने अपने प्रथम पग रखे। पत्रकारिता-सम्बन्धी कार्य के द्वारा वह राजनीतिक संघर्ष के उदीप्त वातावरण में आ गये।

प्रेमचन्द के "सोज़ेवतन" नामक प्रथम कहानी-संग्रह में भी हम घृणित औपनिवेशिक व्यवस्था के पर्दाफाश के साथ-साथ अपने देशवासियों के नाम प्रेमचन्द की मार्मिक अपील पाते हैं जिसमें उन्होंने देश के गौरव के लिए कुछ भी नहीं उठा रखने और अपने प्राणों की बाजी लगा देने के लिए उनका आह्वान किया है। ब्रिटिश सत्ताधारियों के आदेशानुसार यह पुस्तक "राजद्रोहात्मक" घोषित की गई और जला दी गई। प्रेमचन्द को कठोर दंड देने की धमकी दी गयी, लेकिन इससे वह अपने विचार से नहीं डिगे। उन्होंने देखा कि सच्ची बातों से उनकी मातृभूमि के उत्पीड़कों के अन्दर हड़कम्प पैदा होता है और जनता की जागरूकता को बढ़ाने में मदद मिलती है। अविचलित भाव से उन्होंने भारत को मुक्त करने के लक्ष्य में अपने को

लगा दिया। वह इस लक्ष्य के प्रति अपने जीवन के अन्त तक सच्चे बने रहे।

प्रेमचन्द की रचना की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशिष्टता जो शुरू से ही देखने में आती है वह यह है कि वह अपने विषय-वस्तु एवं पात्रों का चयन सामान्य जनता के जीवन से करते थे।

किसान, शहर के गरीब, तथा बुद्धिजीवी वर्ग के वित्तहीन तबकों के बारे में अपनी जानकारी तथा उनके प्रति अपनी गहरी सहानुभूति की बदौलत वे उन समस्याओं को अपने हाथ में ले सके, जो हिन्दी और उर्दू रचना के लिए नयी थीं। श्रमशील मानव, जो पददलित एवं दुःखी होते हुए भी निष्ठावान् और शुद्ध-हृदय है, भारत के नूतन साहित्य का मुख्य पात्र बन गया। अपनी समस्त अग्नि-परीक्षाओं के अन्दर प्रेमचन्द की कृतियों के नायक सत्य की विजय में, निरंकुशता के ऊपर न्याय की जीत में अमर विश्वास रखते हैं। यह उज्ज्वल मानवतावाद देश-प्रेम के उन भावों से जो उन दिनों में भारत में हिलोरें ले रहे थे पूर्ण मेल खाता था।

प्रेमचन्द की रचनाओं ने उन्हें एक लेखक के रूप में प्रख्यात कर दिया। उसका मुख्य कारण यह है कि राजनीतिक जागरण की दिशा में व्यापकतम जनसमुदाय के अविनाशी प्रयास को पकड़ने और मूर्त करने में वह सफल हुए, जब लेनिन के शब्दों में पूर्व के औपनिवेशिक देशों की कोटि-कोटि उत्पीड़ित जनता में जो मध्य युगीन गतिहीनता के कारण नितांत अप्रगतिशील हो गई थी नव-जागरण अंगड़ाई लेने लगा, और वह प्राथमिक मानव अधिकारों और जनवाद के लिए संघर्ष करने को उद्यत हो गई, व्यापक जनसमुदाय के जीवन का साहित्य में सच्चा चित्रण राष्ट्रीय मुक्ति-आन्दोलन सम्बन्धी कार्यों के अनुकूल था।

प्रेमचन्द की रचनाओं में व्यापक पैमाने पर वैविध्य-पूर्ण सामाजिक विषयवस्तु पाई जाती है। उनमें परिवार और समाज के अन्दर स्त्रियों के स्थान को प्राधान्य दिया गया है, तथा स्त्रियों को पतित करने वाली सामाजिक रूढ़ियों और कठोर रीति-रिवाजों की निन्दा की गई है।

अपने व्यंग्यपूर्ण पात्रों के द्वारा उन्होंने बड़े सशक्त ढंग से सरकारी कर्मचारियों और जमींदारों की बखिया उधेड़ी है, जो उनके देशवासियों का निर्मम शोषण और लूटपाट करते थे।

अपनी बहुत सी रचनाओं में प्रेमचन्द ने भारतीय कृषकवर्ग के जीवन का चित्रण किया है। वह भारतीय किसान के आत्मिक गठन तथा उन जटिल सामाजिक प्रक्रियाओं में जो गाँवों में हो रही थीं दिलचस्पी रखते थे। उन्होंने भारतीय गाँव का अविस्मरणीय चित्र—सच्चा जीवन्त इतिहास प्रस्तुत किया है, जहाँ भूमिहीन किसान हैं, फसल मरने और अकाल पड़ने की दुर्घटनाएँ होती हैं, निरंकुश जमींदारों और अर्थलोलुप सूदखोरों का जोर है, पुलिस आतंक पैदा करती है, और सरकारी कर्मचारी लूट-खसोट करते हैं।

१९१८-१९२२ में जनता का साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष अपने शीर्षबिन्दु पर था। प्रेमचन्द ने "प्रेमाश्रम" नामक उपन्यास और "संघर्ष" नामक नाटक लिखा। इन कृतियों में उन्होंने एक पिछड़े हुए, कृषि प्रधान एवं औपनिवेशिक देश में तत्कालीन राष्ट्रीयमुक्ति आंदोलन की मुख्य विशिष्टताओं और अंतर्विरोधों का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया है। उन्होंने दिखलाया है कि किस तरह नौकरशाही यंत्र तथा गाँवों में सामन्ती पद्धति के संयोजन पर आधारित औपनिवेशिक व्यवस्था अन्दर-अन्दर सड़ गई थी और इतिहास द्वारा अभिशप्त घोषित कर दी गई थी। परन्तु औपनिवेशिक उत्पीड़न के विरुद्ध कृषकवर्ग की स्वतःस्फूर्त कार्रवाहियों के साथ-साथ प्राचीन पितृसत्ताक कृषक समाज के सम्बन्धों का एक आदर्श के रूप में गुणगान किया गया है। इन भावों का चिन्तन करते हुए प्रेमचन्द इस विचार की ओर झुक-से गये थे कि यदि अच्छे दृष्टान्तों द्वारा उन लोगों को जो स्वार्थ के वशीभूत हो सत्ता हथियाए हैं समझाने-बुझाने और पुनः शिक्षित करने का प्रयास किया जाए तो बहुत सी सामाजिक बुराइयाँ दूर की जा सकती हैं। सिद्धान्त-पक्ष में अन्तर्विरोध के बावजूद इस उपन्यास का भारी महत्व है। यह दिखाता है कि किस तरह अत्यन्त पिछड़े हुए किसानों

के मस्तिष्क में यह विचार क्रमशः बद्धमूल होता गया कि ज़मीन्दारों और सूदखोरों से संघर्ष करना आवश्यक है। भारत में यह प्रथम बृहत् साहित्यिक रचना थी, जिसमें भारतीय जीवन की मुख्य समस्याओं का और सर्वोपरि श्रमिक जनता की स्थिति का इतना गम्भीर एवं यथार्थता-पूर्ण चित्रण किया गया है।

प्रेमचन्द के हित स्वतन्त्रता के लिए संघर्षशील उनकी मातृभूमि के हित से सदा अभिन्न रूप में जुड़े थे। उनके सिद्धान्त तथा राजनीतिक विचारों में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जनसंघर्ष की उठती हुई लहर प्रतिबिम्बित होती थी। १६२० के सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय उन्होंने ब्रिटिश संस्थानों का बायकाट करने के लिए किये गये देश-भक्तिपूर्ण आह्वान का पालन किया और उस पद से त्याग-पत्र दे दिया जिसकी वजह से वह आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त थे। तदनन्तर उन्हें बहुधा अभाव और दुःख-दारिद्य का सामना करना पड़ा लेकिन वह फिर .सरकारी नौकरी में नहीं गये।

जब १६२८-१६३३ में भारत के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का एक नया दौर शुरू हुआ तो प्रेमचन्द पहले की ही तरह अपने देश की स्वतंत्रता के लिए जूझनेवालों की प्रथम पांति में पाये गये।

उस काल में उनकी साहित्यिक रचना का असाधारण विकास हुआ। उन्होंने उपन्यास, लघुकथाएँ और लेख लिखे; उन्होंने फिल्मों में काम किया, प्रगतिशील साहित्यकारों को संघटित करने के प्रयास में उन्होंने अन्य लेखकों के साथ सजीवतापूर्ण पत्राचार किया।

अपने जीवन के सन्ध्याकाल में इस मानववादी एवं जनवादी लेखक की कृति में उसका ऊर्जस्व स्वर और भी सशक्त होता गया और हिन्दी तथा उर्दू साहित्य में समीक्षात्मक यथार्थवादी पद्धति की विजय का प्रतीक बन गया।

उन्होंने बहुत से सामाजिक भ्रमों से अपने को मुक्त किया। "गोदान" (१६३६) के पात्रों के जीवन हमें यह दिखाते हैं कि यदि कोई केवल अपने नैतिक मूल्यों पर अपनी आशाएँ केन्द्रित करे और निरंकुशता के विरुद्ध संघर्ष करने के बजाय उससे मेल-समझौते करे तो वह वास्तविक खुशहाली और सुख समृद्धि नहीं प्राप्त कर सकता। इस उपन्यास का मुख्य-पात्र होरी जो एक गरीब किसान है अच्छे दिनों की व्यर्थ में प्रतीक्षा करते-करते इस संसार से कूच कर जाता है। उसकी न्यूनतम आशाएँ भी पूरी नहीं हुई। वह ईमानदार, दयालु और समझदार व्यक्ति है लेकिन उस समाज के नियम.जिसमें वह रहता है अत्यन्त निर्मम हैं। वह अपने भाग्य का निर्माण करने के लिए संघर्ष करने की कोशिश नहीं करता और वह कोटि-कोटि श्रमिक जनता के शोषण पर आधारित सामाजिक पद्धति का शिकार हो जाता है।

प्रेमचन्द की रचनाओं के गम्भीर सामाजिक तत्व-देशप्रेम और यथार्थवाद का समस्त भारत के बहुभाषायी साहित्य पर भारी प्रभाव पड़ा है, वह भारत के सबसे प्रमुख राष्ट्रीय यथार्थवादी लेखकों.में परिगणित हुए, उनकी जन-वादी परम्परायें आज दिन तक संजोई हैं और उनका विकास हो रहा है।

प्रेमचन्द अखिल भारत प्रगतिशील लेखक संघ के संस्थापक थे। इस सघ का प्रथम अधिवेशन अप्रैल १६३६ में उन्हीं की अध्यक्षता में हुआ था।

प्रेमचन्द ने व्यापक जनसमुदाय के लिए अपने साहित्य को सुबोध एवं सुलभ बनाने के वास्ते बहुत कुछ किया। इस उद्देश्य को एकमात्र हिस्दुस्तानी भाषा के दो साहित्यक रूपों—हिन्दी और उर्दू को सामान्य जनता के धरातल पर एक साथ लाने का प्रयास किया। एक साहित्यकार तथा जनता की भाषा के शिल्पकार के रूप में वह आज दिन तक भारत के लेखकों के गुरू हैं।

प्रेमचन्द की रचनाओं ने उन मुक्तिकामी धाराओं को आगे बढ़ाया जिनका उदय भारतीय साहित्य में १६ वीं शती में हुआ था। प्रेमचन्द ने इस दृष्टि से अपने देश की बहुमूल्य सेवा की कि उन्होंने साहित्य में सामान्य जनता की आशाओं एवं आकांक्षाओं को व्यक्त किया, कि उन्होंने अपनी रचनाओं को राष्ट्रीय एवं सामाजिक स्वतंत्रता के लिए होनेवा लेजन-संघर्ष से अविच्छिन्न रूप में जोड़ दिया।.... ['तास' से]

सितम्बर १९५६

वर्ष ३ ❀ अंक ९

(शेष अगले पृष्ठ पर)

वार्षिक : साढ़े पाँच रुपये

सम्पादक-श्रीपतराय : भैरवप्रसादगुप्त

शेष सूची

सम्पादकीय नियम

१—'कहानी' में केवल कहानियाँ छपती हैं। कविताएँ, लेख आदि कृपया न भेजें।

२—जो रचना प्रकाशित हो चुकी है या प्रकाशनार्थ भेजी जा चुकी है उसे कहानी के लिए न भेजिए।

३—'कहानी' के लिए सुवाच्य लिखावट में कागज के सिर्फ एक ओर पंक्तियों में काफी फासला देकर लिखी हुई रचनाएँ भेजिए और अपनी रचना की प्रतिलिपि अवश्य रख लीजिए।

४—अनूदित कहानियों के साथ मूल रचना और मूल लेखक के नाम भी अवश्य भेजिए।

५—स्वीकृत रचना की ही सूचना सम्पादक द्वारा दी जाती है।

६—सम्पादक सम्बन्धी सारा पत्र-व्यवहार सम्पादक 'कहानी' के नाम से करना चाहिए।

व्यवस्थापकीय नियम

१—'कहानी' प्रति मास की पहली तारीख को प्रकाशित होती है।

२—एक प्रति का मूल्य छः आना और सालाना चंदा विशेषांकों के साथ साढ़े पाँच रुपये है। तिमाही और छमाही ग्राहक नहीं बनाये जाते।

३—वी० पी० भेजने में अधिक खर्च पड़ता है, इसलिए वी० पी० नहीं भेजी जाती। ग्राहक बननेवालों को साढ़े पाँच रुपये चन्दा मनीआर्डर से भेजना चाहिये।

४—नमूने के लिए छः आने का डाक टिकट भेजिए, नमूना मुफ्त नहीं भेजा जाता।

५—कार्यालय से सभी प्रतियाँ अच्छी तरह जाँच-पड़ताल करके भेजी जाती हैं। यदि १० तारीख तक प्रति न मिले तो डाकखाने में पूछ-ताँछ करके डाकखाने के अधिकारी का लिखित जवाब 'कहानी' कार्यालय को भेजना चाहिए।

६—पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए। बिना ग्राहक-नम्बर लिखे जवाब देने या कार्यवाही में देर हो सकती है और यह भी सम्भव है कि कोई कार्यवाही न की जा सके।

७—अगर आप एक साथ पाँच ग्राहकों का सालाना चन्दा साढ़े सत्ताइस रुपए मनिआर्डर से भेज दें, तो साल भर तक आप को 'कहानी' तथा विशेषांक बिना मूल्य मिलेगा।

८—व्यवस्था-सम्बंधी सारा पत्र-व्यवहार व्यवस्थापक 'कहानी' के ही नाम से कीजिये।

वस्थापक, 'कहानी' कार्यालय,

सरस्वती प्रेस, सरदार पटेल मार्ग, पो० बा० नं० २४, इलाहाबाद—१

कहानी

'कहानी' की बात

विशेषांक

'कहानी' के अगले विशेषांक की तैयारी शुरू हो गयी है। यह विशेषांक पिछले दो विशेषांकों
कलेवर में कुछ छोटा पर उपयोगिता और महत्त्व की दृष्टि से उनसे किसी प्रकार भी कम
होगा। इसमें क़रीब पच्चीस कहानियाँ होंगी, बारह हिन्दी के सुप्रतिष्ठित कथाकारों की अ
शेष प्रादेशिक भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं के प्रतिनिधि लेखकों की चुनी हुईं। लेखकों अ
उनकी कहानियों की पूरी सूची हम अगले अंक में प्रकाशित कर सकेंगे, ऐसी आशा है। पर
अक्तूबर तक यह विशेषांक अवश्य निकल जायगा।

यह अंक

पिछले दो-तीन अंक कुछ कठिनाइयों के कारण देर से निकले, जिससे आपको अवश्य असुवि
हुई। आपकी शिकायतों का हमें पूरा ख़्याल था, लेकिन कुछ ऐसी विवशता थी कि हम अं

सरस्वती प्रेस, सरदार पटेल मार्ग, इलाहाबाद

क्षेत्रीय कार्यालय:

सरस्वती प्रेस	बिहार प्रकाशन गृह	सरस्वती प्रेस बुकडिपो	सरस्वती प्रेस बुकडिपो
पोस्ट बाक्स—२२	खजांची रोड	३७८८, फैज़ बाज़ार	अमीनुद्दौला पार्क
बनारस—१	पटना—४	दिल्ली—७	लखनऊ

ठीक समय पर निकालने में असमर्थ रहे। अबकी यह अंक आपको बिल्कुल ठीक समय पर मिलेगा और आगे भी हमारा यही प्रयत्न रहेगा कि आपको किसी शिकायत का मौक़ा न मिले।

इस अंक में कुल ग्यारह कहानियाँ हैं, चार हिन्दी की और सात अन्य भाषाओं की।

इस अंक के लेखकों में खलील जिब्रान, सत्यपाल आनन्द, परशुराम, सुखबीर, धूमकेतु और ओ' हेनरी आपके सुपरिचित कथाकार हैं, इनकी कई-कई कहानियाँ आप पहले भी कहानी में पढ़ चुके हैं।

'बीसवीं सदी की कहानी' के लेखक जगदीश नारायण माथुर की भी एक कहानी 'हिसाब का सवाल' 'कहानी' में पहले प्रकाशित हो चुकी है। यह आजकल बड़ी सरगर्मी से कहानियाँ लिख रहे हैं। पत्र-पत्रिकाओं में बराबर इनकी कहानियाँ प्रकाशित हो रही हैं। इनकी कहानियों में एक नयापन और ताज़गी है। यह आप भी इस कहानी में देखेंगे।

हास्य रस की कहानियों की माँग आप बराबर करते हैं और हमारा भी यह प्रयत्न रहता है कि प्रत्येक अंक में कम-से-कम एक हास्य रस की कहानी अवश्य रहे। लेकिन हास्य रस की कहानियाँ बड़ी मुश्किल से मिलती हैं, कदाचित आज के जीवन में हँसना भी कठिन हो गया है, इसी कारण। यह संयोग की ही बात है कि इस अंक में एक साथ दो हास्य रस की कहानियाँ प्रकाशित हो रही हैं। एक है बंगला के विख्यात कथाकार परशुराम की 'जयहरि का जेब्रा' और दूसरी है शफ़ीकुर्रहमान की 'हातिमताई बेतस्वीर'।

उर्दू साहित्य के छैला शफ़ीकुर्रहमान उन भाग्यशालियों में हैं, जो साहित्यकारों के दुःख झेले बिना प्रसिद्धि और लोकप्रियता की चोटी पर पहुँच गये। १९४१ में वह हल्की-फुल्की कहानियाँ लेकर उर्दू की भरी बिसात पर उपस्थित हुए और तीन-चार बरस में ही उन्होंने सारी महफ़िल से हटाकर दर्शकों की दृष्टियाँ अपनी ओर आकर्षित कर लीं। बटवारे में यह पाकिस्तान के हिस्से में आये। पेशा डाक्टरी, आयु पैंतालीस के लगभग, लेकिन स्वभाव ऐसा, जैसे ठिठोल तरुण विद्यार्थी। दूसरे महायुद्ध और उसके बाद देश-देश फिरे हैं और जहाँदीदा होने की बदौलत जहाँ इनकी कहानियों में रंगारंगी है, वहीं दुनिया-भर के सौन्दर्य को अपने ऊपर छा लेने की वर्णनात्मक कहानी भी शामिल है, एक ऐसी कहानी, जिससे उर्दू का तफ़रीही साहित्य मालोमाल हो गया।

सोमंचि यज्ञन्न शास्त्री तेलुगू के सुप्रसिद्ध प्रगतिशील कथाकार हैं। 'बीड़ी का सौदा' कहानी कुछ पुरानी है, लेकिन उसका दर्द अब भी ताज़ा है।

'राह में' के लेखक राधाकृष्ण सहाय नये हैं। रिक्शेवालों पर हमारे यहाँ दर्जनों कहानियाँ आयीं, लेकिन छपनेवाली यह पहली है। यह आपको भी बहुत पसन्द आयगी।

वर और वधू चर्च से बाहर निकल आये। उनके आगे-आगे लैम्पों और टार्चों का प्रकाश था और पीछे-पीछे हर्ष से भरे हुए अतिथि। उन्हें चारों ओर से अविवाहित युवक और युवतियाँ घेरे हुए थीं, जो हर्ष और प्रीत के गीत गा रही थीं।

विवाह-जुलूस वर के निवास-स्थान पर आकर रुक गया। निवास-स्थान बहुमुल्य क़ालीनों, द्युतिमान पात्रों और हेने की भीनी-भीनी सुगन्ध से सजा था। वर और वधू एक मंच पर आसीन हो गये और अतिथिजन रेशमी जाज़िमों और मखमली कुर्सियों पर बैठ गये। शीघ्र ही वह विशाल कक्ष स्त्री और पुरुषों से भर गया। दास-दासियाँ दौड़-दौड़कर मदिरा उड़ेलने लगीं और चषकों के परस्पर टकराने की ध्वनि हर्ष और उल्लास की ध्वनि से मिलकर एक स्वर हो गयी। वादकों ने अपना स्थान ग्रहण कर वह राग छेड़ा कि श्रोता मदहोश हो गये।

कुमारियाँ उठकर नाचने लगीं। संगीत के तालों पर आगे-पीछे, इधर-उधर वे हौले-हौले यों थिरकने लगीं, मानो कोमल टहनियाँ पवन के मन्द झकोरों में झूम रही हों। उनके रुपहले वस्त्रों की चुन्नटें लहरियाँ खा-खाकर यों चमक उठती थीं, मानो फ़ाख़्तई बादलों पर चन्द्र-किरणें अठखेलियाँ करती हुई मुस्करा रही हों। सबके नेत्र एकाग्र होकर उन्हें अपलक निहार रहे थे। सिर झूम रहे थे, युवकों की आत्माएँ उनका आलिंगन कर रही थीं और वृद्धों की आत्माएं उनके सौन्दर्य के सम्मुख दोलायमान थीं। सब पीने में मस्त थे और अपनी आकांक्षाओं को मदिरा में तिरोहित कर रहे थे। चेष्टाएँ जीवित हो गयीं, गुल-गपाड़ा मचने लगा और उच्छृंखलता शासन करने लगी। संयम पलायन कर गया, मस्तिष्क अव्यवस्थित हो गये, आत्माएँ प्रज्ज्वलित और हृदय उत्तेजित....यहाँ तक कि वह कक्ष और उसके अन्दर के समस्त प्राणी किसी प्रेतिनी के हाथों में थमी टूटे तारों की बीन बन गये, जिसे वह लापरवाही से बजाती हुई बेसुरी तानें निकाल रही थी।

एक ओर एक युवक एक लड़की पर अपना गुप्त प्रेम प्रकट कर रहा था, जिसके सौन्दर्य ने उसमें सम्मोहन और उन्माद भर दिया था। दूसरी ओर एक युवा एक सुन्दरी से वार्तालाप करने की इच्छा से मधुर शब्दों और सुन्दर वाक्यों की खोज में निमग्न था। सम्मुख एक अधेड़ प्याले-पर-प्याला ढाल रहा था और वादकों से उसका अनुरोध था कि वे ऐसी तान छेड़ें, जिससे उसका विगत यौवन लौट आये। एक कोने में एक स्त्री एक पुरुष पर दृष्टि जमाये थी, जो प्रेम-भरी चितवन से किसी और को निहार रहा था। दूसरे कोने में आयु से श्वेत एक वृद्धा कुमारियों को देखती हुई मुस्करा रही थी और अपने एक मात्र पुत्र की वधू बनाने के लिए उनमें से एक का चुनाव कर रही थी। खिड़की के निकट बैठी एक पत्नी

को उसके पति के नशे ने अपने प्रेमी के निकट बैठने का अवसर दे दिया था। वे-सब इस प्रकार मदिरा और प्रेमालाप में डूबे हुए थे कि भूत और भविष्यत् को भूल गये थे और वर्तमान के इन सुखदायी क्षणों का उपभोग करते हुए हास-विलास की तीव्र धारा में बह रहे थे।

वधू इस दृश्य को दुखी नेत्रों से इस प्रकार देख रही थी, जिस प्रकार एक बन्दी निराशावश अपने कारागार की अन्धकारमयी दीवारों को देखता है। जब-तब उसके नेत्र एक कोने की ओर उठ जाते थे, जहाँ अपने गोल से अलग हुए एक घायल पक्षी की भाँति एक बीस वर्षीय युवक रंगरेलियों से परे बैठा था। उसके हाथ वक्ष को बाँधे हुए थे, मानो उन्हें हृदय के पलायन कर जाने का भय था। उसके नेत्र शून्य पर टिके थे, मानो उसकी आत्मा ने उसके भौतिक शरीर को त्याग दिया था और आश्रय की खोज में वहाँ की वायु का मंथन कर रही थी।

अर्द्धरात्रि बीत गयी। प्रतिक्षण अपना वेष बदलनेवाली रंगरेलियों ने अब एक उपद्रव का रूप ग्रहण कर लिया। उन-सबकी संज्ञा मदिरा की झाग में डूब गयी थी और वे हकलाने और लड़खड़ाने लगे थे। शीघ्र ही वर अपने स्थान से उठा, जो अधेड़ और कुरूप था। नशे ने उसके भी चैतन्य पर अपना अधिकार कर लिया था। अतिथियों के निकट जा-जाकर वह अपनी उदारता प्रदर्शित करने के लिए उनसे ठिठोलियाँ करने लगा।

वधू ने अचानक वहाँ बैठी हुई एक लड़की को निकट आने के लिए कहा। लड़की आकर उसके निकट बैठ गयी। उसने उसे अधीरता और उत्सुकता-भरी दृष्टि से देखा, मानो वह उसपर एक अति गोपनीय रहस्य को प्रकट करने जा रही हो। उसकी ओर झुकती हुई काँपती आवाज़ में वह फुसफुसाने लगी—मेरी प्यारी सखी, मैं तुझसे उस स्नेह के लिए, जिसने बचपन से हम दोनों को एक साथ बाँधे रखा है, उस-सब के लिए जो जीवन में तुझे प्यारा है और जो तेरे हृदय में सोया पड़ा है, याचना करती हूँ! मैं तुझसे उस प्रेम के लिए, जो हमारी आत्माओं का आलिंगन कर उन्हें प्रकाशमान बनाता है, तुम्हारे हृदय के हर्ष और अपनी पीड़ा के लिए भीख माँगती हूँ! तुम अभी सलीम के निकट जाकर कहो कि वह चुपचाप उठकर बाग में निकल जाय और सरपत के झुरमुटों के नीचे मेरी प्रतीक्षा करे। मेरे लिए तुम उससे ऐसा कहना। मेरी प्यारी सुसन! मेरी खातिर उसे ऐसा समझाना और तब तक समझाते रहना, जब तक वह सहमत न हो जाय। उसे बीते हुए दिनों की याद दिलाना। उससे प्रेम के नाम पर याचना करना। उससे कहना कि उसकी प्रेयसी विपत्ति की मारी एक सीधी-सादी औरत है। उसे बताना कि अब वह मृत्यु के मुख में है, मिट रही है और नैराश्य ने उसे अपने में डुबो लिया है। पर वह अन्धकार में खोने से पूर्व उसके समक्ष अपने हृदय को वाणी देना चाहती है, और नरक की अग्नि में भस्मीभूत होने से पूर्व उसके नेत्रों की चमक देखने को लालायित है। उससे कहना कि उसने अपराध किया है, जिसे वह स्वीकार करती है और क्षमा की प्रार्थिनी है। सुसन! मेरी प्यारी सुसन! मेरी खातिर उससे यह सब कहना! शीघ्रता करो! इन दरिन्दों की दृष्टि से डरो मत! इनके कान शराब से बहरे और आँखें शराब से अन्धी हो चुकी हैं।

सुसन अपने स्थान से उठकर सलीम के निकट बैठ गयी, जो अपने दुख में डूबा एक ओर चुपचाप बैठा था। उसने अपनी सखी के शब्द उसके कानों में डाल दिये और दया की प्रार्थना की। प्रेम और निष्ठा की आभा उसके चेहरे पर प्रकाश बन चमक रही थी। युवक सिर डाले हुए चुपचाप सुनता रहा और जब वह अपना संदेशा कह चुकी, तो उसने उसे उस दृष्टि से देखा, जैसे एक प्यासा ऊँचाई पर स्थित जल-कलश को देखता है, और बोला—मैं बाग़ में सरपत-झुंडों के नीचे प्रतीक्षा करूँगा।—उसकी आवाज़ इतनी धीमी थी, मानो वह पृथ्वी के तल से फूट रही हो। वह अपने स्थान से उठा और बाग़ में चला गया।

कुछ समय अनन्तर वधू भी उठी और उसी प्रकार चुपचाप बाहर निकल गयी। उसने अपना मार्ग उन पुरुषों के बीच से बनाया था, जो मदिरा की पुत्री के साथ पाप में प्रवृत्त थे, और उन स्त्रियों के बीच से जो युवकों से प्रेमा-

लाप में निमग्न थीं। अन्धकार से आच्छादित उद्यान में आते ही उसके कदमों की गति तेज़ हो गयी। वह उस डरे हुए मृगछौने की भाँति सुरक्षित स्थान के लिए भागी, जिसका पीछा खूँखार भेड़िए कर रहे हों। और सरपत के झुरमुटों के नीचे आकर ही उसने साँस ली, जहाँ उसका युवा प्रेमी उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने उसकी गर्दन के गिर्द अपनी बाहें डाल दीं और नेत्रों में नेत्र डालती हुई बोली। अधरों से बाहर आने वाले शब्द नेत्रों से गिरने-वाले आँसुओं से भीग रहे थे।

—प्रियतम! मुझे अपनी मूर्खता और उतावली के लिए पश्चात्ताप है!....मेरे सलीम! मैं इस पश्चात्ताप की अग्नि में तब तक जली, जब तक उसने मेरे हृदय को राख न कर दिया! मैं केवल तुम्हीं को प्यार करती हूँ और अन्तिम बेला तक तुम्हें ही प्यार करूँगी। उन्होंने मुझे बहकाया था कि तुमने मुझे बिसार दिया है और किसी अन्य से प्रेम करने लगे हो। उन्होंने अपनी ज़बानों से मेरे हृदय को विषाक्त किया था और अपने पंजों से उसे विदीर्ण कर, असत्य को उसमें ठूँसा था। नजीबी ने मुझसे कहा था कि तुम अपने ध्यान से मुझे निकाल चुके हो और मुझसे घृणा करते हो। मैं उसकी बातों में आ गयी थी। वह दुष्टा मुझे सताकर मेरी भावनाओं से खेली थी और अपने बान्धव को मुझसे पति के रूप में स्वीकार करा लिया। पर, सलीम! क्या तुम्हें छोड़कर मेरा और कोई भी वर हो सकता है? मेरे नेत्रों के सामने से अब पर्दा हट गया है और मैं तुम्हारे समीप आयी हूँ। मैंने उस घर को सदैव के लिए छोड़ दिया है और अब उसमें कभी भी वापस न जाऊँगी। मैं तुम्हें अपनी बाहों में बाँधने को आयी हूँ। संसार की कोई भी शक्ति अब मुझे उस व्यक्ति के निकट नहीं भेज सकती, जिसे मैंने विवशतावश वरा था। धोखे और कपट-द्वारा वरण कराये गये उस व्यक्ति को अब मैंने सदैव के लिए त्याग दिया है, और उस पिता को भी, जिसे भाग्य ने मेरा संरक्षक बनाया है। मैं उन फूलों को लात मार आयी हूँ, जिन्हें पादरी ने वधू के मुकुट के लिए गूँथा था, और उन रीतियों और परम्पराओं को भी, जो हथकड़ियों से कम न थीं। इस समय उस घर में सब पाप और मदिरा में डूबे हुए हैं। मैं तुम्हारे साथ दूरतम प्रदेश, धरा के अन्तिम छोर, प्रेतों के वास-स्थान, नहीं उससे भी आगे, मृत्यु के मुख में चलने को तैयार हूँ। आओ, हम अँधियारे की इस चादर के नीचे भाग चलें। सागर-तट पर पहुँचकर हम एक नाव पकड़ लेंगे और किसी अज्ञात दूरस्थ प्रदेश की ओर बह निकलेंगे। सलीम! शीघ्रता करो! कहीं ऐसा न हो कि हमारे यहाँ निकलने से पूर्व ही सुबह का प्रकाश फैल जाय और हम पकड़े जायँ। इन स्वर्ण आभूषणों, इन बहुमूल्य अंगूठियों, इन हारों और इन रत्नों को देखो! ये भविष्य में हमारी संरक्षा करेंगे और राजपुरुषों के रूप में जीवन-यापन करने में हमारे सहायक होंगे।....सलीम, बोलो! तुम बोलते क्यों नहीं हो? तुम मेरी ओर देखते क्यों नहीं हो? तुम मेरा चुम्बन क्यों नहीं लेते? तुम मेरे हृदय का चीत्कार और मेरी आत्मा का क्रन्दन क्यों नहीं सुनते? क्या तुम्हें अब भी विश्वास नहीं कि मैं अपने पति, पिता और माता को छोड़-कर इन विवाह-वस्त्रों में केवल तुम्हारे साथ भागने के लिए आयी हूँ? सलीम, कुछ तो बोलो! यह विलम्ब उचित नहीं! यह क्षण हीरे और मोतियों से बेशक़ीमत है और इनका मूल्य सम्राटों के ताजों से भी बहुत अधिक है!

वह यह कहकर चुप हो गयी। उसकी आवाज़ में एक राग था, जो जीवन के हास से अधिक सुरीला और मरण के रोदन से अधिक कटु था, जो पक्षी के पंखों की फड़-फड़ाहट से अधिक मन्द और सागर-तरंगों की फूत्कारों से अधिक प्रखर था। उसमें एक संगीत था, जिसका स्वर-माधुर्य आशा और निराशा, हर्ष और विषाद, उल्लास और अवसाद के मध्य चक्कर काटता है। उसमें एक नारी के अन्तर की समस्त इच्छाएँ और आकांक्षाएँ निहित थीं।

युवक चुपचाप सुनता रहा। उसके अन्तर में प्रेम और मर्यादा के मध्य प्रभुत्व के लिए संघर्ष था। प्रेम वह, जो वन्य प्रदेशों को भी सपाट मैदानों और अन्धकार को प्रकाश में परिवर्तित कर देता है। मर्यादा वह, जो इच्छाओं और आकांक्षाओं से आत्मा को परे रखती है। प्रेम वह,

जिसके द्वारा अन्तर में ईश्वर अवतरित होता है; और मर्यादा वह, जिसके द्वारा परम्पराएँ मनुष्य के मस्तिष्क को जकड़ लेती हैं।

एक युग-जैसी लम्बी चुप्पी के अनन्तर, जो अंधकार और अज्ञान के युग-जैसी भयानक और विनाशक थी, युवक ने अपना सिर उठाया। मर्यादा ने प्रेम पर विजय पा ली थी। उसने सहमी आँखों से अपने को घूरनेवाली लड़की की ओर से नेत्र घुमा लिये और शान्त स्वर में बोला—अब सब समाप्त हो चुका है। जागरण ने स्वप्निल कल्पनाओं को मिटा दिया है। तुम अब अपने पति के पास लौट जाओ और उसी समारोह में शीघ्रता से मिल जाओ। कहीं ऐसा न हो कि मेरी आँखें तुम्हें देख लें और कहें कि तुमने विवाह की रात ही अपने पति के साथ विश्वासघात किया, वैसे ही, जैसे अतीत में अपने प्रेमी के साथ किया था।

वधू इन शब्दों से सहम गयी और काँपने-सी लगी। मानो एक म्लान पुष्प वायु के पथ पर आ गया था। पीड़ा से वह कराह उठी—नहीं-नहीं! अब मैं वहाँ वापस नहीं जाऊँगी, उस समय भी, जब मैं अपनी अन्तिम साँसें गिन रही हूँगी! मैंने उसे सदैव के लिए त्याग दिया है, और यों त्याग दिया है, जैसे एक निष्कासित बंदी रिहाई के समय अपने निष्कासन-प्रदेश को त्यागता है। तुम अब अपने को मुझसे दूर नहीं रख सकते, न तुम मुझे विश्वासघातिनी ही कह सकते हो! हम दोनों की आत्माओं को एकाकार करनेवाले प्रेम के हाथ पादरी के उन हाथों से कहीं अधिक पुष्ट हैं, जिन्होंने मेरे शरीर को वर की इच्छा की भेंट चढ़ाया था। मेरी यह बाहें अपनी गर्दन में यों ही पड़ी रहने दो। अब कोई भी शक्ति उन्हें यहाँ से हटा नहीं सकती! मेरी आत्मा तुम्हारी आत्मा से मिलकर एकरूप हो गयी है और मृत्यु भी अब उन्हें पृथक कर न सकेगी!

युवक ने अपने को स्वतन्त्र करने के लिए उसके हाथों को झटका दिया। घृणा और तिरस्कार उसके मुख पर झलक आया था।

—मैं कहता हूँ, तुम मेरे पास से चली जाओ।—वह कहने लगा—अब मैं तुम्हें भूल चुका हूँ और किसी अन्य को प्यार करता हूँ। लोगों ने जो-कुछ कहा था, वह सच है। जो मैं कह रहा हूँ, क्या सुन नहीं रही हो? मेरे मस्तिष्क और हृदय से तुम जा चुकी हो और मेरी घृणा तुम्हें अपनी दृष्टि से दूर रखना चाहती है। जाओ! मेरा पिंड छोड़ दो और मुझे अपनी राह जाने दो। अब अपने पति के प्रति वफ़ादार रहने में ही तुम्हारी भलाई है।

वधू ने एक सिसकारी भरी—नहीं-नहीं, मुझे इन शब्दों पर विश्वास नहीं! तुम मुझसे अब भी प्रेम करते हो। प्रेम के शब्द तुम्हारे नेत्रों में मैं अब भी पढ़ रही हूँ, और तुम्हारे संस्पर्श में उसी की अनुभूति अब भी पा रही हूँ। मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम मेरे प्रेम से कहीं अधिक प्राणवान् है। मैं इस स्थान को तब तक न छोड़ूँगी, जब तक तुम मेरे साथ न चलोगे, न मैं उस घर में तब तक वापस जाऊँगी, जब तक मेरे अन्तर की सारी शक्ति निःशेष न हो जायगी! जहाँ तुम जाओगे, वहाँ मैं भी जाऊँगी। इस धरा के अन्तिम छोर तक मैं तुम्हारा पीछा करूँगी। तुम यहाँ से अकेले केवल मुझे मारकर ही जा सकते हो!

उत्तर में युवक का स्वर पुनः गूँजा—ओ लड़की! मुझे चुपचाप छोड़ दे, नहीं, मैं चिल्लाकर यहाँ सब अतिथियों को एकत्रित कर लूँगा। क्यों अपनी निर्लज्जता उनके सामने प्रकट करायेगी और उनके मुख के लिए तीखा स्वाद और उनकी ज़बानों के लिए ज़हरीला निवाला बनेगी। इससे पूर्व कि मैं नजीबी को बुलाऊँ और वह तुझपर ताना मारती हुई अपनी विजय के लिए हँसे और तेरी पराजय के लिए तुझे चिढ़ाये, तू मुझे छोड़कर चली जा!

युवक ने यह कहकर गर्दन में पड़े हुए उसके हाथों को पुनः झटका दिया। इस बार लड़की की मुद्रा बदल गयी। उसकी आँखें चमकने लगीं। उसका व्यवहार निवेदन करने से बदल गया, और पीड़ा ने क्रोध और निष्ठुरता का रूप ले लिया। वह उस सिंहनी की भाँति बन गयी, जिसके शावक उससे छीन लिये गये हों, और उस सागर की

भाँति, जिसकी गहराई अशांत हो गयी हो और जिसे तूफ़ान ने क्रोधित बना दिया है।

वह चीख़ उठी—वह कौन है, जो मेरे अनन्तर तुम्हारे प्रेम में उल्लास भरेगा? वह किसका हृदय है, जो मेरे हृदय की उपेक्षा कर तुम्हारी ज़िन्दगी के चुम्बनों का पान करने के लिए प्याला बनेगा?

यह कहकर उसने अपने वस्त्रों की तहों से एक कटार निकाली और बिजली की तेज़ी से उसे युवक के हृदय में घुसेड़ दी। युवक काँपा और अंधड़ से टूटी हुई शाख की भाँति धरती पर गिर पड़ा। तब वह उसके चरणों के समीप बैठकर उसके ऊपर झुक गयी। हाथ में थमी कटार से रक्त की बूँदें अब भी टपक रही थीं। युवक ने अपने नेत्र खोले, जिनपर मृत्यु की कालिमा दौड़ने लगी थी। उसके अधर हिले और डूबती साँसों से यह शब्द फूटे—प्रियतमे! मेरे निकट आओ! और निकट आओ! मेरी लैला! अब मुझे छोड़ना नहीं! मृत्यु जीवन से अधिक शक्तिशाली है, किन्तु प्रेम मृत्यु से भी अधिक शक्तिवान है! विवाह-समारोह के अतिथियों की इन रंगरेलियों और उल्लास की इन आवाज़ों को सुनो! प्याले से प्याला टकराकर कैसे बज रहे हैं! पर तुमने इस वातावरण में अपनी साँस घुटती पायी और वहाँ से निकलकर मेरे समीप आयी हो। मुझे उस हाथ का चुम्बन कराओ, जिसने मेरी जीवन-डोर काटी है! तुम भी मेरे अधरों का चुम्बन करो, उन अधरों का, जिन्होंने असत्य का आश्रय लिया और मेरे हृदय की वास्तविकता को छिपाये रखा। इन मुरझायी पलकों को अब अपनी अँगुलियों से बंद कर दो, जिनपर मेरे लहू की छींटें अब भी विद्यमान हैं। जब मेरी आत्मा मुझसे अलग होकर शून्य में विलीन हो जाय, तब मेरे सीधे हाथ में यह कटार पकड़ा देना और उन सबसे कहना कि ईर्ष्या और निराशावश इसने आत्महत्या कर ली है। लैला! सच में मैं तुम्हें बहुत प्यारा करता हूँ! पर मैंने विवाह की रात तुम्हारे साथ भागने की अपेक्षा यह अधिक उचित समझा कि अपने हृदय और ज़िन्दगी की ख़ुशी का बलिदान कर दूँ। मेरी अन्तरात्मा की प्रिय, मेरी लैला! इससे पूर्व कि लोग मेरे शव पर दृष्टिपात करें, मेरा चुम्बन लो!—युवक ने यह कहते हुए अपने घायल हृदय को एक हाथ से दबाया और इसी के साथ उसका सिर एक ओर गिर गया, प्राण-पंछी उड़ गये।

तब वधू अपना सिर उठाकर उस मकान की ओर देखती हुई चिल्लायी—तुम-सब यहाँ आकर मेरे वर और विवाह को देखो! आओ! मैं तुम्हें अपनी सुहाग-सेज दिखाऊँगी! ओ निद्रा में निमग्न प्राणियो! जागो! ओ मदिरा में मदोन्मत्त जीवो! संज्ञा लाभ करो! विलम्ब न करो! आओ! मैं तुम्हें प्रेम, मरण और जीवन के रहस्यों से अवगत कराऊँगी!

वधू का स्वर उस घर के प्रत्येक कोने में गूँज उठा। रंगरेलियों में डूबे अतिथि उसकी गूँज से काँप उठे। कुछ क्षण तक वे सकते-जैसी दशा में रहे, मानो उनकी बेहोशी को चैतन्य छू गया हो। फिर वे शीघ्रता से बाहर अँधेरे में दौड़े और गिरते-पड़ते, लड़खड़ाते हुए वहाँ आकर रुक गये, जहाँ युवक की लाश पड़ी थी और वधू उसके समीप घुटनों के बल बैठी थी। दृश्य की वीभत्सता से डरकर वे पीछे हट गये। किसी में साहस न हुआ कि घटना का कारण पूछे। शव के वक्ष से बहते हुए लहू और वधू के हाथ में थमी कटार की चमक से उनकी ज़बान को लक़वा मार गया और उनके शरीरों को जड़ कर गया।

वधू ने उनकी ओर घूमकर देखा। उसका मुख गम्भीर और ग़मगीन था। चीख़ते-जैसे स्वर में कहने लगी—बुज़दिलो! मौत के स्पर्श से इतना घबराओ नहीं! मेरे निकट आओ! मौत एक बहुत बड़ी न्यामत है और तुम्हारी क्षुद्रता से उसे कोई सरोकार नहीं! आओ! इस कटार से काँपो मत! यह एक अति पवित्र अस्त्र है और तुम्हारे अपवित्र शरीरों और कलुषित हृदयों का स्पर्श यह कदापि न करेगा! इस सुन्दर युवक की ओर निहारो! यह विवाह के अलंकारों से सुसज्जित है न! यह मेरा प्रियतम है और मैंने इसलिए इसकी हत्या की, क्योंकि यह मेरा प्रियतम है! यही मेरा वर है और मैं इसकी वधू हूँ। हमने अपनी सुहागरात मनाने के लिए एक सेज की खोज की थी, पर वह इस संसार में न मिली,

जो तुम्हारी रीतियों-नीतियों से संकीर्ण, तुम्हारे अज्ञान से अंधकारमय और तुम्हारे कुकृत्यों से अपवित्र बन गया है। हमारे लिए इसलिए यही उचित था कि हम इन बादलों से परे किसी दूसरे प्रदेश में उसकी खोज करते! कायरो! आगे क्यों नहीं बढ़ते? सम्भवतः हमारे चेहरों पर तुम्हें ईश्वरीय छाया के दर्शन हो सकें और उसी की मधुर वाणी को हमारे हृदयों के माध्यम से सुन सको!

—वह दुष्टा ईर्ष्यालु स्त्री कहाँ है, जिसने मुझे मेरे प्रियतम के विरुद्ध बरगलाना चाहा था और कहा था कि वह किसी अन्य पर आसक्त है और मुझे भूल गया है? उसने सोचा था कि इस प्रकार मैं प्रियतम को बिसार दूँगी। पादरी ने जब मेरे और उसके बान्धव के सिर पर हाथ रखा था, दुष्टा ने विचारा था कि बाज़ी उसके हाथ रही। वह नागिन, विश्वासघातिनी नजीबी अब आकर देखे कि कैसे उसने तुम लोगों को मेरे प्रियतम के विवाहोत्सव के उपलक्ष्य में, उस व्यक्ति के विवाहोत्सव के उपलक्ष्य में नहीं, जिसने उसे मेरे लिए वरा था, आमोद-प्रमोद मनाने के लिए एकत्रित किया है! शायद तुम मेरे शब्दों के अर्थ नहीं समझ रहे हो। भला कभी अन्धकार इस योग्य हुआ कि सितारों के गीतों को समझे? पर तुम अपने नौनिहालों को उस स्त्री के बारे में अवश्य बताना, जिसने विवाह की रात ही अपने पति की हत्या की। जब कि तुम्हारी गंदी ज़बानें हमें बुरा-भला कह रही होंगी, वे हमारे लिए दुआएँ माँगेंगी, क्योंकि सत्य और पुण्यात्माएँ कल तक अपने लिए निवासस्थान खोज लेंगी। मूर्खो! तुमने मुझे पत्नी बनाने के लिए धन, कपट और छलना का प्रयोग किया! तुम उन मूढ़ जनों के प्रतीक हो, जो अंधकार में प्रकाश की दुराशा करते हैं, चट्टान से जल-स्रोत फूटने की प्रतीक्षा करते हैं और कंकरीली भूमि में मुस्कराते गुलाब के दर्शन की इच्छा रखते हैं! तुम उस प्रदेश के प्रतीक हो, जो मूर्खों के नेतृत्व में उसी प्रकार है, जिस प्रकार कोई अंधा अंधे पथप्रदर्शक के नेतृत्व में होता है! तुम उन अज्ञ पुरुषों के प्रतीक हो, जो अपने को अलंकृत करने के लिए अपनी कलाई और ग्रीवा कटाना स्वीकार करते हैं। पर मैं तुम्हारी इस अज्ञता के लिए तुम्हें क्षमा कर दूँगी, क्योंकि विदाई की बेला को हर्ष का पर्व समझनेवाली आत्माएँ संसार त्यागते समय उसके पापों को क्षमा कर जाती हैं!

यह कहकर वधू ने अपने हाथ में थमी कटार ऊपर उठायी और उसे उस दृष्टि से देखा, जिस दृष्टि से एक प्यासा अपने अधरों तक आते हुए जल-पात्र को देखता है, और दूसरे क्षण उसे अपने वक्ष में प्रविष्ट कर लिया। तराशे हुए कुमुदिनी के फूल की भाँति वह अपने प्रियतम की बगल में गिर गयी। दूर खड़ी हुई स्त्रियाँ दर्द और भय से चीखीं और मूर्च्छित होती हुई एक-दूसरे पर गिरने लगीं। पुरुष समुदाय भी भय और घबराहट से विचलित हो उठा।

विदा लेती हुई वधू ने उनकी ओर फिर देखा। उसके वक्षःस्थल से रक्त का प्रवाह अभी जारी था। बोली—अपवित्र आत्माओ! अब हमारे निकट न आना और न हम दोनों को एक-दूसरे से अलग करना, अन्यथा तुम्हारे सिर के ऊपर मँडरानेवाली आत्माएँ तुम्हारी गर्दन पकड़कर जीवन-लीला समाप्त कर देंगी! इस प्यासी धरती को एक साथ ही हमारा रक्त पीने दो। यह अपने अन्तर में हम दोनों को उसी प्रकार छिपाकर सुरक्षित रखेगी, जिस प्रकार वह बसंत के लिए बीजों को शिशिर के तुषारपात से छिपाकर सुरक्षित रखती है!

वधू अपने प्रेमी के निकट और खिसक गयी और अपने अधरों से उसके शीत अधरों का चुम्बन करने लगी। डूबती हुई अन्तिम साँसों से टूटे-से यह शब्द और फूटे—मेरे प्रियतम! मेरी ओर निहारो! मेरी अन्तरात्मा के दूल्हा, मेरी ओर देखो! देखो, ये ईर्ष्यालु किस प्रकार हमारी सेज के चारों ओर खड़े हैं! देखो, कैसे यह अपलक हमें निहार रहे हैं! देखो, किस प्रकार ये अपने में उबल और दाँत पीस रहे हैं! बहुत समय तक तुम्हें मेरी प्रतीक्षा करनी पड़ी थी, सलीम! पर अब मैं तुम्हारे बहुत क़रीब हूँ। मैं सारे बन्धनों और पाशों को तोड़ आयी हूँ। आओ, अब हम विलम्ब न करें और प्रकाश की ओर शीघ्रता से प्रस्थान करें, क्योंकि इस अंधकार में हमारा पड़ाव बहुत काल तक रहा है। समस्त वस्तुएँ मेरे सामने से भाग रही या छिप रही हैं। मेरे प्रियतम! सिवा तुम्हारे अब मेरी दृष्टि इन

किसी पर न उठेगी। मेरे इन अधरों की ओर निहारो, जिनसे यह अंतिम साँस निकल रही है। सलीम! आओ! अब हम चलें, क्योंकि प्रेम ने अपने डैने फैला दिये हैं और प्रकाश में चलने के लिए हमारे सम्मुख मँडरा रहा है!

यह कहकर वधू अपने प्रेमी के वक्ष पर गिर गयी। उसका रक्त युवक के रक्त में मिल गया और सिर उसकी ग्रीवा पर टिक गया। पर उसकी आँखें युवक की आँखों को देखने के लिए खुली रहीं।

वे स्तब्ध-से शान्त खड़े रहे। उनके मुख पर ताले पड़ गये थे और पैर लड़खड़ाने लगे थे। मृत्यु-सम्राट ने उनकी गतिशीलता और शक्ति का मानो अपहरण कर लिया था।

तभी वहाँ वह पादरी आया, जिसने वधू का विवाह कुछ समय पूर्व सम्पन्न कराया था। उसने अपना सीधा हाथ उठाकर मृत युग्म की ओर हिलाया और उन त्रसित लोगों की तरफ़ देखता हुआ, खुरदरी आवाज़ में चिंग्घाड़ा—वे हाथ काट देने-योग्य होंगे, जो निर्लज्जता और पाप के रक्त से रंजित इन शवों के लिए उठेंगे! वे नेत्र श्राप पाने के योग्य होंगे, जो इन घृण्य दुरात्माओं के लिए, जो यमदूतों-द्वारा नरक में ले जायी गयी हैं, सहानुभूति में आँसू बहायेंगे! शैतान के इस पुत्र और पाप की इस पुत्री को लहू से चिपचिपी इस धरती पर तब तक पड़े रहने दो, जब तक कुत्ते इनके गोश्त को नोच न डालें और हवा इनकी हड्डियों को बिखेर न दे! तुम-सब इन दुरात्माओं के पाप और दुराचार की दुर्गन्ध से दूर रहकर अपने अपने निवास-स्थानों को लौट जाओ! शीघ्रता करो! कहीं ऐसा न हो कि इससे पूर्व ही नरक की अग्नि की जिह्वा तुम्हें चाट जाय! तुम सब कान खोलकर सुन लो! जो यहाँ अब भी रहेगा, वह जातिच्युत कर दिया जायगा और ईश्वर के वास-स्थान पवित्र चर्च में उसका प्रवेश निषिद्ध होगा! वह इसाइयों के पूजन और प्रार्थनाओं में भाग भी न ले सकेगा!

इसपर सुसन आगे बढ़ी, जिसे वधू ने अपने प्रियतम के निकट दूतिनी बनाकर भेजा था। वह पादरी के समक्ष खड़ी हो गयी और डबडबाये नेत्रों से घूरती हुई निर्भीक वाणी में बोली—ओ अज्ञान से अंध पातकी! मैं यहाँ रहूँगी! मैं सुबह तक इनकी निगरानी करूँगी और इन झुरमुटों के नीचे इनके लिए एक कब्र खोदूँगी। यदि तुम मुझे खोदने के साधन से वंचित रखोगे, तो मैं अपनी अँगुलियों से यहाँ की धरती विदीर्ण कर डालूँगी! यदि तुम मेरे हाथ भी बाँध दोगे, तो मैं उसे दाँतों से खोद डालूँगी! तुम-सब इस स्थान से भाग जाओ, क्योंकि लोबान के धुएँ से यह महक रहा है और पशुओं को सुगन्धों से घृणा होती है! तुम इस अँधेरे में ही अपने बिस्तरों में मुँह छिपा लो, क्योंकि जो स्वर्गीय संगीत प्रेम के इन शहीदों के ऊपर वायु में तरंगित हो रहा है, वह उन कानों में कभी प्रवेश न करेगा, जो गंदगी से बंद हैं!

वे-सब तो पादरी की डरावनी मुद्रा से भयभीत होकर वहाँ से चले गये, पर वह लड़की शान्त-सी निर्भीक खड़ी रही, और उन शवों को निहारती रही, मानो एक माता रात के इस सन्नाटे में जगकर अपने शिशुओं की रखवाली कर रही हो!

अनु० हृदयेश

बीसवीं सदी की कहानी

जगदीश नारायण माथुर

यह तो आप शीर्षक से ही समझ गये होंगे कि मैं बीसवीं शताब्दी का कहानीकार हूँ। क्या शीर्षक में आपको कहीं भी प्रयोगवाद नहीं लगा ? इधर मैंने कुछ बहुत ही सुन्दर कहानियाँ लिखीं, उन्हीं में से एक कहानी मैंने एक सम्पादकजी के पास भेजी। स्वीकृति अथवा अस्वीकृति की प्रतीक्षा कर रहा था कि सम्पादकजी का एक उपदेश-भरा पत्र मिला। लिखा था :

इस पत्र के लिए कहानियाँ केवल कहानियाँ नहीं होनी चाहिएँ। (कदाचित अर्थ था, उन्हें कुछ-कुछ लेख, कुछ-कुछ कविता, कुछ-कुछ गद्य गीत आदि-आदि होना चाहिए !) बल्कि उनमें जीवन की हूक हो (कोयल की कूक हो, मानव की भूख हो, साहित्य के लिए !) और हो वह प्रेरणा, उत्साह और बल, जिससे डगमगाते हुए कदम स्थिर होकर फिर आगे बढ़े चलें। (चाहे शराब के नशे के ही कारण क्यों न डगमगा रहे हों !) सोया हुआ मानव, (चाहे रात सेकन्ड शो देखकर ही क्यों न सोया हो !) समाज और राष्ट्र नयी चेतना पाकर जाग उठें। (अब चौकीदारों की रोज़ी गयी !) जीवन जीने के लिए है, (यह कौन नहीं जानता !) यही उसका उद्देश्य हो।

आगे लिखा था, कहानियाँ प्रायः इनसे सम्बन्ध रखनेवाली होनी चाहिएँ। इसमें पाँच नियम थे तथा ऐसी कहानियों को स्थान न दिया जायगा, इसमें तीन नियम थे।

और मैंने पाया कि मेरी कोई भी कहानी इन आठ नियमों के घेरे में नहीं घिरती। यानी अब तक जो-कुछ भी मैंने लिखा था, कूड़ा-करकट था। इस कारण निश्चय किया कि क्यों न कुछ अच्छी, काम की चीज़ें लिखी जायँ। अब तीन कहानी लिखकर अमर हो जानेवाले ज़माने तो लद गये !

मैं इसी उधेड़-बुन में था कि एक कहानी इस पत्र के योग्य लिखी जाय, कि कहानी बोली—नमस्कार, लेखक महोदय ! यह बीसवीं शताब्दी है। इतने बन्धनों में तो आजकल किसी की पत्नी भी नहीं चलती, जितने में तुम कहानी को चलाना चाह रहे हो !

मैं कुछ इस भाव से मुस्कराया कि जब तक हाथ में कलम और दवात में स्याही है, तुम्हारा जाना असम्भव

है। तथा मुझ-जैसा साथी का भी तो तुम्हें मिलना कठिन है!

कहानी मन के भाव ताड़ गयी। बोली—मेरे लिए न तो तुम ही एक लेखक रह गये हो, न यही एक पत्रिका रह गयी है। और रही कलम-दवात की धौंस, तो क्या तुमने साहित्यकारों की साहित्यिक मृत्यु नहीं सुनी?

अब मैंने दूसरे अस्त्र का प्रयोग किया। बोला—क्या इस गर्मी के मौसम में मसूरी की यह ठंडी जलवायु छोड़कर कहीं जाना ठीक होगा?

उत्तर मिला—नाज़ुक अवश्य हूँ, पर जलवायु का प्रभाव मुझपर नहीं पड़ता। मैं तो केवल इन बन्धनों से घबराती हूँ, जिनमें तुम कहानी को बाँधना चाहते हो।

फिर कुछ मुस्कराकर बोली—और जितने बोझ तुम मुझपर लादना चाहते हो, उतने से तो एक उपन्यास भी बोझिल हो उठता है।

मैं शान्त रहा, कहानी के मुँह भी कौन लगे!

बोली—इस बीसवीं शताब्दी में कहानी और उपन्यास में क्या अन्तर है, जानते हो?

मैं कुछ कहने जा ही रहा था कि मुझे रोककर बोली—कोई घिसी-पिटी परिभाषा न ले बैठना। मैं तुम्हें एक उपमा देना चाहती थी। परन्तु तुम्हारे सम्पादक के पाँचवें उसूल, खुला लेकिन शिष्ट हास्य, के कारण नहीं देना चाहती।

फिर कुछ रुककर बोली—मैं बीसवीं शताब्दी की कहानी हूँ। किसी से डरती भी नहीं हूँ। सुनो! कहानी एक नवयौवना की तरह होती है, दुबली-पतली, नाज़ुक-सी, जिसको सब एक नज़र देखना चाहते हैं। और उपन्यास एक मोटी विवाहिता स्त्री की तरह होती है, जिसको इस बीसवीं शताब्दी में लोग दूर से ही हाथ जोड़ते हैं!—फिर बड़े अन्दाज़ से बल खाकर वह मुस्करायी।

मैंने कहा—तुम कहना क्या चाहती हो, यह मेरी अब भी समझ में नहीं आया।

—आ जायगा समझ में। पहले मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो। जानते हो उपन्यासों की अलोकप्रियता का कारण क्या है?

मैंने कहा—कुछ-कुछ जानता हूँ, उसी कारण नहीं लिखता हूँ।

बोली—ख़ाक जानते हो! तुम्हारे साथ तो कारण ही और है। एक तो मैं भा गयी हूँ। दूसरे, तुम्हारे अन्दर इतने धैर्य की कमी पाती हूँ।

मैंने कहा—अच्छा, तुम्हीं बताओ।

—कहानी को ही नहीं, उपन्यास को भी आजकल लोग इन्हीं बन्धनों में बाँधना चाहते हैं। कहानी तो कहानी, इन बन्धनों से तो उपन्यास भी बोझिल हो उठता है। ऐसी कहानियाँ और उपन्यास पहले चल जाते थे, अब नहीं चल सकते। ऐसी शिक्षापूर्ण बातें सुनने की आवश्यकता ही अगर कोई महसूस करेगा, तो चार सौ पन्नो का उपन्यास पढ़ने के स्थान पर चर्च या मन्दिर में जाकर आधे घन्टे में निबट आयगा। जो उपन्यास इन बन्धनों में नहीं बँधे होते है, वे अब भी काफ़ी प्रचलित हैं।

मैंने कहा—अपना-अपना विचार है। किसी-किसी विषय में मैं भी भ्रांत मत स्थिर कर लेता हूँ। इसका तुम्हें भी पूरा अधिकार है।

बोली—जानते हो, कहानी का जन्म कैसे हुआ?

मैंने दोनों ओर को गरदन हिलायी।

कहानी बोली—सबसे पहले कहानी का जन्म हुआ था उपदेश देने के लिए। इस कारण उस समय हर कहानी के अंत में एक ही नहीं, कई उपदेश होते थे। फिर जब हिंसा का प्रचार बढ़ा, तो कहानी को नीति-शिक्षा के काम में भी लाना आरम्भ कर दिया।....

मैं इस लम्बे भाषण से ऊबा जा रहा था, पर जब आसानी से कहानी-लेखक से ही निस्तार पाना कठिन होता है, तो स्वयं कहानी अपना इतिहास सुनाने लगे, तो पीछा छुड़ाना कितना कठिन होगा, यह तो आप तभी जान सकते हैं, जब आप किसी कहानी-लेखक की बातों के घेरे में घिर चुके हों।

आगे बोली—पुरानी परम्पराएँ आसानी से मिटती नहीं और विशेष कर भारत में। इस कारण यदि कुछ सम्पादक कहानी-द्वारा इस युग में भी देश, समाज, राष्ट्र

आदि का सुधार कराना चाहते हों, तो कोई नयी बात नहीं।

मैंने कहा—जब तुम कहानी अपनी सुना रही हो, तो स्वयं के स्थान पर कहानी शब्द का क्यों प्रयोग करती हो ?

बोली—क्योंकि उन कहानियों को मैं अपने से इतना नीचा मानती हूँ कि उनसे सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहती। जिसे मैं अपने से सम्बन्धित ही नहीं मानती, उसके इतिहास को अपना इतिहास कैसे कहूँ ?

मैंने एक सिगरेट जलाने की आज्ञा चाही।

कहानी बोली—मेरे लेखकों को यह रोग बुरा लग गया है। जब तक एक सिगरेट नहीं पी लेते, एक पंक्ति नहीं लिख सकते। यह तो कभी नहीं सुना कि तुलसीदास-जी जब तक हुक्का नहीं गुड़गुड़ा लेते, तब तक एक भी छंद न उतरता हो।

मैंने मुँह बनाया, मतलब था फिर विषय से भटक रही हो।

पर वह कहती गयी—इधर तो लोगों ने कहानियों को दरबों में भी बन्द करना आरम्भ कर दिया है, यह गाँधीवादी, यह प्रगतिवादी, यह पालायनवादी, आदि-आदि। यहाँ तक कि लेखकों तक पर ठप्पे लगा दिये हैं, जिससे वह हर विषय में कलम चला ही न सकें।

मैंने ताने के स्वर में कहा—तो क्या होना चाहिए ?

पर कहानी पर कोई असर न हुआ। वह कहती गयी—लेखक को स्वतन्त्र होना चाहिए। मान लीजिए, वह एक किसान को देखता है और प्रतक्रिया-स्वरूप एक कहानी लिखता है। फिर वह एक मिल-मालिक को देखता है और प्रतिक्रिया-स्वरूप एक और कहानी लिखता है। इसके यह तो अर्थ नहीं हुए कि उसने ख़ेमे बदल लिये हैं। अगर किसी लेखक ने एक कहानी स्वर्ग के विरुद्ध लिख दी, तो आयु-भर उसे स्वर्ग के विरुद्ध ही लिखना पड़ेगा, नहीं तो पलायनवादी कहलाएगा। यह अच्छी रही !

मन में सोच रहा था, बुरे फँसे।

—और तो और, कवि, कहानीकार, लेखक की भी तीन जातियाँ बना डालीं। कोई कवि यदि कहानी अथवा लेख लिख दे, तो चौंककर पूछते हैं, अच्छा इन्होंने लेख भी लिखना आरम्भ कर दिया ! जैसे जो कवि है, वह आपस में बातचीत भी कविता में करता हो। और जासूसी कहानी-लेखकों को तो तुम लोग इतना नीचा समझते हो, जितना ब्राह्मण शूद्रों को....

मैंने कहा—बस-बस !....तुमने तो अच्छा-खासा भाषण झाड़ दिया। बीसवीं शताब्दी की कहानी ! यह तुममें एक दोष आता जा रहा है कि कहानी थोड़ी-सी और शेष भाषण की भरमार ! कृपा कर इन भाषणों को धारावाहिक दिया करें, न कि धाराप्रवाहिक।

कहानी बोली—लम्बे भाषण तो बीसवीं शताब्दी की विशेषता है, जब हमारा बहुत-सा काम मशीनें कर देती हैं, तो अवकाश बढ़ा और उस अवकाश का प्रयोग कैसे हो, तभी तो आजकल के नेता लम्बे-लम्बे भाषण देते हैं। और उन्हीं की देखा-देखी लेखकों में भी यही दोष आ गया है, क्योंकि कुछ लेखक नेता हो गये और कुछ नेता लेखक बन गये, और क्योंकि लेखकों से मेरा सम्बन्ध पुराना है, इस कारण, हो सकता है, मुझमें भी यह दोष आ गया हो।

मैं बीसवीं शताब्दी के इन लम्बे भाषणों से झुँझला चुका था। इस कारण जले पर नमक छिड़कने के लिए बोला—तुम कुछ भी कहो, मैं तो एक कहानी इन नियमों से बँधी-बँधायी अवश्य लिखूँगा।

बीसवीं शताब्दी की कहानी बोली—अच्छा, तुमको अब एक छोटी-सी कहानी सुनाकर बिदा लेती हूँ।

—एक मकान के पतनाले से सारे बराबरवालों को तकलीफ़ होती थी। मकान-मालिक स्वयं भी इस बात को जानता था। अन्त में पंचायत बैठी। पंचायत ने उस पत-नाले के सारे दोष गिना डाले।

—और मालिक-मकान ने कहा, सब-कुछ ठीक है, पर पतनाला यहीं गिरेगा।

—वही दशा तुम्हारी है।

मैंने कहा—कुछ भी कहो, पर मैं अब एक कहानी इन नियमों में आबद्ध लिखूँगा !

और इस-सब कहा-सुनी में बीसवीं शताब्दी की कहानी बिदा हो गयी ।

मैंने आराम की साँस ली, चलो पीछा, छूटा, ओछा चना, बाजे घना ! केवल भाषण ही देना जानती है ।

अब मैं एक कहानी सम्पादकजी के इच्छानुसार लिखूँगा । न जाने यह बीसवीं सदी की कहानी अपने को समझती क्या है ! ठीक भी है, अगली शताब्दी पिछली से जलती है, उसे अपने से कम महत्वपूर्ण समझती है । इस कारण अगर बीसवीं शताब्दी की कहानी मुझसे रूठ गयी, तो रूठ जाय । मैं भी मनाने जाऊँ, तब बात है ।

अब मुझे एक कहानी लिखनी थी, जो सम्पादकजी के उन पाँच गुणों से विभूषित हो और उन तीन अवगुणों से दूर ।

पात्र तो बहाना होते हैं । कहता तो लेखक अपनी तथा अपने परिचितों की ही बात है । इस कारण पात्रों की खोज में भटकना नहीं पड़ता ।

मेरे बराबर में एक लड़की रहती है । तन से जितनी काली है, मन से उतनी ही शोख़ है । शरीर से जितनी सूक्ष्म है, जिह्वा की उतनी ही विशाल है । रूप-रेखा से जितनी कुरूप है, नाम से उतनी ही सुन्दर है, नाम है सुहासिनी । परन्तु जब हँसती है, तो बिना उसकी ओर देखे यह ज्ञात करना असम्भव है कि हँस रही है अथवा रो रही है ।

मेरे विचार से उन आठ उसूलों में बँधी नायिका के लिए कोई बुरी नहीं । तथा उसके जीवन में जितने उतार-चढ़ाव आते हैं, उतने तो कदाचित् मंसूरी जाने में सड़क भी नहीं लेती । इस कारण क्लाइमेक्स लाने के भी बहुत-से स्थल हैं ।

उसका जन्म बिहार के एक ऐसे पिछड़े हुए गाँव में हुआ था, जिसके एक ओर पाकिस्तान है, दूसरी ओर नैपाल है, तीसरी ओर पश्चिमी बंगाल है और चौथी ओर तो बिहार है ही । इस कारण वह कौन-सी भाषा बोलती है, भगवान् जाने । जब हिन्दी बोलती है, तो बिहारी-सी लगती है; बिहारी बोलती है, तो बंगला-सी लगती है; जब नैपाली बोलती है, तो कुछ की समझ में नहीं आती और जब सब बोलती है, तो कोई नहीं समझता ।

सात वर्ष की आयु में विवाह हुआ और आठ वर्ष की आयु में विधवा हो गयी, यानी एक साल में दो क्लाइमेक्स ।

बिहार छूटा कैसे, उसकी भी एक कहानी है । बिहार की सबसे चंचल सरिता जब अपने को अपने में समेट न पायी तथा तट के सीमित बन्धन जब उसकी ऊँची महत्वाकांक्षा को पूरी न कर सके, तो वह उछलती-उछलती, वस्तुओं को समेटती सैकड़ों मीलों में फैल गयी ।

और जब धरती के उबरने का कोई आसरा न रहा, तो एक दिन मीलों लम्बे एक जलूस में सुहासिनी भी शामिल हो गयी, जो चलते-चलते रुकता था और रुक-रुककर चलता था । यह-सब दुःख-भरी कहानी यदि आप सुहासिनी के मुख से सुनें, तो उसे एक कहानी की नहीं, बल्कि एक उपन्यास की नायिका बना दें ।

और उसकी राम कहानी जानने के लिए आपको अधिक कष्ट भी न उठाना पड़ेगा । केवल इतना-भर कह दीजिए, सुहासिनी, तुम्हारी वाणी की मिठास बताती है कि तुम उस देश की हो, जहाँ लोरियों से बच्चा सोता है और भैरवी से जागता है, जहाँ कविता बच्चों की घुट्टी में मिलती है ।

मानो आपने रिकार्ड चला दिया । फिर जो वह चालू होगी, तो तब तक नहीं रुकेगी, जब तक वह पूरी कहानी नहीं सुना लेगी । आप किसी क्लाइमेक्स पर उसे रोककर चाहेंगे कि यह-सब कहानी नोट कर लें तथा कुछ गहराई में जाकर दो-तीन प्रश्न पूछ लें । पर एक क्या, हज़ार क्लाइमेक्स निकल जायँ, पर जब तक उसकी कहानी समाप्त न होगी, वह शान्त न होगी ।

प्रति क्षण कितने शब्दों को मुँह-निकाला देती है, इन्हें गिनना तो कदाचित् गीगरमुलर काउंटर के बस की भी बात नहीं, स्वरों में भोंपू से सीटी तक उतार-चढ़ाव हैं ।

शोख़ इतनी है कि यदि आप एक छोटा-सा मज़ाक करें, तो वह इतना ऊँचा उत्तर देगी कि आप भिन्नाकर रह

जायेंगे। जो बात हम जिह्वा पर भी नहीं ला सकते, वह बात वह इतनी आसानी से कह देगी कि उल्टे आपको ही शर्मा जाना पड़ेगा।

खल नायिका बनने-योग्य है, पर सोचा, यदि सुधारवादी कहानी में भी यह नायिका नही बन सकी, तो बेकार है सारा सुधारवाद।

नायक के लिए भी, मेरी ही तरह, किसी भी कहानी-लेखक को अधिक नहीं भटकना पड़ता।

अब शेष रह गया था एक सुधारवादी पृष्ठभूमि में एक सुधारवादी कहानी लिखना, जिसमें सुखी, सन्तुष्ट, आशापूर्ण व उन्मत्त जीवन के लिए मनुष्य का कभी न रुकनेवाला संघर्ष हो। अंधविश्वास, रूढ़िवाद और सब प्रकार की सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न हो, देश व राष्ट्र के नव निर्माण के लिए प्रोत्साहन और अच्छे नागरिक बनने की प्रेरणा मिले तथा खुला लेकिन शिष्ट हास्य हो।

और यह सारी शर्तें पूरी हो जातीं यदि ऊपर लिखी नायिका से नायक का विवाह हो जाता, क्योंकि इस दशा में विधवा-विवाह, और यह भी एक काली लड़की का कराके मैंने सम्पादकजी की मनमानी कर दी थी। इसमें संघर्ष भी था, सामाजिक अत्याचारों से विरुद्ध प्रबल आन्दोलन भी था, समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न भी था, अच्छे नागरिक बनने की प्रेरणा भी थी। शिष्टता तो अपने बस की बात है। यानी सब-कुछ था।

—सिवाय असलियत के!—यह बीसवीं शताब्दी की कहानी का स्वर था, जाने कब वह पुनः आ पहुँची थी।

मैंने कहा—कैसे?

बोली—यह फिर बताऊँगी।

नायक की खोजबीन दूर न करके मैंने उसके स्थान पर अपना ही चरित्र-चित्रण कर डाला। आखिर भगवान् ने आँख भी तो ऐसी ही बनायी है कि केवल पास की ही वस्तु देख सके। मैं ही नायक की खोज में दूर क्यों जाता?

फिर मैंने हवन-कुंड के सामने बैठाकर वैदिक रीति से दोनों का विवाह करा दिया। इस प्रकार एक ऊँचे स्तर की सुधारवादी कहानी लिखकर, जिसमें मैंने अपने किसी पात्र को भी उन आठ बन्धनोंवाली लक्ष्मण-रेखा से एक पग इधर-उधर न रखने दिया था, सम्पादकजी के नाम भेज दी।

उत्तर में स्वीकृति-सूचना, फिर बाद में मनीआर्डर आया।

दो महीने बाद यह कहानी एक अच्छे चित्र के साथ छप गयी। और इन-सब बातों से प्रोत्साहित होकर मैंने प्रण किया कि अब केवल इसी ढंग की कहानियाँ लिखा करूँगा। और मैंने एक प्रकार से बीसवीं शताब्दी की कहानी से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया।

लेकिन कहावत है न, सिर मुँड़ाते ही ओले पड़े!

इस कहानी के छपने के दो दिन बाद ही एक दिन सुहासिनी आयी और नाखून को दाँत से कुतरती हुई बोली—यह कहानी तुमने मुझपर लिखी है न?

मैं चक्कर में आ गया, क्या उत्तर दूँ कि वह बोली—उस कहानी के नायक निर्मल तुम ही हो न?

मेरे पैरों के नीचे से ज़मीन ही नहीं, ऊपर से आसमान भी खिसक गया। वह बोली—तो बाकीवाले भी सब हैं न?...तो तुम मुझसे कब विवाह कर रहे हो?

फिर विवाह की तैयारियों के विषय में उसने मुझे एक लम्बा-सा भाषण दिया। अन्त में बोली—तुम रुपये मुझे दे देना, मैं सब प्रबन्ध करा लूँगी। नहीं तो लोग तुम्हें ठग लेंगे।

तो, सम्पादकजी, अगर अनिद्रा की बीमारी न होती, तो यह-सब सुनकर अवश्य बेहोश हो जाता। आपने अच्छी सुधारवादी कहानी लिखायी! मुझे कहीं का भी न रखा। बोलिए, इस नयी कहानी के जन्म के लिए उत्तरदायी कौन है? और इस नयी मुसीबत से मेरा पीछा कौन छुड़ायेगा?

ख़ैरियत यह है कि अभी कुछ ही मोहल्लेवालों ने इसे पढ़ा है। फिर भी विधवा-विवाह सुनकर तथा पात्रों को पहचानकर एक अजीब तनातनी का वातावरण फैला हुआ है। अभी रमेश सूचना दे गया है कि मोहल्लेवाले मेरे विरुद्ध एक बवंडर-सा उठा देनेवाले हैं। अगर मैं तुरन्त यहाँ से खिसक न गया, तो कुछ भी असम्भव नहीं।

सम्पादक जी, आपकी इस अष्टसूत्री कहानी ने मुझे कहीं का न रखा, बाज़ आया मैं ऐसी सुधारवादी कहानियाँ लिखने से! पर अब संकट से पार कैसे पाऊँ?

कोई बड़े ज़ोर से हँसा।

मैंने पूछा—कौन?

उत्तर आया—बीसवीं शताब्दी की कहानी।

मैंने कहा—जलाने आयी हो?

बोली—नहीं, केवल तुम्हारी मूर्खता पर हँसी।

मैंने कहा—हँसने के बाद तो इस मुसीबत से उबार लोगी न?

बोली—तुमने निष्कर्ष क्या निकाला? तुम उस दिन मुझसे पूछ रहे थे कि तुम्हारी यह कहानी असलियत से दूर कैसे है? अगर दूर नहीं है, तो अब सुहासिनी से विवाह कर डालो न?

—निष्कर्ष तो यही निकाला कि हर शताब्दी पिछली से आगे होती है। और अगली शताब्दी में पिछली शताब्दी की कहानी लिखना मूर्खता है। अपने दूसरे प्रश्न का उत्तर भी तुम्हें ही बताना होगा, ऐसा कि मेरे जीते-जी गले में से यह फन्दा निकल जाय।

कहानी मुस्कराकर बोली—चलो, राह पर आ गये। लो, सुनो इन तूफानों से बचने का उपाय! कान इधर लाओ।

मान गया, साहब, बीसवीं शताब्दी के मस्तिष्क को भी। ज्ञान की इतनी गहराई, कल्पना की इतनी उड़ान, उपमान भी कहीं ढूंढे नहीं मिल रहा है।

अब लाइए, आपको भी बताये देता हूँ कि कहानी ने मुझे क्या तरकीब सुझायी।

कहानी बोली—अभी पिछली शताब्दी को गये अधिक समय नहीं बीता, यह दूसरी मूर्खता करने जा रहे हो। कुछ तो सोचने के लिए पाठक पर भी छोड़ दिया करो। यह पकी-पकायी कहानियाँ लिखना पिछली शताब्दी की बात थी। जिसमें शब्द-माधुर्य के स्थान पर व्याकरण पर अधिक ध्यान दिया जाता था। विराम, अर्द्ध-विराम न छूटे। आरम्भ-अंत में मुहावरे हों, आदि-आदि। और फिर इस तरकीब को लिख डालोगे, तो जिस लड़की से पीछा छुड़ाना चाहते हो, वह भी इसे पढ़ लेगी, क्योंकि वह तुम्हारी कहानियाँ पढ़ने का विशेष चाव रखती है। इस कारण सफलता न मिल जाय, इस विषय पर मौन ही रहना।

यदि बीसवीं शताब्दी की कहानी यों मुझे पग-पग पर सचेत न करती, तो मैं कितनी बड़ी भूल करने जा रहा था!

इस कारण, पाठको, मैं आपकी इस जिज्ञासा को तो फ़िलहाल शान्त कर नहीं सकता। आप भी इस विषय में सोचिएगा और आप क्या तरकीब समझते हैं, जिससे आसानी से मेरा पीछा छूट जाय, वह भी लिखें। जिसकी तरकीब बीसवीं शताब्दी की बतायी तरकीब से मिल जायगी; उसे एक हज़ार रुपये का इनाम मिलेगा। (पुरस्कार इससे अधिक रखना चाहते थे, परन्तु सरकार के नियमानुसार नहीं रख सके।) कहानी के ही शब्दों में—इस बीसवीं शताब्दी में सफलता ऐसे टेढ़े-मेढ़े पुरस्कारों से ही मिलती है।—फिर बोली—बता सकते हो, कहानी में क्या गुण होना चाहिए?

मैंने कहा—नहीं, तुम्हीं बताओ।

—मुझमें केवल दो गुण होने चाहिएँ, रोचकता और कहने के ंग में नवीनता।

मैंने कहा—शिष्टता तो प्रथम वस्तु है।

बोली—शिष्टता तो पत्र किस आयु के पाठकों के लिए है, इसपर निर्भर करती है।

मैं एक पत्र का नाम गिनाने जा रहा था कि उसने मन में बात पकड़ ली, आखिर उसकी उपज भी तो मानसिक ठहरी। बोली—मेरी तो यही समझ में नहीं आता कि लोग ऐसी खिचड़ी पत्रिकाएँ क्यों निकालते हैं।

—कैसी खिचड़ी?—मैंने पूछा।

—कम-से-कम खानेवाली नहीं। होम्योपैथिक डाक्टरों को तो जानते हो। उसमें से कुछ डाक्टर सब दवाओं को मिलाकर रख लेते हैं और हर रोग में उसी दवा को दे देते हैं। कुछ-कुछ वही हाल इन पत्र-सम्पादकों ने भी कर रखा है। माँओं, बच्चों, बूढ़ों, जवानों सब की एक ही पत्रिका!

मैंने मुँह ऊपर उठाया, मानो पूछ रहा हूँ, तो क्या होना चाहिए ?

बोली—जिस प्रकार की रचनाओं की आवश्यकता नवयुवकों को है, यह वृद्धों को नहीं; जो साहित्य बच्चों के लिए है, वह स्त्रियों के लिए नहीं। जैसे काढ़ने का नमूना देखकर आप कहेंगे, बेकार पन्ने भरे। साइकिल कैसे साफ रखी जाय, पढ़कर आपकी पत्नी झल्ला उठेगी। बिजली का आविष्कार एडसन ने किया, पढ़कर बूढ़े बाबा बिगड़ उठेंगे, और बच्चा कहेगा, और सबकी इतनी, मेरी केवल एक कहानी ! आवश्यकता है, सबके लिए अलग-अलग पत्रिकाओं की।

मैंने सिर हिलाया, अर्थ था बात तो पते की कहती हो।

—सो तुमने देखा, हर लेख, कहानी, कविता का केवल एक ही गुण रह जाता है, रोचकता, क्योंकि कहने के ढंग की नवीनता भी इसी के अंतर्गत आ जाती है। और शिष्टता निर्भर करती है कि पत्रिका किस आयु के लोगों के लिए है।

मैंने चद्दर खींची और कहा—अनिद्रा का असर जाता रहेगा, बीसवीं सदी की कहानी, क्योंकि आजकल तुममें भाषण देने की क्षमता बढ़ती जा रही है ! अब तो मुझे सोने दो, कल फिर बातें होंगी। अब तुमसे नाता न तोड़ूँगा। पर अनिद्रा की बीमारी है न, जाने नींद कब आये।

*

काफ़ी समय बाद।

अब मेरा पीछा उस बला से छूट गया है। आप उत्सुक होंगे यह जानने के लिए कि कहानी ने मुझे ऐसी बढ़िया कौन-सी तरकीब बतायी। तो, जनाब, बीसवीं शताब्दी ने जो तरकीब मुझे बतायी थी, वह तो मैंने वहीं लिख दी थी। और उसी तरकीब के अनुसार मेरे पास बीसों पत्र आये, जिनमें सुहासिनी से पीछा छुड़ाने की बड़ी-बड़ी तरकीबें सुझायी गयी थीं। उन्हीं में से एक पर चलकर मेरा पीछा भी छूट गया। तो आपने देखी, बीसवीं शताब्दी की कहानी की सूझ ! और कोई पाठक इस तरकीब को समझ भी नहीं पाया, इस कारण उस एक हज़ार रुपये पाने का हक़दार भी कोई नहीं हुआ।

अब आप पूछना चाहेंगे कि उस पाठक ने क्या तरकीब बतायी थी, तो एक बार मैं आपकी एक ही जिज्ञासा तो शान्त कर सकता हूँ। एक बार फिर से प्रयत्न कीजिए कि इस पाठक ने क्या तरकीब बतायी थी। इनाम वही एक हज़ार रुपये। परन्तु पत्रिका में छपे फार्म को ही भरकर भेजें, तभी प्रतियोगिता में शामिल किया जा सकेगा। अच्छा, बिदा, नमस्कार।

३ विष्णु रोड,
देहरादून।

किस्सा हातिम ताई बेतस्वीर

शफ़ीकुर्रहमान

ऐ साहिबो ! दास्तान कहनेवाला यों बयान करता है कि अफ़वाह है, किसी ज़माने में, किसी जगह कोई बादशाह राज करता था। उसके न्याय और दया का यह हाल था कि वह हर रोज़ सुबह नौ बजे अपने सामने शेरों और बकरियों को एक घाट पर पानी पिलाता था। उसका लड़का ताई था और वह इतना हातिम था कि सब उसे हातिम ताई कहते थे। कभी-कभी कुछ लोग उसे भूल से हातिम तायी भी कह बैठते थे।

हातिम इतना रहमदिल था कि वह शिकार के सिलसिले में सारे-सारे दिन जानवरों के पीछे भागता रहता और अन्त में उन्हें पकड़कर छोड़ देता। उन्हें बिल्कुल न डाँटता, बल्कि उनसे अपने इस व्यवहार के लिए माफ़ी माँगता।

हातिम प्रति दिन अपनी सल्तनत में नंगों-भूखों को कपड़ा पहनाता, खाना खिलाता, और अन्धे-मोहताजों की शादियाँ कराता। हातिम ने मुख़बिर छोड़ रखे थे। जब तक सारा शहर भोजन न कर चुकता, हातिम एक कौर न उठाता। इसी लिए वह दोपहर का खाना रात को खाता और रात का खाना अगली दोपहर को।

हातिम स्वयं बहुत-से गुणों का मालिक था। सुन्दर, सुशील, शिष्ट और सदाचारी। उसने स्वभाव कुछ ऐसा पाया था कि जहाँ किसी चेहरे को देखता, तुरन्त हज़ार जान से उसपर आशिक़ हो जाता। यह उसकी बहुत प्रिय 'हाबी' थी। वह यह मिसरा भी अक्सर गुनगुनाते सुना गया था :

मेरा मिज़ाज लड़कपन से आशिक़ाना था।

उन दिनों दरबार में एक सियाहपोश बुज़ुर्ग का तूती बड़े ज़ोरों से बोलता था। अमीर और रईस तो एक तरफ़, ख़ुद बादशाह भी उनसे डरता था। तूती से भी और बुज़ुर्ग से भी !

जब बुज़ुर्ग दरबार में तशरीफ़ लाते, (वे हर रोज़ आते थे) तो बादशाह स्वागत के लिए उठता और ज़मीन छूकर कहता—पीर व मुर्शिद के क़दमों की ख़ाक गुलाब-जल में हल करके सुर्मे के तौर पर इस्तेमाल करूँ, तो नज़ला-ज़ुकाम को फ़ायदा हो !

बुज़ुर्ग मुस्कराते और दरबार में बैठकर ईश्वरोपासना शुरू कर देते। दरबारी और बादशाह चुपचाप बैठे रहते, यहाँ तक कि दरबार बरख़ास्त हो जाता। हातिम मन-ही-

मन झुँझलाता कि यह क्या मुसीबत है। उसे वह बुज़ुर्ग दोनों आँख न भाते। लेकिन वह मजबूर था और कुछ न कर सकता था।

एक दिन .खुदा का करना क्या हुआ कि एक शहज़ादी अपने लाव-लश्कर-सहित शाही मेहमानखाने में उतरी। वह आबोहवा बदलने के उद्देश्य से समुद्र-तट की ओर जा रही थी। शहज़ादी ने सियाहपोश बुज़ुर्ग को झरोखे से देखा और तरस खाकर अपनी अन्ना से बोली—दुनिया बुलबुले के समान है और इसका बैठ जाना मामूली बात है। ये बु.ज़ुर्ग बहुत दूर पहुँचे हुए मालूम होते हैं। जी चाहता है कि कभी .फ़ुरसत के वक़्त .खूब इनके क़दमों से अपनी आँखें मलूँ।

अन्ना ने कहा—ज़रूर!

यह सुनकर शहज़ादी ने सन्देश भेजवाया कि ऐ बुज़ुर्ग बेमिसाल! अगर मेरे नाचीज़ ग़रीबख़ाने को अपने मुबारक जूतों से मालामाल करो, तो कमतरीन को बेदामों मोल ले लो और लौंडी दोनों जहान में सुर्ख़रू हो!

बुज़ु.र्ग ने दावत क़बूल की और तशरीफ़ ले आये।

शहज़ादी ने महल को शाही फ़र्श और मसनद से .खूब सजाया। माल व जवाहर का थाल मय जड़ाऊ मोर के सामने रखा। ज़रबफ़्त के दस्तरख़्वान पर सोने-चाँदी के जड़ाऊ बर्तनों में भाँति-भाँति के खाने चुने और बाद में गंगा-जमुनी चिलमची और लोटे से हाथ धुलवाये। बु.ज़ुर्ग खा-पीकर आशीर्वाद देते हुए बिदा हुए। शहज़ादी के नौकर दिन-भर के थके हुए थे। उन्होंने सोने से पहले अपने घोड़े भी बेच दिये और जहाँ तक हाथ-पाँव फैलाकर सो सकते थे, सो रहे।

सियाहपोश बु.ज़ुर्ग दिन में सब साज़-सामान देख चुके थे। उनकी राल टपक रही थी। वे रूमाल से मुँह पोंछते हुए रात को चुपके से निकले। अपने चालीस चोर साथ लिये और शाही मेहमानख़ाने का रुख़ किया। वहाँ उन्होंने हीरे-जवाहरात को हाथ न लगाया, सोचा कि यह चोरी में गिना जायगा, बाक़ी कोई चीज़ न छोड़ी। सुबह तड़के उठकर शहज़ादी क्या देखती है कि सारे महल में झाड़ू फिरी हुई है; यहाँ तक कि ऊँटों के कजावे और घोड़ों की ज़ीनें भी ग़ायब हैं। शहज़ादी ने दरबान को जा दबोचा और तैश में आकर बोली—ओ नमक-मिर्च-हराम! तूने चोर को क्यों नहीं पकड़ा?

दरबान ने अदब से अर्ज़ किया—चोर तो भाग गया, अब यही सही। यह उन सियाहपोश बु.ज़ुर्ग की लँगोटी है।

शहज़ादी तुरन्त समझ गयी कि हो-न-हो, यह उसी सियाहपोश बु.ज़ुर्ग की शरारत है। वह फ़रियादी बनकर सीधी शाही महल में पहुँची। बादशाह उस समय शेव कर रहा था। फ़रियादी ने मुजरा किया, ठुमरी गायी, दुआ दी और फ़रियाद की—जहाँपनाह! आपका वह सियाहपोश बु.ज़ुर्ग मेरे सामान पर हाथ साफ़ कर गया। .खुदा उसका मुँह और काला करे!

बादशाह एकदम .गुस्से से पीला फिर लाल हो गया और थरथर काँपने लगा। थोड़ी देर तक काँपता रहा, फिर चिल्लाकर बोला—नादान लड़की! ऐसे बु.ज़ुर्ग पर आरोप लगाती है! वह .खुद मेरा कलमदान और मूँछों का तेल उठाकर ले गया, लेकिन मैंने इलज़ाम न लगाया। जा, दूर हो जा मेरे सामने से और आइन्दा मुझे पीठ भी मत दिखाना!

शहज़ादी ने पन्द्रह-बीस फ़र्शी सलाम किये और बोली—हु.ज़ूर, चोर पर इलाज़ाम लगाने में क्या मुज़ायक़ा है?

बादशाह ने ताव खाया और तीन-चार क़लाबाज़ियाँ खाकर बोला—अरे कोई है? ज़रा लाना मेरी छड़ी!

संयोग से सारे नौकर-चाकर बाहर गये हुए थे। शहज़ादी समझदार थी। ताड़ गयी कि अब शाही प्रकोप की शिकार होनेवाली है, मुफ़्त में पिट जायगी। फ़ौरन बोली—मैं तो मज़ाक़ कर रही थी। मैं अपना इलज़ाम वापस लेती हूँ।

—हम भी अपना .गुस्सा थूके देते हैं,—बादशाह ने थूककर मुस्कराते हुए कहा—और साथ ही तुम्हें ख़लअत प्रदान करते हैं। आजकल ख़ज़ाना ख़ाली है। फसलें कटने पर और रुपया आने पर पंजाबी सूट मय डुपट्टे के बनवा दिया जायगा। नाप भेज देना। या ऐसा करना

कि सूट अपने पास से बनवाकर बिल शाही ख़ज़ाने में भेज देना।

शहज़ादी आदाब बजा लायी और रुख़सत हुई।

हातिम को सब पता था कि किसकी शरारत है। फिर भी वह अपनी दयालुता के कारण चुप था।

एक दिन उसका गुज़र शाही मेहमानख़ाने की तरफ़ हुआ। देखता क्या है कि शहज़ादी उदास है और उसकी अन्ना पास बैठी चटचट बलायें ले रही है। हातिम अपने को हुस्न की शमा के पास परवाने की तरह देखकर इश्क़ की आग में भस्म हो गया और अपनी आदत के अनुसार हज़ार जान से आशिक़ हो गया (शहज़ादी पर)। शहज़ादी ने उसकी ओर देखा और हातिम ठंडी आह खींचकर बोला :

डबडबायी हुई आँखों से न देखो मुझको
मेरी आँखों में न आ जायें तुम्हारे आँसू।

शहज़ादी शर्माकर बोली :

डबडबा आयीं ख़ुद-बख़ुद आँखें
बारहा ऐसा इत्तफ़ाक़ हुआ।

हातिम इस बार गर्म आह खींचकर बोला :

कौन यह देख सके है कि हसीं रोता है
हो बनावट का भी रोना तो क़लक़ होता है।

अच्छा, अब साफ़ साफ़ बताओ कि तुम्हें किसने सताया है?

शहज़ादी बोली—आसमान ने कि चर्ख़ और फ़लक उसके उपनाम हैं और चाल उसकी टेढ़ी है और अपनी उत्पत्ति के पहले दिन से ही उसे चिड़ियों-चौपायों, पेड़-पौधों और स्त्री-पुरुषों से अकारण बैर है।

इतने में अन्ना ने फिर बलायें लीं।

हातिम बोला—आसमान को बदनाम न करो। झगड़े की जड़, बल्कि झगड़े का तना वह सियाहपोश बुज़ुर्ग है। मुझे विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि परसों इतवार को वह नाहंजार तुम्हारा सामान बाज़ार में नीलाम कर रहा है। मैं ज़रूर उसकी ख़बर लूँगा।....और हाँ, अपनी अन्ना से कहो कि कुछ काम भी किया करे, क्योंकि सिवाय बलैयाँ लेने और नसीहतें करने के इसने उम्र-भर कोई काम नहीं किया।

अतएव इतवार को वह मूज़ी पकड़ा गया और अपनी सज़ा को पहुँचा। लेकिन इस घटना से हातिम का जी ऐसा खट्टा हुआ कि उसका इश्क़ भी उड़नछू हो गया। उसने मन में ठान लिया कि अब यहाँ रहना बेकार है। चलने से पहले वह दरो-दीवार, गलियों, कूचों, सबसे लिपट-लिपटकर हँसा और चल खड़ा हुआ। सहरा-सहरा, जंगल-जंगल घूमता, बवंडर की तरह मंज़िलें तय करता हुआ कहीं-का-कहीं जा निकला।

एक सुबह उसका गुज़र ऐसे बियाबान से हुआ, जो ऐसा उजाड़ था कि वहाँ उल्लू भी नहीं थे। एक जगह क्या देखता है कि एक दुबला-पतला और कमज़ोर-सा नौजवान बैठा भों-भों रो रहा है और बार-बार यह शेर पढ़ता है।

इश्क़ ने 'ग़ालिब' निकम्मा कर दिया
वरना हम भी आदमी थे काम के।

यह देखकर हातिम का जी भर आया। वह दहाड़ मार-मारकर रोने लगा। जब दिल का बुख़ार निकाल चुका, तो बोला—ऐ सुन्दर जवान! तू इस बियाबान में कहाँ?

नौजवान ने एक मर्तबा फिर शेर पढ़ा और बोला—ऐ राहगीर अपनी राह ले, तुझ-जैसे सैकड़ों आये और चले गये। सताये हुओं को क्यों सताता है :

तुझको भी मुहब्बत कहीं ऐसा न बना दे!

हातिम बोला—यार, बड़ा अफ़सोस है। जहाँ इतनों को अपनी कहानी सुनायी है, वहाँ हमने कौन-सा गुनाह किया है, जो हमें नहीं सुनाता?

नौजवान पर हातिम की इस बात का बड़ा असर हुआ। वह सिसकियाँ भरते हुए बोला—मैं शहज़ादा कबाब शामी हूँ। वैसे रुपये-पैसे और माल-जायदाद-वाला हूँ। लेकिन अब बिल्कुल फ़क़ीर हूँ। एक माहरू की ज़ुल्फ़ों के पंजे में असीर हूँ, लकीर का फ़क़ीर हूँ।

हातिम बोला—वह माहरू कहाँ है? बूढ़ी है या जवान है और किसपर मेहरबान है :

हिम्मत न हार हरगिज़ जब तक कि तन में जाँ है !

यह सुनकर नौजवान ने कुछ इस तरह रोना-धोना शुरू किया कि पत्थर पिघलने शुरू हो गये। हातिम से न रहा गया और वह उसके गले से लिपटकर रोने लगा। जब दोनों ख़ूब जी भरकर रो चुके, तो कबाब शामी बोला—उस माहलक़ा, ज़ोहरा जबीं सुन्दरी का नाम शहज़ादी गुलाम हुस्न बानो है। उस-जैसी संगदिल न शायद पैदा हुई है, न, ख़ुदा ने चाहा तो, होगी। मुझ-जैसे लाखों नौजवान उसने घायल किये हैं। जो जाता है, उससे सात सवाल पूछती है। वे सवाल इतने मुश्किल हैं कि आज तक उन्हें कोई हल न कर सका। यही वह ग़म है, जिसे मैं घुन की तरह खाये जा रहा हूँ। न मैं रात को सो सकता हूँ, न दिन को जाग सकता हूँ। अल्लाह बख़्शे, मैं अजब आज़ाद मर्द हूँ।—यह कहकर शहज़ादा चकराया।

हातिम तुरन्त बोला—न....न....न, भाई, बेहोश न होना ! मैं तेरी मुश्किल हल कर दूँगा। तू मुझे शहज़ादी का पूरा-पूरा पता दे दे।

शहज़ादा कबाब शामी अपनी जिन्दगी में पहली बार मुस्कराया। उसने तुरन्त पता नोट करा दिया। और बोला—मैं तेरा इन्तज़ार करूँगा। मैं दिन-भर तो जंगल में आवारागर्दी करता हूँ, रात को अबू बेज़ार बसरी की सराय में रहता हूँ। ए मेरे मेहरबान ! तू मुझे वहीं मिलना। ख़ुदा करे तू, कामयाब हो और मुझे शहज़ादी का और तेरा शर्बते-दीदार नसीब हो !

—इतनी देर तू शर्बते-रूह अफ़ज़ा और शर्बते-फ़ौलाद मिलाकर पीजियो !—हातिम बोला और वहाँ से चल खड़ा हुआ।

हातिम थोड़ी दूर गया होगा कि उसे एक सफ़ेद-सी सूरत नज़र आयी। ये सफ़ेदपोश बुज़ुर्ग थे। उनके चेहरे पर सफ़ेद बाल नक़ाब की तरह पड़े हुए थे। उन्होंने दोनों हाथों से सर के बाल चेहरे से उठाये, हातिम को ध्यान से देखा और पहले हँसे फिर रो दिये।

हातिम बुज़ुर्ग को देखकर पहले रो दिया फिर हँस पड़ा।

हातिम ने सबब पूछा। बुज़ुर्ग बोले—मैं हँसा इसलिए कि ऐसा दिलेर जवान नज़र आया और रोया यों कि ख़ाहमख़ाह बेकार अपना समय नष्ट करता फिर रहा है।

बुज़ुर्ग ने सबब पूछा। हातिम बोला—मैं रोया इसलिए कि आप मुझे डाँटेंगे और हँसा यों कि मैं जिस काम के लिए निकला हूँ, वह जरूर करूँगा, हरगिज़ बाज़ न आऊँगा !

सफ़ेदपोश बुज़ुर्ग बोले—तेरी मर्ज़ी ! तू एक दिन ज़रूर पछतायगा। अच्छा, अगर तुझे कहीं सुर्ख़पोश बुज़ुर्ग मिलें, तो हमारा एक पैग़ाम पहुँचा देना। उनसे कहना कि वाह, भई, वाह ! अच्छे गये कि न चिट्ठी, न पत्री, न किसी जिन्नात के हाथ ख़ैरियत ही भेजी।

हातिम ने वायदा किया और रवाना हुआ। रास्ते में उसने अनगिनत प्राणियों की मदद की। एक आदमी डूब रहा था। हातिम ने तुरन्त एक तिनका फेंका, लेकिन तिनका डूबते हुए आदमी तक न पहुँच सका। हातिम ने ख़ुद छलाँग लगायी। अभी उस आदमी तक पहुँचा ही था कि किनारे पर एक चीख़ सुनायी दी। हातिम उसे छोड़कर तुरन्त वापस लौटा और देखा कि एक रीछ एक आदमी की मरम्मत कर रहा है। हातिम उस आदमी की मदद करने ही लगा था कि झाड़ियों से एक आह सुनायी दी और हातिम उस ओर लपका। सारांश यह कि इसी तरह मंज़िलों-पर-मंज़िलें तय करता हुआ शहज़ादी गुलाम हुस्न बानो के शहर तक जा पहुँचा। अपना हुलिया दुरुस्त करके महल का रुख़ किया और नक़्क़ारे पर इस ज़ोर से चोट लगायी कि सारा महल गूँज उठा। एक हब्शी दौड़ा दौड़ा आया और सलाम करके बोला—मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ ?

हातिम ने अपना मतलब बयान किया।

हब्शी ने कहा—क्या नाम बताया आपने ? हातिम तायी ?

हातिम बहुत अपने को सँभालकर बोला—तायी नहीं, ताई। ई से, बड़ी ई से।

हब्शी ने फिर पूछा—य से या ई से ?

हातिम चीख़कर बोला—ई से, ईख़वाली ई से।

हब्शी ने अन्दर ख़बर पहुँचायी। फ़ौरन पर्दा कराया गया और हातिम को अन्दर बुला लिया गया।

पर्दे के दूसरी तरफ़ से शहज़ादी की आवाज़ आयी—माफ़ कीजिए, इसके पहले कि सातों सवाल आपको बताये जायें, मैं कुछ ज़बानी इम्तहान लेना चाहती हूँ। क्या मैं चन्द सवाल आपसे पूछ सकती हूँ ?

हातिम ने कहा—बड़े शौक़ से पूछिए।

शहज़ादी बोली—पहला सवाल यह है कि शतरंज में अगर बादशाह पर घोड़े से शह दी गयी हो, वज़ीर मर चुका हो, बादशाह से छः ख़ाने दूर एक पैदल हो और घोड़े के पीछे एक और घोड़ा हो, उसकी बग़ल में एक और ऊँट हो और उसके आगे रुख़, तो शह कैसे बचेंगे ?

हातिम बोला—इसका जवाब यह है कि न।मैं शतरंज खेलता हूँ, न मुझे उससे कोई दिलचस्पी है।

शहज़ादी की आवाज़ आयी—बहुत ख़ूब! दूसरा सवाल यह है कि क़ियामत या प्रलय के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

हातिम बोला—पहले क़ियामत देख लूँ, फिर बताऊँगा।

शहज़ादी बोली—बिल्कुल दुरुस्त! अच्छा, तीसरा सवाल यह है कि अगर तीन हज़ार पाँच सौ तीन को छः हज़ार तीन सौ दो से गुणा किया जाये तो क्या आयेगा ?

—आठ हज़ार तीन सौ तीन,—हातिम तुरन्त बोला।

शहज़ादी बोली—मिस्र के पिरामिडों का क्या वज़न होगा ?

हातिम बोला—तौलकर बताया जा सकता है।

—आप मौखिक परीक्षा में सफल हुए। अब आप ठीक नौ बजे कल तशरीफ़ ले आइए, ताकि आपसे असली सवाल पूछे जायें।

*

अगले रोज़ हातिम अल्लाह का नाम लेकर महल में पहुँचा। वहाँ उसे पूरे नौ बजे एक परचा दिया गया। परचे पर निम्नलिखित प्रश्न थे :—

सालाना इम्तहान का परचा वास्ते श्री हातिम ताई

सब सवाल ज़रूरी हैं। समय की कोई क़ैद नहीं, नम्बर गुप्त हैं। नक़ल करने या किसी से पूछने की सख़्त मनाही है। अगर पकड़े गये, तो इम्तहान से निकाल दिये जाओगे।

१—एक बार खाया है, दूसरी बार खाने की हरगिज़ हविस नहीं।—से क्या नतीजा निकाल सकते हो ?

२—शादी कर और दरिया में डाल!—को और स्पष्ट करके लिखो।

३—किसी से नेकी मत कर। अगर करेगा, तो तेरे सामने आयेगी!—यह कथन सही है या ग़लत ? इसपर प्रकाश डालो।

४—मसख़रे को हमेशा राहत है।—पर जवाब मज़मून लिखो।

५—हिमालय पर्वत की ख़बर लाओ। पर्वत से हवा आती है, इसका कारण बयान करो।

६—निम्नलिखित पर नोट लिखो :—

हम्माम बाद गर्द और हज्जाम आवारागर्द।

७—प्रैक्टिकल इम्तहान—एक मोती के बराबर अंडा लाओ। (मोती दिखा दिया जायगा।)

हातिम ने परचा बड़े ग़ौर से पढ़ा, ताकि सबसे आसान सवाल पहले शुरू करे। कई बार पढ़ने के बाद हातिम ने सोचा कि मौजूदा क्रम सही है। अतएव वह पहले सवाल के जवाब की तलाश में रवाना हो गया।

नदियों, नालों और समुद्रों को पार करता हुआ कहीं-का-कहीं जा निकला। एक जगह क्या देखता है कि एक गगनचुम्बी मीनार सामने खड़ा है। हातिम ने जब मीनार की चोटी को नज़र उठाकर देखा, तो उसकी पगड़ी गिर पड़ी। हातिम ने लाहौल पढ़ी। जेब से आईना निकाला और पगड़ी बाँधने लगा। इतने में परीज़ादों का एक ग़ोल गुज़रा। हातिम पगड़ी और आईना छोड़-छाड़ उनके पीछे-पीछे हो लिया। जल्दी से उन-सब में से सुन्दर चेहरा चुना और उसपर हज़ार जान से आशिक़ हुआ। एक मोड़ पर वह ग़ोल आँखों से ओझल हो गया। हातिम पागलों की तरह चारों ओर दौड़ने लगा। इतने में ज़ोर का धमाका हुआ। जब हातिम बिना लख़लख़े के होश में

आया, तो क्या देखता है कि न मीनार है, न परीज़ादों का झुंड । हातिम एक शहर के चौक में खड़ा है । चारों ओर ऊँट-ही-ऊँट खड़े हैं । जगह-जगह साइनबोर्ड लटके हैं, जिनपर लिखा है, अपने ऊँट यहाँ खड़े कीजिए । एक जगह बहुत मोटे अक्षरों में में लिखा है, अरब में ऊँटों की चोरियाँ बढ़ती जा रही हैं, इसलिए अपने ऊँट को ताला लगाइए और चाबी अपने पास रखिए । हातिम तुरन्त समझ गया कि वह अरब में है । वह एक ऊँटवाले की तरफ़ बढ़ा और बोला—ऊँट ख़ाली है ?

—जी नहीं ! यह प्राइवेट ऊँट है और काज़ी अबुल-हौल साहब का है ।—जवाब मिला ।

हातिम ने दूसरा ऊँट किराये पर लिया । जब सवार होने लगा, तो ऊँट बोला—क्या आपका सफ़र सचमुच ज़रूरी है ?

हातिम ने चकित होकर कहा—क़सम है उस पाक परवरदिगार की, जिसने अठारह हज़ार किस्म के जानवर पैदा किये, आज पहली बार ऊँट बलबलाने के बजाय बोला है !

—फ़ुज़ूल बातचीत से बचिए,—ऊँट ने कहा—मेरे सवाल का जवाब दीजिए ।

—हाँ, ज़रूरी है,—हातिम बोला ।

ऊँट बोला—तो बिस्मिल्लाह, मैं तैयार हूँ । चलिए ।

हातिम सवार हुआ । अभी थोड़ी दूर ही गया होगा कि ऊँटवाले ने सदा लगायी—चलो, भाई, एक सवारी जबलुश्शायर की ।

—पागल हुआ है ?—हातिम ने झल्लाकर कहा—हमने पूरा ऊँट किया है ।

—माफ़ कीजिए !—ऊँटवाला बोला—वैसे ही मुँह से निकल गया था ।

शाम हो चुकी थी । अँधेरा हो चला था । हातिम ने देखा कि ऊँट कुछ तिर्छा चलता है । ठोकरें भी खाता है । हातिम ने कारण पूछा ।

ऊँटवाला बोला—साहब, इसकी आँखें कमज़ोर हैं ।

हातिम का दिल भर आया । बोला—हाय-हाय ! तब फिर इसकी आँखों का मुआयना कराके ऐनक क्यों नहीं लगवा देता ?

—एक बार लगवायी थी । लेकिन इसके चेहरे की बनावट ही ऐसी है कि ऐनक ठहरती नहीं, फिसल जाती है, एक बार धूप का काला चश्मा भी ख़रीदा था ।

—तो फिर गुरुकुल कांगड़ी का भीमसेनी सुर्मा लगाया कर ।—हातिम बोला ।

अभी बातें हो रही थीं कि सीटी की आवाज़ सुनायी दी । एक सिपाही ने ऊँट को ठहरा लिया और ऊँट का नम्बर पूछने लगा ।

ऊँटवाला बोला—मेरा क़ुसूर ?

सिपाही ने कहा—अरे गेदी, बिना लैम्प के ऊँट चलाता है, फिर क़ुसूर पूछता है ? ठहर तो सही, अभी चालान करता हूँ ।

हातिम ने सोचा, यह बेचारा मुफ्त में मारा जायगा । अतएव उसने तुरन्त जेब से कुछ निकालकर सिपाही को दिया और मामला रफ़ा-दफ़ा हो गया ।

ऊँटवाला हातिम की इस सख़ावत पर ऐसा ख़ुश हुआ कि गिड़गिड़ाकर बोला—ऐ मेरे मोहसिन ! मुझे मेरे लायक़ कारबार बतला ।

हातिम बोला—मैं उस आदमी की तलाश में हूँ जो यह कहता फिरता है कि एक बार खाया है, दूसरी बार खाने की हविस नहीं है ।

ऊँटवाला बोला—मेरे विचार में आप चीन देश चले जाइए । वहाँ के निवासी अजीब ऊट-पटाँग चीज़ें खाते हैं । वहाँ आपको ऐसा आदमी मिलेगा ।

अतएव हातिम ने चीन का रुख़ किया और उसकी मुराद पूरी हुई । वह शहज़ादी गुलाम हुस्न बानो के महल वापस पहुँचा । वहाँ उसने ज़ोर से नक्क़ारा बजाया ।

पर्दा कराके हातिम को अन्दर बुलाया गया ।

शहज़ादी ने पर्दे की ओट से मिज़ाज पूछा ।

हातिम बोला—शुक्रिया ! मैं बिल्कुल अच्छा हूँ । फ़क़त ज़रा-सा ज़ुकाम है ।—इसके बाद अपनी राम कहानी यों सुनायी :—

मैं चीन में आवारागर्दी करता रहा । आख़िर एक

दिन एक सराय में उतरा। खाने के लिए नौकर एक सूची लाया, जिसमें खानों के नाम लिखे थे। मैं चीनी भाषा बिल्कुल न समझता था, इसलिए मैंने वैसे ही सूची पर एक जगह उँगली रख दी और इशारा किया कि यह ले जाओ। ज़रा-सी देर में वह एक थाल भुने हुए मांस का लाया, जिसे मैंने बड़े चाव से खाया। लेकिन मेरा मन न भरा। मैंने बेयरे से फिर इशारे से कहा कि और लाओ। वह समझ न सका। मेरे खयाल में वह मुर्गे का मांस था। इसलिए मैंने तङ्ग आकर मुर्गे की बोली की नक़ल उतारी और कहा, कुकड़ूँ-कूँ! साथ ही थाल की ओर इशारा किया। वह फिर भी न समझा। मैंने थाल को छुआ और पूरे ज़ोर से कहा, कुकड़ूँ कूँ! इसपर उस बेयरे ने थाल की ओर इशारा किया और बोला, न-न, कुकड़ूँ-कूँ नहीं, बल्कि म्याऊँ-म्याऊँ!....म्याऊँ-म्याऊँ!

इतने में एक आदमी ने, जो सब-कुछ देख रहा था, कहा, साहब, आपको ग़लतफ़हमी हुई। यह कुकड़ूँकूओं का मांस नहीं था, बल्कि म्याऊँ-म्याऊँ का था।....और मैं वहाँ से सर पर दोनों पाँव रखकर ऐसा भागा कि पीछे मुड़कर नहीं देखा। इसलिए शहज़ादी! मैं ही वह आदमी हूँ जो नारे लगाता है कि एक बार खाया है, दूसरी बार खाने की हरगिज़ हविस नहीं है।

यह कहकर हातिम ने ऐसा गगनभेदी और धराशायी नारा लगाया कि सारा महल थरथर काँपने लगा। अभी दूसरा नारा लगाने ही लगा था कि शहज़ादी कानों में उँगलियाँ ठूँसकर बोली—बस-बस, ठीक है! पहला सवाल तमाम हुआ।

हातिम वहाँ से बिदा होकर शहज़ादा कबाब शामी से मिला, जो पूर्ववत भों-भों रो रहा था। उसे तसल्ली देकर दूसरे सवाल के हल के लिए निकल खड़ा हुआ।

*

हातिम चलता-चलता एक ऐसे पहाड़ के आँचल में पहुँचा, जो आसमान से बातें कर रहा था।

हातिम कुछ देर खड़ा बातें सुनता रहा। फिर सुस्ताने के लिए एक पत्थर पर बैठ गया। बैठा ही था कि पत्थर ज़ोर से घूमा और हातिम को चक्कर आ गया। जब होश में आया, तो क्या देखता है कि चारों तरफ़ नाच-गाने की महफ़िल गर्म है। एक सज्जन ऊँची आवाज़ में बोले—यह अरब है। अभी आपने जनाब उमर ऐयार साहब का एक भाषण सुना, जिसका विषय था, मध्यकालीन युग में ऊँटों का महत्व। अब श्रीमती ज़मुर्रद परी विहाग का खयाल शुभ विलम्बित दरबारी तीन ताला लय में नाचेंगी।

ज़मुर्रद परी ने गाना शुरु किया—चलो ए री सखी बीकानेर चलें जहाँ प्रेम की बंसी बाजत है....

हातिम इस गाने से बहुत प्रभावित हुआ।

इसके बाद....

जाना हातिम का बीकानेर और सुनना प्रेम की बंसी का

वापसी पर हातिम का गुज़र ऐसे बियाबान से हुआ, जहाँ रेत के सिवा कुछ न था। हातिम कई दिन का भूखा-प्यासा था, थककर बैठ गया और दुआ माँगकर सो गया। ख़्वाब में एक ज़र्दपोश बुज़ुर्ग नज़र आये और हातिम को सम्बोधित कर बोले—ऐ बहादुर हातिम! दाहिनी तरफ़ दस गज़ के फ़ासिले पर एक फावड़ा गड़ा है, उसे खोदकर निकाल ले। फिर उससे बायीं ओर की ज़मीन खोद। वहाँ गर्म मसाला, आटा, ताज़ी सब्ज़ी, चूल्हा, दियासलाई, लकड़ी और होशियार ख़ानसामा सब दफ़न हैं। उनको निकालकर अपने इस्तेमाल में ला। वैसे यह सब-कुछ मैंने दफ़न किया था, लेकिन तू बेशक ख़ुदा का शुक्र अदा कर देना! जब खाना तैयार हो चुके, तो मेरा भी इन्तज़ार करना। शायद थोड़ी देर तक चक्कर लगाकर आ जाऊँ।

हातिम ने सोचा कि यह ख़्वाब की हालत है या बेदारी की। अतएव उसने ज़ोर से बुज़ुर्ग के चिकोटी काटी। वह चिल्लाकर बोले—उफ़, मार डाला! हातिम, यह क्या करता है?

हातिम ने अदब से अर्ज़ किया—माफ़ कीजिएगा। मैं यह देखना चाहता था कि मैं सो रहा हूँ या जाग रहा हूँ।

बुज़ुर्ग कुछ प्यार-भरे बोल सुनाना चाहते थे कि हातिम तुरन्त जाग उठा। वह इसी ख़्वाब की प्रतीक्षा कर रहा था और इसी को देखने के लिए सोया था।

हातिम सारी रात ज़मीन खोदता रहा, लेकिन कुछ भी न निकला। हातिम ने कहा कि वह बुज़ुर्ग ज़र्दपोश तो योंही कोई बोगस बुज़ुर्ग निकले, जो दाँव लगाकर चार सौ बीस कर गये।

अगले दिन हातिम की उम्मीद की कली खिल गयी और उसे एक ऐसा आदमी मिला, जो बार-बार कहता था, शादी कर और दरिया में डाल!

पता लगाने पर मालूम हुआ कि उस आदमी की माँ को बेटे की शादी का बड़ा चाव था। बड़ी धूमधाम से शादी हुई। लेकिन अब माँ ख़फ़ा रहने लगी कि बेटा बीवी का ग़ुलाम होता जा रहा है। वह बेटे से यही कहती कि तू बीवी की तरफ़दारी करता है। उधर बीवी भी ख़फ़ा रहने लगी। वह कहती कि तू माँ की तरफ़दारी करता है। मामला यहाँ तक बढ़ा कि उस बेचारे का दिमाग़ चल गया और अब चिल्लाता फिरता है कि शादी कर और दरिया में डाल! बहुत-से नौजवान इस उपदेश पर अमल भी करते हैं।

यह सुनकर हातिम तीर की तरह वापस पहुँचा और महल के दरवाज़े पर इतने ज़ोर से ढोल बजाया कि सब जाग उठे। हातिम अन्दर चला गया, लेकिन तुरन्त ही बाहर भेज दिया गया। जब क़ायदे से पर्दा हो चुका, तो उसकी पहुँच हुई।

सारा क़िस्सा सुन चुकने के बाद शहज़ादी ने कहा—ठीक है।

इसके बाद हातिम शहज़ादा कबाब शामी के पास पहुँचा, जो भों-भों रो रहा था। हातिम झल्लाकर बोला—यार, तू हर वक़्त भों-भों करके मत रोया कर। मुझे बड़ी कोफ़्त होती है। रोने की और भी तो कई क़िस्में हैं।

—मसलन?

—मसलन, यही कि दहाड़ें मार-मारकर रो लिया कर।

इसके बाद हातिम ने ख़ुशख़बरी सुनायी और बिदा हुआ।

*

हातिम ज़रा-सी दूर गया होगा कि एक परीरू को देखकर हज़ार जान से आशिक़ हो गया और शादी का प्रस्ताव किया। लेकिन मालूम हुआ कि एक रक़ीब पहले से मौजूद है। हातिम उससे जाकर मिला और बोला—आप उस परीरू को कितना चाहते हैं?

वह रक़ीबे-रूसियाह बोला—जब से मैंने उसे देखा है, सौ जान से आशिक़ हो गया हूँ!

—और मैं हज़ार जान से आशिक़ हूँ!—हातिम ने विजयपूर्ण स्वर में कहा।

रक़ीब ऐसा ख़ामोश हुआ, मानो उसने साँप सूँघ लिया हो। काफ़ी देर तक चुप रहने के बाद बोला—आप जीते और मैं हारा। अब मैं, इन्शाअल्लाह, बहुत जल्द ख़ुदकुशी कर लूँगा और इस दुनिया को छोड़कर दूसरी दुनिया की तरफ़ कूच कर जाऊँगा। लेकिन मैंने सुना है कि आप किसी ज़रूरी काम से निकले थे और कोई आपका इन्तज़ार कर रहा है। अफ़सोस, आदमी अपने स्वार्थ के पीछे दूसरों को किस तरह भूल जाता है!

हातिम चौंक पड़ा और उसे तुरन्त शहज़ादा कबाब शामी याद आ गया। वह आँखों में आँसू लाकर बोला—ऐ नेक मर्द! तेरा हक़ तुझी को सौंपा। तू जा और उस ख़ूबसूरत, तन्दुरुस्त और बामुरव्वत औरत से शादी कर ले और मुझे इजाज़त दे।

चुनांचे उसी दिन आशिक़ व माशूक़ की बड़ी धूमधाम से शादी-ख़ाना-बर्बादी हुई और हातिम वहाँ से चल पड़ा। आगे जाकर देखता है कि एक पागल गिरेबान चाक किये और बाल बिखराये सहरा में परेशान फिरता है और आध-आध घंटे बाद चीखकर कहता है—किसी से नेकी मत कर! अगर करेगा, तो तेरे सामने आयगी!

हातिम ने बातों-बातों में कारण पूछा। पागल ने बताया कि मैं एक बेहद अक़्लमन्द और ज़रूरत से ज़्यादा समझदार इन्सान था और एक बहुत बड़ी जायदाद का मालिक था। शहर से दूर अपने महल में रहता था। एक

रोज़ सुबह क्या देखता हूँ कि महल के दरवाज़े पर एक कुत्ता घायल पड़ा है। मुझे तरस आ गया। घाव धोकर मरहम-पट्टी कर दी। कुत्ता लंगड़ाता हुआ बिदा हुआ। दूसरे दिन मेरी आँख खुली, तो देखता हूँ कि वही कुत्ता एक और घायल कुत्ते को लिये दरवाज़े पर खड़ा है। मैं बहुत खुश हुआ। कुत्ते की प्रतिमा की तारीफ़ की और उसकी मरहम-पट्टी भी कर दी। अगले दिन देखता हूँ कि चार कुत्ते मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उससे अगले दिन आठ कुत्ते आये और उससे अगले दिन सोलह कुत्ते। इसी तरह यह तादाद बढ़ती गयी। यहाँ तक कि महल के अन्दर और बाहर चारों तरफ़ कुत्ते-ही-कुत्ते नज़र आने लगे। एक दिन मैं ऐसा घबराया कि सब-कुछ छोड़-छाड़कर भाग निकला और अब दुनिया को इस ख़तरे से आगाह करता रहता हूँ कि—किसी से नेकी मत कर! अगर करेगा तो तेरे सामने आयगी!

हातिम हाथ मिलाकर रवाना हुआ और शहज़ादी को यह क़िस्सा सुनाया। यह जवाब भी सही माना गया। हातिम शहज़ादा कबाब शामी से मिला, जो इस बार दहाड़ें मार-मारकर रो रहा था। हातिम ने चुमकारा और तसल्ली दी। अगले दिन हातिम ने कमर ख़ूब ज़ोर से बाँधी और चल पड़ा।

*

हातिम चलता-चलता एक बहुत ही सुन्दर बाग़ के दरवाज़े पर पहुँचा। सोचा कि आज यहीं पड़ाव होगा। अभी सुस्ता ही रहा था कि एक बड़ी ही हसीन नाज़नीन दिखायी पड़ी। हातिम को ऐसा मौक़ा ख़ुदा दे! फ़ौरन हज़ार जान से आशिक़ हो गया। नाज़नीन बेहद ख़फ़ा हुई और बोली कि अब्बा जान से कह दूँगी। हातिम ने छाती पर हाथ रखकर साहस के अनुसार कई इश्क़िया शेर पढ़े। लेकिन उसने अपने अब्बा से जाकर कह दिया। सौभाग्य से वह जादूगरों का उस्ताद था। उसने चन्द चेलों को हातिम की ख़ातिर-मदारात के लिए आदेश दिया और हातिम की वह मरम्मत हुई कि उसे आटे, दाल, चावल, हर जिन्स का ताज़ातरीन भाव मालूम हो गया। लेकिन वह अपने हठ का पक्का था, बराबर आशिक़ बना रहा। आख़िरकार जादूगर स्वयं आया और हातिम को ध्यान से देखकर अपने चेले से बोला—हातिम को एक गुफ़ा में बन्द करके उसके मुँह पर पत्थर की सिल रख दो।

—हातिम के मुँह पर या गुफ़ा के मुँह पर? स्पष्ट किया जावे।—चेला बोला।

—गुफ़ा के मुँह पर,—जादूगर भन्नाकर बोला।

कई दिन तक हातिम गुफ़ा में बन्द रहा। जब बाहर निकाला गया, तो बिल्कुल चाकचौबन्द था। उसके बाद हातिम को आग में जलाने का प्रोग्राम था। लेकिन उस पर कोई असर न हुआ, क्योंकि यह 'इस्मे-हातिम' पढ़कर अपने ऊपर दम कर लेता था। आख़िर तंग आकर समुद्र में डुबोने लगे। जब हातिम को पानी में डुबोते तो समुद्र की सतह एकदम ऊँची हो जाती और जब बाहर निकालते, तो नीची हो जाती। सारांश यह कि इसी तरह कई दिनों तक होता रहा। आख़िर सब हार गये। जादूगर भी थक गया। हातिम को ख़ुश्की पर लाकर छोड़ दिया गया। हातिम चिल्लाया—पानी! पानी!—अतएव उसे पानी पिलाया गया और हातिम वहीं जमकर बैठ गया। जादूगर ने पूछा—क्या इरादा है?

—भूख हड़ताल कर रहा हूँ!—हातिम बोला।

जादूगर थरथर काँपने लगा और गिड़गिड़ाकर बोला—ख़ुदा के लिए यह न करना, नहीं तो मैं कहीं का न रहूँगा! क्या तुझे और कोई काम नहीं?

एकाएक हातिम को अपना काम याद आ गया, जिसके लिए वह ख़ाक छानता फिर रहा था। वह तुरन्त जादूगर के गले मिला और रुख़सत हुआ। एक अर्से तक सड़कें नापता फिरा और अन्त में जवाब लेकर शहज़ादी के पास पहुँचा और अपना क़िस्सा यों सुनाया:—

मैं एक हस्पताल में ठहरा हुआ था कि बराबर के कमरे से दो आदमियों की बातचीत सुनायी दी। मैंने झाँककर देखा। एक आदमी रोग-शैया पर पड़ा दम तोड़ रहा था। दूसरा आदमी जो सौ फ़ीसदी मसखरा मालूम होता था, उसके पास बैठा। बातचीत से मालूम हुआ कि दोनों किसी व्यवसाय में भागीदार थे। पहला बोला, ए मेरे

पुराने मित्र ! मरते समय मैं कुछ कुसूरों की माफ़ी चाहता हूँ। मैं गुनहगार हूँ, मक्कार हूँ, दग़ाबाज़ हूँ। मैंने इस साझे के व्यापार में एक लाख का ग़बन किया था। वह जो हर महीने तिजोरी टूटती थी, उसमें मेरा ही हाथ था, और वह जो गुमाश्तों की हर रोज़ पिटायी होती थी, वह मेरे इशारे पर होती थी, तुम्हारे घर में जितनी चोरियाँ हुईं, सब मैंने की थीं, तुम्हारे जो सारे मवेशी मर गये थे, वह मैंने ही....

दूसरा आदमी बात काटकर बोला—यार, छोड़ो भी, तुम तो नाहक़ रंज करते हो। यह जो तुम्हें ज़हर दिया गया है, यह मैंने ही तो दिया है।

यह कहकर वह मसख़रा मुस्कराने लगा। सो, हे शहज़ादी, इससे साबित हुआ कि मसख़रे को हमेशा राहत है।

यह सुनकर शहज़ादी हँसते-हँसते बेहोश हो गयी। तुरन्त लखलख सुँघाया गया, तब होश में आयी और बोली—हालाँकि इस क़िस्से का सम्बन्ध मेरे सवाल के साथ कुछ उतना नहीं है, फिर भी मैं इस जवाब पर पूरे नम्बर देती हूँ।

हातिम ने धन्यवाद दिया और विदा ली।

*

अगले महीने हातिम फिर शहज़ादी के महल में आया और बोला—पाँचवें सवाल का जवाब हाज़िर है। हिमालय पर्वत सबसे ऊँचा पहाड़ है और भारत के उत्तर में स्थित है। जो हवायें अरब सागर और बंगाल की खाड़ी से उठती हैं, वह भाप से लदी हुई हिमालय पर्वत से टकराती हैं। ख़ूब वर्षा होती है। हवा चलने का कारण यही है।

—शाबाश !—शहज़ादी पर्दे की ओट से बोली—बिल्कुल सही जवाब है।

हातिम विदा हुआ, तो दरवाज़े पर उसको हब्शी ग़ुलाम मिला और उसने हाथ जोड़कर कहा—जान की अमान पाऊँ, तो एक सवाल पूछूँ ?

हातिम ने न सिर्फ़ जान बख़्शी, बल्कि सवाल की इजाज़त भी दे दी। वह नामाकूल हब्शी बोला—इस बार आप जवाब कहाँ से लाये ? हर रोज़ तो मैं आपको शहर में देखता था।

हातिम ने कहा—क़सम खाओ, किसी को नहीं बताओगे।

हब्शी ने क़सम खायी।

हातिम बोला—मैं हिमालय पहाड़ कहाँ गया था। वह जवाब भूगोल की किताब से पढ़कर बताया है।

इसके बाद हातिम शहज़ादा कबाब शामी से मिला, जो इस बार चिंग्घाड़े मार-मारकर रो रहा था।

हातिम ने ख़ुशख़बरी सुनायी और कहा—भई, अब तू यह रोना-पीटना बन्द ही कर दे, तो अच्छा हो। मैं थका-हारा आता हूँ और तू इस तरह मेरा स्वागत करता है कि मैं बेज़ार हो जाता हूँ।

अगले दिन इतवार था, इसलिए हातिम ने छुट्टी मनायी। डाढ़ी छाँटी, नहाया-धोया, तरह-तरह के खाने खाये और सोमवार को छठा सवाल हल करने के लिए चल दिया। अभी थोड़ी ही दूर गया होगा कि उसे रोक लिया गया।

आना एक सवार का साथ पैग़ाम के और रोकना हातिम को, कहना कि शहज़ादी वापस बुलाती हैं, क्योंकि हज्जाम आवारागर्द मिल गया है।

हातिम वापस पहुँचा।

शहज़ादी ने पर्दे की ओट से कहा—मैं माफ़ी चाहती हूँ। हज्जाम आवारागर्द हम्माम वादगर्द में ही मिल गया है। अब आप अपना प्रैक्टिकल कीजिए। —यह कहकर शहज़ादी ने अपनी अन्ना के हाथ एक बड़ा मोती भेजा, जिसे हातिम ने अच्छी तरह देखा और पूछा—क्या मैं इसे साथ ले जा सकता हूँ, ताकि मुझे इतना बड़ा अंडा तलाश करने में आसानी रहे ?

शहज़ादी कुछ देर सोचती रही। फिर बोली—मेरे ख़याल में आप मोती यहीं छोड़ जाइए। मैं इसके बराबर एक अंडा मँगवाये देती हूँ और आप वह साथ ले जाइए

और खुदा के लिए यह न समझिए कि मुझे आप पर एतबार नहीं ।

हातिम ने मुस्कराकर कहा—खैर, कोई मुज़ायका नहीं ।

ज़रा-सी देर में मोती जितना अंडा हातिम को दे दिया । हातिम ने महल से निकलते ही पहला काम यह किया कि अंडे को उबाल लिया, ताकि खराब न होने पाये । फिर उसपर तरह-तरह के रंग फेरे । अगले चाँद हातिम यह अंडा लेकर महल में पहुँचा और बोला—यह लीजिए, यह अंडा मोर का है ।

शहज़ादी बोली—आपका यह जवाब भी ठीक है । कल आपसे कुछ ज़बानी सवाल पूछे जायेंगे और परसों नतीजा सुना दिया जायगा ।

हातिम बोला—लेकिन आपको ज़रा-सी तब्दीली करनी होगी । उम्मीदवार का नाम बदलना होगा, क्योंकि उम्मीदवार मैं नहीं हूँ, मेरा दोस्त शहज़ादा कबाब शामी है ।

शहज़ादी बोली—अच्छा, तो यह बात है ! मुझे पहले ही से शक था । भला वह कमाता क्या है ?

हातिम बोला—बस शहज़ादा है, कमाना-वमाना क्या था ! मैं भी तो शहज़ादा ही हूँ ।

शहज़ादी बोली—तो क्या हुआ ? नतीजा ज़ाहिर करने से पहले मैं आपसे भी यही सवाल करती कि आप क्या कमाते हैं ? उम्मीदवार को किसी ऊँची और स्थायी नौकरी में होना चाहिए, नहीं तो वह बिल्कुल नाकाम है ।

यह सुनकर हातिम का खून खौलने लगा और सूँ सूँ की आवाज़ आने लगी । वह उठ खड़ा हुआ । शहज़ादी बोली—या वहशत ! अब क्या इरादा है ?

हातिम ने कहा—अगर ज़िन्दगी ने साथ दिया, तो इन्शाअल्लाह अपने दोस्त के लिए कोई अच्छी और स्थायी नौकरी तलाश करके दिखाऊँगा । आप उस वक्त तक नतीजा न छापिएगा ।—यह कहकर चल दिया ।

रास्ते में हातिम को वही सफ़ेदपोश बुज़ुर्ग मिले । उन्होंने सफ़ेद बालों की नक़ाब चेहरे से उठायी और बोले—हातिम ! कहाँ जाता है ?

हातिम रुक गया और बुज़ुर्ग को सारा क़िस्सा सुना दिया ।

—पागल हुआ है ?—बुज़ुर्ग बोले—इश्क़ का नौकरी से क्या सम्बन्ध ? हातिम, भला तू अपना वक्त क्यों बरबाद करता फिर रहा है । इस वक्त तक तेरा काम है आशिक़ होना और पेशा है डंडे बजाना, क्यों सच है न !

हातिम ने सर हिलाकर कहा—हाँ, सच है ।

—अच्छा, जा, तू अपना काम कर । शहज़ादा कबाब शामी को मैं सँभाल लूँगा । क्या तूने शहज़ादी के अब्बा से भी बातचीत की थी ?—बुज़ुर्ग ने पूछा ।

—नहीं तो ।

—लाहौलविलाक़ूवत ! फिर तूने अब तक किया क्या है ? भले मानुस, उसके बाप से मिलकर सब-कुछ तय कर लेता और क़िस्सा खतम हो जाता । अच्छा, तू जा, आइन्दा अपना समय नष्ट न करना । तेरे दोस्त का बन्दोबस्त मैं कर दूँगा । वायदा रहा ।

—इसके बाद आपका प्रोग्राम क्या होगा ?—हातिम ने अदब से पूछा ।

—इसके बाद इरादा है बाक़ी उम्र लन्दन या पेरिस के किसी कोने में ख़ुदा की याद में काट दूँ !—बुज़ुर्ग आँखों में आँसू भरकर बोले ।

हातिम ने उनके हाथों को चूमा और बिदा हुआ ।

*

अपने मुल्क में पहुँचकर हातिम बहुत पछताया कि नाहक़ इतना वक्त गँवाया और मुफ़्त में खानाखराब होता फिरा । उसने सलतनत-भर में ढँढोरा पिटवा दिया कि आइन्दा कोई लड़की इस तरह के ऊट-पटाँग सवाल न करे और शादी के सिलसिले में हमेशा लड़की के बाप से बातचीत की जाय । जो लड़के आशिक़ होना चाहें, वह किसी ऊँची और स्थायी नौकरी में ज़रूर हों, वरना आशिक़ होने की कोई ज़रूरत नहीं है ।

सुना है कि वहाँ अब तक इसपर अमल किया जाता है ।

उर्दू से अनु० 'हुनर'

छोड़ू

सत्यपाल आनन्द
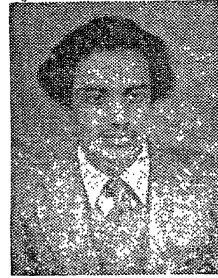
दरवाज़ा खुला, तो वह सामने खड़ा था।

मुझे यों लगा, जैसे मैंने अभी-अभी कोई पत्थर गीली ज़मीन से हटाया है और नीचे कोई लिबलिबा, मटमैला-सा कीड़ा निकलकर मेरे सामने आ गया है। सच, उसे पहली बार देखकर मुझे यही आभास हुआ था।

उसने रास्ता छोड़ दिया। मैं अन्दर आ गयी। बड़ा-सा गोल कमरा था, जिसमें केवल एक सुन्दर मेज़ थी। कमरे में कोई न था। मैंने दायें-बायें देखा। साथ के कमरे से एक टाइपिस्ट की टक-टक एक रौ में आ रही थी।

—साहब ?—मैंने पूछा।

—आयेंगे, मिश।....आध घन्टा में।—उसने कुर्सी की ओर संकेत किया।

मैं बैठ गयी। हैण्ड बैग मैंने दूसरी कुर्सी पर रख दिया। बड़ी गर्मी थी। मैंने पसीना पोंछा और पंखे की हल्की-हल्की हवा का मज़ा लेने लगी। वह उल्टे पाँव चलता हुआ साथ के कमरे में चला गया।

मैं बैठी रही। दस मिनट गुज़रे, पन्द्रह, और जब आधा घण्टा गुज़र गया और साहब न आये, तो मेरे दिल में से किसी चोर ने सर उठाया, कदाचित् जगह पहले ही पुर हो चुकी हो।....

तत्काल वह पुनः कमरे में आया। उसने एक नज़र दायें-बायें देखा। फिर बड़ी मेज़ तक गया। पेपरवेट उठाया, फिर रख दिया। मेज़ के नीचे देखा, कुर्सी ठीक की, धीरे-धीरे चलता हुआ आलमारी तक गया। दरवाजे की ओर देखता हुआ मुड़ आया।....फिर मेज़ पर पड़ी फ़ाइल को खोला, रख दिया और दायें-बायें देखने लगा।

मुझे उसकी दशा उस भूखे कुत्ते की-सी लगी, जो अपनी हड्डी कहीं दबाकर जगह भूल गया हो और बड़ी बेचैनी से खोज रहा हो। मेरा कुछ कहने को जी चाहा, किन्तु मैं मौन बैठी रही। सोचती रही कि यदि जगह पहले ही पुर हो चुकी हो, तो मुझे लौट जाना पड़ेगा। यों भी तो मैं विज्ञापन देखने के लगभग पन्द्रह दिन बाद आयी हूँ।....यहाँ कोई लेडी सेक्रेटरी नज़र तो नहीं आती। क्लर्क है, वे साथ के कमरे में काम कर रहे हैं। सेक्रेटरी अथवा स्टेनो होती, तो बास के कमरे में ही होती, किन्तु यहाँ तो कोई नहीं है, सिवाय इस पिलपिले, बीमार और कमजोर चपरासी के।

खट की आवाज से मेरे विचारों की शृङ्खला टूटी। पेपरवेट उसके हाथों से फ़र्श पर गिर पड़ा था। दरी का फ़र्श होने के कारण बच गया। झुककर वह उठाने लगा, तो मुझे लगा, जैसे कोई चौपाया हो और मुश्किल से पिछली टाँगों पर खड़ा होने का यत्न कर रहा हो। सोचा, कोई बात की जाय, वास्तव में चुपचाप बैठे रहने के कारण तो जोड़-जोड़ में दर्द होने लगा था।

—काम-काज क्या है यहाँ ?—बड़े कारोबारी, राज़-दाराना अन्दाज से मैंने पूछा।

वह चुप रहा। केवल सिर हिला दिया। पेपरवेट एक बार पुनः गिरा और वह जैसे ही उठाने के लिए झुका, उसके खुले होंठों से राल टपकी, किन्तु तुरन्त ही उसने जोर लगाकर उसे वापस खींच लिया।

मुझे बड़ा अजीब लगा। मैंने उसकी ओर ध्यान-पूर्वक देखा। वयस का अनुमान लगाना कठिन था। फिर भी वह तीस से अधिक न था। पतला, बहुत पतला, मट-मैला, पिलपिला, कमज़ोर और बीमार-सा।....मूँछों की जगह पाँच-सात बाल, दाढ़ी नदारद। सर के कुछ बाल सफ़ेद, कुछ काले, तेल के अभाव के कारण सूखे। उसका चेहरा खुर्दरा भी न था और नर्म....ख़ैर, उसे नर्म भी नहीं कहा जा सकता था। रंग काला और कुचकुची आँखें। तंग सीना, साधारण क़द, मैला कुरता और मैला पायजामा, बस! लेकिन उसके गले में एक रूमाल बँधा हुआ था। और यही रूमाल था, जिसपर मेरी फैलती हुई नज़र पल-भर के लिए रुक गयी। रूमाल रेशमी था, साफ़ था, बिल्कुल नया था और रंगीन था। इसलिए उसके शरीर पर ऐसा लग रहा था, जैसे ड्राइंग रूम की कोई साफ और क़ीमती चीज़ किसी गन्दे स्थान पर रख दी जाय।

अब तक मैंने कई दफ़्तरों में नौकरी की है। और बड़े अजीब-अजीब चपरासियों से पाला पड़ा है, लेकिन कहीं भी ऐसा नमूना देखने को नहीं मिला। अजीब गधा है यह भी! बात का जवाब तक नहीं देता। वर्ना आप अगर लेडी सेक्रेटरी हों और एक बार हँसकर चपरासी से बात कर लें, तो आयु-पर्यन्त कुत्ते की भाँति वह आपके साथ लगा रहेगा। मैंने सोचा, यदि इस दफ़्तर में इससे पाला पड़ा, तो बड़ी मुश्किल होगी। फिर मुझे ख़ुद पर हँसी आ गयी। अभी तो मैं नौकरी के लिए एक उम्मीदवार की हैसियत से आयी हूँ। क्या बताऊँ, कई बार मैं भी अजीब-अजीब बातें सोचने लगती हूँ।

—कीड़ू! कीड़ू!....ओए उल्लू के पट्ठे!—साथ के कमरे से आवाज़ आयी।

वह ठिठका, पेपरवेट उसने मेज़ पर रख दिया और भागकर दूसरे कमरे में जा पहुँचा,

—यश, शर! क्लर्क शर!....आया, शर!

तो इसका नाम कीड़ू है। जैसा नाम वैसा गुण। कीड़ू! मज़ा आ गया! इसे इस नाम से बुलाने में खूब मज़ा आयगा, मैं सोचने लगी, मैं इससे कहूँगी, अरे कीड़ू! और वह कीड़ों की नाईं रेंगता मेरे पास आयगा। सिर उठाकर मेरे चेहरे की ओर देखेगा। उसकी लार टप-केगी।....मैं कहूँगी, यह फाइल एकाउन्टेन्ट साहब को दे आओ। और वह बोलेगा, यश, शर!....शटैनो, शर!.... यश, शर!

खूब मज़ा आयगा। सच, उसे तंग करने में बड़ा मज़ा आयगा!

साथ के कमरे से हँसी-मज़ाक की मिली-जुली आवाज़ें आ रही थीं—अरे कीड़ू! उल्लू के पट्ठे! तेरा बाप काठ का उल्लू था?

—यश, शर!....क्लर्क, शर!

—हरामी का पिल्ला! जानवर के बच्चे!....तूने यश शर के सिवा कुछ और भी सीखा है?

—यश, शर!....क्लर्क, शर!

—भाग जाओ कछुए की औलाद!....और यह डाक साहब की मेज़ पर रख दो।—इसके साथ ही एक ठोकर की आवाज़ और कीड़ू के मुँह से फिसलती हुई हल्की-सी कराह....

टाइप की टिक-टिक फिर शुरू हो गयी। कीड़ू फिर कमरे में आया। उसने काग़ज़ों का पुलिन्दा मेज़ पर रख दिया। मैंने उसे ग़ौर से देखा। उसके चेहरे पर अभी हुए अपमान के कोई चिह्न न थे। वह योंही कीड़ा-

सा लग रहा था। सच, लिबलिबा, मटमैला, कमजोर कीड़ा!

—देखो,—मैंने कहा—साहब अभी नहीं आये। मैं अपना कार्ड छोड़े जाती हूँ। मैं कल फिर आऊँगी!

उसी समय बाहर का द्वार खुला और एक अधेड़ आयु का आदमी दाखिल हुआ।

कीड़ू उसे देखते ही झुक गया—शाब, शर!....मिश, शर!

मैं खड़ी हो गयी।

—सिट डाऊन प्लीज़,—बास ने मुझसे कहा और फिर फेल्ट मेज पर रखते हुए बोला—पंखा तेज़ कर दो!

—यश, शर!....शाब, शर!—किन्तु खड़ा रहा।

—भाग जाओ, यू सिल्ली गूज!—उसने गरजकर कहा।

कीड़ू उलटे पाँव चलता हुआ दूसरे कमरे में चला गया। मैंने उठकर पंखा तेज कर दिया।

—मिस गोर्डन!—उसने कहा और मेरा 'जी' सुनकर नज़रें उठायीं—चार वर्षों तक एमी एमी एण्ड एमी में सर्विस। आपने वहाँ छोड़ा क्यों था?

—मुझे लखनऊ जाना पड़ा था, मदर सख्त बीमार थीं और फिर काफ़ी दिन लग गये।

—और अब?

—मदर की डेथ हो गयी है।

मेरा अफ़सोस-भरा लहजा देखकर वह सहसा चौंक उठा।

—आप कामसँभाल लीजिए। आपका आवेदन-पत्र मिलने पर मैंने एमी एमी के डायरेक्टर से बातचीत की थी। वह आपके काम से खुश थे। नयी सेक्रेटरी रख लेने के बाद भी उन्हें आपका ख़याल था।....ऐ, इधर!—उसने आवाज़ दी।

कीड़ू दौड़ता हुआ आया।

—इडियट! मिस को एकाउन्टेन्ट के पास ले जाओ।....टेम्प्रेरी चार्ज एकाउन्टेन्ट के पास ही है।—उसने मुझे समझाया।

—मिश शाब!....यश, शर!....एकाउन्ट शाब!—उसने कहा।

मैं उठ खड़ी हुई। मुझे विस्मित देखकर साहब ने कहा—इडियट है।...आप सख़्ती से काम लेंगी, तो करेगा!

*

कभी-कभी बड़ा अजीब-सा लगता था। बास सामने बैठा है। मैं अपनी मेज़ पर हूँ। और कोई नहीं। कीड़ू दरवाज़े में एक स्टूल पर बैठा ऊँघ रहा है। उसकी राल टपकने लगती है। वह एकाएक ज़ोर लगाकर उसे वापस खींच लेता है। मैं मुँह फेर लेती हूँ, परन्तु यदि कहीं साहब की नज़र पड़ जाती, तो बस क़यामत!

—कीड़ू!

—यश, शर!....शाब, शर!

—यू डॉग!........इधर आओ!

—यश, शर!....शाब, शर!

साहब का पाँव उठता है। बैठे हुए ही वह एक भरपूर लात उसके कमजोर शरीर पर लगाता है। वह लड़खड़ा जाता है। कई बार गिर भी जाय, तो एक-दो ठोकरें और लग जाती हैं—यू सिल्ली गूज़! अपनी थूक सँभाल कर रखा करो!

—यश, शर!....शाब, शर!—वह वापस अपनी जगह पर जाकर बैठ जाता है। उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दर्द के निशान भी नहीं हैं। वह जैसे एक पिलपिला, पथरीला बुत है। पत्थर को चोट का क्या ज्ञान! ओह इतनी भरपूर किक! सुना है, बॉस फ़ुटबाल का बड़ा अच्छा खिलाड़ी था।

बहुधा मुझे उसपर दया आती। मैं जहाँ तक हो सके, उसे नर्मी से बुलाती। किसी काम का आदेश देते हुए बड़ी नर्मी से समझाती, किन्तु जब वह समझ न पाता, तो मैं झुँझला जाती, मेरा मुँह रुआँसा-सा हो जाता।

ऐसे ही एक अवसर पर बॉस बाहर से आ गया। मुझे हारा हुआ देखकर उसने समीप आकर उसे एक ठोकर लगायी—सूअर! मिस कहती हैं, बाज़ार से यह ले आओ!—और उसने मेरी लिखी हुई चिट उसके हाथ में थमा

दी। चिट पर मैंने 'पैंसिल शापनर' लिखा था। वह थोड़े समय में ही बाक़ी की रेज़कारी और ठीक चीज़ लेकर आ गया।

—मिस गोर्डन, डोन्ट वेस्ट योर मरसी अपान हिम।....यह तो गुड फॉर नाथिंग है।—साहब ने समझाया।

मैंने एक दिन मिस्टर सूरी से पूछा—साहब इसे निकाल क्यों नहीं देते, मिस्टर सूरी? इसी वेतन पर और अच्छे चपरासी मिल सकते हैं। एमी एमी एण्ड एमी में एक चपरासी था।....

—ठीक है, मिस गोर्डन।....लेकिन बॉस की झिड़कियाँ, गालियाँ, ठोकरें और कोई चपरासी नहीं सह सकता। यह तो एक जानवर है, जो चाहो, इसके साथ कर लो। एक बार साहब ने तजुर्बा भी किया था। नया चपरासी केवल दो दिन रहा। फिर चुपचाप पैसे लिये बिना ही भाग गया।

मैं तो हैरान रह गयी। एक बार मैंने उससे कहा—कीड़ू तुमको मार पड़ती है, तो बुरा नहीं लगता?

—यश, मिश!....मिश, शर!

—बुरा नहीं लगता, क्यों?—मैंने फिर पूछा।

—यश, मिश!....मिश, शर!—उसी लहजे में उत्तर मिला।

मुझे, न मालूम क्यों, क्रोध आ गया—गेट आऊट, यू इडियट!—मैंने चीखकर कहा।

कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा उसके लहजे में—यश, शर!....मिश शाब!—कहता हुआ वह उलटे पाँव चला गया। किन्तु वह कुछ क्षण अनन्तर ही लौट आया—मिश शाब!....यश, शर!....

—क्या है?—मैंने कागज़ों पर से सिर उठाये बिना कहा।

—मिश शाब!....शर, यह उधर....—उसने एक हेयरपिन मेज़ पर रख दिया।

हेयरपिन मेरा ही था, कदाचित् कहीं गिर गया था। मैंने मेज़ से उठाते हुए उसकी ओर देखा। उसका चेहरा भावशून्य था। मुझे स्मरण है, एक बार मेरा गिरा हुआ रूमाल देते समय ऐमी ऐमी एण्ड ऐमी के एक चपरासी के पसीना छूटने लगा था। हेयरपिन मुझे देकर उसने पूछा—यश, शर!....मिश शर!—अर्थात् कोई और सेवा, मैडम? अथवा, अब मैं जा सकता हूँ? अथवा, यह आपका ही है, मैडम? अर्थ कुछ भी हो सकता है। मैं मुस्करायी। मैंने एक चवन्नी निकालकर उसे दी।

—यश, शर!....मिश शर?—अर्थात् क्या लाऊँ?

—तुम रख लो!—मैंने कहा और चेहरे के भाव जानने के हेतु कनखियों से उसे देखा। चवन्नी उसने चुपचाप जेब में डाल ली। कुछ समय के पश्चात् मैंने देखा, वह स्टूल पर बैठा रेवड़ियाँ चबा रहा था।

प्रायः यों हुआ कि बॉस आफिस में नहीं है। मुझे चेहरा सँवारने की ज़रूरत पड़ी है। ड्राईंग रूम न होने के कारण मुझे यह काम वहीं करना पड़ा है। वह कुछ दूरी पर स्टूल पर बैठा ऊँघ रहा है। मैंने हैण्डबैग खोला है। दस्ती आईने से चेहरे का जायजा लिया है। बाल सँवारे हैं। स्टिक का उपयोग किया है और वह भावशून्य चितवन से टुकर-टुकर मुझे देखे जा रहा है। एक दिन होंठों पर पतली तह जमाते हुए मैंने उसे बड़ी नम्रता से पुकारा—कीड़ू?

—यश, मेम शाब!....मिश शाब!

मैंने ध्यान दिया, उसने मुझे मेम शाब पुकारा था।

—कुछ नहीं, बैठ जाओ।

—यश, मेम शाब!

आफ़िस में हम केवल तीन थे। बूढ़ा एकाउन्टेन्ट सहगल, जो बॉस के पिता के समय का विश्वासी नौकर था। क्लर्क सूरी तथा मैं। यह बॉस का वैयक्तिक आफ़िस था, जिसमें केवल व्यक्तिगत कार्य होते थे। शहर के दूसरे भाग में एक और बड़ा दफ़्तर था। और वहाँ दर्जनों क्लर्क थे। बॉस वहाँ कम ही जाता था। अधिक समय इस दफ़्तर में अथवा अपने घर ही गुज़ारता। उसकी पत्नी का देहान्त हो चुका था। केवल एक पुत्र था, जो अमरीका में शिक्षा पा रहा था।

कीड़ू इस आफ़िस में कब आया, क्यों आया और कैसे आया, यह मुझे विदित न हो सका। सूरी को भी इसका ज्ञान नहीं था। वह पहले कारोबारी दफ़्तर में था

और गत दो वर्षों से ही यहाँ था। अलबत्ता सहगल को उसका इतिहास ज्ञात था। एक दिन इस सिलसिले में उससे बातचीत हुई। मुझे कीड़ू से कोई ज्यादा हमदर्दी तो न थी। हाँ, उसपर दया अवश्य आती थी।

सहगल ने कहा—मिस गोर्डन, अजीब आदमी है यह भी। बॉस इसे न मालूम कहाँ से पकड़ लाये थे। न इसकी माँ है, न बाप, कोई सम्बन्धी भी नहीं। जब पहली बार यह यहाँ आया, तो मुझे बड़ी मुश्किल महसूस हुई। कोई बात समझानी होती, तो घण्टों मग़जपच्ची करनी पड़ती। एक दिन मुझे उससे एक भारी ट्रे उठवाकर ले जानी थी। दो-एक बार उसने उठायी, फिर पटक दी। मुझे बड़ा क्रोध आया। मैंने दो-चार लातें जमा दीं। फिर वह गधे की भाँति चुपचाप काम करने लगा।....उस दिन से एक गुर मिल गया है। देखिए, आपको दिखाऊँ।.... इधर आ बे!—उसने आवाज दी—ओ कुत्ते के पिल्ले!

—यश, शर!....एकाउन्ट शर!—वह भागता-भागता आ पहुँचा।

सहगल की बूढ़ी आँखें शैतानी रोशनी से चमक उठीं। उसने एक आँख बन्द कर ली और फिर लकीरें खींचनेवाला मोटा रूल उठाकर कीड़ू की टाँगों पर फेंक मारा!

—यश, शर!....एकाउन्ट शर!—दर्द से एक बार कराहकर वह बैठ गया। फिर उसने रूल उठाकर मेज़ पर बड़े आदर से रख दिया और कोने में पड़ी भारी ट्रे उठा ली।

—यश, शर!....एकाउन्ट शर!—अर्थात् कहाँ ले जानी है?

सूरी और सहगल ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे। मुझे मतली-सी आ गयी। सच, मुझे वे बहुत बुरे लगे। मैं उठकर अपने कमरे में आ गयी और बैठकर घण्टों रोयी। शायद माँ की मृत्यु के पश्चात् उसी दिन मुझे खुलकर रोना आया।

फिर एक दिन सहगल ने उसे अपने सूजे हुए पाँव की मालिश करने को कहा और इस ख़िदमत के दौरान में न जाने कितने डंडे उसके कमज़ोर शरीर पर मारे।

एक दिन पानी का गिलास हाथ से गिर जाने पर बॉस ने उसकी खूब आव-भगत की।

सूरी ने एक बार उसे घुटनों के बल उकड़ूँ खड़ा करके कई रजिस्टर उसके ऊपर रख दिये और आध घन्टा तक फिराता रहा।

फिर एक बार बॉस ने पानी का गिलास बेचारे के मुँह पर दे मारा और उसे दो दिन तक होश न आया।

इतनी बातें हुई कि यदि किसी और के साथ हुई होतीं तो वह नौकरी छोड़कर भाग जाता या विद्रोही हो जाता और अवसर मिलते ही एक-दो का खून कर देता। लेकिन मजाल है जो कीड़ू के ओंठों पर शिकायत के शब्द तो क्या, बल भी आया हो। वह एक निर्जीव यन्त्र की भाँति चुपचाप अपना कार्य करता रहा। गालियाँ सह लेता, मार सहन कर लेता और फिर दुखते हुए अंगों के साथ अपने मालिकों की सेवा में कटिबद्ध हो जाता। कई बार मैं सोचती कि अद्भुत है यह शान्तचित्त व्यक्ति, जो इतने अत्याचार सहन करते हुए भी मौन रहता है। उसके मुँह से कभी मैंने उलाहना नहीं सुना, कभी उसने बेहतर जीवन के लिए संघर्ष नहीं किया। कभी वह विद्रोही नहीं हुआ। कभी उसने निवेदन नहीं किया कि उसके साथ इन्सानों का-सा व्यवहार किया जाय।

कई बार मुझे उसकी दीनता पर क्रोध आता। दिन-पर-दिन उसके निर्बल शरीर पर दुःखों का बोझ भारी होता जाता, और वह था कि उसे कोई चिन्ता नहीं, कोई विचार नहीं। कोई आभास नहीं कि वह इन्सान है, गधा नहीं है।

वेतन मिलते ही वह तीस रुपये के नोट जेब में डालता और सिले-सिलाये कपड़े की किसी दूकान से नया कुरता और पायजामा ले आता। पुराना कुरता और पायजामा, जो केवल एक मास पूर्व ख़रीदा हुआ होता, फेंक देता। महीने-भर के खाने के रुपये सामने ढाबे में दे देता और जो-कुछ बच रहता, उससे नित्य नये रूमाल ख़रीदता। एक रेशमी रूमाल हर समय उसके गले में रहता। मैंने उसे कभी नहाकर आये हुए नहीं देखा। पैसे के अस्तित्व का उसे पूर्ण ज्ञान था। तभी तो वह वेतन निर्वाह कर

लेता था। किन्तु अपनी इज़्ज़त का ख़याल....अपने इन्सान होने का एहसास ?

जानवर, बिल्कुल जानवर था वह।

*

फिर कुछ ऐसा हुआ कि दिन-पर-दिन उसपर सख्तियाँ ज़्यादा होती गयीं। बास को कारोबार में घाटा पड़ने लगा। उसके लड़के ने अमरीका में चुपचाप उससे पूछे बिना शादी कर ली। सहगल की बेटी को टी० बी० हो गयी और वह हर समय चिड़चिड़ा रहने लगा। सूरी को उसकी पत्नी धोखा दे गयी और वह ख़तरनाक हो गया। इन-सब बातों को भुगतना पड़ा तो बेचारे कीड़ू को ! सारा दिन उसपर मार पड़ती। दिन-भर उसे गालियाँ सुननी पड़तीं।

—कीड़ू ! कुत्ते के पिल्ले !...

—यश, शर !....एकाउन्ट शर !

—तेरी माँ ने तुझे गन्दगी के ढेर से उठाया था बे ?

—यश, शर !....क्लर्क शर !

—गेट आऊट, यू सिल्ली गूज़ !—एक ठोकर, एक गाली।

—यश, शर !....शाब, शर !

गाली, थप्पड़, ठोकर, घूँसा। यश, शर ! शाब, शर ! यश, शर ! एकाउन्ट शर ! शाब शर !....

उसकी यह दशा देखती, तो जी बहुत खराब होता। दिल करता, नौकरी छोड़कर चली जाऊँ। लेकिन जाऊँ कहाँ ? नौकरी मिलना इतना सुगम होता, तो छोड़कर चली न जाती। ऐमी एण्ड ऐमी में लेडीज़ के सामने कोई क्लर्क तो क्या, बास भी गन्दी ज़बान इस्तेमाल नहीं कर सकता था। और यहाँ तो आवें का आवाँ ही बिगड़ा हुआ है।

कीड़ू का असली नाम मुझे ज्ञात न हो सका था। सहगल और सूरी को भी उसका सही नाम मालूम नहीं था। वेतन के वाउचर पर वह कीड़ू के नाम के सामने ही अँगूठा लगा दिया करता था। एक दिन मेरे कहने पर सहगल ने उसका असली नाम पूछा।

—कोटू राम !—उसने बेधड़क होकर बताया।

सब स्तम्भित रह गये। किसी को यह ख़याल तक न था कि वह इस क़दर बेधड़क और सीधा उत्तर दे सकता है। मुझे हर्ष हुआ। उसी दिन साँझ को दफ़्तर से चलते समय मैंने उसे बुलाया।

—कोटू राम !

वह टुकर-टुकर मेरी ओर देखता रहा, किन्तु पा-न आया।

मैंने पुनः बुलाया—कोटू राम ! ज़रा इधर आओ !

वह फिर भी चुपचाप खड़ा रहा।

सूरी सम्भवतः मेरे पीछे खड़ा था और मेरा तजुर्बा दिलचस्पी से देख रहा था। मुझपर प्रभाव डालने के निमित्त वह आगे बढ़ा। मेरे रोकते-रोकते उसने दो-चार ज़ोर की ठोकरें उसे जमा दीं—कीड़ू के बच्चे ! हराम-जादे ! देखता नहीं, मिस साहिबा बुला रही हैं !

उसके मुँह से खून बहने लगा। वह चुपचाप उठ खड़ा हुआ—यश, शर !....मिश, शर !—उसने कहा। किन्तु मैंने देखा, अब उसके चेहरे पर एक भाव विशेष की स्पष्ट छाप थी। अविश्वास और भय के मिले-जुले भाव उसके चेहरे पर अंकित थे। मुझे अत्यधिक हर्ष हुआ।

कुछ दिन बीत गये। मैं इस घटना को भूल-सी गयी। कीड़ू पर अत्याचार बढ़ते गये। बास दफ़्तर में आता, तो दो-चार ठोकरें लगा देता। जितनी देर रहता, बेचारे पर आफ़त आयी रहती। जब वापस जाता, तो मरम्मत करके जाता। सूरी तथा सहगल भी समय-समय पर रही-सही कसर निकालते रहते। किन्तु अब मैं एक ख़ास बात नोट करती। ये गालियाँ, मार और अपमान सहते हुए उसके चेहरे पर दर्द के निशान होते। उसे कदाचित अपनी दय-नीय अवस्था का धीरे-धीरे आभास होने लगा था। एक दिन मैं बैठी बाहर सड़क पर माइक पर हो रही घोषणा सुन रही थी, हमें लोगों का सहयोग चाहिए !....हम ट्रांसपोर्ट यूनियन के भूख हड़ताली हैं।....हमें बोनस दो !....हमारा वेतन बढ़ाओ !....आख़िर हम भी इन्सान हैं !....यों ही मेरी नज़र कीड़ू की ओर उठ गयी। वह जैसे सब-कुछ समझ रहा हो। उसके चेहरे के रंग जल्दी-जल्दी बदल रहे थे।

एक दिन सायंकाल मैंने उसे बाजार में देखा। वह

किसी आदमी के साथ चला जा रहा था। मुझे बड़ी हैरानी हुई। उस आदमी को ध्यानपूर्वक देखने पर मालूम हुआ कि वह अखबार बेचनेवाला वही हाकर है, जो रोजाना हमारे दफ्तर में अखबार दे जाया करता है। मैंने सोचा, कीड़ू को बास ने किसी कार्यवश भेजा होगा। मुझे बाजार में साइकल पर देखकर उसने मुँह फेर लिया। उसके चेहरे पर घृणा के चिह्न थे। तब वास्तव में मुझे परम हर्ष हुआ।

फिर कुछ दिन व्यतीत हो गये।

बास एक दोपहर को आया, तो उसका दिमाग़ बिगड़ा हुआ था। मैंने डाक सामने रखी। एक उसके लड़के की केबल थी, जिसमें उसने दस हज़ार रुपयों की माँग की थी। उसका दिमाग और बिगड़ गया। वह हाथ से ही एक एयर मेल फ्लैप लिखने लगा। लिखते-लिखते उसकी कलम की स्याही खत्म हो गयी।

—दवात!—उसने चिल्लाकर कहा।

मेरे पास कोई दवात नहीं थी। कीड़ू को मैंने इशारे से कहा कि साथवाले कमरे से ले आओ। किन्तु वह समझ न सका।

—ईडियट! यू पिग हेडेड! एकाउन्टेट से दवात ले आओ!

—यश, शर!....बाश शर!....दवात एकाउन्ट!—वह बोलता हुआ साथ के कमरे में गया और दवात ले आया। उसके हाथ काँप रहे थे या बास का ही कसूर था, मैंने देखा कि भरी हुई दवात उसके सूट पर उलट गयी। गुस्सा उबल पड़ा। बॉस ने जोर से एक लात जमायी। वह पटखनिया खाता हुआ दीवार के साथ जा लगा। मैं सन्न रह गयी। बास ने इसपर भी बस न की। वहाँ जाकर भी उसे कई ठोकरें लगायीं—इडियट!....सिल्ली रास्कल!

मैं दम साधे खड़ी रही। कीड़ू के मुँह से खून आ रहा था। स्वभाव के विपरीत, उसने इस बार मुँह से शाब अथवा बाश कुछ भी न कहा। धीरे-धीरे उठा। पास आया, जहाँ बास खड़ा अपना सूट झाड़ रहा था। फिर उसने एक बड़ी अजीब बात की। वह झुका। मैं समझी, वह बास का पाँव छू रहा है। मगर उसने खाली दवात उठायी और फिर बड़ी फुर्ती से उठकर बॉस के मुँह पर दे मारी।

जैसे सदियों से सोया हुआ ज्वालामुखी एकाएक फट पड़े। वह ज़ोर से चीखा और फिर भाग गया।

जब मैंने आँखें खोलकर देखा, तो वह भाग चुका था। बास कुर्सी पर बैठा अपना माथा सहला रहा था। हम तीनों उसके गिर्द खड़े थे। किसी को भी अपनी आँखों पर विश्वास नहीं आ रहा था।

यह संयोग ही था कि कई दिनों के उपरान्त मैंने उसे बाज़ार में देखा। वह चिल्ला रहा था—दैनिक मिलाप! नया जमाना!....अखबार पढ़िए!....उर्दू-हिन्दी अखबार!....

उसने मुझे साइकल पर देखा, तो पहचान गया। क्षण-भर के लिए ठिठका, फिर आगे बढ़ आया—मिश शाब!....मैं इधर अखबार....

—कीड़ू!—मेरे मुँह से आश्चर्य, हर्ष और प्यार के मिले-जुले भाव निकले।

—नहीं, कोटू राम!—उसने संशोधन किया।

२०१ इक़बालगंज,
लुधियाना।

जयहरि जेब्रा

परशुराम

इस कहानी के नायक हैं जयहरि हाजरा। नायिका बेतसी चकलादार हैं। और उपनायक-उपनायिकाओं में से कुछ जानवर हैं, जैसे एक विलायती कुत्ता, एक देशी कुत्ती, एक अरबी घोड़ा और एक भारतीय जेब्रा। लेडीज़ फ़र्स्ट! इस आधुनिक शिष्टाचार के अनुसार पहले बेतसी का परिचय दूँगा। फिर जयहरि की बात बताऊँगा। जानवरों की चर्चा यथा-स्थान करना ही ठीक होगा।

बेतसी का जन्म विलायत में हुआ था, रानी द्वितीय एलिज़ाबेथ के पाँच साल बाद। उसके माता-पिता अँग्रेज-भक्त थे, इसलिए बेटी का नाम एलिज़ाबेथ रखा, पुकार में बेट्सी। लेकिन पीछे चलकर यह नाम बदल दिया गया। भारत लौटते समय जहाज़ पर एक अँग्रेज़ स्त्री ने बेट्सी की माँ को डर्टी निग्गर कहा था। क्रोध में आकर उन्होंने उसी समय अपनी बेटी बेट्सी का नाम बदलकर बेतसी रख दिया।

बेतसी के पिता प्रताप चकलादार धनी घराने की सन्तान थे। इस देश में शिक्षा समाप्त कर पत्नी के साथ विलायत गये और वहाँ पाँच-छः वर्ष रहकर कृषि और पशुपालन का काम उन्होंने सीखा। लौटकर उलूबेड़ा के पास अपनी पैतृक ज़मींदारी डुगलबेड़ा में तीन सौ बीघा ज़मीन पर फल-फूल, गोभी, गाजर, टमाटर वग़ैरह उपजाने लगे। साथ ही उन्होंने एक डेयरी फ़ार्म की भी स्थापना की, जिसमें गाय-भैंस के अलावे भेड़, बकरी, सूअर, मुर्ग़ी, हन्स वग़ैरह भी पाले गये। अपने परिवार के साथ वह वहीं रहते थे। महीने में एक-दो बार कलकत्ता हो आते थे। सत्रह वर्ष तक यह व्यवसाय अच्छी तरह चलता रहा, लाभ भी खूब हुआ, फिर प्रताप चकलादार की मृत्यु हो गयी।

बेतसी की माँ अतसी बड़ी मुश्किल में पड़ी। पति-द्वारा संचालित इतने बड़े व्यवसाय को किसके हाथों सौंपा जाय। उसके कोई बेटा नहीं था, एकमात्र सन्तान बेतसी थी। मैनेजर हरकाली माईति काम का आदमी था, पर काफी बूढ़ा हो चला था। उसपर निर्भर करना उचित नहीं था। उन्होंने सब बेचबाचकर कलकत्ता चले जाने का निश्चय किया। लेकिन बेतसी ने कहा—कुछ फ़िक्र न करो, ममी। मैं सब सँभाल लूँगी, पिताजी से मैंने यह सब-कुछ सीखा है।

पर उसकी माँ अतसी को भरोसा न हुआ। बेटी की ज़िद देखकर उन्होंने सोचा, चलो, दो-एक वर्ष ऐसे ही देख लिया जाय, न हो, पीछे बेचा जायगा। अगर एक उपयुक्त दामाद मिल जाय, तो फिर किसी बात की चिन्ता

न रहेगी। पर बेतसी थी बेवकूफ़, उम्र हो गयी, पर दुनिया-दारी का ज्ञान उसे न हुआ।

अतसी ने कमर कस ली और दामाद की खोज में लग गयी। बेटी को लेकर जब-तब कलकत्ता जाने लगी, पार्टी देने लगी, कई परिवारों के साथ मिली-जुली, चुने-चुने पात्रों को निमन्त्रण देकर डुगलबेड़ा में बुलाया भी, पर कोई लाभ न हुआ। प्रताप चकलादार की सम्पत्ति के लोभ से कई अच्छे और बुरे पात्र आगे आये, पर बेतसी के साथ दो दिन रहने के बाद ही सब-के-सब खिसक गये।

उसका शरीर सुडौल था, गढ़न अच्छा था, रङ्ग खूब गोरा था, पर चेहरे पर लावण्य का अभाव था। वह मेम की भाँति ब्रीचेस पहनकर घोड़े पर चढ़ अपने तीन सौ बीघे का फार्म निरीक्षण करने जाती, कर्मचारियों पर हुक्म चलाती, शासन करती। उसका रूप आकर्षक नहीं था, मिज़ाज भी गर्म था, इसलिए उसकी माँ की सारी कोशिश बेकार जाती थी।

बेतसी ने कहा—तुम्हें दामाद न मिले, तो मेरी बला से! मैं किसी की परवाह नहीं करती। पिता का फ़ार्म अकेले चला लूँगी।

पर अतसी ने देखा, फार्म से पहले की तरह आय नहीं होती थी। बेतसी ने माँ को अश्वासन दिया—कोई बात नहीं, कुछ दिन सब्र करो, सब ठीक हो जायगा।

*

जयहरि का नाम देहाती टाइप-सा है, पर इसके लिए उसके माँ-बाप को दोषी नहीं ठहराया जा सकता, उसके ईश्वर-भक्त दादा ने नाम रखा था। जयहरि मध्यम वर्ग के परिवार की सन्तान था। पढ़ने-लिखने में खूब तेज, एक स्कालरशिप पाकर विलायत गया था। वहाँ सूत और कपड़े रंगने का काम सीखकर तीन वर्ष बाद भारत लौटा। आते ही अहमदाबाद की एक मिल में उसे नौकरी मिल गयी। दो वर्ष के बाद उसने वह नौकरी छोड़ दी और खुद एक 'ब्लीचिंग एन्ड डाइङ्ग फैक्ट्री' खोल डाली। वह कार-खाना अच्छी तरह चल रहा था, लाभ भी खूब होता था। फिर एक दुर्घटना हो गयी। जयहरि शिकार का शौकीन था, गन्डाल स्टेट के जङ्गल में एक बनैले सूअर के आक्रमण से उसके पैरों को काफ़ी चोट पहुँची। जख्म तो ठीक हो गया, पर जयहरि ज़रा लंगड़ा हो गया, चलते समय उसे लाठी का सहारा लेना पड़ता था। इस घटना के कुछ पहले उसके माता-पिता मर गये थे। तब अपने कारखाने को बेचकर वह अपने गाँव खागड़ाडाँगा चला आया। यह गाँव डुगलबेड़ा से लगा हुआ था।

जयहरि को रुपये का लालच नहीं था, विवाह की भी इच्छा नहीं थी। उसने हिसाब लगाकर देखा, उसके पास जितना धन था, उससे वह मजे में अपनी ज़िन्दगी गुज़ार सकता था। परन्तु उसने जो विद्या सीखी थी, उसे बिल्कुल भुला न सका। खागड़ाडाँगा में स्थित उसने अपने छोटे-से घर की मरम्मत करायी और उसे रहने-लायक़ बनाया। वह वहीं तरह-तरह के प्रयोग करके शौक मिटाने लगा। पर इस बार धागे और कपड़े नहीं, जीवित जानवरों के शरीर रंगे जाने लगे।

जयहरि की ज़मीन के एक ओर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सड़क थी, तीन ओर मैदान थे। सड़क की ओर तार लगाया गया। जंगल काटकर बाग लगाया गया। पिछ-वाड़े टीन के घर खड़े किये गये, जिनमें जयहरि के पोसे हुए जानवर तथा नौकर रहने लगे। जयहरि के यहाँ आने के बाद कई विचित्र जानवरों को वहाँ चरते देखा गया। आस-पास के ग्रामों से बहुत-से लोग उन्हें देखने के लिए आने लगे।

बेतसी को भी खबर मिली कि खागड़ाडाँगा के एक लंगड़े बाबू ने विचित्र चिड़ियाखाना खोल रखा है, देखने के पैसे नहीं लगते, कलकत्ता से लोग देखने आते हैं। बेतसी को ज़रा क्रोध आया। चकलादार का खान-दान इस इलाक़े के जाने-मानों में से है। बाहर का एक आदमी आकर यहाँ चिड़ियाखाना खोले और चरण-धूलि देने के लिए बेतसी और उसकी माँ को अनुरोध न करे? बेतसी ने सुना था कि यद्यपि लंगड़े का नाम जयहरि है, वह विलायत से लौटा हुआ है। सो वह उसकी उपेक्षा न कर सकी। कौतूहल का दमन न कर पाकर, एक दिन

सुबह वह अपने कुत्ते प्रिन्स को साथ लेकर जयहरि के जानवरों को देखने गयी।

तार के फाटक के पास खड़ी होकर बेतसी साश्चर्य सब देखने लगी। नील रंग के तीन भेड़े चर रहे थे। हरे रंग की एक बिल्ली के आस-पास चार बैंगनी बच्चे कूद रहे थे। एक विचित्र जानवर बैठा पागुर कर रहा था, उसके शरीर का रंग पीला था, उसपर जहाँ-तहाँ भूरे रंग के गोल दाग़ थे। बेतसी ने पहले उसे चीता समझा, पर दाढ़ी और सींघ देखकर वह जान गयी कि वह बकरा था। कुछ दूर पर तालाब में नीले रंग के राजहंस पाँक-पाँक कर रहे थे। इसी वक्त छत के किसी हिस्से से लाल रंग के कुछ कबूतर निकलकर आसमान में चक्कर काटने लगे। बेतसी ऊपर देख रही थी। इसी समय उसके कानों में आवाज आयी—नमस्कार! अन्दर आने की कृपा करें!

बेतसी ने सिर नीचे कर देखा, एक सुन्दर युवक फाटक खोले खड़ा था। वह पायजामा और कमीज पहने हुए था। हाथ में एक मोटी लाठी थी। बेतसी प्रतिनमस्कार करने के बाद बोली—आप ही जयहरि बाबू हैं? क्या मैं कुत्ते को लेकर अन्दर आ सकती हूँ?........ धन्यवाद!

अन्दर आकर बेतसी ने कहा—अजीब जानवरों को पाल रखा है, या जानवरों को ही अजीब बना डाला है! वह सब क्या है? इसका कुछ उद्देश्य भी है, या यह सिर्फ़ बच्चों का खिलवाड़ है?

जयहरि ने हँसकर कहा—कला बच्चों का खिलवाड़ ही है। मैं एक नयी कला का प्रयोग कर रहा हूँ। लोग काग़ज़ और कपड़े पर चित्र बनाते हैं, पत्थर और मिट्टी की मूरतें बनाते हैं, मैंने वैसा न कर जीवित प्राणियों को रंग दिया है। मेरा माध्यम और शैली बिल्कुल नयी है।

—नील भेड़, हरी बिल्ली और बाघ छाप बकरा, इसी को आप आर्ट कहना चाहते हैं?

—जी हाँ, प्रकृति का अन्धा अनुकरण निकृष्ट कला है। नवीनता प्रदान करना ही श्रेष्ठ कला है। सुकुमार राय ने लिखा भी है, लाल गीत में नील स्वर का मधुर-मधुर गन्ध! सुनने में मज़ाक-सा लगता है, पर कला का मूल सूत्र यहीं है।

—मैं नहीं मानती। सुना है, आप धागे और कपड़े रंगने का काम जानते हैं। यहाँ समय बरबाद न कर किसी मिल में नौकरी क्यों नहीं पकड़ लेते। जानवरों का रंगना कोई अच्छा काम नहीं है।

—सब काम सबकी नजरों में बुरा नहीं होता। हमारे कला-मन्त्री रंगबहादुर नादान को मेरे काम देखकर बड़ी खुशी हुई और उन्होंने मेरी तारीफ़ भी की है। उन्होंने कहा, यदि सोवियत सरकार को एक सौ आठ लाल रंग के मेंढक उपहार दिये जायँ, तो बड़ा अच्छा होता, इस विषय में वह नेहरूजी से सलाह लेंगे।

इसी वक्त बेतसी के पीछे एक मज़ेदार घटना घटी। एक गुलाबी रंग की देशी कुतिया जयहरि के पास आ रही थी। देखने-भर से पता चल जाता था कि उसे पिल्ले जने अभी महीना भी पूरा नहीं हुआ था। बेतसी का विलायती कुत्ता प्रिन्स उसे देख मुग्ध हो गया। प्रिन्स ने अपने जीवन में बहुत-सी देशी-विदेशी कुत्ते-कुतियों को देखा था, मगर ऐसी अनुपम सुन्दरी से पहली ही बार भेंट हुई थी। प्रिन्स ने एक-दो बार उस गुलाबी कुत्ती के चतुर्दिक चक्कर काटकर उसका शरीर सूँघा, फिर और भी घनिष्ठ होने की चेष्टा की। तब सहसा उस कुत्ती ने प्रिन्स के पैर को काट खाया और भाग गयी। प्रिन्स कें-कें करता हुआ बेतसी के समीप चला आया।

बेतसी क्रोध से फट पड़ी—यह क्या? आपकी सड़ियल कुत्ती ने प्रिन्स को काट दिया और आप चुप हैं?

जयहरि बोला—आप चिन्ता न करें, मेरी कुत्ती के शरीर में कोई बीमारी नहीं है। कुत्ते तो यों भी आपस में काटा-काटी करते ही हैं, इससे कोई नुक़सान नहीं होता। अगर आप इजाज़त दें, तो मैं आपके कुत्ते के पैर में थोड़ा-सा टिञ्चर आयडीन लगा दूँ।

—अपनी डाक्टरी आप अपने पास रखें, मुझे ज़रूरत नहीं! आपने अपनी कुतिया को रोका क्यों नहीं? प्रिन्स कितने बड़े ख़ानदान का है, जानते हैं? इसका बाप है फ्रेडरिक द ग्रेट, और माँ मेरिया तेरेजा। आपकी सड़ि-

यल कुत्ती इसे काट खाये और आप मुँह फाड़े देखते रह जायें, वाह !

—यह-सब अचानक ही गया, पहले पता चलता, तो मैं जरूर रोकता। लेकिन दरअसल कुत्ता ही कसूरवार है, वह क्यों सड़ियल कुत्ती के पीछे पड़ा ? माना कि प्रिन्स ऊँचे ख़ानदान का है, पर उसकी नज़र नीची है। बहुत-से बेवकूफ़ पेन्ट किये छोकरियों को देख विभोर हो जाते हैं, आपके प्रिन्स का भी वही हाल है। हमारी सड़ियल गुलाबी कुत्ती को देख वह सब-कुछ भूल गया, यह नहीं जाना कि यह-सब रंग है।

—इससे क्या, पास जाने-भर से वह काट लेगी ?

—आप ठंडे दिमाग़ से सब-कुछ समझने की कोशिश कीजिए। अगर मैं अचानक आपका अपमान कर देता, अखबारों में जिसे (मान-हानि) कहते हैं, तो आप क्या करतीं ? चुपचाप सह लेतीं क्या ?

—आपको लातों से मारती, चाबुक होता, तो उसी से मरम्मत कर देती।

—बस-बस, बिल्कुल ठीक कहा आपने ! वही करना आपके लिए उचित होता। नारी-मात्र को आत्म-सम्मान की रक्षा का अधिकार है। हम लोगों का यह भारतवर्ष वीरांगना, सती नारियों का देश है। वही ट्रेडिशन अगर यहाँ की कुतियों में भी पाया जाय, तो आश्चर्य कैसा ?

—मैं यह बकवास नहीं सुनना चाहती। साफ़-साफ़ बतलाइए, उस सड़ियल कुत्ती को गोली मारते हैं या नहीं ? और मेरे प्रिन्स को जो इन्फेक्शन हुआ, आप क्या हर्जाना देते हैं ?

—माफ कीजिए, मिस चकलादार, न मैं अपराधी हूँ, न मेरी कुत्ती। फिर झूठ-मूठ क्यों दण्ड दिया जाय ?

—ठीक है। मेरे वकील आपको नोटिस देंगे। देखती हूँ, कानून से बचकर आप कहाँ जाती हैं !

❋

घर वापस आकर बेतसी चुपचाप नहीं बैठ सकी। तुरन्त कार में बैठ उलूबेड़ा गयी। वहाँ के वकील विष्णु बनर्जी के साथ उसके पिता की गहरी दोस्ती थी। उन्हें सारी बात उत्तेजित भाषा में बतलाकर बेतसी ने कहा—उस जयहरि हाजरा को सज़ा देनी ही होगी, ताऊजी ! जितना खर्च होगा, करूँगी।

विष्णु बाबू बोले—ठंडे दिमाग़ से सोचो। अगर तुम्हें इस बात का डर है कि तुम्हारे कुत्ते को कोई रोग पकड़ लेगा, तो तुरन्त उसे कलकत्ता ले जाओ, बेलगाछिया अस्पताल में इन्जेक्शन दिलवा दो। लेकिन मामला-मुकद्दमा का ख्याल बिल्कुल हटा लो। जयहरि की कुत्ती अगर पगली होती और तुम्हारे कुत्ते को सड़क पर काट देती, तो कुछ कहा जाता। यहाँ तुम्हारे कुत्ते ने जयहरि के कम्पाउन्ड में घुसकर खुद अपने को कटवाया है। इस तरह कोई दावा नहीं किया जा सकता, मुकद्दमा चलाओगी, तो लोग हँसेंगे।

विष्णु बाबू कुछ भी करने को तैयार न हुए। बेतसी वहाँ से सीधे महकमा हाकिम अरुण घोष के घर गयी। उन्हें अपना परिचय और मामला बतलाकर बोली—सर, आपको इसका प्रतिकार करना ही होगा, आप पुलीस को हुक्म दें। जयहरि की कुत्ती बड़ी ख़तरनाक है, उसे मार डालना ज़रूरी है। और जयहरि भी पक्का चार सौ बीस है, जानवरों को रङ्गकर लोगों को ठगता है। जानवरों का शरीर रङ्गना निर्दयता भी तो है। तीन दिनों के अन्दर चिड़ियाख़ाना उठा देने का हुक्म दे दीजिए।

अरुण घोष हँसकर बोले—अच्छा, ठीक है, जयहरि की कुत्ती पर एक नज़र रखने के लिए पुलीस को कह दूँगा। ख़तरनाक साबित हुई, तो ज़रूर गोली से मार दी जायगी। रही जयहरि की बात, सो वह कानून के ख़िलाफ़ या जनसाधारण का अहित, कुछ नहीं कर रहा है। उसे हम कुछ नहीं कर सकते, मिस चकलादार।

हताश होकर बेतसी घर लौट आयी। क्रोध के मारे सारा शरीर काँप रहा था। बहुत देर तक सोच-विचार करने के बाद उसने निश्चय किया कि जयहरि को वह खुद रास्ते पर लायगी। पहले एक अल्टीमेटम देगी, नहीं सुना, तो मारेगी। जयहरि लङ्गड़ा है, अधिक मारना ठीक न होगा, एक चाबुक काफ़ी होगा। लोगों को पता चल जाय कि बेतसी चकलादार बदमाशों पर भी शासन कर सकती है !

बेतसी अपने धोबी, निमाई दास और माली गगन मण्डल को बुलाकर बोली—तुम दोनों कल सुबह आठ बजे जयहरि हजरा के चिड़ियाखाना के सामने हाज़िर रहना !

निमाई ने पूछा—वहाँ जाकर हमें क्या करना होगा ?

—कुछ न करना होगा, सिर्फ़ एक तमाशा देखना।

—बहुत अच्छा, तब तो अपने भाँजे नटकू को भी ले आऊँगा।

गगन मण्डल बोला—और मैं भी अपने दोनों लौंडों को साथ लेता आऊँगा।

दिन सुबह को बेतसी अपने अरबी घोड़े पर चढ़कर हाथ में एक चाबुक लिये जयहरि के घर के सामने जा खड़ी हुई। निमाई धोबी और गगन माली अपने बाल-बच्चों के साथ पहले से ही वहाँ उपस्थित थे।

जयहरि फाटक के पास खड़े होकर अपने मेड़े की टक्कर देख रहा था। बेतसी को देख मुस्कुराता हुआ बोला—गुड मार्निंग, मिस चकलादार ! आपका प्रिन्स मजे में है तो ?

सवाल का जवाब न देकर बेतसी बोली—आपके साथ एक बात करनी है। ज़रा बाहर आइए।

फाटक के बाहर आकर जयहरि बोला—आज्ञा दीजिए।

घोड़े पर तनकर बैठती हुई बेतसी बोली—देखिए, जयहरि बाबू, आपको एक अल्टीमेटम देती हूँ। कल मेरे साथ आप जैसा पेश आये थे, उसके लिए अफ़सोस ज़ाहिर कर माफ़ी माँगते हैं या नहीं ? और उस सड़ियल कुत्ती को गोली से मारते हैं या नहीं ? बड़ी दया लगती हो, तो गंगा के उस पार उसे छोड़ आते हैं या नहीं ?

जयहरि बोला—अफ़सोस ज़ाहिर करने में मुझे कोई एतराज़ नहीं है। आप बिना वजह मुझपर क्रोधित हो गयी थीं, इसके लिए मुझे अफ़सोस है। माफ़ी माँगना और कुत्ती को गोली से उड़ा देना या भगा देना, वह सब मुझसे नहीं होगा।

चाबुक उठाकर बेतसी बोली—तो यह लीजिए !

बेतसी का चाबुक जयहरि की पीठ पर पड़े, इसके पहले यहाँ एक घटना का वर्णन कर देना ज़रूरी है। मैदान में एक पेड़ की आड़ से एक जेब्रा बाहर आया। लेकिन बेतसी की नज़र उस ओर नहीं थी। यह भारतीय जानवर अफ़्रीका के जेब्रा से कुछ छोटा था, इसका पेट कुछ अधिक मोटा था, पर शरीर के रंग और धारीदार दाग बिल्कुल वैसे ही थे। इस नये जानवर को देख निमाई धोबी का भाँजा नटकू बोला—मामू, यह क्या है ?

निमाई बोला—नहीं पहचाना ? यह हम लोगों की वही सुरभी है, जिसे वात की बीमारी हो गयी थी। बेचारी कपड़े भी नहीं ढो सकती थी। दस रुपये में इसे जयहरि बाबू के हाथों बेच दिया था। वाह, देख न ! खा-खाकर गदहिया कैसी मोटी हो गयी है ! क्या रूप मिला है ! बाबू ने इसकी देह पर चितर-विचितर कर दिया है !

सौरभी अपने पुराने मालिक को पहचानकर खुश होकर आगे बढ़ी आ रही थी। बेतसी का चाबुक जयहरि की पीठ पर गिरने ही वाला था कि ठीक उसी क्षण सौरभी के गले से हर्ष-ध्वनि निकल पड़ी, चीं-पों-चीं-पों !....

उसके अद्भुत रूप और आवाज को देख-सुनकर बेतसी का अरबी घोड़ा आगे के दो पैरों को उठाकर हिनहिनाने लगा। बेतसी का ध्यान उधर न था। वह सँभाल न सकी। धप् से ज़मीन पर गिर पड़ी और बेहोश हो गयी।

जब होश आया, बेतसी ने देखा, एक छोटा-सा गिलास उसके मुँह की ओर बढ़ाते हुए जयहरि कह रहा था—इसे पी लीजिए, ठीक हो जायेंगी।

बेतसी ने क्षीण स्वर में पूछा—यह क्या है ?

—ज़हर नहीं है, ब्रान्डी है। पी लीजिए !

—मैं क्या स्वप्न देख रही हूँ ?

—अभी तो नहीं, कुछ देर पहले देख रही थीं। आपने मानो महिषासुर का वध करने के लिए खड्ग उठाया था, पर आपका वाहन भड़क गया और आपको नीचे फेंक दिया, सो आपको मामूली चोट लग गयी है। निमाई और गगन की बहुओं ने मिलकर आपको यहाँ मेरे घर में लाकर लिटा दिया।....अरे, यह क्या कर रही हैं ? खबर-

दार ! उठने की कोशिश मत कीजिए, चुपचाप पड़े रहिए ! आपकी माँ के पास खबर भेजवा दिया है, आती ही होंगी। डाक्टर नाग को भी बुलवा भेजा है।

कुछ देर बाद बेतसी की माँ आयी। और कुछ देर बाद डाक्टर नाग अपने बैग के साथ कमरे में आये। रोगी को देखने के बाद बोले—हाथ और कमर में चोट लगी है, साधारण, चार-पाँच दिन में सब ठीक हो जायगा। दाहिने पैर की हड्डी मुरक गयी है। पर खतरे की कोई बात नहीं, लंगड़ी नहीं होंगी, कुछ दिनों के बाद पहले की तरह चलने लगेंगी।...अरे न, न, जयहरि बाबू की तरह लाठी न पकड़नी होगी। आज पट्टी बाँध दूँगा। तीन दिन बाद सदर अस्पताल ले जाकर एक्स-रे कराना होगा, फिर पलस्तर-बैन्डेज लगाना होगा। चाहिए, तो एक नर्स भेजवा सकता हूँ।

बेतसी अपने घर लौटकर डाक्टर की चिकित्सा में रहने लगी और खाट पर पड़े-पड़े बीती घटनाओं को सोचने लगी।

*

मैनेजर हरकाली माईति की स्त्री रोज शाम को बेतसी को देखने आती थी। बूढ़ी की जबान पर कोई रोक न थी, लेकिन उसकी ऊल-जलूल बातों से भी बेतसी को गुस्सा नहीं आता था, उल्टे वह मजा ही लेती थी। दो सप्ताह के बाद बेतसी की हालत बहुत-कुछ सुधर गयी। वह बिस्तरा छोड़ आरामकुर्सी पर बैठने लगी।

माईति चाची एक दिन सान्त्वना दे रही थी—सब गरह का फेर है, तकदीर का लिखा बाँव नहीं जाता। उस भले छोकरे पर तुम्हें गुस्सा क्यों आया, और मेम साहब की तरह घोड़े पर चढ़कर तुम क्यों उसे मारने गयी ! उसका तो कुछ नहीं बिगड़ा, तेरी ही टाँग टूट गयी।

बेतसी बोली—तुम देखना, माईति चाची ! जरा मुझे ठीक तो हो लेने दो, चाबुक मारकर उसे काबू में न ले आयी, तो कहना !

—तू नहीं जानती, चाबुक मारकर मर्दों पर काबू नहीं किया जाता। उन्हें धीरे-धीरे, आहिस्ते-आहिस्ते जलाकर मारना होता है। मर्दों को पछाड़ने की दवा दूसरी ही होती है।

—तुम क्या वह दवा जानती हो ?

—अरी माँ ! सो नहीं जानूँगी ! सत्तर बरस की हो गयी हूँ, क्या योंही साठ साल से बूढ़े माइति के कन्धे पर बैठी हूँ ! सुन, दवा बनाती हूँ। पहले फुसला-बहकाकर मर्द को वश में किया जाता है, आशा-दिलासा दे-देकर उसे दौड़ाया जाता है, बातें करते-करते उसका सिर फेरा जाता है। फिर तब, जब वह पालतू हो जाता है, और तुम्हारे बगैर एक पल भी नहीं रह सकता, धीरे से उसकी गर्दन में रस्सी बाँध दी जाती है, नकेल डाल दी जाती है। पर तुम्हें तो कुछ अक्ल ही नहीं है, पहले ही चाबुक मारने चल पड़ी। इसी लिए तो गदहा रेंक उठा, घोड़ा भड़क गया, तुम गिरकर टाँग तुड़वा बैठी।....जयहरि बाबू आदमी अच्छा है, रोज आकर तुम्हारी खबर ले जाता है। देखने-सुनने में भी अच्छा है, बातचीत शरीफों की तरह करता है। तुम्हारी ही तरह बिलायत देखे हुए है। वह भी लंगड़ा है, तुम भी लंगड़ी हो। मैं तो कोई हर्ज नहीं देखती, पर तुम्हारी माँ सब गुड़ गोबर कर देती है। कह रही थी, मेरी बेवकूफ़ छोकरी के साथ कोई भी शादी नहीं करेगा। लेकिन इससे क्या, जयहरि जैसे पात्र को नहीं छोड़ना चाहिए। मेरी एक भतीजी बेबी है, उसके साथ सम्बन्ध जोड़ने की कोशिश करूँगी। भैया को चिट्ठी लिखूँगी कि तुरन्त बेबी को यहाँ भेज दें।

माईति चाची के चले जाने के बाद बेतसी के मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार उठने लगे। समर में उसकी पराजय हुई, आहत होकर वह घर में पड़ी है। डाक्टर-जैसा नम्बरी झूठा दूसरा नहीं मिलेगा, उस दिन कहा कि एक महीने में चंगी हो जाऊँगी, अब तीन महीने कहता है। इधर शत्रु हँस रहा है, शायद वह सड़ियल कुत्ती और गदही भी हँस रही होंगी। जयहरि कम बदमाश नहीं है, रोज़ आकर ख़बर ले जाता है, अपनी धाक जमाता है। बेबी के साथ शादी करेगा ! उँह, कैसे करेगा ? बेतसी शत्रु को हाथ से जाने नहीं देगी, माईति चाची की दवा का प्रयोग करेगी। सम्मुख युद्ध में हार गयी तो क्या हुआ,

कूट-युद्ध में जीतकर शत्रु को वश में कर लेना भी बहादुरी ही है। जयहरि ने गदहे को जेब्रा बनाया है, बेतसी क्या जयहरि को भेंड़ नहीं बना सकेगी? वह सारी रात जागती रही, पल-भर के लिए भी नींद नहीं आयी। हृदय में जैसे तूफ़ान चल रहा था।

सुबह उठते ही बेतसी ने सबसे पहले आईने में अपना चेहरा देखा, फिर मति को स्थिर कर शत्रु की ओर पहला बम फेंका, यानी दो लाइन की चिट्ठी लिख भेजी, आपकी कुत्ती और गदहे को माफ़ करती हूँ, आपको भी माफ़ किया। चाहें तो आप भी मुझे माफ़ कर सकते हैं।

बंगला से अनु० कृष्णचन्द्र चौधरी

कच्चे धागे रेशमी धागे

सुखबीर

काँटेदार तार से घिरी हुई यह ज़मीन, जिसपर आज सरदार नारायण सिंह का दुमंज़िला मकान और सात चालें और आस-पास और कुछ खाली प्लॉट पड़े हैं, पहले धान का एक खेत था। सावन की पहली बरसातों में जब यह खेत अपनी मेंडों तक भर जाता, तो शंकर और उसका बूढ़ा बाप और उनके दो छोटे-छोटे बैल इसमें हल चलाकर इसको नर्म करते, इसमें धान बोते। और फिर इस खेत की कोख में से जन्मी हुई हरीतिमा बरसात की फ़ुहार में घुल-धुलकर निखर उठती। रातें ढलतीं और दिन चढ़ते और उस हरीतिमा में पिघल रहे सूर्य का सोना चमकता, हरा-भरा खेत सुनहरा हो जाता। और अन्त में सोने के दानों-जैसे धानों को शंकर और उसका बूढ़ा बाप और उसकी तीन बहनें और चार बेटियाँ बाहें भर-भरकर सँभालते और उनकी छोटी-सी झोपड़ी चूल्हे पर पकते हुए चावलों की ख़ुशबू से भर-भर जाती।

पूर्वजों के समय से यह खेत उनका चला आ रहा था। इस खेत के सिर पर कितनी बार उन्होंने कर्ज़ उठाया और घर के जवान हो रहे बेटों और बेटियों के ब्याह रचाये! मेहनती हाथ और अमृत-जैसी वर्षा और उपजाऊ मिट्टी की बदौलत आख़िर वह कर्ज़ पीढ़ी-दर पीढ़ी उतर जाते रहे और यह खेत हर वर्ष धानों की फ़सल का लहराता रहा।

इस खेत के सिर पर कर्ज़ ली हुई रकम से शंकर की शादी हुई थी, इस खेत के सिर पर ही उसने अपनी तीनों बहनें ब्याही थीं, इसी खेत के सिर पर उसकी दो बेटियों के ब्याह हुए और अभी उसे और जवान हो रही बेटियों के ब्याह इसी के बल पर रचाने थे। लेकिन इस बार सरदार नारायण सिंह की कर्ज़ दी हुई रकम उतर न सकी, पिछले आठ वर्षों से वह उसके बहीखातों में सूद-दर सूद ब्याज जनती रही और आख़िर वह रकम फैलती-फैलती इस धान के खेत पर छा गयी। और उस वर्ष जैसे इस खेत पर सावन की बरसातें न पड़ीं, इस खेत में धान की फ़सल न लहरायी, वह उदास और शून्य आँखों से आकाश में तैरते हुए बादलों को देखता रहा। और अगले वर्ष इसके गिर्द काँटेदार तार लगा दिये गये। सरदार नारायण सिंह ने इसके पाँच-पाँच सौ वर्ग गज़ के प्लाट बनाये, उनमें से कुछ बेचकर शंकर और उसके बूढ़े बाप को दी, अपनी ब्याज-समेत रकम वसूल की और बाकी ज़मीन के एक

कोने में अपना दुमंज़िला मकान बनाया और सात और चालें बनवाकर किराये पर चढ़ा दीं, जिनमें आजकल चालीस-बयालीस कुटुम्ब रह रहे हैं और उन एक-एक या दो-दो कमरोंवाले घरों का किराया सरदार नारायण सिंह के बही-खातों में जमा होता रहता है।

वह धान का खेत, जिसपर उनकी पिछले कई वर्षों से नज़र थी, आख़िर उनकी मिलकियत बन गया।

❋

सरदार नारायण सिंह को ख़ुशी थी कि बम्बई-जैसे शहर में जहाँ मकानों की इतनी क़िल्लत है, उन्होंने अपने वतन से उजड़कर आये शरणार्थियों को अपनी इन चालों में कमरे देकर बसाया है। यह ज़मीन, जिसपर पहले एक कुटुम्ब का ही निर्वाह था, आज कई कुटुम्ब का आश्रय बनी हुई है। उनकी कितनी इच्छा है कि यदि उनको यह साथवाला खेत भी मिल जाय, तो वह उसपर भी और चालें बनवा दें और बेघर-बार लोगों को बसायें। इन चालों में बस रहे कितने कुटुम्बों को उन्होंने रुपया देकर उनकी सहायता की है। उन्होंने कितनों को पैरों पर खड़ा किया है, कितनों के रुके हुए काम चलाये हैं। कभी कोई उनके पास आकर खाली हाथ नहीं गया। उस इलाके के गुरुद्वारे में उनसे ज़्यादा दान आज तक किसी ने नहीं दिया। गुरुपरबों के समय सबसे बड़ी रकम उन्हीं की होती। जब उनकी यह चालें बनीं, तो उन्होंने ख़ास तौर पर एक कमरा गुरुद्वारे के नाम भेंट किया। और गुरुद्वारा, जो पहले एक किराये के कमरे में था, यहाँ आ गया। उस कमरे के दरवाज़े के ऊपर सरदार नारायण सिंह की स्वर्गवासी माता का नाम था और उनकी ओर से दान में दिये गये इस कमरे का प्लास्टिक के अक्षरों में ज़िक्र था। अपनी तिरपन वर्ष की आयु में अब नारायण सिंह का दुनियावी कामों की तरफ़ ज़्यादा ध्यान नहीं रहा था। वह रोज़ सुबह-शाम अपनी छड़ी के सहारे थोड़ा-सा लँगड़ाते हुए गुरुद्वारे जाते। बहुत समय पहले एक बार टाँग टूट जाने के कारण वह थोड़ा लँगड़ाकर चलते थे। दरवाज़े की दहलीज़ से ही वह माथा टेकना शुरू करते और रेंगते हुए गुरु ग्रन्थ साहब की हजूरी में पहुँचते और फिर बहुत देर तक आँखें बन्द किये वहाँ बैठे रहते। जब वह मन-ही-मन में पाठ कर रहे होते, तो कई बार उनके सामने उनकी एकाग्रता को तोड़कर उनकी जवान बेटी आ जाती। दूसरे ब्याह से हुई यह बेटी थी, जिसके ब्याह की चिन्ता अब उन्हें खा रही थी और जिसकी बदसूरती और मोटापे को उनका बड़े-से-बड़ा दहेज भी ढँक नहीं पा रहा था। फिर उनके सामने तीसरे ब्याह से हुए दोनों बेटे आते और फिर उनकी मराठन माँ आती, जो दो साल हुए मर चुकी थी। और तब सोचते-सोचते उनको अपना घर बड़ा खाली-खाली लगता। वह उठते और घर जाकर अपने बहीखातों में हिसाब-किताब देखने लगते या चालों में पिछले महीने के किराये वसूल करने जाते, जो अभी तक नहीं आये थे।

सब जानते थे और इसकी प्रशंसा करते थे कि नारायण सिंह को कभी दूध या राशन या और ऐसी चीज़ों को ख़रीदने की चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। यह सब चीज़ें उनके घर मुफ़्त ही आ जातीं। दूधवाले भइये को उन्होंने तीन सौ रुपये क़र्ज़ दिया था, उसके व्याज के तौर पर उनको मुफ़्त दूध आता। अपनी चाल में बस रहे पेशावर से आये एक शरणार्थी को उन्होंने पाँच सौ रुपये देकर राशन की दूकान खुलवायी थी। उससे वह कोई व्याज नहीं लेते थे और हर महीने उनका जरूरी राशन उनके घर पहुँच जाता। एक दसवीं में पढ़ रहे गरीब लड़के की उन्होंने साल-भर के लिए हर महीने फीस देनी मंजूर कर ली थी, और यह लड़का कृतज्ञता-स्वरूप उनके लड़कों को पढ़ा जाया करता था। एक गोरखा, जिसे कोई काम नहीं मिल रहा था, नारायण सिंह ने अपने और आस-पास के घरों की रात के समय रखवाली करने के लिए बीस रुपये की नौकरी दिलवायी थी। वही दिन के समय उनके घर का छोटा-मोटा काम कर जाता, उनकी चालों का किराया वसूल कर देता।

इस प्रकार सरदार नारायण सिंह का रुपया और उनकी मेहरबानियाँ एक जाल के चौरस खानों की तरह चारों ओर फैली हुई थीं। व्याज की रक़में उनके दिमाग़ में बरसाती केंचुओं की तरह रेंगती रहतीं। और वह प्रतीक्षा

करते रहते कि जाल के किस हिस्से के किस खाने में तनाव पैदा होता है, ताकि वह वहाँ पहुँचकर जाल के तागों को टूटने से बचायें।

और आख़िर जब एक बार जाल में एक तरफ़ तनाव आया, तो उनका दूधवाले भइये के साथ झगड़ा हो गया कि वह दूध में पानी डालकर देता है और फिर एक दिन उसका दूध बन्द कर दिया और उससे अपनी रक़म माँगी। दूधवाला पिछले ढाई साल से व्याज से तिगुने मोल का दूध देता आया था। उसने नारायण सिंह को हिसाब कर लेने के लिए कहा। हिसाब कोर्ट में हुआ। क्या सबूत था कि भइये को दूध के पैसे नहीं मिले। तीन सौ रुपये का काग़ज़ जिसपर ढाई साल पहले उस भइये ने अँगूठा लगाया था, पता नहीं कैसे, कोर्ट में व्याज-समेत साढ़े पाँच सौ का बन गया। दूसरी पेशी में ही फ़ैसला हो गया। भइया साढ़े पाँच सौ नहीं दे सकता था। और उसके चौथे दिन उस भइये की एक नयी ब्याई भैंस सरदार नारायण सिंह के यहाँ आ गयी, जिसके लिए कुछ दिन पहले से ही उन्होंने टीन का एक छपरा बनवाना शुरू कर दिया था।

*

इस भैंस के दूध का एक लोटा रोज़ सुबह गुरुद्वारे जाता और एक चाल के कमरा नं० बारह में बस रहे एक कुटुम्ब के बच्चों के लिए। इस कमरे में पंजाब के फसादों में तबाह हुआ बन्ता सिंह अपने कुटुम्ब-समेत रह रहा था। उसकी अधेड़ उम्र की पत्नी दमे की बीमार थी। तेईस वर्ष की बड़ी बेटी अनूपकोर अभी तक बिन ब्याही थी, जो बन्ता सिंह की सबसे बड़ी चिन्ता थी। और छोटी बेटियाँ और एक बेटा था, जिन्हें पढ़ाने-लिखाने का अरमान अब बन्ता सिंह के दिल की निचली तहों में दबा पड़ा था। जहाँ पेट भरने के लिए रोटी का अभाव हो, वहाँ शिक्षा का सवाल ही कैसे पैदा हो सकता था! यह सिर्फ़ सरदार नारायण सिंह का ही सहारा था कि वे आज तक दिन काटते आ रहे थे, वर्ना उनकी बम्बई में कौन बात पूछता। नारायण सिंह ने उनकी तबाह हालत पर तरस खाकर उनके लिए चाल का यह कमरा जबर्दस्ती खाली करवाया था, जिसमें पहले एक हिन्दू रहता था। आख़िर सिक्ख का फ़र्ज़ था अपने सिक्ख भाई की मदद करना! और फिर कपड़े का व्यापार करने के लिए एक हज़ार रुपये की बड़ी रक़म उन्होंने बन्ता सिंह को दी, क्योंकि बन्ता सिंह का गाँव उनके अपने गाँव से सिर्फ़ दो कोस के फ़ासले पर था, पड़ोस की बात ठहरी! बन्ता सिंह कपड़ों का गट्ठा उठाये गलियों-बाजारों में घूमता, और आवाज़ें देता, लेकिन शाम को उसका वृद्ध शरीर हाँफ उठता, थककर चकनाचूर हो जाता, उसकी टाँगें टूटने लगतीं। फिर उसने कपड़े की मार्केट में दुकान लेने के बारे में सोचा। दूकान का साठ रुपये किराया तो शायद वह दे लेता, लेकिन डेढ़ हज़ार पगड़ी? और नारायण सिंह को उसकी वृद्ध अवस्था पर तरस आया। उसकी दमे की बीमार बुढ़िया और उसके चारों बच्चों की दुर्दशा पर उनका दिल पसीजा। उन्होंने पगड़ी के डेढ़ हज़ार रुपये और क़र्ज़ देना मंजूर कर लिया। ढाई हज़ार रुपये देने से अगर एक उजड़े हुए सिक्ख कुटुम्ब की ज़िन्दगी बनती हो, तो इससे बड़ी और क्या सेवा हो सकती है! दुकान पर बैठा बन्ता सिंह अपने सुनहरे भविष्य के सपने देखता हुआ ग्राहकों की प्रतीक्षा करता रहता। उसकी रूखी-सूखी रोटी चलती जाती। यद्यपि आमदनी पहले के मुक़ाबले में कम थी, लेकिन सारे दिन टाँगें तो नहीं टूटती थीं और न गला ही फटता था। बन्ता सिंह सोचता, दूकान ठीक तरह चल जाय, चार पैसे जमा हो जायँ, तो कुछ नारायण सिंह से और लेकर अनूपकोर के हाथ पीले कर दे। उसकी नजरों में एक योग्य लड़का था भी, जो इसी मार्केट में दूकानदारी करता था। आख़िर कब तक जवान बेटी इस तरह माँ-बाप के घर बैठी अपनी किस्मत पर कुढ़ती रहेगी। कहीं पंजाब के वे फ़साद न हुए होते, तो वह कितनी धूम-धाम के साथ उसका ब्याह करता। कभी आस-पास के गाँवों के अच्छे-अच्छे घर उससे सम्बन्ध जोड़ने के लिए तरसा करते थे, लेकिन आज यह कैसे दिन देखने पड़ रहे हैं! और अनूपकोर भी कभी खऊँ-खऊँ करती अपनी बुड्ढी माँ के सिरहाने बैठी या रोटियाँ पकाती सोचती कि क्यों न उसका भी उन फ़सादों में ही

अन्त हो गया, क्यों न वह भी उस लहू की बाढ़ में बह गयी ! वह आज अपने बूढ़े माँ बाप पर कितना बड़ा बोझ थी ! कभी उसे अपने अन्दर बड़ा खाली-खाली लगता, चारों ओर का वातावरण जैसे उसे खाने दौड़ता और उसकी घुटी हुई भावनायें जब जागतीं, तो उसकी आँखों के सामने अन्धकार-ही-अन्धकार फैल जाता। पंजाब की नदियों का पानी और पंजाब की हवा और पंजाब के सुनहरे गेहूँ का प्रभाव अभी तक उसके अंगों में नहीं मरा था। उसकी आँखें अभी भी पहले-जैसी बड़ी-बड़ी थीं, यद्यपि उनकी चमक धुँधली पड़ गयी थी। उसके भरे हुए अंगों में से अभी भी खून झाँकता। उसकी हँसी की छनकार में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा था, यद्यपि हँसने के अब बहुत कम मौक़े आते। और उसकी जवानी की उमड़ती हुई बाढ़ को कोई भूख रोक नहीं सकती थी और तब उसकी आँखों के सामने एक अन्धकार फैलने लगता.......

एक तरफ़ से जब यह अन्धकार फटता, उसके सामने शहदरङ्गी दो आँखें आतीं, कितना बड़ा संसार बसा हुआ था उन दो आँखों में ! उसके सामने एक तुर्रेवाली तरबूज़ी रङ्ग की पगड़ी आती, जिसपर लगे अबरक की चमक उसकी आँखों को चुँधिया देती और फिर वह देखती उन शहदरङ्गी आँखों के नीचे एक तीखी नाक और रेशम-जैसी मुलायम, हल्के भूरे रङ्ग की दाढ़ी और गले में बँधा एक काला धागा और उसके साथ लटका हुआ सोने का तावीज़ और........फिर पंजाब के फ़साद और लहू की बाढ़, जिसमें यह सब-कुछ बह गया था, वे शहदरङ्गी आँखें मुँद गयी थीं ! हाय ! वह भी इस-सब कुछ के साथ उस लहू की बाढ़ में क्यों न बह गयी, उस चारों तरफ़ लगी आग में क्यों न जलकर राख हो गयी !....

लेकिन वह आग, जिसमें वह जल नहीं सकी थी, अब उसको निगलने के लिए आयी। लकड़ी के खोखों की बनी वह कपड़े की मार्केट, जिसमें बन्ता सिंह की दूकान थी, एक रात अचानक जल उठी। डेढ़-डेढ़ हज़ार पगड़ी वाले लकड़ी के खोखे, जिनमें रेशम भरा पड़ा था, फ़ायर ब्रिगेड के आने के पहले ही ज़मीन पर राख हो गये। बाद में, बेशक, सुना गया कि यह आग सेठ रमणकलाल की शैतानी थी, सेठ रमणकलाल की, जिसने यह जमीन लीज़ पर लेकर पंजाबी और सिन्धी शरणार्थियों के लिए लकड़ी के खोखों की यह मार्केट बनवायी थी, और जो अब फिर तीन-तीन हज़ार रुपया पेशगी लेकर यहाँ पक्की मार्केट बनवाने का इरादा कर रहा था।

लेकिन बन्ता सिंह को इस मार्केट के फिर बनने से अपने जीवन के फिर बनने की कोई आशा नहीं थी। वह तो अपने कुटुम्ब-समेत इस आग में झुलस गया था। और अब नारायण सिंह भी तो उसे और रुपया नहीं दे सकते थे। अगर व्याज छोड़ भी दिया जाय, तो भी नक़द उनका ढाई हज़ार रुपया डूब रहा था। आख़िर बन्ता सिंह इस बुढ़ापे में कौन सा काम करके वह रक़म उतार सकता था। और फिर ऊपर से बुढ़िया की बीमारी और कुटुम्ब का ख़र्च....

नारायण सिंह ने आख़िरी बार इस उम्र में बन्ता सिंह की एक बार फिर मदद की। उन्होंने उसे सलाह दी कि वह पंजाब चला जाय। बम्बई उसको रास नहीं आ सकती। बम्बई की हवा तो दमे के रोगी के लिए मौत के बराबर है। बम्बई का पानी पंजाबियों को कभी ठीक नहीं बैठ सकता और फिर बम्बई में छोटे-मोटे व्यापार की कोई सम्भावना नहीं है। पंजाब जाकर वह किसी शहर में कोई छोटा-मोटा व्यापार शुरू करे। और इसके लिए नारायण सिंह ने उसे फिर दो हज़ार रुपये की मदद देने का वादा किया। लेकिन पिछली रकम ?....और व्याज छोड़ भी दिया जाय, तो भी पूरे ढाई हज़ार रुपये !

नारायण सिंह ने बन्ता सिंह को इसके बारे में भी सलाह दी।

और आख़िर जिस दिन बन्ता सिंह को अपने कुटुम्ब-समेत पंजाब चला जाना था, उसके एक सप्ताह पहले सरदार नारायण सिंह का चौथी बार ब्याह हुआ और अनूपकोर उस चौथी चाल के कमरा नम्बर बारह से नारायण सिंह के दुमंज़िले मकान में आ गयी !

निर्मल निवास,
सोनारी रोड, विले पार्ले
बम्बई, २४,

बीड़ी का सौदा
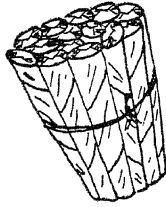
रोमंचि यज्ञन शास्त्री

—बाबू, एक बीड़ी दिलाओगे ?

जेल की चहारदीवारी पार कर भीतर प्रवेश कर ही पाया था कि आवाज़ सुनकर कूर्माराव चौंक उठा।

—एक बीड़ी इधर फिंकवा दीजिए !—वेंकन्ना ने दुहराया।

—गधे कहीं के ! कितनी बार समझाया जाय तुझे कि अपने वार्ड को छोड़कर इस तरह बाहर नहीं आना चाहिए। हड्डी तोड़कर रख दूँगा ! समझ क्या रखा है तूने ?—वार्डर ने उसे फटकार बतायी।

—बाबू से एक बीड़ी माँग लेने दे,—वेंकन्ना बोला, मानो उसे वार्डर की बातों की परवाह ही नहीं—बाबू, गठरी इधर फेंक दीजिए, मैं उसे लेता आऊँगा।—कहके उसने कूर्माराव के हाथ से गठरी छीन ली।

वार्डर को लगा कि आफिस के बरामदे से जेलर इन्हें देख रहा है। जेलर साहब ने हिदायत दी थी कि सभी वार्डर कैदियों से सख्ती बरतें। वह मन-ही-मन भुनभुनाया, हुँ ! थोड़ा ढील छोड़ दें, तो ये सिर ही चढ़ जायँ। ज़रा-सी लापरवाही हुई नहीं कि बस, नौकरी से हाथ धोना पड़े, लाठी तानकर क़ैदी पर छोड़ दी उसने।

—दैया रे ! मर गया रे !—कहता हुआ वेंकन्ना ढेर हो गया।

—एक बार कहने पर मानता नहीं। लातों के भूत बातों से थोड़े ही मानते हैं ! अब आप देख ही रहे हैं। बताइए, इनको क्या करें ?—वार्डर बोला।

कूर्माराव का मुँह लाल हो आया। कपड़ों की धुलाई और सामान ढोने-जैसे भारी कामों की आदत नहीं थी उसे, उसका बोझ कम करने जो व्यक्ति आया था, उसपर वार्डर की मार जो पड़ी, तो कूर्माराव को महसूस हुआ कि वह उसी के पीठ पर पड़ी है। अन्याय के प्रति उसका खून जल उठा। इतना क्रोध हुआ कि वार्डर का गला काट-कर फेंक दे।

क्रोध बुरी बला है। भले-बुरे का ध्यान नहीं रह जाता। वार्डर पर हाथ चलाने से फायदा ? जेलों में तो बस इन्हीं का राज है। यह सत्य है कि जेल में वे बुरी तरह पेश आते हैं, कड़ाई बरतते हैं, लेकिन साथ ही यह भी विचा-रने-योग्य है कि जेलों में वार्डर न रहते, उनकी सहायता और सहानुभूति न रहती, तो क़ैदी का जीवन दूभर हो जाता। कूर्माराव के विवेक ने सँभालकर उसे शान्ति के उचित मार्ग की ओर प्रेरित किया कि वार्डरों के साथ अप-नापा बढ़ाना चाहिए, उनकी जातों का जवाब नहीं देना चाहिए।

सत्याग्रह की कृपा से कूर्माराव जेल के नियम का परिचय पा सका। उसे जेल और सत्याग्रह के प्रति भय और चिढ़-सी थी। धन और भाग्य दोनों का बली होने के कारण इस पचड़े के बिना ही उसे जिला बोर्ड के लिए कांग्रेस का टिकट मिल गया। भले ही उसने दुख न उठाये हों, लेकिन क्या वह स्वयं नहीं चाहता कि देश से विदेशी राज का अन्त हो ! अतः प्राप्त सम्मान स्वीकार कर वह देश-सेवा-कार्य करता आ रहा था।

पर हाँ, हर आदमी को जीवन में ऊँच-नीच देखने

पड़ते हैं। इस गाँधी ने सत्याग्रह नाम की एक बला खड़ी कर दी है। राष्ट्र के नेताओं ने भी घोषणा कर दी कि जेल की यातना भुगते बिना पद स्थिर नहीं रह सकता। आराम को छोड़ जेल के कष्ट कौन सहे? बेचारा मानसिक द्वन्द्व में पड़ा था। क़ैदी दोस्तों के पास से चिठ्ठी-पर-चिठ्ठी आ रही थी कि इस बार का जेल आराम का है। दोस्तों से प्रोत्साहन पाकर कूर्माराव भी युद्ध के विरुद्ध नारा लगाकर जेल जा पहुँचा।

आँख बन्द कर खोलने की देर थी। छः महीने बीत गये। समय काफ़ी अच्छी तरह कटा। सच पूछा जाय, तो आज तक उसे जीवन में इतना आराम पहले नहीं मिला था। हाँ, एक बात, चार पैसे की परवाह न करो, बस, ढेरों क़ैदी और वार्डर खिदमत के लिए हरदम तैयार!

*

बयालीस का आन्दोलन शुरू हुआ। कूर्माराव ने दुबारा जेल जाने की तैयारी की। 'अंग्रेजो, हिन्दुस्तान छोड़ो' के आशय के उसने पर्चे छपवाकर बँटवाये थे। लेकिन इस बार शुरू से ही मामला कुछ टेढ़ा नज़र आया। मैजिस्ट्रेट 'बी' क्लास देकर चुप हो रहा। धनवान, उस पर जिला बोर्ड का सदस्य और एक बार 'ए' क्लास का अनुभवी, मैजिस्ट्रेट ने इनमें से एक भी विशेषण की ओर ध्यान नहीं दिया। कूर्माराव ने कई दोस्तों के ज़रीये सिफ़ारिशें भी पहुँचायीं, लेकिन मैजिस्ट्रेट पर कुछ असर न हुआ। कारण, इस बार उसे सख्त ताक़ीद आयी है कि किसी को भी 'ए' क्लास न दिया जाय, वर्ना नौकरी पर बन आयगी।

जेल के इस रूप से बेचारा अनभिज्ञ था। उसे लगा कि एकदम नरक में पहुँच गया है। उसके कपड़ों की गठरी खोलकर देखी गयी। उसमें छिपाये पैसे और बीड़ी के बंडलों को लेकर भी जेलर चुप न हुआ, उसने शरीर पर के कपड़ों की भी तालाशी ली।

इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं कि कूर्माराव बीड़ी का आदी था। सच पूछा जाय, तो वह कभी-कभार मंडली में, और वह भी तकल्लुफ़ से एकाध सिगरेट फूँक देता, लेकिन फूँकने की लत उसकी नहीं थी। पूछो कि, भई, तब उसने बीड़ी के बंडल क्यों छुपा रखे थे? तो यह इसलिए कि बीड़ी देकर बदले में कुछ ले सके।

जेल का जगत धन के जगत से बिल्कुल भिन्न है। वहाँ का सिक्का धातु का नहीं, बल्कि बीड़ी का होता है। देशभक्त क़ैदी छोड़, दूसरे क़ैदियों से अगर आपको कुछ काम कराना हो, तो उसकी क़ीमत आपको बीड़ी के रूप में चुकानी होगी। बदले का हिसाब भी बीड़ी से होता है। हाँ तो, उस राज्य में अपना प्रभाव जमाने के लिए वह जो बीड़ी के बंडल लाया था, उन्हें जेलर ने छीन लिया। यही जेलर कूर्माराव के क़ैदी जीवन में पहली बार उसका मित्र था।

कूर्माराव की बुद्धि ने फिर उसे सचेत किया, शान्त हो! शान्त हो! गुस्से को थूक दे। उसने सोचा, ठीक ही है, दूध उफनकर नीचे गिर जाने के पश्चात अफसोस करने से भी क्या लाभ? भलाई इसी में है कि किसी तरह अपना मतलब साधो। मतलब साधने के लिए वार्डर के साथ दोस्ती के सिवा और चारा न था। उसने एक आह खींची। वेंकन्ना, जो बड़ी दीनता से ताक रहा था, उसके हाथ से गठरी छीनकर थके पैरों कूर्माराव अपने वार्ड पहुँचा।

दूसरी सुबह शौचादि से निवृत होकर जब वह अपने कमरे की ओर लौट रहा था, तो उसने देखा कि जेल के डाक्टर साहब लम्बे-लम्बे डग भरते वार्ड की जाँच कर रहे हैं। पिछली बार कूर्माराव जब क़ैदी था, उस समय डाक्टर उसका दोस्त था, वैसे तो डाक्टर तनिक सख्त स्वभाव का था, लेकिन कूर्माराव ने कुछ ऐसी तिकड़म लड़ायी कि डाक्टर दोस्त बन गया। वह अक्सर जिला-अधिकारियों से उसके सुख-दुःख की चर्चा कर देता था। उसे देखते ही कूर्माराव को तनिक आशा हुई। उसकी बाँछें खिल गयीं। लम्बे डग भरकर जल्दी से डाक्टर के पास पहुँचा और दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते किया। डाक्टर ने तनिक गर्दन हिलाकर एक नज़र उसपर फेंक दी और आगे बढ़ गया। शायद कूर्माराव को भूल चुका था डाक्टर।

—सर, सिर्फ़ एक बात। मेरी तबीअत ठीक नहीं

रहती। एक प्याली दूध रोज दिलाने का प्रबन्ध करा दीजिए। और हाँ, हफ्ते में एक बार सिर धोने की मेरी आदत है। सिर में चुपड़ने के लिए तेल न मिला, तो मैं मर जाऊँगा। मेहरबानी करके थोड़ा तेल भी दिलाने की सिफारिश कर दीजिए।

मुड़कर डाक्टर ने सिर से पैर तक कूर्माराव को ताका। —जेल में पहुँचते ही इनके नखरे बढ़ जाते हैं! घर में दूध सूँघा भी न हो, लेकिन यहाँ आते ही एक प्याली की फरमाइश हो गयी, नहीं तो इनकी जान निकल जायगी! तेल भी इन्हें चाहिए! ग़नीमत है, बीवी की माँग नहीं की!—डाक्टर भुनभुनाकर लौट गया।

कूर्माराव हक्का-बक्का रह गया।

—देखा! बस ज़रा-सी जगह मिल जाय, ये जेल के अधिकारी हमारा अपमान करने पर उतारू हो जाते हैं। हमें अपने आत्म-गौरव की रक्षा करनी होगी! प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए तैयार होकर ही हम लोग यहाँ आये हैं! शरीर को भले ही थोड़ा कष्ट मिले, परवाह नहीं! यह डाक्टर जब वार्ड में आये, हममें से कोई उससे बोले नहीं, उससे कुछ माँगे नहीं। जब तक हम उनके हाथ जोड़ते हैं, तब तक वे हमें नीचा दिखाते रहेंगे!

—सच है, डाक्टर के घमण्ड की दवा कुछ है, तो केवल यही कि अब उससे बोलना बन्द कर दें।—दूसरे कुछ सत्याग्रही बोले।

उस दिन से बराबर एक हफ्ते तक एक भी डाक्टर से नहीं बोला। लेकिन शरीर अपने बस में थोड़े ही है। कुछेक को दवाई की ज़बरदस्त ज़रूर आ पड़ी। अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए कूर्माराव आवश्यक पैसा मंगा सकता था, अतः डाक्टर से बोलने की उसे ज़रूरत न पड़ी।

रंगनाथ को तीन रोज से ज्वर आ रहा था। उसने भी डाक्टर से न बोलने की क़सम खा रखी थी। खाना उसने बन्द कर दिया था, पर दवाई नहीं हो रही थी।....बाबू, न दवा, न दारू और न ही खाना। ऐसे तो ढीले पड़ जाओगे। बीमारी बढ़ जायगी, तो एक साला भी पूछने नहीं आयगा। माना कि अनावश्यक बातों के लिए डाक्टर से बोलना ठीक नहीं, लेकिन जरूरत पड़ जाय, तो उसे नौकरी बजानी ही पड़ेगी। मना करने पर भी सुब्रह्मण्यम न माना और दूसरे दिन डाक्टर के आने पर रंगनाथ की बीमारी का हाल सुनाकर उसके लिए दूध का प्रबन्ध करा देने को कहा।

—खाना तो नहीं खा रहा है न? तब ठीक है, ज्वर अपने आप उतर जायगा। रोग की सबसे बड़ी औषधि उपवास है। दूध पीने से बीमारी बढ़ जायगी।

यह कहता हुआ डाक्टर विजय की मुस्कान लिये चल दिया।

—ससुरे की हड्डी-पसली एक कर दो!—सुब्रह्मण्यम इतने जोर से बोला कि डाक्टर अच्छी तरह सुन सके।

रंगनाथ को जब इसका पता चला, तो वह बहुत दुखी हुआ। वह सत्याग्रह के नियमों को पचा चुका था। बीस वर्ष पहले जब वह बी० ए० में पढ़ रहा था, तो उसके कान में गाँधीजी की आवाज़ गूँज उठी। तब से पढ़ाई को तिलांजलि देकर उसने देश-सेवा का व्रत लिया था। इसके जीवन का आधा हिस्सा जेल में ही कट गया, पर उसने कभी किसी नौकरी की आशा नहीं की। सत्याग्रह के सिद्धान्तों ने उसे अपनी ओर खींचा था। उसका उद्देश्य था कि उनपर जहाँ तक बन पड़े, आचरण करे। एक सच्चा सत्याग्रही बनने के अलावा अन्य कोई पद उसे नहीं चाहिए था। रङ्गनाथ अक्सर ऐसा कहा करता था। सभी उसका आदर करते थे। उसने सख्त ताकीद कर दी कि उसके बारे में कोई भी डाक्टर से कुछ कहा-सुनी न करे। चौथे दिन भी जब बुखार न उतरा, तो लोगों को चिन्ता हुई कि रङ्गनाथ के खाली पेट में कुछ-न-कुछ पहुँचाना ज़रूरी है।

सुब्रह्मण्यम कूर्माराव के पास पहुँचा और रङ्गनाथ के लिए दूध की माँग की। कूर्माराव ने यह जानकर कि डाक्टर से कहने-सुनने का कुछ प्रयोजन नहीं, तीसरे दिन से ही पाव-भर दूध का प्रबन्ध कर लिया था।—दूध न पीने से कमजोरी बढ़ जाती है।—कूर्माराव बोला।

—दो बार भोजन, एक बार चाय और दूसरी बार

काफ़ी पीकर भी दूध न पीने पर आपकी कमजोरी बढ़ जाय, तो आप तनिक रङ्गनाथ का दशा विचारिए। यह दान तो आपको देना ही पड़ेगा!—सुब्रह्मण्यम बोला।

कूर्माराव कुछ उत्तर न दे पाया। अगर देता, तो दूसरे भला-बुरा कहते। कारण, सुब्रह्मण्यम खुद अपने लिए तो माँग नहीं रहा था। बेबसी के रूप में कूर्माराव बोला—दो-तीन दिनों के लिए ही तो कह रहे हैं, ले लीजिएगा।

कहने को तो कूर्माराव ने कह दिया, पर दूध के बिना पहले ही दिन उसे लगा, मानो पैर लड़खड़ा रहे हैं। हल्का बुख़ार-सा भी महसूस हुआ।

—अबे, एक प्याली का और प्रबन्ध करना होगा, समझा?—वार्डर से कूर्माराव ने कहा।

—बड़ी मुश्किल है, सरकार। फिर भी कोशिश करता हूँ। देखता हूँ, किसी 'सी' क्लास के पास आ रहा हो, तो चार बीड़ी फेंककर लेता आऊँगा।—वार्डर ने कहा।

—कुछ भी कर, पर जल्दी! वर्ना मुझे खटिया का सहारा लेना पड़ेगा!—कूर्माराव ने ज़ोर दिया।

*

—तेरा नाम लेता-लेता मर जायगा। लाश देखकर भी तू नहीं पसीजेगा? तेरी नौकरी पर आँच आ जायगी?—'सी' क्लास के एक देश-भक्त क़ैदी, रमेश ने डाक्टर को डपट बतायी।

वेंकन्ना को पन्द्रह दिन से बुख़ार था। उसे देखना तो दूर, उसके बारे में जानने की कोशिश भी नहीं की डाक्टर ने। बुख़ार में भी वह एक हफ्ते तक काम करता रहा। बुख़ार पर उसे अब पेचिश भी होने लगी थी। वेंकन्ना देश-भक्त क़ैदी न था। देश-भक्त क़ैदी अगर मद्य-निषेध का प्रचार करके और हड़ताल करके जेल पहुँचे थे, तो वेंकन्ना लागू मद्यपान नियम भंग करके ताड़ से शराब निकालकर जेल पहुँचा था। जेल में वह देश-भक्त क़ैदियों के छोटे-मोटे काम करके गुज़ारे के लायक बीड़ी कमा लेता था। कपड़े धोना-जैसे छोटे-मोटे कामों में वेंकन्ना की सहायता पाकर देश-भक्त क़ैदी उसे अपना मानने लगे थे। वैसे दूर ही रखते थे, कभी-कभार कुशल-क्षेम पूछ लेते थे, बस। रमेश अपनी बात पर अड़ गया कि वेंकन्ना की जाँच के बिना वह डाक्टर को नहीं छोड़ेगा। दूसरों ने भी डाक्टर को घेर लिया। डाक्टर ने सोचा, अगर इनका क्रोध भड़का, तो फिर अपनी ख़ैर नहीं और वैसे भी 'सी' क्लास पूरा शरारती दल है। और वेंकन्ना को देखा। उस समय तक वेंकन्ना की बीमारी बढ़ चली थी। वार्ड से निकालकर अस्पताल में भर्ती कराना जरूरी था। भोजन बन्द कर, दूध दिलाने का प्रबन्ध भी डाक्टर ने कर दिया।

*

—सचमुच आपकी किस्मत अच्छी है। डाक्टर ने आज ही 'सी' क्लास के एक क़ैदी को दूध दिलाने का प्रबन्ध किया है। मैं उससे पक्की कर आया हूँ, दस बीड़ियों के बदले।—वार्डर ने कूर्माराव को खुशख़बरी सुनायी।

वेंकन्ना को उस दिन अचानक श्वास चढ़ गया था। रमेश ने शोर मचाकर डाक्टर को बुलवाया। डाक्टर की नींद में खलल पड़ी थी, अतः वह भुनभुनाने लगा—खा-पीकर आराम भी नहीं करने देते! कमबख़्त जाने कहाँ-कहाँ से बीमारियाँ पाल लेते हैं!

पेचिश पर अचानक खाँसी और दमा, जिसका सुबह तक नामोनिशान न था, देखकर डाक्टर को और झुँझलाहट हुई, क्योंकि कारण पकड़ में नहीं आ रहा था।

—जाने कहाँ से पकड़ लाया है ऐसा रोग! और ऊपर से मेरी जान खा रहा है!—डाक्टर ने गाली दी। पर वेंकन्ना के कान तक गाली पहुँच भी न पायी कि उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

*

शव को चारपाई से उतारा गया, तो सिरहाने तीन बीड़ी के टुकड़े दिखे। दूध के बदले दस बीड़ियों में से दो कमीशन की बीड़ियाँ काटकर वार्डर ने आठ वेंकन्ना को दी थीं। बीड़ी के कश खींचते ही वेंकन्ना को लगा था कि उसके प्राण लौट रहे हैं। बीमारी के कारण वह काम न कर पाया था। अतः चार दिन से बीड़ी का भूखा था। एक साथ आठ बीड़ियाँ, जो उसे अब तक कभी नहीं मिली थीं, देखते ही आँखें फैल गयीं। बीड़ी-पर-बीड़ी एक साँस में पाँच पी गया। पेचिश और उसपर खाना

न खाने के कारण उसका शरीर कमज़ोर हो चला था, अतः एक साथ इतनी खुशी और आनन्द को वह सँभाल न सका। किसी कोने में छुपकर उसके जो प्राण नींद ले रहे थे, अचानक उठकर दौड़ने लगे और दौड़ते-दौड़ते थककर रुक गये !....

उस दिन कूर्माराव के प्राण लौट आये। उसने तृप्ति की एक डकार ली। उसने सोचा, दस बीड़ी का सौदा कुछ बुरा नहीं है। अगर यह सौदा न होता, तो सचमुच हमारे-जैसों के प्राण अब तक हरिनाम जपते !

तेलुगू से अनु० दयावन्ती

आनन्दमोहन विचित्र प्रकृति का मनुष्य था। वह जब बच्चा था, उसकी माँ अक्सर कहा करती थी कि एक साधारण मनुष्य में जितना छल-कपट होना चाहिए, आनन्दमोहन में उतना भी छल-कपट नहीं। स्वभाव से वह बहुत ही उदार था, और इसी कारण ग़रीब भी बहुत था। स्पष्टवादी था, और इसी कारण दुनिया की नज़रों में बुरा था। पर साथ ही, उसके सच्चे और अप्रिय शब्दों से चिढ़ उठनेवाले छुपे-छुपे उसकी स्पष्टवादिता की प्रशंसा करते। दो-चार मनुष्यों में बैठ प्रशंसा यद्यपि नहीं करते, पर मन-ही-मन आदर करते; मित्रता न रखते, पर यह स्वीकार करते कि वह मित्र बनाने-योग्य है।

आनन्दमोहन के ऐसे कड़ुवे स्वभाव में एक दिन एक करुण प्रसंग और मिल गया। उसकी माँ की मृत्यु हो गयी और इसके कारण उसके स्वभाव में ऐसा विचित्र परिवर्तन हुआ कि जैसे वह पहलेवाला आनन्दमोहन ही नहीं रहा। यद्यपि उसका चेहरा अब भी उतना ही दृढ़ दिखता, पर साथ ही गम्भीर, शोकग्रस्त और मृदुल बना हुआ; उसकी चाल अब भी पहले-सी ही सीधी, अडिग लगती, पर साबरमती के किनारे उसका एक कदम दूसरे की अपेक्षा कहीं अधिक भारी पड़ता; अब भी दिखने को वह पहले-सा ही मौजी दिखता था, पर अब उसकी जेब में मूंगफली, बेर आदि के स्थान पर भाँति-भाँति की सचित्र पत्रिकाएँ पड़ी होतीं।

आनन्दमोहन की माँ मात्र-माँ या स्त्री ही नहीं थी। वह शराब के नशे में सदैव गाफ़िल रहनेवाले पति के घर की जीवित व्यवस्था थी। उसके पति केदारनाथ बहुत शुरू से ही शराब के ठेके में जाने के अभ्यासी थे। दूसरे अनेक ठेके में आये और चले भी गये थे, पर उनका आना-जाना कभी नहीं रुका। जब तक वह नित्य नियमानुसार हाथ में छड़ी ले, धीमे-धीमे कदम बढ़ाते उस ठेके में न पहुँच जाते, उन्हें चैन नहीं मिलता। आनन्द-मोहन की माँ यह-सब जानती थी, और अपनी मर्यादा में रहकर पुरुष, पति को इस बुरी लत से छुड़ाने का प्रयत्न भी करती थी, पर अन्त तक केदारनाथ के स्वभाव में लेश-मात्र भी फरक नहीं आया। आनन्दमोहन की माँ जब तक जी, शराबी पति और घुमक्कड़ पुत्र के बीच

सोने के कड़ी बनी रही। पति-पुत्र, दोनों को ही घर में आने का मन हो, ऐसी वह शीतल छाया थी।

स्त्री की मृत्यु के पश्चात केदारनाथ का व्यवस्थित, पर ग़रीब घर कंगाल हो गया। अब तक ग़रीबी पर उस स्त्री ने अपनी कला का परदा डाल, घर को सादा, स्वच्छ और मधुर बना रखा था। उसमें सन्ध्या की अन्तिम किरण की सुन्दर प्रभा थी, और इसी कारण देखनेवाले को उसके घर में ग़रीबी की अपेक्षा सादगी ही अधिक दिखती थी, और ग़रीबी पर दया अथवा ग्लानि अनुभव करने की अपेक्षा प्रत्येक व्यक्ति सादगी का सौन्दर्य ही अनुभव करता था। केदारनाथ की ग़रीबी जिस स्त्री की कला से ढँकी हुई थी, उसकी मृत्यु के पश्चात भयंकर रूप से प्रकट हो गयी। किन्तु उसने अपने जीवन के अन्तिम क्षण में भी स्त्री का व्यक्तित्व दर्शाया था। और अन्तिम भेंट-स्वरूप क़ीमती गहनों का एक छोटा-सा सुन्दर बक्स आनन्दमोहन को सौंपा था। आनन्दमोहन उन गहनों को देख-देख बहुत रोया। और उसी दिन से उसके जीवन में परिवर्तन हुआ। उसके जीवन में अपनी माँ की स्वार्पण करने की भावना उभर आयी।

माँ की मृत्यु के पश्चात वह पिता की सेवा-टहल बड़ी लगन से करने लगा। एक मज़दूर की भाँति हर तरह का काम कर वह पैसा कमाने लगा। पिता के लिए शराब के पैसों का इन्तज़ाम करने के हेतु वह रात-रात-भर जगने लगा। और इससे उसका चेहरा फीका पड़ता गया, उसका शरीर सूखता गया, किन्तु फिर भी माँ की तरह अपने ग़रीब घर को सुव्यवस्थित रख, केदारनाथ का घर के प्रति जो पहले मोह था, उसे बनाये रहा।

किन्तु प्रकृति उसके विरुद्ध थी। उसके पिता बीमार पड़ गये। शहर के डाक्टर और जंगल के लुटेरों में कोई ख़ास फ़रक नहीं, लूटने के ढंग के अतिरिक्त। सामान्यतः डाक्टर में प्रेम-रहित प्राण होते हैं और प्राण-रहित देह। उसमें चैतन्य नहीं है, फिर भी चैतन्य दिखता है। हृष्ट-पुष्ट देह का डाक्टर वही होता है, जिसके हाथों अनेक रोगी इस असार संसार से बिदा हो चुके होते हैं; और पतली देह का डाक्टर वह होता है, जिसे कि अपने हाथों संसार से बिदा किये मनुष्यों का दुःख होता है। डाक्टरों को रोगी की अपेक्षा रोग ही से अधिक प्यार होता है। और इसी कारण, रोग को उखाड़ फेंकने के बदले वह रोगी को ही उखाड़ फेंकते हैं!

डाक्टर रमणलाल ने एक ही चक्कर में आनन्द-मोहन की कई दिनों की कमाई हड़प ली। अब उसके पास माँ के दिये गहने ही बच रहे थे। पिता को बचाने के लिए उसने वह भी होम दिये। पर पिता बचे नहीं।

आनन्दमोहन उस दिन छाती पीट-पीटकर रोया। पिता की छड़ी और शराब का ठेका देख-देख उसका कलेजा फट-फट जाता। पिता ने आज शराब के लिए पैसे नहीं माँगे, तो उसे लगा कि आज पूरा अहमदाबाद शान्त हो गया है। आज उसका पुराना घर उसके साथ रोया। घर के पत्थर और वह पुराने दोस्त थे। आज जड़ और चेतन के बीच दोस्ती जमी थी। आनन्दमोहन घर के पत्थर का साथी था, और हर पत्थर उसके पिता का पुराना परिचित मित्र था। आनन्दमोहन इस घर के अतिरिक्त पिता को स्मरण कहाँ करे? और इतनी सहानु-भूति से उसकी सुने भी कौन? केदारनाथ की याद करे भी कौन? चैतन्य चैतन्य की मित्रता का आधार होता है मात्र स्वार्थ। स्वार्थ है, तब तक मित्रता है, स्वार्थ पूरा हुआ और मित्रता ख़त्म! सच्ची मित्रता तो होती है जड़ और चैतन्य के बीच, पाषाण और शिल्पी के बीच, चित्रकार और उसकी तूलिका के बीच, वाद्य और वादक के बीच! आज ऐसी ही सच्ची मित्रता आनन्दमोहन और उसके घर के बीच उत्पन्न हुई थी।

*

पिता की मृत्यु के पश्चात आनन्दमोहन के विचित्र स्वभाव में और भी परिवर्तन हुआ। अब वह बिल्कुल बेफ़िक्र हो गया, पर घूमना-फिरना भूल गया। उसके घर की व्यवस्था बिगड़ती गयी, पर उससे स्नेह बढ़ता गया। अब उसके यहाँ बच्चों की टोली जमा रहने लगी। वह अब स्वच्छन्द था। मरज़ी होती, तो कमाता और खाता, खाना न होता, तो कमाने न जाता। यों उत्तम नक़्क़ाशी

का जानकार होने के कारण सहज ही तीन-चार रुपये कमा लेता। फिर भी कभी-कभी तीन-चार आने की ही मज़दूरी करता। अपनी आवश्यकतानुसार ही वह काम करता। कभी कई-कई दिन काम पर नहीं जाता, तो कभी तीन-चार आने में बोझा ही ढो लेता, और कभी चार रुपये मिलने पर भी काम नहीं करता। पेट भरने के लिए जितने पैसों की ज़रूरत होती, बस उतने ही पैसे वह कमाता, पर किसी ज़रूरतमन्द की ज़रूरत पूरी करने के लिए वह अपनी समस्त शक्ति लगाकर पैसा कमाता। वह कहा करता था, शक्ति का उपयोग परस्पर स्नेह बढ़ाने में है!

आनन्दमोहन के घर के सामने एक सुन्दर बगीचा था। उस बगीचे की मालकिन थी दुलारी। दुलारी नित्य गाँव जाती थी। बग़ीचे से बाहर निकलते ही उसके विशाल, गोल, मद और मस्ती-भरे नयन सहज ही पूरे अहमदाबाद की जीवित दीनावस्था-सी आनन्दमोहन की अव्यवस्थित झोंपड़ी पर ठिठकते। आनन्दमोहन घर के दरवाज़े पर ही बैठा दीखता, कभी बच्चों के साथ हँसी-मज़ाक करता हुआ, कभी कबूतरों के साथ खेलता हुआ, तो कभी मोर नचाता हुआ। ग़रीबी की खिल्ली उड़ाता हो, इस तरह वह सदैव प्रसन्न दिखता। कभी वह दरवाज़े पर खड़ा ऊँचे-नीचे तथा असंख्य पैबन्द लगे कोट की एक जेब में हाथ डाले सामने के वृक्ष की ओर निहारता होता। कोट की एक जेब में उसका एक हाथ छुपा रहता, और फट गयी दूसरी जेब में से दूसरे हाथ की अँगुलियाँ झाँका करतीं। उसके कोट का मूल वस्त्र पैबन्दों में छुप चुका था। उसके कोट में पैबन्द की अपेक्षा सिलाई अधिक थी और सिलाई की अपेक्षा रंग अधिक थे। आनन्दमोहन का यह कोट देखकर कितने ही लड़के उसे गुदड़िया फ़क़ीर कहते, और आनन्दमोहन अपना यह प्यारा उपनाम सुन मन्द-मन्द हँसता।

दुलारी की मस्त आँखों में आनन्दमोहन को देख मद चढ़ता और खुमारी-भरे चेहरे में गुमान की भृकुटि तनती। आनन्दमोहन अक्सर दुलारी को इसी तरह गुज़रते हुए देखता।

—तुम इसी बग़ीचे में रहती हो?—एक दिन आनन्दमोहन ने उससे पूछा।

दुलारी ने गुमान से उसकी ओर देखा। उसके चेहरे पर अबोध शिशु-सी मासूमियत और जिज्ञासा दिखी। उत्तर देने का उसका मन हुआ। बोली—हाँ, यह बग़ीचा मेरा है!

—तभी तुम्हें रोज़ शहर जाते देखता हूँ।

दुलारी के कानों में पुरुष की आवाज़ के स्थान पर जैसे एक भोले भाले लड़के का स्वर पड़ा। उसके स्त्रीत्व का अभिमान पिघलने लगा। वह बोली—हाँ, शहर में मुझे रोज़ काम होता है, बग़ीचे का, सब्ज़ी का और परचूनी का।

—तुम अकेली रहती हो?—आनन्दमोहन ने पूछा।

दुलारी का स्त्री-स्वभाव प्रकट हुआ। पुरुष को परवश होते देख उसका गुमान सौगुना बढ़ जाता था। उसने मद और मस्ती-भरे स्वर में उत्तर दिया—नहीं, माँ भी साथ रहती है!

आनन्दमोहन कुछ और पूछने जा रहा था कि उसका हाथ जेब फाड़ता हुआ बाहर निकल गया और जेब में पड़े रेवड़ी के दो-चार दाने ज़मीन पर बिखर गये। आस-पास खड़े लड़के हँसते हुए उस ओर झपटे।

दुलारी ने आनन्दमोहन की ओर देखते-देखते आगे क़दम बढ़ाये। उसके चेहरे पर ग़रीबी और ग्लानि के बदले लापरवाही थी, शर्म के बदले निर्दोष सरलता थी। उसके मन में आनन्दमोहन की यह सरल निर्दोषिता घर कर गयी, उसका भोलापन उसे प्रिय लगा, पर उसकी लापरवाही और ग़रीबी उसके दिल में काँटे-सी चुभ गयी।

इसके बाद एक दिन आनन्दमोहन उसके बग़ीचे में गया। दुलारी को उसका आना अच्छा लगा। उसने एक रक्षक के-से स्वर में उससे पूछा—आनन्दमोहन, क्या इन दिनों कोई काम नहीं करते?

—नहीं। अभी घर में नाज है।

—तो, कल से यहीं आ जाया करना।

आनन्दमोहन उसके बग़ीचे आने लगा, काम भी करने लगा। दिन-दिन वह दुलारी का प्यारा बनता जा रहा था।

एक दिन दुलारी आनन्दमोहन के लिए नया कोट लायी। बोली—लो, यह नया कोट पहन लो।

—किसका है?

—तुम्हारे लिए लायी हूँ, ले लो। यह मेरे बाप का था।

आनन्दमोहन ने सर हिलाकर लेने से मना किया।

—क्यों? ले लो न।

आनन्दमोहन लापरवाही से हँसा। अपने पुराने कोट के असंख्य पैबन्द देख बोला—अभी यह ज्यादा पुराना नहीं हुआ है। अभी मुझे इस नये कोट की ज़रूरत नहीं। किसी दूसरे को दे दो।

दुलारी वापस लौट गयी। गुमान का मान रखनेवाले लड़के को हाथ से निकलते देख वह खीझ उठी। बोली—तू पागल है!

—हाँ, तो?

आनन्दमोहन के इसी व्यवहार से दुलारी उसकी ओर अधिकाधिक झुकती गयी। उसे सदैव उसका मधुर चेहरा याद आता, पर आनन्दमोहन को अपनी ओर से लापरवाह देख वह जब-तब खीझ भी उठती। और इसी कारण, वह उसको भी खिझाने के लिए गरीबों को बुला दान देती। पर आनन्दमोहन खीझने के बदले, उल्टा प्रसन्न होता। और जैसे उसकी दानशीलता पर आघात करता-सा कहता —दुलारी, तू गरीबों को दान देकर आशीर्वाद प्राप्त करती है। दान धन का सुदुपयोग भी है। मेरी इस हफ़्ते की मज़दूरी तू अपनी ओर से गरीबों को दान कर देना।

*

एक बार दुलारी की माँ बीमार पड़ गयी। आनन्दमोहन उसकी तीमारदारी में जुट गया। रात-बिरात दवा-दारू के लिए वह अहमदाबाद की गलियों के चक्कर लगाता और दुलारी जब रात-भर सोकर उठती, तो उसे माँ की देह सेंकते पाती।

धीरे-धीरे दुलारी के गोल, विशाल और मोह-भरे नेत्रों में आनन्दमोहन का उपकार खुलने लगा। उसे आनन्दमोहन के स्नेह-भरे परवश स्वर चाहिए थे। आनन्दमोहन को सीधे-सादे शब्दों में बात करने की आदत थी। यह दुलारी को अच्छा नहीं लगता। वह लड़का मधुर हँसकर बोलता, पर हर बार एक ही तरह का निर्दोष, मधुर हास्य! दुलारी उससे वक्त-बेवक्त मिलकर प्रेम प्रकट करती, पर वह एक दिन भी उसकी विशाल आँखों की छाया में मस्त हुआ नहीं दिखा। वह दुलारी को देख, अपने उपकारों को भूल, उसका स्वागत करता और उसके स्वभाव की प्रशंसा करता।

दुलारी को यह अच्छा नहीं लगता। आनन्दमोहन उसे क्यारी में से निकलते देखता अवश्य, बातें भी करता, पर उसे देख कभी अपना पुराना कोट छिपाता नहीं, अपना धूल-भरा चेहरा धोता नहीं। दुलारी को देख उसके व्यवहार से स्नेह टपकता, पर यह-सब दुलारी के मन को भाता नहीं। उसे तो स्नेह की अपेक्षा परवशता के प्रदर्शन की अपेक्षा थी।

दुलारी ने एक दिन उससे कहा—आनन्दमोहन, अब तो मेरी माँ की देख-भाल के लिए हमारी एक सम्बन्धी आ रहा है, सो, अब तुम अपने ही घर रहा करो।

आनन्दमोहन ने शान्ति से उत्तर दिया—बहुत अच्छा, पर अगर आधी रात में भी काम पड़े, तो मुझे बेझिझक बुला लेना।

—ठीक है,—दुलारी ने कहा—तुझे कुछ चाहिए? ठंड है, कपड़े बनवाने हैं? घर ठीक करवाना है? और हाँ, खाना तो यहीं आकर खाना।

आनन्दमोहन का हाथ अपने कोट की फटी हुई जेब में पड़ा। शक्कर की एक डली मुँह में रख वह बोला—नहीं, नहीं, मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। और रहा कोट, सो अभी फटा कहाँ है?

—ख़ैर, तुम्हारी मरज़ी,—दुलारी अशान्ति से बोली।

आनन्दमोहन दुलारी पर एक करुण दृष्टि डाल चला गया।

उस रात हवा ने तूफ़ान का रूप धारण कर लिया था। दुलारी की माँ की दशा बिगड़ गयी। दुलारी और एक बूढ़ा असहाय अवस्था में चुपचाप बैठी थीं। इसी समय

दरवाज़ा खुला और आनन्दमोहन ने भीतर प्रवेश किया। दुलारी ने भींगी आँखों से उसकी ओर देखा। आनन्द-मोहन के साथ एक डाक्टर था।

किन्तु सूर्योदय से पूर्व ही माँ चल बसी। दुलारी रोयी, आनन्दमोहन रोया। अन्त में दुलारी को ढाढस बँधाते बोला—मैं तुम्हारा नौकर हूँ। किसी बात की चिन्ता न करना। मैं तुम्हारा सब काम करता रहूँगा।

*

माँ की मृत्यु के बाद दुलारी में मालिकों-सा अभिमान आ गया। उसकी रौबदार, यौवन-भरी चाल में मद बढ़ गया और उसकी मस्ती में घमंड प्रत्यक्ष दिखने लगा।

एक दिन वह आनन्दमोहन के घर की ओर से निकली। आनन्दमोहन हाथ में एक थाली और परात लेकर कहीं जा रहा था। उसके पास एक कपड़ा भी था। दुलारी आश्चर्यचकित-सी छुपे-छुपे उसके पीछे हो ली। कितनी ही गलियाँ पार करने के बाद दुलारी ने उसे एक दूकान पर खड़े देखा। वह उस दूकान से कुछ दूरी पर छुपकर खड़ी हो गयी।

कुछ देर बाद आनन्दमोहन का स्वर सुनायी दिया—यह थाली, परात और धोती खरीदोगे?

—हाँ।

—कितना दोगे?

—दो रुपये।

—कुछ ज़्यादा नहीं?

—नहीं।

आनन्दमोहन ने तीनों चीजें बेच दीं। और दो रुपये ले शीघ्रता से एक ओर बढ़ गया। दुलारी उसके पीछे-पीछे चली। वह एक अपरिचित स्थान पर ठिठका और एक घर की साँकल खड़खड़ायी। किसी ने दरवाज़ा खोला। चूड़ियाँ बजीं, और दुलारी ने देखा कि दरवाज़ा खोलनेवाली एक मुग्धा थी। ईर्ष्या तथा आश्चर्य से जहाँ-की-तहाँ खड़ी-खड़ी वह भीतर होनेवाली बात सुनने लगी।

—कोई आया था?—आनन्दमोहन का स्वर था।

—हाँ, डाक्टर शंकरप्रसाद आये थे।

—क्या कहा?

—रोगी को बचाना हो, तो पचास रुपये खर्चा पड़ेगा!

दुलारी सुनती रही। उसने खिड़की की राह भीतर देखा। एक पुरुष रोगी के निकट वह स्त्री खड़ी थी।

—पचास ही न?—आनन्दमोहन की वही चिर-परिचित आवाज सुनायी दी।

—हाँ।

—ठीक है। लो, यह पच्चीस रुपये तो अभी रख लो। बाक़ी पच्चीस कल ले जाऊँगा।

पच्चीस रुपये इकट्ठे करने के लिए आनन्दमोहन ने घर की सारी वस्तुएँ बेच दी थीं। थाली-परात और धोती अन्तिम वस्तुएँ थीं।

—कैसी तबीअत है, रमण?—आनन्दमोहन ने रोगी से पूछा।

पुरुष का मन्द, दर्द-भरा स्वर सुनायी दिया—ठीक है, आनन्दमोहन। किसी ने मदद की? अब घर में तो बेचने-जैसी कोई चीज भी नहीं है?

—मदद मिल गयी है, रमण।

रोगी ने संतोष की साँस ली।

इसके बाद आनन्दमोहन शीघ्रता से घर से बाहर आया। दुलारी अँधेरे में छुप गयी। उसका गुमान लुप्त हो गया और स्त्रीत्व प्रकट हुआ।

आनन्दमोहन सीधे एक प्रख्यात कारीगर की दूकान पर पहुँचा। भीतर एक वृद्ध गावतकिये के सहारे, पाँव फैलाये बैठा था। उसके सामने एक युवक बैठा था। वृद्ध ने आनन्दमोहन को देख परिचित स्वर में कहा—आइए, बादशाह! क्या हाल हैं! कल से काम पर आओगे? एक हफ़्ते के लिए तुम्हारी ज़रूरत है।

—हाँ, आऊँगा। पर हफ़्ते के पैसे मुझे अगाऊ चाहिए।—दुलारी को आनन्दमोहन का उत्तर सुनायी दिया।

—अगाऊ भी मिलेगा,—युवक ने उत्तर दिया।

और एक क्लर्क ने तुरन्त बीस रुपये गिन दिये।

आनन्दमोहन रुपये ले नीचे उतरा। और उत्साह से आगे बढ़ने लगा। लगभग दस बजे का समय था वह।

दुलारी को घर से निकले बहुत समय हो चुका था, पर गुमान का विष उतर जाने के कारण वह पुनः आनन्दमोहन के पीछे-पीछे चलने लगी।

आनन्दमोहन उस रोगी के घर ही पहुँचा। रुपये दिये, और कल तक पाँच रुपये और ले आने का वचन दे वापस लौटा। इस बार वह सीधे अपने घर ही पहुँचा और बिना रोशनी किये ही सो गया।

दुलारी का विषमय उन्माद अब उतर गया। आनन्द-मोहन उदार गरीब था। रात-भर उसकी आँखों के आगे उसका प्यारा चेहरा घूमता रहा।

दूसरे दिन आनन्दमोहन दुलारी के पास अपना पिछला हिसाब चुकता कराने की ग़रज़ से पहुँचा। उसे पाँच रुपये की जरूरत थी, यह दुलारी जानती थी।

—कितना हिसाब होता है तुम्हारा?—दुलारी ने हँसकर पूछा।

—साढ़े पाँच रुपये और दो आने।

—कैसे?

—पन्द्रह दिन काम किया है न, छः आने रोज़ के हिसाब से।

—पर एक दिन तुमने आधे दिन ही काम किया था।

—हाँ, ठीक है। तीन आने कम दे दो।

—लो,—दुलारी ने पैसे गिन दिये।

आनन्दमोहन कुछ सोचने लगा। वह कुछ याद कर रहा था।

—क्यों, क्या हिसाब में कुछ गड़बड़ी है?

—नहीं। पर तुम्हारे दो आने मुझे और देने हैं।

—किस बात के?

आनन्दमोहन का चेहरा फीका पड़ गया। बोला—एक रात मैंने तुम्हारे बग़ीचे में से एक नारियल लिया था, उसके पैसे काट लो।

दुलारी के मद-भरे विशाल नयनों में स्नेह-भरी करुणा प्रकट हुई। बोली—तुम्हें किसी और चीज़ की ज़रूरत है, आन्दमोहन?

—मुझे?—आनन्दमोहन हँसा—नहीं, नहीं, अभी मेरा कोट काम दे रहा है, बरतन-भांडे भी पूरे हैं। और मुझे चाहिए भी क्या?

दुलारी की आँखों के आगे गत रात का सम्पूर्ण इति-हास कौंध गया। गत रात उसने उस रोगी की मदद करने के लिए बरतन बेचे थे, एक हफ़्ते की मज़दूरी अगाऊ ली थी और इस मज़दूरी में से भी रोगी को पाँच रुपये वह देगा। फिर उसके पास क्या बचा रह जायगा? पूरे हफ़्ते की खूराक के लिए केवल पाँच आने।

—उदार पागल! ढाई पैसे में एक दिन निकाल सकोगे?—कहते-कहते उसने प्यार से उसका हाथ पकड़ लिया।

और आज प्रथम बार आनन्दमोहन ने प्रेम-भरी दृष्टि से दुलारी की ओर देखा। मुख से अस्पष्ट-सा स्वर फूटा—दुलारी!

गुजराती से अनु० राजगोपाल माथुर
खानपुरा, अहमदाबाद।

—वाह रे, पाठा !....वाह !

—जीओ !....जीओ रे, ढाठा !

और बीड़ी की फूँक धक्-धक-धक्....फू ! खाँसता हुआ बेंगा चिल्लाया—अबे साला ! रुकता क्यों है ?

गाते-गाते क्षण-भर के लिए मोहसिन रुका, तो बेंगा मानो गर्दन पर सवार हो गया। साँस ऊपर-नीचे कर मोहसिन पुनः गाने लगा। उसकी आवाज़ धीरे-धीरे ऊपर उठने लगी, तेज़, भारी, कम्पन युक्त स्वर :

ओ दुनिया बनानेवाले....

और पम्म-पम्म-पम्म !....तिनकौड़िया मुँह से तबले का बोल निकालने लगा। बेंगा रिक्शे पर ताल गिनने लगा और मोहसिन गीत के अर्थ में खो गया।

छकौड़िया, केदार, मजीद, रसीद और हरिआ अगल-बगल रिक्शा लगाये, गाने का मज़ा लूट रहे थे। ख़ासा मजमा था। बीच में मोहसिन आँखें बन्द किये गा रहा था। केदरवा, हरिआ और बेंगा रिक्शे की पीठ पर अपने शास्त्रीय संगीत-ज्ञान का प्रदर्शन कर रहे थे। मजीद मुँह की सीटी से बाँसुरी का काम ले रहा था और छकौड़िया हुनर वाला था, इसलिए नाक से वीणा का सुर भर रहा था। बीच-बीच में तिनकौड़िया तबले का बोल ठकना रहा था, पम्म-पम्म-पम्म !....

और पंक्तिबद्ध न जाने कितने रिक्शेवाले पड़ाव पर जुटने लगे। सेकेन्ड शो सिनेमा छूटनेवाला था। रात के बारह बज चुके थे। वे प्रतीक्षा में थे। कुछ पान की दूकान पर, कुछ खोंचेवाले के पास और दो-तीन ठर्रे के नशे में मोहसिन के गीत की दाद दे रहे थे।

ठण्ड बड़ी शिद्दत की थी। लग रहा था, उँगलियाँ गल चुकी हैं, घुटने के नीचे का हिस्सा जैसे हो ही नहीं। नाक तो ठीक ही जमकर पत्थर हो चुकी थी और एँड़ी पर मानो बर्फ़ का टुकड़ा आकर चिपक गया था।

इसी लिए उठता हुआ नंगा शोर था, तबले की नक़ल थी, वीणा का सुर था, ताल-सुर के ज्ञान का प्रदर्शन था। और सबसे बढ़कर ज़िन्दगी के एहसास के लिए बीच-बीच में छेड़खानियाँ थीं।

मोहसिन ठण्ड से केदार और हरिआ के बीच चिपकता आ रहा था। रसीद बीड़ी की फूँक से अपने को गर्म कर रहा था। पर जब रसीद ने बीड़ी का धुआँ इन-सबके मुँह पर फेंका, तो छकौड़िआ से नहीं रहा गया। बोला—अबे साला ! धुआँ उधर फेंक !

—गरम हो जायगा, राज्जा !—रसीद बोलने में लड़खड़ाया।

—चल बे, बीड़ी से क्या गरमी आयगी ?—बेंगा ने हाथ से भाव बताया :

मारी कटारी मर जाना

अँखिया किसी से मिलाना ना !

वा-वा-वाह !—तिनकौड़िया तबले का बोल छोड़ चिल्लाया।

छकौड़िआ ज़ोरों से रिक्शे की पीठ ठोंकने लगा।

बैंगा पुनः आँख मूँदकर ताल-मात्रा अपनी जंघा पर गिनने लगा। छकौड़िया की वीणा तेज़ हो उठी। तिनकौड़िआ तबला ठनकाने लगा, पम्म-पम्म-नम्म !...

दूकान से अकबर चिल्लाया—जीओ ! जीओ, रे राज्जा !

इतने में दूर से पिलुआ की आवाज़ सुनायी पड़ी—चन्दा मामा दूर के, पूआ पकावें गुड़ के !

बैंगा ठमक गया। छकौड़िआ थमा। तिनकौड़िआ मुँह फैलाये चुप हो गया। मोहसिन का स्वर भी ढीला पड़ने लगा। केदार, रसीद, हरिआ....सब-के-सब थथम गये।

पिलुआ की आवाज़ में अजीब जादू है, एक सम्मोहन, एक आमन्त्रण, ज़िन्दगी के समस्त कोलाहल के बीच मानो एक ठहराव, पड़ाव। वह उस टोली का सबसे अच्छा गायक है। मोहसिन की आवाज़ अच्छी है ज़रूर, पर सधी नहीं। पिलुआ की आवाज़ तो सधी, संयमित और मर्यादित है। जहाँ चाहे उतना मोड़ ले, जितना चाहे, उतना कम्पन भर दे और गीत को जैसा चाहे, वैसा नया रंग दे दे। उसके गीत के सामने सिनेमा भी झूठ पड़ जाता।

पिलुआ के स्वर की अनुगूँज अब धीरे-धीरे समस्त वातावरण में फैलने लगी थी, जैसे सारा-का-सारा वायुमण्डल सोते से जग पड़ा हो। मोहसिन ने अपना गाना रोक दिया। साथ देनेवाले साज-संगीत चुप हो गये। और अब पिलुआ की मधुर आवाज़ ओस-कण की तरह चहुँ-ओर बरसने लगी :

चन्दा मामा दूर के, पूआ पकावें गुड़ के........

तभी मोहसिन सच्चे कला-पारखी की नाईं बोला—

—ख़ुदा क़सम ! क्या आवाज़ पायी है इसने !

—अरे यार ! ख़ुदा जिसको देता है, छप्पड़ फाड़ के !—रसीद ने थोड़ा और जोड़ दिया।

बैंगा तैश में हाथ झकझोरता बोल उठा—हुर्र्-र्-र् ! ....मूरख ! ख़ुदा क्या आवाज देगा ? यह तो इंसान की आवाज़ है, इन्सान की !

रसीद बीड़ी को फेंकता हुआ झल्लाया—अबे साला, इन्सान कहाँ से आया है ? ख़ुदा नहीं तो क्या तुमने आवाज दी है ?

—खबरदार !—बैंगा डपट पड़ा—बात न बढ़ाओ ! ऊपर साला ख़ुदा है, तो होने दो ! हमसे क्या ?

—देख ! हमारे देवता को गाली क्यों बकता है ?—मोहसिन तन गया !

—दूँगा, साले तुमको भी गाली दूँगा और तेरे ख़ुदा को भी !

बैंगा बड़ा ज़बर्दस्त था, सच्चे माने में मर्द था ! अपने से दुगने को पटकनिआ देना तो उसके बायें हाथ का खेल था। चौड़ी-फैली छाती थी, लम्बे बलिष्ठ हाथ थे, भालू की तरह पंजे और मुँह अजीब डरावना था।

मोहसिन सकपकाकर रह गया। बात बढ़ जाती। हाथा-पाई हो जाती, इसी लिए वह चुपचाप फुसफुसाने लगा। तभी बैंगा का रिक्शा बोला, ठायँ !....और उसका रिक्शा आगे घिसट गया। पिलुआ को भीतर आने की राह मिल गयी। वह सर्र से भीतर घुस आया गोल में।

—यह कौन खेल है, रे ?—आते ही पिलुआ ने पूछा।

—राम किसुन,—छकौड़िआ ने दाँत निपोर दिये।

—धत् !....साला नाम बिगाड़ता है !—धक्का देता हुआ केदरवा ने रिक्शे के बाहर सिर निकालकर कहा—राम किरसन !

—भगत का खेल है न ?—रसीद बैंगा को ख़ुश करने की गरज़ से बोला।

—अरे, भगत-सगत सब गये भाड़ में ! सब ढोंग है, तुम्हारा हो या हमारा !

—पहले इधर आ, मेरे राज्जा !—बैंगा चिल्लाता हुआ पिलुआ के रिक्शे पर कूद गया। पिलुआ को गोद में उसने बड़े ज़ोरों से चिपकाया और फिर उसे चूम लिया—अब गर्मी आयी !

सब-के-सब हँस पड़े।

पिलुआ देखने में सुन्दर था, रङ्ग साफ़, कटा-छँटा नाक-नक्शा, बड़े-बड़े बाल और उसपर गाल एकदम चिकने ! पिलुआ को ताड़ी पिलाना, बीड़ी धुकवाना, सिनेमा

दिखाना यह सब बेंगा का काम था। दोनों में खूब पटती थी।

पीछे से अकबर बोला—जोड़ी मिल गयी। अब हो जाय गवनई, दोस्त!

—हाँ, हाँ, हाँ! जरूर!—बेंगा ने पिलुआ के मुँह में मुँह फिर सटाया।

—हट बे, तेरा मुँह महकता है!

—आय-हाय!—बेंगा ने पिलुआ को फिर बाहों में दबोचा—तेरे मुँह में अमरित और मेरे मुँह में बदबू! —और बेंगा ने उसकी जाँघ पर एक हाथ जमाया—गाता क्यों नहीं, रे?

—साला मारता क्यों है?

—मारता नहीं, पियार करता हूँ!—बेंगा के मुँह की गन्ध पिलुआ को फक्-फक् लग रही थी।

—अरे, वाह, रे, वाह!—छकौड़िया चिल्लाया।

—हाय रे पियार! हाय, हाय, रे! जोड़ी बनी रहे! —मोहसिन ताली पीटता हुआ बोल उठा।

तभी पीछे से हरखू गोल में चिल्ला-चिल्लाकर बोलता हुआ घुसा—मउग हौ तुम सब, मउग!....खाली देह दिखावत हौ! घर ही में ताकत दिखाबो?—रुककर-मउग सब!....आज के जवान छोकड़े कौनो अरथ के नाहीं हैं! —घृणा-रोष से हरखू का बूढ़ा शरीर काँप रहा था।

—का हौ, काका? भवा का?—केदरवा लपका।

—क्या हुआ, काका?

—का बात हौ, काका?—बेंगा रिक्शे से कूद पड़ा।

हरखू को तना हुआ देखकर दृश्य ही सहसा बदल गया। समस्त वातावरण में एक विचित्र रोष और क्षोभ छाने लगा। हरखू बीच में मुखिआ बना खड़ा था और कह रहा था—भवा का? ससुरे........तुम सब मउग हौ अउर का!....अरे, ऊ च उरहा है न?

—हाँ-हाँ!

—उँहें तो चँदवा मुँह से ख़ून बोकर दिहिस है!

—का कहत हौ, काका?

—अरे ससुरे! पुलिस ससुरी ऊ झापड़ जमायिस है कि चँदवै जानित होई। फटाक से ख़ून उगिल दिहिस है।

—काहे?

—काहे, काका?

—कौने बात पै?

—का पूछत हौ! कौनो बात का ठिकाना हौ? पुलिस ससुरी का राज है। चँदवा के पास बत्ती नाहीं रही। अउर का?

—एकरे वस्ते मार दिहिस?

—इ तो अतियाचार है!

—सरासर जातती!

—खचड़इ है पुलिस ससुरी की!

—तो अउर का, साला सीट फेंक देता, हवा निकाल देता, हाजत में ले जाता, लेकिन ससुरा जाड़े में मारता नहीं तो का बिगड़ जाता?

—साले की चमड़ी उधेड़ लूँगा, काका! तुम कौन चिन्ता में हो!—बेंगा तैश में आने लगा—बोटी-बोटी साले की अलग न छटका दी, तो अपनी माय का मैं असल पूत नहीं!

—अरे, मुछैला रहा का, काका?—छकौड़िआ ने कहा।

—तो और कौन रहा होइ, रे?—बेंगा रुद्र रूप धारण कर चुका था—तुम सब कान खोल के सुन लो! साथ छोड़ोगे, तो अपनी महतारी की क़सम! हाँ, सुन लो, महतारी की कसम!

—हाँ-हाँ, महतारी की कसम!—केदरवा गुस्से में बोला।

—तुरन्त चलो, बेंगा!—मोहसिन ने ज़ोर से कहा।

—अभी चलो!

—हाँ हाँ, चलो!—चारों ओर से 'चलो' की ध्वनि गूँज उठी।

और बेंगा ने अपने हाथों विद्रोह का झंडा लिया। समस्त वातावरण विद्रोह के चक्रव्यूह से घिर गया। चलने की तैयारियाँ होने लगीं। सभी अपना-अपना रिक्शा सँभालने लगे। खून में गर्मी उबल पड़ी, रक्त का प्रवाह

(शेष पृष्ठ ६६ पर)

नानक सिंह

इनामी कहानी
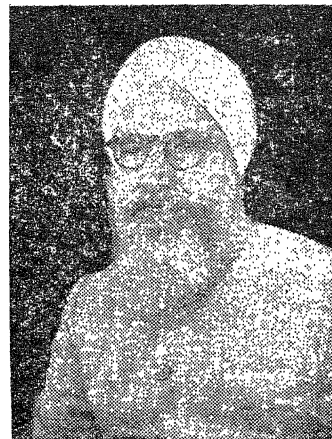
बम्बई मेल अस्सी मील घण्टे की रफ़्तार से उड़ी जा रही थी, और इससे भी कहीं ज़्यादा तेज़ी के साथ, शायद सौ या डेढ़ सौ मील की रफ़्तार से इस समय प्रमोदजी के विचारों की गाड़ी चली जा रही थी। वह फर्स्ट क्लास में यात्रा कर रहे थे।

हमारे देश के किसी साहित्यकार का इतने ऊँचे दर्जे में यात्रा करना यद्यपि मानने-योग्य बात नहीं है, पर न मानी जानेवाली बातें भी वहाँ आकर मानने-योग्य हो जाती हैं, जहाँ आदमी पर लक्ष्मी की भरपूर कृपा-दृष्टि हो।

प्रमोदजी एक उच्च श्रेणी के साहित्यकार माने जाते हैं, वहाँ एक शक्तिशाली व्यापारी भी, व्यापार भी कोई साधारण कोटि का नहीं, बड़ी विशिष्ट कोटि का करते हैं। प्रकट रूप से उन्होंने यद्यपि कोई पेशावराना झंझट नहीं पाला है, पर कुछेक समझदार और व्यापारी बुद्धिवाले मित्रों के सहयोग से उनका कारोबार बढ़ा-चढ़ा हुआ है। बटवारे के बाद जहाँ असंख्य जनों के लिए जीविका का प्रश्न एक भारी उलझन बन गया है, वहाँ इसी बटवारे की कृपा से प्रमोदजी के घर में खूब लहर-बहर हो गयी है। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की सीमा पर गुप्त रूप से जो व्यापार हो रहा है, उसी व्यापार में यह भी बहती गंगा में हाथ धो रहे हैं। सच पूछिए, तो यह-सब उनकी साहित्य-कारिता की ही कृपा है, हरेक विभाग के लोगों से उनका मेल-मिलाप है, इसी लिए इस अवैध वाणिज्य में उन्हें कोई कठिनाई नहीं पड़ती।

इन दिनों पाकिस्तान में करेंसी के दाम काफ़ी गिरे हुए होने के कारण सोना-चाँदी का बिज़िनेस कुछ लोगों की आमदनी का बड़ा अच्छा वसीला बना हुआ है, और प्रमोदजी महाशय भी आजकल इसी काम में वारे-न्यारे कर रहे हैं। इस काम के लिए उनको बहुधा दिल्ली, बम्बई आदि बड़े नगरों की यात्रा करनी पड़ती है। पाकिस्तान से जो सोना इधर बेचने के लिए लाया जाता है, उसके विक्रय के लिए दिल्ली बम्बई, या कलकत्ता अच्छे ठिकाने हैं। पहले पहल तो अमृतसर में ही यह व्यापार काफ़ी चलता था, पर इन दिनों कस्टम और सी० आई० डी० का विभाग बहुत सावधान है, इसलिए इस प्रकार के माल की खपत के लिए सयाने व्यापारियों को अम्बाला की सीमाएँ पार करने के लिए विवश होना पड़ता है।

हाँ, आज हमारे प्रमोदजी एक नहीं, दो कार्यों के लिए दिल्ली जा रहे हैं, एक तो आठ-दस हज़ार का सोना बेचने के लिए और दूसरे दिल्ली में होनेवाले एक साहित्य-समारोह की शोभा बढ़ाने। साहित्य समारोहों में आरम्भ से ही उनका बड़ा अनुराग है। सच पूछिए तो प्रमोदजी की उपस्थिति के बिना कोई समारोह ही नहीं होता। और फिर इस बार तो वहाँ बड़ी शानदार कहानी-प्रतियोगिता भी होने जा रही है, जिसमें प्रथम पुरस्कार पाँच सौ का, द्वितीय तीन सौ का और तृतीय दो सौ का रखा गया है। प्रमोदजी को शत-प्रति-शत इस बात का विश्वास है कि प्रथम पुरस्कार इस बार उन्हीं का है।

यद्यपि ऐसे धनी-मानी महापुरुष के लिए पाँच-सात सौ का कुछ भी मूल्य नहीं है, जबकि एक ही चक्कर में हज़ारों के वारे-न्यारे करने का गुर उनके हाथों में है, फिर भी इनाम में एक विशेष प्रकार का ही नशा होता है। तभी तो समझदारों ने कहा है, इनाम की तो जूती भी कम नहीं होती!

फ़र्स्ट क्लास की यात्रा करना प्रमोदजी के लिए शायद इसलिए ज़रूरी है कि इस दर्जे में बैठे यात्री पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता।

इस समय जब गाड़ी पूरे वेग से स्टेशन-पर-स्टेशन लाँघती जा रही थी, प्रमोदजी अपनी गुदगुदी सीट पर पीठ के सहारे बैठे हुए हस्तलिखित पन्नों की एक गड्डी की समीक्षा कर रहे थे। कहानी, जिसे वह पूरे तीन बार लिखकर लाये थे, अभी भी शायद उसमें कोई त्रुटि रह गयी हो, इस विचार से वह उसको बड़ी सावधानी से पढ़ते हुए साथ-साथ कुछ घटा-बढ़ा भी रहे थे, और ज्यों-ज्यों वह उसे पढ़ते, उनका उत्साह बढ़ता जा रहा था। इतनी मर्मस्पर्शी और ऐसी समाज-सुधारक कहानी! एक-एक पंक्ति में जैसे हृदय उड़ेल दिया गया हो। वह प्रसन्नता से झूमते हुए सोच रहे थे—कौन ऐसा कलाकार माँ ने पैदा किया है, जो इसके जोड़ के चीज़ लिख सकेगा! क्या पुरस्कार प्रतियोगिता में किसी दूसरे की कहानी इसके सामने टिक सकती है?....बस, प्रथम पुरस्कार निस्सन्देह मेरा है!

इस समय वह कहानी का केवल संशोधन ही नहीं कर रहे थे, उसमें से एक अजीब-सा स्वाद-सा भी प्राप्त कर रहे थे, और इस भाव-विभोर दशा में उनको संशोधन करने का ध्यान ही नहीं रहा था। वह इस समय कहानी का उत्तरार्द्ध कुछ ऊँचे स्वर में पढ़ने लगे थे, ऊँचे स्वर में इसलिए भी पढ़ रहे थे, क्योंकि कम्पार्टमेंण्ट में और दूसरी कोई सवारी नहीं थी। एक कोई फ़ौजी अफ़सर-सा अमृतसे चढ़ा था, पर वह जालन्धर स्टेशन पर ही उतर गया था। उच्च स्वर में पढ़ने का एक दूसरा कारण शायद यह भी था कि ऐसे एक प्रकार से रिहर्सल भी हो जायगा।

प्रमोदजी इस समय एक अदा और जोश में पढ़ते जा रहे थे या यों कहिए, रिहर्सल कर रहे थेः—

अदालत का कमरा दर्शकों की भीड़ से खचाखच भरा हुआ था। अपराधी को उपस्थित किया गया, जिसपर चोरी का अभियोग था। एक दुबला-सा जवान जिसके दोनों हाथ हथकड़ियों में जकड़े हुए थे। दर्शकों की नज़रें चोर पर इस तरह से गड़ गयी थीं, जैसे किसी मनोरंजक नाटक के नायक पर। सभी एक दूसरे के कानों में कह रहे थे, शक्ल-सूरत से कितना सभ्य मालूम पड़ता है....बात-चीत से पढ़ा-लिखा जान पड़ता है।....चेहरा देखकर कोई कह सकता है कि इसने एक शरीफ़ आदमी के घर में सेंध लगाकर....फिर देखिए, बेईमान ने चोरी भी इस सफ़ाई से की कि घर के लोग पास में ही सोये हुए थे, और किसी को कानोंकान खबर न हुई।....भई, साइंस का युग है न! चोरियाँ भी आजकल साइंटिफिक तरीक़ों से होती हैं।....लोग क्लोरोफार्म सुँघाकर घरवालों को बेहोश कर देते हैं।....

इधर ये कानाफूसियाँ हो रही थीं और उधर इस्तगासे का वकील चोर से जिरह कर रहा था।

—क्या कहा, तेरी शिक्षा बी० ए० तक है?

—हाँ महाशय, बी० ए० किये हुए मुझे छै वर्ष हो गए हैं।

—और चोरी करते हुए कितने वर्ष?

—चोरी का पेशा मैंने थोड़े ही समय से अख़्तियार किया है, महाशय।

—और इन बीच के सालों में क्या करता रहा?

—वे साल मैंने नौकरी की तलाश में गुज़ारे हैं।

—तो फिर तुझे कोई नौकरी न मिली ?

—मिली तो कई, लेकिन वे मुझे पसन्द न आयीं।

—क्या मतलब ?

—मतलब यह कि चोरों के पास नौकरी करना मुझे मंजूर नहीं था। मैं चाहता था! कोई ईमानदारी की नौकरी मिले। प्रथम तो जहाँ भी कहीं कोई स्थान खाली होता, वहाँ घूस और सिफ़ारिश से ही सफलता मिल सकती थी। पर मैं सिद्धान्तरूप में इसके विरुद्ध था। और अगर किसी सेठ-साहूकार के पास नौकरी मिलती, तो वहाँ मुझे चोरों-वाला काम करने के लिए विविश किया जाता था।

—चोरोंवाला काम ?

—हाँ महाशय, ब्लैक करना, इन्कमटैक्स बचाने के लिए जाली बही-खाता रखना, और इसी इरह के दूसरे कितने ही काम। पर मैं एक ईमानदार आदमी बनकर जीना चाहता था।

दर्शकों का ध्यान इस अनोखे चोर की आश्चर्यजनक बातों की ओर पूरी तरह से खिंचा हुआ था। अदालत के कमरे में बिल्कुल सन्नाटा था, जिसको इस्तग़ासे के वकील और चोर का वार्तालाप ही तोड़ रहा था। वकील ने फिर सवाल करना शुरू किया।

—और आख़िर तुझे ईमानदारी का काम मिल ही गया, जिसके लिए तूने परसों रात सेठ बिशन दास के घर में से दस हज़ार की रक़म वेतन के रूप में वसूल की। क्यों, ठीक है ?

—आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, महाशय! मेरे लिए सिवाय इस काम के और दूसरा कोई ईमानदारी का काम नहीं रह गया था। यदि आपको मेरी बात पर विश्वास न हो, तो वह आपके सामने बैठे हैं सेठ साहब, इनसे पूछकर इतमीनान कर लीज़िए।

सब उपस्थित दर्शकों का ध्यान कुर्सी पर बैठे हुए एक तोंदधारी सज्जन की ओर खिंच गया।

—क्यों, सेठ साहब!—वकील ने मुद्दई को सम्बोधित किया—इस बारे में आप कुछ कहना चाहते हैं ?

क्रोध से होंठों को फड़फड़ाते हुए सेठजी ने उत्तर दिया—बकवास करता है हरामज़ादा! चोर तो है ही, चतुर भी बनता है!

वकील और जज दोनों ने अपराधी की ओर कुपित दृष्टि से ताका। पर अपराधी ने अपने उसी निर्भय स्वर में सेठ से कहना शुरू किया—नाराज़ मत होइए, सेठ साहब! मैं सादर निवेदन करता हूँ कि बतलाइए पिछले महीने मैंने लगातार कई दिनों तक आपके लक्ष्मी-निवास पर उपस्थित नहीं होता रहा हूँ ? मैंने यह प्रार्थना नहीं की थी कि मेरे बीवी-बच्चे भूखों मर रहे हैं, ईश्वर के लिए मुझे क्लर्क का काम दे दीजिए, जिसके बारे में आपने स्वयं ही कुछ दिन पहले समाचार-पत्रों में इश्तहार दिया था ? और अन्त में आपको मुझपर दया आ ही गयी थी। आपने मुझे मुनीम रख लिया था। और फिर आपको याद है, आपने मेरे ज़िम्मे कौन-सा काम सौंपा था ? नक़ली बही-खाता तैयार करने का, क्योंकि उन दिनों इन्कम-टैक्स विभाग आपका पीछा कर रहा था, जिसका क्लेम था कि आपने कई लाख रुपये के इन्कमटैक्स की चोरी की थी।। और फिर जब मैंने इस काम से इन्कार कर दिया था, तो आप एकदम क्रोध से आगबबूला हो उठे थे। आपने मुझे अपमानित करके, धक्के दे-देकर अपने दफ़्तर से बाहर निकाला था। क्या उस दशा में मेरी ईमानदारी का यह तक़ाज़ा नहीं था कि आप-सरीखे महाचोर को अदालत में उपस्थित करके आपकी करतूतों का भंडा-फोड़ करूँ ? दूसरे किसी तरीके से तो मैं आपको यहाँ तक ला नहीं सकता था। आख़िर मैंने निर्णय किया कि यही ढंग ठीक होगा आपको अदालत में खींच लाने का। और फिर इस ढंग से मेरे बाल-बच्चों का पेट भी भरेगा, और बड़े-बड़े ब्लैक करके जो सरमाया आपने इकट्ठा किया है, उसे भी ज़रा हवा लगेगी।

—बिल्कुल झूठ। बिल्कुल बकवास!—सेठ साहब कुर्सी पर से उठते हुए चिल्ला उठे—यह बदमाश, दो कौड़ी का आदमी मेरा अपमान कर रहा है, महाशय! —और फिर उन्होंने जज को सम्बोधित किया—महाशय! इस तरह से एक शरीफ़ आदमी का अपमान करनेवाले को क़ानून की ओर से चोरी के अतिरिक्त कोई दूसरा भी

दण्ड मिलना चाहिए। श्रीमान् को पता है, मैं डेढ़ हज़ार रुपया इन्कम टैक्स देता हूँ। मैं शहर का प्रतिष्ठित आदमी हूँ।

जज ने एक कठोर दृष्टि से अपराधी की ओर देखा। इस्तग़ासे के वकील और प्राज़ीक्यूटर की दृष्टि में भी रोष था। पर अपराधी पर इसका कोई प्रभाव न हुआ, वह उसी उत्साह में कहता गया—डेढ़ हज़ार? पर जितना रुपया आपने पिछले साल ब्लैक से कमाया था, उसके अनुसार तो आपको कई लाख रुपया टैक्स देना चाहिए?

—ख़ामोश!—जज ने ऊँचे स्वर में ललकारा—कानून इजाज़त नहीं देता कि बग़ैर किसी सबूत के एक भले आदमी पर इल्ज़ाम लगाया जाये। अपनी बात को टू दि प्वाइंट रखो, और वह भी जिरह के जवाब में।

कहानी के इस अंश पर पहुँचकर प्रमोदजी की आँखों में नींद की ख़ुमारी चढ़ने लगी। उन्हें अभी दो-ढाई पृष्ठ पढ़ने थे, पर निद्रा के एक झोंके ने उनको इस समय कुछ शिथिल-सा कर दिया। बचे हुए पृष्ठ उन्होंने ऊँचे स्वर में नहीं, बल्कि मौन रहकर ही पढ़े और वह भी बड़ी सरसरी नज़र से। एक बार फिर उनका मन इस सफल कृति पर मस्त हो उठा। कहानी पहले ही उनकी आशा से अधिक सफल बन गयी थी, पर इस बार के संशोधन ने तो जैसे सोने में सोहागा ही भर दिया था। एक बार फिर उनके अन्तःकरण से पुकार आयी, बस, अब प्रथम पुरस्कार मेरा है, शत-प्रतिशत मेरा ही है! कोई माई का लाल इसकी तुलना में टिक नहीं सकेगा!

उनको दो-एक जमुहाइयाँ आयीं और फिर एक अँगड़ाई। पास पड़े हुए अटैची केस का ढक्कन उन्होंने खोला और सब पृष्ठ तहाकर उसमें डाल दिये। अटैची में पड़े एक ठोस डिब्बे को उन्होंने एक बार जाँचा और फिर ढक्कन बन्द करके और उसको सिर के नीचे रखकर सीट पर फैल गये।

लेटे हुए कुछ समय तक तो उसी इनामी कहानी का प्लॉट उनके मस्तिष्क में घूमता रहा, और फिर थोड़ी ही देर में जोर-जोर से खर्राटे भरने लगे।

और जब थोड़ी देर के बाद उनकी आँख खुली, तो उनके सिर में बड़े अजीब-से चक्कर आ रहे थे। समय जानने के लिए जब रिस्टवॉच की तरफ़ देखा, तो कलाई सूनी थी।

हैं! घड़ी? सोचते हुए जब उन्होंने इधर-उधर देखा, तो सिर के नीचे का वह अटैचीकेस भी ग़ायब था।

बौखलाये हुए उठकर इधर-उधर चक्कर काटने लगे। सिर अभी तक घूम रहा था। इसी दशा में उनका हाथ जंजीर तक जा पहुँचा।

गाड़ी रुक गयी। थोड़े ही समय में गार्ड और कुछ अन्य दर्शक एकत्र हो गये। प्रमोद महाशय के चेहरे पर बड़ी जल्दी-जल्दी रंग बदल रहे थे। उन्होंने सारी घटना गार्ड को बतलायी। पुलीस का एक सिपाही भी साथ में था।

—कोई दूसरी सवारी भी डिब्बे में चढ़ी थी!—गार्ड ने पूछा।

—जी नहीं,—प्रमोदजी ने उत्तर दिया, पर उनको कुछ ऐसा आभास हो रहा था कि जैसे थोड़ी ही देर पहले उन्होंने किसी सफ़ेदपोश को गाड़ी में चढ़ते हुए देखा था। उस समय वह शायद अर्द्धनिद्रितावस्था में थे।

गार्ड ने फिर पूछा—अच्छी तरह से याद कर लीजिए, शायद कोई आया हो।

—जी....जी....—तुतलाते हुए प्रमोदजी ने कहा—शायद....शायद कोई चढ़ा तो था, पर वह तो....वह तो कोई शरीफ़-सा आदमी जान पड़ता था, चोर तो नहीं मालूम पड़ता था।

—महाराज,—पास खड़ा सिपाही बोल उठा—आजकल शरीफ़ आदमी ही तो ज्यादातर चोरियाँ करते हैं।

इतने में एक यात्री भी बोल उठा—शरीफ़ आदमी भी बेचारे क्या करें, सरकार जो पढ़ा-पढ़ाकर बाबुओं के ढेर लगाये जा रही है! जिस बेचारे को नौकरी-रोज़गार नहीं मिलेगा, वह चोरी ही तो करेगा!

—जान पड़ता है,—गार्ड ने कहा—आपको बेहोश करके चोरी की गयी है। अभी तक यहाँ क्लोरोफार्म की गन्ध उड़ रही है।

—मेरा भी यही अनुमान है,—प्रमोदजी ने कहा—अभी तक मेरा सिर चक्कर खा रहा है।

—अच्छा, अटैची में क्या-क्या सामान था ?

—जी, उसमें एक कहानी की हस्तलिपि थी, जो मैं पुरस्कार-प्रतियोगिता के लिए लिखकर ले जा रहा था।

—अच्छा, और....

इस 'और' से आगे जैसे प्रमोदजी मूर्च्छित-से होने लगे, ज़रा सँभलकर बोले—और साथ में मेरे हाथ में रिस्टवॉच भी थी।

—रिस्टवॉच तो हाथ में थी न ! मैं पूछता हूँ कि अटैची में और क्या कुछ था ?

—और, जी,....और....और तो ऐसी कोई ख़ास चीज़ नहीं थी।—हकलाती हुई-सी आवाज़ में प्रमोदजी ने जवाब दिया।

—चलिए, अच्छे बचे !—सिपाही बोला—अगर वह बिस्तर और वह दूसरा सूटकेस चला जाता, तो कितनी बुरी बात होती !

—पर बड़े आश्चर्य की बात है,—गार्ड ने कहा—चोर क्या सिर्फ़ आपकी घड़ी, और बस कहानी लेने ही आया था।

प्रमोदजी को कोई उत्तर न सूझा।

—क्षमा कीजिएगा, महाशय,—गार्ड ने कुछ शिकायत-भरे स्वर में कहा—इतनी छोटी-सी चोरी के लिए आपको चेन नहीं खींचनी चाहिए थी। मेल-ट्रेन का थोड़ी देर के लिए भी रुक जाना बड़ा नुक़सान्देह होता है। अच्छा, अब अम्बाला पहुँचकर तफ़्तीश की जायगी।—इतना कहकर गार्ड नीचे उतर गया, और उसके पीछे-पीछे दूसरे लोग भी।

प्रमोदजी जैसे अपनी वाणिज्य-नौका जलधारा में बहाकर, अपनी सीट पर अचेत पड़ गये। इस समय उनके सिर को चक्कर आ रहे थे और इन चक्करों में केवल दो ही चीज़ें घूम रही थीं, इनामी कहानी की हस्तलिपि और अटैची में रखा वह ठोस डिब्बा। गाड़ी फुल-स्पीड पर चली जा रही थी।

पंजाबी से अनु० तिलकराज चोपड़ा

राह में

(६१वें पृष्ठ का शेषांश)

तेज़ हो उठा। आज कुछ होकर ही रहेगा, निश्चय ही आज कुछ होकर रहेगा !

इसी समय सिनेमा छूटने की घंटी टनटना उठी, टन्-टन् टन्-टन्....न्....न्....न्....न्....

और तभी फटाफट-फटाफट दरवाज़े खुल पड़े। लोगों का ताँता बँध गया। मिनट-भर में सड़क पर आदमियों की बाढ़ उमड़ पड़ी, काले-काले अनगिनत सिर दिखने लगे।

जैसे नाटक के बीच में ही सहसा कुछ घटित हो गया हो, अप्रत्याशित, सर्वथा अयाचित, मानो बीच ही में यवनिका-पतन हो गया हो !....और....

देखते-देखते युद्ध-भूमि का शौर्य-बल, हुङ्कार और रक्त-प्रवाह का वेग मछली बाज़ार में परिवर्तित हो गया।....

—साहबगंज, बाबू !....

— स्टेशन रोड....

—सूजागंज, भैय्या !....

—आदमपुर....

— छः आना....काली थान....

— पाँच आना....पाँच आना....काली थान

—अबे ! साला रेट बिगाड़ता है ?

—रेट-फेट का होता है, रे ?

और एक रिक्शा दूसरे रिक्शे की पीठ पर सवार। तनिक ब्रेक लगने में देर हुई, तो खट्-खट्-खटाक् ! पूरी लाइन में वहाँ से यहाँ तक टक्कर....खटा-खट्-खटा-खट्-खटाक्...

तेजनारायण जुबिली कालेज,
भागलपुर।

एक मिट्टी दो रंग

ओ' हेनरी

एक ही मकान के ऊपर-नीचे की कोठरियों में श्रीमती फिंक और श्रीमती केसिडी रहती थीं। साथ रहने से उन दोनों में दोस्ती हो गयी थी। एक दिन श्रीमती फिंक जब अपनी सहेली श्रीमती केसिडी के पास पहुँचीं, तो उस समय वह श्रृङ्गार कर रही थीं। श्रृङ्गार के बाद गर्व प्रदर्शन करते हुए श्रीमती केसिडी ने पूछा—क्यों, मैं अच्छी लग रही हूँ न आज?

श्रीमती फिंक ने देखा, सहेली की मूँदी आँखों के चारों ओर हरे, किंतु हलके निशान थे, नीचला ओंठ फट गया था, जहाँ से अब भी आहिस्ता-आहिस्ता खून बह रहा था और उनकी सुराहीनुमा गर्दन पर भी नाखून से नोचे जाने के निशान मौजूद थे।

उसी क्षण श्रीमती फिंक बोलीं—नहीं, मेरे पति महोदय ऐसा कभी नहीं कर सकते!

इतना सुनते ही श्रीमती केसिडी बोलीं—नहीं के क्या मानी? मैं तो इस विचार की हूँ कि हर पत्नी को अपने पति से हफ्ते में एक बार ज़रूर मार खानी चाहिए, क्योंकि दाम्पत्य प्रेम की कसौटी यही है। मुझे मेरे पति जेक ने अभी कल ही पीटा है और इस हफ्ते-भर उम्मीद है कि वह मुझे अपनी पुतलियों पर उठाये रखेगा और पाउडर, क्रीम तथा स्नो की कौन कहे, वह मुझे सिनेमा ले जायगा और मनपसंद कपड़ों से लाद देगा।

—चाहे कुछ भी हो जाय,—श्रीमती फिंक बोलीं—मगर मेरे पति कभी मुझपर हाथ नहीं उठायेंगे, इसलिए कि वह बड़े नेक हैं।

—सच तो यह है कि तुम मुझसे ईर्ष्या कर रही हो,—श्रीमती केसिडी व्यंग-सने शब्दों में बोलीं—असल में तुम्हारा पति बूढ़ा जो ठहरा। उसे अखबार और साहित्य-अध्ययन से छुट्टी मिले, तब तो प्यार करे! अरी, सच्ची बात क्यों छुपाती है?

—तुम ठीक कहती हो, लेकिन यह कभी संभव नहीं कि वह मुझे पीटेंगे।

इतना सुनते ही श्रीमती केसिडी खिलखिलाकर हँस पड़ीं। फिर श्रीमती फिंक को अपनी कालर के नीचे का वह घाव दिखाया, जो भरा नहीं था। घाव देखते ही श्रीमती फिंक का चेहरा सफेद हो गया और फिर ईर्ष्या की रेखाएँ उभर आयीं। वह बोलीं—अच्छा, बताओ, चोट तुम्हें लगती है या नहीं?

—लगती है,—श्रीमती केसिडी खुशी बिखेरती हुई बोलीं—लेकिन जब भी जेक मुझे दोनों हाथों से पीटता है, तो इसकी क्या कीमत अदा करता है जानती हो? उसके एक हाथ में होते हैं बहुमूल्य रेशमी कपड़े और दूसरे में मन लुभानेवाले श्रृंगार के सामन। कहो, कैसी रही क़ीमत?

—लेकिन क्यों पीटता है वह तुम्हें?—श्रीमती फिंक उत्सुक होकर पूछने लगीं।

—कैसी पगली है तू ? यह भी नहीं मालूम तुझे ? वह बार से जब चढ़ाकर आता है, तभी ऐसी हरकत करता है।

—मगर उसके ऐसा करने का कोई कारण तो होगा अवश्य ?

—इसलिए कि मैं उसकी रखेल हूँ। जब वह खूब पीये होता है, तो उस समय हाथ उठाने के लिए मेरे सिवा और दूसरी औरत कहाँ से मिलती ? और मुझे जब भी किसी चीज की ज़रूरत महसूस होती है, मैं वैसी हरकत कर बैठती हूँ कि वह मुझपर हाथ उठा दे। यही कल रात में हुआ। रेशमी कपड़े की मुझे जरूरत थी और आज देखना कि वह मेरे लिए रेशमी कपड़े लेकर आता है या नहीं ? चाहो तो बाज़ी लगा सकती हो। न हो, रही आइसक्रीम की ही बाज़ी, क्यों ?

श्रीमती फिंक थोड़ी देर के लिए विचार में डूब गयीं। बाद में फिर उतरे स्वर में बोलीं—वह मुझे नहीं पीटता। इसी कारण न तो कभी उसके साथ सिनेमा ही देख पाती हूँ और न सैर को ही साथ ले जाता है मुझे कभी। जो चीज़ माँगती हूँ, तुरंत लाकर दे देता है। सचमुच, इसमें लुत्फ कतई नहीं।

इतना सुनना था कि श्रीमती फिंक की कमर से श्रीमती केसिडी जा लिपटीं, फिर कहने लगीं—तुम बड़ी अभागिन हो। जेक-सा पति सबको कैसे मिलेगा ? सभी स्त्रियाँ वैसा पति पाने लगें, तो उनके विवाह आनन्दमय न हो जायें ! हर दुखिया यही चाहती है कि उसका पति उसे मारे-पीटे और इच्छित वस्तुएँ लाकर दे, जैसे, चुम्बन, चाकलेट, टाफ़ी, आदि।

तभी दरवाजा खुला और मिस्टर जेक ने हाथ में एक सुन्दर बंडल लिये हुए प्रवेश किया। श्रीमती केसिडी उन्हें देखते ही आनन्द-विभोर होकर लिपट गयीं।

हाथ का बंडल मिस्टर जेक ने टेबुल पर रखा, फिर केसिडी को अपने अंक में भरते हुए कहा—यह रहे सिनेमा के टिकट !....ओह, श्रीमती फिंक ? नमस्ते ! माफ़ कीजिएगा, मैंने आपको देखा नहीं। हाँ, मिस्टर मार्टिन अच्छे तो हैं ?

—मजे में हैं,—श्रीमती फिंक बोलीं—अब मैं चलती हूँ, क्योंकि मार्टिन के लंच का समय हो गया है।—और दरवाज़े तक बिदा देने के लिए आयी मिसेज केसिडी से उन्होंने फिर कहा—मैं तुम्हारे उपाय को कल काम में लाकर देखती हूँ।

और श्रीमती फिंक जब अपने कमरे में पहुँची, तो उनका कलेजा बिना किसी कारण के फटा जा रहा था। सच तो यह है कि औरत जाति को आँसू बहाने के लिए कोई ख़ास कारण ढूँढ़ने की जरूरत कभी नहीं पड़ती। वह सोचने लगीं, मेरा मार्टिन केसिडी के पति मिस्टर जेक से किसी भी चीज में उन्नीस नहीं। वह भले ही मुझे नहीं पीटता, मगर मेरी चिंता कम नहीं करता। वह कभी नहीं लड़ता। घर पहुँचा, चुपचाप खाना खा लिया और जुट गया अध्ययन में। हलाँकि वह नेक इन्सान है, मगर उसे कहाँ मालूम कि पत्नी किस चीज़ की भूखी है ?....और वह डूब गयीं विचारों में।

मिस्टर मार्टिन ठीक सात बजे आये। श्रीमती फिंक खाना परोसकर लायीं और पूछने लगीं—खाना अच्छा बना है न ?

—हुइ ?—मिस्टर मार्टिन हँसने लगे और खाना खाकर अपने अध्ययन कक्ष में चले गये।

*

दूसरा दिन इतवार था। श्रीमती फिंक सुबह ही अपनी सहेली श्रीमती केसिडी के पास जा पहुँचीं। श्रीमती केसिडी रेशमी कपड़ों में सोलह वर्षीया बालिका के सदृश लग रही थीं। खुशी से आँखें चमक रही थीं और मुस्कान ओंठों पर खेल रही थी। दम्पति इतवार के दिन का प्रोग्राम बना रहे थे। श्रीमती फिंक के मन में उन्हें देखते ही ईर्ष्या की एक लहर मचल उठी। वह वापस अपने कमरे में चली आयीं और फुसफुसाने लगीं, कितने सुखी हैं वे ! कैसा आनन्दमय दाम्पत्य प्रेम है ! ऐसा मालूम पड़ता है, मानो सुख का ख़जाना केसिडी पा गयी हो। इसके मानी क्या हुए ? यही न कि अन्य पति भी अपनी पत्नी की मरम्मत में कसर नहीं रखते और ऐसा हर
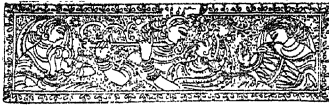
परिवार आनन्द के सागर में नहाता रहता है। ठीक है, मैं उसे दिखा दूँगी!

हफ्ते-भर का कपड़ा बाल्टी में साफ करने के लिए रखा हुआ था। मार्टिन बेचारे अपने अध्ययन-कक्ष में साहित्य पढ़ने में लीन थे। उन्हें देख श्रीमती फिंक ने अपने-आपसे कहा, मुझे अगर वह नहीं पीटेगा, तो मैं कोई ऐसी तरकीब करूँगी कि उसे बाध्य होकर मुझपर अपना पुरुषार्थ लादना पड़े।

और मिस्टर मार्टिन थे कि रसोई घर से मीठी-मीठी पकवानों की आ रही सुगंध का मजा चखते हुए साहित्यिक संसार में भटक रहे थे। पत्नी को पीटने की कल्पना उनके मन में स्वप्न में भी नहीं आ सकती थी।

और तभी ऊपरी मंजिल से श्रीमती केसिडी के हँसने की आवाज आयी। श्रीमती फिंक कपड़ा धोने की तैयारी कर रही थीं। उन्हें लगा, जैसे उनपर व्यंग कसा गया है। और इस विचार के उठते ही श्रीमती फिंक आपे से बाहर होकर अपने पति के कमरे में जा पहुँचीं। बोलीं—हुहः! मैं कोई धोबन हूँ, जो इन सारे कपड़ों को मैं ही धोऊँ? एक मैं हूँ कि कपड़ा पीटते-पीटते परेशान हुई जा रही हूँ और एक तुम हो कि बेफिक्र बैठे सिगरेट धूक रहे हो! काहिल कहीं के! तुम इन्सान हो या हैवान?

पत्नी-द्वारा अचानक किये गये इन तीव्र प्रहारों से मार्टिन को बड़ा अचंभा हुआ। हाथ के अखबार को एक ओर सरकार वह चुपचाप पत्नी को देखने लगे।

उन्हें यों चुप्पी साधे देख श्रीमती फिंक मन-ही-मन सोचने लगीं, क्या इतने तीखे व्यंग को भी यह पी जायेगा? क्या पीटे जाने से लिए यही कदम काफी नहीं है?

मार्टिन जब इतने पर भी एक बुत की तरह बन रहे, तो श्रीमती फिंक उन्हें एक घूसा भी जमा बैठीं।

मार्टिन के आश्चर्य की सीमा न रही। वह तत्क्षण खड़े हो गये। श्रीमती फिंक ने आव देखा न ताव और धर दबायी पति की गर्दन, फिर मार खाने की आशा में उनकी आँखें आप ही बन्द हो गयीं।

उस समय ऊपर की मंज़िल पर श्रीमती केसिडी शृंगार में लगी थीं। उन्होंने सुना कि नीचे कोई झगड़ रहा है। जेक आश्चर्यचकित होकर बोले—मार्टिन और उनकी पत्नी के बीच झगड़ा तो नहीं हुआ कभी। अच्छा, मैं नीचे चलकर देखता हूँ कि बात आख़िर क्या है?

श्रीमती केसिडी की आँखों में एक ज्योति चमक उठी। वह बोलीं—ठहरो, मैं खुद देख आती हूँ जाकर कि बात क्या है आख़िर?

श्रीमती केसिडी दौड़ती हुई ज़ीने उतर गयीं। श्रीमती फिंक उन्हें देखते ही उनसे लिपट गयीं।

—मार्टिन ने पीटा है न?—श्रीमती केसिडी ने प्रसन्नता ज़ाहिर करते हुए पूछा।

श्रीमती फिंक चुप। उन्हें रो देने की इच्छा हो रही थी। दूसरे क्षण वह सचमुच फूट-फूटकर रोने लगीं। श्रीमती फिंक के सिर पर प्यार से हाथ फेरती हुई श्रीमती केसिडी ने पूछा—अरी, बोलती क्यों नहीं। उन्होंने तुझे पीटा है या नहीं?—फिर स्वयं उनके शरीर को ग़ौर से देखा, तो कहीं भी मार के निशान नज़र नहीं आये। श्रीमती फिंक की आँखों में मगर जो झड़ी लगी थी, वह बन्द नहीं हो पा रही थी और चेहरे पर सफ़ेदी पुत गयी थी।

बाद में श्रीमती फिंक श्रीमती केसिडी के उभरे उरोजों पर अपना सिर टेक हिचकियाँ लेती हुई कहने लगीं—नहीं-नहीं, दरवाज़ा अभी मत खोलो! तुझे कसम है मेरी, किसी से मत कहना यह सब! मार्टिन ने मुझे नहीं मारा, उल्टे वहाँ नल पर हफ्ते-भर का कपड़ा स्वयं धो रहा है।

अंग्रेजी से अनु० देवेन्द्र बिसुनपुरी

यह हर्ष का विषय है कि इस बार बहस में आप-सब गहरी दिलचस्पी ले रहे हैं। हमारे पास बड़ी संख्या में इस विषय पर मन्तव्य आ रहे हैं, और यह भी प्रसन्नता की बात है कि अब आप हमारे निवेदन पर ध्यान दे अपना मन्तव्य कम-से-कम शब्दों में लिख भेज रहे हैं। यहाँ कुछ और मन्तव्य प्रकाशित हो रहे हैं। शेष क्रम से प्रकाशित होंगे।

क्या कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है ?

सोमदेव (दरभंगा)

'क्या कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है ?' मुझे तो इस प्रश्न में ही ख़ामी नज़र आ रही है। कहानी का उद्देश्य यदि मनोरंजन ही हुआ होता, तो प्रेमचन्द्र, चेख़व, मोपाँसा, ओ' हेनरी आदि विश्वकथा साहित्य के प्रकाश-स्तंभों ने कहानियों के पीछे सर नहीं खपाये होते; भाड़ की दूकान खोल लेते या फिर कठपुतलियाँ ही नचाया करते, काफी मनोरंजन हो जाता जन-गण-मन का। लेकिन आज तक उच्च कथाकरों ने कथा-निर्माण के साथ-साथ पाठक-निर्माण के लिए भी तपस्या की है। इसकी क्या जरूरत पड़ी थी उन्हें ? क्या मज़ा मिला था दरिद्र जीवन बिताते हुए, दवा की कमी में जान तक दे देने की ? आज भी हिन्दी के उच्चकोटि के कथाशिल्पी कुछ इसी तरह की ज़िन्दगी बिता रहे हैं। और कहानी लिखना किसी ख़ास ख़ानदान की बपौती भी नहीं, जो मान लेते, चलो भई, पाठक के दरवाज़े सर क्या खपा रहे हैं, मुफ्त की चाय पिलाकर आनेवाले दिन और ख़ानदान की खातिर आमदनी की साख जमा रहे हैं।

लेकिन यह कोई जरूरी नहीं कि आप अपनी कहानी सुनाते चले जायँ और मैं हूँ कि मन मारकर बगुले-सा ध्यान लगाये आपकी कभी न ख़त्म होनेवाली दास्तान सुनता चला जाऊँ, भले आप मेरे कानों में गरम सीसे ही क्यूँ ना ढाले जा रहे हों। मैं ऊब जाऊँगा। मैं ही क्या, कोई भी व्यक्ति जिसके मात्र दो कान हैं, ऊब जायगा। इसी ऊब से पैदा हुई विरक्ति (कथा के प्रति) को दूर करने के लिए कहानी के माध्यम को मनोरंजक

बनाने की आवश्यकता होती है। कहानी की भाषा मनोरंजक हो या नहीं, अथवा और कुछ हो, यह विषय विचारणीय है। यह नहीं कि कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन हो। कहानी तो बस कहानी है। पहले कहानियाँ ज़ुबान से सुनाया करते थे, एक-दूसरे को या फिर पीपल की घनी छाँह-तले भरी बैठकों में। आज कलम की कारसाज़ी है, जो मशीन के पंख पर छपी-छपायी कहानियाँ कहाँ-की-कहाँ चली जाती हैं और कहानी 'लिखना' भी एक कला हो गयी है। फिर भी जिस तरह खाने का उद्देश्य खाना, पहनने का उद्देश्य पहनना है; कहानी का उद्देश्य कहानी है। दिग्भ्रांत करनेवाली कहानी भी छपती ही है मनोरंजन के नाम पर पैसे की खातिर। चीन में साम्यवाद आने से पहले धनी लोग अफ़ीम की पिनक में मिठाइयाँ खाते जाते, खाते जाते और जब गले तक भी जगह नहीं रहती; जर्राह आते, कबूतर की पाँख हलक में डालकर कै करा जाते। पेट हल्का होता। अमीर पुनः अफीम चढ़ाते और स्वादिष्ट भोजनों को धीरे-धीरे कंठ से नीचे उतारने लगते। किन्तु इस तरह 'खाने के लिए जीना' तो भोजन का उद्देश्य नहीं, असमता-जन्य असभ्यता का परिणाम है। फिर 'मनोरजन के लिए कहानी' कहानी का उद्देश्य किस प्रकार हो सकता है, भले ही कहानी का आवरण (फार्म, लेखनविधि) मनोरंजक हो।

वैद्यनाथ प्रसाद (आरा)

'कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है', मुझे इस पंक्ति के 'केवल' शब्द पर आपत्ति है। मनोरंजन कर सकने का सामर्थ्य कहानी की सफलता के लिए आवश्यक है, क्योंकि कहानी का जन्म ही जनरंजन की आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए हुआ था। पहले कहानी कही जाती थी, इसलिए 'आगे क्या हुआ' की उत्सुकता श्रोता में बनाये रखना कहानीकार के लिए आवश्यक था। आज भी, जब कहानी लिखी जाने लगी है, इस उत्सुकता को बनाये रखना कहानीकार के लिए आवश्यक है। कविता दीपशिखा की लौ की तरह है, हम उसकी पुनरावृत्ति चाहते हैं; कहानी आगे बढ़नेवाली पगडंडी है, हम उसका विकास चाहते हैं, उसके पार्श्वगत दृश्यों और मधुरिमाओं का सतत परिवर्तनशील लोक देखते चलना चाहते हैं। इसलिए कहानी में यदि पकड़ रखने और अपनी गति के साथ चलाये चलने की शक्ति न हो, तो कहानी कहानी नहीं रह जाती और कुछ भले ही हो जाय।

किन्तु साथ ही कहानी साहित्य का एक रूप भी है, अपने विशिष्ट रूपाकार के द्वारा वह अनुभवों की अभिव्यक्ति का माध्यम भी है। उसका लक्ष्य निरुद्देश्य प्रसन्नता की सृष्टि करना ही नहीं। वह एक विशिष्ट कलारूप है, जिसकी अपनी मर्यादायें हैं। वह मनोरंजन कर सके, यह उसकी रूपगत आवश्यकता है; इस आवश्यकता की पूर्त्ति कर लेने पर वह सफल कहानी होगी, किन्तु वह समृद्ध तभी होगी, जब कहानीकार में नैतिक मूल्यों की सुतीव्र चेतना भी होगी, एक एक्स-रे की भाँति मानव-व्यक्तित्व के उलझे हुए ताने-बाने से नये और परिचित तथ्यों और मनोगतियों का उद्‌घाटन कर सकनेवाली आँखें भी होंगी। यह सही है कि किसी कहानी को लेकर उसमें इन तत्वों को यांत्रिक तरीक़े से अलग करके नहीं दिखाया जा सकता, वस्तुतः इन तत्वों का समाहार और संतुलन ही कहानी को समृद्ध बनाता है। इसलिए कहानी से प्राप्त होने वाले 'संतोष' को मनोरंजन नहीं कहा जा सकता, उसे एक विशेष प्रकार का मानसिक 'आनन्द' कहा जा सकता है। 'केवल मनोरंजन' तो सस्ते किस्म की जासूसी और मारपीट की कहानियाँ भी कर लेती हैं।

उदाहरण के लिए मन्टो की कहानी 'सरकण्डों के पीछे' लें। कहानीकार हमें एक ऐसे देश में ले जाता है, जो अपरिचित है और जिसकी हर वस्तु हमारे लिए उत्सुकता की वस्तु है। कुशल कथाकार की भाँति वह दृश्यांकन अथवा किसी तरह के भाष्य के लिए नहीं रुकता। यह कह कर 'क्या कीजिएगा जानकर, खैर इतना-सा जान लीजिए' वह उत्सुकता की वृद्धि भी करता चलता है। हैबत खाँ गाड़ियों की आवाज़ से चौंकता है, किन्तु हम भी उन आवाज़ों के मतलब से उतने ही अपरिचित हैं, जितनी कि उसकी प्रेमिका। कहानी मन को पकड़े रहती है, एक तरह का तनाव-सा बनता जाता है, जो जब मुक्त होता है, तो मानव-मन की एक भयानक किन्तु यथार्थ वृत्ति का नंगा

दर्शन होता है। हैबत खाँ की प्रेमिका की फूल-सी निर्मल निर्दोषिता और उसकी पत्नी की उद्दाम ईर्ष्या और क्रूरता, चित्र के दो विरोधी रंगों के समान विरोध और सन्तुलन पैदा करते हैं, जिससे कहानी सुगठित हो सकी है। कोई भी पाठक नहीं कह सकता कि इस कहानी से उसका 'केवल' मनोरंजन हुआ है', कहानी ने उसके मानसिक क्षितिज को विस्तृत और समृद्ध किया है और 'आनन्द' दिया है।

कहानी हमें केवल गुदगुदाती नहीं, संतोष देती है।

विजयमोहन सिंह (वाराणसी)

'कहानी' का नया अंक मिलते ही अचानक इस स्तम्भ पर निगाह पड़ी और ऐसे सहजप्राप्त अवसर को छोड़ नहीं सका।

यद्यपि आज के युग में व्यस्तता और अव्यवस्थित वेग-जन्य तिक्तता के कारण मनोरंजन की माँग और साथ ही आवश्यकता भी तेजी से बढ़ती जा रही है, किन्तु इसके विपरीत यह भी सत्य है कि उपयोगिता का आधार इतना निर्मम हो चला है कि कोई वस्तु न तो मात्र-मनोरंजन की दृष्टि से निर्मित की जाती है और न मात्र इस दृष्टि से उसका स्वागत होता है।

दूसरी ओर जिसे हम केवल मनोरंजन कह सकते हैं, वह मनोरंजक न होकर अश्लीलता और अनैतिकता की रंजक हो जाती हैं, यथा, सस्ते उपन्यास, सस्ती फिल्में, जूआ और छिछले नृत्य आदि। कोई भी सच्चे अर्थों में सही दिमाग रखनेवाला व्यक्ति ऐसे मनोरंजन को मनोरंजन के लिए प्राप्त करना नहीं चाहेगा।

इस प्रकार मनोरंजन की जो परिभाषा स्थिर होती है, उसकी परिधि में सुरुचि तो स्वतः आ जाती है और सुरुचि सदैव उपयोगी होती है।

'कहानी' का उद्गम जिस मनोरंजन की वास्तविकता को ध्यान में रखकर हुआ, वह भी केवल मनोरंजन न था, कहीं-कहीं वह उपदेशों की वाहक भी बनी। किन्तु आज की कहानी दोनों मार्गों की खामियों और खूबियों से परिचित है, उसने बीच के रास्ते को अपनाया है, यहीं 'टेकनिक' का प्रश्न उठता है, जिसने तब के मनोरंजन और अब के मनोरंजन में स्पष्ट विभाजन किया। पहले जो कहानियाँ कहीं सुनी जाती थीं, उनका श्रोता उनके प्रभाव को सीधा ग्रहण करता था, और उसका काम केवल सुनना था। आज अवस्था सर्वथा विपरीत है। आज कहानी का प्रत्येक पाठक आलोचक है, वह इतना जागरूक है कि कहानी पढ़ते समय अनजाने में ही उसे तौलता है, दूसरी कहानियों की तुलना में उसका विश्लेषण करता है। इस प्रकार कहानी और पाठक दोनों पक्षों, अर्थात वस्तुगत और व्यक्तिगत दोनों दृष्टियों से कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन रह ही नहीं जाता। कहानी साहित्य का एक अविभाज्य अंग आज बन गयी है, साहित्य कभी मात्र-मनोरंजन का वाहक नहीं रहा। और कहानी तो साहित्य में प्रगति की सचेत निशानी है। वह मनोरंजन तो करती है, क्योंकि यह तो उसका दावा है और उससे अलग उसका अस्तित्व नहीं, किन्तु साथ ही बिना किसी विशेष मानसिक व्यायाम के वह अनायास उन तत्वों को भी मन, मस्तिष्क में संचित करती है, जिन्हें संचित करने का दावा विभिन्न प्रकार के ज्ञान और शास्त्र करते हैं।

लाला शशिभूषण (जगदीशपुर)

'क्या कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है' इस प्रश्न का एक-मात्र उत्तर है, नहीं। परन्तु कहानियों से मनोरंजन नहीं होता, ऐसा विचार भी गलत है। किसी भी कहानी का एकमात्र उद्देश्य अगर केवल मनोरंजन है, तो वह कहानी सच्चे अर्थों में कहानी नहीं है। जिस प्रकार जल ओषजन और उद्जन का मिश्रण है, ठीक उसी प्रकार एक कहानी, सच्चे अर्थों में कहानी भी मनोरंजन तथा शिक्षा का मिश्रण है।

बालोपयोगी कहानियों में भी केवल मनोरंजन नहीं रहता, बल्कि उसमें भी शिक्षा का पुट रहता है। 'हितोपदेश' तथा 'पंचतंत्र' की कहानियाँ इसी कोटि की हैं। यहाँ तक की हास्य रस की कहानियाँ भी शिक्षाप्रद होती हैं।

अतः कहानियों का मनोरंजक होने के अलावा शिक्षाप्रद होना भी आवश्यक है। परन्तु कहानी-लेखक अगर अपनी कहानी में उपदेशक का रूप ग्रहण कर लें या हो जायँ, तो फिर कहानी कहानी न होकर एक अच्छा-खासा

प्रवचन हो जाय। कहानीकार शिक्षा अवश्य दे, परन्तु वह शिक्षा कहानी की घटनाओं में लिपटी रहे। इस प्रकार की कहानियों में सुदर्शनजी की कहानी 'हार की जीत' उल्लेखनीय है।

कहानी का उद्देश्य मनोरंजन के साथ स्वस्थ जीवन की प्रेरणा, सच्चे जनवाद का विकास, जीवन रस की प्राप्ति में सहयोग और जीवन को सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् बनाने के लिए उचित अवसर प्रदान करना भी है।

इन-सबके अलावा मनोरंजन भी सस्ता और बाज़ारू न होना चाहिए। कोई भी कहानी तभी पूर्ण होगी, जब उसमें स्वस्थ मनोरंजन के साथ वर्तमान समस्याओं का उचित निराकरण और जीवन को पूर्ण बनानेवाले तत्व उपस्थित हों।

कहानी के बारे में

भीमसेन निर्मम (मुजफ्फरनगर)

'कहानी' के लगभग सभी अंकों को मैंने देखा-पढ़ा है। और पढ़कर मेरी यह धारणा निश्चित हुई है कि 'कहानी' का प्रकाशन करके आपने एक पुण्य कार्य किया है। विशेषकर ऐसी स्थिति में जब कि हिन्दी में निम्न स्तर की कहानी-पत्रिकाओं की भरमार हो गयी थी। इन कहानी-पत्रिकाओं के स्तर के साथ-साथ कहानी-पाठकों का स्तर भी गिरता जा रहा था। श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिकाएँ अत्यधिक मँहगी होने के कारण साधारण पाठक को दुष्प्राप्य थीं।

ऐसी स्थिति में एक ऐसी पत्रिका की नितान्त आवश्यकता थी, जो कि कहानी के स्तर को क़ायम रख सके, कथा-साहित्य की गति-विधियों से परिचित करा सके और नयी प्रतिभाओं को प्रकाश में ला सके और साथ ही मूल्य में भी सस्ती कहानी-पत्रिकाओं के कम्पिटीशन में ठहर सके। हर्ष का विषय है कि 'कहानी' ने इस महती आवश्यकता की सफल पूर्ति की है।

मेरा विचार है कि 'कहानी' की सेवाओं का मूल्यांकन किसी भी एक पत्र में नहीं किया जा सकता। बस, इतना ही लिखूँगा कि आपका प्रयत्न बहुत ही प्रशंसनीय और सही दिशा में है।

'कहानी' के लिए कुछ सुझाव भी लिख रहा हूँ। आशा है, आप सामर्थ्य, सुविधा और सहमति के अनुसार क्रियात्मक रूप देने का प्रयत्न करेंगे।

(१) 'कहानी' में ऐतिहासिक कहानियाँ बहुत कम प्रकाशित हुई हैं। ऐसा प्रबन्ध करें कि प्रत्येक अंक में एक ऐतिहासिक कहानी रहे।

(२) नये लेखकों के लिए अलग से एक स्तम्भ खोलें, जिसमें अपेक्षाकृत साधारण स्तर की रचनायें भी जा सकें।

(३) धारावाहिक उपन्यास का प्रकाशन अवश्य आरंभ करें।

(४) प्रत्येक अंक में 'प्रेमचन्द की कहानी' स्तम्भ में श्री प्रेमचन्द की एक कहानी छापना आरम्भ करें, यह कहानी का बहुत बड़ा आकर्षण बन जायगा।

(५) रूप-सज्जा को अधिक आकर्षक बनाने के लिए कहानियों के शीर्षकों के ब्लाक तो छापें ही, पात्रों के चित्र भी दें।

(६) आवरण प्रति मास नया दें। सम्भव हो सके तो ट्राइकलर में दें। किन्तु इतना ध्यान अवश्य रखें की आवरण कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो।

(७) 'कहानी क्लब' में पाठकों के पत्रों के साथ उन पर सम्पादकीय सम्मति भी छापें।

काशी बन्दवार (सागर)

'कहानी' के कई अंक मैं जब-तब पढ़ती रही हूँ और हमेशा उसे प्राप्त करने की चेष्टा करती हूँ। नियमित रूप से मंगाने की सुविधा नहीं रही, किन्तु आपके 'उपन्यास' के प्रथम अंक ने मुझे विवश कर दिया कि उसकी स्थायी ग्राहिका बनूँ। दत्त सा० का 'रेशम की गाँठें' मन को मोह लेता है। एक बार प्रारंभ करने पर बीच से छोड़ देने की सामर्थ्य कदाचित ही किसी में हो। कम-से-कम मेरा अपना

तो यही अनुभव है। उसकी प्रशंसा करते रहकर आपका समय नष्ट नहीं करूँगी।

जी० वी० कृष्ण

आपके 'उपन्यास' का पहला अंक मिला। धन्यवाद। सुन्दर मुखपृष्ठ एवं ज़ोरदार कवठेकरजी की कलम, वाह !कमाल है ! एक बार पढ गया, दो बार उसी दिन पढ़ गया, फिर भी दिल नहीं भरा। पता नहीं 'नाना साहब' और 'पारी' के चरित्र में इतना आकर्षण क्यों है कि बार-बार पढ़ने को जी चाहता है। बापू देशमुख का चरित्र भी आकर्षक है। कृपया कवठेकरजी को मेरी ओर से उनकी सफलता पर बधाई दें।

एक तुच्छ निवेदन करना चाहता हूँ, आशा है कि आप इसपर विचार करेंगे। जहाँ आप लेखक के बारे में कुछ कहते हैं, वहाँ अनुवादक का परिचय न देना कहाँ का न्याय है ? आशा है कि भविष्य में अनुवादक के सम्बन्ध में भी कुछ पंक्तियाँ अपने 'उपन्यास' में लिखेंगे।

यदि उपन्यास से सम्बन्धित एक सुन्दर एवं कलापूर्ण चित्र आवरण पर प्रकाशित करें, तो उसकी सुन्दरता में चार चाँद लग जायेंगे। सुन्दर प्रयास के लिए एक बार और धन्यवाद !

शरतचन्द्र (शहर तेलपा)

जून की 'कहानी' मिली। धन्यवाद। कहानियों को पढ़कर ख़ुश हुआ। 'कहानी' जैसी पत्रिका से हमें, खास कर हम युवकों को बहुत-कुछ मिलता है। नये जीवन, आनेवाले जीवन की आशा, वर्त्तमान की रूढ़ियों एवं समाज की पूँजीवादी दीवारों को ढाहने के लिए संघर्ष की प्रेरणा। इतना कुछ आप हमें दे रहे हैं, और हम ऐसे हैं कि महफ़िल से मुँह चुराये बैठे हैं, आपको धन्यवाद तक नहीं देते।

कहानियाँ पसन्द आयीं। इन कहानियों में सुखबीर (बलबीर) की कहानी 'फूल खिलता है' बेहद पसन्द आयी। खास कर उनकी काव्यमय शैली तो गजब ही ढाती है। और कहानियों में 'भैया-दादा' (धूमकेतु) 'झाँझरा दा छनकार' (पुँछी) ये भी बेहद करुण हैं। 'अभिनेता' (अजीज असरी) को पढ़ कर कुछ-कुछ मंटो की याद आती है। राधाकृष्ण की रचना भी काफी चुटीली है। और सब कहानियाँ भी पसन्द आयीं। जून तक का मेरा 'कहानी' का चन्दा समाप्त हो गया है, अतएव भेज रहा हूँ। इच्छा थी 'उपन्यास' का भी ग्राहक बनता। लेकिन हम जैसे पाठकों की सब इच्छायें पूरी नहीं होतीं। लेकिन फिर भी कभी बनूँगा। आज तो 'कहानी' का ही चन्दा मुश्किल से भेज रहा हूँ। फिर भी मुझे 'कहानी' से इतना प्यार हो गया है कि कभी उसका दामन न छोड़ूँगा। आशा है, आप भी 'कहानी' को आगे बढ़ाने में सबल होंगे ही।

रामेश्वर नाथ तिवारी (आरा)

'कहानी' का जून ५६ का अंक देखा। नारायणदत्त श्रीमाली के नाम से प्रकाशित 'आलू' कहानी भी देखी। मुझे बड़ा क्लेश हुआ, क्योंकि यह कहानी पटने से निकलनेवाले मासिक पत्र 'पाटल' के जून ५४ अंक में प्रकाशित मेरी लघुकथा 'चोरी' का भाव, कथा-संगठन तथा शिल्प की दृष्टि से दूसरा संस्करण मात्र है। मूल कहानी की एक अविकल प्रतिलिपि आपके अवलोकनार्थ भेज रहा हूँ। यदि आप चाहें तो इसे छाप भी सकते हैं, क्योंकि यह बहुत ही कम जगह घेरेगी, और इस प्रकार 'कहानी' के असंख्य पाठकों को असल व नकल की पहचान करने का अवसर प्रदान करेंगे। जब मैंने अपनी कहानी का शीर्षक 'चोरी' रखा था, तब मुझे भला इसका क्या पता था कि खुद इसी की 'चोरी' हो जायगी !........और वह भी एक स्कूल के मुख्याध्यापक नारायणदत्त श्रीमाली से ! नारायण ! नारायण !!

विश्वनाथ मुखर्जी (बनारस)

आपके कहानी क्लब में 'आलू' नामक कहानी के बारे में शशिभूषण का एक पत्र छपा है और उन्होंने उक्त कहानी को रामेश्वर नाथ तिवारी का बताया है। उनका यह कहना शायद ठीक है, पर वह कहानी सन ४६ से ५० के भीतर बंगला के किसी पत्र में मैं पढ़ चुका हूँ। शायद शरदेन्दु बनर्जी उसके लेखक हैं। मैं तो यह चाहूँगा कि कहानी के पाठक केवल कहानियों की प्रशंसा न करें और न अपने पसन्द की रचना का उल्लेख, बल्कि लेखकों की चौर्य कला भी बतायें।

पुस्तकालय

सोवियत रूस में
हिन्दी-उर्दू कवियों की कृतियों का अनुवाद

एफ़० चेलीशेव

भारतीय भाषाओं और साहित्य का सोवियत विशेषज्ञ-मंडल कवियों के सहयोग से हिन्दी और उर्दू के अग्रणी कवियों की कृतियों का प्रथम खंड मुद्रणालय में भेजने के लिए तैयार कर रहा है। १९५९ के अन्त तक यह पुस्तक छपकर तैयार हो जायगी।

इसमें हिन्दी के श्रेष्ठतम आधुनिक कवियों की चुनी हुई कृतियाँ शामिल हैं: सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा, मैथलीशरण गुप्त, दिनकर, बच्चन, नागार्जुन, शील, सुमन, केदार, अश्क, वीरेन्द्र मिश्र, नीरज, नवीन, अंचल, आदि तथा इसके साथ ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की क्लासिकल रचनाएँ। उर्दू के इकबाल, फैज, फिराक गोरखपुरी, जोश मलीहाबादी, अली सरदार जाफरी, कासमी, साहिर लुधियानवी, मखदूम, कैफी आजमी, प्रेम धवन, आदि कवियों की कविताओं का संग्रह तैयार किया जा रहा है। हम अपने पाठकों को यथासम्भव पूर्ण रूप से भारत में अपने दो साहित्यिक रूपों में सर्वाधिक व्यापक पैमाने पर प्रचलित भाषा में रचित कविताओं से परिचित करना चाहते हैं।

अनुवाद के लिए कविताओं का चयन करते समय इस सिद्धांत का अनुसरण किया गया है कि भारतीय कवियों की ऐसी रचनाएँ ली जाएँ जो सर्वाधिक वैशिष्टपूर्ण और सर्वश्रेष्ठ हों। यह सत्य है कि अनेक बार हमें पहले के किये गये अनुवादों पर निर्भर करना पड़ा है। इस पुस्तक में मैथिली शरण गुप्त की "भारत भारती" से लिया गया लम्बा अंश, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के "परिमल", "नये पत्ते", "बेला", नामक काव्य-संग्रहों से तथा सुमित्रा नन्दन पन्त के "पल्लव" से ली गई कविताएँ, शान्ति के लिए संघर्ष को समर्पित, 'शान्तिलोक' नामक संग्रह से ली गई बहुत सी कविताएँ, कवि-भारती नामक हिन्दी काव्य संग्रह से ली गई कविताएँ तथा अन्य रचनाएँ शामिल हैं।

इस कार्य में हाथ बँटानेवाले मास्को के अनेक भारत विद्याविदों में वी. विकोवा, एन ग्लेबोव, एम. सालगानिक, एन. गावर्यूशीना, आई. स्मिर्नोवा, एस. दिमशित्स तथा भारत की भाषाओं एवं साहित्य के बहुत से अन्य तरुण विशेषज्ञ हैं। इस काम में सहयोग करनेवाले कवियों में ए. अदालिस, एन. पावलोविच, एस. सेवर्त्सेव, वी. लुगोवस्की के नाम उल्लेख्य हैं। ए. अदालिस, और

इ. चेलीशेवा की जिम्मेदारी इनका साधारण सम्पादन करना है।

निराला और पन्त की कविताओं का हिन्दी से रूसी में अनुवाद करने, कविताओं का संग्रह तैयार करने और भारतीय काव्य संग्रह के संपादकों में से एक होने की हैसियत से मैं आशा करती हूँ कि हम महान भारतीय जनता के भव्य काव्य के बारे में सोवियत जनता को न्यूनाधिक रूप में अच्छी जानकारी देने में सफल होंगे।

जहाँ तक निकट भविष्य का प्रश्न है हम हिन्दी, उर्दू, बंगला पंजाबी, मराठी, तमिल, तेलगु, गुजराती तथा अन्य भारतीय भाषाओं की कविताओं के संग्रह का रूसी अनुवाद तैयार कर प्रकाशित करने की योजना बन रहे हैं।

रवि बाबू की पुस्तकों का प्रकाशन

सोवियत संघ में विदेशी लेखकों की कृतियों का आज बड़ा सम्मान हो रहा है और उसमें दिनोदिन वृद्धि होती जा रही है। उन विदेशी लेखकों में भारतीय लेखक अपना विशिष्ट स्थान रखते है। इन लेखकों की एक-एक पुस्तक हजारों की संख्या में खप रही है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'पर्वत' (रूसी अनुवाद में) नामक उपन्यास की पचहत्तर हजार प्रतियाँ तथा उनकी 'शेषेर कविता' की एक लाख पैंसठ हजार प्रतियाँ छापने की तैयारी हो रही है। रवि बाबू की 'रूस के सम्बन्ध में कुछ पत्र' नामक पुस्तिका पहली बार भारी संख्या में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में लेखक द्वारा १६३७ में की गई रूस-यात्रा के अनुभव हैं। इसी प्रकार प्रेमचन्द, डा० मुल्कराज आनन्द, कृष्णचन्द्र आदि की सुप्रसिद्ध रचनाओं का आदर रूसी जनता के दिलों में बढ़ता जा रहा है।

रोचक तथ्य

युनेस्को के अन्तर्गत हुए एक सर्वेक्षण में बताया गया है कि संसार में प्रति वर्ष ५ अरब पुस्तकों का प्रकाशन होता है।

संसार में प्रकाशित पुस्तकों में आधी स्कूलोपयोगी होती हैं।

बहुत कम देश दस हजार से अधिक नई पुस्तकें प्रकाशित करते हैं।

सैकड़ों प्रान्तीय बोलियों को छोड़कर संसार में ढाई-तीन हजार भाषाएँ प्रचलित हैं।

संसार के साहित्य के ६० प्रतिशत भाग का स्रोत केवल २०-३० भाषायें हैं।
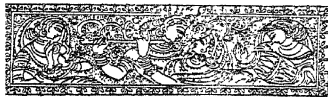
पगडंडी और परछाइयाँ

"पगडन्डी और परछाइयाँ" कुल भूषण जी का नया कहानी-संग्रह है। इसमें उनकी दस कहानियाँ संग्रहीत हैं। कुल भूषण जी ने कम लिखा है, मगर कला का कच्चापन उनके यहाँ कम ही दिखाई देता है। काफ़ी सुलझी हुई सामाजिक दृष्टि, भावुक हृदय, कहानी कहने की रोचक शैली, भाषा पर अधिकार—ये सभी बातें अच्छे संतुलित रूप में उनकी कहानियों में मिलती हैं।

आज-कल बहुत-सी नयी कहानियों में दो बुरी प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं—एक तो कथावस्तु का ह्रास, दूसरी मानव-मूल्यों में अनास्था का स्वर। कुल भूषण जी इन दोनों रोगों से मुक्त हैं। उनकी कहानी पहले कहानी होती है फिर कुछ और। कहानी के लिये यही उचित भी है। कहानी को अगर एक विशिष्ट साहित्यिक माध्यम के रूप में जीना है तो उसको सबसे पहले कहानी बनना होगा। जिस तरह से राजनीतिक सिद्धान्त निरूपण का कोई भविष्य नहीं है, उसी तरह से कहानी में दार्शनिक या मनोविश्लेषणात्मक कलाबाजियों का भी कोई भविष्य नहीं है। प्रसन्नता की बात है कि कुल भूषण जी की नज़र सबसे पहले कहानी पर रहती है। इसीलिये अधिकांशतः कहानियाँ रोचक हुई हैं। इनमें लेखक ने अपने आस-पास की ज़िन्दगी के कुछ ऐसे टुकड़े पेश किये हैं जिन्हें काफी भावुकता से उसने पकड़ा है।

स्वाभिमान, मैत्रीभाव, दूसरे का उपकार, सच्चाई इत्यादि मानव-मूल्यों में लेखक की सहज आस्था है। यह बात आकस्मिक नहीं कही जा सकती कि उनकी अनेक कहानियों में आत्मोत्सर्ग कहानी की केन्द्रीय भावना है। उदाहरण के लिए "महान् झूठ" में दिवंगता चेतना के प्रति उसकी सखी भारती का आत्मोत्सर्ग, जबकि वह उसके कलंक को अपने सिर ले लेती है ताकि राकेश के हृदय में चेतना की स्मृति कलंकिनी के रूप में न रहे। "कलाकार की हार" में राधे के लिये श्याम का बलिदान या "वापसी" में हीरा के प्रति रामदीन की त्याग-भावना भी उसी चीज के उदाहरण हैं।

"बदला" मनोविश्लेषण शास्त्र की भाषा में "मनबुझाव" या "विश फुलफिल्मेन्ट" की अच्छी कहानी है। कहानी रोचक ढङ्ग से कही गयी है और उसका कुतूहलपूर्ण, आकस्मिक अन्त विशेष रूप से सफल हुआ है। एक हिन्दुस्तानी क्लर्क को अपने अँगरेज अफ़सर के हाथ लज्जित होना पड़ता है। बदले की भावना आग की तरह उसकी रग-रग में फैल जाती है, मगर वह तो क्लर्क है, उसकी क्या बिसात कि वह अपने अँगरेज अफ़सर से बदला ले सके। लिहाज़ा वह ख्याली पुलाव पकाने लगता है। उसी की यह कहानी है जो खासी अच्छी बन पड़ी है।

"दिल्ली का धड़कता दिल" दिल्ली का रिपोर्ताज है जिसके साथ कहानी गूँथी गई है और काफी अच्छी तरह गूँथी गई है मगर तो भी कुल भूषण की अन्य कहानियों में और इसमें अन्तर है। दिल्ली की जिन्दगी में सेक्रेटेरियट के क्लर्क और ऊँचे अफ़सर के जीवन में जो गहरा अन्तर-विरोध है—अफ़सर के ठाट-बाट और क्लर्क के छूँछे सपने, उसी ठाट-बाट के—उसका अच्छा चित्रण हुआ है। पर शायद यह चित्रण और भी सशक्त हो जाता अगर लेखक ने ऊँचे अफ़सर श्रेणी के प्रतिनिधि के रूप में हेनरी और रीका की अवतारणा न करके अंगरेजियत में ढले हुए हिन्दुस्तानी साहबों की अवतारणा की होती।

"माँ से कहा था" संग्रह की शायद सबसे कमज़ोर कहानी है, जिसका कथानक बहुत पुराना और बात कहने का ढङ्ग अपनी अतिरिक्त "सकितिकता" के कारण इतना उलझा हुआ है कि बात साफ़ नहीं होती कि मनोहर ने अपनी माँ से क्या कहा था और क्यों उसकी दूसरी शादी हुई और क्यों सरला को अपनी जान देनी पड़ी और फिर किस बात का पछतावा मनोहर को हुआ।

"चूल्हे चौके के बाद" पत्र की शैली में लिखी गयी एक मध्यम वर्ग की गृहिणी की कहानी है। मध्यम वर्ग के गार्हस्थ जीवन में जो ऊब और थकान है उसका चित्रण तो अनेक कहानियों मे हुआ है और बड़ी सफलता से हुआ है मगर उसके आनन्द पक्ष को कम ही कहानीकारों ने छुआ है। कुल भूषण जी की नज़र उस पर गयी है, इसलिए कहानी में काफ़ी ताज़गी आ गई है।

"वर की खोज में" की कहानी उसके शीर्षक से ही स्पष्ट है। अनेक बाधा-विघ्नों के बाद जब पिता जी अपनी कन्या के लिये वर का अनुसंधान करके घर लौटते हैं, तो उनको पता चलता है कि उनकी कन्या इसी बीच एक पड़ोसी नवयुवक के संग भाग गई है!

"बरदान या अभिशाप" भी एक कमज़ोर कहानी है, जिसमें एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण है, जिसको भावी अमंगल का पूर्वाभास मिल जाया करता है। कहानी का कोई सुसंगत सामाजिक या मनोवैज्ञानिक आधार नहीं है; उसमें एक प्रकार से घटनाएँ ही प्रधान हैं और उन घटनाओं में भी कुछ तिलस्मी रंग पैदा हो गया है।

"खुली आँखें....बंद आँखें" किसी अर्थ में प्रौढ़ रोमांस की कहानी है। रोमांस के बहाव में पड़कर नायक को नायिका में तमाम गुण-ही-गुण दिखाई देते हैं मगर फिर किसी विशेष मुहुर्त में न जाने कैसे उसकी आँखें खुलती हैं और हर चीज की असल कीमत उसकी समझ में आने लगती है और रोमांस का रंग उस हद तक फीका पड़ने लगता है। मगर यह सब क्यों और कैसे होने लगता है, इसका कोई संकेत कहानी में नहीं है।

इस तरह हम देखते हैं कि "पगडन्डी और परछाइयाँ" की कहानियाँ एक सुलझे हुए अच्छे कहानीकार का पता देती हैं जिससे हम आगे भी कुछ उम्मीद कर सकते हैं।

कुल भूषण जी के पास साधारण बोलचालाल की, जिन्दादिल, रवाँ-दवाँ भाषा है लेकिन कहीं-कहीं उनके पंजाबी ढंग के प्रयोग खटकते हैं, जैसे निम्नोक्त उदाहरण में तीन विभिन्न अर्थों में "डाल लेना" क्रिया का प्रयोग — दूकान डाल लें....माल डालने के लिए रुपया कहाँ से से आता?....घोड़ा पटेल नगर की तरफ डाल दिया....

हो सकता है कि बोलचाल में इस तरह के प्रयोग आते हों, पर वे चिन्त्य प्रयोग हैं और उनसे बचना अच्छा होगा।

—अमृतराय

अक्तूबर १९५६

वर्ष ३ ❀ अंक १०

(शेष अगले पृष्ठ पर)

वार्षिक : साढ़े पाँच रुपये

सम्पादक-श्रीपतराय : भैरवप्रसादगुप्त

शेष सूची

सम्पादकीय नियम

१—'कहानी' में केवल कहानियाँ छपती हैं। कविताएँ, लेख आदि कृपया न भेजें।

२—जो रचना प्रकाशित हो चुकी है या प्रकाशनार्थ भेजी जा चुकी है उसे कहानी के लिए न भेजिए।

३—'कहानी' के लिए सुवाच्य लिखावट में कागज के सिर्फ एक ओर पंक्तियों में काफी फासला देकर लिखी हुई रचनाएँ भेजिए और अपनी रचना की प्रतिलिपि अवश्य रख लीजिए।

४—अनूदित कहानियों के साथ मूल रचना और मूल लेखक के नाम भी अवश्य भेजिए।

५—स्वीकृत रचना की ही सूचना सम्पादक द्वारा दी जाती है।

६— सम्पादक सम्बन्धी सारा पत्र-व्यवहार सम्पादक 'कहानी' के नाम से करना चाहिए।

व्यवस्थापकीय नियम

१—'कहानी' प्रति मास की पहली तारीख को प्रकाशित होती है।

२—एक प्रति का मूल्य छः आना और सालाना चंदा विशेषांकों के साथ साढ़े पाँच रुपये है। तिमाही और छमाही ग्राहक नहीं बनाये जाते।

३—वी० पी० भेजने में अधिक खर्च पड़ता है, इसलिए वी० पी० नहीं भेजी जाती। ग्राहक बननेवालों को साढ़े पाँच रुपये चन्दा मनीआर्डर से भेजना चाहिये।

४—नमूने के लिए छः आने का डाक टिकट भेजिए, नमूना मुफ्त नहीं भेजा जाता।

५—कार्यालय से सभी प्रतियाँ अच्छी तरह जाँच-पड़ताल करके भेजी जाती हैं। यदि १० तारीख तक प्रति न मिले तो डाकखाने में पूछ-ताँछ करके डाकखाने के अधिकारी का लिखित जवाब 'कहानी' कार्यालय को भेजना चाहिए।

६—पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए। बिना ग्राहक-नम्बर लिखे जवाब देने या कार्यवाही में देर हो सकती है और यह भी सम्भव है कि कोई कार्यवाही न की जा सके।

७—अगर आप एक साथ पाँच ग्राहकों का सालाना चन्दा साढ़े सत्ताइस रुपए मनिआर्डर से भेज दें, तो साल भर तक आप को 'कहानी' तथा विशेषांक बिना मूल्य मिलेगा।

८—व्यवस्था-सम्बंधी सारा पत्र-व्यवहार व्यवस्थापक 'कहानी' के ही नाम से कीजिये।

व्यवस्थापक, 'कहानी' कार्यालय,

सरस्वती प्रेस, सरदार पटेल मार्ग, पो० बा० नं० २४, इलाहाबाद—१

कहानी

'कहानी' की बात

यह अंक

इस अंक में कई बड़ी-बड़ी कहानियाँ हैं। इसी कारण अबकी नौ ही कहानियाँ जा रही हैं। स्थानाभाव के कारण इस बार विदेशी कहानी भी रह गयी।

लेखकों में से ओमप्रकाश श्रीवास्तव, ख़्वाजा अहमद अब्बास, कर्तारसिंह दुग्गल, ठाकुर पुंछी तथा वैकम मुहम्मद बशीर (मलयालम) से आप पूर्णतः परिचित हैं। इनकी एक या अधिक कहानियाँ आप 'कहानी' में पहले भी पढ़ चुके हैं

बंगला के नयी पीढ़ी के प्रगतिशील कथाकार समरेश बसु को आपके सामने पहली बार उपस्थित करते हुए हम गर्व का अनुभव कर हैं। इनकी कहानी 'नट और नटी' को सम्मानपूर्वक प्रकाशित कर रहे हैं। नयी भावभूमि पर आधारित इस कहानी की जितनी प्रशंसा की जाये, कम है। [illegible] नट और नटी २६ आने के लिए, एक समय के भोजन के लिए जो

सरस्वती प्रेस, सरदार पटेल मार्ग, इलाहाबाद

क्षेत्रीय कार्यालय:

सरस्वती प्रेस
पोस्ट बाक्स—२२
बनारस—१

बिहार प्रकाशन गृह
खजांची रोड
पटना—४

सरस्वती प्रेस बुकडिपो
३७८८, फैज़ बाज़ार
दिल्ली—७

सरस्वती प्रेस बुकडिप
अमीनुद्दौला पार्क
लखनऊ

काम पूरा करते हैं, वह जहाँ उनकी कर्मशीलता, साहस, बल का परिचायक है, वहीं उस सामाजिक स्थिति पर भी एक जबर्दस्त चोट है, जहाँ उन्तीस आने कमाने के लिए ऐसा कठोर, कठिन, जान को हथेली पर रख काम करना पड़ता है। इसकी वर्णन-शैली जो इतनी सजीव है कि नदी और सुअर भी नट औ नटी की तरह बोलते, कार्य करते ज्ञात होते हैं। नये लेखकों के लिए यह कहानी एक संदेश लेकर आयी है कि वे आगे बढ़कर समरेश बसु की ही तरह नयी भूमि तोड़ें और हमें नयी कहानी दें।

समरेश बसु का जन्म ढाका में सन् १६२१ में हुआ था। सन् १६४३ में इनकी पहली कहानी 'आदाब' 'परिचय' में प्रकाशित हुई, तो बंगला का समूचा साहित्यिक क्षेत्र इस नये नक्षत्र के प्रकाश से आलोकमय हो उठा। 'आदाब' कहानी १६४६ के दंगे पर आधारित थी। स्वभावतः समरेश की सहानुभूति निम्न वर्ग की जनता से है और उनके मानवीय गुणों के वह प्रशंसक हैं। १६५१ से स्वतन्त्र रूप से लेखन कार्य में लगे हैं। यही वह साल है, जब इनका पहला उपन्यास 'उत्तरंग' प्रकाशित हुआ और कथा क्षेत्र में इनका नाम प्रतिष्ठित हो गया। इतने कम अर्से में ही इन्होंने छः उपन्यास, उत्तरंग, श्रीमती काफ़े, नयनपुरेर माटी, बी० टी० रोडेरधारे, सौदागर तथा भानुमति, और पाँच कहानी-संग्रह लिख चुके हैं।

इनकी एक कहानी 'पशारिणी' 'पुतुलेर म ' के काम से फिल्मायी भी जा रही है।

स्वर्गीय रमणलाल बसन्तलाल देसाई को गुजराती कथा-साहित्य में वही स्थान प्राप्त है, जो स्वर्गीय प्रेमचन्द को हिन्दी कथा-साहित्य में। इनका जन्म १८६२ में बड़ौदा राज्य के शिनोर नामक गाँव में हुआ था। इनके उपन्यासों में कोकिला, शिरीष, स्नेह-यज्ञ, ग्रामलक्ष्मी, हृदयनाथ तथा बंसरी बहुत प्रसिद्ध हैं। १६३० के राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रेरित होकर इन्होंने 'दिव्य चक्षु' उपन्यास लिखा था, जो बहुत ही लोकप्रिय हुआ और पुरस्कृत भी। इनके उपन्यासों तथा कहानियों के अनुवाद प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में हो चुके हैं। इनके नाटक आज भी गुजरात में सफलतापूर्वक खेले जाते हैं। यह कवि भी थे। इनकी ६५वीं वर्षगाँठ के अवसर पर पाठकों को हम इनकी 'गुनहगार' कहानी भेंट करते हैं।

इस अंक में हिन्दी के दो नये लेखकों, गंगादास कोठारी और हरवंश की कहानियाँ 'कबूतर' और 'कैरियर' भी हैं।

कोठारी १६५४ से ही लिख रहे हैं। इन्होंने कई रेडियो नाटक और कहानियाँ अब तक लिखी हैं। एकांकी नाटकों का संग्रह 'मोमबत्ती' और कहानी-संग्रह 'चौराहे' प्रकाशन के पथ पर हैं। यह हिन्दुस्तान आयल मिल, नागपुर, में क्लर्क हैं।

हरवंश का हिन्दी में यह पहला प्रयास है।

विशेषांक

विशेषांक में अब थोड़ा विलम्ब होगा। कुछ लेखकों की कहानियाँ प्राप्त हो गयी हैं। शेष की अभी आनी हैं। अगले अंक में हम अवश्य विशेषांक की सूची प्रकाशित करने की स्थिति में होंगे।

तट और नदी

समरेश बसु
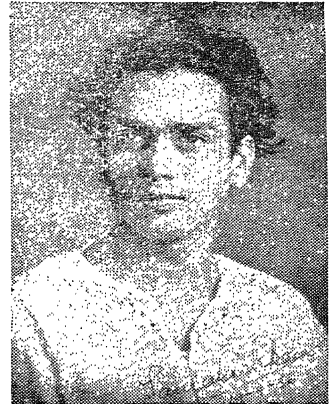
कोई काम नहीं था, इसलिए दोनों बैठे थे। उसी समय पूरब की ओर की ऊँची भूमि से जानवर धड़धड़ाते हुए नीचे उतर आये। धूल उड़ाते, झाड़-झंखाड़ रौंदते काले बादलों के झुंड की तरह जानवरों का वह दल घरघराता हुआ सामने आ गया।

दोनों वहीं बैठे थे। एक तो नाटे क़द के एक बरगद के नीचे, तने से टेक लगाये बैठा था और दूसरी लेटी हुई थी। एक मर्द था, दूसरी औरत।

चारों ओर सीहुँड़ और चकवँड़ के पौधे भरे पड़े हैं। छिटपुट बरगद, पीपल, सहजन के पेड़ भी हैं, जो ख़ुद-ब-ख़ुद जमे हैं, और अपने सर ऊँचा किये खड़े हैं, मानो वे छोटे-छोटे झाड़-झंखाड़ों की ख़बरदारी कर रहे हों।

झाड़-झंखाड़ों से भरी ज़मीन मानो उकड़ूँ होकर पूरब की ओर ऊँची हो गयी है। जरा उत्तर की ओर एक कारख़ाने की इमारत दिखायी पड़ती है। बाकी सब-कुछ पेड़ों के पीछे खो गया है। और पश्चिम की ओर ज़मीन लुढ़कती हुई नीचे उतर आयी है और उतरकर गंगा के पानी में समा गयी है।

असाढ़ की गंगा। रक्त-बाढ़ आयी हुई है। किशोरी गंगा तरुणी बन गयी है, भारी हो गयी है, बड़ी हो गयी है और उसमें तेज़ी आ गयी है। फूल रही है, फड़क रही है, मानो अपने को किसी तरह से रोक नहीं पा रही है। समझ में आता है कि और बढ़ेगी। धारा सर्पिल हो रही है। यकायक मोड़ लेती है, फिर लट्टू की तरह दन् से चक्कर खा जाती है। बहाव के ऊपर ये छोटे-छोटे भँवर हैं। आदमी के लिए कोई भय नहीं और न जानवर ही इसमें डूब सकते हैं। सूखी पत्ती और टहनी गिरती हैं और झट वे उन्हें लील जाते हैं, बड़ा चक्र होता है तो आदमी को लील जाता है। भँवर से भँवर जैसे खेल रहे हैं। तेज़ धारा एक बार आकर ठहरती है, फिर कलकलाकर आगे बढ़ जाती है।

दोनों देख रहे हैं। बादल पर बादल जमते जा रहे हैं। बादलों के बड़े-बड़े गोले धारा के होंठों पर उतरे आ रहे हैं, व्याकुल तरंगों के सीने पर, फिर पेड़ों के सिरों पर जैसे हाथ बढ़ाकर बढ़े आ रहे हों, सीहुँड़, चकवँड़ की नयी फुनगियों को छूने आ रहे हैं। हवा के थपेड़ों से बादल जैसे मरोड़ खाकर, ऐंठकर गोले में बदल जाते हैं। फिर इधर-उधर तितर-बितर होकर वे नीचे उतर आते हैं।

काम नहीं है, इसी लिए दोनों बैठे थे। बेकार बैठे-बैठे देख रहे थे। अचानक जानवरों के आ जाने पर वे चौंक पड़े।

इधर गंगा का किनारा जनहीन है। लोगों का आना-जाना भी इधर बहुत कम है। दूर से मालूम पड़ता है कि उत्तर की ओर कारख़ाना इस बदलीवाली दुपहरी में ऊँघ रहा है। गंगा इस जगह पर काफी चौड़ी है।

तट पर ईंटों का भट्टा वीरान पड़ा है। असाढ़ के आने पर ईंटें जलाने का मौसम खत्म हो जाता है। वहाँ भी उजाड़-सा लगता है। मछुओं की नावों का जमाव भी अभी शुरू नहीं हुआ है। ऐसे ही में वे दोनों बैठे हैं। इस असाढ़ में बढ़ी हुई गेरुआ रंग की गंगा, यह वीरान झुरमुट और बादलों से भरे उस आसमान के नीचे ये दोनों यों लगता है, जैसे प्रागैतिहासिक युग के मर्द और औरत का एक जोड़ा जंगल झाड़ी के असहाय आश्रय में बैठा है।

मर्द आबनूसी रंग का था। सिरहाने अंगौछा धोती कसकर बँधी हुई। मूँछें बड़ी हो गयी थीं, लेकिन अब भी नर्म रोएँ का भाव उनमें था। चेहरा इसी उम्र में कर्कश और उजड्ड-सा लगता था। वह उस औरत की जाँघ के ऊपर पैर फैलाकर लेटा था।

औरत भी काली-कलूटी थी। बालों में जटा-सी पड़ गयी थी। माथे पर चन्द रोज़ पहले लगाये हुए सिन्दूर के टीके का आभास मात्र मिलता था। छोटे-से एक कपड़े में से कुछ कमर से लपेटकर बाकी सीने पर खींच लिया था। उससे मन को तसल्ली मिली होगी, शरीर को नहीं। नयी उम्र की बाढ़ थी। जंगली पौधे की तरह पुष्ट और अकृत्रिम। नाक और कान के छेद जैसे हाहाकार कर रहे थे। कभी तो जुएँ मारने लगती और कभी मर्द के शरीर पर सीने के बल ढुलक जाती थी।

सुबह से ही दोनों एक-दूसरे से सटकर बैठे थे। काम नहीं, खाना नहीं, इसी लिए वहाँ पर बैठे थे। हाथ-पैर निढाल हो रहे थे। आँखों के नीचे कालिख छा गयी थी। चेहरे पर भूख और थकावट की छाप उभर आयी थी।

परसों रात को आखिरी बार खाना खाया था। पिछले हफ्ते तक वे काम करते रहे। उसके बाद 'मिसीपल्टी' ने दरवाज़ा बन्द कर दिया था। काम नहीं था।

ननकू गाँव का आदमी था। यहाँ पर वह झाड़ू देने वालों का सरदार था। दो महीने पहले काम देने का वादा कर उन्हें ले आया था। गाँव में बाबू साहब नागिन प्रसाद की भेंड़ और सुअर चराकर ये दोनों पेट भरते थे। ननकू ने मूँछों पर ताव देकर, सीना तानकर कहा था—मेरे साथ चलो। महीना खत्म होने पर दोनों मिलकर साठ रुपये पैदा करोगे।

अरे, बाप रे बाप! साठ रुपया!

शादी किये सिर्फ छः महीने भी नहीं गुज़रे थे। अकेला नहीं कि मन पर लगाम न हो, शरीर पर यकीन न हो। उनके गाँव के लोग कहते थे कि नट कौम के लोग, मर्द-औरत मिल जाने पर, कोई ऐसा काम नहीं, जो न कर सकते हों। यह बात सही थी। तब उनका मन तरंग पर था। वे नट घराने के दो जवान मर्द-औरत थे। वे इकट्ठा होने पर किसी भी काम में जुट जा सकते थे। नागिनप्रसाद को बग़ैर कुछ बताये वे ननकू के साथ चले आये थे।

लेकिन साठ रुपये कहाँ? दोनों ने मिलकर महीनेभर में बत्तीस रुपया पैदा किया था।

डेढ़ महीने के बाद वे छँटनी में आ गये। काम नहीं है। मेहतरों की बस्ती में चाहें तो रह सकते हैं।

लेकिन काम नहीं, तो खाना भी नहीं।

ननकू से उन्होंने पूछा कि काम क्यों नहीं है, तो ननकू ने कहा कि ओट हो गया इसलिए। ओट के पहले काम दिखाया जाता है, इसलिए फालतू आदमी रखे जाते हैं। ओट खतम हो गया, फिर बैठा दिया फालतू लोगों को।

उन लोगों ने कहा—तो अब क्या होगा?

—क्या होगा?—ननकू ने पहले सोचा था कि चिल्लाकर धमका देगा। लेकिन इस समय खुद ही वह धाड़ मारकर रोने लगा—हाय राम! हाय राम! हाय राम! यह मैंने क्या किया? मैंने गुनाह किया है! मैं सुअर का बच्चा हूँ, मैं गिद्ध का बच्चा हूँ, मैं पापी हूँ!....

सभी लोग आकर ननकू को तसल्ली देने लगे—तू न रो, न रो, सरदार, न रो! तू भला आदमी है! उन लोगों का कुछ-न-कुछ सिलसिला हो जायगा।

इन दोनों ने भौंचक्का होकर चुप्पी साध ली।

ननकू ने रुआँसे गले से पूछा—हो जायगा?

—हाँ-हाँ, हो जायगा।

सात दिन तक कुछ लोग इन दोनों को कुछ-न-कुछ खिलाते रहे। परसों रात को आखिरी बार खाना मिला था। उसके बाद नहीं।

कल दिन-भर यहीं पर कटा था। आज भी आकर दोनों यहीं पर लुढ़क गये थे। शहर में रहना मुश्किल है। पूरब की ओर के ऊँचे कगार से कुछ दूर जाने पर ही मेहतरों की बस्ती है। वहाँ पर भी रहना दुश्वार है। भूखे, जीभ निकाले हुए कुत्ते की तरह वहाँ हाँफना पड़ता है। किसी को खाते देखकर ही भूख लगने लगती है। यहाँ पर, इस एकान्त में फिर भी पड़े-पड़े वक्त काटा जा सकता है।

काटा जा सकता था, पर अब नहीं काटा जाता। दोनों के दिल की धड़कन पेट में आकर दम ले रही थी। और बदन-से-बदन सटाकर दोनों खून की हरकत चालू रखे हुए थे। बदन-से-बदन सटाकर खून में हिम्मत बिटोर रहे थे। बदन को सूँघकर, मसलकर, चाटकर, मानो वे उस विकट भय के मुँह पर थप्पड़ लगाकर उसको दूर हटा रहे थे, जो उनके शरीर में रेंग-रेंगकर उन्हें ख़त्म कर देना चाहता था। मानो उन्हें डराने के लिए ही आसमान काला होकर नीचे उतरा आ रहा था। पानी और भी लाल होता जा रहा था, चक्कर खाकर खिल-खिला पड़ता था। दक्खिन की हवा ज़रा पूरब की ओर मुड़कर पागलों की तरह ठोकर मार रही थी। भींगी मिट्टी को फोड़कर केंचुओं के लोंदे निकले आ रहे थे। और उन्हें चारों ओर से घेरकर बरगद की चींटियाँ हमला कर रही थीं।

एक ज्वार की शुरुआत में वे आये थे। एक ज्वार की उठान देखी, एक भाटे का उतार देखा। अब फिर ज्वार आया था।

ऐसे ही समय पूरब की ऊँचाई से जानवर उतर आये। बादल के मुँह पर एक और पर्त कारिख पोतते हुए-से, काले रंग के, छोटी आँखों व थूथनोंवाले जान-वरों, नर-मादा, सबका दल उतर आया।

वे दोनों मर्द-औरत उठे और एक-दूसरे के बदन से सटकर बैठ गये।

सुअरों का झुंड जंगल में एक जोड़ा मनुष्य देखकर एक बारगी ठहर गया। फिर सब-के-सब घुर्र-घुर्र करते हुए आस-पास चारों ओर फैल गये।

उनके पीछे दो आदमी दीख पड़े। एक काफ़ी मोटा, थलथल था, सोने का छल्ला पहने हुए। सामने के दो दाँत सोने से मढ़े हुए। इस इलाक़े के मेहतरों की सारी बस्तियों में घूम-घूमकर इन सुअरों को उसने ख़रीदा था। वह इन्हें नदी के दूसरी ओर ले जायगा। साथ में एक और आदमी था। वह सामने की बस्ती का कूड़ा ढोने-वाले ठेले का ठेलेवाला था।

इन दोनों को देखकर ठेलेवाले ने सोने के छल्ले-वाले से कहा—महाशयजी, क्या इन दोनों से आपका काम बन सकता है?

सोने का छल्ला आगे बढ़ आया। एक बार दोनों को ग़ौर से देखा। औरत सीने के ऊपर कपड़ा खींचने लगी। मर्द दोनों को संशय की निगाह से देखने लगा।

ठेलेवाले ने कहा कि वह इन्हें पहचानता है। बेकार बैठे हैं। राज़ी भी हो सकते हैं।

सोने का छल्ला नज़दीक आकर कुछ देर तक इन दोनों को घूरता रहा। उधर सुअरों का झुंड पेड़-पौधे उखाड़कर नर्म जड़ की खोज में उस ढालवीं ज़मीन को नेस्तनाबूद कर रहा था।

सोने के छल्ले ने उन्हें घूरते हुए ही मन-ही-मन एक हुँकारी भरी। वे दोनों सोच रहे थे कि वे यहाँ से खिसक चलें या नहीं।

सोने के छल्ले ने अब कहा—काम करोगे?

काम! काम का मतलब खाना! उनके निढाल शरीर में कुछ जान आयी! मर्द ने पूछा—क्या काम?

सोने के छल्ले ने कहा—सुअरों को दरिया के पार ले जाना होगा।

अरे बाप! भरा दरिया, उसपर छन-छन बढ़ता जा रहा है। उठान पर नाचता, फूलता और धक्के-पर-धक्का देता चला जा रहा है। दोनों मर्द-औरत की आँखें मिलीं। दोनों की भूखी आँखों में उम्मीद बँधी।

कहानी
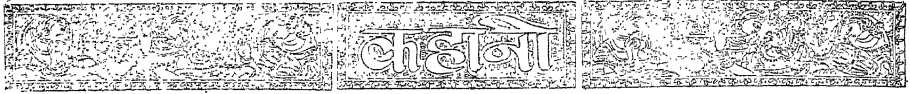
मर्द ने कहा—एक नाव चाहिए खबरदारी करने के लिए।

यानी सुअरों के पास-पास चलने के लिए एक खाली नाव चाहिए। यही तरीका है। लेकिन सोने का छल्ला इस बारे में बड़ा होशियार है। नाव के लिए पैसा नहीं खर्च कर क ता।

उन दोनों का दल ज़रा बैठ गया। दरिया के पानी की ﹐ निगाह दौड़ायी। उसके बाद सुअरों की ओर। काले, बदशक्ल जानवरों का झुंड। मादा ही ज़्यादा। आँख भैंगी। समझ में नहीं आता कि किधर देख रहे। लेकिन नज़र बेशक आदमियों की ओर है।

उन दोनों ने फिर एक-दूसरे से आँखें मिलायीं, और मन-ही-मन उसी दम वे राज़ी हो गये। उसी क्षण उनके शरीर में नट का खून खौल उठा। भुक्खड़ पेट के अंदर खलबली मच गयी। पड़े रहना मरे हुए की तरह मालूम होने लगा।

फिर भी औरत तो औरत ही थी। पूछा—लेकिन बगैर नाव के पार कर पायेंगे?

मर्द ने कहा—सँभालना होगा।

सोने के छल्ले ने कहा—वह, उस ओर, उत्तर की ओर जहाँ शिवाला दिखायी पड़ता, वहीं पर ले जाना होगा। उनतीस जानवरों के लिए दोनों की मज़दूरी उनतीस आने होगी। और ऊपर से मिलेगा कुछ कड़ुआ तेल, दरिया से निकलकर बदन पर मलने के लिए। एक भी जानवर खोने पर छः महीने की हवालात!—कहते हुए हाथ की लम्बी लाठी उसने मर्द की ओर बढ़ा दी। औरत ने चकवँड़ की एक टहनी तोड़कर उसके पत्ते नोंचकर उसकी संटी बना ली।

सोने का छल्ला और ठेलेवाले, दोनों ने आश्चर्यचकित होकर एक-दूसरे से आँखें मिलायीं। दोनों ही राज़ी हो गये! आखिर जानवरों को मारकर ये दोनों भी तो नहीं मरेंगे? लेकिन उन दोनों का सुअर के दल को घेरकर खड़े होने का ढङ्ग देखकर उन दोनों को ढाढ़स बँधा

वे दोनों दो ओर खड़े हो गये। औरत ने अपनी मीठी आवाज़ में सुरीली टेर लगायी—उ-र-र्-र्-र्-र्-र.... आ!........

और मर्द ने अपने परुष कंठ से हाँक लगायी—आ-हूँ! आ-हू:!

मानो औरत की लगातार टेर में पुरुष ताल की संगत कर रहा हो।....

यह आवाज़ उनके भूखे पेट से निकल रही थी। यह आवाज़ थकी हुई और गंभीर-सी थी। अचानक इस वन-भूमि के ढलवान पर मानो संगीत की विचित्र माया फैल गयी। मटमैले, लाल पानी की तरङ्गों में मानो वह सुर घुल-मिल गया। हवा में तैरती हुई ध्वनि बादलों से जा टकरायी।

जानवरों ने संशय से घुर्र-घुर्र करना शुरू किया। झाड़ियों के पीछे से उन्होंने एक एक कर सिर उठाया। थूथन उठाकर मानो वह टेर का मतलब सूँघकर ही समझ रहे थे। उनकी छोटी छोटी, गोल आँखें चमकने लगीं। वे एक-दूसरे के नज़दीक सिमटने लगे। एक-दूसरे के बदन से सटकर वे उन दोनों के बीच इकट्ठे होने लगे।

—उ-र-र-र-र!....आ-उ-र-र-र-र-आ!....

—आ....हूँ:!....आ....हू:!....

सोने के छल्ले के सोने के दाँत दमकने लगे। ठेलेवाला भी जानवरों-जैसी गोल-गोल आँखों से मन-ही-मन इनकी तरीफ करने लगा। बोला—हाँ, बिल्कुल ठीक! मानो सुअरों के असल माँ-बाप हैं ये!

और उस ध्वनि में वे दोनों अपना भूख से मरने का भय खो बैठे। भूख से तड़पता खाली पेट एक नयी संयमी भूख से भर गया, खाने को मिलेगा, इस आशा से! इस आशा से कलेजा पत्थर का बन गया। काम मिल गया है, काम करना है पहले। मुश्किल काम!

काम मुश्किल है, लेकिन पशु जाने-बूझे हैं। बचपन से उनके साथ दिन गुज़ारे हैं। गाँव में हमेशा उन्हें पाला-पोसा है। उन्हें वे पहचानते हैं, उनके राग-रंग से वाक़िफ़ हैं। सिर्फ़ दरिया को वे नहीं जानते। लाल दरिया तेज़ रफ्तार से बह रहा है। ज्वार लगा है, कोई तरंग नहीं। लेकिन बहाव बहुत ज़ोरदार है। दरिया गहरा भी

है। और चारों ओर फैलता, बढ़ता ही जा रहा है। काले बादल भी झुंड-झुंड उतर रहे हैं।

जानवर भी एक-दूसरे के बदन से सटकर इकट्ठे हो रहे थे। र से मालूम पड़ता था कि एक जगह काले रंग की चींटियों का दल लदबदा रहा है। और सुअरों का दबा हुआ, दुलार-भरा स्वर सुनायी पड़ रहा था। वे जितने इकट्ठे होते जाते, वे दोनों भी नज़दीक होते जाते। औरत ने एक बार सोने के छल्ले और ठेलेवाले को कनखियों से देखा। फिर गंगा की ओर देखने लगी। बुदबुदाते हुए बोली—नाव नहीं, कुछ नहीं। बहुत बड़ा दरिया....

औरत, औरत ही तो। यह उसका डर से पीछे हटनेवाला संकोच नहीं था। हिम्मत और ताक़त की नाप लेकर काम में हाथ लगाना चाहती है।

मर्द, मर्द ही था। मूँछों पर ताव देकर तेज़ निगाह से दरिया को नाप रहा था। मुँह से सिर्फ़ बोला—हाँ, बहुत बड़ा!

बात का मतलब यह हुआ, बड़ा है, लेकिन पार करना होगा!

औरत ने फिर कहा—उनतीस आने कितने होते हैं? पूरे रुपये से कम या जियादा?

वह छोटी थी, पर औरत ही तो। जब तक हिसाब न लगा लेती, मन कैसे साफ होता!

मर्द, पुरुष चरित्र का था। सब-कुछ मानकर चलने में हिसाब-किताब करना मुश्किल हो जाता है। उसने कहा—तीन आना कम पूरा दो रुपया।

ठीक है। नयी भूख का एक अजीब स्वाद उन्हें मालूम हो रहा था। काम के लिए मन भी तक़ाज़ा कर रहा था, शरीर भी। ज्वार के उठान में ही जाना पड़ेगा। उस ओर, उत्तर की तरफ़ दूर शिवमन्दिर के पास।

औरत ने फिर कहा—दरिया में पानी इस वक्त जियादा है। ये लोग इस वक्त क्यों पार करा रहे हैं?

मर्द ने कहा—वे कारबारी लोग हैं। जानवरों की तकलीफ की परवाह नहीं करते।

वे स्वर में स्वर मिलाकर टेर रहे थे और बातें भी करते जाते थे। बातें करते हुए सुनते भी जाते थे। दो नर हैं, बाक़ी मादा। हाँ, एक गाभिन भी तो है। गाभिन सुअरी। पेट क्या है, सोना उगलता है। कोई पाँच देती है, कोई छः। अगर खूब फलवती हुई, तो सात। दरिया पार कर सकेगी?

—हाँ, हाँ, कर लेगी। नयी गाभिन है। अभी हल्की है।

टेर का स्वर ज़रा उन्नीस-बीस करने पर डाँट में बदल जाता। धमकी देते-देते मर्द रुक गया। सोने के छल्ले की ओर परेशानी की निगाह से देखा। व्याकुल गले से पूछा—हुजूर, ये भरपेट खा चुके हैं न?

सोने के छल्ले ने कहा—हाँ-हाँ।

हाँ, भाई। इतना बड़ा दरिया, पेट भरा न हो, तो जानवर उससे कैसे निपटेंगे? उन दोनों के पेट में खाना न हो, कोई बात नहीं। खाने के लिए ही तो वे जूझने जा रहे हैं! जानवर क्यों जूझें, इसकी वजह वे नहीं जानते।

थोड़ी देर बाद मर्द ने लाठी उठाकर अपनी शून्य नाभी से एक लम्बी हाँक लगायी—हाँ!....ई-हा-हा!.......

औरत ने भी स्वर जोड़ा—उ-र-र-र-आ!....उ-र-र-र-आ!....

जानवर भी इस नये और रूढ़ इशारे से चौकन्ने हो उठे। गोल-गोल भेंगी आँखों में संशय घिर गया। हाँक सुनकर उन्होंने आगे बढ़ने के लिए हुमास लिया। लेकिन हवा में हिलती हुए लाठी और संटी को देखकर ठहर गये, आपस के धक्कमधक्के में एकजुट हो गये। उनके मन में सवाल था, इसका क्या मतलब? क्या चाहते हो? बदन से बदन घिसने की खसखस की आवाज़ होने लगी। बदन पर सूखा कीचड़ धूल बनकर उड़ने लगा।

उसके बाद लाठी-संटी के निशाने और हाँक के इशारे से वे एक जगह इकट्ठे होकर नदी की ओर मुड़े। अगले ही क्षण बिना किसी चेतावनी के मर्द की लाठी हल्के भाव से जानवरों की भीड़ में जा पड़ी। अचानक डरकर, जमीन पर अजीब-सी आवाज़ निकालते हुए पूरा झुंड

ढाल पर उतरने लगा। दो जनों की लाठी संटी और हाथ के घेरे में उनतीस जानवर! काफी बड़े नस्ल के जानवर!

उस समय ज्वार पर चढ़ी गंगा कलकलाती हुई बढ़ी आ रही थी। बढ़ती जा रही थी। अभी और भी बढ़ेगी।

काली-काली, खड़े रोमवाली पीठों की तरंग रुक-रुक जाती थी। सुअर को पानी से मुहब्बत है। लेकिन तेज़ धार के दरिया में आसानी से कोई उतरना नहीं चाहता। उनकी आँखों में उस मटमैले स्रोत की शंका घिर गयी। गले में अजीब सन्देह-भरी क्षुब्ध-सी आवाज! मानो पूछ रहे हों, क्या होगा? कहाँ जाना होगा?

मर्द अपनी कड़ी आवाज़ के बीच-बीच में खुशामदी स्वर भी मिलाता जा रहा था—आहू, आहू, आहू, उतरो-उतरो! तुम्हें दरिया पार करावें अब!....होई....हा....हा....!

—उ-र-र-र-आ!....उ-र-र-र-आ!....

औरत सिर्फ़ यह देख रही है कि दरिया बढ़ता जा रहा है। जितना नज़दीक वह होती जाती, उतना ही मानो वह बढ़ता जाता। उतना ही फूलता, धारों का बहाव मचलकर, मुड़कर, हिलहिलाकर आगे बढ़ जाता। वह देखती और मर्द की ओर पलटती। मर्द भी देखता और उसका मुँह और भी कठोर हो जाता। आ गये, वे लोग पानी के किनारे आ गये! दुम दबाकर जानवर आगे बढ़ रहे थे। एक-दूसरे को ढकेलते हुए आगे बढ़ाकर खुद पीछे सरक जाता। इस तरह हिचकते हुए भी वे बढ़ते जाते।

यकायक एक जानवर एक तीखी चीख़ के साथ झुंड के बाहर निकल गया। वह गाभिन सुअरिन थी। आसमान सिर पर उठाते हुए चीखती-चिल्लाती भागी जा रही थी, मानो सख्त विरोध जताते हुए बोल रही हो, नहीं जाऊँगी, क़तई नहीं जाऊँगी!

नहीं जायगी? डर गयी है? हरामज़ादी के पेट में बच्चा है न!

लेकिन हड़बड़ी में उसका पीछा करती हुई वह औरत पानी के किनारे कीचड़ में फिसलकर गिर पड़ी। फिर उठकर दौड़ने जा रही थी कि मर्द चिल्लाया—मत, भाग मत!

कीचड़ से सनकर, करीब-करीब नंगे बदन वह खड़ी हो गयी। सख्त, सुडौल सीना कीचड़ से सन गया। बालों में कीचड़ लग गया था। सुअर के झुंड में मानो वह और कुछ घुलमिल गयी। मर्द ने कहा—टेर लगा, टेर! इन्हें लेकर आगे बढ़ना होगा।

सुअरों के झुंड को पानी में नहीं उतारा। कगार के ऊपर से ही नर्म टेर लगाते हुए चला।

—उ-र-र-र-आ! उ-र-र-र-आ! आ....हुई!....आ हुई!

सुअरिन काफ़ी दूर भाग गयी थी। दूर जाकर रुकी थी, पर उसी तरह विकट स्वर में चिल्ला रही थी। चिल्लाने के बीच-बीच में मुँह नीचा कर न मालूम क्या बीन-बीनकर खाती भी जा रही थी।

ये दोनों पानी के छोर से झुंड को लेकर बढ़ रहे थे। सुअरिन देखती रही, खाती रही और चीखती रही। उसके बाद यकायक उसी तरह से चीखते-चिल्लाते हुए झुंड के बीच में आ मिली। लेकिन उसी तरह से चिल्लाती ही रही। गर्दन कोता कर कनखियों से देखती हुई वह चिल्लाती रही, जान-बूझकर मुझे मारने ले जा रहे हो! शैतान आदमी!

मर्द और औरत ने एक-दूसरे से आँखें मिलायीं। वक्त हो गया है। अब और अभी। पानी पैर के तलुए को धो रहा था। छू रहा था और खिसकता भी जाता था। और किनारों को अपनी चपेट में बहा भी ले जाता था।

सुअरिन उसी तरह चीख़ती जा रही थी। और मर्द मानो उसकी सब बातों को समझ पा रहा हो, इस तरह से कहता—कोई डर नहीं। हँऽ-हँऽ! आ-हुई! आ-हुई!—कहते हुए उसने फिर गङ्गा की ओर नज़र घुमायी। गङ्गा मानो खिलखिलाकर हँस रही हो और अपने कलकल में सब-कुछ कह रही हो। और मानो उन्हीं की ओर देख रही हो। क्या कह रही है, यह उन दोनों की समझ में नहीं आ रहा था। सिर्फ़ यही मालूम पड़ता कि भगवती नदी बार-बार पूछ रही है, तू आ रहा है? आओगे? तुम

दोनों भूखे हो और मैं कितनी बड़ी हो गयी हूँ।....यह कहती जाती और हँसती, हँसती और मतवाली रहस्य-भरी आँखें लेकर मचलती, इठलाती चलती। खुशी से वह और लाल हो गयी।

मर्द और औरत, उन दोनों की आँखों में गहराई थहाने की खोज। दोनों ही मानो दरिया के तल तक देख लेना चाहते। वहाँ पर कौन-सा रहस्य है? कौन-सा डर है? मौत के कितने फन्दे बिछे हुए हैं?

अब समझ में आता कि वे दोनों शिशु की तरह सरल हैं। शिशु की तरह ही साहसी और दिलेर। औरत साड़ी का पल्ला कमर में कस रही थी। शरीर एकदम खुला। आँधी, पानी और गाज गिरने पर भी दुर्जेय पहाड़ की चोटी के समान उसका निर्भीक साहसी सीना था! मर्द मूँछों पर ताव दे रहा था। रोएँदार मूँछ और ऊँचा-नीचा पथरीला शरीर!

वे दोनों मानो मन-ही-मन भगवती गङ्गा के पास गिड़-गिड़ा रहे थे, ह, हम भूखे हैं! इसी लिए हमें पार कर जाने दो! सोने का कारबारी छल्ला आदमी है। वह असाढ़ के महीने में बिना नाव के जानवर पार करा रहा है। उनतीस जानवर! अरे बाप! दो आदमी! हाय बाप! जानवरों का कोई क़सूर नहीं है। हे माँ! दो रोज से तो देख रही हो, हमारा भी कोई क़सूर नहीं है!

वे कहते जाते और गङ्गा भी मानो उन्मत्त नटी-सी ही कलकल, झुमझुम करती, इठलाती, बल खाती, कटाक्ष करती आगे बढ़ती आ रही है। पानी बढ़ता रहा और वे सिर्फ उससे हटते चले आ रहे हैं। तैयार हो रहे हैं।

जानवर शक की निगाह से इन दोनों की ओर देख रहे थे। हवा और पानी की ओर कान फैला रहे थे। हवा और पानी की बातों और इरादों को वे मानो समझना चाहते हों। सभी घुर्र-घुर्र शब्द कर रहे थे। सुअरिन किसी बात की परवाह न कर उसी तरह चीख़ रही थी।

—अब? अब?—मर्द ने जानवरों को पटाते हुए औरत से कहा—ज़रा ऊपर उठ।

—हाँ, ठीक है। ज़रा बढ़ जा। हाँ, अब खड़ी हो जा।

औरत रुक गयी। जानवरों को पानी की ओर घुमाना पड़ा। अब घुड़की देनी है। एक बार पानी में उतरते ही धार का बहाव। तब कुछ सोचने का मौका नहीं मिलेगा।

आख़िरी बार दोनों ने पानी की ओर देखा, दूसरे तट की ओर देखा। जानवरों का प्रश्नसूचक हींकना बढ़ रहा था।

क्षण-भर बाद ही उन दोनों के गले से एक तीखी आवाज़ सुनायी पड़ी और लाठी व संटी तड़ातड़ जानवरों पर पड़ने लगीं।

अगले ही लमहे में दिखायी पड़ा कि जानवरों को दरिया काफ़ी दूर तक खींच ले गया है। वे दोनों भी पानी में लपककर कूद पड़े।

लेकिन उन दोनों को पीछे रखकर जानवर उत्तर की ओर तुरत बह चले। अभी से उत्तर की ओर जाने पर तो जिन्दगी-भर में भी उस पार नहीं पहुँचा जा सकता। सुअरों को दूसरे तट की ओर मुँह घुमाना होगा। नाव रहने पर यह दिक्क़त न होती।

मर्द चिल्लाया—जल्दी कर, किनारे उठ!

उस वक्त सीने तक पानी था। दोनों छलांग मार-मार कर ऊपर उठे।

जानवर भी ऊपर उठने का इरादा कर रहे थे। सुअर पानी में एक अजीब खलबली की आवाज़ कर रहे थे और दबी आवाज़ में एक-दूसरे के थूथनों से थूथना भिड़ाकर न मालूम क्या कह-सुन रहे थे। गाभिन सुअरिन का भी गला काफ़ी धीमा पड़ गया था।

दोनों ही उठकर कछार पर दौड़ते हुए जानवरों के सामने की ओर गये। उनतीस जानवरों का तैरता समूह यों लगता था, जैसे एक विराट जानवर तैर रहा हो। मर्द ठीक उनके सामने पानी में कूद पड़ा। औरत बीचो-बीच में।

मर्द ने पानी में कूदते ही लाठी तानकर पूरे झुंड का मुँह पश्चिम की ओर घुमा दिया, गङ्गा के दूसरे तट की ओर। औरत ने पीछे से सटासट संटी चलायी। सिर्फ दक्षिण की दिशा बची रही। उधर से ज्वार का धक्का आ रहा था। सुअर उधर किसी तरह भी नहीं लौट सकते।

और खुली है पश्चिम की दिशा। उधर ही इन्हें खदेड़ना है।

मर्द लाठी तानकर चिल्लाने लगा—हा-ई! हा....ई!

पीछे से औरत हुम-हुम् शब्द करती और कहती—खबरदार! इस ओर मुँह मत घुमाना!

सुअर उस समय भी आपस में धक्कापेल मचाये हुए थे और घुर्र-घुर्र कर रहे थे। शायद अब भी पीछे लौटने की उम्मीद कर रहे थे। इसके बाद रेल-पेल में खुद ही आगे बढ़ जाना चाहेंगे। अभी डर और दहशत से आँखें मानो कोटरों से बाहर निकली आ रही थीं। सामने विशाल जल-राशि और धारा का तेज बहाव। कहाँ ले जा रहे हैं, ऐं? मरना होगा? क्या चाहते हैं ये?

दूसरी ओर ले जाना चाहते हैं।

वह सुअरों के उत्तर में किसी तरह भी ठहर नहीं पा रहा था। भयंकर बहाव, वह भी बहाव एकमुखी नहीं। रह-रहकर मुड़ जाता।

औरत भी कोशिश के बावजूद जानवरों के पीछे नहीं टिक पा रही थी। बहाव उसे उत्तर में मर्द की ओर बहाये ले जा रहा था।

मर्द ने चिल्लाकर कहा—रोके रख! ज़ोर लगाकर अपने को रोके रख! खबरदार! इधर मत आना!

औरत अपने को सँभाले हुए है। लेकिन तेज़ धारा मानो उसके हाथ-पैरों को नोचकर ले जा रहा है! सीने पर आकर धक्का मार रहा है!

अब कोई आदमी नहीं दिखायी पड़ता था, सब सुअर बन गये थे। सत्ताइस की जगह पर अट्ठाइस मादे और दो की जगह तीन नर हो गये थे।

किनारे से काफ़ी दूर आ गये थे। दक्खिनी हवा पानी में गोता लगा रही थी। जहाँ उसका गोता लगता, वहाँ एक अजीब उल्लास का हिल्लोल जाग उठता था। ज्वार न होता, तो इसी हवा के थपेड़ों से गंगा उछलने लगती। बड़े-बड़े तरंग उठते। तब तो जानवर ज़रूर मरते।

पूरब से दचका मारकर जो हवा आती, वह तरंग का आभास देती, उसी से कुछ डर था। बादलों के गोले घुमड़-घुमड़कर कहीं-कहीं तेज़ रफ़्तार से नीचे चले आ रहे थे। कहीं ऊपर की ओर भी उठ जाते। उठते-उठते वे बिखर जाते। दोनों ओर बिखर जाते। उन बिखरे बादलों के बीच एक अनोखी रोशनी की रेखा दिखायी पड़ती, मानो अभी कोई रहस्य खुल जायगा। लेकिन अगले ही क्षण गाढ़ी कालिमा चारों ओर छा जाती। रंग-ढंग कुछ अच्छा नहीं था। बादल और भी जमते जाते थे। गाढ़ा अँधेरा छाता जा रहा था।

वे दोनों आसमान की ओर देखते जा रहे थे और पानी में प्रचंड हाथ-पैर मार रहे थे। बीच-बीच में लाठी और संटी सिर उठातीं। पानी के धक्के से धीरे-धीरे बेक़ाबू होते जा रहे थे। लेकिन अब भी उसके बारे में सोचने का और अनुभव करने का मौक़ा नहीं मिल रहा था। मुँह से आवाज़ निकलती—हा...हा!

औरत ख़ामोश हो गयी थी।

बीच-बीच में एकाध जानवर जोर से हींक उठते। और वे दोनों चौंककर पानी की ओर देखते। क्या हुआ? किसने तुझे क्या किया? क्या किसी ने पानी के नीचे टाँगे दाँतों में दबा ली हैं?

सोचते ही, पानी के नीचे के डरावने आतंक को वे अपने शरीर के प्रचंड आन्दोलन से चूर-चूर कर देना चाहते। कुछ नहीं। कुछ भी नहीं है। कोई डर नहीं।

अचानक औरत चिल्ला उठी। और मर्द सूँस की तरह पानी में ही उछल पड़ा—क्या हुआ?

तीन सुअरिनें चुपचाप पीछे लौटकर उत्तर-पूरब की ओर भाग रही थीं। नहीं जायेंगी, किसी हालत में भी अब आगे नहीं जायेंगी!

धारा तेज़ हो रही थी, पानी फूल रहा था। सिर्फ़ मार डालने की साजिश थी।

क्षण-भर वह निश्चल रहा। उसके बाद लाठी उठाकर तीनों सुअरिनों के पीछे धावा किया। नज़दीक जाकर आमने-सामने हो गया। लाठी तानकर पानी में भड़ से मारा। थूथनें फिर लौटीं। वही गाभिन और दो और थीं, उभरती हुई उम्र की। गाभिन होने का समय हो

गया था। अब भी आदमी को समझ नहीं पायी हैं! मन में विश्वास नहीं है।'

मर्द को गुस्सा भी आया और हमदर्दी भी। मुँह से सिर्फ बोला—जानवर, एकदम जानवर! हा....ई!.... हा....ई!....

पीले दाँत निपोरकर चीखती हुई वे तीनों झुंड की ओर लपकीं। लाठी आसमान में तनी रही।

इसी बीच बाकी जानवरों को लेकर औरत काफ़ी दूर चली गयी थी।

मर्द ने घुड़की दी। पानी में गोता मार-मारकर उसकी भी आँखें सुअर-जैसी हो गयी थीं। कहता—मैं हूँ न, ऐं? हरामजादी!....

गुस्से और प्यार में ज़बर्दस्त गाली-गलौज करने लगा।

नज़दीक आकर दोनों की आँखें मिलीं। दोनों की आँखें सुअर-जैसी दीख रही थीं, लेकिन औरत की आँखों में सन्देह झाँक रहा था।

दोनों की समझ में आया कि धारा और भी तेज हो रही है। भयंकर रूप से तेज हो रही है। दरिया व्याकुल हो उठा है। बढ़ता ही जा रहा। फूल रहा है। एक-एक जगह पर पानी मानो नीचे से फूल-फूलकर उठ रहा है। उठ रहा है और तेज़ रफ़्तार से भाग रहा है। और कहीं-कहीं पर ठहर भी जाता है। लगता है, जैसे गुस्से में है। नक़ली गुस्सा। सीधे बहाव का नकली भँवर! सुअरों ने छत्ता बाँध लिया है। पानी में घुसे थूथनों से फों-फों की आवाज निकल रही है। गुँगुआते हुए क्या सब कह रहे हैं? पानी की गहराई और उसके भयंकर रूप को वे पहचान गये हैं, इसलिए इकठ्ठा होकर अपनी जिम्मेदारी पर वे खुद ही बढ़ते जा रहे हैं। वे अपना जलूस बनाकर बढ़ रहे हैं। उनकी लड़ाई पानी के साथ है। फिर भी, उस हालत में भी जितनी बीट-गन्दगी सामने तैरती जाती है, सब वे लीलते जा रहे थे।

और वे देख रहे थे कि दरिया लगातार खिसकता जा रहा है। गहरा दरिया! अब भी बीच तक नहीं आ पाये थे। पानी के थपेड़ों में उनके हाथ-पैर और सिर के रग-रग झनझना रहे थे। पानी ठंडा, लेकिन उनके पैर से गर्मी निकल रही थी। पसीना बह रहा था। पानी और पसीना घुल-मिल रहा था।

पानी खिलखिलाकर हँसता और सीधी धारायें मुड़-मुड़ जातीं। मुड़-मुड़कर वे फूल उठतीं और उनसे पानी में डुबकी लगवातीं और कहतीं, आया है! आ जा, और आ जा!

यह कहता और समुद्र को रीता करता हुआ खिल-खिलाता बढ़ता आता!

हाँ, जाना होगा! हे माँ, हे गंगा मइया! जाना ही होगा! बहुत लाठियों की चोट तुझपर पड़ी है, जानवर को डराने के लिए। तेरी सहनशक्ति कितनी है! हम लोगों का कोई कसूर नहीं है, हमारी क्या हिम्मत? दरिया के ऊपर से हमेशा आदमी को गुज़रना पड़ता है।

औरत के मुँह की ओर अब देखा नहीं जाता। दरिया का ज्वार बढ़ता ही जाता और उसकी आँखों में कोई अशुभ संकेत झाँकता। पानी को ठेल रही है, पर अब उससे कुछ और नहीं हो पा रहा है। बार-बार दूर बह-बह जाती। हाथ की संटी अब तनी हुई नहीं थी। झुक गयी थी।

मर्द कुछ पूछना चाहता था, पर हिम्मत नहीं पड़ी। अगर कह दे, अब नहीं होता, ताक़त ख़त्म हो गयी है, छुट्टी दो!......बाबूसाहब नागिनप्रसाद ने उनकी शादी में दो सुअर मारे थे, एक मन चावल दिया था और चार मटके ताड़ी के।

आसमान उतरता चला आ रहा था। यकायक पश्चिम की ओर से एक बिजली की चमक उनके सिर के ऊपर खो गयी। अगले ही क्षण कड़कड़ब्बुम् का शब्द हुआ।

बस, जानवरों ने अपना जलूस तोड़ दिया। तितर-बितर हो गये। कई आँ-आँ शब्द करने लगे।

बहुत बड़ी भाकुर मछली की तरह औरत ने पानी में छलांग मारी। फिर हाथों में संटी ऊँची हो उठी। मर्द ने लाठी तानकर हाँक लगायी—ख़बरदार! कोई डर नहीं, चल! जितनी फ़ुर्ती से बन सके, चल!

जो दो-एक मछुओं की डोंगी आस-पास थीं, वे सब किनारे की ओर खिसक गये हैं।

जितना पश्चिम की ओर जाओ, उतना ही ज़ोरदार बहाव! पश्चिम में पानी टेढ़ा है। पानी वहाँ नीचे-ही नीचे लपलपाता मिट्टी खा रहा था। मन्दिर कहाँ हैं? शिव-मन्दिर, शिवाला? वह, वह रहा। बहुत दूर है। अभी आधा दरिया बाकी है। वहीं पर मोड़ के मुँह पर, जहाँ पर बहाव पागल की तरह छटपटा रहा है!

वे सुअरों के पास से लगातार खिसकते चले जा रहे थे। सुअर मानो छत्ते बनाकर चल रहे थे। इसी लिए उनकी गति में एक शृंखला और संयम था। वे दोनों तिनकों की भाँति छटकते जा रहे थे।

इन दोनों पर जानवरों का विश्वास अब बँध गया था। उन्हें छटकते देखकर वे डर जाते थे। इसी लिए डरे हुए, सन्देह-भरी आवाज़ में वे बार-बार हींक रहे थे।

और वे बहाव को ठेलकर नज़दीक रहने की कोशिश कर रहे थे, पर लाचार। जितना ही वे ठेलते, अशक्त होते जाते। हाथ-पाँव ढीले हो गये। कंधे और घुटनों में खिंचाव आ गया था।

वे दोनों एक-दूसरे के नज़दीक आ गये थे। औरत ने मुँह उठाया। पानी से भींगा मुँह। आँखें लाल। बोली—अच्छा, हम वापस कैसे आयेंगे? फेरी की नाव के लिए पैसा मिलेगा न?

औरत, औरत ही थी। वह अब लौट जाने की चिंता कर रही है।

मर्द ने कहा—नहीं मालूम।

यकायक एक नयी धारा आयी। यहाँ पर पानी फ़ौलाद-सा रेखाहीन था, पर भयंकर रूप से विक्षुब्ध। खींचता नहीं, फेंक देता है।

लमहे-भर में औरत आँखों से ओझल हो गयी। फिर ऊपर आ गयी। सारा मुँह खुले बालों से ढँक गया था।

—कहाँ गयी?

—यहीं हूँ।

नहीं, डूबी नहीं। मर्द ने मूँछों में से हँसने की कोशिश की। इतनी ही देर में औरत को खोने का डर उसमें समा गया था। पूछा—कोई तकलीफ हो रही है क्या?

तकलीफ! यह भी क्या छूनेवाली बात है? लेकिन औरत ने कुछ न कहकर सिर्फ गर्दन हिलायी, नहीं।

मालूम पड़ता है, रात आ जानेवाली है। अँधियारा छा रहा था। फिर नागिन-सी बिजली चमचमा उठी। एक दिशा से नहीं, चारों दिशाओं से, मानो जानवरों की पानी से भीगी चमकती पीठ पर, सिर पर संटी मारती जा रही हो। सीधे उन्हीं के सिर पर मानो गाज गिर रहे थे। आसमान की आवाज़ ज्योंही रुकती, पानी की आवाज़ उसी क्षण दुगुनी हो जाती। डरे हुए जानवरों का झुंड चिल्ला रहा था।

अब मर्द की लाठी भी नीचे झुक गयी थी। दोनों ही भूख की बात भूल गये थे। बहुत देर हुई उसे भूले हुए। सुअरों को लेकर पार करना है, यही अकेली बात थी, यही एकमात्र चिन्ता थी!

जानवरों की गति बढ़ी। यानी धारा और तेज़ हो रही है। पानी आसमान को छूना चाहता, आसमान पानी को। पानी नीचे-ही-नीचे झपट रहा था। नीचे-ही-नीचे, टाँगों पर, पेट पर, सीने पर। धारा का रङ्ग-ढङ्ग फिर बदल गया था।

वे दोनों फिर नज़दीक आ गये थे। जानवर भी नज़दीक आ गये थे।

औरत न मालूम क्या खींच-खींचकर उठा रही थी। धोती उठा रही होगी। धोती खुली जा रही होगी, इसीलिए। दोनों के ही पंजे नये चावल के बने अँदरसे की तरह फूले-फूले और सिमटे-सिमटे-से हो गये थे। औरत बार-बार गोता खा रही थी और इस मैले पानी की तरह मैली आँखों से उसकी ओर देख रही थी।

उनकी शादी में रसुआ ने कैसी सुन्दर बाँसुरी बनायी थी! और आज इस सत्यानाशी दरिया में....

चिक्-चिक्-दूदुम्! चीख़ के मारे जानवरों के वीभत्स पीले दाँत निकल आये।

मर्द ने घूँट-घूँटकर कई बार पानी पिया। पुकारा—हो?

—हाँ-हूँ!—फिर हाँफते हुए औरत ने रुक-रुककर कहा—उनतीस आने में ठग गये हैं हम, है न?

—हाँ।

गंगा उनकी बातें सुनकर मानो सीना डुला-डुलाकर, ठेल-ठेलकर हिलकोरें लेती, किलकार रही थी।

फिर—अच्छा, रात हो जाने पर हम कहाँ पर रहेंगे?

मर्द ख़ामोश रहा। डरते हुए उसने देखा कि उत्तर को बहनेवाली धारा पास ही मोड़ खाकर यकायक दक्षिण की ओर रुख बदल रही है। क्या भाटा आ गया? सर्वनाश! मन्दिर के नज़दीक आकर फिर उल्टी ओर बहना होगा। एक नाव भी नहीं। और दो आदमियों के जिम्मे उनतीस जानवर।

अगले ही क्षण वह चिल्ला उठा—भँवर, भँवर!

जानवरों को भी उस चिल्लाहट में ख़तरे का इशारा मिला। वे मर्द की ओर ही बढ़ने लगे। पश्चिमी कगार अनदेखे ही मिट्टी खाता जा रहा था। वहाँ एक दहाना बन गया था और इसलिए आवर्त्त ज़ोरदार था।

उत्तर को जानेवाली धारा इसी लिए दक्षिण की ओर रुख कर बड़ा भँवर बन रही थी।

बड़ा भँवर! आदमी, जानवर, सब-कुछ लील जायगा। अरे बाप! हे मइया!

फिर से उन दोनों के शरीर में ताक़त लौट आयी। मर्द लाठी तानकर चिल्लाते हुए जानवरों के दक्षिण की ओर गया, जिससे डरकर सब भड़भड़ाकर उत्तर की ओर भागे।

लेकिन एक जानवर दक्खिन के बहाव में आ गया। मर्द चिल्ला उठा—गयी, गयी, हरामज़ादी! वही गाभिन सुअरिन! जिसका सन्देह और अविश्वास जियादा होता वह ऐसे ही जाता है। अब उपाय क्या है?

सुअरिन झुंड से बिछुड़कर चीख़ रही थी। सिर्फ कुछ हाथ की दूरी पर। चन्द रेखाओं के बाहर लेकिन उसे ठेलकर आ नहीं पा रही थी। मर्द भी उसके पास नहीं जा रहा था। उसे भी इसी तरह ठेलाठेल करना होगा और उसके बाद उसके साथ मरना होगा! लेकिन चारा क्या है?

औरत ने शोर मचाया—चले आओ! उसे मरने दो!

—मरने दूँ? सुअरिन मरेगी? इतने बच्चे पेट में लेकर मरेगी?

बिजली कड़की। बारिश आयी। बड़ी-बड़ी बूँदें! आख़िर वह आकर ही रही। हाय रे आसमान! तुझे भी कुछ हमदर्दी नहीं है!

यकायक मर्द ने झटका देकर सिर ऊपर उठाया। उसका चेहरा सुअर से भी डरावना दीख रहा था। ज़रा-ज़रा करके भँवर की ओर बढ़ने लगा। निगाहों से सुअरिन की दूरी नाप ली। उसके बाद सुअरिन के मुँह की ओर लाठी बढ़ा दी। अगर दाँतों में दबोच सके, तो पकड़ ले।

लेकिन सुअरिन भी लगातार पीछे हटती जा रही थी। मर्द और ज़रा आगे बढ़ा। बस, और नहीं। सुअरिन ठेल रही थी। ठेलते-ठेलते एकदम लाठी को दाँतों में पकड़ लिया उसने, मानो जीने की कोशिश में सुअरिन के दिमाग़ में भी अक्ल घुस आयी। नीचे के जबड़े के कई पीले दाँत दिखायी पड़ रहे थे। नथुने थर-थर काँप रहे थे और थूथन भी। गर्दन के कड़े रोएँ खड़े हो गये थे। मर्द जान जोखिम में डालकर खींचने लगा। बोला—पकड़! अच्छी तरह से पकड़! नहीं पकड़ सकती, तो छोड़ दूँगा!

मर्द खींचने लगा और सुअरिन लाठी को दबोचे रही। उसके बाद यकायक लाठी हाथों से फिसल गयी। और दीख पड़ा कि सुअरिन मर्द के सिर के पास आ गयी है। दोनों ही उत्तर की ओर तैरते रहे। लाठी उत्तर की ओर जाकर यकायक मोड़ लेकर दक्खिन के दहाने में चली गयी।

औरत उस वक्त सुअरों को लेकर काफी दूर बह गयी थी। ज्वार के धक्के में ठहरना मुश्किल था।

सुअरिन और ज़ोर से चीख रही थी। पानी की वजह से लगातार चीख नहीं पा रही थी। पर गला फाड़-

फाड़कर चिल्लाती रही, मानो कह रही हो, मैंने कहा था, तू हमें आफत में डालेगा! मैं अभी मरती, अभी!

और मर्द गाली देते हुए कहता—चुप, चुप, कमीन जानवर! तू अगर मेरी पालतू होती, तो किनारे उठकर आज तुझे पीट-पीटकर अधमरी कर देता!

दूर से औरत की आवाज़ नायी पड़ी—क्या हु.... आ?

मर्द ने जवाब दिया—बच गयी!

बारिश जमकर हो नहीं रही थी। बादलों का गरजना बढ़ गया था, बिजली लगातार चमक रही थी। गंगा लबालब किनारे तक भर आयी थी, फिर भी बहाव ज़ोरदार था।

मन्दिर के सामने नीचे की नींव ज्वार के उठान में काफी डूब गयी थी। लेकिन अरत सुअरों को लेकर मन्दिर पार कर बहती जा रही थी। सुअरिन को छोड़कर मर्द उस ओर तैरने लगा।

नज़दीक आकर देखा, औरत बार-बार डूब रही है। और सुअर उसके बगल से आगे निकले जा रहे हैं। किनारे से सोने का छल्ला चिल्ला रहा था—यहाँ! इस जगह पर उठाना है!

लेकिन औरत उस समय डूब रही थी। मर्द ने नज़दीक आकर उसे बाहों में लपेट लिया और खींचा। लेकिन अजीब बात है। पैर के नीचे जमीन आ गयी थी। तो औरत डूब क्यों रही है?

औरत को तब सर्दी लग रही थी और भींगा हुआ मुँह वेदना-भरी लज्जा और असह थकावट से भर गया था। फुसफुसाकर बोली—मुझे पानी में ही रहना होगा। एकदम नंगी हो गयी हूँ।

—अरे, दरिया ने धोती छीन ली है!—मर्द ने कहा—तब तू यहीं पर ठहर। मैं जानवरों को पहले उठा लूँ।

जानवरों को उसने ऊपर उठाया। फिर कमर से अँगौछा खोलकर खुद पहन लिया और अपनी छोटी-सी धोती पानी में फेंक दी।

सोने का छल्ला अपने साथ दो आदमी ले आया था। वे हँसने लगे। सोने का छल्ले भी। वह बोला—दरिया में कैसी दिल्लगी की!

इधर अँधेरा घिरता आ रहा था। बारिश भी जोर से आयी। नज़दीक ही सोने के छल्ले की बस्ती थी। सुअरों को घेरकर सभी वहीं पर ले गये।

*

काफी रात बीत चुकी है। गङ्गा के किनारे सोने के छल्ले की बस्ती में सुअरों के कटघरे के पास ही एक छप्पर के नीचे वे रात काट रहे थे। मजदूरी से आटा और सब्जी खरीद लाये थे। रोटी बन गयी थी। अब दोनों बैठे हुए खा रहे थे। चूल्हे में एक लकड़ी जल रही थी। उसी की रोशनी में वे खा रहे थे।

दरिया उस वक्त भीषण तरंगों में नाच रहा था। अन्धकार के घटाटोप में सब-कुछ ढँक गया था। बारिश लगातार हो रही थी। और पूरब से झटकेदार हवा मानो दबी जबान में धमका रही थी। जानवर आस-पास मुँह लटकाये घुर्र-घुर्र कर रहे थे।

परसों रात के बाद अब फिर वे खाना खा रहे थे। लेकिन औरत की आँखों से आँसू बरबस निकल रहे थे। छोटी धोती कमर को लाँघकर सीना नहीं ढँक पाती थी। वह खाती जाती और आँसू पोंछती जाती। मर्द ने उसके बदन पर हाथ फेरते हुए दुलार से कहा—न रो, न रो!

खाने के बाद औरत को सीने में लेकर मर्द उसे प्यार करने लगा। अब परसों रात की तरह उन दोनों के खून में भाटे की जगह ज्वार आया। जलती लकड़ी ठोंक-ठोंककर बुझा दी गयी। उसके बाद दोनों एक-दूसरे के खून के नज़दीक होकर ज़िन्दगी महसूस करने लगे।

बहुत देर बाद मर्द गुनगुना रहा था:

जुग-जुग पर आइलबनी पवन-सुत महाबीर
हई रामा!....

और उसकी रामा चैन से सो रही थी। निविड अन्धकार में हवा और बारिश दोनों मस्तियाँ ले रहे थे।

बंगला से अनु० प्रबोधकुमार मजूमदार

नारिकेलबागान, पो०—नैहाटी
२४ परगना। (पश्चिमी बङ्गाल).

पिक्चराइज़्ड...

ओम प्रकाश श्रीवास्तव
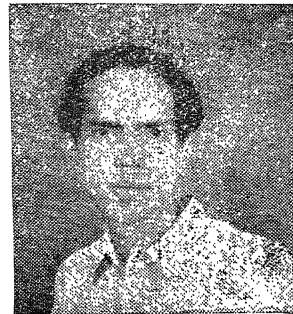
पम्प

गर्मी की रातों का सुखद, रहस्यपूर्ण सन्नाटा कम्पनी बाग की लताओं, कुंजों और क्यारियों को अपनी तहों में लपेटता जा रहा था। वातावरण में एक ताज़गी, ख़ामोशी और हल्की-सी खुनकी थी। सुफेद फूलों की क्यारियाँ अब भी बतायी जा सकती थीं, पर और रंग के फूलों पर सन्ध्या ने अपना नीलगूँ रंग फेर दिया था। पास की बेंचें खाली थीं और सिर्फ़ दो लड़कियों के साथ एक नवयुवक चक्कर पूरा करके हर एक दस मिनट में सामने से गुज़रता था। महाशय क के मुँह में एक सिग्रेट थी, कश खींचते समय कुछ उजाला हो जाने पर उनके बिखरे बालों और गेहुएँ रंग के साधारण, पर लावण्ययुक्त चेहरे का कुछ भाग लक्षित हो जाता था। कभी-कभी उनके अधखुले होंठों के बीच दो-एक छोटे-छोटे दाँत भी दिख जाते थे। वह अस्पष्ट-से शब्दों में ठहर-ठहरकर, कुछ अड़ते हुए-से कभी अपने स्वर को अलसाहटयुक्त बनाकर, कभी भावनापूर्ण और कभी झटके से बोल रहे थे।

वह कह रहे थे—देखो, मुझे बड़ा वह लगता है कि.... बात कोई नयी नहीं है, सभी कह चुके हैं।....वेश्या जीवन की सबसे बड़ी ट्रेजिडी यह है कि वह चाहे या न चाहे, पसन्द करे या न पसन्द करे, जो उसे चाहे, उसका मूल्य देकर उसे खरीद सकता है।

दोनों लड़कियाँ और वह युवक टहलते हुए हमारे पास से गुज़रे। मैं उनकी बातें सुनने लगा।

—कह दिया था मैंने।

एक मीठी, मादक हँसी—मैं सब जानती हूँ।

महाशय क वितृष्णा में भरकर चुप हो गये, क्योंकि मेरा ध्यान उनकी बातों से हट गया था। लड़कियों और नवयुवक के गुज़र जाने पर मैं बोला—फिर ?

—पहले आप लड़कियाँ देख लीजिए!—क झुन्नाकर बोले और इसी जोश में उन्होंने एक गहरा कश खींचा। उनका चेहरा पहले से कुछ चिकना हो उठा था और चेहरे पर सन्तोष ने एक मखमली आवरण-सा डाल दिया था, क्योंकि अभी हाल में ही काफ़ी ठोकरें खाने पर उन्हें सरकारी दफ़्तर में क्लर्क की एक जगह मिल गयी थी। महाशय क साहित्य-कार थे, कहानी-लेखक, गीतकार और नाटककार, पर उनके हृदय में अपने लिए जो सबसे उपयुक्त नाम लगता था, वह था कलाकर।

अपने मन की तमाम ग्रंथियों के बावजूद आदमी दिलचस्प थे। दोस्तों को देखकर उनका अन्तःकरण तक

खिल उठता था और फिर धौल-धप्पा, मीठी गालियाँ तक सुना जाने में भी अच्छे लगते थे। कब किस बात को हद से ज्यादा पसन्द करके खिलखिला उठेंगे या कब कल्पित आत्मसम्मान पर ठेस लग जाने से मन-ही मन कुड़मुड़ा उठेंगे या दो-चार खरी-खोटी सुना देंगे, इसका कुछ निश्चय न था। कलाकार की ज़िन्दगी में प्रतिभा की चिंगारियाँ पैदा करने के लिए प्रेम-रूपी पत्थर की ठेस लगना भी बहुत ज़रूरी है, यह उनका सिद्धान्त था। भाग्य ने उनका पूरा साथ भी दिया था, क्योंकि उनके अस्पष्ट विवरणों तथा भावावेश में कथित बातों से जितना जान सका था, उससे यह अन्दाज़ लगाना ग़लत न था कि प्रेम की ठेसों से उनका कलेजा छलनी हो चुका है। एक कमज़ोरी के मौक़े पर उन्होंने बताया था कि अपना पहला प्रेम उन्होंने छः साल की अवस्था में किया था! तब से अब तक लातादाद प्रेम वह कर चुके थे। अनगिनत लड़कियाँ उनके जीवन में आयीं, (यह उनका दावा था!) जितनी लड़कियों के विवरण मैंने उनके मुँह से सुने थे, उससे मैं भी अन्दाजा लगा सकता हूँ कि अगर वे सारी लड़कियाँ, जिनसे महाशय क ने प्रेम किया है, कम्पनी बाग से सर से सर जोड़कर बिछायी जायँ, तो आख़िरी लड़की कैन्टोनमेन्ट एरिया में पड़ेगी। पर साथ ही अब सब-कुछ जान लेने पर उन्हें यह मानना पड़ा था कि लड़कियाँ स्वभावतया ही बेवफ़ा होती हैं और यह आशा करना तो फिज़ूल ही था कि वह उसी सचाई और गहराई से प्रेम का प्रतिदान दे सकती हैं, जितना महाशय क के हृदय में होता था। उनसे वफ़ा की आशा करना पत्थर से सर टकराने के समान है। एक बार आपने फरमाया था—मेरे लिए यह ख्याल भी करना कि मैं किसी साधारण कौटुम्बिक लड़की से शादी कर सकता हूँ, असह्य है। या तो मैं उसकी ही हत्या कर डालूँगा या अपनी ही। हाँ, जिनके व्यक्तित्व में किसी तरह की ग्रंथियाँ नहीं हैं, जैसे वेश्यायें, उनसे शादी की जा सकती है। ख़ामख्याली के लिए वहाँ कोई गुंजाइश न होगी!

—हाँ, तो क्या हुआ?—मैंने पूछा।

उन्होंने सिग्रेट का अधजला टुकड़ा फेंक दिया। उनका रोष गायब हो चुका था, इसलिए बोले—कोई नयी बात नहीं है। क्या देख रहे हो?—फिर रुक-रुककर—काश,.... मेरे....पास....अधिक धन होता! वह जो भी अपनी कीमत लगाती, मैं उसे दे सकता था। मैं तो उसके साथ सारी जिन्दगी बिताने को तैयार हूँ।

—हूँ,—मैंने निरुत्साहित ढंग से कहा।

—उफ्!—वह एकदम से जोश में आ गये—मुझे पागल बना दिया है उसने!—सर को एक तरफ झटक कर—कितनी प्यारी बातें थीं! उनका स्वर इस तरह गल-गला गया, जैसे मुँह में रसगुल्ले भरे हों—बिल्कुल मूर्खता-पूर्ण बच्चों की-सी बातें थीं। कहने लगी, तुम्हारी पेटी चमड़े की है, पर मेरी सोने की है!—वह हँस पड़े।

—जब मैं चलने लगा, तो बोली, सिग्रेट पीते जाव। मैंने कहा, सिग्रेट ख़त्म हो गये हैं, तो बोली, मेरा ले लो। चार-छः पैसे में मेरा कुछ न बिगड़ेगा। किसी किसान की लड़की है।

पहली बार मेरे हृदय में कुछ हुआ। कुछ धूमिल कल्पनायें मस्तिष्क में उभरीं और मिटीं।....किसान.... खेत....ढोर....मुक्त, खुला वातावरण....चंचल दिन और शान्त रातें....माँ....बाप....भाई-बहन....सरसों के पीले फूल....गेहूँ की सुनहरी बालियाँ....जिनमें चिथड़ों में वह राजरानी सी इठलाती फिरती होगी। और अब....

—तो यहाँ कैसे?

—मामूली बात है। किसी के साथ भागी होगी। उसने छोड़ दिया होगा। किसी ने ला बैठाया होगा यहाँ। —वह शान्त भाव से बोले—पर कितनी अलग है वह इन-सबसे! उसकी आवाज़ कितनी अच्छी है! जी चाहता है, सुनता ही रहूँ!

सहसा वह उठ खड़े हुए और बोले—अच्छा, मैं चलूँगा। गुड नाइट!

और उस सूनी बेंच पर ख़ामोश, ठंडी रात में टिम-टिमाते तारों के बीच मैं अकेला रह गया। उठ पड़ा और चल खड़ा हुआ। फूलों की क्यारियों से ताज़गी-भरी महक आ रही थी और मैं आगे बढ़ रहा था। मुझे हल्की-सी सुरसुरी-सी महसूस हो रही थी।

बात यों थी कि आज शाम को मैं क से मिला, तो घर से बाहर निकलते ही वह खुल पड़े—कल एक बड़ी नायाब लड़की मिली थी! चलते हो देखने?

किसी नायाब लड़की को देखने की इच्छा किसी नवयुवक में खाने-पीने की आवश्यकता की तरह ज़रूरी चीज़ है। बिना जाने कि उनकी नायाब लड़की कौन है, कहाँ है, मैं उनके साथ हो लिया। बहुत जल्द उनकी बातों से पता चल गया कि वह एक वेश्या है, जिसके यहाँ वह कल रात को गये थे। वेश्याओं के विषय में मेरे दोस्त का ख़्याल था कि बंगाली उपन्यासकार शरत्‌बाबू के बाद भारत में वह दूसरे व्यक्ति हैं, जिन्हें सबसे अधिक उन्हें जानने का सौभाग्य प्राप्त है! लेकिन शरत् का वेश्याओं का चित्रण भी बहुत कुछ आदर्श है। वह अगर कभी वेश्या-जीवन पर कुछ लिखेंगे, तो 'कुप्रिन' (रूसी लेखक) की लाश कब्र में तड़फड़ा उठेगी, गोर्की और दस्तावस्की अच्छे खासे उल्लू बन जायेंगे। जल्द ही वह इस नायाब लड़की पर कुछ लिखेंगे। उनके अनुसार वेश्या होने के बावजूद भी उसमें ऊँचे दरजे का औरतपन मौजूद है। उदास, गुमसुम और आकर्षक। उसके व्यवहार में कम-से-कम दूकानदारी उन्हें नहीं मिली। यदि उनकी बातों पर यकीन करूँ, तो सचमुच ऐसा लगेगा कि जैसे क ने दूसरी चन्द्रा ('देवदास' की एक पात्री) खोज निकाली है। मेरा हृदय ईर्ष्या से भुन गया। चन्द्रा के स्वप्न सन्ध्या के उदास, धुँधलकों में मेरे मानस नेत्रों में भी तैर चुके थे। पर मुझमें और 'देवदास' में जो फर्क है, यही सोचकर दिल बैठ जाता था। मानना पड़ेगा कि मेरे हृदय में काफी उत्सुकता जाग उठी थी।

अभी शाम में कुछ देर थी। हम वेश्याओंवाली गली में मुड़ गये। दिन की रोशनी में यह जगह अजीब मनहूस, उदास और शिकस्तादिल-सी नज़र आती है। सूने-सूने दरवाजे जैसे प्रश्नवाचक दृष्टि से प्रत्येक आने-जानेवाले को घूरते हैं कि इस वक्त तुम यहाँ कैसे? क्या तुममें इतनी दीदा-दिलेरी है कि तुम अपने पैदा किये हुए इस कोढ़ को दिन की रोशनी में देख सको, जहाँ प्रत्येक रात तुम अपनी माँओं-बहनों के समान शरीरवाली स्त्रियों की देह का सौदा करते हो? संसार के उन्मुक्त, खुले वातावरण से पशुओं की तरह हाँककर तुम उन्हें यहाँ लाते हो और ऐसे शिकंजों में उन्हें बन्द कर देते हो, जहाँ से वे जिन्दगी-भर न निकल सकें और सदैव तुम्हारी पशुता की धधकती अग्नि में आहुति बनती रहें!

मेरे दोस्त एक दरवाज़े के सामने रुके और बोले—यहीं।

वह दरवाज़े से घुस गये और उनके पीछे-पीछे मैं भी बाहर की रोशनी से आने के कारण उस अन्धकारमय कोठरी में मेरी आँखें धुँधला-सी गयीं। शायद अपने पीछे किसी बूढ़ी औरत का आकार देखा। अन्दर कुछ न देख सका। अन्दर एक और दरवाज़ा था और गलियारे की तरह एक छोटा, लम्बा कमरा। उसके दरवाज़े पर २२-२४ साल की एक नमकीन युवती अपने काले, लहराते बालों को खोले आलस्य-भरी मुद्रा में खड़ी थी। एक हाथ में बालों की लट सँभाल रखी थी, जिससे पता चलता था कि बाल सँवार रही होगी। क ने दूसरी चौखट लाँघी और अब वह बिल्कुल उससे मिले-से खड़े थे। पता नहीं उन्होंने अपने हाथों से उस युवती के बाजू को छुआ या यह क्रिया उसकी तरफ़ से हुई। फिर बोली—क्या है?—स्वर में साफ़-साफ़ खीझ थी।

अन्दर उस पतली जगह में एक चारपाई बिछी थी, जिसपर एक सुफ़ेद चादर और एक लाल रंग का तकिया पड़ा था। मैं चौखट के बाहर खड़ा था और मंत्र-मुग्ध-सा उस बिस्तरे को देख रहा था। काले विषधर के-से आकर्षण से उसने मेरी आँखें पकड़ रखी थीं। शायद इस दौरान में युवती ने विवशता के अन्दाज में कहा—चले आइए। बैठिये न।

मेरा दिमाग़ कुछ धुँधला-सा रहा था। मुझे लग रहा था कि लकड़ी की वह काठी, जिसपर बकरों की गर्दन रखकर एक ही बार में गर्दन साफ कर दी जाती है, उसमें और लाल रंग के उस तकिये में ज़रूर कुछ समानता थी! मुझे वह तकिया भी उतना ही रक्तरंजित लग रहा था, जिसपर मनुष्य-जीवन की सारी मानवीय
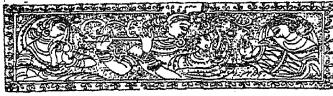
भावनाओं का बार-बार गला काटा जाता हो।....वह गाढ़ा, लाल रंग, सूखे खून का रंग !

महाशय क कह रहे थे—पहले यह बताइए कि आपने मुझे पहचान लिया न ?

—हाँ........हाँ,—युवती ने बड़े हिचकते हुए कहा।

मुझे साफ़ लगा कि उसने उन्हें बिल्कुल नहीं पहचाना है। हाँ, इस अप्रत्याशित परिस्थिति को टालने के लिए वह घबराहट में इसे स्वीकार कर रही है। अभी तक वह हम लोगों का कोई मतलब नहीं समझ सकी है।

क साहब कहते जा रहे थे—कुछ नहीं, ऐसे ही आपके दर्शनों को चला आया।—मेरी ओर संकेत करके—ये मेरे मित्र हैं। आपकी बात हो रही थी, देखने चले आये हैं।

मेरी तरफ़ इशारा होने पर अब उस युवती ने मेरी तरफ़ देखा। और मैं झुँझला उठा। अब मैं क्या करूँ। ऐसी स्थिति में अब साधारण परिचय के बाद तो हाथ जोड़कर नमस्ते और 'बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर' होना चाहिए था। पर यह बहुत ही नगण्य लगा, इसी लिए चुप रहा। इसके बाद हम चल दिये। सड़क पर पहुँचने पर बुढ़िया का स्वर सुनायी पड़ा—क्या बात थी ?

मानना पड़ा कि चन्द्रा को देखकर निराशा हुई।

मित्र बोले—कहो, कैसी है ?—उनका अन्दाज़ इतना फख्रिया था कि लगा, जैसे किसी शिकारी ने नायाब शिकार किया है और अब दूसरों से भी अपना बखान सुनना चाहता है।

बिना किसी भाव के कह दिया—अश्चर्यजनक !

क थोड़ा-सा मुस्कराये और बोले—देखो, तुम यहाँ कभी मत आना !

मुझे थोड़ी-सी हँसी आयी, पर वह उसी गम्भीर भाव से कहते गये—जानता हूँ कि वह वेश्या है और बहुत-से लोग आते-जाते हैं। पर यह तो हमारे-तुम्हारे बीच का एक समझौता है।

और इसके बाद टहलते हुए हम कम्पनी बाग़ थे।

हवा

दोपहर का खाना खाकर मैं अपने बिस्तरे पर पड़ा था। एक मीठी-सी सुस्ती बदन पर छा रही थी। खाना खाने के बाद गर्मी के दिनों में यदि बहुत गर्मी न हुई, तो कुछ दार्शनिकता का मूड आ ही जाता है। मैं खिड़की से बाहर देख रहा था, एक बड़ा-सा छतनार शहतूत का पेड़, जिसकी पत्तियाँ हवा के दबाव से झुकती थीं और फिर अपनी पहली जगह पर आ जाती थीं। दो तीन केले के पेड़ों के लम्बे-लम्बे पत्ते हल्की-सी आवाज़ करते हुए अलसाये-से झूम रहे थे....कि दरवाजे पर ज़ोर का झटका लगा और तमतमाये चेहरे से क ने कमरे में प्रवेश किया।

उन्होंने गेरुए रंग का एक रेशमी पैंट पहन रखा था, जिसे उन्होंने एक रेशमी, भड़कीली टाई से बाँध रखा था। उनके बाल इस समय ज़रूरत से कुछ ज़्यादा बिखरे थे। वह धम से कुर्सी पर बैठ गये और अपने बालों में उँगलियाँ उलझाते हुए रहस्यमय भाव से मुस्कराने लगे। उनका चेहरा खिला हुआ था और आँखें चमक रही थीं।

छूटते ही बोले—कल बड़ी बातें हुईं और बड़ा मज़ा आया !—उनका चेहरा भावावेश में पिघला और धूमिल-सा लग रहा था।

—क्या बातें हुईं ?

उन्होंने सिग्रेट सुलगाने के बाद अजीब उल्लास और बेबसी के अन्दाज़ में कहना शुरू किया—उफ़ ! यह लड़की पागल कर देगी, (एक लम्बी साँस) मेरे सारे निश्चयों और मान्यताओं को उसने एक झटके में ही तोड़ दिया है।—फिर सहसा वह सिहर-से उठे—कुछ नहीं, कुछ नहीं, मैं प्रेम करने की बेवकूफ़ी नहीं कर सकता, नहीं कर सकता, नहीं कर सकता ! उफ़ ! दुनिया का काफ़ी देख लिया है, अब ये खेल खेलने की शक्ति नहीं।—फिर भक्ति-भाव से मिनमिनाकर बोले—मैं सदैव भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि, हे भगवान ! चोरी, डाका, हत्या चाहे जो करवा लो, पर प्रेम न कराना अब ! हे ईश ! प्रेम न कराना !—लेकिन उनके स्वर में इसके काफ़ी संकेत थे

कि ईश्वर ने उनकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया है और अब वह गले तक प्रेम के कीचड़ में डूब चुके हैं। उनका अपने पर से क़ाबू बिल्कुल छूट चुका है।

फिर बोले—कल तुमसे अलग होने के बाद उसके यहाँ फिर गया था। तुम से शाम को जो बातें हुई थीं, उससे कह दीं। यह भी बताया कि मैंने तुम्हें मना कर दिया है कि वहाँ मत जाना। उसने पूछा, क्यों? मैंने कहा, मैं जो वहाँ आता हूँ। तो कहने लगी, तुम्हारी बातें बड़ी अच्छी लगती हैं!—यहाँ महाशयक ने मेज़ पर पड़ा शीशा उठा लिया और क्षण-भर ग़ौर से अपने को देखते रहे। फिर बोले—जब मैंने परसों की चमड़े की पेटी और सोने की पेटीवाली बात उसे याद दिलायी, तो शर्मा गयी! उफ़! आज सुबह गया था। उसकी तबीअत ख़राब थी, दिल के दौरे पड़ रहे थे, तुम तो जानते होगे, तुम्हें भी तो धड़कन होती है।

दूसरी बार फिर मेरे अन्तर में कुछ हुआ। दिल की धड़कन से मैं परिचित था। मेरे डाक्टर ने कह रखा था कि मुझे खूब आराम करना चाहिए। अच्छी, पुष्टिकारक और जल्दी हज़म होनेवाली चीजें, जैसे फल इत्यादि ज़्यादा इस्तेमाल करना चाहिए। रात में जल्दी सोना चाहिए और किसी क़िस्म का बोझ अपने ऊपर न डालना चाहिए। उत्तेजना को उन्होंने ज़हर कहा था।

फिर वह बोले—कल सेकेन्ड शो सिनेमा जाने की बात तय की थी। उसी को पक्का करने गया था। सेकेन्ड शो में ही सम्भव था, क्योंकि उस समय किसी के देखने की कम सम्भावना रहती है, (यह मैंने उनके स्वर में पढ़ा) पर उसकी तबीअत ही खराब हो गयी।

—अच्छा, तो तुमने अब सोशल काल भी देना शुरू कर दिया?

—क्या मतलब?

—डिक्शनरी हाज़िर है,—मैंने मेज पर इशारा किया।

बात उन्हें पसन्द न आयी। सहसा बुझते चिराग़ की धीमी पड़ती लौ की तरह दुखी स्वर में वह बोले—पर शायद ऐसा जान पड़ता है कि अभी तक वह मुझपर विश्वास नहीं कर सकी है। लोगों ने समझाया होगा कि सेकेंड शो में जाना ठीक नहीं। डर लगता है कि कहीं उसकी सादगी भी तो बनावटी नहीं है।

फिर एक लम्बी साँस लेकर बोले—रुपये तो मैं उसको अधिक क्या दे सकता हूँ, पर मैं चाहता था कि अगर हो सके, तो उसे थोड़ा-सा ज़िन्दगी की खुली हवा में घुमा-फिराकर, उसे मनुष्य-जीवन का अनुभव कराऊँ। ज़िन्दगी की खुली हवा, आकाश की नीलिमा, पेड़ों की हरीतिमा और दरिया की लहरों का स्वर्गिक नृत्य....यही वह खज़ाना है, जिसे मैं उसे और सबसे अधिक दे सकता हूँ!—फिर सर को ज़रा-सा झटका देकर—यानी मैं उसे जीवन की दूसरी परिस्थितियों में देखना चाहता हूँ, खुली हवा में टहलते....तुम ऐसे मित्रों के साथ चाय पीते....और नाव में....

फिर सहसा वह वेश्याओं के जीवन पर वक्तव्य देने लगे—वैसे, क्या ज़िन्दगी है! सुबह देर तक सोना, उठकर नहाना-खाना, फिर शाम को उठकर तैयारी, ग्राहकों का इन्तज़ार और दूसरी वेश्याओं से रात के अनुभव के बारे में गपशप........

इस हिन्दी के कुप्रिन को बता देने की तबीअत हुई कि मैं वेश्या जीवन का विशेषज्ञ तो नहीं, पर इतना कहूँगा कि काश, तुम्हारी कल्पना की तरह आसान यह जीवन होता! पर इस इरादे को छोड़कर बोला—अब क्या इरादे हैं?

दो क्षण तक सर झुकाये वह ख़ामोश रहे। फिर सहसा बोले—कुछ नहीं, भाई।....डरता हूँ, आख़िर तो वह वेश्या है। न वे हमारा विश्वास कर सकती हैं और न मैं। उनका पता नहीं, क्या होनेवाला है!—अन्तिम वाक्य उन्होंने इतने रहस्यात्मक भाव से कहा कि विश्वास हो गया कि कुछ भयानक ज़रूर होनेवाला है। मैं सिहर उठा।

पिचका टायर

यकायक आँख खुली और हड़बड़ाकर उठ बैठा। काफ़ी काम करना था। पर जो ज़रा देर के लिए लेटा

था, पता नहीं, कब आँख लग गयी। खिड़की के बाहर दृष्टि डाली, तो देखा कि आसमान से अँधेरे के कण बरस रहे थे। हवा जैसे थककर रुक गयी थी और एक ठहराव-सा वातावरण में आ गया था, जैसे दिन-भर मेहनत करने के बाद शाम को मजदूर के हाथ।

शाम को कमरे में रहने का आदी न था। जल्दी से कपड़े पहने और सोचा कि कुछ देर टहल आऊँ। सहसा चुपके से मिस्टर क ने अन्धकार की तरह कमरे में प्रवेश किया। उनके चेहरे पर सन्ध्या की थकान और अवसाद था। वह अनमने-से हो रहे थे। बड़े ढीलेपन से वे मेरे बिस्तर पर गिर पड़े और बोले—चाय पिलाओ।

—चलो, बाहर किसी रेस्तराँ में पी ली जायगी,

बड़ी आसानी से वह मेरी बात मान गये।

आसार अच्छे नहीं थे। उनका इस तरह मान जाना आश्चर्यजनक था। कई दिन से मिला न था। शायद वह अत्यधिक व्यस्त रहे होंगे! मैं अपनी कोठरी में दुबका किसी अप्रत्याशित घटना की आशा कर रहा था, क्योंकि जब क ऐसा क्रान्तिकारी साहित्यकार व्यक्ति प्रेम में पड़ जाय, तो क्या न कर डालेगा! अगर कोई बड़ा मौलिक कदम उन्होंने नहीं उठाया, तो फिर किसने माँ का दूध पिया है, जो ऐसा करेगा! यह स्वयं उन्हीं के कथन थे। ऐसे में आशा करना कोई बहुत अस्वाभाविक न होता कि क साहब दौड़ते हुए कमरे में चले आ रहे हैं और बोलते हैं, परसों हमारी सिविल मैरिज है, एक गवाह तो तुम रहोगे ही।....या किसी दिन एक बजे रात को वह दरवाजा खटखटाते हैं और उनके पीछे सिकुड़ी-सहमी 'चन्द्रा' भी है, लो, भई, इन्हें नरक से निकाल लाया!....दो-एक दिन तुम्हारे ही कमरे में बिताना होगा। फिर....इत्यादि। ऐसी बातों की कल्पित सम्भावना मेरे सिर पर शंका की तलवार-सी लटकती रहती थी। पर आज का ढीलापन समझ में न आया!

हम घर से निकलकर सड़क पर आ गये। अन्धकार ने सड़क को अपनी तहों में लपेट दिया था। बिजली की बत्तियों का प्रकाश प्रतिक्षण तेज होता जाता था। पर इस समय शान्त होने की जगह पर वातावरण बड़ा गर्म और क्षुब्ध-सा था। परसों ही ऐलेक्शन थे। क्षण-क्षण में सर्राती हुई कार, लारियाँ सड़क पर से गुजर रही थीं। एक के लाउडस्पीकरों की आवाज अभी हवा में घुलने भी न पाती थी कि दूसरे लाउडस्पीकर की आवाज उन्हें दबा लेती थी।

महाशय क बड़े ही गिरे मूड में थे। यान्त्रिक भाव से वह सिग्रेट-पर-सिग्रेट फूँकते जा रहे थे। आखिर मैंने असल मामले की ओर रुख मोड़ा—क्यों, क्या हाल हैं?

वह चौंक पड़े। सिग्रेट हाथ से छूटते-छूटते बची। बोले—ऐं?

अधिक स्पष्ट करना पड़ा—फिर मिले? क्या हाल-चाल हैं?

एक क्षण के लिए उनका चेहरा और अन्धकार जैसे आपस में गले मिलने लगे। फिर एक लम्बी साँस ले, फुसकारते-से बोले—सब खत्म हो गया। अच्छा होता कि पहले दिन के बाद बिल्कुल न मिला होता। कम-से-कम एक मधुर स्मृति तो रह जाती....

मुझे एक धक्का-सा लगा।

—क्यों?

—कुछ नहीं,—वह टालने लगे, पर बिना कहे रह भी न सके—कल मिला था। जब मैं गया, अन्दर कोई दूसरा था उसके पास। बाहर के कमरे में बातचीत सुनायी देती थी।

—क्या बात?

—वही, जो होती है।

—तो भी?

—अब कभी न जाऊँगा!

मेरे सीने में हँसी का एक क्रूर फव्वारा-सा उबल पड़ा—इडियट! गदहे! तो इसमें क्या हुआ?

वह जमीन पर नजरें गड़ाये बोले—जानता हूँ, वह वेश्या है, फिर भी....

फिर भी! फिर भी! मेरे कानों में उनके शब्द गूँज रहे थे, वेश्या-जीवन की सबसे बड़ी ट्रेजिडी यह है कि वह चाहे या न चाहे, पसन्द....फिर उस हिन्दी के कुप्रिन को बता देने की इच्छा हुई कि क्या यही ट्रेजिडी है कि उसे

रुपये के एवज़ में शरीर बेंचना पड़ता है ? यह कोई समस्या नहीं। पर यह ज़रूर समस्या है कि कुछ रुपयों के एवज़ में शरीर पर काबू पा लेने-मात्र से किसी का मन नहीं भरता। उसके साथ वह कुछ और भी चाहता है। स्त्री-पुरुष के नैसर्गिक सम्बन्ध की भावनायें भी पाना चाहता है ! और इस माँग को पूरा करने की चेष्टा ही वेश्या-जीवन की ट्रेजिडी और शोषण की पराकाष्ठा है !

लेकिन मेरे दोस्त ने ऐलान-सा कर दिया—'चन्द्रा' शरत बाबू की कल्पना थी !

आर० बी० एन० कालेज,
गोसाईंगंज,
फैजाबाद।

अलिफ़ लैला १९५६

यानी पत्थर की सेज पर एक हज़ार रातें

ख्वाजा अहमद अब्बास

—बेटा! पहली ही रात हमेशा सबसे ज़्यादा कठिन होती है!

बूढ़े भिखारी के ये शब्द मुझे सदा याद रहेंगे।

जिस अनाड़ीपन से मैं फ़ुटपाथ पर अख़बार के काग़ज़ बिछाकर सोने की तैयारी कर रहा था, उससे वह पहचान गया था कि मैं इस दुनिया में नवागन्तुक हूँ। और एक ख़ुश्क हँसी हँसते हुए उसने कहा—लेकिन घबराओ नहीं, बेटा! बहुत जल्द इस पत्थर की सेज पर सोने की आदत पड़ जायगी!

अपनी नयी जिन्दगी की पहली रात गुज़ारने के लिए मैंने जान-बूझकर एक सुनसान-सी गली का अँधेरा-सा फ़ुटपाथ तलाश किया था। प्रति क्षण यह डर लगा हुआ था कि कोई परिचित न मिल जाय। इन तीन वर्षों में उस स्वाभिमान और शर्म के एहसास को मैं कितनी दूर छोड़ आया हूँ! दरअसल यह कहना सही होगा कि उस रात को मेरी मौत हुई। पुराना 'मैं' मर गया और फ़ुटपाथ पर रहनेवालों की गुमनाम बिरादरी में एक ख़ानाबदोश और बढ़ गया।

फ़ुटपाथ से पहले

मुझे उस समय बम्बई आये सिर्फ़ एक महीना हुआ था। लेकिन उन तीस दिनों में मेरी काया ही पलट गयी थी। ऐसा लगता था कि वह नौजवान, जो बोरीबन्दर के स्टेशन पर उतरा था, अब साठ वर्ष का बूढ़ा हो चुका है। न जाने मेरी आँखों की चमक, मेरे गालों की सुर्ख़ी, मेरे बदन की ताक़त इन तीस दिनों में कहाँ ग़ायब हो गयी थी! मैं हाथरस से बम्बई थर्ड क्लास में आया था, लेकिन बिला टिकट नहीं। टिकट के अलावा मेरी जेब में बाईस रुपये थे, मैट्रिकुलेशन का सार्टीफ़िकट था और अपनी पुरानी, लेकिन काम करती हुई घड़ी थी, जो मुझे अपने स्वर्गवासी पिता से वरसे में मिली थी, और मेरे दिल में जवानी का जोश था, काम करने और उन्नति करने की उमंग थी।

मेरे एक दोस्त ने अपने चचेरे भाई के नाम एक चिट्ठी दी थी कि जब तक मुझे काम और रहने की कोई अलग जगह न मिल जाय, वह मुझे अपने घर रख लें।

वह बेचारा एक कपड़े के कारखाने में काम करता था और अपनी पत्नी तथा दो बच्चों के साथ परेल की एक चाल में पाँचवें माले पर एक कोठरी में रहता था, जो बम्बई की भाषा में 'खोली' कहलाती है। यह कोठरी या खोली रहने के अलावा नहाने-धोने और खाना पकाने के लिए भी इस्तेमाल होती है। खोलियों की क़तार के पीछे एक पतला-सा बरामदा था, जिसमें से होकर सम्मिलित पाख़ानों को रास्ता जाता था। रात को मैं बरामदे में चटाई बिछाकर सो रहता। पास ही एक कारख़ाने की चिमनी थी, जिसका धुआँ अक्सर हवा के साथ उड़ता हुआ वहाँ आ जाता। इसके अलावा पाख़ानों के नल कभी काम न करते थे और रात-भर ऐसा मालूम होता, जैसे असग़र अली मुहम्मद अली इत्रवाले के कारख़ाने से ख़ुशबूओं के भभके आ रहे हैं। लेकिन दिन-भर काम तलाश करने के बाद मैं घर लौटता, तो इतना थका हुआ होता कि बिस्तर पर लेटते ही सो जाता। न फ़ैक्ट्री का धुआँ मुझे सताता, न पाख़ानों की बदबू और न उन तमाम लोगों के सुरीले ख़र्राटे, जो मेरी तरह उस बरामदे में सोते थे। और मैं अपने दोस्त के भाई का एहसानमन्द था कि उसकी मेहरबानी से मेरे पास सर छुपाने का ठिकाना तो है, घर से चिट्ठी मँगाने का एक पता तो है।

और फिर एक रात को जब हवा बन्द थी और बरामदे में हम लोग हाथ के पंखे झलने पर मजबूर थे, खोली के बन्द दरवाज़े के पीछे मुझे खुसुर-फुसुर सुनायी दी :

—बाप-रे-बाप, कैसी गर्मी है!—पत्नी कह रही थी—भगवान के लिए दरवाज़ा तो खोल दो! शायद हवा की कोई लहर आ जाय।

—पागल हुई है!—उसके पति ने जवाब दिया—दरवाज़ा कैसे खोल सकते हैं, जब वह वहाँ पर सो रहा है? यह तो बड़ी बेशर्मी होगी।

सो अगले दिन 'वह' यानी मैंने उनसे कहा कि मैंने दूसरी जगह सोने का इन्तज़ाम कर लिया है।

—सोच लो, भाई। न जाने वहाँ तुम्हें आराम भी मिलेगा।—उस भले आदमी ने तकल्लुफ़ करते हुए मुझसे कहा।

और मैं सफ़ाई से झूठ बोला—फ़िक्र न करो, वहाँ जगह बहुत है।—यह मैंने नहीं कहा कि इतनी बड़ी जगह है, जितना बम्बई शहर।

पहली रात

'बेदरोदीवार का एक घर बनाना चाहिए।'

बेटा, पहली रात सबसे ज़्यादा कठिन होती है!

भिखारी का कहना कितना सही था! उस रात को मुश्किल से चन्द मिनट सो सका होऊँगा। फ़ुटपाथ के पत्थरों की हज़ारों नोकें मेरे बदन में चुभ रही थीं। पास की नाली से दुनिया की बदतरीन बदबूओं के झोंके आ रहे थे। मुझे नवागन्तुक समझ एक खाज का मारा कुत्ता मेरा मुआयना करने पर तुला हुआ था। एक मरियल-सी बिल्ली मेरी टाँगों से उलझती हुई एक चूहे का पीछा कर रही थी और कुछ क्षण पहले यही चूहा मेरे पाँव की उँगलियों को कुतरने की चेष्टा कर रहा था। मैंने सोचा कि पैरों की सुरक्षा के लिए जूते पहनकर सोऊँ। अँधेरे में टटोला, तो लगा कि जूते ग़ायब हैं। मैंने तय किया भविष्य में सोते समय कभी जूते नहीं उतारूँगा।

जब आँख न लगी, तो मैंने बीड़ी सुलगायी और आसमान की तरफ़ देखता रहा। सितारे उस फ़ुटपाथ से दूर, बहुत दूर थे। एक क्षण के लिए मुझे यह डर लगा कि आस-पास की ऊँची-ऊँची इमारतें झुककर मुझे देख रही हैं और न जाने कब अड़ा-ड़ा-धम्म करके गिर पड़ें और हम फ़ुटपाथ पर सोनेवालों को चकनाचूर कर दें।

स्कूल में पढ़ा हुआ 'ग़ालिब' का एक मिसरा याद आया :

'बेदरोदीवार का एक घर बनाना चाहिए।'

बहुत कोशिश की कि दूसरा मिसरा याद आ जाय, लेकिन न याद आया, इसलिए देर तक यही गुनगुनाता रहा :

'बेदरोदीवार का एक घर बनाना चाहिए।'

मैंने सोचा, शायद 'ग़ालिब' भी फ़ुटपाथ पर रहना

चाहता था, क्योंकि यह भी बेदरोदीवार का घर है। और फिर एक फ़िल्मी गीत का टुकड़ा न जाने कहाँ से तैरता हुआ दिमाग़ में आ गया :

'बिस्तर बिछा दिया है तेरे घर के सामने।'

फिर मैंने पथरीले फ़र्श पर पहलू बदलते हुए सोचा, शेर कहना आसान है, पर फ़ुटपाथ पर सोना मुश्किल है।

अड़तालीसवीं रात

चाँदी की लम्बी सड़क।

अब मैं फ़ुटपाथ के पुराने रहनेवालों में गिना जाता हूँ।

उस पहली रात के बाद कई रातें मैंने एक उपयुक्त 'बेड रूम' की तलाश में गुज़ार दीं। कभी मालाबार हिल पर हैंगिंग गार्डन के एक बेंच पर सोया, कभी चौपाटी की नर्म रेत पर समुद्र की ठंडी हवा के झोंकों में, कभी मेरिन ड्राइव पर एक मशहूर फ़िल्म स्टार के फ़्लैट के बिल्कुल सामने, इतने क़रीब कि कभी-कभी खिड़की के शीशों पर उसका साया कपड़े बदलते हुए नज़र आ जाता और मेरी नींद उचाट कर जाता। लेकिन कहीं भी मैं दो-चार रातों से अधिक न काट सका। हर जगह से पुलीसवालों ने मुझे हँका दिया, जैसे उन ढोर-डंगरों को हँका दिया जाता है, जो पकी हुई खेती में घुस आते हैं। हर बार मैं मन में कहता, अरे भाइयो! मैं महल नहीं माँगता, बंगला नहीं माँगता, लेकिन मुझे आसमान-तले किसी साफ़-सुथरी जगह पर तो सोने दो! लेकिन, अब मुझे मालूम हो गया है कि जैसे ग़रीब-ग़ुरबा अमीरों के घरों में नहीं रह सकते, उसी तरह वह अमीरों के टहलने, तफ़रीह करने की जगहों या उनके घरों के सामने के फ़ुटपाथ पर भी नहीं सो सकते।

सो, अब मैं फ़ीरोज़ शाह मेहता रोड पर ठहरा हूँ। ठीक एक बैंक के सामने सोता हूँ। न जाने क्यों, मगर यहाँ सोकर बड़ा संतोष-सा होता है, मानो यह बैंक मेरी ही सम्पत्ति हो और मैं वहाँ उसकी रक्षा के लिए सो रहा

सोते समय मैं हमेशा अपना मुँह बैंक की शीशेवाली दीवार की तरफ़ रखता हूँ। यहाँ बड़े-बड़े सुनहरे अक्षरों में लिखा है, 'इस बैंक की पूँजी है ५००००००० रुपये'। अब मुझे अपनी पत्थर की सेज पर सोने की आदत पड़ चुकी है, लेकिन आँख बन्द करने से पहले मैं काफ़ी देर तक इन सात सुनहरे शून्यों को ताकता रहता हूँ, ५००००००० रुपये, यानी पाँच करोड़ या पचास करोड़? हिसाब में मैं हमेशा कमज़ोर रहा हूँ।

कल रात मैंने सपने में देखा कि मेरे पास चाँदी के रुपये का एक ढेर है। लाखों, करोड़ों रुपये, और मैं उन्हें सड़क के बराबर-बराबर रखता चला जाऊँ, यहाँ तक कि चाँदी की यह ज़ंजीर बम्बई से हाथरस तक जा पहुँची है; जहाँ मेरी माँ और भाई-बहन इस आशा में दिन बिता रहे हैं कि एक दिन उनका सपूत बम्बई से लाखों रुपये कमाकर लायगा।....

एक सौ सत्ताईसवीं रात

मेरा पता, ताजमहल होटल।

जिस रात बैंक में डाका पड़ा और मुझे वह जगह छोड़नी पड़ी, उस रात की घटनाएँ अब तक मेरे दिमाग़ में उसी तरह घूमती हैं, जैसे सिनेमा के पर्दे पर कोई ड्रामा। बैंक में आप-से-आप बजनेवाली बिजली की घंटी लगी हुई थी। सुबह के तीन बजे होंगे कि यह घंटी एका-एक बजने लगी और आस-पास के सब फ़ुटपाथ पर सोने-वाले हड़बड़ाकर उठ बैठे। आँखें मलते हुए मैंने देखा कि डाकू बैंक की खिड़की में से कूद रहे हैं। मुझे उनपर बहुत ग़ुस्सा आया, क्योंकि आख़िर वह बैंक मेरा ही तो था, जिसमें उन्होंने डाका डाला था और मेरा ही रुपया लेकर तो वे भाग रहे थे।....

सो, मैंने एक डाकू को उसकी पतलून की मोहरी पकड़-कर अपनी गिरफ़्त में ले लिया। उसके हाथों में नोटों के बंडल थे, सो वह उन्हें छोड़े बिना मुझपर हमला नहीं कर सकता था। मैंने सोचा, क्या पकड़ा है बदमाश को! अब भागकर कहाँ जाता है? लेकिन जब पुलीस की

सीटियों की आवाज़ क़रीब आती सुनायी पड़ी, तो उसने बड़े ज़ोर से मेरे लात मारी। लेकिन मैंने तब भी पतलून की मोहरी न छोड़ी। मैं धड़ाम से फ़ुटपाथ पर गिर गया और मेरे सर में इतने ज़ोर से पत्थर लगा कि तारे नज़र आने लगे। और जब मेरे होश ठिकाने हुए, तो मैंने देखा कि डाकू की पतलून तो मेरे हाथ में है और डाकू सड़क भर भागा चला जा रहा है....अर्द्धनग्न....बेशर्म कहीं का!

डाकू की पतलून अच्छे क़ीमती कपड़े की थी। पहले तो मैंने सोचा, इसे गोल कर जाऊँ, लेकिन फिर मैंने स्वतन्त्र भारत के एक सम्मानित नागरिक की हैसियत से अपने कर्त्तव्य का अनुभव किया और वह पतलून पुलीस को दे दिया, क्योंकि मेरा ख़याल था कि इस निशान से सरकारी जासूस तुरन्त डाकुओं का पता लगा सकेंगे और मेरे बैंक का लुटा हुआ रुपया वापस मिल जायगा। लेकिन थाने में जब उन्होंने मेरा पता पूछा और मैंने जवाब दिया, बैंक के सामनेवाला फ़ुटपाथ, तो उन लोगों की नज़रें ही बदल गयीं और वे लगे मुझसे सवाल करने, जैसे मैं कोई प्रतिष्ठित और अपना कर्त्तव्य जाननेवाला नागरिक नहीं, चोर-डाकू हूँ। इसके बाद मैंने तय कर लिया कि बैंक के निकट सोना ख़तरनाक है, उससे दूर ही रहना चाहिए। हो सकता है, वह बैंक मेरा नहीं, किसी और का हो।

और अगले दिन से मैं ताजमहल होटल में उठ आया, मेरा मतलब है कि ताजमहल होटल के बाहरवाले बरामदे में, जहाँ उस होटल के मेरे जैसे ग़ैरसरकारी मेहमान ठहरते हैं। इस जगह पर कई सुविधायें हैं। एक तो समुद्र के किनारे है, इसलिए रात को ठंडी हवा आया करती है, दूसरे जहाँ मैं सोता हूँ, वहाँ से किचन क़रीब है और खानों की इतनी अच्छी-अच्छी ख़ुशबूएँ आती हैं कि सपने में हमेशा मुर्ग़-मुसल्लम और कैटलेटों के पहाड़ नज़र आते हैं। तीसरे यह कि रात को देर से आने और जानेवाले मेहमानों का नज़्ज़ारा मुफ़्त में होता है। काले सूटोंवाले विलायती साहब लोग, पतले रेशमी फ़्राक पहने मेमें, खादी पहने नेता लोग और बारीक शैफ़ून की साड़ियाँ पहने, विलायती सेंट लगाये उनकी श्रीमतियाँ, हीरे-जवाहरात से लदी रानियाँ, महारानियाँ, बड़ी-बड़ी सुन्दर कारें....

—टा-टा, माईडियर!

—बाई-बाई, डार्लिंग!

दौलत, हुस्न और फ़ैशन का यह तमाशा सिनेमा से भी अधिक दिलचस्प और आनन्दपूर्ण है। और फिर बिल्कुल मुफ़्त और बिना टिकट। सिनेमा में तो चलती-फिरती परछाइयाँ होती हैं, लेकिन ये मेमें, ये मिसें, ये बेगमें, ये रानियाँ, ये देवियाँ, ये कुमारियाँ और ये श्रीमतियाँ, ये सुन्दर नारियाँ जो ताजमहल होटल में डिनर खाने और डान्स करने आती हैं, ये तो सब असल हैं, असल! फ़ुटपाथ पर लेटे-लेटे उनके इत्र और सेंट की ख़ुशबूएँ सूँघी जा सकती हैं। कभी-कभी जब कोई जार्जट की साड़ी या पाँव तक का फ़्राक पास से गुज़रता है, तो उसका नर्म स्पर्श महसूस किया जा सकता है। गोरी-गोरी पिंडुलियाँ नज़र आती हैं। मेरे पास ही जो नौजवान सोता है, वह फ़िल्मों में एक्स्ट्रा का काम करता है। उसका कहना है कि अगर हम आदमी होते, सिनेमा का कैमरा होते, और जो-कुछ हम लेटे-लेटे कनखियों से देखते हैं, वह फ़िल्मा लिया जाता, तो सेन्सरवाले उस सीन को कभी पास न करते।

और डायलाग तो ऐसे-ऐसे सुनायी देते हैं कि क्या कभी किसी फ़िल्म में सुने होंगे! कहते हैं कि शराबबन्दी के इस दौर में भी बड़े-बड़े होटलों में एक 'परमिट रूम' होता है, जहाँ बड़े आदमी सरकारी लाइसन्स लेकर शराब पीते हैं, शायद इसी लिए आधी रात के बाद जो लोग होटल से निकलते हैं, वे बहुत ही रङ्गीन और मज़ेदार बातें करते होते हैं, निस्संकोच और निर्भीक होकर, धरती पर पड़े लोगों से बिल्कुल बेपरवाह! जैसे हम मुर्दे हों या मूक और मूढ़ जानवर। या शायद वे लोग समझते हैं कि ये लोग तो सो रहे हैं और जाग भी रहे हैं, तो फ़ुटपाथ पर बसनेवाले अँग्रेज़ी की बातचीत कैसे समझ सकते हैं। और उन्हें मेरे मैट्रिकुलेशन सार्टीफ़िकट का तो पता ही नहीं है, न उन्हें मालूम है कि मेरे पास ही सोनेवाला राजू, जो अपने को बेकारी के मोहकमे का इन्स्पेक्टर कहता है, पंजाब

युनिवर्सिटी से बी० ए० पास है। और वे हमारी हस्ती को बिल्कुल भूलकर बात करते हैं।

—चलो, डार्लिंग!

—रात को इस वक्त? कहाँ?

—चलो, जूहू चलें।....कैसी सुन्दर चाँदनी रात है!

और फिर उनके कहकहों में मोटरें स्टार्ट होने की आवाज़ शामिल हो जाती है और कारें रवाना हो जाती हैं। अपालो बन्दर पर एक सन्नाटा छा जाता है, सिर्फ़ समुद्र की लहरें पत्थर की दीवार से टकराकर फ़रियाद करती हैं और मेरी नींद मुझसे आँख चुराकर उन कारों के साथ उड़ती हुई जूहू के सागर-तट पर जाती है और चाँदनी रात में चमकती हुई रेत पर न जाने किसकी तलाश में घूमती रहती है।....

दो सौ पचहत्तरवीं रात

—अरे वाह यार, दिलीपकुमार!

ताजमहल होटल छोड़े मुझे काफ़ी दिन हो चुके हैं। दरअसल वह जगह मैंने अपनी इच्छा से नहीं छोड़ी, बल्कि मजबूरी से। हुआ यह कि एक लंगड़ा, खाजग्रस्त भिखारी भी हम लोगों के निकट सोने लगा था और एक रात उसने होटल से बाहर निकलती हुई मेम साहब से भीख माँगते हुए उसकी सफ़ेद फ्राक को अपने गन्दे हाथ से छू लिया। मेम साहब ने उसे तो अंग्रेज़ी में गाली देकर झिड़क दिया। फिर शायद मैनेजर से रिपोर्ट की। फलस्वरूप अगली रात को जब हम अपने-अपने बिस्तर बिछाने वहाँ पहुँचे, तो हमें पुलीस की मदद से बरामदे के बाहर निकाल दिया गया।

तब से मैं मौसम के अनुसार कई मकान बदल चुका हूँ। बरसात से पहले के गर्मी के महीने तो मैंने अपालो बन्दर पर बिताये। जब बरसात शुरू हो गयी, तो एक बड़ी दूकान के चौड़े बरामदे में शरण ली। यह जगह वर्षा से थोड़ा-बहुत बचाती थी, लेकिन उस दूकान के शीशे की खिड़कियों में प्लास्टर की आदमकद अर्द्धनग्न लड़कियाँ, जो तैरने का लिबास पहने खड़ी थीं, वे रात-भर मुझे घूरती रहीं। अब मैं बेकार नहीं हूँ। एक दफ़्तर में पैंतालीस रुपये माहवार पर चपरासी की नौकरी मिल गयी है। यह दफ़्तर 'इम्पोर्ट-एक्स्पोर्ट' का है। यानी इधर का माल उधर और उधर का माल इधर! लेकिन मैं तो कभी न कोई सामान आता-जाता देखता हूँ, न कोई गाहक आता है। अलबत्ता तार दिन-रात आते हैं, टेलीफोन हर वक्त बजते रहते हैं। कभी हिन्दुस्तान के किसी शहर से, तो कभी किसी दूसरे मुल्क से। कभी सिंगापुर, कभी कोलम्बो, कभी लंदन, कभी न्यूयार्क। मुझे तो कोई काला बाज़ार का धन्धा मालूम होता है। लेकिन जब तक अपने पैंतालीस रुपये हर महीने खरे हैं, अपने से क्या मतलब कि उस दफ़्तर में क्या होता है।

हाँ, तो काम मेरे पास है, लेकिन सर छुपाने और सामान रखने का अब तक कोई ठिकाना नहीं है। छोटी-से-छोटी खोली के लिए लोग दो सौ पगड़ी माँगते हैं। इतने रुपये इकट्ठे मेरे पास कहाँ से आते? हो सकता था कि मैं शहर के बाहर मज़दूरों के झोंपड़ों की बस्तियों में चला जाता, जो उन्होंने अपने हाथों से स्वयं बनायी हैं। लेकिन ऐसी बस्तियाँ शहर से बहुत दूर हैं और मैं शहर के हंगामों में रहना चाहता हूँ। एक समय था कि निकट से एक ट्राम गुज़र जाय, तो मेरी आँख खुल जाती थी, पर अब दर्जनों ट्रामों और बसों के शोर में भी आराम से सोता रहता हूँ। कान पर जूँ नहीं रेंगती, बल्कि अब शहर की हलचल, रोशनी, दौड़-धूप और चीख़ पुकार के बिना मुझे ऐसा लगता है कि ज़िन्दगी अधूरी है।

यह भी सम्भव था कि मैं चार-पाँच आदमियों के साथ मिलकर एक खोली ले लूँ। ऐसी हालत में मुझे दस-बारह रुपये माहवार किराया देना पड़ता। किसी दोस्त की मेहरबानी से रात-भर के लिए मैं ऐसी खोली में सोया भी। लेकिन वहाँ इतनी गर्मी थी, इतनी गर्मी थी कि रात-भर मैं पसीने में शराबोर रहा। छोटी-सी कोठरी बिना खिड़कियों की और उसमें छः सोनेवाले। सब-के हाज़मे ख़राब और सब ख़र्राटे लेनेवाले। अगले दिन ही मैं वहाँ से भाग आया। उस कोठरी से तो अपना हवादार फ़ुटपाथ हज़ार दर्जा बेहतर है!

सो, अब मैं लिमंगटन रोड पर आ गया हूँ, ताकि

जब जेब में सिनेमा देखने के पैसे न हों, तो फ़ुटपाथ पर से ही सिनेमा घरों की रौनक़ और हलचल का नज़ारा कर सकूँ। जब किसी फ़िल्म का प्रीमियर होता है, उस रात तो बड़े-बड़े फ़िल्मस्टारों का नज़ारा हो जाता है। कैसी अच्छी-अच्छी मोटरों में वे-सब आते हैं! वाह-वाह! एक दिन तो भीड़-भड़क्के में मैं दिलीप कुमार की मोटर के इतने क़रीब था कि मोटर की खिड़की में सर डालकर कह दिया—अरे वाह यार, दिलीप कुमार! हाथ तो मिलाओ!

लेकिन उस शोर और गड़बड़ के कारण शायद उस बेचारे ने सुना नहीं और इससे पहले कि वह मुझसे हाथ मिलाता, पुलीसवालों ने धक्के और लाठियाँ मार-मारकर हम लोगों को वहाँ से हटा दिया।....

मेरे ख्याल में मुझे यहाँ से भी कहीं और जाना पड़ेगा। यह जगह पुलीस-थाने से बहुत ही करीब है।

पाँच सौ छब्बीसवीं रात

—जहाँ रेलें लोरियाँ सुनाती हैं!

रात को ख़ासी सर्दी पड़ने लगी है और मैं खुला फ़ुटपाथ छोड़कर दादर में एक रेल के पुल के नीचे आबाद हो गया हूँ। रात-भर रेलें लोरियाँ सुनाती हुई सरपर से गुजराती रहती हैं। ऐसा महसूस होता है, जैसे सर की मालिश और सारे बदन की चम्पी हो रही है और बिल्कुल मुफ्त!

रात को ओढ़ने के लिए मैं कैनवेस का एक पोस्टर ले आया हूँ, जिसपर 'रात की रानी' फ़िल्म की हीरोइन मिस चंचल बाला का एक बहुत बड़ा चेहरा बना हुआ है। सिर्फ नाक ही एक फ़ुट से अधिक लम्बी है और एक-एक आँख मेरे ते के बराबर। आधी रात बाद जब ठंडी हवा चलती है, मैं कैनवेस की उस रंगीन रज़ाई को ओढ़ लेता हूँ।

पहले तो मैंने शराफ़त बरती और कैनवेस को सीधी तरफ़ से ओढ़ता रहा, ताकि तस्वीरवाली साइड बाहर रहे, लेकिन आस-पास के फ़ुटपाथ पर रहनेवाले ठहरे सब-के-सब बदमाश, लोफ़र। आते-जाते फ़िक़रे कसते, चंचल बाला के हसीन चेहरे को ताकते, घूरते, और एक बेहूदे ने तो उसके सुन्दर अधरों के ऊपर कोयले से एक मूँछ भी बना दी। सो, उस दिन से मैं कैनवेस को उलटा करके ओढ़ने लगा हूँ और रात-भर सपने में मुझे एक अजीब खुशबू परेशान करती रहती है और समझ में नहीं आता कि यह कैनवेस और आयल पेंट की बू है या मिस चंचल बाला के चेहरे पर गुलाबी पौडर लगा है, उसकी खुशबू....

आठ सौ चालीसवीं रात

—सुर्ख फूल और एक साँवला, पीला चेहरा!

बहार का मौसम फ़ुटपाथ को भी नज़रअन्दाज़ नहीं करता। गुलमोहर के पेड़ पर पत्ता एक भी नहीं, लेकिन उसकी सूखी टहनियों पर हज़ारों लाल-लाल फूल खिल गये हैं। जब कभी मैं उन फूलों को देखता हूँ, तो सोचता हूँ कि इनमें कोई गहरा दार्शनिक संकेत छिपा है। अगर मेरी बेरंग ज़िन्दगी इस सूखी हुई टहनियोंवाले पेड़ की तरह है, तो यह सुर्ख फूल?....मगर बस, इसके आगे मेरा दिमाग़ काम नहीं करता। असल में फ़ुटपाथ पर रहने-वालों को कोई फ़िलासफ़ी नहीं सूझती। यह और बात है कि फ़िल्मों में भिखारी भी बात-बात पर फ़िलासफ़ी बघारते हैं, लेकिन वास्तव में वे विचार भिखारी के नहीं, सम्वाद-लेखक के होते हैं, जो शायद अपने एयरकंडीशन्ड कमरे में बैठकर फ़ुटपाथ की फ़िलासफ़ी सोचता है।

फिर भी इतना मैं जरूर जानता हूँ कि बहार का मौसम शुरू हो चुका है और शायद मेरी ज़िन्दगी में भी बहार आ गयी है। मेरा जी चाहता है कि घंटों गुलमोहर के फूलों को देखता रहूँ और इससे भी ज़्यादा मेरा जी चाहता है कि मैं चम्पा को देखा करूँ। चम्पा, जिसका हुस्न फ़ुटपाथ की इस गंदी दुनिया में उतना ही अजीब और हैरतअंगेज़ है, जैसे कीचड़ में उगा हुआ कमल या सूखी टहनियों पर खिले सुर्ख फूल। मुझे पता नहीं, वह कहाँ से आयी है, लेकिन मैं इतना ज़रूर जानता हूँ कि

वह ख़ूबसूरत है। उसकी साँवली रंगत में नमक भी है और पुराने सोने-जैसी एक मद्धिम पीलाहट भी। बड़ी-बड़ी ख़ूबसूरत आँखें, जो पलकों की जालियों में से ऐसे झाँकती हैं, जैसे कोई पर्देदार हसीना। लम्बे, चमकीले, काले बाल, जिन्हें वह अक्सर एक टूटे हुए कंघे से बैठी-बैठी सँवारा करती है और ऐसा लगता है, मानो उन बालों में भी जान है, अपना अलग व्यक्तित्व है। कभी वे हवा के झोंके से चम्पा के चेहरे पर बिखर जाते हैं। कभी वे कंघे के टूटे हुए दाँतों से उलझ जाते हैं। कभी लम्बी चोटी की शक्ल में नागिन बनकर देखनेवालों को डसते हैं। कभी जूड़ा बनकर सिमट जाते हैं। चम्पा के पास जेवर तो क्या, कोई ढंग का कपड़ा भी नहीं है। जवानी से गद-राया हुआ उसका बदन मैले गन्दे कपड़ों में छिपा रहता है। लेकिन उसके घने, लम्बे, चमकीले, काले बाल जेवर और गहनों, रेशमी साड़ियों और हर तरह की सजावट से अधिक मनोहर और सुन्दर हैं।

अपने कोने में बैठा-बैठा मैं चम्पा को घूरता रहता हूँ। हमारे फ़ुटपाथ पर जितने लोग रहते हैं, सब ही उसे घूरते हैं। लेकिन मैं जानता हूँ कि वह मुझे एक ख़ास नज़र से देखती है। और यह शायद महज़ संयोग नहीं था कि कल सवेरे हम नल पर मुँह धोने एक ही साथ पहुँचे और जब नल बन्द करते हुए मेरा हाथ संयोगवश उसके हाथ से छू गया, तो उसने मेरा हाथ झटका नहीं, न उसकी त्योरी पर नाराज़ी का कोई बल आया, बल्कि मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि उसे यह स्पर्श अच्छा लगा.... या हो सकता है, यह सब मेरी अपनी कल्पना की करा-मात हो।

बात यह है कि चम्पा कोई ऐसी-वैसी लड़की नहीं है, जैसी कई लड़कियाँ पिछले दो वर्ष में मुझे फ़ुटपाथ पर मिली हैं। उसकी आँखों में एक अजीब दर्द छिपा है। दर्द भी और भय भी। उसकी आँखें हिरनी की तरह मालूम होती हैं, जो शिकारियों के घेरे में फँस गयी हो और उसे प्रतिक्षण गोली खाने का डर हो। या शायद यह हिरनी गोली खाकर घायल हो चुकी थी। लेकिन कभी-कभी जब वह अपने विचारों में खोयी हुई होती है और उसे मालूम नहीं होता कि कोई उसे देख रहा है, लेकिन मैं कनखियों से देखता होता हूँ, उस समय मुझे ऐसा मालूम होता है कि उसकी ख़ूबसूरत, काली आँखें किसी सुन्दर, प्यारी कल्पना से चमक रही हैं और उसके पतले-पतले होंठों पर धीमी-सी, मद्धिम सी, बुझी-बुझी मुस्कराहट उभर आयी है....जैसे वह अपनी ज़िन्दगी का कोई बहुत सुन्दर, बहुत प्यारा क्षण याद कर रही हो....

हर आदमी ने उससे दोस्ती करने की चेष्टा की है। लेकिन चम्पा किसी से बात नहीं करती। कई आवारा नौजवानों ने उसकी तरफ़ देखकर सीटियाँ बजायी हैं, आहें भरी हैं, फब्तियाँ कसी हैं, लेकिन चम्पा ने आज तक किसी को मुँह नहीं लगाया। दुनिया में उसकी सिर्फ़ एक दोस्त और साथी है। वह एक लंगड़ी, खाजग्रस्त, भूख की मारी कुतिया, जिसे वह 'मोती-मोती' कहकर पुकारती है। समझ में नहीं आता, ऐसी ख़ूबसूरत जवान लड़की ऐसे कुरूप और गंदे जानवर से कैसे प्यार कर सकती है? लेकिन फ़ुटपाथ की दुनिया में अनोखे पात्र रहते हैं। अजीब व ग़रीब घटनाएँ होती हैं। और इसलिए थोड़े दिनों में हम चम्पा और उसकी कुतिया को भी अपने फ़ुट-पाथ की छोटी-सी बिरादरी में शामिल समझने लगे हैं। लेकिन वह अब भी उसमें से किसी से बात नहीं करती है।

दिन में चम्पा क्या करती है, यह मुझे या किसी को भी नहीं मालूम। लेकिन प्रतिदिन शाम को जब मैं काम पर से लौटकर आता हूँ, तो मेरा दिल इस डर से धड़-कता होता है कि शायद वह हमारा फ़ुटपाथ छोड़कर कहीं और न चली गयी हो। लेकिन जब मैं देखता हूँ कि वह मौजूद है और अपने कोने में बैठी मोती से बातें कर रही है, जैसे वह कुतिया न हो, उसकी सहेली हो, उस वक्त मुझे एक अजीब इतमीनान और प्रसन्नता का अनुभव होता है और अनायास मैं कोई फ़िल्मी गीत गुनगुनाने लगता हूँ और जब रात को हम-सब चिथड़े या रद्दी काग़ज़ बिछाकर अपने-अपने बिस्तर तैयार करते हैं, तो दो-चार मनचले हमेशा इस ताक में रहते हैं कि चम्पा के कोने की तरफ़ सरकते जायें। राधिया जिसका स्याह शरीर पहलवानों-जैसा है, और बंसी जो दुबला-पतला है, और

हमेशा पान खाता और फिल्मी गीत गाता रहता है, और जो किसी सिनेमा के सामने टिकटों का काला बाज़ार करता है, उन दोनों की गन्दी निगाहें हमेशा चम्पा की पीछा करती रहती हैं। लेकिन चम्पा इतमीनान की नींद सोती है इसलिए कि रात-भर मोती उसके सिरहाने बैठी चौकीदारी करती है और अगर कोई चम्पा की तरफ पग बढ़ाता है, तो वह इतने जोर से भूँकती है कि सब जाग भी उठते हैं और मुजरिम लज्जित होकर बड़बड़ाता अपने बिस्तर पर आकर लेट जाता है।

कल रात तो मोती ने बंसी की टाँग ही पकड़ ली थी। यद्यपि वह यही कहे जा रहा था कि मैं तो नल पर पानी पीने जा रहा हूँ, लेकिन कुतिया भूँके जा रही थी और हम लोगों का हँसी के मारे बुरा हाल था।

सुना है, आज बंसी ने हस्पताल जाकर पेट में सुये लगवाये हैं। मुझे मोती की यह हरकत बहुत पसन्द आयी, इसलिए कि मुझे चम्पा से काफ़ी दिलचस्पी पैदा हो चली है, बल्कि शायद दिलचस्पी से भी ज्यादा........

नौ सौ सातवीं रात

एक आदमी, एक औरत, एक जानवर!

आज रात मैं बहुत खुश हूँ। इतना खुश हूँ कि सो नहीं सकता।

आज चम्पा ने जो मुझसे बात की, पहली बार।

शाम को जब मैं काम से वापस आया, तो मैंने देखा कि फ़ुटपाथ पर सन्नाटा है। तब मुझे याद आया कि आज दीवाली की रात है। इसलिए फ़ुटपाथ के हमारे सारे पड़ोसी रोशनियाँ देखने, भीड़ में जेबें काटने, भीख माँगने और मंदिरों में से मुफ्त मिठाई लाने गये हैं। सिर्फ चम्पा वहाँ माजूद थी और वह नल के पास बैठी अपनी कुतिया को नहला रही थी।

मेरा जी चाहा कि दूसरों की अनुपस्थिति से लाभ उठाकर चम्पा से बात करूँ, लेकिन फिर मैंने सोचा कि शायद वह झिड़क दे, इसलिए मैंने सिर्फ़ खँखारकर अपनी वापसी का ऐलान किया।

—अरी मोती! — चम्पा ने कुतिया से कहा— तू दीवाली की रोशनी देखने नहीं जायगी?

कुतिया ने अपना गीला सर ज़ोर से हिलाया और पानी की नन्ही-नन्ही बूँदें हवा में उड़ाने लगी। मैं समझ गया कि सवाल दरअसल मुझसे किया गया है। लेकिन फिर भी मुझमें सीधे उससे बात करने का साहस न हुआ।

फिर वह बोली— शायद तुझे भीड़ से डर लगता है। आज सड़कों पर लोग भी तो बहुत होंगे।

इस बार मैं बोल ही पड़ा— तुम ठीक कहती हो, चम्पा, मैं भीड़-भाड़ पसन्द नहीं करता।

उसे मालूम था कि मैं कुछ कहूँगा। लेकिन फिर भी जब मैंने सीधे उससे बात करने का साहस किया, तो वह कुछ घबरा-सी गयी।

फिर वह उठी और कुतिया से या मुझसे बोली— चलो, हम भी दीवाली की रोशनी देख आयें, मगर देखना भीड़ भड़क्के से दूर ही रहना।

एक आदमी, एक औरत, एक जानवर! हमारा अजीब-ग़रीब जलूस शहर की तरफ़ रवाना हुआ। चम्पा ने हैरत और ख़ुशी से जगमगाती ऊँची-ऊँची इमारतें देखीं और मैंने उन तमाम रोशनियों को चम्पा की आँखों में झिलमिलाते देखा। फिर भी हमने कोई बात नहीं की। ख़ामोशी से चलते रहे। वापस होते वक्त हम एक बड़ी शानदार दूकान के सामने से गुज़र रहे थे, जिसके शीशे की खिड़कियों में रंग-बिरंगी रेशमी साड़ियाँ और सोने-चाँदी के गहने सजे थे। एक क्षण के लिए चम्पा उन साड़ियों के सामने ठहरी और मैंने उसके चेहरे का प्रतिबिम्ब शीशे में देखा। उसकी आँखों में एक अजीब आरज़ू थी और एक अजीब मायूसी और वह उन साड़ियों को इस तरह देख रही थी, जैसे वे केवल रेशमी साड़ियाँ न थीं, भोग विलास की वे सारी वस्तुएँ थीं, जिनसे उसका जीवन वंचित था।

और मेरा जी चाहा कि मैं उससे चीख़कर कहूँ, चम्पा! मेरी अपनी चम्पा! मैं एक दिन तुम्हें ये-सब चीज़ें ला दूँगा। ये रेशमी साड़ियाँ, ये ज़ेवर, ये गहने! मैं तुम्हें

दुनिया की सारी सुन्दर वस्तुएँ भेंट करूँगा, इसलिए कि तुम सुन्दर हो, जवान हो और तुम्हारा अधिकार है कि तुम्हारे शरीर पर ऐसी रंगीन साड़ियाँ हों, तुम्हारे कानों में ये सुन्दर बुन्दे झूलते हों और तुम्हारे माथे पर वह झूमर जगमगाता हो। नहीं-नहीं, मैं तुम्हें इन सबसे भी ज़्यादा ख़ूबसूरत और प्यारा भेंट देना चाहता हूँ, एक प्रेम करने-वाला पति, एक छोटा-सा घर, संतान! काश, एक बार तुम मुझसे कुछ माँगो तो सही!....लेकिन उसने मुझसे कुछ नहीं माँगा, उसने मुझसे कुछ नहीं कहा। सिर्फ़ हलकी-सी एक ठंडी साँस भरी और अपनी कुतिया से कहा—चल, मोती, घर चल।

घर! वह इस फ़ुटपाथ को घर कहती है! वह चन्द चीथड़ों और चन्द ठीकरों को घर कहती है, आह चम्पा! काश, मैं तुझे एक सचमुच के घर में ले जा सकता!....

और अब आधी रात बीत चुकी है। सब सो रहे हैं और मैं अपनी डायरी लिख रहा हूँ। जहाँ मैं बैठा हूँ, वहाँ से चम्पा को देख सकता हूँ। गैस की पीली रोशनी उसके चेहरे पर पड़ रही है और वफ़ादार मोती पास बैठी चौकीदारी कर रही है। इस समय चम्पा और भी सुन्दर दिख रही है। ऐसा मालूम होता है कि सोते समय वह अपनी ज़िन्दगी की सब महरूमियों, सब तकलीफ़ों को भूल जाती है। उसके होंठों पर एक मासूम-सी मुस्कराहट है, जैसे वह कोई सुखमय सपना देख रही हो। और मैं सोचता हूँ कि उसके मुस्कराते हुए सपनों में मेरे लिए भी कोई जगह है या नहीं?

नौ सौ चव्वालीसवीं रात

ख़ुशख़बरी, मगर कब?

हम फ़ुटपाथ पर रहनेवालों को राजनीति, एलेक्शन, कांग्रेस, सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी, लोक-सभा, पंचवर्षीय योजना, बजट आदि से कोई दिलचस्पी नहीं है, क्योंकि ये-सब चीज़ें हमें अपनी ज़िन्दगी से बिल्कुल अलग मालूम होती हैं। अख़बारों से हम ज़रूर दिल-चस्पी रखते हैं। लेकिन सिर्फ़ रद्दी अख़बारों से, फ़ुटपाथ पर बिस्तर बिछाने के लिए, और कभी ओढ़ने के लिए।

लेकिन आज सुबह मैं सोकर उठा और अपना काग़ज़ी बिस्तर लपेटने लगा, तो अख़बार में एक सुर्ख़ी देखी :

'बेघरों के लिए घर बनेंगे'

पूरी ख़बर पढ़ी, तो मालूम हुआ कि सरकार ने कई हज़ार छोटे-छोटे घर बनाने की योजना बनायी है और ये घर हमारे-जैसे ग़रीबों के लिए बनेंगे। मैंने यह ख़बर अख़बार में से फाड़ ली और एहतियातन लपेटकर जेब में रख ली, बाईं तरफ़ की जेब में, अपने दिल के क़रीब। न जाने क्यों दिन-भर मुझे हार्दिक संतोष रहा और मैं अपना काम बड़ी प्रसन्नता और फ़ुर्ती से करता रहा। यद्यपि दफ़्तर के मैनेजर की डाँट सुननी पड़ी, क्योंकि मैं दफ़्तर में बहुत ज़ोर से सीटी बजा रहा था।

शाम होते ही मैं सीधा घर, यानी फ़ुटपाथ को वापस आया। खाना भी नहीं खाया। इस समय तक और लोग अपने-अपने काम से नहीं लौटे थे। चम्पा अकेली बैठी मोती से बातें कर रही थी।

—चम्पा! चम्पा!

आज मैंने उसका नाम लेकर पुकारा।

—देख तो सही, इस पेपर में कितनी अच्छी ख़बर है!—और वह कतरन मैंने जेब से निकालकर उसे दे दी।

उसने काग़ज़ को पढ़े बिना इनकार में सर हिलाकर कहा—मैं तो अनपढ़ हूँ। तुम ही बताओ, क्या लिखा है?

—लिखा है कि सरकार हमारे-जैसे बेघरों के लिए, जो फ़ुटपाथ पर सोते हैं, घर बना रही है!—मैं बहुत जोश में बातें कर रहा था—है न बहुत अच्छी ख़बर! अब हम फ़ुटपाथ पर सोने के बजाय अपने घर में रहेंगे!...अपने घर में!....मैं...और...तुम...समझी न, चम्पा?

उसने सर हिलाकर हाँ कहा और फिर एक अजीब-सी मुस्कराहट के साथ, जो मुस्कराहट भी थी और ठंडी साँस भी, उसने पूछा—मगर कब?

अब मुझे सारी ख़बर को ग़ौर से पढ़ना पड़ा। लिखा था कि उन घरों को बनाने के लिए काम तो जल्द शुरू हो जायगा, लेकिन अनुमान किया जाता है कि सब बेघरों

को बसाने के लिए काफ़ी मकान बनाने होंगे और इसमें कम-से-कम दस बरस लगेंगे।

दो शब्दों 'मगर कब?' से मेरा सुबहवाला जोश किसी हद तक ठंडा पड़ गया है, लेकिन फिर भी मैं निराश नहीं हूँ और भगवान से मना रहा हूँ कि जब ये घर तैयार होने शुरू हों, तो हमारा, यानी मेरा और चम्पा का, घर पहले बन जाय। और लोग इन्तज़ार कर सकते हैं, लेकिन मुझे जल्दी है। शादी करनी है, गृहस्थी बनानी है।........फिर बच्चे होंगे।....इसलिए जल्दी-से-जल्दी हमें घर मिलना ही चाहिए!....

नौ सौ पचहत्तरवीं रात

हमारा घर!....हमारा घर!

आज रात तो मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं। और तो और, चम्पा भी अपनी मुस्तकिल ख़ामोशी के गुंबद से निकल रही है। मैं डायरी लिख रहा हूँ और वह ईंटों के चूल्हे पर मिट्टी की हाँडी में दाल पका रही है और साथ-साथ अपने देश का एक लोकगीत गुनगुना रही है। मैं इस गीत से परिचित हूँ। यह गीत गाँव की औरतें शादी के मौके पर गाती हैं।

चम्पा को ख़ुश और आनन्दमग्न गाती देखकर फ़ुटपाथ पर रहनेवाले सब हैरान हैं। सिर्फ़ एक मुझे अचरज नहीं है, इसलिए कि मुझे चम्पा की ख़ुशी का कारण मालूम है।

आज हम अपने घर को देखने गये, जिसमें हम शादी के बाद रहनेवाले हैं।

हुआ यह कि हमारे फ़ुटपाथ के पास कई दिन से बड़ी चहल-पहल है। रोशनी, लाउड स्पीकरों पर चीख़-पुकार, हज़ारों लोगों की भीड़। रात के एक बजे तक मेला-सा लगा रहता है। हमारा सोना मुश्किल हो गया है। यह कोई नुमायश हो रही है। दरवाजे पर बोर्ड लगा है:

पंचवर्षीय योजना

जैसा मैंने पहले भी इस डायरी में लिखा है, हम फ़ुटपाथ पर रहनेवाले ऐसी बातों में कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं लेते, क्योंकि हम तो यही समझते हैं कि ये योजनाएँ, ये प्लान, ये प्रोजेक्ट हमारे जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। लेकिन जब मैंने बोर्ड पर लिखा देखा, पंचवर्षीय योजना, तो मेरी याद में घंटी-सी बजी, क्योंकि उस ख़बर में, जिसकी कतरन अब तक मेरी जेब में सुरक्षित है, लिखा था, दूसरी पंचवर्षीय योजना में बेघरों के लिए घर बनाने की योजना भी सम्मिलित है। सो, मैंने यह सोचा, इस नुमायश में जाकर देखना तो चाहिए। भीड़ के साथ बहता हुआ मैं भी अन्दर पहुँच गया। बहुत ही अजीब-गरीब चीजें देखीं। तस्वीरें, नक्शे, पाँच साल में यह होगा, पाँच साल में वह होगा। इतने इंजन बनेंगे, इतने हज़ार मील रेल की पटरी बनेगी, इतने कालिज, इतने हस्पताल। और मैं मन-ही-मन में कहता रहा, हमें क्या, हमें क्या? लेकिन एक चीज़ ऐसी भी देखी, जिसमें मुझे बहुत दिलचस्पी है और जिसे मैं देखना चाहता था। कई मिनट तक मैं उसके सामने खड़ा रहा। फिर मैं वहाँ से भागा, अपने फ़ुटपाथ पर आया और किसी की परवाह किये बिना चम्पा का हाथ पकड़कर उसे घसीटता हुआ नुमायश में ले गया।

—देख, चम्पा, हमारा घर!

मैंने माडल की तरफ़ इशारा करते हुए ख़ुशी से चीख़कर कहा। वह घर नहीं था, सिर्फ़ घर का माडल था, जैसा गुड़ियों का घर होता है। लेकिन उसपर जो बोर्ड लगा था, उसपर लिखा था, बेघरों के लिए ऐसे हजारों घर बनाये जायेंगे।

देर तक हम उस गुड़िया-घर के सामने खड़े उसे अचरज और प्रसन्नता से ताकते रहे। एक कमरा, एक रसोई-घर, एक बरामदा, एक पेड़ और पेड़ के नीचे तीन नन्हीं गुड़ियाँ, तीन बच्चे। ऐसा लगता था, मानो हमारी सारी आकांक्षायें, हमारे सारे सपने इस माडल में सिमट आये हैं। जब हम वहाँ से लौटे, तो मैंने देखा कि चम्पा की आँखों में ख़ुशी के आँसू थे।

अब वह सो रही है और उसके चेहरे पर एक संतोष, प्रसन्नता और आशा की मुस्कान है।........

नौ सौ अठहत्तरवीं रात

मौत का साया !

हमारे सुख के सपनों पर मौत ने अपना भयानक साया डाल दिया है।

चम्पा की कुतिया मोती मर गयी है।

किसी ने उसे ज़हर दे दिया है और ऐसा लगता है कि मोती के साथ चम्पा के दिल का एक टुकड़ा भी मर गया है। ज़हर किसने दिया, इसका कोई प्रमाण नहीं है। लेकिन राधिया इतना प्रसन्न क्यों दिखता है ? हो सकता है यह हत्या उसने ही की हो।

बहुत देर तक तो चम्पा मोती को गोद में लिये बैठी रही और उसकी मूक आँखों से आँसू बहते रहे। फिर वह उठी और दोनों हाथों पर शव उठाये, जैसे बाप अपने बेटे का शव लेकर स्मशान जाता है, समुद्र की ओर चली गयी। मैंने चाहा कि उस समय उसके साथ जाऊँ, लेकिन चम्पा ने ख़ामोशी से मुड़कर इस ढंग से मुझे देखा कि मैं वहीं ठहर गया। उसकी आँसुओं से भरी आँखें कह रही थीं—तुम मत आओ, इस समय मैं अकेली जाना चाहती हूँ।

कोई एक घंटा बाद वह वापस आयी। ख़ाली हाथ। उस समय उसकी आँखें ख़ुश्क थीं। वह ऐसी मौन और मलीन थी कि डर लगता था, कहीं दिमाग़ पर तो कोई असर नहीं हुआ। मैंने उसे सान्त्वना देने की कोशिश की, खाने को भी कहा, लेकिन चम्पा ने जवाब में मेरी ओर निगाहें उठाकर अचरज से देखा, मानो कह रही हो, मेरी प्यारी मोती मर गयी है ! आज की रात मैं कैसे खा सकती हूँ ?

और मैं चुप रह गया।

राधिया ने चिल्लाकर कहा—क्यों, चम्पा ? अब तेरी चौकीदारी कौन करेगा ? कुतिया तो मर गयी ! उसकी जगह अपनी रक्षा के लिए मुझे रख ले।—और यह कहकर अपनी बात पर वह स्वयं ही हँसा। लेकिन किसी ने उस हँसी में उसका साथ न दिया। चम्पा ने भी कोई जवाब न दिया, सिर्फ़ ख़ामोशी से एक बार उसकी ओर देखा। उसकी निगाह में इतनी घृणा, इतना विरोध था कि राधिया के चेहरे पर से हँसी ग़ायब हो गयी और वह खीजकर खाँसने लगा।

फिर चम्पा ने अपने चिथड़ों-गुदड़ों का पुलिन्दा उठाया और हम-सब से दूर फ़ुटपाथ के किनारे पर अपना बिस्तर बिछाकर चुपचाप लेट गयी। लेकिन सोयी नहीं। तब से लेटी तारों-भरे आकाश को ताक रही है।

और मैं जाग रहा हूँ, क्योंकि मोती मर गयी है और अब चम्पा की रक्षा करनेवाला कौन है, सिवाय मेरे।

नौ सौ नवासीवीं रात

ख़्वाब की तस्वीर।

बुज़ुर्गों ने कुछ ग़लत नहीं कहा है कि समय सब-कुछ भुला देता है। ऐसा लगता है कि धीरे-धीरे चम्पा भी मोती के दुख को भूलती जा रही है। आज शाम को जब मैं काम से वापस आया, तो उसने एक धीमी-सी, पीली-सी मुस्कराहट के साथ जवाब दिया।

आज तो मैं उसके लिए एक उपहार लाया था। अपने और उसके सपनों के घर की तस्वीर। यह उसी गुड़िया-घर का चित्र था, जो हमने 'पंचवर्षीय योजना' वाली नुमायश में देखा था। हमारे सपनों का यह चित्र रंगीन था। लाल ईंटों का मकान, चिमनी में से काला-काला धुआँ उठता हुआ। आँगन में पेड़ के हरे-घने पत्ते, उनमें लाल फूल। दो बच्चियाँ, एक नीली फ्राक पहने, दूसरी नारंगी। एक के हाथ में पीले रंग का गुब्बारा, दूसरी के हाथ में ऊदे रंग का गुब्बारा। लड़के के बदन पर सफ़ेद क़मीज़, ख़ाकी नेकर, काले, चमकते हुए जूते, ज़मीन पर हरी-हरी घास।

—यह...यह....तस्वीर मैं रख लूँ ?

चम्पा ने कहा और मैंने देखा कि उसकी आँखें आशा और प्रसन्नता से चमक रही हैं। मैंने कहा—हाँ और क्या, तुम्हारे लिए ही तो लाया हूँ !

और उसकी बड़ी-बड़ी आँखों ने ख़ामोशी से मुझे धन्यवाद दिया। कितनी मुहब्बत थी उन आँखों में, कितनी कृतज्ञता थी ! उन आँखों में आशाएँ और आकांक्षायें भी

थीं और वादे भी। और मेरे लिए तो उन आँखों में ज़िन्दगी का सबसे महत्वपूर्ण सन्देश था।

कितनी ही रातों के बाद आज चम्पा इतमीनान से गहरी नींद सो रही है। आख़िरी ट्राम भी गड़गड़ाती हुई गुज़र चुकी है। युनिवर्सिटी क्लाक टावर दो बजा चुका है और अब मेरी आँखें भी बन्द हुई जा रही हैं।...

नौ सौ नब्बेवीं रात

घर बना नहीं और गिर गया!

मुझे नहीं मालूम था कि एक रात में, बल्कि कुछ क्षणों में ज़िन्दगी ख़तम हो जायगी और जीवन की समस्त उमंगें, आकांक्षायें, जीवन के समस्त सुन्दर सपने और भविष्य की सारी इमारत शीशे के घर के समान एकाएक चकनाचूर हो जायगी। कल रात दो बजे के बाद जब मेरी आँख लगी, तो मैंने एक अजीब सपना देखा। पहले भी मैंने कई बार सपने में देखा था कि हमारा घर बन रहा है, सफेदी हो रही है। लेकिन इस बार मैंने देखा कि घर तैयार हो गया है और हम उसमें उठ आये हैं। रसोई-घर में चम्पा बैठी भोजन बना रही है, आँगन में गुलमोहर का पेड़ लाल-लाल फूलों से लदा हुआ है और हरी-हरी घास पर हमारे बच्चे, दो लड़कियाँ और एक लड़का, गेंद-बल्ला खेल रहे हैं। और फिर एकाएक आकाश पर काले-काले बादल छा गये। बिजली कड़कने लगी और तूफानी बादलों की गरज से हमारा छोटा-सा घर काँपने लगा। अँधेरा, आँधी और तूफान। सारी ज़मीन हिल रही थी। और फिर मैंने देखा, काले आकाश पर बिजली कौंदी और हमारे घर की ओर लपकी। बिजली की चमक में मैं देख रहा था, चम्पा रसोई-घर में खाना बना रही है और मेरे बच्चे पेड़ के नीचे खड़े हैं और वे सब इस आग की तलवार की मार में हैं। मैं चाहता था कि मैं चीखूँ, चम्पा! बाहर आ जाओ! बच्चो! पेड़ के नीचे से हट जाओ!

लेकिन एकाएक मैं गूँगा हो गया। मेरे मुँह से आवाज़ ही न निकली। एक शोला-सा भड़का, एक भीषण तड़ाका हुआ और फिर अँधेरा-सा छा गया और उस अँधेरे में हमारे घर के गिरने की आवाज़ ऐसी आयी, जैसे कोई कार दीवार से टकरायी हो और ब्रेक लगने की भयानक चीख़ के साथ कितने ही शीशे छन-छन करके टूट गये हों।...

मैं घबराकर उठा और सुबह की धुँधली रोशनी देखा। सारे फ़ुटपाथ पर खलबली-सी मची है। एक बड़ी-सी, ख़ूबसूरत काली कार अपने अगले दो पहिये हवा में उठाये दीवार से लिपटी है। उसके पहिये अब तक घूम रहे हैं और घूमते हुए टायरों पर से गहरे लाल रंग की बूँदें टप-टप करके फ़ुटपाथ पर गिर रही ।

—ख़ून! .... चम्पा का ख़ून!

पागलों की तरह मैं उधर दौड़ा जहाँ उसकी लाश, पड़ी थी। भारी, जालिम मोटर ने उसके दुबले-पतले शरीर को पीसकर रख दिया था। लेकिन उसके चेहरे पर एक खराश भी न आयी थी और उसके होंठों पर अब भी वही मुस्कराहट थी, जैसे वह मरी न हो, कोई बहुत ही सुन्दर, बड़ा ही मधुर सपना देख रही हो और उसके दायें हाथ की मुट्ठी में तह किया हुआ एक कागज़ था, उस घर की रंगीन तस्वीर, जो बनने से पहले ही खंडहर हो गया था।

काला सूट पहने एक युवक, जो ह्विस्की के नशे में था, गाड़ी में से खींचकर निकाला गया। होश आते ही वह बड़बड़ाया— च... च... च! स्टीयरिंग व्हील न जाने कैसे एकदम टूट गया। हाँ!—और फिर चम्पा की लाश को देखकर—ओह! आई ऐम सारी! मगर न जानें ये लोग फ़ुटपाथ पर क्यों सोते हैं?

मेरे मन में आया कि उसे बताऊँ, लोग फ़ुटपाथ पर क्यों सोते हैं और क्यों चम्पा और सबसे दूर फ़ुटपाथ के किनारे पर सो रही थी। लेकिन उस समय में गूँगा हो गया था। एक शब्द भी मुँह से न निकला। अवाक् हो सिर्फ़ देखता और सुनता रहा।

पुलीसवाले ने कार के मालिक से उसका पता पूछा, तो उसने मालाबार हिल पर एक बिल्डिंग का नाम बताया।

—फ़्लैट का नम्बर?—सिपाही ने नोटबुक में लिखते हुए

नौ सौ अठहत्तरवीं रात

मौत का साया !

हमारे सुख के सपनों पर मौत ने अपना भयानक साया डाल दिया है।

चम्पा की कुतिया मोती मर गयी है।

किसी ने उसे ज़हर दे दिया है और ऐसा लगता है कि मोती के साथ चम्पा के दिल का एक टुकड़ा भी मर गया है। ज़हर किसने दिया, इसका कोई प्रमाण नहीं है। लेकिन राधिया इतना प्रसन्न क्यों दिखता है ? हो सकता है यह हत्या उसने ही की हो।

बहुत देर तक तो चम्पा मोती को गोद में लिये बैठी रही और उसकी मूक आँखों से आँसू बहते रहे। फिर वह उठी और दोनों हाथों पर शव उठाये, जैसे बाप अपने बेटे का शव लेकर स्मशान जाता है, समुद्र की ओर चली गयी। मैंने चाहा कि उस समय उसके साथ जाऊँ, लेकिन चम्पा ने ख़ामोशी से मुड़कर इस ढंग से मुझे देखा कि मैं वहीं ठहर गया। उसकी आँसुओं से भरी आँखें कह रही थीं—तुम मत आओ, इस समय मैं अकेली जाना चाहती हूँ।

कोई एक घंटा बाद वह वापस आयी। ख़ाली हाथ। उस समय उसकी आँखें ख़ुश्क थीं। वह ऐसी मौन और मलीन थी कि डर लगता था, कहीं दिमाग़ पर तो कोई असर नहीं हुआ। मैंने उसे सान्त्वना देने की कोशिश की, खाने को भी कहा, लेकिन चम्पा ने जवाब में मेरी ओर निगाहें उठाकर अचरज से देखा, मानो कह रही हो, मेरी प्यारी मोती मर गयी है ! आज की रात मैं कैसे खा सकती हूँ ?

और मैं चुप रह गया।

राधिया ने चिल्लाकर कहा—क्यों, चम्पा ? अब तेरी चौकीदारी कौन करेगा ? कुतिया तो मर गयी ! उसकी जगह अपनी रक्षा के लिए मुझे रख ले।—और यह कह-कर अपनी बात पर वह स्वयं ही हँसा। लेकिन किसी ने उस हँसी में उसका साथ न दिया। चम्पा ने भी कोई जवाब न दिया, सिर्फ़ ख़ामोशी से एक बार उसकी ओर देखा। उसकी निगाह में इतनी घृणा, इतना विरोध था कि राधिया के चेहरे पर से हँसी ग़ायब हो गयी और वह खीजकर खाँसने लगा।

फिर चम्पा ने अपने चिथड़ों-गुदड़ों का पुलिन्दा उठाया और हम-सब से दूर फ़ुटपाथ के किनारे पर अपना बिस्तर बिछाकर चुपचाप लेट गयी। लेकिन सोयी नहीं। तब से लेटी तारों-भरे आकाश को ताक रही है।

और मैं जाग रहा हूँ, क्योंकि मोती मर गयी है और अब चम्पा की रक्षा करनेवाला कौन है, सिवाय मेरे।

नौ सौ नवासीवीं रात

ख़्वाब की तस्वीर।

बुज़ुर्गों ने कुछ ग़लत नहीं कहा है कि समय सब-कुछ भुला देता है। ऐसा लगता है कि धीरे-धीरे चम्पा भी मोती के दुख को भूलती जा रही है। आज शाम को जब मैं काम से वापस आया, तो उसने एक धीमी-सी, पीली-सी मुस्कराहट के साथ जवाब दिया।

आज तो मैं उसके लिए एक उपहार लाया था। अपने और उसके सपनों के घर की तस्वीर। यह उसी गुड़िया-घर का चित्र था, जो हमने 'पंचवर्षीय योजना' वाली नुमायश में देखा था। हमारे सपनों का यह चित्र रंगीन था। लाल ईंटों का मकान, चिमनी में से काला-काला धुआँ उठता हुआ। आँगन में पेड़ के हरे-घने पत्ते, उनमें लाल फूल। दो बच्चियाँ, एक नीली फ्राक पहने, दूसरी नारंगी। एक के हाथ में पीले रंग का गुब्बारा, दूसरी के हाथ में ऊदे रंग का गुब्बारा। लड़के के बदन पर सफ़ेद क़मीज़, ख़ाकी नेकर, काले, चमकते हुए जूते, ज़मीन पर हरी-हरी घास।

—यह...यह....तस्वीर मैं रख लूँ ?

चम्पा ने कहा और मैंने देखा कि उसकी आँखें आशा और प्रसन्नता से चमक रही हैं। मैंने कहा—हाँ और क्या, तुम्हारे लिए ही तो लाया हूँ !

और उसकी बड़ी-बड़ी आँखों ने ख़ामोशी से मुझे धन्यवाद दिया। कितनी मुहब्बत थी उन आँखों में, कितनी कृतज्ञता थी ! उन आँखों में आशाएँ और आकांक्षायें भी

थीं और वादे भी। और मेरे लिए तो उन आँखों में ज़िन्दगी का सबसे महत्व पूर्ण सन्देश था।

कितनी ही रातों के बाद आज चम्पा इतमीनान से गहरी नींद सो रही है। आख़िरी ट्राम भी गड़गड़ाती हुई गुज़र चुकी है। युनिवर्सिटी क्लाक टावर दो बजा चुका है और अब मेरी आँखें भी बन्द हुई जा रही हैं।...

नौ सौ नब्बेवीं रात

घर बना नहीं और गिर गया!

मुझे नहीं मालूम था कि एक रात में, बल्कि कुछ क्षणों में ज़िन्दगी ख़तम हो जायगी और जीवन की समस्त उमंगें, आकांक्षायें, जीवन के समस्त सुन्दर सपने और भविष्य की सारी इमारत शीशे के घर के समान एकाएक चकनाचूर हो जायगी। कल रात दो बजे के बाद जब मेरी आँख लगी, तो मैंने एक अजीब सपना देखा। पहले भी मैंने कई बार सपने में देखा था कि हमारा घर बन रहा है, सफेदी हो रही है। लेकिन इस बार मैंने देखा कि घर तैयार हो गया है और हम उसमें उठ आये हैं। रसोई-घर में चम्पा बैठी भोजन बना रही है, आँगन में गुलमोहर का पेड़ लाल-लाल फूलों से लदा हुआ है और हरी-हरी घास पर हमारे बच्चे, दो लड़कियाँ और एक लड़का, गेंद-बल्ला खेल रहे हैं। और फिर एकाएक आकाश पर काले-काले बादल छा गये। बिजली कड़कने लगी और तूफानी बादलों की गरज से हमारा छोटा-सा घर काँपने लगा। अँधेरा, आँधी और तूफान। सारी ज़मीन हिल रही थी। और फिर मैंने देखा, काले आकाश पर बिजली कौंदी और हमारे घर की ओर लपकी। बिजली की चमक में मैं देख रहा था, चम्पा रसोई-घर में खाना बना रही है और मेरे बच्चे पेड़ के नीचे खड़े हैं और वे सब इस आग की तलवार की मार में हैं। मैं चाहता था कि मैं चीखूँ, चम्पा! बाहर आ जाओ! बच्चो! पेड़ के नीचे से हट जाओ!

लेकिन एकाएक मैं गूँगा हो गया। मेरे मुँह से आवाज़ ही न निकली। एक शोला-सा भड़का, एक भीषण तड़ाका हुआ और फिर अंधेरा-सा छा गया और उस अँधेरे में हमारे घर के गिरने की आवाज़ ऐसी आयी, जैसे कोई कार दीवार से टकरायी हो और ब्रेक लगने की भयानक चीख़ के साथ कितने ही शीशे छुन-छुन करके टूट गये हों।....

मैं घबराकर उठा और सुबह की धुँधली रोशनी देखा। सारे फ़ुटपाथ पर खलबली-सी मची है। एक बड़ी-सी, खूबसूरत काली कार अपने अगले दो पहिये हवा में उठाये दीवार से लिपटी है। उसके पहिये अब तक घूम रहे हैं और घूमते हुए टायरों पर से गहरे लाल रंग की बूँदें टप-टप करके फ़ुटपाथ पर गिर रही हैं।

—ख़ून! .... चम्पा का ख़ून!

पागलों की तरह मैं उधर दौड़ा जहाँ उसकी लाश पड़ी थी। भारी, ज़ालिम मोटर ने उसके दुबले-पतले शरीर को पीसकर रख दिया था। लेकिन उसके चेहरे पर एक खराश भी न आयी थी और उसके होंठों पर अब भी वही मुस्कराहट थी, जैसे वह मरी न हो, कोई बहुत ही सुन्दर, बड़ा ही मधुर सपना देख रही हो और उसके दायें हाथ की मुट्ठी में तह किया हुआ एक काग़ज़ था, उस घर की रंगीन तस्वीर, जो बनने से पहले ही खंडहर हो गया था।

काला सूट पहने एक युवक, जो ह्विस्की के नशे में था, गाड़ी में से खींचकर निकाला गया। होश आते ही वह बड़बड़ाया— च... च... च! स्टीयरिंग व्हील न जाने कैसे एकदम टूट गया। हाँ!—और फिर चम्पा की लाश को देखकर—ओह! आई ऐम सारी! मगर न जानें ये लोग फ़ुटपाथ पर क्यों सोते हैं?

मेरे मन में आया कि उसे बताऊँ, लोग फ़ुटपाथ पर क्यों सोते हैं और क्यों चम्पा और सबसे दूर फ़ुटपाथ के किनारे पर सो रही थी। लेकिन उस समय में गूँगा हो गया था। एक शब्द भी मुँह से न निकला। अवाक् हो सिर्फ़ देखता और सुनता रहा।

पुलीसवाले ने कार के मालिक से उसका पता पूछा, तो उसने मालाबार हिल पर एक बिल्डिंग का नाम बताया।

—फ़्लैट का नम्बर?—सिपाही ने नोटबुक में लिखते हुए पूछा

और उस काले सूटवाले युवक ने जवाब दिया—सारी बिल्डिंग ही हमारी है।

और अब सरकारी खर्च पर चम्पा का क्रिया-कर्म हो चुका है। चिता के शोलों में वह राख हो चुकी है। अब रहा क्या है? फ़ुटपाथ पर उसके ख़ून का एक धब्बा! यही सोचते हुए मैं रद्दी अख़बार के काग़ज़ों को बिछाकर लेटने की तैयारी करता हूँ। इस अख़बार में एक बहुत ही अहम और दिलचस्प ख़बर छपी है। बम्बई सरकार ने फ़ुटपाथ पर सोनेवाले बेघरों के लिए एक घर बनाया है, जहाँ साढ़े तीन सौ आदमियों को सिर्फ़ पाँच आने फ़ी आदमी प्रतिदिन देने पर रात को सोने की जगह मिलेगी।

हज़ारवीं रात

हम हैं सिर्फ़ उन्नीस हज़ार नौ सो निन्नाबे!

यह मेरी इस डायरी का शायद आख़िरी पन्ना है।

इस समय सुबह के चार बजे हैं। थोड़ी ही देर में उजाला हो जायगा। चम्पा की याद में दस रातें जागकर बिताने के बाद कल रात मैं पहली बार सो सका था। आँख लगी ही थी कि किसी ने मुझे-झंझोड़कर उठा दिया।

चन्द पुलीस के सिपाही और चन्द समाजसुधारक स्वयंसेवक।

—हम फ़ुटपाथ पर रहनेवालों की गिनती कर रहे हैं। उनमें से एक ने कहा—तुम्हारा नाम?

इस पूछ-ताछ के बीच उनमें से एक ने बताया कि अब बम्बई में सिर्फ़ बीस हज़ार लोग हैं, जो फ़ुटपाथ पर अपनी रातें बिताते हैं।

और मैंने कहा—नहीं, सिर्फ़ उन्नीस हज़ार नौ सौ निन्नाबे, इसलिए कि चम्पा तो मर चुकी है। सिर्फ़ उसके ख़ून का एक धब्बा रह गया है, सो वह भी एक छींटा पड़ते ही धुल जायगा। आप फ़िक्र न कीजिए।

उन्होंने मुझे इस तरह घूरकर देखा, मानो उन्हें संदेह हो कि मेरा दिमाग़ चल गया है।

फिर उन्होंने मुझसे पूछा—तुम सरकारी घर में क्यों नहीं रहते, जहाँ बेघरों के सोने का प्रबन्ध किया गया है? क्या तुम पाँच आने रोज़ ख़र्च नहीं कर सकते?

मैंने कहा—मेरी आमदनी पैंताली रुपये मासिक है।

—फिर वहाँ क्यों नहीं जाते? यहाँ क्यों सोते हो? क्यों?........क्यों?........क्यों?

उनके सवालों की बौछार होती रही और मेरी ज़बान बन्द रही। अब मैं उन्हें क्या बताऊँ, कैसे बताऊँ। अगर बता भी पाऊँ, तो वे मेरी बात नहीं समझेंगे।

मैं उनसे कहना चाहता हूँ, आपने मेरे-जैसे बेघर लोगों के लिए सरकारी घर बनाया है। चलिए, बीस हज़ार के लिए नहीं तो साढ़े तीन सौ के लिए तो सोने का इन्तज़ाम किया है। बहुत अच्छा किया। शुक्रिया! धन्यवाद! जय हिन्द! लेकिन सरकार! मैं उस घर में दूसरे लोगों के साथ सोना नहीं चाहता। मैं ठहरा घर-गृहस्थीवाला। मुझे, मेरी पत्नी और तीन बच्चों को तो एक अलग घर, कम-से-कम एक अलग फ़्लैट चाहिए। एक कमरा, एक रसोई-घर और आँगन में सुर्ख़ फूलों से लदा हुआ गुलमोहर का एक पेड़!...लेकिन मैं उनसे कुछ भी न कह पाया और वे मुझे पागल समझकर चले गये और मैं सड़क पर गैस के हंडे के नीचे बैठा यह डायरी लिख रहा हूँ और पास ही फ़ुटपाथ पर चम्पा के ख़ून का धब्बा है, जो बहुत मद्धिम पड़ चुका है। आसमान पर बादल घिरने लगे हैं। जल्द बारिश शुरू हो जायगी और फिर यह ख़ून का धब्बा भी बम्बई के दामन से धुल जायगा। फिर क्या रहेगा?

यह है पत्थर की सेज पर बितायी हुई एक हज़ार रातों की दास्तान!

पुनश्च

मुझे पता नहीं, कौन लोग वे बड़ी-बड़ी पंचवर्षीय योजनाएँ और प्रोजेक्ट बनाते हैं। लेकिन अगर उनमें से किसी की नज़र से मेरी यह डायरी गुज़रे, तो उनसे मेरी इतनी अर्ज़ है कि बेघरों के लिए जो घर आप बना रहे हैं, यह बड़ा काम है, अच्छा काम है। लेकिन भगवान के लिए जल्दी कीजिए, अगर आप मुझे और मेरी चम्पा और हमारे बच्चों को बचाना चाहते हैं!

१४।४२ युनियन पार्क,
खार, बम्बई—२१।

उर्दू से अनु० हुनर

कबूतर

गंगादास कोठारी

ज्वेलर्स जेठाभाई जीवनदास ने अपने नये प्लाट में खड़े-खड़े जेब से बाजरे के दाने निकाले और सामने बिखेर दिये। गुटर-गूँ-गुटर-गूँ करते हुए सभी कबूतर एकदम उसी स्थान पर टूट पड़े। उनमें से एक बहुत ही सुन्दर, बिलकुल बेदाग, सफ़ेद कबूतर था। जेठाभाई ने उसे पकड़ने के लिए दबे पाँव अपना हाथ बढ़ाया ही था कि वह फड़फड़ाकर उड़ गया। जेठाभाई खाली हाथ मलते रह गये। कबूतर के हिस्से में गिरे हुए बाजरे के दाने उनके बूट के नीचे पिस गये और कबूतर भूखा ही उड़ गया।

उड़ता हुआ वह कबूतर दो-तीन फर्लांग की दूरी पर एक बड़े नीम के पेड़ के नीचे झोंपड़ी के कवेलुओं पर जा बैठा।

बड़ी बेकरारी से जेठाभाई वहीं चहलकदमी कर रहे थे। तभी एक कार और एक ट्रक वहाँ आयीं। कार से सिविल इंजीनियर सरकार, आरकिटेक्ट इंजीनियर मिस्टर मित्रा तथा लेबर कंट्रैक्टर अय्यर उतरे और ट्रक से ब्रिक एंड स्टोन सप्लायर सरदार मलिक।

चारों के पास आने पर डाँटते हुए-से जेठाभाई ने कहा—बड़ी शर्म की बात है! तीन माह बीत गये और अभी तक बँगले की केवल एक मंज़िल ही बनकर तैयार हुई है। आप लोगों ने चार माह में काम पूरा हो जाने का वायदा किया था। अप्रैल समाप्त हो गया है और यदि आप लोगों के काम की यही स्पीड रही, तो बरसात शुरू हो जायगी और बंगला अधूरा ही रह जायगा।

सरकार सिर नीचा किये हुए बोले—साहब, लेबर की कमी के कारण....

जेठाभाई ने बीच में ही बात काटते हुए कहा—मैं कोई बहाना नहीं सुनना चाहता! आपने जो एस्टीमेट दिया था, जैसा पेपर प्लानिंग किया, उस मुताबिक सब-कुछ दिया गया है।

मित्रा ने समझाते हुए कहा—परन्तु, साहब, यदि लेबर न मिले, तो उसमें हमारा क्या दोष?

अपनी कार की ओर बढ़ते हुए जेठाभाई ने कहा—यह-सब पहले सोचने की बात थी। मैंने कब कहा था कि

लेबर कम रखिए ? देखिए, मिस्टर मित्रा, आप लेबर बढ़ा लें, दस-बारह हज़ार ज़्यादा खर्चा हुआ, तो कोई बात नहीं, परन्तु बँगले का काम सात जून के पहले पूर्ण हो ही जाना चाहिए। छै जून को उसकी ओपनिंग सेरेमनी होगी, क्योंकि सात जून को पहली बरसात बरसेगी।—और बिना उनके उत्तर का इन्तजार किये जेठाभाई ने अपनी कार स्टार्ट कर दी और उसी रास्ते से चलाने लगे, जिस ओर कबूतर उड़ा था।

वह कबूतर झोंपड़ी के सामने हंडियों में चिपकी हुई झूठन बीन-बीनकर खा रहा था। पास में बैठे हुए आदमी ने उसे उड़ाया, तो यह उसके कंधे पर बैठ गया। जेठाभाई ने मोटर की रफ्तार बढ़ा दी। मोटर उड़ी जा रही थी और कबूतर झूठन खाते हुए आदमी के कंधे पर बैठा रहा।

झोंपड़ी के मालिक मिस्त्री दीनानाथ ने नीम के पेड़ के नीचे लिपे-पुते आँगन में खाट बिछाते हुए कहा—सुनती हो, कल से मैं शाम को न लौटा करूँगा। रात को भी काम चलेगा, रोटी जियादा बाँध देना। रात को दस बजे तक लौटा करूँगा। सेठ साहब का हुक्म है कि बंगला जून के पहले बन जाना चाहिए।

दीनानाथ की पत्नी रमा ने टूटी चटाई बिछाते हुए कहा—तुम सदा सेठों के बंगलों की ही सोचा करोगे या कभी अपनी झोंपड़ी के बारे में भी सोचोगे ? पीछे के कोने की दीवार धसक गयी है, छप्पर के कई बाँस भी टूट गये हैं और कवेलू भी बदलना है।

दीनानाथ ने आलस तोड़, उँगलियों को चटकाते हुए कहा—बंगला तो बन जाने दे। जब दुगनी मजदूरी मिलेगी, तो तेरे लिए भी झोंपड़ी के बदले घर बनवा दूँगा!

रमा तुनककर बोली—बस-बस, रहने भी दो, क्यों बेकार की बातें बनाते हो ? तीन साल से बोल रही हूँ, सामने की कच्ची दीवार के बदले पक्की बना दो, वह तो आज तक हुआ नहीं और पूरा घर बनाने चले हैं!.... तुमने यह झोंपड़ी ही बनी रहने दी, तो मैं तुम्हारे पाँव धो-धोकर पीऊँगी!—कहते हुए दीनानाथ की घरवाली ने बड़े अभिमान से अपनी झोंपड़ी की ओर देखा।

सुबह दीनानाथ समय के पहले ही बंगले पर पहुँच गया। सरकार इंजीनियर ने दीवार उठाने का काम ठेके पर दे दिया था। दो रेजा और एक कुली अपने हाथ के नीचे ज्यादा रखकर दीनानाथ ने अपना काम इतनी तेज़ी से आरम्भ किया कि दोनों रेजाओं की पायल एक मिनट के लिए भी चुप न हुई। एक हाथ में करनी और दूसरे हाथ से ईंट उछालते हुए दीनानाथ गुनगुनाता जा रहा था और फुर्ती से ईंटें जोड़ता जा रहा था।

इसी प्रकार एक दिन, दो दिन, तीन दिन....देखते-ही-देखते दीवार बन गयी। दूसरी मंज़िल खड़ी हो गयी और अब तीसरी मंज़िल की दीवारें उठ रही थीं कि बादलों का गरजना शुरू हो गया। दीनानाथ को बादलों के गर्जन में सरकार इंजीनियर की डाँट और बिजली की चमक में मित्रा साहब की आँखों की आग दिखायी देने लगी। मई का अंतिम सप्ताह था। सात जून को अभी पन्द्रह दिन हैं, सोचते हुए दीनानाथ ने अपने मन को धीरज दिया। वह दिल मज़बूत करता, परन्तु उसकी ताकत जवाब देने लगती। ऊपर से बादलों का काला-काला साया उसकी रोटी पर छाने लगा। मन का धीरज छूटने लगा, वह कर ही क्या सकता है ? बरसात कोई मेल या एक्सप्रेस नहीं, जो निश्चित समय पर ही आयगी और अगर पहले आने लगी, तो दीनानाथ सिग्नल न गिरा उसे दूर ही रोक देगा!

वह प्रकृति की गाड़ी तेजी से बढ़ने लगी। अब केवल दो दिन का कार्य ही शेष रहा था कि एक दिन शाम को तीन बजे बादलों का घुमड़ना आरम्भ हो गया और देखते-ही-देखते चार बजे का समय आठ बजे रात-सा मालूम होने लगा और मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो गयी। सारा काम ठप्प हो गया। सब कुली, मिस्त्री, रेजा छै बजे तक बरसात रुकने का इन्तजार करते रहे, बाद में घर चले गये। परन्तु दीनानाथ न गया।

जितनी तेज़ी से बादल आये, उतनी ही तेज़ी से बरस भी गये। सात बजे पानी बंद होते ही दीनानाथ ने अपने रेजा-कुली को सामान लाने का आदेश दिया, उसे विश-

वास था कि यदि तीन घंटे और पानी बंद रहा, तो अपने हिस्से का काम वह अवश्य समाप्त कर लेगा। उसने ऊपर देखा, नमस्कार किया और काम में भिड़ गया। तीन इंच, छै इंच, एक फ़ुट....अब केवल एक फ़ुट दीवार उठाना बाकी थी कि उसे किसी ने नीचे से पुकारा। चौथी मंजिल के मचान पर बैठे हुए, उसने नीचे अँधियारे की ओर देखा, तो उसे चक्कर-सा आने लगा।

नीचे दीनानाथ की घरवाली हाथ में कंदील लिये खड़ी ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रही थी—जल्दी, जल्दी घर चलो! झोंपड़ी के पीछे की पूरी दीवार धसक गयी है! पीछे के नाले का पानी भीतर घुस आया है! जल्दी उतरो!....

रमा का वह दुःख-भरा चीत्कार सुन दीनानाथ का धीरज छूट गया। एक क्षण के लिए वह सुन्न-सा रह गया, उसके हाथ से ईंट छूटकर नीचे पानी के हौज में जा गिरी और एक छप्प की आवाज़ हुई। मेरी झोंपड़ी की दीवार गिर गयी....इस बंगले की दीवार ज्यों-की-त्यों खड़ी है.... केवल एक फुट....दीनानाथ का सिर चकराने लगा, केवल एक फुट शेष है। उसने पास खड़ी रेजा से ईंट और गारा लाने को कहा, परन्तु नीचे नहीं उतरा, उसने ऊपर से ही आवाज लगायी—तू चल, में अभी आया तेरे पीछे-पीछे!

रमा के लौटते ही दीनानाथ शेष दीवार उठाने में जुट गया। केवल एक फ़ुट, यदि काम पूरा न हुआ तो कल पैसे न मिलेंगे। पैसे न मिले, तो मैं घर जाकर भी क्या कर सकूँगा?....दीनानाथ सोचता जाता और दीवार चुनता जाता। उधर उसकी पत्नी बहती हुई कच्ची दीवार की गीली मट्टी को रोकने का निष्फल प्रयत्न कर रही थी।

सुबह दीनानाथ की नींद बहुत देर से खुली। एकदम हड़बड़ाकर उठा। देखा, तो पत्नी ने तीन फुट ऊँची मिट्टी की दीवार थाप-थापकर खड़ी कर ली है। वह भी मिट्टी उठाने के लिए नीचे झुका, तो रमा ने अपना हाथ बीच में आड़ा करते हुए कहा—रहने दो! यह झोंपडी की दीवार है, किसी बङ्गले की नहीं! बंगले खड़े करनेवाले झोंपड़ी की कच्ची दीवारें उठायेंगे, तो उनका अपमान न होगा! अभी केवल झोंपड़ी की दीवार गिरी है, मैं नहीं!

दीनानाथ अपनी पूरी ताकत लगाकर चिल्लाया—रमा, जबान बंद कर!—और उल्टे हाथ का तमाचा उसने इतने ज़ोर से मारा कि वह चित्त जा गिरी। फिर हाँफते हुए उसने अपनी कमीज़ उठायी, लकड़ी की बड़ी स्केल और कवचा लिया और जाते हुए बोला—इस कच्ची मट्टी की दीवार की जगह पक्की-ईंट की दीवार न उठायी, तो मेरा नाम दीनानाथ नहीं!

क्रोध के आवेश में दीनानाथ सुबह ही बंगले पर पहुँच गया। वहाँ उस समय ज्वेलर्स जेठा भाई के सिवाय दूसरा कोई भी न आया था। जेठाभाई बने हुए काम का मुआइना कर रहे थे। दीनानाथ उनके पीछे-पीछे हाथ बाँधे हुए कदम-से-कदम मिलाकर चलने लगा।

छत पर पहुँचकर जेठा भाई ने आकाश की ओर देखते हुए खीसे से बाजरे के दाने निकालकर बिखेर दिये। देखते-ही-देखते कबूतरों का झुंड वहाँ उतर आया।

जेठाभाई ने दीनानाथ से कहा—उस सफेद कबूतर को पकड़ो। देखो, धीरे-धीरे जाना।

दीनानाथ 'धीरे-धीरे' शब्द सुनकर हँस पड़ा और आ-आ करते हुए बढ़ा, सब कबूतर तो उड़ गये, परन्तु वह सफ़ेद कबूतर न उड़ा। दीनानाथ ने उसे उठाया, बड़े प्यार से चूमा तथा जेठाभाई के हाथ में दे दिया।

प्यार से उसपर हाथ फेरते हुए जेठाभाई बोले—क्या यह तुम्हारा पालतू कबूतर है?....उस नीम के पेड़ के नीचे जो झोंपड़ी है, तुम्हारी ही है क्या?

उत्तर में दीनानाथ ने बड़े अदब से सिर झुका दिया।

—बड़ा खूबसूरत है, हमने इसे कई बार पकड़ना चाहा, परन्तु यह हाथ न आया। बाजरे के दाने भी पूरे न चुगता कि उड़ जाता। तुम इसे हमें बेच दो।

दीनानाथ एकदम चौंका—मालिक बेचने की क्या बात है, जब मैं ही आपका हूँ, तो....

जेठाभाई ने बात बीच में ही काटते हुए कहा—

ऐसी कोई बात नहीं, हमें यह बहुत पसंद है। हम चाहते हैं कि यह हमारे पास रहे, हमारे बङ्गले पर इसका घोंसला हो, हमारे कंधे पर यह आकर बैठे।

दीनानाथ से न रहा गया—लेकिन, मालिक, यह पंछी है, आदमी नहीं। यह आजाद है, किसी की भी हुकूमत में नहीं रहता। मेरा भी इस पर पियार का ही अधिकार है, दाम का नहीं।

जेठाभाई का चेहरा तमतमा उठा। उन्होंने उसे उड़ा दिया, कबूतर सीधा झोंपड़ी की ओर उड़ चला।

ऊपर से उतरते हुए जेठाभाई समझाने लगे—यह राजस्थान से मँगाया हुआ खास बाजरा तुम्हारे अधपके चावलों से अधिक मीठा है! समझे?

दीनानाथ की आँखें भर आयीं। उसने सिर नीचे किये हुए क्षमा मांगी तथा सफाई देना शुरू किया—माफ करो, मालिक! जिस तरह बाप अपने बच्चे को अपने मुँह के कौर का आधा हिस्सा खिलाता है, उसी तरह मैं इस कबूतर को खिलाता हूँ। यह मेरी संतान है, सरकार। मेरी घरवाली का कहना है कि सगा जाया बेटा घर छोड़कर चला गया, लेकिन भगवान के घर से आये हुए इस कबूतर ने हमारा साथ आज तक कभी भी न छोड़ा। यह कबूतर घरवाली के आँचल के नीचे सोता है, मालिक!

सामने का मैदान पारकर मोटर में बैठते हुए जेठाभाई ने दीनानाथ की दुःख-भरी दास्तान सुनी और जेब से दो रुपये का नोट निकालकर देते हुए बोले—यह लो, मिस्त्री, हमारी ओर से चावल लाना और पकाकर कबूतर को खिला देना!....

पाँच जून के दिन ऊपर की अंतिम पाँचवीं छत ढाली जानेवाली थी। नीचे सिमेंट, रेती और बारीक मिट्टी का गारा मशीनों-द्वारा मिलाकर तैयार किया जा रहा था। हाथों-हाथ धमेलों पर धमेले ऊपर बढ़े जा रहे थे। ऊपर छत पर बहुत बड़ी स्केल लिये दीनानाथ उस गारे को समतल किये जा रहा था। हाथ के साथ-साथ उसका मुँह भी चलता जा रहा था—जल्दी करो! जल्दी करो!

दीनानाथ की इस फुर्ती से कदाचित इन्द्र को ईर्ष्या हो आयी। बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े इकट्ठे होकर जैसे एक भयानक, काले पत्थरों का पहाड़ दीनानाथ के सिर पर उठाये हुए थे। ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही थी, फिर भी दीनानाथ के चेहरे पर पसीने की बूँदें छायी हुई थीं। उसने सिर उठाकर आकाश की ओर देखा और उसका कलेजा काँप उठा।—जय पवन कुमार!—कहते हुए उसने जैसे इन्द्र को ललकारा, और जैसे सचमुच ही बजरंग बली ने उसकी पुकार सुन ली। एकाएक ज़ोर से हवा का झोंका आया और शीघ्र ही आँधी के रूप में परिवर्तित हो गया। आकाश के बादल तो फटने लगे, परन्तु तेज आँधी के कारण बाँसों का मचान हिलने लगा। बादलों को उड़ते देख दीनानाथ खुशी के मारे सब-कुछ भूल गया और एक ऊँची टेर लगाते हुए गा उठा:

सावन आया, सावन आया, बरखा लाया,
टप्...टप्....टप्....बूँदन बाजी,
गीली चुनरिया महरी लाजी,
हो....हो, सावन आया....

दूसरे लोगों ने भी राग में साथ दिया और वह समूहगान गूँज उठा। उसी क्षण कबूतर फड़फड़ाता हुआ आया और दीनानाथ के कंधे पर बैठ गया। दीनानाथ ने उसे दोनों हाथों में लेकर चूमा और फिर से उड़ाया, परन्तु वह फिर आकर उसकी कमीज़ को चोंच से खींचने लगा। परेशान होकर दीनानाथ खड़े होकर उसे जोर से फेंकते हुए बोला—जो! अभी काम खतम नहीं हुआ, घर आने का समय नहीं हुआ।

कबूतर वहीं मँडराता रहा, उसने दीनानाथ का पीछा न छोड़ा। उसके इस विचित्र आचरण को देखकर दीनानाथ को भी कुछ आश्चर्य हुआ। उसी समय नीचे से उसके पड़ोसी ने उसे पुकारा—दीनानाथ, ओ दीनानाथ! अरे भाई, तुम्हारी झोंपड़ी के ऊपर नीम का पेड़ आँधी में टूटकर गिर गया है, छत टूट गयी है, जल्दी घर चलो! तुम्हारी घरवाली झाड़ के नीचे दब गयी है।....

अंतिम शब्द सुनते ही दीनानाथ ने हाथ का कवचा वहीं फेंका और पुकारते हुए गिरते-पड़ते मचान पर से दौड़ता हुआ उतर पड़ा।

सामने भीड़ खड़ी थी। बीच में रमा पड़ी-पड़ी कराह रही थी। दीनानाथ का दम इतना फूल गया था कि उसके मुँह से शब्द न निकल रहा था। रमा के सिर से खून बह रहा था और आँचल के नीचे नीम की कोई डाल पेट में घुस जाने के कारण खून बह रहा था। दीनानाथ से न देखा गया, उसने अपना मुँह ढाँक लिया। रमा ने उसके मुँह पर से हाथ हटाया और एक बार उसे और एक बार अपनी झोंपड़ी की ओर बारी-बारी से देखा।

तभी भीड़ में से किसी ने आवाज़ दी—हटो, एम्बुलंस आ गयी!

दीनानाथ ने उठाने के लिए जैसे ही रमा के सिर के नीचे अपना हाथ दिया कि उसका दम टूट गया। उसकी खुली आँखें खुली रह गयीं, जो शायद मृत्यु के पश्चात भी देख रही थीं, टूटी हुई छत, गिरी हुई दीवारें, एक बरबाद झोंपड़ी!

दीनानाथ ने भरी आँखें ऊपर की ओर उठायीं, सामने दूर बंगले की छत बनकर तैयार हो गयी थी और लोग खुशी से नाच रहे थे।....

दूसरे दिन से दीनानाथ फिर वहाँ-कहीं दिखायी न दिया।

नीम के उस टूटे पेड़ पर कबूतर आज भी बैठा दिखायी देता है। कहते हैं कि एक सेठ रोज आकर वहाँ बाजरा बिखेरता है, लेकिन कबूतर उसपर मुँह भी नहीं मारता।

हिन्दुस्तान आयलमिल्स,
घाट रोड, नागपुर।

गुनहगार

रमणलाल बसंतलाल देसाई

मैं गुनाह कबूल करता हूँ। आपको मार-पीट करने या मेरे नाखूनों में सूइयाँ चुभाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, और न ही मुझे अधर लटकाने की ही आप आवश्यकता अनुभव करेंगे। गुनाह कबूल न करने के विपरीत-परिणामों से मैं भली भाँति परिचित हूँ।

नहीं साहब, इसमें आपका कोई दोष नहीं है। गुनाह करनेवाले कोई सत्यवादी तो होते नहीं हैं, और न ही पुलीसवालों के पास दिव्य दृष्टि होती है कि गुनहगार का हृदय पढ़ सकें! बिना मारे-पीटे गुनाह कबूल करवाना कितना कठिन काम है, यह मैं समझता हूँ। फिर यदि आप मार-पीट न करें, तो क्या करें?

परन्तु मुझे मार नहीं खाना। अब मैं थक गया हूँ, हार गया हूँ। न तो मेरे शरीर में ही शक्ति रह गयी है और न हृदय में ही। जिसके हृदय में शक्ति ही न हो, वह मार कैसे सहन कर सकता है? हाँ, यदि आपके एक ही हंटर से मेरी मृत्यु हो सके, तो मैं आपके हंटर का स्वागत करूँगा। पर एक हंटर तो क्या, दस हंटर भी मनुष्य को मृत्यु की शान्ति नहीं दे सकते। और मुझे तो मौत चाहिए, मौत की शांति चाहिए। इस जीवन से ऊब गया हूँ मैं। मेरे लिए जेल के सींखचों के बाहर खड़े रहने-भर की जगह नहीं रह गयी है। समाज की अपेक्षा सरकार ही अच्छी है। सरकार गुनहगार को दो जून रोटी और सोने के लिए पाँच हाथ ज़मीन तो देती है। पर समाज तो इतना सकुंचित है कि उसमें गुनहगार के लिए एक हाथ की भी जगह नहीं है। फिर रोटी-पानी का तो सवाल ही नहीं उठता। गुनहगार के लिए दो ही रास्ते हैं। जीना चाहे तो जेल के सींखचों में रहे और मरना चाहे तो जेल के बाहर निकल आये। पर मैं तो अब बंद जीवन से भी ऊब गया हूँ। मुझे मौत दे सकेंगे? इस जीवन से छुटकारा पाने के लिए बेचैन हो रहा हूँ मैं।

नहीं, नहीं, इन फजूल की बातों से गुनाह की बात उड़ा देने की मेरी मंशा नहीं है। वह तो मुझे कबूल है। पुलीस के हाथ पकड़े जाने के बाद गुनाह उड़ा देने की मुझमें चतुरता नहीं है। निर्दोष मनुष्य को भी पुलीस के सामने अपने पर लगाया गया झूठा आरोप मानना पड़ता है। फिर मैं तो एक गुनहगार हूँ। मैंने गुनाह किया है। फिर भला गुनाह की बात किस तरह उड़ा सकता हूँ? यदि चाहूँ, तो भी नहीं उड़ा सकता। मैं गुनाह कबूल करता हूँ। मैंने कितने ही जुर्म किये हैं, वे-सब ही आज आपके सामने कबूल करता हूँ। मृत्यु के इच्छुक मनुष्य को जीवन का कुछ भी मोह नहीं रहता। खैर, सुनिए।

मेरा जन्म उस जाति में नहीं हुआ, जिसे कि आप जरायमपेशा समझते हैं। गुनाह तो हर जाति करती है,

फिर केवल कुछेक जातियों को ही जरायमपेशा समझना सरकार की भूल है। हाँ, यह सच है कि प्रतिष्ठित जाति अपनी चालाकी से गुनाह प्रगट नहीं होने देती है। केवल वही पकड़े जाते हैं, जिन्हें आप जरायमपेशा जाति का समझते हैं। हाँ, तो प्रतिष्ठित जाति में जन्म लेकर भी मैंने गुनाह का आरम्भ बहुत ही देर से किया था। मैं ग़रीब था, पर धर्मच्युत नहीं था। ग़रीबी के कारण मैं ज्यादा नहीं पढ़ सका था, केवल मैट्रिक करके ही मुझे स्कूल छोड़ देना पड़ा था। पर मेरे सौभाग्य से, या दुर्भाग्य से मुझे एक सेठ के यहाँ गुमाश्ते की नौकरी मिल गयी थी। बीस रुपये माहवार की इस नौकरी को पाकर मैं बहुत ही खुश हुआ था। साहब, ग़रीब आदमी थोड़े में ही खुश हो जाते हैं!

इस समय जैसा दिखायी दे रहा हूँ, तब ऐसा नहीं था। इस समय तो आपको मुझमें और एक जंगली भील में ज़रा भी अन्तर नहीं दिख रहा होगा। परन्तु उस समय मेरी चमड़ी गोरी और सुन्दर थी, मेरा मुँह भी इस समय-सा कुरूप नहीं था। इस समय मेरी इन फटी-फटी आँखों में दिखता पागलपन उस समय नहीं था। भले ही आप विश्वास न करें, पर उस समय प्रत्येक मुझे खूबसूरत आदमी कहता था। ख़ैर, यह सुन्दरता की बात यहीं छोड़ता हूँ।

गुमाश्ता के पद पर रहकर मैं कागज़-पत्र और बही लिखने का काम करता था। कुछ दिनों में मुझे लगा कि मेरा काम मुनीम और सेठ दोनों को अच्छा लगा है, यद्यपि मेरे सामने उन्होंने कभी इस बात का जिक्र नहीं किया था। पर हाँ, मेरे अच्छे काम की कदर करके ही वह मुझे और भी दूसरा काम देते रहते थे। इतना ही नहीं, सेठ का घरू काम भी मेरे ही हिस्से आ गया।

काम से मैं कभी थका नहीं। सेठ की कृपा-दृष्टि का ध्यान करके ही मैंने अधिक काम का भी स्वागत किया। जो काम मुझे दिया जाता, उसे संकट उठाकर भी मैं पूरा करता।

पर सेठ को ख़ुश रखना जितना आसान था, सेठानी को ख़ुश रखना उतना ही कठिन था। घरू कामों की व्यवस्था सेठानी के द्वारा ही होती थी। सेठानी थी भी ज़बरदस्त औरत। सेठानी के साथ बैठा हुआ सेठ बिल्कुल ही मामूली आदमी लगता था। सेठानी की कठोरता से सारा घर काँपता था। सेठ तक को मैंने उसके सामने भींगी बिल्ली की तरह दबता देखा है। सेठानी की निगाह चारों ओर घूमती रहती थी और उसकी आवाज बँगले के कोने-कोने में गूँजती थी। घर के काम-काज के कारण ही मैं उस उग्र स्त्री के झपाटे में आ गया।

उस समय मेरा नाम कुन्दनलाल था। यह अलग बात है कि आज सब-कोई मुझे कुन्दनियों, कुनियों या कुन्दी कहकर बुलाते हैं। मेरी बुआ ने क्या देखकर मेरा नाम कुन्दन रखा था, यह मैं आज भी नहीं समझ सका हूँ। नाम जैसा गुण मैंने कभी अपने में नहीं पाया।

पहली बार घर का काम सौंपते समय, सेठानी ने भारी आवाज़ में, फूली हुई गरदन को अधिक फुलाकर, आँखें निकालकर कहा था—मेरे सामने कोई गड़बड़ नहीं चलेगी, कुन्दन! जैसा मैं चाहूँ, वैसा तुझे करना ही पड़ेगा, नहीं तो तुझे घर बैठना पड़ेगा!

सेठ के अतिरिक्त प्रत्येक से सेठानी 'तू' कहकर ही बात करती थी। मुझे डर लगा। सेठानी के पास काम करने-वाले अच्छे-अच्छे आदमी घर बैठ चुके थे। काँपते-काँपते मैंने उत्तर दिया—आपको मुझसे कोई शिकायत नहीं होगी, मालकिन।

सेठानी को दिये इस वचन का मैंने सदैव पालन किया। अक्सर रात के बारह-बारह बजे तक मैं उन्हीं के काम में पिला रहता। दिन में दफ़्तर का काम करता था सो अलग। पर मैंने कभी भी काम की अधिकता की चिन्ता नहीं की। सेठ-सेठानी को अपने काम से ख़ुश रखना ही मेरा ध्येय हो गया था। और इसी में मैंने अपनी उन्नति भी होती देखी, देखी नहीं, केवल कल्पना ही की।

सेठानी ने मुझे घर नहीं बैठाया, इससे मैं कह सकता हूँ कि उसे मेरा काम पसन्द आया था। पर, कभी-कभी कोई बहाना निकालकर वह मुझे यह नहीं भूलने देती थी कि मैं एक अदना नौकर हूँ। नौकरों को बिना कसूर

भी धमकाया जा सकता है, बिना कसूर धमकाकर, दबाकर, भयभीत रखना सुव्यवस्था का सूत्र माना जाता है न ! किसी से कोई ग़लती हो जाने पर क्रोधित सेठानी मुझे भी चेतावनी देती रहती थी कि मैं कहीं ऐसी ग़लती न करूँ।

किन्तु जिस दिन सेठानी ने सेठ को एक हुक्म दिया, मुझे लगा कि मेरी सारी मेहनत, मेरा सारा जीवन सफल हो गया।

—सुनते हैं न ? इस कुन्दन को अपने बगीचे में ही रहने को जगह दे दीजिए। पास रहेगा, तो काम पड़ने पर बताती रहूँगी। दूर रहने के कारण इसे कोई काम भी नहीं कह सकती।

भले ही सेठानी का यह अभिप्राय रहा हो कि दूर रहने के कारण मुझसे अधिक काम नहीं ले सकती, पर मेरा यह अभिप्राय नहीं था। फिर भी सेठानी की बात से मुझे संतोष और गर्व हुआ। मुझे इतना तो विश्वास हो ही गया कि वह मेरे काम से सन्तुष्ट है।

—पर उसे कहाँ रखोगी ?—सेठ ने पूछा।

—उसे रहने के लिए कितनी जगह चाहिए ! दो-तीन कोठरी खाली करवा दूँगी।—सेठानी ने कहा।

जिस तरह कुत्ते के सामने ज़्यादा या कम, बची हुई रोटी फेंक देते हैं, मेरे लिए कोठरी खुलवा देना भी वैसा ही था। कुत्ते की ही भाँति नौकरों का भी आत्मसम्मान नहीं होता !

—पर वह तो बाल-बच्चोंवाला है। अभी कुछ ही दिन पहले मैंने उसकी तनखाह में पाँच रुपये बढ़ाये हैं। —सेठ ने कहा।

छः-सात वर्ष की नौकरी के बाद सेठ ने मेरी तनखाह में पाँच रुपये बढ़ाकर उदारता दिखायी थी, यह सच है।

—उसके बाल-बच्चों को यहाँ से कोई ले तो नहीं जायगा ! कोठरियों का किराया नहीं लेंगे। उसे इतनी छूट और दे दो।

मेरे छोटे-से परिवार में मैं, मेरी पत्नी और एक नन्हीं बच्ची, कुल तीन प्राणी थे। बहुत छोटी उम्र में ही मेरा विवाह हो गया था। मेरी पत्नी भी मेरी ही तरह ग़रीब घर की थी। इसी कारण बिना ज़्यादा लेन-देन और खर्च के हमारा विवाह हो गया था। मेरी पत्नी थोड़ी-बहुत गुजराती पढ़-लिख लेती थी।

वह केवल पढ़ी-लिखी हो, सो बात नहीं, वह बहुत ही शांत स्वभाव की, मेहनती, आज्ञाकारी तथा सुशील थी। उसके नाक-नक्श भी आकर्षक थे। मुझे तो बहुत ही अच्छी लगती थी वह। मेरी निर्धनता पर कभी उसने असंतोष प्रगट नहीं किया था। उल्टे, जब कभी मैं अपनी निर्धनता पर खीझ उठता था, तो वह मुझे आश्वासन देती हुई कहती—इतना असंतोष भी किस काम का ! मुझे तो कुछ भी नहीं चाहिए !........

मौत के इच्छुक मनुष्य के यह आँसू जीवित रहते हैं ! पत्नी की याद आने पर आज भी आँसू उमड़ आते हैं। पर इन आँसुओं का मूल्य मेरे लिए ही है। वह तो स्वर्ग सिधार गयी। अब उसकी बात नहीं करूँगा। आपके आज्ञानुसार गुनाह से सम्बन्धित बात ही करूँगा। मैं जानता हूँ कि आपको मेरी यह बकवास सुनने की फ़ुरसत नहीं है।

सेठानी के इच्छानुसार सेठ ने मुझे आज्ञा दी और मैं बगीचे में रहने लगा। बंगले के निकट की कोठरी मुझे बंगले-जैसी ही लगी। पर मेरी पत्नी ने उस अच्छी जगह रहने में कोई उत्साह नहीं दिखाया। वह अक्सर कहती रहती, बहुत बड़े आदमियों का पड़ोस भी अच्छा नहीं। हम यहाँ शोभा नहीं पाते। पर मैं उसकी बात को हँसी में उड़ा देता था।

मेरी एक सात वर्ष की बेटी थी। सेठ के भी लगभग इतनी ही उम्र की एक लड़की थी। मेरी बेटी का नाम सरिता था और सेठ की बेटी का नाम प्रियबाला। यहीं से मेरे गुनाह की कहानी आरम्भ होती है।

सरिता प्रियबाला की अपेक्षा कम सुन्दर नहीं थी। माँ-बाप की आँखों को तो अपने बालक वैसे भी कुरूप नहीं लगते। बालक बहुत शीघ्रता से मित्र बन जाते हैं। इस उम्र में ग़रीबी-अमीरी, ऊँच-नीच का अन्तर अदृश्य होता है। न जाने कब, कैसे सरिता और प्रियबाला ने परस्पर

मित्रता स्थापित कर ली। जब-तब उन्हें बगीचे में साथ-साथ खेलते देख मैं खुश हो जाता था।

परन्तु मेरे भाग्य में यह खुशी ज़्यादा दिन तक नहीं लिखी थी। बँगले के एक विशाल कमरे में बैठा मैं शेयर के कागज़ देखकर ब्याज लगा रहा था। सेठ-सेठानी का मैं इतना विश्वासी हो गया था कि कभी-कभी उनकी तिजोरी और जेवरात के सन्दूक की चाभी तक वह मुझे दे देते थे। दूर एक कोने में बैठे सेठ अखबार पढ़ रहे थे। तभी ज़ोर से कमरे का द्वार खुला और सेठानी का क्रुद्ध स्वर सुनायी दिया—यह तो एक बड़ी मुसीबत है!

सेठानी की असंख्य मुसीबतों में एक और मुसीबत की वृद्धि हुई देख सेठ ने कोई आश्चर्य प्रगट नहीं किया। फिर भी चिन्ता प्रगट करते हुए बोले—क्यों, क्या बात है?

—आप नहीं देख रहे हैं? अपनी प्रियबाला कमीनों के साथ खेलने लगी है! ओह! कितना बुरा असर पड़ेगा उसपर!

—यहाँ तो कोई ऐसा बच्चा नहीं है। नौकरों के बच्चे तो इधर आते नहीं हैं। तुमने जब से मना किया है, तब से....

—तो क्या यह कुन्दन तुम्हारा नौकर नहीं है?—सेठानी इस तरह बोली, जैसे मेरी उपस्थिति से अनभिज्ञ हो। पर सेठानी के शब्दों से मेरा मस्तिष्क झनझना उठा।

—अरे, तो इससे क्या हुआ?—सेठ की आवाज़ में संकोच था, आगे बात न बढ़ाने का संकेत था। वह तो जानते थे कि मैं इतने करीब बैठा हूँ कि हर शब्द सुन सकूँ।

—पूछ रहे हैं, इससे क्या हुआ? देखते नहीं, रात-दिन उसकी छोकरी के साथ प्रियबाला भटका करती है! इस तरह तो वह बिल्कुल बिगड़ जायगी।

—ठीक है, देखूँगा,—कहकर सेठ जल्दी से कमरे से बाहर हो गये।

सेठानी भी उनके पीछे-पीछे लपकी। मैं अकेला रह गया।

मैं ज़रूर ही नौकर वर्ग में था। रुपये-पैसों में मैं सेठ से कमज़ोर था, इसी से प्रतिष्ठा में भी कमज़ोर था, यह मैं कबूल करता हूँ। पर मैं यह मानने के लिए कतई तैयार नहीं कि मेरी ग़रीबी के कारण मेरी पुत्री प्रियबाला के साथ खेलने के लिए अपात्र थी। सेठानी के शब्दों से मैं जल उठा। क्या एक प्रामाणिक नौकर अप्रामाणिक मालिक से निम्न है? उसके बच्चे भी मालिक के बच्चों से गिरे हुए समझे जायँ? यह कैसा न्याय है!

अपमान सहने के आदी हो गये नौकरों को अपमान भुला देना पड़ता है। सारे दिन मैं इस तरह काम करता रहा, जैसे कुछ हुआ ही न हो। पर घर पहुँचते ही वह बात फिर ताज़ी हो गयी। मेरी बेटी एक ओर खड़ी रो रही थी। और सदा शान्त रहनेवाली मेरी पत्नी ने उग्र रूप धारण कर रखा था।

—क्या हुआ?—मैंने पूछा।

—कुछ नहीं,—पत्नी ने जवाब दिया।

—फिर यह सरिता क्यों रो रही है?

—माँ मेरे पाँव तोड़ देने के लिए कह रही है!—रोते-रोते सरिता ने माँ की शिकायत की।

बातचीत में मैंने जाना कि, सेठानी ने मेरी पत्नी को बुलाकर डाँटा-धमकाया था कि आगे से कभी सरिता को प्रियबाला के साथ न खेलने दे। सरिता प्रियबाला की आदत खराब कर रही है। गरीब और तिसपर औरत जात! वह किसपर गुस्सा उतारती? कोठरी में आकर सरिता को धमकाकर कहा था, अब कभी तूने बंगले में पाँव रखा, तो तेरे पाँव तोड़ दूँगी!

बच्ची के पाँव तोड़ने की अपेक्षा सेठ का बंगला जला देना क्या ज़्यादा अच्छा नहीं होता? परन्तु मैं कुछ बोला नहीं। हँसकर बच्ची को अपनी गोद में खींच लिया। किन्तु मुझे और मेरी पत्नी को इस अपमान की याद से सारी रात नींद नहीं आयी।

दो-तीन दिन तक प्रियबाला और सरिता साथ-साथ नही दिखीं। पर एक दिन संध्या समय सेठानी की चीख़-चिल्लाहट से मैंने जाना कि दोनों बग़ीचे में पेड़ के पीछे छुपकर खेलती हैं। तत्काल मैं उस ओर दौड़ गया।

सेठानी सरिता को धमकाने के बदले मुझे धमकाने लगी —तुझे कितनी बार कहना पड़ेगा, कुन्दन ? तेरी यह सरिता हरदम प्रियबाला के पीछे पड़ी रहती है ! देख, आज इसने यह ट्राइसिकिल तोड़कर रख दी है ! छोकरी को काबू में क्यों नहीं रखता ?

सेठानी को करारा जवाब देने के लिए मेरे हृदय में कितने ही शब्द उठने लगे। पर मेरी ज़बान को मालूम था कि मेरा पोषण सेठ की दी हुई तनखाह से ही होता है। सरिता को साथ लेकर मैं वापस लौटा। पीछे से मैंने सेठानी को कहते सुना, कितना सिर चढ़ा रखा है इस छोकरी को ! एक शब्द भी तो नहीं कहता !

और सच, मैंने सरिता से कुछ भी नहीं कहा ! पर वह रोने लगी थी। और उसे रोती देख पत्नी ने कहा था—अब आगे से कभी प्रियबाला के साथ खेलने मत जाना !

—मैं खुद खेलने नहीं जाती हूँ माँ। वही मुझे बुलाकर ले जाती है।

—वह बुलाये तो भी अब कभी मत जाना, समझी ?

एकाध दिन शांति रही। नौकर या नौकर के बच्चों का अपमान करना तो मालिक का हक होता है। फिर सेठानी का क्या दोष ? जैसे कुछ हुआ न हो, इस तरह सेठानी पूर्ववत् मुझसे बात करने लगी और हुक्म देने लगी। उसे याद ही नहीं रहा कि कभी उसने मेरा अपमान भी किया था। इस संसार के समस्त धनिक अपनी जबान और व्यवहार से निरन्तर अपने आश्रितों को बेधा करते हैं, यह उन्हें कौन समझाये !

दूसरे दिन सेठानी और प्रियबाला कहीं घूमने जा रही थीं। मेरी बेटी कोठरी की छत पर खेल रही थी। प्रियबाला ने उसे देख आवाज़ दी—सरिता !

सरिता ने उसकी ओर देखा, पर माँ की सीख के कारण कुछ बोली नहीं। उल्टे वह कोठरी में जा छुपी। सेठानी से यह गुस्ताख़ी सहन नहीं हुई ! सारा बगीचा सुन सके, इतनी जोर से बोली—किस बात पर इतना घमंड है इस छोकरी को ? न बोले तो न सही ! कमीने

मैं कुछ नहीं बोला। पर उसी क्षण से मैं सेठ-सेठानी का दुश्मन हो गया। सेठानी का खून तक कर देने का मैंने विचार किया; उसे तड़पा-तड़पाकर मारने की मैंने कल्पना की; उनका धन लुटाकर, उसे दर-दर भीख मांगते देखने के दृश्य को अपनी आँखों के सामने सजीव कर, मैंने अपनी वैर-वृत्ति को सन्तुष्ट किया। परन्तु तीस रुपये महीने की तनखाह ने मुझे इतना कायर बना दिया था कि उग्र कल्पना गढ़कर भी मैं सेठ-सेठानी से एक उग्र शब्द तक नहीं कह पाता था।

बेचारी प्रियबाला ! एक दिन हमारी कोठरी में जा पहुँची। वह भोली बच्ची ऊँच-नीच का भेद-भाव क्या समझती। अपनी माँ की तरह सरिता को वह अस्पृश्य नहीं समझती थी। उसे तो खेलना था, और इसके लिए एक साथी की जरूरत थी। बोली—सरिता के साथ खेलने आयी हूँ, कहाँ है वह ?

उसे किस तरह सरिता के साथ खेलने से मना किया जा सकता था। माता का अन्याय वह अस्पष्ट तरीके से समझती थी। माँ और आया की नज़र बचाकर सरिता के साथ खेलने आयी थी। बालक हमेशा अपने हमउम्र, साथी के साथ ही खुश रहता है। अब तक सरिता भी वहाँ जा पहुँची थी। और जाते ही प्रियबाला के साथ इस तरह खेलने लगी, जैसे हम से आज्ञा लेने की कोई आवश्यकता ही न हो।

पन्द्रह-बीस मिनट बाद ही प्रियबाला की आया ने कोठरी के बाहर आकर धीरे से प्रयबाला को आवाज़ दी। प्रियबाला सुनते ही बाहर निकल आयी। वह अपने जितने खिलने लायी थी, आया वह-सब उठाकर ले गयी। न जाने कैसे एक गुड़िया मेरी कोठरी में रह गयी।

घंटे-भर बाद प्रियबाला को गुड़िया की याद आयी। आया वह गुड़िया ढूँढती-ढूँढती हमारी कोठरी में भी आयी। और एक जगह गुड़िया रखी देख, बड़बड़ाती हुई चली गयी। कुछ देर बाद मेरा बुलावा आया। मैं सेठानी के पास गया। भाग्य से ही कभी नौकरों ने सेठानी को सौम्य रूप में देखा होगा !

मुझे देखते ही वह बोली—बच्चों की बात तो कुछ नहीं, कुन्दन, पर अब तू भी चोरी करने लगा ?

मैं समझ गया। वह प्रियबाला की गुड़िया का उल्लेख कर रही थी। फिर भी मेरी आँखों में तथा कंठ में उष्मा आ गयी—क्या कह रही हो, मालकिन ? कैसी चोरी ?

—एक तो चोरी की, ऊपर से सीनाजोरी करता है ? तेरी बहू उस छोकरी को चोरी करना सिखाती है। यह खिलौना आया लायी है तेरी कोठरी में से, अब समझा ?

—यह खिलौना तो हमारा है, मैंने खरीदा था !—क्रोध में मैं बोला। गुनाह की राह में यह मेरा पहला कदम था।

—यह बात है ! तीस रुपये की तनखाह में तू खिलौने भी खरीद सकता है ?

बिजली-जैसा कोई प्रकाश मेरे हृदय में कौंध गया। अपनी प्रामाणिक नौकरी से मैंने सेठ के, अधिक नहीं तो आठ-दस हज़ार रुपये बचाये थे। अन्य गुमाश्ते मेरी प्रामाणिकता को मूर्खता कहते थे। पर उनके रोज़-रोज़ के ताने से मैं ज़रा भी विचलित नहीं हुआ था। और आज उसी प्रामाणिकता का मुझे इस रूप में बदला दिया जा रहा था !

मैं उसी दिन अपनी बच्ची के लिए एक ट्राइसिकिल और टोकरी भरकर खिलौने लाया। बच्ची बहुत-बहुत ख़ुश हुई। उसे खुश देखने के लिए ही मैंने सेठ के रुपयों से वे खिलौने खरीदे थे। खिलौने खरीदते समय मुझे लगा था कि सेठ के रुपयों में मेरा भी पूरा-पूरा अधिकार है। किन्तु मेरी पत्नी ने इस तरह खिलौनों में पैसे बरबाद कर सेठानी से बदला लेने के लिए मुझे मना किया। वह बेचारी समझती थी कि मैंने अपनी तनखाह के तीस रुपयों में से ही यह खिलौने खरीदे हैं।

मुझे अब सेठ के पैसों में अपने पैसे दिखने लगे। दलाली, कमीशन आदि से मुझे तनखाह से अधिक आय होने लगी। किसी को कुछ शंका भी न हुई। उल्टे, सेठ के सम्पर्क में आनेवाले व्यापारियों को मेरे इस कार्य से अधिक सुविधा होने लगी।

एक दिन प्रियबाला हीरे की बंगड़ियाँ पहने मेरी कोठरी में आयी। मैं वहाँ नहीं था। रात में मुझे मालूम हुआ। मेरी पत्नी ने सरिता को पीटा था। कारण, सरिता ने प्रियबाला-जैसी हीरे की बंगड़ियों की माँग की थी। गरीब आदमी के बच्चों को अच्छी चीज़ पहनने की इच्छा हो, तो बेचारों को पीटा जाय, यह कहाँ-का न्याय है !

मैंने अपनी पत्नी से कहा—अरे, इसमें मारने-पीटने की क्या बात है ? क्या बच्चों के मन नहीं होता ?

—क्या कह रहे हैं आप ? इस छोरी को बिगाड़ना है क्या ?

मैं कुछ बोला नहीं। आज तक मुझे मेरी गरीबी कभी अखरी नहीं थी। पर जब यही गरीबी मेरी बच्ची की आँखों से आँसू बन बहती, तो मेरे लिए असह्य बन जाती। यही कारण था कि बच्ची के लिए गरीबी दूर करने के समस्त पापकर्म मेरी दृष्टि में पाप-रहित हो गये।

सेठ की तिजोरी की चाभी कभी-कभी मेरे पास रहती थी। एक दिन मैंने प्रियबाला की बंगड़ियाँ उठा लीं और पत्नी को देते हुए कहा—कल यह बंगड़ी सरिता को पहनाकर गाँव ले जाना। कोई इसे पहने देखे नहीं, बस, इस बात का ध्यान रखना।

मेरी पत्नी ने पहले तो वह बंगड़ी हाथ में ली ही नहीं, पर जब मेरा उग्र रूप देख उसने वह बंगडियाँ लीं, तो जैसे जल गयी हो, इस तरह चमक गयी।

क्षण-भर बाद वह बोली—कहाँ से लाये ?

—तुम्हें क्या मतलब है ? मैं कहूँ, वैसा करती रहो !

—इस तरह किसी दिन हम पर बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ेगी,—पत्नी ने कहा।

उसका कथन सच निकला। मैं तो जी रहा हूँ, पर वह इसी कारण मर गयी।

दूसरे दिन एकाएक सेठ ने मुझे काम से दूसरे गाँव भेज दिया। मैं रात में ही वापस लौटनेवाला था, पर काम की अधिकता से लौट न सका। दूसरे दिन जब मैं लौटा, मेरी कोठरी पुलीस से घिरी हुई थी। मेरा हृदय थरथरा उठा। सारे शरीर में कँपकँपी छूट गयी। मैं सँभल पाता, इससे पहले ही पुलीस ने मुझे पकड़ लिया।

सब बात जान गये थे कि मैंने सेठ की हीरे की बंगडियाँ चुरायी थीं।

सेठानी मुझसे कहीं अधिक चालाक थी, यह मैं भूल गया था। जिस दिन मैंने प्रियबाला की गुड़िया अपनी बनायी थी और जिस दिन मैंने सरिता के लिए ट्राइ-सिकिल खरीदी थी, उसी दिन से सेठानी ने हम पर पहरा बैठा दिया था। मैं नहीं जानता था कि हमारे हर काम पर सेठानी की नज़र रहती है। यद्यपि मैं कभी ऐसा काम नहीं करता था कि जिससे पकड़ा जाऊँ, पर बेटी को हीरे की बङ्गड़ियाँ पहनाने की ममता में मैंने जो दुस्साहस किया था, वह अक्षम्य था। हीरे की बंगड़ी पहन माँ के साथ देव-दर्शन को गयी मेरी बेटी को सेठ की एक नौकरानी ने देख लिया था। उसने सेठानी से कहा। सेठानी ने तिजोरी खोलकर देखी, तो वहाँ बंगड़ियाँ नहीं थीं। पुलीस में रिपोर्ट की गयी। पुलीस के आते ही बंगड़ियाँ मिल गयीं। चोरी और विश्वासघात का मुझपर जुर्म लगा। और घर आते ही मैं पकड़ा गया। मैंने अपने बचाव में बहुत दलीलें दीं कि, मैं विश्वासपात्र नौकर हूँ। तिजोरी तक मैं खोला करता था। अव्यवस्थित रखी बंगड़ियों को ठीक तरह रखने के लिए निकाली थी। भूल से वह मेरी जेब में ही रह गयी। उसी दिन मुझे काम से दूसरे गाँव जाना था, सो जल्दी और भूल से वापस तिजोरी में रखना भूल गया। अज्ञानतावश मेरी पत्नी ने हुलस में आकर सरिता को बंगड़ियाँ पहना दी थीं। चोरी करने का मेरा उद्देश्य नहीं था।

मेरा बंगड़ियाँ चुराने का विचार था भी नहीं। तिजोरी की चाभी चूँकि मेरे पास थी, सो बच्ची को बंगड़ी पहना कर खुश करने की नीयत से मैंने वह उठा ली थी। बच्ची को खुश कर मैं बंगड़ियाँ वापस यथा-स्थान अवश्य रख देता।

पर मेरी झूठी-सच्ची दलील किसी ने न मानी। मुझे हिरासत में ले लिया गया। उसी रात मेरी पत्नी ने जहर खाकर आत्महत्या कर ली। कचहरी में मुकद्दमा चला। मैंने सारी हकीकत बयान कर दी। किसी तरह का बचाव नहीं किया। बचाव करने की मुझमें शक्ति थी भी नहीं। न्यायाधीश ने न्याय किया। मुझे दो साल की सज़ा हुई।

मेरी इन बातों से आप ऊब गये हैं न? ऊबेंगे ही। इसी कारण मैंने बस खास-खास बातें ही कहीं हैं। पर मेरी इन बातों से आपको क्या सरोकार।

मेरे इस गुनाह और चालू धंधे से क्या संबंध है, यह पूछना चाहते हैं? यही समझाने के लिए मैंने अपना पूर्व इतिहास बताया है।

कैद में मैं तड़प रहा था। सोते-जागते मेरी मृत पत्नी और जीवित बेटी आँखों के सामने घूमती रहती थीं। मैं सारी दुनिया का, दुनिया-भर के धनिकों का दुश्मन बन गया था। सेठानी की लड़की को हीरे की बंगड़ियाँ और मेरी बेटी को हीरे की बंगड़ियों की इच्छा रखने का भी अधिकार नहीं! सेठ ने अपनी बुद्धि से पैसा पैदा किया था, यह बात कोई कह सकता है। पर क्या उसकी बुद्धि अपने आस-पास ही धन के ढेर इकट्ठा करने तक सीमित है? धन की ढेरी पर सेठ-सेठानी कुत्ते की तरह घुड़कते खड़े रहें और सारा समाज उनकी सहायता करे, सदा सहायता करे! मैं भी यदि अपनी बुद्धि से राज-पाट, ज़र-ज़मीन, किसी तरह पैदा करूँ, तो मैं ही क्यों गुनहगार गिना जाता हूँ?

कैद से छूटते ही बेटी से मिलने के लिए मैं दौड़ पड़ा। पर उसके पास क्या मैं खाली हाथ जाता? मैंने एक दूकान से खिलौने चुराये और कपड़े की दूकान से कपड़ा चुराया। बहुत सफ़ाई से चोरी करने पर भी मैं पकड़ा गया। और बेटी का मुँह देखे बिना फिर एक बार साल-भर के लिए कैद में जकड़ दिया गया।

अब मुझमें उत्साह, वैर या शक्ति नाम-मात्र को भी नहीं रह गयी थी। किन्तु बेटी को देखने के लिए मैं व्याकुल था। सज़ा पूरी होने पर मैं फिर बेटी से मिलने को अधीर हो गया।

पर मुझे रेल का किराया कौन देता? बिना टिकट गाड़ी में बैठने में कितनी जोखम है? फिर पकड़ा गया तो बेटी को देखे बिना दुबारा जेल में जाना पड़ेगा।

स्टेशन के पास एक स्थान पर भीड़ जमा थी। और रिपोर्ट करनेवाले यह सज्जन भीड़ में खड़े कुछ देख रहे

थे। इनकी फूली हुई जेब देखकर मेरा मन विचलित हुआ। भीड़ में घुसने का दिखावा करते हुए मैंने इनकी जेब में से यह बटुआ निकाल लिया। इन्हें तो कुछ ध्यान नहीं था, पर भीड़ में खड़े एक दूसरे आदमी ने मुझे बटुआ निकालते देख पकड़ लिया। और इन सज्जन को खबर की। इन्होंने मुझे पुलीस के हवाले कर दिया। इस तरह एक बार फिर मैं आपके सामने आया हूँ।

साहब, चोरी के अतिरिक्त अब किसी दूसरे काम से मैं पैसा पैदा नहीं कर सकता। यूँ अब मुझे रुपये-पैसे की ज़रूरत है भी नहीं, मैं तो मरना चाहता हूँ। मात्र एक इच्छा रह गयी थी पुत्री को देखने की। मरने से पहले एक बार उसे देखना चाहता हूँ।

मैंने सुना था कि सरिता को मेरा एक संबंधी अपने घर ले गया था। उस सम्बन्धी के यहाँ जाने के लिए मुझे रेल-किराया चाहिए था, खाने को चाहिए था, यह तो मैं नहीं कहता; बेटी के हाथ में देने के लिए कोई चीज चाहिए, मैं अब यह भी नहीं कहता। अब मैं जान गया हूँ कि ग़रीबों को अपनी संतान को संतुष्ट करने का अधिकार तक नहीं है! पर क्या बेटी को देखने का अधिकार भी मुझसे छीन लिया जायगा?

इन सज्जन का बटुआ मैंने बस इसी लिए चुराया था कि अपनी बेटी के पास पहुँच सकूँ। मैं इसे चोरी नहीं मानता। मरने से पहले बेटी का मुँह देखने का अवसर मुझे मिलना ही चाहिए! क्या सरकार प्रबंध करेगी? सरकार न करे, तो क्या समाज करेगा? और यदि दोनों ही न करें, तो क्या मैं अपने-आप भी प्रबन्ध न करूँ?

आपको मेरा यह तर्क वास्तविक न लगा होगा। आप मुझे ज़रूर सज़ा देंगे, पर जेल भेजने से पूर्व क्या मेरे साथ न्याय नहीं करेंगे? मुझे मेरी बेटी से मिलाने का प्रबंध नहीं करेंगे?

बेटी को देखने के लिए ही मैंने बटुआ चुराया था। आप इसे गुनाह कहेंगे, यह मैं जानता हूँ। पर आप ही बताइए, हर क्षण गरीबों के हृदय को छलनी करनेवाले इन धनिकों का एक मामूली-सा सुख सुख नहीं, ज़रूरत पूरी करने के लिए लेना हो, तो गरीबों के पास गुनाह के अतिरिक्त दूसरा कौन-सा साधन है?

क्या आपको लगता है कि मैंने कोई गुनाह किया है?

गुजराती से अनु० राजगोपाल माथुर

—लो, भई, घड़ी मिला लो, पाँच बज गये !—सेक्शन अफसर ने असिस्टेन्ट खुरशीद को देखते हुए कहा ।

खुरशीद ने अपना सिर बिछी हुई फाइल से उठाकर उसकी ओर मुस्कराते हुए देखा, जैसे मुस्कराने के अतिरिक्त उसने कुछ कहना उचित ही न समझा हो और फिर फाइलों में जुट गया ।

हरीश बिना सेक्शन-अफसर और खुरशीद की ओर ध्यान दिये आँखों को फर्श की ओर गड़ाये खड़ा था। उसने हाजिरी के रजिस्टर में जाने का समय भर दिया था और ऐसा प्रतीत होता था कि वह किसी लम्बी सोच में व्यस्त है ।

—श्रीमानजी, जै हिन्द !—सेक्शन-अफ़सर की आवाज़ कमरे में गूँजी ।

हरीश ने अपना मुँह ऊपर उठाया, भयभीत आँखों से निहारा और बिना कुछ कहे-सुने वह धीरे-धीरे पग उठाता हुआ, कमरे से बाहर जाने लगा, मानो अफ़सर ने उसे जाने की आज्ञा दे दी थी। लेकिन अभी वह दरवाजे पर ही था कि सारा कमरा उसपर हँस उठा। कमरे में केवल एक ही व्यक्ति ऐसा था, जिसने इस हँसी में भाग न लिया, वह था व्यास, जो ब्रांच में बिल्कुल नया था। उसे आये केवल तीन-चार दिन ही हुए थे। इससे पूर्व वह था तो उसी दफ़्तर में, मगर किसी और ब्रांच में। वह इस सेक्शन के व्यवहार से पहले से ही परिचित था। फिर भी उसने ऐसी कल्पना कभी नहीं की थी। हरीश के साथ ऐसा व्यवहार ! हरीशको उस स्थिति में देखकर वह बहुत दुखित हो गया था और उस व्यवहार को आज उसने अपने ऊपर होता हुआ महसूस किया। अपनी इस स्थिति में वह सेक्शन के बारे में सोचने लगा कि यहाँ पाँच बजते हैं और किसी को खबर तक नहीं होती, किसी के हृदय में उत्सुकता नहीं, किसी के मुख-मंडल पर कोई खुशी का चिन्ह नहीं, सभी ही बेजान, मृतक-शरीर के समान कमरे में पड़े रहते हैं ! इस वातावरण में इन लोगों की तरह दफ़्तर की चारदीवारी में रात-दिन वह कैसे बिता सकता है ? उसके जीवन के साथ बहुत-सी जिम्मेदारियाँ बँधी हुई हैं, और यहाँ समय बिताने से वह इनको कभी पूरा

नहीं कर सकता। अपनी उन आशाओं का गला कभी नहीं घोंट सकता, जिनपर उसका जीवन निर्भर है। उसे प्रत्येक स्थिति में हरीश की तरह ही आफिस से पाँच बजे जाना ही होगा! मगर यह सोचते हुए वह रुक गया, उसे हरीश की दशा फिर स्मरण हो आयी और जाने की तमाम कल्पना टूट गयी। उसे ऐसा आभास होने लगा कि वह अब विद्या ग्रहण करने में असफल रहेगा और केवल क्लर्क ही रहकर उसे सारा जीवन बिताना है, ग़रीबी का वह आवरण, जो उसे जन्म से ही मिला है, वह कभी नहीं उतार सकेगा।

इस प्रकार सोचते-सोचते उसने अपना भारी सिर मेज से ऊपर उठाया, उसे मालूम हुआ कि सात बजने को है। सहसा आस-पास की मेजों पर देखा, तो वहाँ सभी क्लर्क बहुत खुश थे और बड़े ही उत्साह से साहब की वार्ता में भाग ले रहे थे। मगर व्यास ऐसा नहीं कर सकता था, क्योंकि उसके समक्ष दफ्तर के साथ-साथ कालेज भी था। वह शीघ्रता से सहमा हुआ-सा उठा, फाइलों को सँभाला और हरीश की ही तरह आँखों को झुकाये हुए, चोर की भाँति कमरे से बाहर निकल गया।

साइकिल स्टैण्ड तक पहुँचते उसने कई बार यह अनुभव किया कि सारा कमरा उसपर भी हँस रहा है। उसके पग बड़े वेग से बढ़े, और उसने साइकिल निकाली और कालेज की तरफ़ भागा।

कालेज उसके दफ्तर से लगभग तीन मील की दूरी पर था। उसकी साइकिल हवा से बातें करने लगी अँधेरी सड़क की छाती चीरती हुई। सड़क पर उसके अतिरिक्त कोई भी न था और सड़क को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि व्यास का जीवन भी स्वयं इसी सड़क की तरह सुनसान और अन्धकारमय हो गया है। साइकिल चलाते-चलाते उसने यह भी सोचा कि अब कालेज जाना व्यर्थ है, सरासर मूर्खता है। मगर इस विचार को शीघ्र ही उसने अपने मस्तिष्क से निकाल दिया और पहले से भी तेज़ साइकिल चलाने लगा।

साइकिल स्टैंड पर रखी। स्टैंड से बिना टोकन लिये ही वह अपनी कक्षा की ओर भागा। जब वह कक्षा में पहुँचा, तो पता चला कि इंगलिश, सिविक्स के पीरियड बीत चुके हैं। मिस्टर माथुर हिस्ट्री का पीरियड ले रहे हैं। वह इस प्रोफ़ेसर से नज़र बचाकर अपनी सीट पर पहुँच गया और अभी वह अपनी नोटबुक निकाल भी न पाया था कि प्रोफ़ेसर साहब उसकी ओर आने लगे। प्रोफ़ेसर माथुर को उससे बहुत सहानुभूति थी, क्योंकि वह व्यास के गाँव के ही थे और आमने-सामने उनके मकान थे, उन्होंने ही कालेज में भर्ती होने में व्यास की सहायता की थी। अन्यथा भर्ती होना आसान न था। प्रोफ़ेसर व्यास के समीप आये और व्यास से बड़े स्नेहपूर्वक कहने लगे—व्यास, मैं देखता हूँ, तुम नित्य देर से आ रहे हो, तुम-जैसे निर्धन विद्यार्थी के लिए यह बहुत बुरा है। इसका चाहे जो भी कारण हो, मगर मैं उचित नहीं समझता कि तुम देर से आओ। यदि पढ़ने में मन नहीं लगता, समय पर कालेज नहीं आ सकते, तो क्यों धन बरबाद करते हो? इस धन से तुम्हारी घरेलू अवस्था कुछ सुधर सकती है।

प्रोफ़ेसर की इस बात ने उसके हृदय को अत्यधिक दुखित कर दिया। उसका मन रोने लगा। उसको यह सहानुभूति बड़ी ही कष्टदायक प्रतीत हुई। फिर जाने अचानक क्या हुआ कि वह अशान्त हो गया और उसके मन में आया कि प्रोफ़ेसर को खूब सुनाये। उसे क्या पड़ी है, जो मुझे व्याख्यान दे? किन्तु इसमें प्रोफ़ेसर का क्या दोष है, उन्होंने तो केवल हमदर्दी से कहा। लेकिन प्रोफ़ेसर की इसी हमदर्दी ने उसके मस्तिष्क में जली अग्नि को और भी भड़का दिया था। यही कारण था कि उसे प्रोफ़ेसर पर ही नहीं, अपने ऊपर भी क्रोध आया, और इसी आवेश में वह अपने अशान्त मन को लेकर कक्षा से बाहर निकल गया।

दरवाज़ा खोला और एक धमाके के साथ बिछी हुई चटाई पर बैठ गया। हाथ बढ़ाकर लैम्प जलाया, और लैम्प के प्रकाश में उसके हृदय की वेदना स्पष्ट रूप से उसके मुख पर अंकित दिखायी देने लगी। उसने एक लम्बी साँस ली और कमर को दीवार से लगा, आँखें मूँद-

कर बैठ गया। उसके समक्ष दिन-भर की सब घटनाएँ आयीं, और वह उद्विग्न हो-हो उनपर विचार करता रहा।

व्याकुलता के लगभग दो घंटे व्यतीत हो गये। उसकी कमर दर्द करने लगी, तो दीवार से उसने कमर अलग की। तभी सहसा उसकी दृष्टि साइकिल पर लगी हुई किताबों से टकरायी। उन्हें देखकर उसे ऐसा लगा कि वही स्वयं किताबों के समान किसी लोहे के शिकञ्जे में जकड़ा हुआ है। उसका हृदय इस विचार से थर-थर काँपने लगा और उसके जी में आया कि इन किताबों को तो साइकिल की कैरियर से मुक्त कर दे। किन्तु जब उसने उठने का यत्न किया, तो उसे पता चला कि उसके शरीर में उठने की बिल्कुल शक्ति नहीं। उसका शरीर बेहद थका हुआ था। वह लेट गया। और न जाने कब उसको नींद ने आ दबाया।

प्रातःकाल जब उसकी आँख खुली, तो बहुत आश्चर्य हुआ कि उसने न तो दरवाज़ा ही बन्द किया था, न लैम्प ही बुझाया था। उसने लेटे-लेटे ही लैम्प बुझा दिया। जब उसने बाहर देखा, तो कमला मार्केट का घंटाघर नौ बजा रहा था। वह शीघ्रता से चटाई से उठा। मुँह-हाथ धोये और बिना कुछ खाये ही साइकिल उठा दफ़्तर को भागा।

अपनी सीट पर बैठते ही उसे ख़याल आया कि क्यों न वह अपने सेक्शन-अफ़सर से यह प्रार्थना करे कि उसे पाँच बजे जाने की आज्ञा दी जाय? संभव है, सेक्शन-अफ़सर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लें। इस विचार से उसे आशा बँधी और अत्यन्त चाव से वह काम में जुट गया। मगर बारंबार उसकी निगाह दीवार पर लगी हुई घड़ी से टकराती थी, जैसे वह प्रतीक्षा की घड़ियों को गिन-गिनकर काट रहा हो।

अन्त में वह घड़ी आ गयी, जिसके लिए वह व्याकुल था। डरता-डरता वह साहब के पास पहुँचा।

सेक्शन-अफ़सर की छोटी-छोटी आँखें ऊपर को उठीं और कुछ क्षण चुप रहकर वह अपने अन्दाज़ में बोले—श्रीमान्‌जी, आप पर भी हरीश का रंग चढ़ गया?

सेक्शन-अफ़सर की यह बात सुनकर वह काँपने-सा लगा, क्योंकि सेक्शन-अफ़सर बोले ही कुछ इस तरह से थे। फिर भी व्यास ने साहस न त्यागा—नहीं, साहब, ऐसी तो कोई बात नहीं। मैंने कालेज ज्वाइन कर रखा है और मुझे दफ़्तर से इजाज़त भी मिल चुकी है।... और मेरा पहला पीरियड साढ़े पाँच बजे शुरू होता है।...

सेक्शन-अफ़सर ने व्यास की पूरी बात न सुनी। ऊँचे स्वर में बोले—श्रीमान्‌जी, जै हिन्द!

व्यास का रंग उड़ गया, आश्चर्य से उसका मुँह खुला-का-खुला रह गया। जो बात कहनी थी, वह कंठ में ही रह गयी। उसने दूसरे क्लर्कों की ओर देखा, तो सब-के सब खिलखिलाकर हँस रहे थे। वह चुपके से अपना-सा मुँह लेकर सीट पर आ गया। अचानक ही उसकी दृष्टि उठी, तो देखा कि सेक्शन-अफ़सर के पास हरीश खड़ा हाजिरी लगा रहा है। उसे अपने अनुभव पर सख़्त अफ़सोस हुआ। हरीश रोज़ाना की तरह खामोश कमरे से बाहर निकल गया।

व्यास को सेक्शन-अफ़सर से भी अधिक क्रोध इन क्लर्कों पर आ रहा था, जो हरीश की हँसी उड़ाते थे। उसके जी में आया कि वह खड़ा हो जाय और एक-एक को खूब जी-भरकर सुनाये! वह सोचने लगा कि इन लोगों ने ही उसके रास्ते में रुकावटें पैदा की हैं। ये अनुचित साधनों से अफ़सर को खुश करते हैं। इन्हीं के कारण हम लोग उठ नहीं सकते। इनके दिलों में भी यह इच्छा क्यों नहीं होती कि कुछ और करें? दूसरों को कुछ करते देखना भी ये नहीं चाहते। छिः!....न जाने इनके बारे में वह कब तक सोचता रहता कि सेक्शन-अफ़सर ने उसे बुलाया।

वह झिझकता हुआ साहब के पास गया।

साहब बोले—श्रीमान्‌जी, आप बड़े मेहनती मालूम होते हैं। और आप ही सोचिए, हरीश की तरह करना आपके लिए उचित है?....तुम यह जानते हो न कि आजकल नौकरी कितनी मंहगी है! हरीश का क्या! जब तक मैं चुप हूँ, ठीक है। तुम्हें तो मैंने इसलिए कहा है कि तुम नये हो और देखा-देखी अपना कैरियर बरबाद कर लोगे। वर्ना, मुझे क्या पड़ी है, श्रीमानजी?

व्यास इसके उत्तर में क्या कहता ? उसे पूरा विश्वास हो गया था कि अब कहने से कोई लाभ न होगा। सेक्शन-अफ़सर ने कोई छोटा-सा भाषण किया था!

उसकी समस्त आशाएँ जलकर राख हो गयीं और निराश होकर उसने सोचा कि जीवन की सीमा यही है और उसे इन्हीं परिस्थितियों में जीना होगा, जीवन में उठने का अब कोई भी साधन शेष नहीं रह गया। उसे अपनी इस दशा पर बड़ा रोना आया....वह इतना रोये, इतना रोये कि यह जो आशाओं की राख उसके हृदय में जम गयी है, सब बहकर आँखों-द्वारा बाहर निकल जाय, और तब वह सब इच्छाओं को छोड़कर, केवल क्लर्क बनकर दूसरों की ही तरह अफसर को खुश कर सके।

सात बजे, तो घर को चला। अब उसे कालेज क्या जाना था। उसके भाग्य में विधाता ने विद्या इतनी ही लिखी थी।

घर पहुँचा। दरवाज़ा खोलकर उसी चटाई पर जा गिरा और लेहाफ़ ओढ़कर सोने के लिए उसने आँखें मूँद लीं, मगर नींद जैसे आना नहीं चहती थी। मुँदी हुई आँखों के सम्मुख उनके घर के व्यक्तियों के धुँधले चेहरे आने लगे, जिनकी आशाएँ उसके जीवन पर निर्भर थीं, हर एक की अलग-अलग इच्छायें।....

इन चेहरों को देखकर व्यास फूट-फूटकर रोने लगा और रोते-रोते उसे अपने से ही घृणा हो आयी। उसके जी में आया कि उसे जीना नहीं चाहिए, अब जीवन का अन्त करना ही उचित होगा, क्योंकि एक सौ उन्नीस रुपये तीन आने में कभी भी वह खुशहाल नहीं हो सकता।....लेकिन जरा देर बाद अपने घर की अवस्था को स्मरण करके इस विचार को उसने अपने मस्तिष्क से निकाल दिया।

खुली आँखों के सामने ही रात्रि का अन्त हो गया। अन्धकारमय वातावरण को उजाले ने आँचल में ढाँप दिया। उसने बहते हुए आँसुओं को पोंछा और व्याकुल हृदय से कमरे में घूमने लगा और घूमते-घूमते ही उसने खिड़की खोली और बाहर झाँकने लगा। उसकी दृष्टि के सामने ऊँची-ऊँची इमारतें, जो आकाश को छू रही थीं, आयीं और उसका मन और भी भारी हो गया। दूसरे क्षण उसने निगाह नीचे झुकायी, तो बस-स्टैंड दिखायी पड़ा। दो-एक बालक स्कूल की बस की प्रतीक्षा में खड़े थे। व्यास इन बालकों को देखकर झुँझला उठा और सहसा खिड़की बन्द कर दी। फिर कमरे में घूमने लगा और कमरे में घूमते-घूमते उसकी निगाह कैरियर में लगी हुई किताबों से टकरायी। दो-एक क्षण उन किताबों को देखने के पश्चात् वह लपका और किताबें कैरियर से निकालीं और उन्हें फर्श पर फेंक दिया और शीघ्रता से बिना कुछ खाये, कपड़े बदल साइकिल लेकर दफ्तर की ओर चल दिया।

रास्ते में बार-बार उसका हाथ कैरियर को छूता, जहाँ किताबें हुआ करती थीं, मगर कैरियर खाली पाकर, व्यास पूरी शक्ति से अपने हाथ को वापस हैन्डल पर ले आता। और खाली कैरियर के लड़खड़ाने की ध्वनि व्यास को ऐसी लग रही थी कि वह निर्जीव कैरियर उसकी स्थिति को देखकर रो रहा हो!

लायब्रेरी, मिनिस्ट्री आफ ट्रान्सपोर्ट,
(रोड्स विंग) नयी दिल्ली।
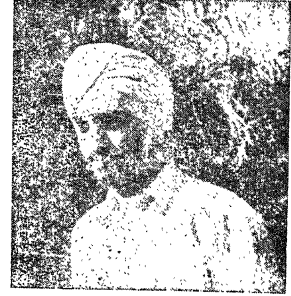
'अज्ज न सुत्ती कन्त सिउँ अंग मुड़े मुड़ जाइ।'

भाईजी ने अपनी फटी हुई आवाज़ में फरीदजी के श्लोक का पहला पद अलापा। फिर आँखें बंद कर लीं और फिर उसको दोहराया। तीसरी बार फिर गाया, एक नशे में, एक सरूर में।

दूर पीछे महिलाओं की संगति में ओढ़नी ओढ़े बैठी हुई लाजवन्ती का हृदय जैसे बिंध-सा गया। पद का एक-एक अक्षर मानो उसके वक्ष में चुभ-सा गया। उसने जीवन के सत्ताइस वर्ष कुँवारेपन में ही काट लिये थे। कभी उसके जीवन में कोई कन्त न आया। नित्य नियम-पूर्वक वह दोनों बेला गुरद्वारे आती रही। सारे-के-सारे पाठ बचपन से ही उसको कण्ठस्थ थे। कभी किसी तरफ़ उसने आँख उठाकर नहीं देखा। एक से दूसरे कान तक कभी उसकी आवाज़ नहीं पहुँची। अपने कुँवारेपन को सँभालते-सँभालते, ढँकते-ढँकते उसकी ओढ़नियाँ फट-फट जातीं।

प्रातः, अमृत की वेला, अभी घुप अँधेरा होता कि वह उठ जाती, चाहे जाड़ा हो, चाहे गर्मी। नहा-धोकर पाठ भी करती जाती थी और दूध-दही, चूल्हे-चौके का काम भी निबटाती जाती। बैठकों में, ओसारों में, आंगनों में भाड़ू-बुहारू देती, छोटी-मोटी चीज़ों को चारों तरफ सँवारती-सँभालती। फिर उसके छोटे-छोटे भाई-बहिन जाग जाते। उनको वह सजाती-सँवारती। और फिर रोटी-सब्ज़ी के काम में लग जाती। दोपहर में चरखा लेकर बैठ जाती, कशीदा भी शुरू कर लेती। पिछले पहर डंगर-पशुओं के चारे-पानी का प्रबन्ध करती। फिर रात की रोटी-दाल का काम, सोने से पहले बच्चों को देव-परियों की कहानियाँ, और इस तरह पता नहीं कब उसकी आँख लग जाती। ठीक-ठीक इसी तरह, एक मशीन की मानिन्द, उसने अपनी पूरी जिन्दगी बिता ली थी।

—अरी लाजो गधिए! तू तो भूसी के भाव ही जायगी!—उसकी पास-पड़ोस की सखियाँ उसे चिढ़ातीं।

—माँ राण्ड पैदा किये जाती है, और लड़की बेचारी को इन कुकुरमुत्तों का पालन करने में लगा रखा है!—कुछ वृद्धाएँ लाजवन्ती को हर वक्त काम में व्यस्त देख-कर बड़बड़ा देतीं।

गाँव के जवान छोकरे उसके मेहनत से कमाये हुए शरीर और अछूते कुँवारेपन की आकर्षक स्थूलता से डरते हुए उसको सिंहिनी पुकारते थे और वैसे भी उनमें मशहूर था कि एक बार इसके पीछे-पीछे गाँव का एक लड़का इनकी एकान्त हवेली में घुस गया। लाजवन्ती ने हीला

किया, न दलील, उसको गाय के पगहे से बाँधकर भूसी-वाले कोठे पर दे फेंका। तभी से इसके व्यक्तित्व से डरता कोई भी आँख उठाकर इसकी ओर नहीं देखता था।

लाजवन्ती को माता-पिता, बहन भाई, पड़-पड़ोसी, आने-जानेवाले, सगे-सम्बन्धी, सभी भरपूर सत्कार देते थे। कभी किसी को शिकायत करने का वह अवसर न देती। न ही कोई उसकी कही हुई बात का विरोध करता। घर में से कुछ निकाले, कुछ डाले, स्याह करे, सफ़ेद करे, सबकी वह मालिक थी।

लाजवन्ती को स्कूल भी भेजा गया था। गाँव का स्कूल असल में गाँव का गुरद्वारा ही था, जहाँ वह सिर्फ़ थोड़ा-बहुत पढ़ना और टूटे-फूटे दो-चार अक्षर लिखना ही सीख सकी, इससे ज़्यादा नहीं।

लम्बी-सी व्याख्या के बाद कि 'कन्त' का अर्थ इस चरण में पति-परमेश्वर है और 'सोने' का अभिप्राय है उसकी भक्ति करना, भाईजी ने पुनः इस चरण को अपनी फटी हुई आवाज़ में गायाः

'अज न सुत्ती कन्त सिउं अंग मुड़े मुड़ि जाइ।'

लाजवन्ती के वक्ष में अन्दर-ही-अन्दर मानो एक टीस-सी उठी। उससे अब गुरद्वारे में बैठा न रहा गया। आठ-दस स्त्रियों की देहाती संगति के पीछे बैठी वह उठ खड़ी हुई और धीरे-से, निःशब्द बाहर निकल गयी।

भाईजी की मुँदी आँखें एक निमेष के लिए खुलीं और फिर पूर्ववत् मुँद गयीं। कथा कहते हुए यदि कभी चिड़िया का पंख भी फड़क जाय, तो भाईजी की वृत्ति एकाग्र नहीं रहती थी और फिर लाजवन्ती को तो उन्होंने पढ़ाया था, इस तरह की अशिष्टता वह कभी नहीं कर सकती थी। उसको यह मालूम था कि जब तक भोग न लग जाय (समाप्ति न हो जाय), गुरू का कोई भी सिक्ख गुरुवाणी का निरादर नहीं कर सकता। लाजवन्ती ने फरीदजी के श्लोक का केवल एक ही चरण सुना था, अभी तो भाई साहब को दूसरा चरण पढ़कर सुनाना था, उसकी व्याख्या करनी थी, फिर पूरे श्लोक का भावार्थ बतलाना था। फिर उन्हें भूल-चूक, कमी-बेशी के लिए क्षमा माँगनी थी, जैसा कि वह रोज़ ही माँगा करते थे। फिर उन्हें प्रतिदिन की ही तरह शाम को गुर बिलास की कथा का पाठ करवाना था। फिर भोग लगना था। 'अरदास' होनी थी और तब कहीं एकत्रित लोग अपने-अपने घर जा सकते थे।

न केवल भाईजी, एकत्र संगति को भी लाजवन्ती का इस तरह उठकर चला जाना बहुत खटक गया। गाँव के इस गुरद्वारे में ऐसा कभी कोई नहीं करता था।

—री बहन! आज तेरी लड़की कितनी भरी हुई संगतों में से उठकर चली गयी है?—एक स्त्री ने लाजवन्ती की माँ से बाहर निकलकर पूछा।

—कुछ तबीअत ठीक-सी नहीं है,—वृद्धा माँ ने सयानेपन से बात को ख़त्म कर दिया।

—री, आज लाजो को क्या हो गया?

—यह अन्धेर कभी नहीं देखा था!

—री, अभी कल की छोकरियाँ....

—तोबा! तोबा!

अभी लाजवन्ती की माँ ने जूती पहनी ही थी कि और तीन-चार स्त्रियाँ आकर जैसे उसको चिमट ही गयीं। कई बहाने बनाकर, कई झूठ बोलकर, बड़ी-बड़ी मुश्किलों से कहीं उनको टाला जा सका।

री लाजवन्तीए! आज तुझपर क्या मूर्खता सवार हो गयी थी? माँ ने सोचा, घर जाकर वह उससे अच्छी तरह इस बारे में पूछेगी। पर अपनी जवान बेटी की सुघड़ाई को देखकर कुछ कहने का उसका साहस न हुआ।

कथा कहते हुए भाईजी ने सोचा, अरदास के बाद इस प्रकार से संगति में से उठ जाने की अशिष्टता पर वह कुछ बोलेंगे। पर जब समय आया, तो वह टाल गये। लाजवन्ती इतने वर्षों से नित्य नियमपूर्वक दोनों वेला गुरद्वारे आती थी। सारे गाँव-भर में सिर्फ एक लाजवन्ती ही थी, जिसे 'सुखमनी साहिब' पूरा कण्ठस्थ था।

फिर उन्होंने सोचा, जब 'परशादा' (रोटी) लेने के लिए उनके घर जायेंगे, तो लाजवन्ती से खुद ही इस विषय में बातचीत कर लेंगे। उसे समझा लेंगे। पर

समय पर 'परशादा' लेकर वह लौट आये, उनका साहस न हुआ।

फिर उन्होंने सोचा, शाम को 'रहिरास साहिब' के पाठ के बाद सही। पर पता नहीं कैसे, वह मौका न निकाल सके। वह खुद बड़े हैरान थे।

आखिर उन्होंने निर्णय किया, कभी किसी गली-कूचे में मिल गयी, तो शिकायत कर लेंगे। पर दिन में कई बार वह लाजवन्ती को देखते। वह देखते रहते और वह आँखें झुकाये आगे से गुजर जाती।

कुछ दिनों से भाईजी ऐसा महसूस करते, जैसे आँखें मूँदकर कथा कहते-कहते एकदम उनके नयन-कपाट खुल जाते और वह एक नज़र में तसल्ली कर लेते कि लाजवन्ती कहीं उठकर तो नहीं चली गयी। लाजवन्ती वहाँ बैठी होती, तो भाईजी की कथा में एक रस, एक स्वाद, एक उल्लास चमक उठता।

यह क्यों?

आख़िर क्यों?

उसको मैंने पढ़ाया है, मैंने ख़ुद सिखाया है।

परनारी धी-भैण वखाणे! (पर-स्त्री पुत्री-बहन के समान जाने।)

मैं!

मैं 'पातशाह' का हज़ूरिया, उनका चरण-सेवक!

भाई साहिब गुरदित्त सिंह, ग्यानी गुरदित्त सिंह, सन्त गुरदित्त सिंह!

दूसरे दिन भाई साहब ने साबुन से मल-मलकर दुग्ध-सम श्वेत वस्त्र धोकर पहने। कथा कहने की बेला उनका धवल दाढ़ा कुछ कम बिखरा हुआ था। उच्च स्वर में उनसे बोला ही नहीं जा रहा था। अपनी फटी हुई आवाज़ उनको बहुत गड़ रही थी, मानो उनका अंग-अंग आज व्यथित था। उनको एक कमज़ोरी, एक कमी-सी महसूस हो रही थी।

'जिवें तारिआ ई जोग्गा सिंघ ताईं,
सारी रात बण के चौकीदार प्रीतम।'
(जैसे पार कर दिया जोगा सिंह को भी,
सारी रात बनकर चौकीदार, प्रीतम।)

कथा कहते-कहते आख़िर उन्होंने गिड़गड़ाकर गाया। उनकी आँखें सजल हो गयीं।

फिर उन्होंने जोगा सिंह का आख्यान सुनाया, किस तरह भाई जोगा सिंह दशमेश पिता (दशम गुरु गोविन्द सिंह) की आज्ञा मिलते ही विवाह की भाँवरों पर से उठकर घर से चल दिया था। मार्ग में एक वेश्या के कटाक्षों का शिकार होकर कलगीधर (दशम गुरु) का फ़र्मान भूल गया और लगा चौबारे के नीचे खड़ा होकर प्रतीक्षा करने। रात-भर जिस समय भी वह जाने के लिए आगे बढ़ता था, चौकीदार आगे से उसको रोक देता था और इसी तरह सवेरा हो गया।

'जिवें तारिआ ई जोग्गा सिंघ ताईं,
होऽ जोग्गा सिंघ ताईं....
जिवें तारिआ ई'....

अत्यधिक वैराग्य से भरकर भाईजी ने इस चरण को फिर-फिर दोहराया। उनको अपनी फटी हुई आवाज़ का ख़याल ही न रहा। उनकी आँखों से आँसू फूट-फूटकर निकलने लगे। उनकी आवाज़ सजलता से लथपथ हो गयी। मजबूरन आज समय से पहले ही उनको भोग लगा देना पड़ा। अरदास करते समय वक्तव्य में कुछ घुमाव डालकर उन्होंने रोकर-गिड़गिड़ाकर फरियादें कीं—हम प्रमादी जीव हैं, आप क्षमाशील पिता हैं, क्षमा कीजिए! वे कर्म कराइए, जो आपजी को भले लगें:

'असीं खते बहुत कमाँवदे,
किछु अन्त न पारावार।
हरि किरपा करके बख़श लओ,
हम पापी वडि गुनाहगार॥'
(हम बहुतेरे दुष्कर्म करते हैं,
उनका कुछ अन्त और पारावार नहीं।
हे हरि, कृपा करके बख़्श लीजिए।
हम पापी और बड़े गुनहगार हैं।)
'जेता समुन्द सागर नीर भरिआ।
तेते औगण हमारे।
दिआ करो कछु मिहर उपावो।
डुबदे पत्थर तारे॥'

'विशाल सागर में जितना जल भरा है,
उतने ही हमारे अवगुण हैं।
दया कीजिए, कुछ अनुग्रह कीजिए।
आपने डूबते पत्थरों को भी पार लगाया है।)

इस प्रकार 'अरदास' की समाप्ति हुई, संगति को आज बड़ा आनन्द मिला, और सब जन अपने-अपने घर लौट गये।

'प्रशादियाँ' (रोटियाँ) लेने के लिए आज जब वह लाजवन्ती के घर गये, तो एकाकी धूप में बैठी हुई उसकी माँ से उन्होंने पूछा—माई, आप बच्ची की शादी क्यों नहीं कर देतीं? सुख से अब तो वह खूब जवान हो गयी है।

—हाँ-हाँ, भाई साहिबजी, मुझे भी दिन-रात इसी की चिन्ता खाये जाती है। क्या करें, कोई अच्छा वर ही नहीं मिलता, ढूँढ़-ढूँढ़कर थक बैठे हैं। और इधर लड़कियाँ हैं कि दिन में बालिश्त-बालिश्त-भर बढ़ जाती हैं।

लाजवन्ती की माँ का उत्तर सुनकर भाईजी चुपचाप वहाँ से चल दिये। उन्होंने फिर बात न छेड़ी।

'प्रशादियाँ' वह इकट्ठी कर लाये थे, पर वापस आकर उनसे कुछ भी खाया न गया। शाम को कथा न हो सकी। संध्या की वेला 'रहिरास' के पाठ के लिए वह उठ न सके। दूसरे दिन सवेरे वह बीमार थे।

भाई साहिब की कोठरी गुरद्वारे के बगल में ही थी। पूरा-पूरा दिन उसी में पड़े रहते। गाँव के लोग उनकी ख़ैर-ख़बर पूछ जाते, जो-कुछ उनको ज़रूरत होती, दे-ले जाते थे। भाईजी को खिचड़ी, दूध, दवाई इत्यादि देने की लोगों ने आपस में बारी बाँट ली थी। छोटे-छोटे लड़के, लड़कियाँ आकर उनकी मुट्ठी-चापी करते, उनके कमरे की सफाई करते, उनका मुँह धुलाते, उनके दाढ़े में कंघा फेरते।

लाजवन्ती के छोटे भाई से एक दिन बातें करते हुए उनको पता लगा कि गुरद्वारे का सब काम-काज उसकी बहन ने सँभाल लिया है, वही प्रकाश करती है, वही पाठ करती है, वही समाप्त करती है, सिर्फ झाड़ू प्रतिदिन बारी-बारी आकर दूसरी स्त्रियाँ दे जाती हैं।

—और तेरी बहन घर का काम आजकल नहीं करती?

—नहीं, वह भी करती है।

बालक भाईजी की छोटी-छोटी बातों का उत्तर देता जा रहा था।

—तेरी बहन ने कभी तुझे मारा है?

—हुँ-ऊँ, बालक ने सिर हिलाते हुए कहा—कभी बहनें भी मारा करती हैं?

—तेरी बहन का ब्याह कब होगा, काका?

—हुँ-ऊँ, हमें नहीं उसका ब्याह-श्याह करना?

भाईजी ने बालक को अपने पास से माल्टा दिया और इस तरह छोटी-छोटी खाने-पीने की चीज़ें, प्रत्येक बार, जब भी वह उनके पास आता, वह उसको देते रहते थे।

जब अकेले होते, पूरी-पूरी रात जागकर, रो-रोकर, गिड़गिड़ाकर, भाईजी बिनतियाँ करते, 'अरदासें' करते—हे रब! मैं किस मुँह से आपकी दरगाह में हाज़िर होऊँगा? किस मुँह से मैं आपकी हज़ूरी में लोगों को फिर-फिर यह कह सकूँगा:

'वेख पराईयाँ चंगीआँ।
मावाँ भैणाँ धीआँ जाणे।
(पराई सुन्दरियों को।
माँ, बहन और पुत्रियाँ समझे।)

मैं नीच हूँ, मैं कपटी हूँ, मैं कृमि हूँ विष्टा का, मेरा लोक-परलोक नष्ट हो गया है!

और फिर वह कितनी-कितनी देर तक रोते रहते, रोते रहते।

एक दिन सन्ध्या की वेला रोते-रोते भाईजी अर्द्ध-चेतनावस्था में पड़े हुए थे कि अकस्मात् उनकी कोठरी का द्वार खुला। इस समय कभी उनको देखने के लिए कोई नहीं आता था। आँखें उठाकर उन्होंने देखा, तो द्वार में लाजवन्ती खड़ी थी। उस क्षण तो भाईजी को जैसे विश्वास ही नहीं हो रहा था। पर जब लाजवन्ती उनके समीप पलंग के पास आयी, तो वह अपने रुदन

को रोक न सके, उच्च स्वर से क्रन्दन करने लगे, उनका एक-एक अंग फ़रियाद कर उठा।

दूसरे दिन भाईजी की तबीअत में काफ़ी अन्तर पड़ गया था। भिनसार ही लाजवन्ती फिर आयी, दोपहर को भी एक चक्कर लगा गयी, सन्ध्या की वेला वह फिर आयी। और इस प्रकार पाँच-सात दिन में ही भाईजी उठने-बैठने लगे। लाजवन्ती उनके लिए दूध लाती, दही लाती, मक्खन लाती, पनीर लाती, लस्सी लाती, और और भी कितना ही कुछ।

भाईजी आख़िर बिल्कुल स्वस्थ हो गये। फिर कथा आरम्भ हुई, फिर से पाठ होने लगे, सवेरे, शाम, और रात। उसी तरह संगति एकत्र होती, उसी तरह दीवान सजाये जाते थे।

किसी को पता भी न लगता, लाजवन्ती भाईजी के बटन लगा जाती, उनके लिए छोटा-मोटा सीने-पिरोने का काम कर जाती, गुरद्वारे की चादरों के साथ-साथ उनके कपड़े भी धो लाती, उनकी पगड़ी में चुन्नट डालती, उनके जूतों को झाड़ देती, उनकी खड़ाऊँ धो देती।

'जे तूँ मेरा हो रहैं
सम जग तेरा हो।'

जब लाजवन्ती जाती, तो कभी-कभी नशे में, सरूर में, एक हिलोर में भाईजी गा उठते थे।

भाईजी बड़े परेशान थे कि उन्होंने सारी उम्र ऐसे ही क्योंकर काट ली? एक आदमी की उम्र के पचास साल! सब स्त्रियाँ उनके लिए माताएँ थीं, बहनें थीं, पुत्रियाँ थीं। 'मन मारे धात मर जाये' उनके इष्ट ने उनको सिखाया था। और उन्होंने अपने मन को मारकर भस्म कर दिया था। एक राख का बुत चलता रहा, उपदेश देता रहा, खाता रहा, पीता रहा लोगों का लोक-परलोक सँवारने के दावे करता रहा।

कंघा करके बाल बाहर फेंके रहती है, भाई साहिबजी ने कहीं देख लिया, तो चूड़ा तेरा उखाड़ लेंगे ँव के लोग अपने दैनिक जीवन में भाईजी के बतलाये हुए आदेशों को ही सामने रखते थे। कोई भी गुरद्वारे में माथा टेके बगैर रकाम-काज नहीं शुरू कर सकता था।

भाई साहिब गुरु-मन्त्र देते थे, सन्तान के लिए, वर्षा के लिए, फसलों के लिए। लूत आदि रोग भाई साहिबजी के कुछ पढ़कर थूक देने से ही ठीक हो जाते थे। नये मकान के उद्घाटन पर भाईजी जरूर उपस्थित होते। कोई पैदा हो, भाईजी ज़रूर होते। कोई मर जाय, भाईजी ज़रूर होते। लोग अपनी मुरादें भाई साहिबजी के पास ले-लेकर आते और वह किसी को भी खाली हाथ नहीं लौटाते थे।

लोग मानते थे कि जिन-भूत भाईजी अपने वश में किये हुए हैं। एक बार भी किसी ने उनका निरादर किया, तो रात में उसको कोई शक्ति आकर चारपाई से उठा-उठाकर नीचे दे मारेगी। भाईसाहिबजी चाहें तो दूर देशों के फल, बीती ऋतुओं के मेवे मँगवा लिया करते थे। जिसको कभी कहीं कोई चुड़ैल पकड़ लेती या उसपर कोई भूत चढ़ जाता, तो भाईजी झाड़ू फिरा दिया करते थे और वे लोग बिल्कुल भले-चंगे हो जाते थे। बच्चों की बला तो भाई साहिबजी एक नज़र में ही उतार देते थे।

—सब तेरी ही लीला है,—जब लाजवन्ती भाईजी से इन-सब कौतुकों का रहस्य पूछती, तो वह सदा यही एक वाक्य कह दिया करते थे। और लाजवन्ती लजा जाया करती थी।

एक दिन भाईजी ने लाजवन्ती से कहा—लाजवन्तीए, आ चले चलें यहाँ से।

लाजवन्ती को भाईजी का आशय समझ में न आया। वह खाली-खाली नज़रों से उनकी ओर ताकती रही।

भाईजी भी फिर टाल गये।

पर उनका जी यही करता था कि अब वह लाजवन्ती को वहाँ ले जायें, जहाँ वह भाईजी न हों, सिर्फ़ गुरदित्त सिंह रह जायें और लाजवन्ती गुरद्वारे में आनेवाली नित्य नियम का पालन करनेवाली न रहे, जिसको इन्होंने लिखना-पढ़ना सिखाया था, जिसके सामने एकत्र संगति में बैठकर अनेक बार इन्होंने चिल्ला-चिल्लाकर गाया था:

'अनक कवाड़ देइ पड़दे मैं,
पर दारा संग फाके।
चितर गुप्त जब लेखा मांगे,

तब कऊण पड़दा तेरा ढाके ।।'
(अब तो पर्दे में अनेक किवाड़ दे,
परनारी का भोग करते हो,
पर जब चित्रगुप्त हिसाब मांगेगा ।
तो कौन तुम्हारा पर्दा ढांक सकेगा ?)

वह चाहते थे, लाजवन्ती को वहाँ ले जायें, जहाँ गहन अन्धकार हो । लाजवन्ती उनको न देख सके, वह लाजवन्ती को न देख सकें, और उन दोनों को दूसरा कोई भी न पहचान सके । घोर अन्धकार में खो जायें, डूब जायें, बह जायें, कुछ और हो जायें, और फिर कुछ और होकर पुनः आविर्भूत हो जायें, दो चीज़ें, जो एक-दूसरे को पहचान सकें, एक-दूसरे को अपना सकें, एक-दूसरे की होकर जियें, एक-दूसरे की होकर मरें ।

गाँव में एक दिन शोर मच गया । राजपूतों का लड़का एक खत्री लड़की को लेकर भाग निकला था । खत्रियों ने भाले और बन्दूकें लेकर उनका पीछा किया और पन्द्रह कोस पर उनको एक शीशम के नीचे सोये हुए जा पकड़ा । राजपूतों ने उधर कमरें कस लीं और मरने-मारने के लिये तैयार हो गये । इस फ़िसाद को खत्म करने के लिए मामला भाईजी के सामने पेश किया गया । भाईजी ने फ़ैसला राजपूतों के हक में कर दिया और लड़की उनको सौंप दी गयी । पूरे गाँव में, सारे इलाके में एक भीषण आन्दोलन उठ खड़ा हुआ । खत्री मानें ही न । आख़िर उनका धर्म ही कहाँ रहा ? पर भाईजी अपने फैसले से बिल्कुल न टले ।

लाजवन्ती सवेरे तड़के ही उठ जाती थी, उसको घर के अनेक काम निबटाने होते थे । भाईजी सवेरे तड़के उठते थे, उनका यह कर्त्तव्य था ।

एक दिन लाजवन्ती का जी चाहा, भाईजी को वह भी एक चिठी लिखे । दूसरे सभी लोग पत्र भेजते थे । पूरी-की-पूरी दोपहरी वह अकेली काग़ज़, कलम, दवात लेकर बैठी रही । उसने लिखा, 'लिखतुम लाजवन्ती पास में मेरे परम प्यारे एक-एक पल याद आनेवाले....'और वह लिखती गयी, लिखती गयी । एक अल्हड़-सी ग्रामीण बाला अपने हृदय को निरावरण कर रही थी । उसने वह सब-कुछ लिख दिया, जो भाई साहिब के भीतर का पुरुष भी कहने में संकोच से लजा जाता था । एक नारी ने एक पुरुष की देह का उल्लेख किया, एक नारी ने अपने-आपको एक पुरुष की आँखों से देखा । एक अनपढ़-सी औरत, जिसने कभी कलम हाथ में नहीं ली थी, लिखने बैठी, तो लिखती गयी, लिखती ही गयी ।

सन्ध्या की वेला उधर से जाते हुए उसने वह चिठी भाईजी के हाथ में रख दी । जब अपनी कोठरी में जाकर लैम्प की रोशनी में उसको उन्होंने पढ़ा, मानो उनकी समूची देह में आग लग गयी । गुरुमुखी में ये बातें ! गुरु अंगद की बनायी लिपि में यह बकवास ! मैं उमर-भर गलियों में से गुरुमुखी में छपे अखबारों के टुकड़ों को उठा-उठाकर दीवारों में ठूँसता रहा हूँ ! यह अनर्थ ! सत्-गुरु के लेख में यह कोढ़ ! अरी ससुरी लाजवन्तीए ! मुझे नहीं पता था कि तू इतनी चुड़ैल है ! यह ज़ुल्म ! यह अन्धेर !

भाईजी यह कभी सोच भी नहीं सकते थे कि जिन अक्षरों में समग्र गुरुवाणी लिखी हुई है, उनको कोई ऐसे विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम भी बना सकता है ! लाजवन्ती के भीतर की नारी ने मुश्किल से वही कुछ लिखा था, जो भाईजी के भीतर का पुरुष लाख बार कहना चहता था । पर भाईजी को ऐसा लगा, जैसे समूची दुनिया डूबने लगी है, अब सूर्य नहीं उदय होगा, अब तारे नहीं चढ़ेंगे, अब आकाश फट जायगा, समुद्र धरती को निगल जायगा, एक भूकम्प आयगा, नीचे की धरती ऊपर हो जायगी ।

और उन्होंने अपने बाल नोच लिये, उनका सँभाल-सँभालकर रखा दाढ़ा बिखर गया । नंग-धड़ंग होकर वह बाहर निकल भागे ।

गाँववालों ने उनकी बाबत फिर कभी कुछ न सुना ।

कभी-कभी कोई राही आकर बतलाया करता है कि उसने एक बूढ़े, जर्जर को दूर, बड़ी दूर सड़क पर बिल-खता देखा है, जो इस गाँव का नाम ले-लेकर गालियाँ दिया करता है । पंजाबी से अनु० तिलकराज चोपड़ा आलइंडिया रेडियो, हैदराबाद ।

पुजारी

ठाकुर पुंछी

मंदिर घाट में ऊँची जाति के ब्राह्मण रहते थे। नदी के किनारे ऊँचे-नीचे पहाड़ों के बीच यह पुराना गाँव अपने विशाल मंदिरों और संगमर्मर की सुन्दर समाधियों के लिए दूर-दूर तक मशहूर था। आस-पास के इलाके में जब कभी अकाल के चिह्न दिखायी देते या कोई संक्रामक रोग मनुष्यों और पशुओं के लिए मौत बनकर आसमान की उँचाइयों से नीचे झुकता, तो मंदिरों की खामोश, निर्जीव घंटियाँ एक साथ झनझना उठतीं और ऊँचे-नीचे पहाड़ों की घाटी-घाटी, वादी-वादी संगीत-भरे मंत्रों के जाप से गूँज उठती....और दैवी प्रकोप टल जाता। पुराने वक्तों से ही यह बात चली आ रही थी, इसलिए मंदिर घाट का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता। राह चलते मुसाफ़िर दूर से ही उसकी झलक पाकर अपने सिर भक्ति के साथ झुका लेते और अपनी फूली हुई साँसें रोककर वहाँ के पंडितों के आशीर्वाद माँगते।

पुण्यात्मा लोगों की यह धरती नीच लोगों से बिल्कुल मुक्त थी। वहाँ घटिया जाति के वे मानव न थे, जो प्रकृति के मामूली काम करने के लिए हर गाँव में पैदा किये जाते और जो अपनी माँ की कोख से अपने लिए बंजर घाटियाँ, दरिया के पथरीले किनारे, सूखे, वीरान खेत और कभी न मिटनेवाली भूख साथ ले आते। वहाँ के किसान, मजदूर और दूसरे कारिन्दे भी ब्राह्मण थे या ऊँची जाति के लोग।

गाँव की वादियाँ सुन्दर थीं और लम्बे-चौड़े खेतों का आकार तथा रूप आकर्षक और हरा-भरा था। आबादी कम थी, ज़मीन ज्यादा। स्वर्ग की-सी सीढ़ियाँ बनती-उभरती दूर, बहुत दूर तक ऊपर चली गयी थीं। जहाँ ये सीढ़ियाँ दूसरी सीढ़ियों से जा मिलती थीं, वहाँ भगवान के मंदिर का कोई एक-आध कलश अपना सुनहरा सिर बुलन्द कर देता या कोई समाधि खेतों के बीच एक पक्की हद्द कायम कायम देती।

लेकिन इस सुन्दर धरती और जीवनप्रद वातावरण में पैदा हुए लोग बड़े बदसूरत थे। कुरूप और घिनावने। बाहर और भीतर से काले, स्याह। परन्तु थे, विद्वान्,

पंडित, जिनका श्राप मनुष्यों की कई पीढ़ियों को मटियामेट कर सकता था। मंदिर के किवाड़ तभी खुलते थे, जब कोई दैवी प्रकोप होता और जब वे खुलते, अनाज और चाँदी से भर जाते।

खेतों में अनाज की काश्त कम होती थी, भंग और पोस्त की ज्यादा, जिसे कई प्रकार के कामों में लाया जाता। कोई छोटे-मोटे निषिद्ध काम पूरे करने होते, तो घटिया जाति के लोगों को आस-पास के इलाके से नीचे रानी ताल पर बुलवाया जाता और वहीं से उनके अपवित्र शरीरों को बिदा कर दिया जाता। उन्होंने आज तक न नज़दीक से मंदिर देखे थे और न ही मन्दिर के भगवान।

ऊँची जाति के ब्राह्मण जितने बदसूरत और काले थे, घटिया जाति के लोग उतने ही खूबसूरत और गोरे-चिट्टे। इसलिए मंदिर घाट का गाँव अगर मंदिरों और विद्वान पंडितों के लिए मशहूर था, तो आस-पास के गाँव नीच लोगों की सुन्दरता के लिए। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, जैसे ग़रीबी और भूख सिमट-सिमटकर एक सुन्दर बालिका के रूप में उनके शरीरों और आत्माओं में समा गयी हो।

रानी ताल पर, जहाँ गहरे, नीले पानी में किश्ती पड़ती थी, एक छोटा-सा मंदिर था, जिसका मालिक था लम्भू पुजारी। साथ ही एक पनचक्की भी थी, जिसकी कमाई मंदिर में जाती थी। मंदिर किसी जागीरदार की बेवा ने बनवाया था और किश्ती किसी साहूकार ने दे रखी थी, जिसे जो चाहे, पानी में डाले। हर फेरे पर एक खास दर के हिसाब से किराया लम्भू पुजारी के हिस्से में आ जाता था। जब कोई दूसरा न होता, तो वह खुद ही मुसाफिरों को लेकर दरिया में उतर जाता। यह सिलसिला एक मुद्दत से जारी था। गाँव के दूसरे पंडित अगर विद्या और ज्ञान के लिए मशहूर थे, तो यह पुजारी अपनी सज्जनता के लिए। वह सबका दोस्त था, सबका साथी। उसके सामने ऊँच-नीच का कोई सवाल न था। उसने अपना सब-कुछ मंदिर को अर्पण कर रखा था। साधु-फकीर आते और मंदिर की कमाई चाटकर चलते बनते, क्योंकि वही एक मंदिर था, जो बारह महीने खुला रहता। पुजारी जब छोटी उम्र का था, तो उसके घर में एक छोटी-सी काली-कलूटी पुजारिन भी बीवी बनकर आयी थी। लेकिन वह जवानी तक पहुँचते ही उसका साथ छोड़ गयी। लम्भू पुजारी ने फिर शादी नहीं की।

एक रात हल्की-हल्की वर्षा हो रही थी, लेकिन आसमान का रंग सफेद था। यह बर्फ़ पड़ने की सूचना थी। लम्भू पुजारी ने मंदिर के किवाड़ बन्द किये और सोने के लिए वह अपने कमरे में चला गया। मंदिर घाट में पूनम का मेला लगा था, लेकिन वह उसमें शामिल न हुआ। दूसरे पंडित उससे जलते थे, एक तो इस बात पर कि वह अपने मंदिर के किवाड़ बारह महीने खुले रखता था और दूसरे, वह नीच लोगों में घुलमिल जाता था और वक्त-बेवक्त उनकी मुफ्त ही मदद करता था।

मेलों का कोलाहल उसके समीप था, लेकिन वह उसमें शामिल न था। अभी चारपाई पर लेटा ही था कि सरकारी डेरे के लोग आ धमके, उसे उनके नाम से ही घृणा थी, क्योंकि उनका आगमन दैवी प्रकोप से कम न होता था और सदा की भाँति उनका शिकार घटिया जाति के सुन्दर लोग ही होते थे, जिन्हें उनकी शारीरिक और आत्मिक तुष्टि का सामान प्रस्तुत करना पड़ता था! ये सरकारी लोग किसी पास के गाँव से आये थे और उसी वक़्त नदी को पार करना चाहते थे।

—तहसीलदार साहब आये हैं, पुजारी जी!—बहुत-सी आवाज़ें एक साथ गूँजी!

पुजारी लम्भू खामोश लेटा रहा।

तमाम आदमी उसके क़रीब आ गये। पुजारी ने लेटे-लेटे ही वर्षा का रंग देखा और कहा—बर्फ़ पड़ने के रंग-ढंग हैं और फिर दरिया में बाढ़ भी आयी है। रात के अँधेरे में कौन तुम लोगों को पार ले जायगा?

—आपके सिवाय कौन ले जा सकता है?—यह तहसीलदार की आवाज़ थी—दूसरे लोग तो मेले में मगन हैं, वर्ना किसी भी को बुलवा लेते। आप खुद ही किश्ती दरिया में डालें, हमारा जाना जरूरी है!

—डूबने का ख़तरा है।

—कोई बात नहीं!

पुजारी ने किश्ती दरिया में डाल दी और सरकारी डेरा पार लग गया। लेकिन वापसी पर बर्फ़ पड़नी शुरू हो गयी और सर्दी एकदम बढ़ गयी। दूर मंदिर घाट से गीतों के विभिन्न स्वर बराबर उसके कानों में पड़ रहे थे। थके हुए हाथों से चप्पू चलाते उसे ऐसा अनुभव हुआ, जैसे कोई बड़ी-सी मछली उसकी नौका से टकरा गयी हो। उसने झुककर देखा, किसी इन्सान की लाश थी। उसने ध्यान से देखा, लाश ही थी। आसमान सफ़ेद था और बिना आवाज़ के बर्फ़ के गाले स्तब्ध डाभ पर जमते जा रहे थे। उसने पल-भर के लिए सोचा और पानी में छलांग लगा दी और बहती हुई लाश को किश्ती में डालकर किनारे पर ले आया।

यह लाजो थी। यह उस इलाक़े की एक पागल नौजवान औरत थी। लम्भो पुजारी ने लाजो के शरीर को उलट-पलटकर देखा, अभी जान बाक़ी थी। और सरकारी डेरा जलती-बुझती मशालों के सहारे दूर निकल गया था।...पुजारी की निगाहों के सामने तमाम तस्वीर घूम गयी। लाजो, जो एक नीच जाति की नौजवान औरत थी, और जिसके हाथ का चढ़ावा देवी-देवताओं को स्वीकार न था, अपने शरीर का चढ़ावा देती रही। वह मन्दिर घाट के पंडितों का चढ़ावा थी, सरकारी डेरे के मंदिर के लिए। न जाने उसे कितनी बार अपने शरीर का चढ़ावा चढ़ाना पड़ा कि आखिर थक-हारकर पागल हो गयी और आज जब उसका पागलपन कुछ क्षणों के लिए मिट गया, तो उसने नदी में छलांग लगा दी और सरकारी डेरे को हमेशा के लिए दरिया पार कर दिया!....पुजारी को लाजो की कहानी का ज्ञान था। वह उसकी वास्तविकता से परिचित था। यह कहानी उसने सुनी भी थी, और कई बार उसे दरिया के किनारे बैठे, घोर अन्धकार पर रोते भी देखा था।

वह उसे उठाकर मन्दिर में ले आया। उसके सामने अब न बर्फ़ थी और न तूफ़ान, न मन्दिर घाट के मेले का शोर। सरकारी डेरे की झिलमिलाती मशालें भी अब उसके ख़्यालों में बुझ गयी थीं। अब सिर्फ़ लाजो का मरता हुआ शरीर था और सर्दी से अकड़े हुए अपने हाथ, जो सोते में भी मन्दिर की घंटियाँ बजाने के लिए अपने-आप हिलने लगते थे।

रात-भर वह अकेला लाजो की मौत से लड़ता रहा। सुबह होने पर जब मेले में भाग लेनेवाले अपने-अपने घरों को लौटने लगे, तो उन्होंने देखा कि पुजारी ज़ोर-ज़ोर से अपने मन्दिर की घंटिया बजा रहा है और मन्दिर के आंगन में ही टीन की छत के नीचे एक चिता जल रही है। छोटे-से गाँव की छोटी-सी बात थी। कुछ ही पलों में घर-घर, छप्पर-छप्पर फैल गयी।

तब तक चिता ठंडी हो चुकी थी। लेकिन गाँव का सारा वातावरण उस घटिया जाति के मृतक शरीर से दुगन्धमय हो चुका था और मन्दिर का सारा आंगन भ्रष्ट हो गया था और उसके दरवाज़े धर्मात्मा लोगों के लिए बन्द हो चुके थे। लेकिन पुजारी उस हंगामे से बिल्कुल अप्रभावित हो घंटिया बजाता रहा, और घटिया जाति के लोग दूर खड़े तमाशा देखते रहे। यहाँ तक कि शाम ढल गयी, बर्फ़ के गालों ने वर्षा का, नन्हीं-नन्हीं बूँदों का रूप ले लिया, यहाँ तक कि वर्षा की बूँदें भी आसमान पर ही जम गयीं और चारों तरफ़ तारे झलमिलाने लगे।

दूसरे ही दिन रानी ताल का रास्ता बदल गया। नाव-घाट बदल गया। लेकिन लम्भू पुजारी की किश्ती ने अपना रास्ता न बदला और पनचक्की बराबर चलती रही। लेकिन मन्दिर घाट के ब्राह्मणों के साथ उसका पुराना नाता टूट गया। मन्दिर घाट की कहानी चलाती रही। कई बार वर्षा न हुई, मन्दिर घाट के मन्दिरों की घंटिया बजीं, वर्षा कहीं से झूमती हुई जाग उठी। कई बार बाढ़ आयी। मन्दिरों के किवाड़ खटखटाये गये। बाढ़ टल गयी। और कहानी बिना किसी झिझक-रोक के आगे बढ़ती गयी। भंग और पोस्त की काश्त होती रही। ब्राह्मणों के लिए अनाज और चाँदी के ढेर लगते रहे। घटिया जाति के बच्चे भूख से तिलमिलाते रहे, और ख़ूबसूरत जवानियाँ अपने मुर्झाये हुए शरीरों को सहलाती तड़पती रहीं और पवित्र शून्य का पेट भरता रहा, सुनहरी कलश ऊँचे होते गये और अनाज के दाने

सूखते गये।....लेकिन कहानी चलती रही, मन्दिरों के सहारे, पंडितों और विद्वानों के सहारे और आस-पास के इलाके में बसनेवाले नीच लोगों के सहारे। इस लम्बी कहानी में न रानी ताल का उल्लेख था, न लम्भू पुजारी का और न ही लाजो का, जो एक नौजवान पागल औरत थी, जिसने उस कहानी को जीवित रखने के लिए अपने जीवन का चढ़ावा दे दिया था!

लेकिन अबकी बार जैसे प्रकृति की व्यवस्था ही उलट-पुलट हो गयी थी और भगवान के कान बहरे हो गये। बराबर एक महीने से बारिशें हो रही थीं, बेमौसम की बारिशें थीं, पका हुआ अनाज गल-सड़ गया और गले-सड़े अनाज की बालियों को दरिया की तूफानी लहरें अपने साथ बहाकर ले गयीं। खेत डूब गये, कच्चे कोठे बैठ गये....मन्दिरों की घंटिया बजीं, मन्त्रों के जाप हुए और देखते-देखते कच्चे कोठे खाली हो गये। मन्दिरों के पक्के आंगन अनाज और चाँदी से भर गये। लेकिन बारिशें फिर भी न थमीं।

जब सब-कुछ लुट गया, तो लोगों ने अपने गाँव खाली कर दिये और भूखे और लुटे हुए लोगों का काफ़िला शहर की तरफ़ बढ़ने की तैयारियाँ करने लगा।

लम्भो पुजारी ने सब-कुछ सुना, सब-कुछ देखा। वह भी एक ब्राह्मण था, एक पुजारी था। उसके मन्दिर में भी भगवान थे। उसने भी लोगों के लिए मन्दिर की घंटियाँ बजायीं। मन्त्रों का जाप किया। जो-कुछ उसके पास था, लोगों में बाँट दिया। अपने मन्दिर के आंगन भी उनके हवाले कर दिये। लेकिन इतने लोग थे कि वहाँ मनों-ढेरों नाज भी पूरा न होता।

भूखी आँखें अब भी मन्दिर घाट पर लगी हुई थीं। लेकिन घंटियों की आवाज़ उसी सीमित क्षेत्र में घूम-फिरकर वहीं डूब जाती थी, जैसे ब्राह्मणों के हाथ ही थक गये थे। जब लोग भूख से आतुर हो गये और किनारा ढूँढ़ने के लिए तूफ़ान में ही कूद पड़ने की सोचने लगे, तो लम्भू पुजारी ने एक रात बरसती बारिश में उन-सबको अपने मन्दिर में इकट्ठा किया, जो उस इलाके को सदा के लिए छोड़कर जा रहे थे।

पुजारी ने पूछा—बारिश के डर से अपना घर-बार छोड़े जा रहे हो, जो तुम्हारे बुजुर्गों की अमानत है?

पुजारी के सवाल का किसी ने जवाब न दिया।

—धरती तो सब जगह एक-जैसी है,—पुजारी ने उनके मन को छूने की कोशिश की—और एक जैसे लोग भी।....बड़े बुजुर्ग कह गये हैं कि जीवन की नैया तो हाथों की शक्ति से चलती है।....मैं मन्दिर घाट के विद्वानों से भीख माँगने गया था, उस अनाज की भीख, जो तुमने अपने हाथों से उनके चरणों में रखा है। लेकिन वह भगवान का चढ़ावा है, वापस नहीं मिल सकता, किसी अवस्था में भी नहीं!....घंटियाँ बज रही हैं, लेकिन भगवान तक अब किसी किस्म की आवाज़ नहीं पहुँच रही है!

भूखी, आकुल आत्माएँ एक साथ चीख उठीं—हमें क्या करना चाहिए?

—घंटियों की रेशमी डोरियाँ अपने हाथों में थाम लो। वह तुम्हारे ही बलवान् हाथों के लिए हैं।....मंदिरों के दालान, जो अनाज और चाँदी से भरे हुए हैं, वह तुम्हारी कमाई के हैं। उनपर तुम्हारा अधिकार है। अपने जीवन के लिए, अपने-आपको जिन्दा रखने के लिए अपनी दी हुई चीज़ें वापस ले लो!

सबकी आँखों में मन्द-सा प्रकाश आलोकित हो उठा।

पुजारी ने अपनी बात जारी रखी—जो अपना अधिकार नहीं लेता, उसे भगवान कभी क्षमा नहीं करते!

—लेकिन पंडितों का श्राप?—भूखे जिस्मों में दुबारा हरकत हुई।

पुजारी ने बड़े धीरे से जवाब दिया—अगर उनमें श्राप देने की शक्ति होती, तो बारिशें न बन्द करवा देते!

देर तक खामोशी रही, देर तक लोग भूखी आँखों से एक-दूसरे को देखते रहे। पुजारी की बात ठीक मालूम होती थी। भगवान बहुत दूर थे। और पंडितों की तरह पेट-भर खाना खाकर अपनी नींद में मगन थे और उन तक घंटियों की फ़रियाद पहुँचाने के लिए बहुत ही बलवान हाथों की जरूरत थी!....मंदिर घाट के मंदिर

अनाज और चाँदी से भरे पड़े थे, जो उनके अपने खून-पसीने की कमाई थी, और जिससे वह अपना पेट भर सकते थे। मौत और ज़िन्दगी के बीच सिर्फ़ चन्द क़दमों का फ़ासला था। एक तरफ़ भूखी मौत थी और दूसरी तरफ़ अनाज था। और पुराने मंदिरों की लम्बी, चौड़ी, पक्की दीवारें और उनपर पत्थरों की छत, जिनमें बारिश की बूँद तक दाख़िल न हो सकती थी। बड़े-बड़े, पक्के दालान थे, जिनमें ब्राह्मणों के घोड़े दिन-रात हिनहिनाते रहते थे।....ये सुनी-सुनायी बातें थीं, बिल्कुल लोककथाओं की तरह। उनमें से वहाँ तक कोई न पहुँचा था। उनके लिए वह एक सिर्फ़ ख़्याली दुनिया थी, उनकी नज़रों से छुपी हुई। लेकिन सच्ची दुनिया उनके सामने थी।.... बिलखते हुए बच्चे और सिसकती-ठिठुरती आत्माएँ.... जिनकी मौत पंडितों के श्राप और भगवान् के क्रोध से ज़्यादा भयंकर थी। इस अनुभव से सबके ठिठरे-भींगे अंग-अंग में एक सरसराहट-सी दौड़ गयी और अनाज के दाने कसमसाते हुए उनके क़रीब आ गये। पुजारी ध्यानपूर्वक देखता रहा।

उसने गम्भीर आवाज़ में पूछा—तो फिर क्या सोचा? ....श्राप से डरते हो, भगवान के क्रोध से डरते हो, तो मैं तुम्हारे आगे-आगे चलता हूँ। नरक की आग में पड़कर सबसे पहले मैं जलूँगा! चलो मेरे साथ!

और फिर लोगों ने एक ही छलांग लगाकर उस ख़्याली दुनिया को फाँद लिया, जो भगवान् और इंसान के बीच कई सदियों से खड़ी थी। आगे-आगे लम्भू पुजारी था और पीछे-पीछे घटिया जाति के लोग, जो पहली बार अपने जीवन में बड़ी श्रद्धा के साथ अपने भगवान् के दर्शन करने जा रहे थे! बीच का रास्ता अन-जाना था। डरते-झिझकते उसे तय किया, और झुकी हुई निगाहों और खुले हुए हाथों के साथ वे मंदिर में दाखिल हुए। उनके रास्ते में कोई भी बाधा न आयी। पंडित भंग और पोस्त के नशे में तल्लीन बारिश और तूफ़ान से उदासीन, अपने-अपने घरों में रंगरेलियाँ मना रहे थे। बलवान् हाथों की भयंकर आवाज़ भी उन्हें न झिझोंड़ सकी। लेकिन घंटियों की गूँज आसमान का सीना चीरकर भगवान् के दरवाजे तक जा पहुँची थी। उसने फरियाद सुन ली थी। वही घंटियाँ थीं, वहीं रेशम की डोरियाँ थीं। सिर्फ हाथ बदल गये थे। वही मंदिर थे, वही भगवान थे, सिर्फ पुजारी नये थे।....

सुबह होने तक बारिश कम हो गयी। और भूखे लोग पेट-भर अनाज खाकर मंदिरों के मज़बूत बरामदों में लम्बी तानकर सोये हुए थे, जैसे भगवान् ने उन्हें अपना लिया था और अपना तमाम सुख व शांति उनपर निछावर कर दिये थे।

लम्भू पुजारी रात भर लोगों में नाचता रहा, भजन गाता रहा। उसने आज मैले-कुचैले इन्सानों में भगवान के दर्शन किये थे। वह ख़ुशी से पागल हो उठा था।....

न जाने पंडितों का नशा कब टूटा। कब उन्होंने इन्सान और भगवान की प्रशंसा में प्राचीन ग्रन्थों के पन्ने पलटे, श्लोक पढ़कर श्राप दिया कि ये नीच लोग सदा के लिए नष्ट हो जायें। भगवान का ऐसा कोप हो कि उनके अपवित्र शरीर मंदिरों में बैठे-बैठे ही भस्म हो जायें और लम्भो पुजारी सबके सामने कोढ़ की आग में जलने लगे! लेकिन कुछ न हुआ। वे सब मंत्र खत्म हो गये, जो उन्हें अपने पुरखों से विरासत में मिले थे, वह सब दाँव-पेच, वे तमाम छल-छंद बेकार हो गये, जिनके सिर्फ़ वे ही माहिर थे। और उनके वह मधुर स्वप्न सदा सदा के लिए टूट गये, जो उनका भाग्य किसी विवाहिता पत्नी की तरह दहेज में अपने साथ लाया था! लेकिन घटिया जाति के लोग अपने सुहावने सपनों में मस्त थे। और धरती अपने नये रूप में उनके स्वप्नों के सुन्दर आंगन में नाच रही थी। बहती हुई फ़सल ने किनारा पा लिया था, और अनाज के सड़े हुए दाने हरे हो गये थे।

सुबह-सवेरे जब लोग जागे, तो उन्होंने देखा कि मंदिर घाट के बड़े-बड़े पंडित और विद्वान् बड़ी-बड़ी भारी गठारियाँ उठाये दरिया को पार कर रहे थे, जिसका पानी उनके लिए अब उतर गया था। मन्दिर घाट, मन्दिर घाट के सारे मन्दिर और मन्दिरों के सारे भगवान अब उनके लिए नष्ट हो चुके थे और उनकी सारी पवि-त्रता सदा के लिए नष्ट गयी थी। उनकी निगाहों में

मन्दिर घाट की ज़रख़ेज़, नशीली धरती सदा-सदा के लिए कलंकित हो गयी थी, जहाँ उनकी पवित्र साँसें न पनप सकती थीं !

लोग दौड़े-दौड़े रानी ताल के मन्दिर पर पहुँचे। मन्दिर के किवाड़ खुले थे, ज्योति जल रही थी। भगवान की मूर्ति ताजे फल-फूलों से लदी थी, और उनकी भीनी भीनी सुगन्ध चारों तरफ फैल रही थी। लेकिन वहाँ कोई न था।

थोड़ी देर इन्तजार करने के बाद लोग रानी ताल पर गये, वहाँ भी आस-पास कोई न था, लेकिन ताल में एक लाश तैर रही थी। सब की निगाहें श्रद्धा से झुक गयीं, जैसे वह मन्दिर में भगवान की मूर्ति के दर्शन कर रहे हों !

लाश लम्भु पुजारी की थी !

काश्मीरी डोगरी युनिट,
आल इंडिया रेडियो,
नयी दिल्ली।

टाइगर एक कुत्ता था, बड़ा ही भाग्यवान।

गाँव-के-गाँव अकाल से पीड़ित थे। लोग भूखों मर रहे थे, उनकी हड्डी-पँसली ही रह गयी थी। फिर भी टाइगर का शरीर न दुबला हुआ, न कमजोर। जब वह बैठा रहता, तो लगता कंबल की एक गठरी रखी हुई है। पैर और पूँछ सफेद, आँखें लाल-भूरी। टाइगर की आँखें भी वैसी हैं, जैसी पुलीस की।

टाइगर गली-गली आवारा घूमती किसी कुतिया की संतान है। उसका जन्म शहर के किसी परनाले में हुआ था। सारी बातें वह नहीं जानता। वह तब से पुलीस-स्टेशन में है, जब से उसे सुध-बुध हुई। उसके खेल-कूद का मैदान बना पुलीस-स्टेशन का खुला चौकोर आँगन। उसके यार-साथी हुए पुलीस के कर्मचारी और कैदी। वह हर किसी को खूब पहचानता था। मगर वह चाहता था पुलीस-इन्स्पेक्टर को ज्यादा। कैदियों का कहना है कि टाइगर और इन्स्पेक्टर की आँखें एक-जैसी हैं।

टाइगर के लिए क़ैदी-क़ैदी में कोई अन्तर नहीं है। हत्यारा, चोर, डाकू, राजनैतिक कार्यकर्ता, कोई भी हो, उसकी नज़र में सभी क़ैदी हैं, बराबर हैं। उसके लिए मानव-जाति के दो ही व हैं, पुलीस और क़ैदी। हवालात के अन्दर जो पैंतालीस मनुष्य हैं, उन-सबको यह समान दृष्टि से देखता है। चार मनुष्य अकेले एक हवालात में बंद हैं। ये राजनैतिक कैदी हैं, इसका टाइगर बिल्कुल ख्याल नहीं करता, क्योंकि हवालात भी सभी बराबर हैं। किसी हवालात में भी हवा या रोशनी झाँकती तक नहीं। न अँधेरा है, न रोशनी। ऐसी हालत में पीले-पीले नर-कंकाल पड़े थे, मल-मूत्र की दुर्गंध सहते, खटमलों से परेशान, चीथड़ों में लिपटे और बढ़ी दाढ़ी लिये।

हवालात से जो बदबू निकलती है, लोगों को बेहोश कर देनेवाली है। मगर कैदियों को इसकी कोई परवाह नहीं रहती। उनके लिए एक ही चिन्ता है, खाने की चिन्ता। रात को इसलिए सोते हैं कि सवेरे खाना मिलेगा। उसके बाद दुपहर के खाने की चिन्ता शुरू होती है। किसी की भी भूख कभी मिटती नहीं। सभी का आग्रह है कि जल्दी ही जेल पहुँच जायें। मगर यह जल्दी नहीं होता। दंड मिलने पर ही जेल में भेजे जाते हैं। जेल कैदियों के लिए स्वर्ग है और हवालात नरक।

हर कैदी की आँखों में रोष और द्वेष है। उसे वे लोग आँखों- द्वारा टाइगर की तरफ़ बहा देते हैं। मगर

टाइगर कहाँ उसकी परवाह करता है! वह हवालात के बाहर, इधर से उधर, उधर से इधर, गंभीर मुद्रा में या तो चलता रहता है या किसी हवालात के सामने जा लेटा रहता है। और इन्स्पेक्टर के भोजन के वक्त उनके कमरे के सामने हाज़िर। भोजन कर, इन्स्पेक्टर साहब डँकार छोड़ते हुए, टाइगर के सामने जूठन रख देते हैं। जूठन क्या, वह एक आदमी के भोजन के लिए काफ़ी होता है। कुत्ते को खाते देख, क़ैदियों के मुँह में पानी भर आता है।

टाइगर खाना खाकर बगीचे में जा, किसी पौधे के साये में थोड़ी देर मीठी झपकी लेता है। उसके बाद वह उठता है और हवालातों के सामने इस मुद्रा में हाज़िर हो जाता है, जैसे वह सब-कुछ जानता हो। प्रायः सबके 'अपराध' झूठे हैं। कान्स्टेबलों और इन्स्पेक्टर के रिश्वत ले-लेकर गढ़े-गढ़ाये अपराध। किसी-किसी ने अपने जीवन में एक ही बार चोरी की है। उसके बाद गाँव-भर में जितनी चोरियाँ हुई हों, उन-सबके लिए वही जिम्मेदार ठहराया गया है। हवालत की एक विशेषता है। वहाँ सभी अपराध मान लिये जाते हैं, जो अब तक नहीं किये गये हों। अदालत में मैजिस्ट्रेट के सामने भी पुलीस रहती है।

सरकार की तरफ़ से हर क़ैदी को एक बँधी रक़म मिलने का नियम है। उसका तीसगुना एक पुलीस-कर्मचारी के वेतन से अधिक होगा। पुलीस को भी भोजन चाहिए, कपड़े-लत्ते चाहिए, बीवी-बच्चों की परवरिश होनी चाहिए। ऊपर की आमदनी दूसरी कौन-सी होती है! इतना कम वेतन और हजारों आवश्यकताएँ!

क़ैदी भी लोहे के सींखचों से हाथ बाहर बढ़ाते और उग्र रोष से टाइगर को थपथाते।

—यह हमारा खाना है!—वे कहते।

टाइगर दुम हिलाता चला जाता। हाँ, यही जीवन है, इसे बदले, कोई उतना होशियार नहीं, इस मुद्रा में वह जीव उन लोगों की तरफ़ देखता है। सचमुच यह ठीक है।

पहले कोई-कोई कहते—हमारी भूख मिटती नहीं, सरकार से जो कुछ नियत है, हमें मिलना चाहिए।

मगर मिला कुछ और, पुलीस का घूँसा और इन्स्पेक्टर के बूट। यही नहीं, इन्स्पेक्टर क्रुद्ध मुद्रा में गरजा भी—सरकार से नियत! क्या सरकार तुम लोगों का बाप है?

क्या सरकार किसी का बाप है?

मगर सब लोग एक स्वर में बोले—सरकार टाइगर है!

क्या यह उपमा सही है?

सरकार की तरफ़ से नियत रक़म पर क़ैदियों को खिलाने का ठेका एक होटलवाले ने ले रखा है। उसने व्यापार शुरू किया था छोटे पैमाने पर, मगर जल्दी ही उन्नति कर गया क़ैदियों के कारण। लम्बी-लम्बी मूँछ और खूब-बड़ी तोंद। इन्स्पेक्टर और उसके बीच बड़ी ममता है। उसी के होटल से वह भोजन करते। उसके लिए पैसा देने की जरूरत नहीं। उल्टे उन्हें पैसा मिलता। यह नुक़सान निभा लिया जाता है। क़ैदी चालीस-पचास रोज़ रहते। उनको खिलाता नहीं, तो भी पूछनेवाला है कौन? मान लो, मैजिस्ट्रेट के सामने किसी ने शिकायत की, मगर वापस आना तो पड़ता है फिर हवालात में ही।

इन्स्पेक्टर पूछते, हँसते हुए ही सही, मगर वह हँसी—अरे बे, तूने शिकायत की न?

उसके बाद....उसके बाद बेहोश होने तक उसको मार खानी पड़ती। क़ैदियों को शिकायत नहीं रहती। वे लोग उस कुत्ते से बदला लेते। क़ैदियों को टाइगर के प्रति किसी तरह का प्रेम नहीं है। यह सुन, इन्स्पेक्टर साहब हैरान हो जाते। ये लोग उस बेचारे जीव को क्यों प्यार नहीं कर सकते?

क़ैदी टाइगर को बिलकुल प्यार नहीं करते। मौका पाकर उसको ंग करते। इधर इसकी कोशिश हुई नहीं कि इधर टाइगर ने भूँकना शुरू किया।

—क्यों, टाइगर क्यों भूँकने लगा?

इन्स्पेक्टर बेंत हाथ में लिये, बाहर निकल आते।

—अरे कुत्तो! टाइगर को छूना मत! कितनी बार

तुम लोगों से मैं कह चुका हूँ! हूँ ?....हाथ बढ़ाओ, जिसने भी इसे छुआ हो!

सींखचों के बीच से कोई हाथ बाहर निकलता। अँगुलियों को पकड़कर, जोर-जोर से उस हाथ पर बेंत जमती। सारे वातावरण को झुलसानेवाली एक आवाज उठती। हाथ फूटकर सूज जाता! खून टप-टप गिरता। टाइगर उसे चाट लेता।

क़ैदी वही अपराध दुहराते। दंड उनके द्वेष को और भी सुदृढ़ बना देता। उस कुत्ते को छूने से सब-के-सब कई बार दंडित हो चुके हैं। इधर कुत्ता भी हमेशा उनसे यह अपराध कराने पर तुला रहता है।

टाइगर बाहर कभी नहीं जाता। इतना बड़ा कायर! फिर भी कोई कुत्ता उसके पास आता, तो वह ज़ोर से भूँकने लगता। उस समय उसमें बाघ की शूरता रहती। मगर पुलीस-स्टेशन के बाहर किसी मरियल कुत्ते को भी देखना-भर काफ़ी है, वह अपनी दुम दबाये स्टेशन के अन्दर हाज़िर। यह देख, किसी राजनैतिक कैदी ने एक बार कहा—देखा न ? हमारे इन्स्पेटर साहब का आगमन!

यह सुन किसी दार्शनिक कैदी ने कहा—हममें से हर कोई ऐसा ही इन्स्पेक्टर है!

इस बात ने बड़े वाद-विवाद का रूप ले लिया। तीन का एक पक्ष और अकेले का एक पक्ष। विवाद के मूर्धन्य पर शुभ समाचर के साथ इन्स्पेक्टर आ पहुँचे।

—क्या बात है ? क्यों इतना शोरगुल ?

कोई कुछ नहीं बोला।

—खोलो!—इन्स्पेक्टर ने पहरेदार को हुक्म दिया।

पहरेदार ने हवालात खोल दी। वे चारों बाहर आये।

इन्स्पेक्टर ने कहा—आप लोगों से मिलने कोई आये हैं।

जब वे बाहर आये, तो देखा कि झगड़े के लिए जो कारण बना, उसके मित्र आये हैं। वे कुछ मिठाइयाँ और संतरे भी लाये थे। दो संतरे खुद इन्स्पेक्टर निगल गये। मिठाइयाँ उन चारों ने ही खायीं। बाहर की खबरें ऐसी-वैसी ही थीं। भीषण अकाल, हर जगह भुखमरी, लड़ाई की बातें। चीजों के दाम बढ़ते जाते हैं। मतलब यह कि हर जगह अकाल ही अकाल है।

—हम भी इसका अनुभव कर रहे हैं,—उस झगड़ालू कैदी ने कहा।

—आप लोगों को क्या ? खाना ठीक मिलता है। खुशहाल हैं। तकलीफ़ों को जानने की ज़रूरत नहीं।

उसी समय टाइगर सामने आया। टाइगर को इशारा करके, उसी झगड़ालू कैदी ने कहा—वह कुत्ता जितना भाग्यवान है, उतना यहाँ के कैदी नहीं।

इन्स्पेक्टर हँस पड़ा—कैदी!

वे फिर से हवालात के अंदर। चारों तृप्त थे। पेट-भर मिठाई जो मिली! इसलिए उनका भोजन थोड़ा बच गया। उसे लेकर उन्होंने पहले हवालात में आये कैदियों के सामने रख दिया। सींखचों के ज़रीये खाना देते वक्त थोड़ा चावल नीचे ज़मीन पर गिर गया। उसे चाटने की ताक में टाइगर पास ही खड़ा था। हवालाती बैठ गये। एक ने परोसना शुरू किया ? मुट्ठी-भर भी खाना नहीं है। फिर भी उन लोगों ने बड़े चाव से उसे खाने की तैयारी की। परोसनेवाले ने पाँचों के हाथ में थोड़ा-थोड़ा डाल दिया। टाइगर आगे बढ़, जमीन चाटने लगा। उसके बाद सीखचों को चाटने लगा। तभी एक कैदी ने उसके मुँह पर ज़ोर का एक तमाचा जड़ दिया। कुत्ता चीख उठा। उसकी आवाज़ सुनकर पहरेदार भागा-भागा आ पहुँचा। पुलीस के कुछ कर्मचारी भी। अन्त में इन्स्पेक्टर भी आ गया।

इन्स्पेक्टर ने उनके सब भोजन को एक पत्तल पर डलवाकर कुत्ते के सामने रखवा दिया। कैदियों को लगा, जैसे उनके दिल ही को काटकर कुत्ते के सामने फेंक दिया गया हो।

यह घटना वैसे तो हो चुकी। लेकिन उस रात को, दस बजे के करीब, टाइगर का भौंकना सुनायी पड़ा ज़ोर-ज़ोर से। सारा पुलीस-स्टेशन हिल गया। पहरेदार ने जब देखा, तो पाया कि दो कैदी मिलकर कुत्ते का मुँह

पकड़कर सीखचों के बीच दबा रहे हैं। दो थे, ज़रूर, लेकिन पहरेदार एक ही को पहचान पाया।

इन्स्पेक्टर ने उस क़ैदी को बाहर खींच निकाला। वह किसी 'चोरी' में पकड़ा गया अपराधी था। इन्स्पेक्टर ने सबसे पहले उसके मुँह पर एक तमाचा मारा, और फिर एक लात। वह गिर पड़ा मुँह के बल। फिर पीठ पर लगातार लात-पर लात। बाद को उसे खींचकर उठाया गया और खड़ा किया गया। मुँह में खून-ही-खून। ज़मीन पर एक टूटा दाँत और खून की धारा।

यह दृश्य पैंतालीस कैदियों ने और आठ-दस सिपाहियों ने देखा। और टाइगर ने भी देखा, उसने ज़मीन पर पड़ा खून चाटना शुरू किया।

इन्स्पेक्टर गरज उठा—अरे बे! बता, दूसरा कौन था?

मगर उसने बताया नहीं। क्योंकर बताये?

फिर उसके दोनों पाँव सीखचों के बीच से बाहर करके रस्सी से कसकर, तलुवे पर जोर-जोर से मारा गया। फिर भी वह चुप। खून फूट निकला। फिर भी वही चुप्पी। वह अब बेहोश हो चुका था। इसी लिए वह बिना हिले-डुले मौन लेटा रहा और टाइगर उसके तलुवे के जख्मों को जीभ से चाटता रहा।

मलयालय से अनु० पी० एन० भट्टतिरि

बशीर बुकस्टाल,
टी० पी० रोड,
एरनाकुलम।

बहस में आये कुछ और मन्तव्य प्रकाशित हो रहे हैं। कहानी के बारे में लिखनेवालों से हम एक निवेदन करना चाहते हैं। आशा है, आप ध्यान देंगे। कहानी के बारे में आप जो कुछ भी लिखते हैं, हम भरसक प्रकाशित करने का प्रयत्न करते हैं। अगर किसी का कुछ प्रकाशित होने से रह जाता है, तो इसका कारण केवल स्थानाभाव या देर से आना होता है। हम चाहते यह हैं कि आप पिछले महीने की ही कहानियों पर अपनी सम्मतियाँ भेजें और वह भी जल्द। साथ ही अपनी सम्मति में पसन्द या नापसन्द का कारण भी, जैसा आपको लगे, लिखने का कष्ट करें। यह तो कोई बात नहीं हुई कि यह कहानी अच्छी लगी, वह नहीं लगी। आख़िर ऐसा हुआ क्यों-कर? आप इसपर भी प्रकाश डालने की चेष्टा करें।

बहुत-से पाठकों का आग्रह है कि हम कहानी के बारे में आयी सम्मतियों पर अपनी भी टिप्पणी लिखें। ऐसा करने में हमें कोई आपत्ति नहीं। बहुत जल्द ही हम इस सुझाव को कार्यान्वित करेंगे।

क्या कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है?

अरुण कुमार द्विवेदी (बिल्हौर)

'क्या कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है' पर अगस्त अंक में कहानी क्लब के अंतर्गत प्रकाशित मन्तव्यों पर आपका नोट पढ़ा। ऐसा लगा कि मन्तव्य प्रेषकों के कारण आपको काफ़ी दिक़्क़त उठानी पड़ रही है। मैं यह नहीं कहता कि मन्तव्य विद्वतापूर्ण नहीं, पर अबांछनीय विस्तार सचमुच अखरता है। पता नहीं, ऐसे लोग आपकी तथा मन्तव्य-पाठकों की सुविधा का ध्यान न रखकर ऐसा क्यों करते हैं।

वैसे 'कहानी में क्या हो,' इस बहस के अंतर्गत, मेरे ख़्याल से, कहानी में, मनोरंजन हो, रोमान्स हो, उपदेश हो, शिक्षा हो अथवा मनोविज्ञान की गूढ़ता हो, यह-सब आ चुका था और यह बहस बड़ी सफल भी रही थी। कहानी का उद्देश्य उसमें व्यक्त हो चुका था। मैं नहीं जानता कि प्रतिपादित विषय को पुनः क्यों लिया गया? शायद स्वतंत्र रूप से इस विषय पर प्रकाश डालना अधिक अच्छा हो, यही सोचकर। इस वार्ता एवं प्रस्तावित वार्ताओं के लिए आपको बधाई देता हूँ तथा संक्षेप में अपने विचार प्रस्तुत करता हूँ।

मैं समझता हूँ कि कहानी का उद्देश्य निश्चित कर देने से काम नहीं चलेगा। समाज में दो वर्ग हैं, एक पूँजीपतियों और सामन्तों का और दूसरा है मेहनतकशों का। एक को सिवाय गुलछर्रे तथा मनोरंजन के कोई काम नहीं, दूसरे को मुश्किल से रोटी पाना है, इनके लिए मनोरंजन हराम है, और उसके लिए यदि कोई प्रयत्न भी करें, तो मैं उसे अनुचित ही समझूँगा। जब यह-सब दूर हो जाय, समाज में समता का पूर्णतया प्रसार हो जाय, तो मैं कहानी का उद्देश्य मनोरंजन भी समझूँगा, मनोरंजन का अर्थ मैं यहाँ केवल शिष्ट, शिक्षापूर्ण एवं कल्याणकारी मनोरंजन समझ रहा हूँ।

आज की कहानी का उद्देश्य मैं मनोरंजन और केवल मनोरंजन नहीं मानता। मैं चाहता हूँ कि आज की कहानी का उद्देश्य उन मेहनतकश और दुखियों की आहों और पूँजीपति तथा विशिष्ट वर्ग के लोगों की वाहों का नग्न चित्रण करना हो, जिससे दबा हुआ वर्ग कुछ हमदर्दी पाकर, अपनी दशा पर कुछ विचार करके और नाजायज कार्य-कलापों के विरोध की प्रेरणा पाकर कुछ कर उठनेवालों का वर्गीकरण कर दे, धार्मिक तथा सामाजिक रूढ़ियों के पालकों की बेहयाई एवं कुटिलता को जन-मन के आगे नंगा नचा दे, सदियों से गलत मार्ग पर निर्देशित लोगों के जघन्य कृत्यों का खुला प्रदर्शन करके उन्हें महसूस करा दे कि वह सोचें, आँखें खोलें और नष्ट कर दें उन अमानवीय एवं स्वार्थ-पोषक तत्वों को। काम के पश्चात् मनोरंजन की अपेक्षा होती है, अतः स्वतंत्र, वर्ग-विहीन, खुशहाल समाज का निर्माण करके मनोरंजन की सोचें। कहानी का उद्देश्य पहले जुझाना हो, फिर मनोरंजन।

सीतेन्द्र देव नारायण (छपरा)

कहानी क्लब जैसे स्तम्भ के लिए बधाई।

'कहानी' के अगस्त अंक से मैंने अपने कुछ साथियों के विचारों का अध्ययन किया। ललित किशोरजी के विचार ठोस रहते हुए काफी सतर्क एवं सजग हैं। उनका यह कहना कि, जब इतनी लम्बी दूरी कहानी को तय करनी है, तो ऐसी अवस्था में केवल मनोरंजन और रंगरेलियों में डूबने का उसे अवकाश कहाँ है,' यथार्थतः तर्क-संगत है। कहानी का उद्देश्य समाज में नयी संस्कृति एवं नवीन भावनाओं का निर्माण करना है और है मानवता की सूखी हुई टहनियों पर हरी-हरी पत्तियों को उगा देना।

कहानी का उद्देश्य मनोरंजन है, केवल मनोरंजन, मैं इसे मानता हूँ और अन्त तक मानता रहूँगा। मैं क्षणिक मनोरंजन पर विश्वास नहीं करता। मेरा अपना विश्वास है 'शाश्वत मनोरंजन' पर। कहानी के अध्ययन करने पर पाठकों के दिल में शाश्वत मनोरंजन के भाव जगें, तभी कहानीकार की सफलता है। यह नहीं कि कहानी के पढ़ने पर पाठकों के दिल में गुदगुदी हो, होंठों पर क्षीण हास्य की रेखायें खिंच जायें तथा हृदय में 'सेक्स' की छिपी हुई भावनायें उभर आयें। इन कहानियों के पढ़ने से मनोरंजन होता है, पाठकों को आनन्द मिलता है। किन्तु इस तरह का मनोरंजन या आनन्द क्षणिक होता है, शाश्वत नहीं। इस तरह का मनोरंजन मानव की कुप्रवृत्तियों को उभारता है, बुरे रास्ते पर ले जाता है। ऐसे कहानीकारों को मैं कहानीकार नहीं मानता। वे भले ही अपने को कहानीकार कह लें, किन्तु साहित्य और पाठक उन्हें मान्यता नहीं देते। वे स्वयंभू कहानीकार हो सकते हैं। समाज का अहित ही ऐसे लोगों से होता है, हित नहीं।

आपके सामने शाश्वत मनोरंजन एक पहेली के रूप में होगा, इसको स्पष्ट करना मेरा पहला काम है। जिस देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी भूखमरी, चोरी, बेईमानी, दगेबाजी, घूसखोरी और बेकारी के राक्षस जम गये हों, वहाँ के साहित्यिकों का कर्त्तव्य कुछ और हो जाता है। भूखा पेट रोमांस की बातें पढ़कर कभी सोच सकता है? गरीब किसान 'चुम्बन' शीर्षक कहानी को पढ़कर क्या लाभ उठा सकता है? आदि बातों पर आज के कहानीकारों को ध्यान देना आवश्यक हो गया है। समाज के अन्दर की कठिन एवं गम्भीर समस्याओं का हल देना आज के साहित्यिकों का पहला कर्त्तव्य होता है। उलझी हुई समस्याओं के सुलझ जाने के बाद, समाज की आर्थिक स्थिति सुधर जायगी और नागरिकों का रोना बन्द हो

जायगा। कहानीकार अपनी कहानी के माध्यम से आग उगले, समाज के अन्दर की सारी समस्याओं एवं रूढ़िग्रस्त विचारों में अग्निविस्फोट करा दे और अन्त में एक नवीन, सुन्दर एवं भावपूर्ण समाज का निर्माण करे, जिससे शांति हो, तर्कपूर्ण विचार हों और न्याय हो। ऐसी स्थिति में नागरिकों के हृदय में उठनेवाले मनोरंजन शाश्वत होंगे, क्षणिक नहीं।

आज कहानीकार को लिखने का ढंग बदलना होगा, नयी 'तेकनिक' अपनानी होगी और सुलझे हुए विचार अपनाने होंगे। मैं यह मानता हूँ कि कहानीकार को स्वतन्त्रता है कहानी का विषय-निर्धारण करने में। किन्तु आज उस पर भी नियन्त्रण रखना होगा। समाज की, राजनीति की कतिपय समस्याओं को ही आज विषय-वस्तु बनाना 'शाश्वत मनोरंजन' की स्थापना की ओर क़दम बढ़ाना होगा। 'नौजवान' के शहीद अंक की एक कहानी की ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करता हूँ। कहानी का शीर्षक है 'राजनीति के भेद' और कहानीकार हैं बिहार के प्रतिभाशाली नयी कविता के सम्मानित कवि श्री प्रभाशंकर मिश्रजी। राजनीति-सम्बन्धी समस्याओं, व्यक्ति विशेष की कुत्सित विचार-धाराओं एवं समाज की कुरीतियों पर कुठाराघात करना ही मिश्रजी का उद्देश्य है। अगर आज के कहानीकार मिश्र जी की 'तेकनिक', माप और भाषा को आधार मानकर चलें तो आशा है, शाश्वत मनोरंजन की स्थापना होकर ही रहेगी।

मदनजी 'विद्यार्थी' (छपरा)

मैं आपका इसलिए अधिक उपकृत हूँ कि आपने कहानी क्लब के माध्यम से विचाराभिव्यक्ति का स्वर्ण अवसर प्रदान किया। यह क्लब हम पाठकों के लिए एक देन है। ऐसे तो भारतीय संविधान में भी विचार अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। हम एक-दूसरे की भावनाओं का परस्पर स्वागत करेंगे, चाहे वे विरोधी ही क्यों न हों; हम उन्हें स्वीकार करें या नहीं।

अब हम समस्या पर आते हैं। कहानी का उद्देश्य सिर्फ मनोरंजन है, कहना निरी अज्ञानता ही होगी। यदि कहानी-साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करें, तो पता चलेगा कि किस प्रकार कहानियाँ ऐतिहासिक एवं सामयिक परिवर्तन के साथ मनोरंजन की ओर से बढ़ने लगीं और दूसरी ओर जाने लगीं।

'ऋग वेद' की कहानियों में प्राकृतिक शक्तियों का वर्णन ही प्राप्त होता है। हम मानते हैं, उनका उद्देश्य केवल मनोरंजन था। धीरे-धीरे कहानियाँ एक विस्तृत क्षेत्र से संकुचित केन्द्र-विन्दु की ओर उन्मुख होती गयीं। प्राकृतिक वर्णन से हटकर समाज की ओर आयी और फिर समाज के किसी एक व्यक्ति का, जो वीर होता और नेता होता, वर्णन में लग गयीं। यह समय काफी दिनों तक चलता रहा। महापुरुषों की कहानियों में हम इसी बात को पाते हैं।

पर आधुनिक काल में कहानी मानव के वाह्य-जगत से हटकर उसके आन्तरिक जगत में प्रविष्ट कर गयी है। उसके हृदय का चित्रण आज की कहानियों का प्रधान उद्देश्य हो गया है। इनमें मनोविज्ञान का काफी पुट रहता है। जैनेन्द्रकुमार, अज्ञेय आदि-की कहानियाँ ऐसी ही होती हैं। जून के 'कहानी' में 'ऊदबत्ती' तथा जुलाई-अंक के मन्नो भंडारी की कहानी 'श्मशान' का उद्देश्य मानव-हृदय में स्थित स्नेहिल भावनाओं का चित्रण करना ही है। मई-अंक में सआदत हसन मन्टो की कहानी 'सरकंडों के पीछे' का आखिर क्या उद्देश्य है? अतः यह स्पष्ट है कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन न हो।

रामचन्द्र 'रहबर' (पूसा)

हमारे यहाँ कुछ पढ़ने के पहले अधिकतर पढ़नेवाले यह कभी नहीं सोचते कि उनके पढ़ने का कुछ उद्देश्य भी है या नहीं।

जिस तरह हर मनुष्य की रेखाकृति एक सदृश नहीं हुआ करती, उसी तरह विचारों की दुनिया में भी मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकृति के होते हैं और जो जिन परिस्थितियों में हैं, उन्हें उसी परिस्थिति के चित्रण अच्छे लगते हैं और कहानी में जब वे उन परिस्थितियों का आकृतिकरण देखते हैं, तो उनका पर्याप्त मनोरंजन हो जाता है। अगर

मनोरंजन का मतलब साधारण स्तर के मनोरंजन हैं, तो मैं कहानी का यह उद्देश्य नहीं मानता है। ओ' हेनरी या गोर्की को पढ़कर हम मनोरंजन पाते हैं जरूर और जोला को पढ़कर भी। प्रेमचन्द और कुशवाहा दोनों मनोरंजन देते हैं, लेकिन दोनों के यहाँ मनोरंजन का अर्थ कुछ और हो जाता है। अतः कहानी का उद्देश्य मनोरंजन जरूर है, लेकिन एक विशेष अर्थ में।

महेशदत्त चौबे (नागपुर)

मैं सर्वप्रथम आपको धन्यवाद देता हूँ कि आपने हमें अपने विचार प्रकट करने का अवसर दिया।

'क्या कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन है' इस विषय पर पाठकों ने अपने-अपने मत व्यक्त किये हैं।

मैं भी थोड़े शब्द लिख रहा हूँ। कथा या कहानी सुनने, लिखने अथवा कहने की परिपाटी पुरातन काल से चली आ रही है। पुराणों में हमें कथाओं का उल्लेख मिलता है। कहानी मानव जीवन से सम्बद्ध है। किसी ने कहा है, वस्तुसत्य सत्य ज्ञान एक ही है। दोनों में अन्तर इतना ही है कि एक किरण है और दूसरा उसका प्रतिविम्ब। कहने का अर्थ यह कि कथा या कहानी का हमारे जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

कहानी में मनोरंजन निहित है, किन्तु कहानी का उद्देश्य मनोरंजन से भी ऊपर उठना है।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। आज का मानव अधिक व्यस्त है। हमारी आर्थिक स्थिति भी खराब है। मनुष्य का अधिकांश समय रोटी की समस्या हल करने में ही बीतता है। लेकिन अवकाश के समय वह कहानी भी पढ़ता है। अतः मनोरंजन उसका प्रमुख अंग होता है।

कहानी का मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी मनुष्य पर पड़ता है। इसका उदाहरण दूसरा न देकर मैं इस अंक की कहानी में से ही दूँगा। 'भूत का साथ' कहानी में लेखक को अपने अप्पा की कही भूत की कहानी याद आती है। जब वह नदी पार करता है, तो उसे पीछे से आनेवाली नारी भी भूत-सदृश दिखायी पड़ती है। वह उसे भूत समझ बैठता है और उसका प्रभाव उसकी विचार-धारा पर पड़ता है। कहानीकार यदि मनोवैज्ञानिक तत्व को लक्ष्य कर आदर्शोन्मुख कहानी लिखे, तो वह पाठकों का कल्याण कर सकता है।

हम कहानी के पात्रों के साथ हँसते, बोलते और रोते हैं। यदि लेखक कहानी में हमारी सामाजिक कुरीतियों, परिपाटी एवं गम्भीर समस्याओं का उल्लेख करे, तो उससे न केवल हमारा मनोरंजन होगा, हमारा मस्तिष्क परिष्कृत होगा और इससे हमारी विचार-धारा में परिवर्तन होगा।

कहानी के बारे में

सच्चिदा (पटना)

उखड़ा-उखड़ा-सा शीर्षक 'कच्चे धागे, रेशमी धागे' जब मैंने सबसे नये 'कहानी' अंक में पढ़ा, तो बाछें खिल उठीं। लगा, जैसे मेरे अनुरोध को 'सुखबीर' टाल न सके और उन्होंने तुरन्त मुलाकात 'कहानी' के माध्यम से दी।

उनकी अलग और सुनहली शैली मेरे लिए वैसे ही है, जैसे बन्ता सिंह के लिए उसका सुनहला भविष्य, बशर्ते कि उसके कठघरे में आग न लगे और यदि आग लग भी जाय, तो फायर ब्रिगेडवाले बहुत जल्दी बुझा दें, ताकि कोई नुकसान न हो।

'कच्चे धागे, रेशमी धागे' के अन्त में आते लगा कि सारी कहानी एक ही वाक्य में सिमट-सी गयी, नारायण सिंह ने बन्तासिंह को इसके बारे में भी सलाह दी।....

'सुखबीर' की यह कहानी भी पिछली कहानियों की तरह आले दर्जे की उतरी है। उनके लिए शुभकाम-

नायें। बड़ी हँसी आयी जब मैंने रामेश्वर नाथ तिवारी की सफाई देखी। किन्तु उनके साथ ही विश्वनाथ मुखर्जी (बनारस) की याददाश्त पर बधाई है। चोरी की तीन सीढ़ियाँ यहीं पायीं। शरदेन्दु बनर्जी मन-ही-मन कट-कर रह गये होंगे। मेरे ख्याल में रामेश्वर जी नारदजी की तरह नारायण! नारायण! कहते हुए कल्प वृक्ष पर चढ़ने की सोच रहे थे, किन्तु अफ़सोस, फल हाथ न लगा।

मैं भीमसेनजी को सुझावों के लिए धन्यवाद देता हूँ। आशा करता हूँ कि 'कहानी' जैसी पत्रिका उनके सुझावों को अवश्य ही प्रश्रय देगी, जहाँ तक संभव हो।

धर्मनाथ 'आज़ाद' (तालपुकुर)

इस बार 'कहानी' समय पर प्राप्त हो गयी। बहुत-बहुत शुक्रिया। पिछले कई अंक देर से प्राप्त हुए थे।

एक साँस में पूरी कहानी पढ़ने का श्रेय खलील जिब्रानजी की 'सुहाग-सेज' को है। गजब की भाषा-शैली है। कहानी की घटना और उसके पात्र हृदय पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं।

और इन शब्दों ने तो मेरे हृदय को चारों ओर से जकड़ लिया है। शायद जिन्दगी में कभी न भूले—मृत्यु जीवन से अधिक शक्तिशाली है, किन्तु प्रेम मृत्यु से भी अधिक शक्तिवान!....मुझे उस हाथ का चुम्बन कराओ, जिसने मेरी जीवन-डोर काटी है!....पढ़कर साँस बन्द-सी होने लगती है।

सत्यपाल आनन्द की 'कीड़ू' आज के मजबूर इन्सान पर होती ज्यादती और ज़्यादती से पनपते बगावत का एक जीता-जागता नमूना है। जब 'कीड़ू' जैसे पिलपिले इन्सान की नसों में बगावत का लहू दौड़ सकता है, तो फिर आज का मजबूर इन्सान तो कहीं आगे बढ़ सकता है।

'हातिमताई बेतस्वीर' और 'जयहरि का जेब्रा' ही आज के रोते, बिलबिलाते और बिलखते इन्सानों को हँसाने के लिए काफ़ी नहीं हैं।

एम० अमीन (बालाघाट)

'कहानी' का माह सितम्बर का अंक देखा। आपने हमारी आशा के विपरीत, एक के बजाय दो हास्य रस की कहानियाँ भेंट कीं! हार्दिक बधाई।

यह संभव है कि 'कहानी' को हास्यरस की कहानियाँ कठिनता से प्राप्त होती हों। फिर भी पिछले अंकों में, परशुराम, हरिमोहन झा, ओंकारनाथ श्रीवास्तव, प्रभाकर माचवे इत्यादि लेखकों ने 'कहानी' के पाठकों को हँसाने का प्रयत्न किया है, जो प्रसंशनीय है। मैं तो मार्च ५५-के अंक की कहानी 'गजनी का पठान' लेखक, रवीन्द्र-नाथ देव, को भी हास्य रस की ही कहानी मानता हूँ। फिर भी मेरा अनुरोध है कि आप हिन्दी लेखकों से व अन्य भाषाओं के अनुवादकों से हास्य रस की कहानियाँ 'कहानी' के लिए तैयार करने को अवश्य कहें!

आपने उर्दू कथाकार सआदत हसन 'मन्टो' को हिन्दी के पाठकों से परिचित कराया है। आपका यह प्रयास सराहनीय है! क्या आप मन्टो की अन्य कहानियाँ हमें 'कहानी' में न देंगे? आशा है, मेरी प्रार्थना निष्फल न जायगी।

मुल्कराज आनन्द की कहानी 'वसीला' व बलवन्त सिंह की कहानी 'नये राज में नौकरी के तीस महीने' देकर आप चुप रह गये!

अरुणकुमार द्विवेदी (कानपुर)

'कहानी' का सितम्बर अंक समय पर मिला। धन्य-वाद। खलील जिब्रान की 'सुहाग सेज' बहुत अच्छी कहानी है। वर-वधू का बलिदान और सुसन का साहस कमाल का है! पादरी-जैसी दुरात्मायें तो दुस्साहसी एवं निर्लज्ज होती ही हैं।

'किस्सा हातिमताई बेतस्वीर' अपने ढंग की अच्छी रचना है। शफीकुर्रहमान सफल हुए हैं। आश्चर्य हुआ कि परशुराम की कहानी को आपने हास्य-रस की क्यों कहा।

शेष में 'कीड़ू', (सत्यपाल आनन्द) 'कच्चे धागे, रेशमी धागे' (सुखबीर) और 'एक मिट्टी दो रंग' (ओ' हेनरी) रचनायें उत्तम रहीं। बाकी यों ही हैं। 'इनामी कहानी' कुछ तो है, पर 'राह में' इस अंक की निकृष्ट रचना है।

(शेष ७९ वें पृष्ठ पर)

पुस्तकालय

आल इंडिया रेडियो

हर्षदेव मालवीय

लोक गीत, लोक संगीत, आदि के रूप में जो विभिन्न प्रकार की मनोरंजन की सामग्रियाँ रेडियो कार्यक्रम में प्रस्तुत की जाती हैं, वे प्रशंसनीय हैं। किन्तु यही बात खेती और विकास सम्बन्धी समस्याओं से सम्बन्धित वार्ताओं और वाद-विवाद के सम्बन्ध में भी नहीं कही जा सकती। यदि ग्रामीण श्रोताओं की चेतना पर इसका बहुत ही कम प्रभाव पड़ता है, तो यह बहुत आश्चर्य-जनक बात नहीं है। वार्ताएँ एक प्रकार से औपचारिकता को पूरा करना मात्र प्रतीत होती हैं, यद्यपि कभी-कभी किसी ग्रामीण वार्ता की केवल चमक-दमक उल्लेखनीय होती है। उदाहरण के लिए ग्रामीण सफाई का विषय जो भिन्न-भिन्न वार्ता करनेवालों द्वारा बार-बार दुहराया जाता है और जिसमें कोई विशेष नयी बात नहीं कही जाती है, एकदम नीरस प्रतीत होता है।....शायद ही कभी ऐसे रेडियो कार्यक्रम सुनने में आते हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि-सुधार सम्बन्धी कार्यक्रम कार्यान्वित करने से सम्बद्ध हों। ग्राम-पंचायतों की क्रियाशीलता के [illegible]रे में, उनके प्रशासन और न्याय पक्ष पर तो वा[illegible] का पूर्णतया अभाव पाया जाता है।

इसके अतिरिक्त, ग्रामीण कार्यक्रम शायद ही कभी ग्रामीण श्रोताओं को आज के क्रान्तिकारी भारत का समन्वित चित्र भेंट करते हों। ग्रामीण कार्यक्रमों की अकिंचनता राजनीतिक स्तर पर और भी अधिक खेदजनक प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए, भारत की शांतिमय अन्तर्राष्ट्रीय नीति की सफलता, आदि विषयों की तो इन ग्रामीण प्रसारों में पूर्ण रूप से उपेक्षा दिखलाई पड़ती है। सम्भवतः यह धारणा बना ली गयी है कि इतनी ऊँची राजनीतिक ग्रामीणों की समझ के बाहर की बात है।

इन दोषों को यह कहकर स्पष्ट करने की कोशिश करना कि ग्रामीण श्रोता इतना कम बुद्धिमान है कि इतने 'जटिल, प्रश्नों को समझ नहीं सकता, एक थोथी और निराधार दलील सिद्ध होगी। सबसे पहली बात तो यह है कि हमारे ग्रामीण को, जो निश्चय ही पिछड़ा हुआ और निरक्षर है, बुद्धिहीन नहीं समझना चाहिए। और फिर यह कर्त्तव्य हमारा है कि हम ऐसी प्रविधि और ढंग विकसित करें जिसके द्वारा जटिल प्रश्न जो कि राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण हों, सबसे अधिक पिछड़े हुए श्रोताओं की समझ में भी आ जायँ।

अन्ततोगत्वा इन दोषों की जड़ उन कर्मचारियों में मिलेगी जो कार्यक्रम कार्यान्वित करते हैं। कर्मचारियों से हमारा आशय उन कर्मचारियों से नहीं है जो प्रसार-कक्ष में बैठकर कार्यक्रम कार्यान्वित करते हैं, बल्कि उन उच्च स्तर के अधिकारियों से है जो कार्यक्रम अधिकारी या उसके समान पदवाले होते हैं। और, इन कार्यक्रम

अधिकारियों में भी एक निम्नतर स्तर है और दूसरा उच्चतर स्तर। प्रसार की योजना अन्त में उच्चतर स्तर वाले अधिकारी ही तैयार करते हैं, निम्नतर स्तरवाले अधिकारी तो केवल उन्हें कार्यान्वित करते हैं।

इस प्रकार, कर्मचारियों की समस्या सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। किन्तु उस व्यक्ति की अनिवार्य विशेषताएँ क्या होनी चाहिएँ जो रेडियो कार्यक्रम का आयोजन करता है? यह एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, जो अन्य गुणों के अतिरिक्त, देश-भक्ति की भावना से परिपूर्ण हो, और जिसमें भारत के महान् भाग्य का भाव कूट-कूट कर भरा हो। उसे राजनीतिक दृष्टिकोण से सचेत होना चाहिए। इस प्रकार की चेतना से युक्त होने पर वह हमारी भूमि-सुधार योजनाओं और ग्राम-पंचाततों के महत्व को अधिक अच्छी तरह समझ सकेगा। इस उच्चतर कार्यक्रम-अधिकारियों का ज्ञान जितना ही गहरा होगा, हमारे रेडियो कार्यक्रम उतने ही समृद्ध और सरल होंगे; और उसके फलस्वरूप भारत के तीव्र विकास की महान आवश्यकताओं की दिशा में रेडियो का अंशदान उतना ही अधिक वास्तविक होगा।

इन अधिमानों की कसौटी पर कसने से उच्चतर निर्माताओं में अनेक दृष्टियोंसे अभाव दिखलाई पड़ेंगे। अखिल भारतीय रेडियो ने अचानक विविध प्रकार के कार्यक्रम-निर्माताओं से प्रयोग कराने का निश्चय किया, जिन्हें 'हिन्दी प्रसारित शब्दों के निर्माता' की ऊँची उपाधि से विभूषित किया गया (हमें इस बात का ज्ञान नहीं है कि इस प्रकार के निर्माताओं की व्यवस्था अहिन्दी बोली के शब्दों के लिए भी की गयी है या नहीं)। यह उपाधि हास्यजनक तो है ही—क्योंकि एक साधारण मानव मनुष्य-द्वारा 'उच्चारित शब्द' का निर्माण करने की शक्ति और अधिकार से अपने को युक्त करने की धृष्टता किस प्रकार कर सकता है, जो कि विज्ञान की इन सारी प्रगतियों के बावजूद अभी भी एकमात्र प्रकृति का एकाधिकार बना हुआ है—साथ ही, यह सम्भवतः शोरगुल मचाने वाले हिन्दी साहित्यिक जगत को, जिसका अखिल भारतीय रेडियो द्वारा हिन्दी की उपेक्षा का विरोध अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था, संतुष्ट करने का प्रयत्न था।

चाहे जो भी हो, अन्त में यह एक बहुत ही खेदजनक प्रयोग सिद्ध हुआ। हिन्दी साहित्य-जगत के कुछ महाशय, जिन्हें रेडियो के कार्यक्रम-निर्माण अथवा प्रविधि का शायद ही कुछ ज्ञान रहा हो, रेडियो कैरियर अधिकारी के ऊपर जबर्दस्ती लाद दिये गये—ऐसे रेडियो कैरियर अधिकारी के ऊपर, जिसे कार्यक्रम-निर्माण के ढंग का काफ़ी अनुभव था और जो नवीन भारत की परिस्थितियों के अन्तर्गत सही दिशा में निश्चित रूप से परिवर्तित हो रहा था। इस प्रयत्न का परिणाम यह हुआ कि उसका उत्साह निर्जीव हो गया और उसकी अग्रसर होने की भावना दब गयी। हिन्दी प्रसारित शब्द के 'निर्माता' के रूप में हिन्दी के ऐसे साहित्यकार जो अपनी अवस्था के ४० और ५० वर्ष पार कर गये थे, ला बैठाये गये। उनके सम्बन्ध में एक या दो कविता, कहानी अथवा उपन्यास की पुस्तकें लिख लेना मात्र ही पर्याप्त योग्यता समझी गयी।

यहाँ तक कि 'बीते जमाने वाले' इन लोगों की स्वतंत्रता से पहले वाले वर्षों की राष्ट्रविरोधी कार्रवाइयों पर भी ध्यान नहीं दिया गया। ये लोग अपने रचनात्मक कार्यों की लगभग अन्तिम अवस्था में, जब कि जर्जर और अवस्था के भारी होने के कारण वे नये भारत के परिवर्तनों और प्रेरणाओं से पूर्णतः अनभिज्ञ थे, अपने साथ रेडियो संसार में उन तमाम छुटपन और नीचताओं को लेकर घुस आये, जो कि गत २०-२५ वर्षों के भीतर गतिहीन हिन्दी जगत की प्रमुख विशेषता रही है।

निश्चय ही कुछ सम्मानित अपवादों और महान प्रतिभाओं को छोड़कर हिन्दी साहित्यकारों ने आमतौर पर अपनी प्रतिभा का बहुत ही खोखला प्रदर्शन किया है। इसका एक ज्वलन्त उदाहरण समाधान न हो सकने योग्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन पर आया हुआ वह संकट है जो व्यक्तिगत द्वेषों और अशोभनीय लोलुपता के कारण गत सात वर्षों से इस संस्था को घेरे हुए है। हिन्दी के पुराने और जर्जर पीढ़ी के अन्तर्गत ऐसे साहित्कार आते

हैं, जो आपस की गाली-गलौज में व्यस्त हैं, अपनी प्रशंसा के पुल बाँधते हैं और एक या दो पुस्तकों के आधार पर अपने जीवन-काल में ही अमर हो जाने का प्रयत्न करते हैं—वास्तविकता तो यह है कि वे हिन्दी पत्रिकाओं में प्रेरणामय समीक्षाओं के द्वारा ही अपने को अमर बनाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसी दशा में सचमुच यह बड़ा ही आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि इन्हें रेडियो जगत के लिए उपयुक्त कैसे समझा गया। किसने कहा था कि ५०-५० वर्ष के ये बूढ़े खूसट लोग सरकारी नौकरियों में चुने जायँ और यदि विशेष नियमों या मंत्रालयों की स्वेच्छा के कारण कुछ अपवादों को अनुमति दी जाती है तो इस प्रकार के मामले बार-बार क्यों होते हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि इस दिशा में एक नवीन और स्फूर्तिमय प्रयत्न किया जाय—ऐसा प्रयत्न जो विकासशील भारत के बारे में, जो कि नगरों के अलावा गाँव में विकसित हो रहा है, पर्याप्त चेतना से ओत-प्रोत हो। रेडियो कार्यक्रम अधिकारियों के लिए सबसे अधिक देशभक्ति की आवश्यकता है। 'हिन्दी प्रसारित शब्दों के निर्माताओं' के सम्बन्ध में ऐसे भी उदाहरण मिले हैं, जब भारत के स्वतंत्रता संग्राम में प्राणों की बाज़ी लगा देनेवाले भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद जैसे वीर शहीदों के पावन नामों का निरीह सन्दर्भ भी कार्यक्रमवाली पाण्डुलिपियों में से काटकर निकाल दिये गये। ये निर्माता इतनी गम्भीर धृष्टता भी बिना किसी दण्ड के भय के ही कर सकते हैं!

उनकी खोखली दलील यह थी कि वे अपनी 'नौकरी' कायम रखना चाहते हैं और उसे खोना नहीं चाहते। यह है उनकी देशभक्ति की भावना और शहीदों के प्रति उनका सम्मान! हम ऐसी कृति को लज्जाजनक और कलंक समझते हैं। जिस समय ये साहित्यकार लोग अपने लिए रोजगार पाने की कोशिश कर रहे थे, उस समय इन पावन शहीदों ने शूली पर चढ़ जाने का फैसला किया था। उनके सम्बन्ध में हम कम-से-कम जो कुछ कर सकते हैं, वह यह है कि हम उनकी स्मृति का सम्मान करें, और भारत सरकार कम-से-कम जो कुछ कर सकती है, वह यह है कि वह इस तरह के निष्क्रिय बुद्धिवालों को तत्काल नौकरी से निकाल फेंके। इनमें से कुछ तो 'जी हुजूर' कोटि के हैं, जो कि पुराने समय में गिने जाते थे। ये लोग सबसे ऊँचे अधिकारियों को लगातार सलामी बजाकर, भेंट-मुलाकात करके और चापलूसी-द्वारा अपने को रखवाने की कला में सिद्धहस्त हैं, और इन अभ्यासों के जरिये अपने को दृढ़ स्थिति में समझकर महान अखिल भारतीय रेडियो की एकरूपता और अद्वितीय विनम्रता की परम्पराओं को चुनौती देते हुए भी अपने पदों पर विश्वास के साथ बने हुए हैं।

इस तर्क को आगे बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। यह बिलकुल स्पष्ट बात है कि इन ४० और ५० वर्षों के गतिहीन 'हिन्दी प्रसारित शब्द के निर्माताओं' के साथ किया गया यह प्रयोग बहुत महंगी असफलता सिद्ध हुआ है। इस दिशा में फिर से गम्भीरतापूर्वक विचार विनिमय की आवश्यकता है। इन लोगों से जितनी जल्दी मुक्ति मिले, उतन ही अखिल भारतीय रेडियो के लिए कल्याणकारी होगा। वस्तुतः रेडियो एक लोक-सम्पर्क-संगठन होता है। रेडियो के अधिकारियों के सम्पर्क-द्वारा ग्राम जनता प्रशासन सम्बन्धी स्थिति के बारे में अपनी राय क़ायम करती है। यहाँ पर स्वस्थ और उर्वर प्रतिभाओं की ज़रूरत है, अन्तर्मुखी, गुटबाज और 'सिफारिश' और 'नौकरीवालों' की ज़रूरत नहीं। कार्यक्रम निर्माता और अधिकारियों के रूप में रेडियो के तरुण वर्ग ने बूढ़ी श्रेणी के जर्जर लोगों की अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय और बढ़िया उदाहरण पेश किया है।

हम रेडियो कार्यक्रम-निर्माता के राजनीतिक क़िस्म का होने पर पुनः ज़ोर देते हैं। भारत के लक्ष्य समाजवादी समाज के निर्माण के लिए समाजिक एवं राजनीतिक आवश्यकताओं के अनुरूप रेडियो कार्यक्रमों को ढालने के लिए एक "सामाजिक और राजनीतिक विभाग" खोला जाना अपेक्षित है। प्रतिभा की कोई कमी नहीं है। वास्तव में रेडियो-कैरियर अधिकारियों में यह प्रतिभा काफी मात्रा में पायी जाती है। उन्हें उत्साहित किया जाना चाहिये, न कि उन्हें सदा "ऐसा करो" और "ऐसा मत करो" के आदेशों पर आश्रित कर देना चाहिये। उन्हें प्रशिक्षण के कार्यक्रम द्वारा राजनीतिक मामलों में पारंगत करना चाहिये। ('आर्थिक समीक्षा' से)

फूल, बच्चा और जिन्दगी

ऊपर का शीर्षक देवेन्द्र इस्सर की सोलह कहानियों के एक संग्रह का नाम है।

'अपनी बात' में संग्रह के लेखक ने, जैसा कि आजकल बहुत-से लेखक करने लगे हैं, आत्मविज्ञापन किया है। उससे यह ज्ञात होता है कि लेखक ने ये कहानियाँ लिखते समय 'प्रसव-पीड़ा' का अनुभव किया है, 'जिगर का ख़ून' पिया है। और उसका दावा यह भी है कि बिना यह किये कोई महान रचना सम्भव नहीं। मतलब यह हुआ कि इस संग्रह की रचनायें महान हैं!

लेकिन इस संग्रह की कहानियाँ पढ़ने पर ज्ञात होता है कि जैसे हर प्रसव-पीड़ा से महान व्यक्ति जन्म नहीं लेते और जैसे सबसे अधिक जिगर का खून पीनेवाले वर्ग का हर सदस्य महान साहित्यकार नहीं होता, वही हाल यहाँ

यह संग्रह समाप्त करने पर एक बात ज सबसे अधिक उभरकर सामने आती है, वह है मौत और आत्महत्या। ऐसा लगता है कि लेखक मौत और आत्महत्या को कोई बड़ा त्यौहार समझता है, जिसे वह बड़े समारोहपूर्वक अपनी कहानियों में मनाता है। ये मरनेवाले न उसके सगे हैं, न हमारे हो पाते हैं कि एक बूँद आँसू वह गिराये (दावा की बात छोड़िए) या हम। 'जीवन, शून्य और मृत्यु' में नीलिमा बाक़ायदे वेटिंग रूम में एक अपरिचित मुसाफ़िर से मांगकर ब्रांडी की बोतल खाली करती है और सिग्रेट की डिबिया फूँकती है और फिर रेल की पटरी पर लेटकर आत्महत्या करती है। 'आनन्दा' में 'अबनार्मल' आनन्दा सस्ते सिग्रेट पीकर, घटिया रेस्तराँओं में चाय के प्याले खाली कर और बिजली की ज़हर उगलती रोशनी में मोटी-मोटी पुस्तकें पढ़ने के बाद, नर्स की आँखों में एक कविता की रचना होते देख करवट बदलता है और दम तोड़ देता है। 'जेबकतरे' में संगीत महाविद्यालय का प्रिंसिपल उस्ताद मनोहर घोष विद्यालय का अप्रैल मास का हिसाब बनाकर, अपना त्यागपत्र लिखकर, अपनी ज़मानत का रुपया अपने सहयोगी प्रोफेसर योगेन्द्र प्रदीप को देने की हिदायत कर आत्महत्या करता है। 'रोने की आवाज़ में' बेटी बाप के हाथ से ज़हर पीकर मरती है। 'आग' में रमज़ानी की बीवी आग लगाकर अपने को पाक करती है और रमज़ानी अपने भाई की हत्या कर फाँसी की रस्सी चूमता है। 'ब्लैक मैजिक' में मोहन डे 'ब्लैक टी' पी-पीकर मरता है। 'चाँदनी रात की व्यथा' में चित्रकार राजेन प्रेम कर-करके दिक पालता है और अन्त में वह 'बाबा' अपनी पोषिता लड़की प्रेमकला को ही भींचकर और यह कहकर 'तू जानती है कि प्रेम-पूर्णिता (ऐसा ही लिखा है) के बिना मृत्यु कितनी कठिन है,' प्राण त्यागता है।

इन मरनेवाले आत्महत्याकारियों के गिर्द लेखक ने जो प्रकाश का मंडल बुना है, वह अनायास नहीं है। स्पष्ट है कि लेखक को जीवन, जीने के लिए संघर्ष में कोई आस्था नहीं, वह कुंठा का शिकार है और समझता है कि उसी की तरह सब लोग अपनी मुक्ति आत्महत्या में देखते हैं और उसी के लिए सदा प्रयत्न करते हैं, और जब वह समय आता है, तो ढोल बजा-बजाकर, 'दार्शनिकों' की तरह यह दुखों, असफलताओं, अतृप्तियों-भरा, जीने तथा प्रेम के अयोग्य, संसार छोड़ जाते हैं! इन कहानियों में आयी बड़ी-बड़ी बातें, लच्छेदार वाक्य, कवितायें, कुछ अपनी, कुछ दूसरों की, भी इस सच्चाई को ढँक नहीं पातीं।

शेष नौ कहानियों में उल्लेखनीय दो कहानियाँ हैं। 'बाज़ाब्ता कार्रवाई' में पुलीस की धाँधली और कार्रवाई

पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। 'कोई भी एक आदमी' इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानी कही जा सकती है। कविता, बड़ी बड़ी बातों और लच्छेदार वाक्यों से रहित यह कहानी बहुत अच्छी, चुस्त और चुटीली बन पड़ी है। इसमें आयी नाटकीयता कहानी के रंग को और भी गहरा करती है। आदमी अपने मरणासन्न बच्चे को बचाने के लिए मानवीय प्रयत्न तो करता है।

एक बात और, इस संग्रह की कहानियों की शैली देखकर, मन में उठती है। लेखक कदाचित कृशन चन्दर की शैली से बहुत अधिक प्रभावित है। उसी की तरह यह भी कल्पना की उड़ान लेना चाहता है। लेकिन उसके पास कृशन चन्दर की अद्भुत कल्पना, विराट वासना, साफ़ जीवन-दर्शन, मनुष्य, जीवन और बेहतरी के लिए संघर्ष में अटूट आस्था और सबके ऊपर गहरी मानवीयता और भाषा पर ज़बर्दस्त अधिकार का नितान्त अभाव है।

प्रूफ़ की अनगिनत ग़लतियों को छोड़कर ज़रा इन शब्दों पर ध्यान दें: अन्तरदायत्वि, कोटाम्बिक, पीत्यां, घोंसों, डिब्बिया, निरविकार, थिरॅक, नृत्यमुदरा, पैत्रिक, कलमोही, स्त्रीयाँ, प्रसताव, भावुक्ताहीन, अलाओ, सृष्टी, आदि-आदि।

—भैरव प्रसाद गुप्त

(क्लब का शेष)

रामसेवक श्रीवास्तव (गोरखपुर)

अगस्त-अंक की दस कहानियों में चार कहानियाँ तो निश्चय ही प्रथम श्रेणी की हैं। हिन्दी कहानियों में 'धारा और जाल' 'कौवा' और 'डायनासर' का दिमाग अपेक्षाकृत अच्छी लगीं। पहली की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति, उसकी सरल प्रौढ़ता और संतुलन, दूसरी की ईमानदारी और तीसरी का व्यंग्य अपने-अपने स्थान पर सराहनीय हैं। 'शक्कर की पुतलियों' की पूर्व निश्चित बेबसी, और डायनासरों की सभ्य बेहयाई अभी भी वैसी ही है, लेकिन बात बहुत पुरानी हो चली है और प्रबोध कुमार बिल्कुल नये हैं, इसीलिए 'हिट' जितनी तगड़ी चाहिए थी, लगी नहीं। ये मन्टो, कृष्णचन्द्र और अमृतराय की कहानियों को इस दृष्टि से पढ़ जायें, तो अच्छा रहे। विद्यासागर के कहानीकार की क्षिप्रगामी गति उन्हें निश्चय ही आनेवाले दशक में काफी ऊँचाई पर पहुँचा देगी।

अनूदित कहानियों में आपकी सुरुचि तथा स्वस्थ दृष्टिकोण सहधर्मियों के अनुकरण की वस्तु है। हाँ, यहाँ पर दो बातें बुरी तरह खटकती हैं। 'कहानी' में प्रकाशित अधिकांश उर्दू कहानियों के अनुवादक हुनर साहब हैं। गौर करने पर पता चलता है कि अनुवाद के नाम पर वह केवल लिपि-परिवर्तन करते हैं। जुलाई अंक में प्रकाशित 'गुड्डा और गुड़िया' और अगस्त अंक के 'परमेश्वर सिंह' में तो बिल्कुल यही किया गया है। उपर्युक्त कहानियों में इस्मत आपा तथा कासिमी द्वारा प्रयुक्त उर्दू के कुछ शब्द इतने दुरूह और जटिल हैं कि उन्हें पचा पाना हिन्दी के बस की बात नहीं। अनुवाद का यह अर्थ कदापि नहीं होता, अगर होता है, तो यह हिन्दी के साथ अन्याय है। प्रेमचन्द भी तो उर्दू से ही आये थे हिन्दी में, लेकिन कोई है, जो उनकी कृतियों में इस प्रकार की आपत्ति का कोई स्थल दिखाने का साहस करे?

दूसरी आपत्ति है अनूदित कहानियों के स्थान-निर्धारण को लेकर। 'कहानी' हिन्दी की पत्रिका है, अतः हिन्दी का उसपर अधिक अधिकार है। 'कहानी' के पिछले अंकों को देखने पर लगा है, कि अंक की पहली कहानी का स्थान, किसी दूसरी भाषा की कहानी को ही मिलता है। कभी उर्दू को, कभी बंगला को, कभी किसी और को। क्या हिन्दी कहानियों में वह विशेषता नहीं है? अगर यह स्थान-निर्धारण, कहानियों की तुलनात्मक विशिष्टता को दृष्टि में रखकर किया जाता है, तो कोई कारण नहीं कि मोपासाँ, गोर्की या हक्सले पहले पृष्ठ पर न आयें।

ये दोनों आपत्तियाँ विचारणीय हैं और मुझे विश्वास है कि इन्हें प्रकाश में लाकर, दूसरे पाठकों को भी कुछ कहने का अवसर देकर उनकी राय जानने की चेष्टा की जायगी। धन्यवाद।

स कहानी का नामकरण करने में गलती हो गई है। आखीर तक जिन लोगों में पढ़ने का धैर्य है, वे इस बात को समझ सकेंगे। और जो लोग धैर्य नहीं रख सकते, उन्हें पहले ही से बता दूँ, कि इस कहानी का शीर्षक 'स्त्रियाश्च-चरित्रं' अथवा 'पुरुषस्य भाग्यम्' अथवा 'दैवो न जानाति' जैसा होना चाहिए था। बम्बइया फ़िल्म की तरह सुनाई पड़ रहा है? पर भला बताइये मैं करूँ क्या?

खैर, इन सब बातों में मैं आप लोगों का समय बर्बाद नहीं करना चाहता। इसके बदले एक महान् घटना का उल्लेख करना अधिक आवश्यक समझता हूँ। वह यह है, कि सुनीला उर्फ़ बिल्लू की उम्र इस समय महज़ सतरह वर्ष की है। उसकी तरह शैतान, चंचल, हृदयहीन युवती आज तक मैंने नहीं देखी। अनुरूप को वह...

इसी बिलू की उम्र जब केवल आठ वर्ष के लगभग थी, एक प्रकार से उसके विवाह का कच्चा सम्बन्ध स्थापित हो गया था। अकसर बच्चों के माता-पिता हँसी-मजाक में इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करते हैं, लेकिन वह आगे चलकर अधिकतर टूट जाता है। बिलू के पिता प्रथम श्रेणी के डिप्टी मैजिस्ट्रेट बन कर, बिहारी बाबू के शहर में बदल कर आये। उनके ज्येष्ठ पुत्र पंदरह वर्षीय विजयलाल के साथ स्थानीय बड़े वकील निमाई बाबू के पुत्र अनुरूप चन्द्र की गहरी दोस्ती हो गई। इसी सूत्र के आधार पर अनुरूप नित्य बिलू के यहाँ आता-जाता था। मित्रता इतनी गहरी हो गई थी, कि स्कूल में और स्कूल के बाहर दोनों साथ-साथ रहा करते थे। अगर विजय को लोग घर पर न देखते, तो समझ जाते, कि अनुरूप के यहाँ गया होगा, और अगर अनुरूप को घर पर न देखते, तो समझ लेते कि वह विजय के घर पर होगा।

हूँ, पाठक यही बात सोच रहे होंगे। लेकिन यह बिलकुल ग़लत है। बात ठीक इसके विपरीत थी। मित्र-भगिनी के अत्याचारों के कारण अनुरूप का जीवन दुर्वह हो उठा था। पतले मुँह के ऊपर बड़ी-बड़ी काली आँखें, लाल-लाल अधर वाली बिलू को देखकर यह कोई अनुमान नहीं कर सकता था, कि इस आठ वर्ष की लड़की में इतनी दुष्ट बुद्धि है, कि बड़े-बड़े वयस्क वृद्ध तक उसके आगे हार मान जायँ। कभी-कभी अनुरूप उद्भ्रान्त हो कर सोचता, कि परेशान करने के ये अजीब ढंग यह लड़की कहाँ से सीखती है? वह महज इसलिए चुप रह जाता, कि दोस्त की बहन है, वर्ना...

काल्पनिक प्रतिहिंसा के भाव में पड़ कर, वह अकसर दाँत किटकिटा कर शान्त हो जाता।

प्रथम दिन जब वह मित्र के आग्रह पर उसके घर

गया, तो उसी दिन घबरा गया। बड़ी-बड़ी आँखों से कुछ देर तक निरीक्षण करने के पश्चात्, वह बोली—"तुम भइया के दोस्त हो? दादा को सब जगह तुम्हारी तरह एक-न-एक दोस्त मिल ही जाता है। क्या नाम है तुम्हारा?"

अनुरूप ने किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सा हो कर, अपने घर का नाम बता दिया।

नाम सुन कर, बिलू ने नाक सिकोड़ते हुए कहा—"नाकू? राम, राम! कितना गन्दा नाम है। मेरा नाम बिलू है, और इस से बढ़िया नाम है सुनीला। तुम्हारे बाल आलपीन की तरह खड़े-खड़े क्यों हैं?"

प्रश्नों का उत्तर देरी में देते देख कर, बिलू ने प्रसंग बदलते हुए, कहा—"तुम अपने कानों को खड़ा कर सकते हो? इतने बड़े-बड़े कानों को हिला-डुला नहीं सकते? जरूर हिला सकोगे। जरा हिलाओ न।" कह कर, बड़ी अदा के साथ वह खड़ी हो गई।

अनुरूप कान तो हिला नहीं सका, लेकिन लज्जा ने उसे इतना गर्म कर दिया, कि दोनों कान जवाकुसुम के फूलों की भांति लाल हो उठे।

इसी प्रकार के उत्पीड़न और अत्याचार बिलू के अनुरूप के प्रति बढ़ते गये। उन घटनाओं का उल्लेख कर मैं कहानी को बढ़ाना नहीं चाहता। महज दो-तीन घटनाओं का उल्लेख कर, यवनिका खींच दूंगा।

विजय और अनुरूप दोनों को फोटो खिंचवाने का शौक चर्राया, और फोटो खिंचवाया भी गया। उन फोटो को टेबिल पर अत्यन्त यत्न के साथ विजय ने सजाकर रख दिया। एक दिन स्कूल से लौट कर, उसने देखा, कि अनुरूप की गर्दन गायब है, और उसकी जगह पर हनुमान जी की गर्दन काट कर लगा दी गयी है। यह किसका काम है, यह बात समझने में उसे देर न लगी। अपने मित्र के चित्र का इस कदर अपमान होते देख, वह अत्यन्त क्रोधित हो उठा। बिलू की चोटी कसके पकड़ कर, वह उसे चित्र के पास घसीट लाया, और गर्जन के साथ पूछा—"यह क्या किया तू ने?"

बिलू ने गर्दन घुमा कर, कहा—"मैं नहीं जानती।"

"नहीं जानती? राक्षसी कहीं की! निकाल कहाँ, रखा है उसका सिर?"

"मैं नहीं जानती।...असली सर तो उसमें लगा ही हुआ है।"—कह कर, बिलू खिलखिला कर हँस पड़ी।

इसी एक छोटी-सी घटना से पाठकों को यह जानकारी हो गई होगी, कि बिलू कितनी शैतान लड़की थी।

विजय ने अत्यधिक क्रोध के साथ कहा—"असली सिर जल्दी दे, वर्ना ठीक न होगा।"

"नहीं देती! चलो!"

ठीक इसी समय अनुरूप वहाँ आ पहुँचा। अपने चित्र की यह दुर्दशा देख कर, वह मर्माहत हो उठा। फिर दोनों मित्र मिलकर भी बिलू से चित्र का असली सिर नहीं पा सके। आखिर उस चित्र को फेंक देना पड़ा।

यह कहना फ़िज़ूल होगा, कि वह सिर आज तक नहीं मिला। पाठक प्रश्न करेंगे, कि 'आखिर उस सिर को लेकर बिलू क्या करेगी?' इस प्रश्न का उत्तर यही है, कि आप ही खोज कीजिये।

दूसरी घटना एक दिन सुबह के समय हुई थी। अनुरूप विजय के पढ़ने वाले कमरे में बैठकर गणित के प्रश्न कर रहा था। ठीक इसी समय पीछे की ओर से आ कर, बिलू अपनी बाँहों से उसके गले को पकड़ कर, कोमल स्वर में बोल उठी—"नाकू भइया!"

उसके आलिंगन से अपने को मुक्त करते हुए, अनुरूप ने कहा—"क्या है?"

अपने प्रफुल्ल नेत्रों से उसकी ओर देखती हुई, बिलू बोली—"मुझे कुछ फूल तोड़ दो, भइया!"

स्निग्ध भाव से अनुरूप ने कहा—"कौन-से फूल?"

"चम्पा के फूल। फाटक के पास जो पेड़ है न, उसी से तोड़ दो। मैं अपने शिव जी की पूजा करूँगी।"

"मैं अभी नहीं जा सकता। सवाल लगा रहा हूँ। तू माली से कहकर तोड़वा ले।"

"माली नहीं तोड़ता। चले चलो, नाकू भइया! मेरे अच्छे भइया! तुम तो पेड़ पर बड़ी जल्दी चढ़ जाते हो।"

अनुरूप का सन्देह इस सफाई से नहीं मिटा। और प्रतिवाद करने की शक्ति उसमें नहीं थी। कहा—"अच्छा, चलो।"

पेड़ के नीचे आ कर, उसने शंकित दृष्टि से चारों तरफ देखा, कि किसी प्रकार षड्यन्त्र तो नहीं किया गया है। इसके बाद वह पेड़ पर चढ़ने लगा।

बिलू ने तर्जनी अँगुली से पेड़ के शीर्ष स्थान की ओर इशारा करते हुए, कहा—"एकदम ऊपर, वहाँ पर बहुत-से फूल हैं, नाकू भइया। जरा और ऊपर बढ़ जाओ।"

पेड़ के एकदम ऊपर जा कर, अनुरूप समझ पाया, कि वास्तविक षड्यन्त्र का स्थान कहाँ पर है। एक भयंकर

चीख के बाद, वह धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा। नीचे आ कर, उसने कहा—"ठहर बन्दरी! आज तुझे मैं तमाशा दिखाता हूँ।"

बिलू तुरन्त जोर से हँसती हुई, मकान के भीतर तेजी से भाग गई।

अनुरूप बिलू का पीछा छोड़ कर, पेड़-तले बैठ कर, अपना सारा बदन खुजलाने लगा। कारण पेड़ पर अड्डा जमाये लाल-लाल माटे उसे बुरी तरह काटे खा रहे थे। झट उसने अपनी कमीज उतार कर फेंक दी। फिर भी परित्राण न पा सका। दौड़कर पानी की टंकी में जा कूद कर, तेजी से बदन खुजलाने लगा।"

थोड़ी देर बाद विजय ने आ कर, उसे टंकी से निकाल कर देखा, कि उसका सारा बदन फूल कर लाल हो गया है। दूसरे कपड़े पहनते हुए, रो कर, अनुरूप ने कहा—"अब तुम्हारे घर कभी न आऊँगा, विजय! कम-से-कम जब तक बिलू..." कह कर, वह तेजी से घर से बाहर निकल गया।

बिलू ने क्या बदमाशी की है, थोड़ी देर में घर के सभी लोग जान गये।

उसने सभी अभियोगों को अस्वीकार करते हुए, कहा—"मुझे क्या मालूम था, कि पेड़ पर लाल माटे हैं?"

लेकिन उसकी इस बात को माली ने असत्य क़रार देते हुए कहा कि बिलू ने पहले उस से ही पेड़ पर चढ़ कर चम्पा के फूल तोड़ देने के लिए कहा था। और उसने बिलू के इस अनुरोध को अस्वीकार करते हुए कह दिया था, कि पेड़ पर माटे हैं, इसलिए वह न चढ़ेगा।

फल-स्वरूप बिलू ने माँ से गालियाँ और भाई विजय से कई घूँसे खाये।

बिलू रात को अपनी विवाहिता बहन के पास सोया करती है। उसी रात को अनिला ने कहा—"तू नाकू के साथ इतना बदमाशी क्यों करती है? उसके साथ तेरे विवाह की बात चल रही है, जानती है? विवाह के बाद जब वह तुझ से बदला लेगा, तो क्या करेगी?"

बिलू ने घृणा के साथ अपनी नाक दबाते हुए, कहा—"राम, राम! मैं भला उस से विवाह करूँगी? खरगोश की तरह जिसके कान हैं, आलपीन की तरह कड़े-कड़े बाल हैं, ऐसा दुल्हा मैं नहीं चाहती।"

"नहीं चाहती, कहने से कुछ होगा? उस से विवाह करना ही होगा तुझे, वर्ना तेरी बदमाशी बन्द न होगी। वह हर साल क्लास में 'फर्स्ट' होता है, जानती है?"

"होने दो! मैं इतने छोटे लड़के से विवाह न करूँगी।"

"तू तो बात भी नहीं समझती। अभी थोड़े ही तेरा विवाह होने जा रहा है। जब तुम दोनों बड़े हो जाओगे, तब होगा।"

बिलू ने दृढ़ भाव से सर हिला कर, कहा—"मैं बड़ी होकर भी उस से शादी नहीं करूँगी। उस तरह का दूल्हा मुझे पसन्द नहीं।"

बिलू बुजुर्गों की तरह बात करना जानती है, यह बात सभी जानते थे। अनीला ने पुनः पूछा—"फिर किस प्रकार का दूल्हा तू पसन्द करेगी?"

बिलू ने तुरन्त जवाब दिया—"क्यों, जीजा जी की तरह का। उन्हीं की तरह लंबा, सुन्दर और आँखों पर चश्मा पहनने वाला..."

उसकी पीठ पर एक चपत मारते हुए, अनीला ने कहा—"ओ! जीजा जी तेरे मन में बहुत बस गये हैं? अच्छा, ठहर, मैं उन्हें पत्र लिख देती हूँ। वे तुझे आकर ले जायँगे। तू उन्हीं के पास जा कर रह। मैं यहीं रह जाऊँगी। सौत के साथ मैं गृहस्थी नहीं चला सकती। फिर ऐसी-वैसी सौत नहीं, तेरी तरह की सौत! बाप रे!"

यद्यपि दोनों बहिनें आपस में मजाक कर रही थीं, लेकिन बात किसी हद तक सही भी थी, कारण कि आज-कल की पुत्रवती माँ लड़की देखते ही उसकी ओर आकृष्ट हो जाती हैं, और चाहती हैं कि 'काश, यह मेरी पुत्रवधू होती!' अनुरूप की माँ के हृदय में भी इसी प्रकार की बात बैठ गई थी। जब दोनों गृहणियों में काफ़ी गहरी घनिष्टता पैदा हो गई, तो एक दिन अनुरूप की माँ ने बिलू से कहा—"बिलू की तरह अगर कोई लड़की पाती, तो मैं उसे अपने घर की मालकिन..."

बिलू की माँ ने कहा—"बिलू की तरह की क्यों, बहन, बिलू को ही क्यों नहीं अपना लेतीं?"

उसी दिन से दोनों गृहणियों में समधिन का सम्बन्ध स्थापित हो गया। यद्यपि गृह-स्वामियों ने एक दिन आपस में हँसी करते हुए कहा था, कि "अभी से शादी तय हो गई। लड़की की उम्र आठ वर्ष की है, और लड़के की सोलह वर्ष की, और शादी पक्की हो गई। अरे भाई, दोनों को बड़े तो होने दो। देखा जायगा बाद में। इसीलिये तो कहा गया है, कि औरतें..."

अनुरूप ने भी मजाक के तौर पर भाभी से इस बात को सुना था। प्रत्युत्तर में उसने केवल "हूँ" कहा था। बिलू से विवाह करने के बजाय तो एक हजार बर्रें, चीटियों, मच्छरों और मक्खियों से विवाह कर लेना अधिक बुद्धि-

मानी का कार्य होगा। यद्यपि उसने यह बात किसी से नहीं कही लेकिन उसके मन का भाव सभी समझ गये।

इसके बाद न जाने किस कारण बिहारी बाबू की बदली दूसरे शहर में हो गई। विजय और अनुरूप में कुछ दिनों तक पत्रों का आदान-प्रदान होता रहा। लेकिन दूर की मित्रता क्रमशः अनुराग की कमी के कारण शिथिल होती गयी। क्रमशः वे एक-दूसरे को भूल गये। यह आज से दस वर्ष की बात है।

इन दस वर्षों के अन्तर्गत अनेक परिवर्तन हो गये। जो किशोर थे, वे आज युवक हो गये हैं। अनेक वृद्ध स्वर्ग-नरक-गामी हो गये हैं। उन से अधिक बच्चे पैदा हो गये हैं। इसके अलावा अनेक परिवर्तन संसार में हो गये हैं, जिनका कोई लेखा-जोखा नहीं है।

बिहारी बाबू जिला मैजिस्ट्रेट बन कर, पुनः उस शहर में लौट आये हैं। वकालत पास करने के बाद अनुरूप विलायत पढ़ने के लिए गया था। वहाँ की शिक्षा पूरी कर, रेलवे में एक उच्च पद पर नियुक्त हो कर, स्वदेश लौट आया है। फिलहाल मकान पर ही है। एक महीने के बाद टुंडला नौकरी पर जायगा। उसके सिर के बाल अभी तक आलपीन की तरह कड़े हैं, लेकिन पहले की तरह नहीं। उसके कान वय-क्रम के अनुपात से अब आगे नहीं बढ़े हैं। उधर बिलू की उम्र सतरह वर्ष के लगभग हो गई है। वह बड़ी हृदयहीना युवती है, शैतान और चपल।

सब से अधिक परिवर्तन हुआ है बिहारी बाबू के पारिवारिक जीवन में। जब तक वे डिप्टी मैजिस्ट्रेट रहे, तब तक साधारण गृहस्थ की तरह जीवन-यापन करते रहे; लेकिन जिला मैजिस्ट्रेट होने के बाद से पूर्ण रूप से आप साहब बन गये हैं। पहले सिर्फ आफ़िस-रूम ही था, अब ड्राइंग-रूम भी बन गयी है। मैथिल रसोइये की जगह बावर्ची नियुक्त है। टेबिल पर बैठ कर सभी खाना खाते हैं। अब जिला मैजिस्ट्रेट की पत्नी जब बाहर टहलने के लिए निकलती हैं, तो बनारसी साड़ी और ऊँची एड़ी वाला जूता पहनती हैं। पर्दे की प्रथा को तिलांजलि दे दी गयी है। बिलू मैट्रिक पास कर के अब ब्रिज और टेनिस खेलती है। विजय एक ब्रह्मसमाजी लड़की से विवाह कर, बाप से अलग हो कर, स्वतंत्र रूप से पुरुलिया में वकालत कर रहा है। छुट्टी के दिनों में दो-चार दिनों के लिए पिता के पास आता है, और चला जाता है।

अनुरूप के विलायत से लौटने के पाँच-छः दिन बाद उसकी माँ ने उससे कहा—"बिहारी बाबू की याद है तुझे, बेटा? अरे, तेरे मित्र विजय के बाबू जी। आज-कल यहाँ जिला मैजिस्ट्रेट होकर आये हैं।"

तीन वर्ष के पश्चात् घर लौटने के कारण, वह पड़ोस तथा शहर की अन्य घटनाओं से अनभिज्ञ है। माँ की जबानी यह बात सुन कर, उसने कौतूहल के साथ पूछा—"सच? कितने दिन हुए उन्हें आये?"

"दो महीने के करीब हुए।"

"तुम लोगों से मुलाकात हुई थी?"

"हाँ, एक दिन मैं गई थी। आज-कल वे लोग पूरे तौर से साहब बन गये हैं, फिर भी मेरे सत्कार में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं की। अभी तक वे हम लोगों को भूले नहीं हैं। एक बार जाकर उन लोगों से मुलाकात कर आना।"

"अच्छी बात है, जाऊँगा। विजय का क्या हाल-चाल है? है यहीं पर न?"

"नहीं, वह पुरुलिया में वकालत कर रहा है।"

अनुरूप ने हँस कर, कहा—"और बिलू? उसकी तो शायद शादी हो गई होगी?"

"कहाँ हुई? अभी शायद उसका विवाह वे लोग न करेंगे। उसकी उम्र इस समय महज सतरह साल की है।"—कहकर, माँ हँस पड़ीं। . . .

उसी दिन शाम को अनुरूप जिला मैजिस्टेट साहब के बँगले पर उनसे मुलाकात करने गया। बँगले के सामने बाग में बैठे, सभी व्यक्ति चाय पी रहे थे। अनुरूप वहाँ जा कर, हाथ उठा कर नमस्ते कर के, खड़ा हो गया।

बिहारी बाबू आराम-कुर्सी पर लेटे हुए थे। चकित भाव से तिर्छी नजर कर के, उन्होंने अनुरूप की ओर देखा। गृहिणी एक अपरिचित व्यक्ति को सामने देख कर, आँचल ठीक करने लगीं। बिलू क्षण भर आँखें फाड़ कर, उसकी ओर देखने के बाद, जोर से हँसती हुई बोल उठी—"नाकू भइया! माँ तुम नहीं पहचान सकी? भइया के मित्र नाकू भइया हैं। भूल गईं?" कह कर, वह उसी पुराने भाव से मुस्करा उठी।

"अरे, हाँ, ठीक है, ठीक है। मैं पहचान ही न सकी। बहुत दिन बाद देखा है न। आओ, बेटा! अभी उस दिन विजय तुम्हारे विषय में कह रहा था. . ."

"'बाई गॉड', यंगमैन, यु हैव ग्रोन आउट आफ़ रिकाग-निशन! वेल, वेल! वेरी ग्लैड टु सी यु। सिट डाउन! सिट डाउन!' (भई, वाह! तुम ने तो ऐसे हाथ-पाँव निकाले हैं, कि पहचाने ही नहीं जाते! तुम से मिल कर बड़ी खुशी हुई! बैठो, बैठो)!"—मैजिस्ट्रेट साहब बोले।
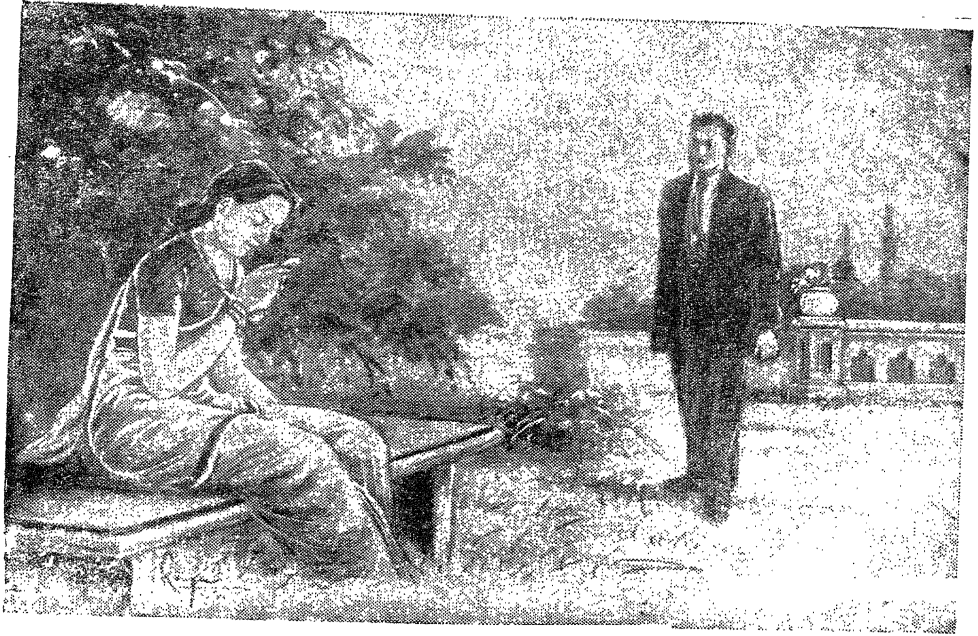
अनुरूप एक कुर्सी खींच कर, बैठ गया।

बिलू एक प्याला चाय बना कर, उसकी ओर बढ़ाती हुई, बोल उठी—"नाकू भइया, लो, चाय पियो।" उसके ओंठों पर अभी तक मुस्कान खेल रही थी।

अनुरूप ने सोचा, कि यहाँ आकर अवश्य उसने कोई भद्दी भूल की है। वह अपने ऊपर नियंत्रण कर के, बैठा रहा।

नाना प्रकार की बातें चलने लगीं—अनुरूप ने विलायत जा कर क्या-क्या पढ़ा, कहाँ नौकरी करने की इच्छा है, बिहारी बाबू कितने दिनों से मैजिस्ट्रेट हुए हैं, किन-किन जिलों का दौरा कर चुके हैं, और अब क्या विचार है। इन सब बातों में लिप्त रह कर भी, वह छिपा कर एकाध बार बिलू को देख लेता था। जब-जब उसने बिलू की ओर देखा, तब-तब देखा कि बिलू उसकी ओर देख कर मुस्करा रही है। मानो वह कोई हास्योत्पादक जीव है, जिसे देख कर बिना हँसे रहा नहीं जाता।

अनुरूप इससे मन-ही-मन चिढ़कर उठ ही रहा था, कि सहसा बिलू बोल उठी—"माँ, देख रही हो न, अब नाकू भइया के बाल पहले की तरह खड़े नहीं हैं, कुछ नरम हो गये हैं? क्यों, नाकू भइया, अब भी तुम पहले की तरह भोंदू हो, या बुद्धिमान बन गये हो?"

अनुरूप ने जबरन मुस्कराते हुए, कहा—"कौन जाने? तुम्हें कैसा लगता हूँ?"

"अभी कैसे कह सकती हूँ? दो-एक-दिन देख लूँ, तब बताऊँगी।"

"तू चुप रह, बिलू! मैं क्या कह रही थी? भूल गई!"—गृहिणी ने कहा।

दो घंटे के पश्चात् जब अनुरूप पुनः घर जाने के लिए उठ खड़ा हुआ, तो बिलू ओंठों में मुस्कराती हुई, बोली—"नाकू भइया! कल आओगे न?"

अनुरूप ने क्षण भर उसकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा। वह यह समझ लेना चाहता था, कि बिलू के इस कथन के अन्तर्गत कोई रहस्य या षड्यन्त्र है या नहीं। इसके बाद कहा—"जरूर आऊँगा। जब तक यहाँ हूँ, तब तक तो आऊँगा ही।"

घर लौटते समय राह में अनुरूप सोचने लगा, 'बिलू

का मेरे प्रति कैसा भाव है ? विद्रूप ? उपहास ? अवहेलना ?'

सबसे अधिक उसे पीड़ा दे रहा था बिलू का बार-बार "नाकू भइया" कह कर सम्बोधन करना। बचपन के दिनों में उसका यह नाम अवश्य था, परन्तु अब श्रुति-सुखकर नहीं रह गया है। पर इससे क्या वह उपहास के ही योग्य है ? लड़कियाँ जरा पढ़-लिख क्या लेती हैं, सोचती हैं कि उन से कोई वार्तालाप तक नहीं कर सकता।

लेकिन बिलू इन दस वर्षों में असीम सुन्दरी हो गई है। उसकी ओर अधिक देर तक देखने का साहस नहीं होता, हालाँकि वह उसे घूँसा-थप्पड़ मार चुका, कान उमेठ चुका है, और तरह-तरह की गालियाँ दे चुका है।

पाठक शायद बिलू के सौन्दर्य का वर्णन पढ़ना चाहते हों। लेकिन, भाई, मैं धर्म-भीरु व्यक्ति हूँ। रूप का अधिक वर्णन करना मेरे बूते के बाहर की बात है। यह ठीक है, कि यौवन के साथ-साथ बिलू काफी सुन्दर हो गई है। और उस पर शिक्षा का रंग चढ़ गया है। गले में हार, हाथों में चूड़ियाँ और कानों में हीरे के कुण्डल पहने रहती है। हार के साथ [illegible]टा-सा लाकेट उसके उभरे स्तनों पर खेला करता है। बस, अधिक न कह सकूँगा। उस दिन बिहारी बाबू और उनकी पत्नी में इस प्रकार बातचीत हुई——

गृहिणी ने कहा——"अनुरूप के साथ अगर बिलू का ब्याह हो जाय, तो अच्छा रहेगा। एक बार पहले भी बात हुई थी।"

"बात तो अच्छी है। वे लोग मेरे पास आ कर प्रस्ताव करें।"

"वे लोग क्यों करेंगे ? हजार हो, वे लोग लड़के वाले हैं। हम लोगों के यहाँ तो यह रिवाज है, कि लड़की वालों को ही दौड़ना पड़ता है।"

"मैं उन लोगों के पास तो, भाई, याचक हो कर नहीं जा सकता।"

गृहिणी समझ गईं, कि यह बात मैजिस्ट्रेट साहब की मर्यादा के विरुद्ध होगी। बोलीं——"अच्छी बात है। दो दिन और आने-जाने दो। स्वयं ही...इंगलैंड-रिटर्न है न।"

"लड़का इंगलैंड रिटर्न हो, तो कोई समस्या ही नहीं रह जाती। इसके अलावा बिलू की पसन्द-नापसन्द जान लेना आवश्यक है। वह कितनी खतरनाक लड़की है, यह तो तुम जानती हो। याद है न, हजारीबाग़ के मुन्सिफ़ के लड़के को तो उसने हँसकर अस्वीकार कर दिया था। गोया उसकी गणना इनसानों में न थी।" कह कर, वे हँसने लगे।

दूसरे दिन शाम को अनुरूप जब उनके बँगले पर आया, तो पता लगा, कि साहब और मेम साहब कहीं घूमने गये हैं। मिस साहबा हैं।

अनुरूप मिस साहबा से भेंट करने के लिए, बाग की ओर चल पड़ा। सामने लोहे के एक बेंच पर वह बैठी हुई थी। वह इतना आगे की ओर झुकी हुई थी, कि लगता था, मानो कोई पुस्तक पढ़ रही है। छँटी हुई घास की लान पर हो कर, वह बिलू के पास जाने लगा। अभी पाँच-सात हाथ पास पहुँचने को बाकी था, कि उसने देखा कि बिलू हाथ में न जाने कौन-सी चीज लिये बारम्बार उसका चुम्बन कर रही है। इसके बाद ज्योंही उसकी निगाह अनुरूप से मिली, वह चौंक कर, उठ खड़ी हुई।

ऐसी अवस्था में पकड़े जाने पर शर्म से गड़ जाना होता है, और पकड़ने वाला व्यक्ति भी कम लज्जा अनुभव नहीं करता। अनुरूप भय से सिकुड़ कर, खड़ा हो गया।

वह लॉकेट को चूम रही थी, जो उसके हाथ की मुट्ठी में था। लॉकेट को ब्लाउज के भीतर रखती हुई बिलू बोल उठी——"एकदम चुपचाप चले आये आप ?" उसके कंठ स्वर में विरक्ति और असन्तोष की छाप थी।

अनुरूप चुपचाप नहीं आया था। लेकिन पैरों के नीचे घास पड़ने के कारण बिलू उसके पद-शब्द को नहीं सुन पाई थी। कैफियत देना व्यर्थ होगा, यह समझ कर वह चुप रह गया।

बिलू ने कहा——"यहीं बैठियेगा, या भीतर ? माँ और पिता जी एक पार्टी में गये हुए हैं।"

अनुरूप ने अत्यन्त कष्ट के साथ कहा——"कहीं भी...यहीं बैठो।"

दोनों बेंच पर बैठ गये। कुछ देर तक आपस में तरह-तरह की बातें होती रहीं। इसके बाद बिलू प्रसन्न हो उठी। उसने पूछा——"क्यों, नाकू भइया, तुम विलायत में महिलाओं से मिलते-जुलते थे कि नहीं ? ..."

"कभी-कभी मिलता था।"

"तुम्हें देख कर वे लोग हँसती नहीं थीं ?"

अपने ओंठों को दबा कर, अनुरूप ने कहा——"हँसती क्यों ?"

"यों ही," कह कर, बिलू पुनः हँस पड़ी।

कुछ देर चुप रहने के पश्चात्, अनुरूप ने कहा——"मेरी शक्ल देख कर तुम्हें हँसी आती है ?"

"हाँ, बहुत," कह कर, अपनी हँसी दबाने के लिए, बिलू ने अपने मुँह से रूमाल लगा लिया।

धीरे से अनुरूप ने पूछा—"क्यों?"

"न जाने क्यों। तुम्हें देखते ही..."

बात पूरी करने के पहले ही, अनुरूप अपने मन को कड़ा कर के, उठ खड़ा हुआ। बोला—"अच्छा, अब मैं जा रहा हूँ।"

मुँह से रूमाल हटा कर, बिलू ने कहा—"बुरा मान गये?"

"नहीं।"

उसके कई कदम आगे बढ़ जाने पर, बिलू ने कहा—"नाकू भइया, तुम्हें ब्रिज खेलना आता है?"

अनुरूप ने रुक कर, उसकी ओर देखते हुए, कहा—"हाँ, साधारण तौर से जानता हूँ।"

बिलू ने कहा—"सभी लोग ऐसा कहते हैं। क्या उन लोगों की तरह तुम भी विनय दिखा रहे हो ? कल शाम को हमारे यहाँ ब्रिज होगा। तीन आदमी मिल गये हैं, एक की कसर है। क्या तुम आ सकोगे?"

उदास भाव से अनुरूप ने कहा—"आ जाऊँगा। लेकिन पहले से ही बताये देता हूँ, मुझे अच्छी तरह खेलना नहीं आता।"...

रात को स्वप्न में अनुरूप ने देखा—बिलू उसका आलिंगन करती हुई, कह रही है, 'नाकू भइया, मुझे कुछ फूल तोड़ दोगे?'

फिर अनुरूप ने देखा—वह आठ बरस की बच्ची नहीं, सतरह वर्ष की युवती है। घबरा कर, वह बिछावन पर उठ बैठा। फिर नींद नहीं आई।

दूसरे दिन संध्या के समय वह बिलू के यहाँ गया। वहाँ दो भद्र पुरुष बैठे थे। दोनों तरुण थे, सुन्दर थे, और डिप्टी मैजिस्ट्रेट थे। एक का नाम था समरेश, और दूसरे का सुधांशु। बिलू ने उन लोगों को अनुरूप का परिचय देते हुए, कहा—"आप हमारे भइया के घनिष्ट मित्रों में से हैं—अनुरूप बाबू। इनका एक और नाम है, जिसे मैं बताना नहीं चाहती।"

अनुरूप ने देखा, कि उन दोनों तरुणों के साथ बिलू का व्यवहार सभ्य ढंग से हो रहा है। उन से न तो मजाक किया जा रहा है, और न उन्हें चिढ़ाया जा रहा है।

ताश खेलते समय अनुरूप को बिलू ने अपना साथी बनाया। खेल मजे से नहीं हुआ। अनुरूप सोच रहा था, 'इन दोनों में किसकी तस्वीर लाकेट में बिलू ने रख छोड़ी है? कौन है वह। सुधांशु या समरेश?'

इस तरह विचार-मग्न मन ले कर ताश नहीं खेला जाता। फल-स्वरूप बिलू ने ताश फेंक कर, कहा—"सचमुच, नाकू भइया, तुम्हें खेलना नहीं आता!"

अनुरूप शर्म से लाल हो उठा। बोला—"मैं तो पहले ही कह चुका था, कि मैं नहीं जानता।"...

रस-शास्त्र के पण्डितों का कथन है, कि करुण रस को लेकर अधिक मजाक़ नहीं करना चाहिए। उसे लेकर झटपट अपना काम सिद्ध कर दूर हटा देना ही बुद्धिमानी का कार्य है। इसलिए मैं भी चट-पट कहानी समाप्त कर देता हूँ।

संक्षेप में यह, कि अग्नि-शिखा के संस्पर्श से फतिंगे के पंख जल गये। वह उड़ नहीं सका, और न यही कह सका, 'अरी, ओ दीप्तिमयी शिखा! मैं तुम्हें चाहता हूँ, तुम मुझे अपनी अग्नि से जला कर राख भले ही कर डालो!'

वह नित्य दीप्तिमयी शिखा के पास आता, और जले हुए पंखों को ले कर वापस चला जाता था।

इसी तरह एक महीना व्यतीत हो गया। अनुरूप के हुँडला जाने का समय आ गया।

जिस दिन वह जाने वाला था, उसके एक दिन पहले रात को बिहारी बाबू के यहाँ उसे विदा-भोज का निमंत्रण दिया गया। चूँकि घरेलू मामला था, इसलिए अनुरूप के सिवाय अन्य कोई व्यक्ति निमंत्रित नहीं था।

तीनों व्यक्ति अलस भाव से डाइनिंग-रूम में भोजन कर रहे थे। अनुरूप को लग रहा था, जैसे इस भोज में कोई उत्साह नहीं है, सब-कुछ कृत्रिम-सा है। भोजनादि के पश्चात् उसने मैजिस्ट्रेट साहब तथा उनकी गृहिणी को नमस्कार करके, उनसे विदा माँगी। उस समय गृहिणी ने कुछ अप्रस्तुत भाव से कहा—"बिलू की तबीयत सुबह से ही कुछ खराब है। शायद ऊपर सो रही होगी।"

"रहने दीजिये। परेशान करने की आवश्यकता नहीं।"

अनुरूप विदा ले कर, बाहर चला आया। चन्द्रहीन रात्रि थी। शायद अमावस्या का दिन था। मकान से सदर गेट सौ गज की दूरी पर था। राह चलते-चलते अनुरूप ने सोचा, इस एक महीने के अर्से में उसने जाने कितना पागलपन किया। बिलू शायद सुधांशु बाबू से प्रेम करती है? कम-से-कम यह जान लेना भी तो आवश्यक था। जिस अनुरूप का उठते-बैठते वह मजाक किया करती थी, वह उसके लिये कुछ कृपालु नहीं, यह भी वह अपने व्यवहार-द्वारा बता चुकी है। फिर भी वह निर्लज्ज की भाँति उसके पीछे लगा रहा। यह कितने सौभाग्य की बात

हैं, कि उसने अपने मन की बात उससे अभी तक प्रगट नहीं किया था, वर्ना वह कितना उपहास करती, पता नहीं।

फाटक खोल कर, ज्यों ही वह बाहर जाने लगा, कि किसी के हाथ के स्पर्श से चौंक कर, बोल उठा—"कौन?"

"नाकू भइया, जा रहे हो?" बिलू का कंठ-स्वर सुनाई पड़ा।

अनुरूप सहसा हँस पड़ा। उसके अन्तर में एक आश्चर्य-जनक परिवर्तन हो गया। इतनी लापरवाही का भाव उसके अन्तर में आज से पहले कभी उदय नहीं हुआ था। जैसे एक भारी बोझ सिर पर से हट गया हो, वह ऐसे बोल उठा—"हाँ, भाई, जा रहा हूँ। कल शाम को ही रवाना हो रहा हूँ। शायद अब तुम से मुलाकात न हो सकेगी। मैंने सोचा था, कि तुम सो रही होंगी।"

"नहीं। इस समय जरा टहलने की आदत है मुझे।"

अब अनुरूप जान सका, कि बिलू फाटक के सहारे खड़ी हो उससे बात कर रही है। अन्धकार के कारण उसके मुख का भाव नहीं देखा जा सका।

बिलू ने फिर कहा—"अब भीतर जाऊँगी। बाहर ठंड पड़ रही है। रात भी हो गई है।.. हाँ, तुम सर्विस कहाँ करने जा रहे हो? कानपुर में?"

अनुरूप हँस पड़ा। "कानपुर तो नहीं, पर उसके पास ही।"

"ओह!"

कुछ देर तक दोनों नीरव रहे।

सहसा अनुरूप ने सन्नाटा तोड़ते हुए, कहा—"मेरे चले जाने के बाद तुम्हें कुछ तकलीफ होगी?"

"तकलीफ़ होगी? क्यों?"—चौंक कर, विस्मय के साथ बिलू ने पूछा।

"मुझ-सा जोकर तुम्हें कहाँ मिलेगा? जिसे देखकर हँस सको, ऐसे व्यक्ति की कमी तो रहती ही होगी। इसलिए सोचता हूँ, कि शायद तुम्हें कष्ट हो।" उसके कंठ-स्वर में ग्लानि का भाव नहीं था।

कुछ देर चुप रहने के पश्चात् बिलू ने कहा—"आज बड़े प्रसन्न दिखाई देते हो?"

"प्रसन्न?" अनुरूप ने आत्मानुसन्धान करते हुए, कहा—"नहीं, ठीक प्रसन्नता की बात तो नहीं है, लेकिन मन जरा हल्का है। काम-धाम कुछ नहीं था, इसलिए कुछ अच्छा नहीं लगता था। शायद इसीलिए..."

बिलू हँस पड़ी। "आज-कल बड़े काम के व्यक्ति बनते जा रहे हो?"

"अभी बना तो नहीं हूँ, लेकिन बनना पड़ेगा।"

"तुम कभी भी काम के लायक नहीं हो सकते।"

"नहीं हो सकता? क्यों?"

"तुम एकदम बेकार आदमी हो!" साथ ही दबी हुई हँसी सुनाई पड़ी।

कुछ देर के बाद एक गंभीर निश्वास छूटा। अनुरूप ने प्रश्न किया—"अब तुम से न जाने कब भेंट होगी। शायद न भी हो। अच्छा, बिलू, एक बात पूछना चाहता हूँ। बुरा न मानो। मैं गुस्से से या अभिमान-वश नहीं पूछ रहा हूँ, बल्कि कौतूहलवश पूछ रहा हूँ। तुम मेरा इतना मजाक़ उड़ाती थीं, व्यंग करती थीं, सो आखिर क्यों? क्या सचमुच मुझ में कोई ऐब था? मैं स्वयं यह प्रश्न अपने से कई बार पूछ चुका हूँ, परन्तु कभी कुछ जान नहीं सका। इसलिए आज जान लेना चाहता हूँ। कौन जाने फिर वही गलती और किसी के सामने कर बैठूँ।"

बिलू जोरों से हँस पड़ी, और चाहा कि इस प्रसंग को हँसी ही में उड़ा दे।

तभी आहत स्वर में अनुरूप ने पुनः कहा—"इसमें हँसने की क्या बात है? सचमुच में जानना चाहता हूँ।"

"चुप भी रहो। मुझसे अब रहा नहीं जाता। तुम्हारी तरह बेवक़ूफ..."

"बेवकूफ? शायद ठीक कहती हो।" इसके बाद एक दीर्घ निश्वास ले, उसने कहा—"अच्छा तब चलता हूँ।"

"जा रहे हो?"

"हाँ।" अनुरूप जाने लगा।

"अच्छी बात है, जाओ।" फिर वही हँसी।

ठीक इसी समय उल्का का प्रकाश हुआ। अन्धकार में एक ओर से दूसरी ओर तक प्रकाश की एक तीव्र रेखा खिंच गई। तभी उस प्रकाश में अनुरूप ने देखा—बिलू की आँखों के आँसुओं से उसका वक्षस्थल, मुँह, सब-कुछ भीग गया है। अभी कुछ देर पहले वह जिसे हँसी समझा था, वह था रोदनोच्छवास। वक्षस्थल पकड़ कर, उस आवेग को वह दबा रही थी।...

फिर वही अन्धकार।

"बिलू!"

"क्या है?" क्षीण स्वर।

(शेष १८वें पृष्ठ पर)

दृष्टि-दोष

द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

पुरोहित गोपालराम डेरे के भीतर क़ालीन पर सो रहे थे। दुपहरिया उतर गई थी और पवन थक कर शिथिल हो गया था। सूरज का गोला बाग़ों के पिछवाड़े जा पहुँचा था कि एक मधुर स्वर-लहरी की झंकार ने पुरोहित जी की नींद खोल दी। धीरे-धीरे पलक उघारे। एक किनारे धीमर बैठा चिलम में तमाखू जमा रहा था, डेरा खाली पड़ा था। गोपाल राम ने संगीत का आनन्द लेते हुये उसी धीमर से पूछा—"यह कौन गा रहा है?"

"रंडी," धीमर चिलम नीचे रख कर बोला।

"रंडी!" पुरोहित जी ने आँखें फाड़कर कहा—"रंडी कहाँ से आ गई?"

धीमर मुसकरा कर बोला—"चन्दनपुर से। चम्पा आई है। बाहर निकल कर देखिये, कित्ता हुजूम है। सारा गाँव जमा हो गया है और बराती भी झूम रहे हैं। एक रात को आई है, पूरे डेढ़ सौ लिये हैं!"

गोपाल राम के माथे पर बल पड़ गये। दृढ़ कण्ठ से पूछा—"सेठ कहाँ हैं?"

धीमर मुसकरा कर बोला—"वे भी मजमे में बैठे हैं।"

"जा, बुला कर ला सेठ को।"—गोपाल राम ने कहा।

तभी बाहर शोर गुल-सा मच गया।...

चम्पा एक भजन गा कर रुकी थी और उसके सुन्दर मुख पर पसीने की बूंदें झलक रही थीं। और चारों ओर से आवाजें आ रहीं थी—"गज़ल हो।" "इस बार गज़ल हो।" "नाच के साथ गज़ल हो।" चम्पा सिर नत किये लाल-मूंगा जैसे ओठों से मुसकरा रही थी। और एक जवान नाई सारी ताक़त लगा कर उसके ऊपर ताड़ का विशाल पंखा झल रहा था और प्रसन्नता से बत्तीसी काढ़े था।

चम्पा ने एक बार अपने चारों ओर नज़र घुमा कर देखा। फिर अपने मीरासी से पूछने लगी—"रूमाल कहाँ गया मेरा?"

तब मीरासी ने भी चारों ओर रूमाल खोजा। पर रूमाल न मिला।

"यह लीजिये रूमाल।"

"यह लीजिये।"

"इससे पसीना पोंछिये।"

"यह लीजिये।"

फर-फर करके चारों ओर से रूमालों की वर्षा हो गई चम्पा के आगे। रंगीन, फूलदार, रेशमी,—सब तरह के रूमाल सामने आ गिरे, तो चम्पा ने हँस कर एक सादा-सा रूमाल उठा लिया।

फिर शोर मचा—"अरे वाह रे लखना!" "लखना का भाग्य देखो!" "वाह रे लखना की तक़दीर!"

वह सादा रूमाल लखना का था। लखना अपनी छोटी-छोटी मोंछें उमेठ कर मुसकराता बोला—"अजी, हमारी तो पुरानी मुलाक़ात है। जलो मत, यारो, जलो मत!"

पर चम्पा ने ध्यान न दिया। रूमाल से पसीना सुखाती रही।

भीड़ के बाहर, एक ओर गाँव के छोकरे जमा थे। उन्हें किसी ने भीतर जाने न दिया था। एक चुलबुला छोकरा साथियों के बीच कमर मटका कर गाने लगा—"मारे डाले पतुरिया की ठनगन रे, हाय ठनगन रे, हाय ठनगन रे!"

चम्पा उठ कर खड़ी हो गई और एक बार धीरे से पैरों के घुंघरू बजाकर देखे, 'छुन्-छुन्' हुई और भीड़ के बीच कोई मस्त छैला चिल्ला उठा—"बोल दे राजा रामचन्द्र की जय!"

"जय!"—सैकड़ों कठों से एक साथ गूंज गया।

चम्पा को हँसी आ गई। मुंह पर हाथ रख कर खांसने लगी। नीचे सारंगी पर धीरे-धीरे गज फिरा, हौले-हौले तबला ठनका और फिर घुंघरुओं की रुनझुन के बीच चम्पा ने मधुर नशीली आवाज़ में गाया—"रोज़ एक क़तल हुआ, ओंठ की लाली न गई..."

तभी अचानक एक तीव्र कर्कश ध्वनि आई—"बन्द करो गाना!" और खट्-से गाना बन्द हो गया और सारी

भीड़ ने एक साथ पीछे को सिर घुमा कर देखा, तो सेठ बनवारी लाल डेरे के आगे खड़े थे। चेहरा तमतमाया हुआ, आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं,क्रोध से देही थर-थर काँप रही थी। सन्नाटा छा गया। सेठ जी ने हाथ उठाकर उसी स्वर में कहा—"बस, खतम करो सब।"
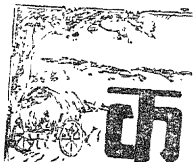
च्ची राह में, गले की घंटियाँ बजाते पछाहीं बैल गाड़ी को तेज़ी से खींचे लिये जा रहे थे। सूरज कब का डूब गया था और शुक्ल पक्ष का धनुषाकार चन्द्रमा अपना क्षीण आलोक लिये गाड़ी के साथ-साथ दौड़ रहा था। धीमी पवन बह रही थी और आगे दूर तक राह सुनसान पड़ी थी।

चम्पा हौले से बोली—"अच्छा ही हुआ। जान बची; नहीं तो सारी रात जागती—सारी रात गाना-बजाना चलता।"

चारों सहचर बारा चलती बेला भांग का, बर्फ़ पड़ा शरबत पीक आये थे। सुरूर चढ़ रहा था। तबलची बोला—"जान बची औ लाखों पाये। घर के बुद्धू घर को आये!"

"बुद्धू काहे को हुए?" मीरासी ने गम्भीरता से कहा—"हमने तो डेढ़ सौ पहिले हो गिनवा लिये थे।"

तीसरे ने सिर पर हाथ फिरा कर कहा—"अब घर चल कर माल सूँतो चाँदनी में; सेठ ने पाँच परोसा और ढाई सेर मिठाई बँधवा दो है। यह धरी है गठरी!"—उसने भोजन की गठरी एक बार टटोल कर देख ली।

चम्पा ने उदास स्वर में पूछा—"पर गोपाल राम पुरोहित को तो मैंने देखा तक नहीं भीड़ में। कौन कहता था, उन्हींने गाना रुकवाया था?"

गाड़ीवान ने फ़ौरन जवाब दिया—"हाँ, उन्हींने रुकवाया था। सेठ से बोले कि मैं अभी घर लौटा जा रहा हूँ। यहाँ महफ़िल होने लगी, मैं अन्न नहीं रुकूंगा, यहाँ अन्न ग्रहण न करूँगा। तो सेठ ने कहा कि यह नहीं हो सकता। गाने वाले भाड़ में जायँ, गानेवालों के पीछे मैं आपका यों निरादर न होने दूंगा। आप अन्न ग्रहण न करेंगे तो मैं भी ग्रास न उठाऊँगा यहाँ। आप के आगे लेट जाऊँगा, मेरी छाती पर चरण रख कर चले जाइये!"

घड़ी भर किसी ने कुछ न कहा। फिर केवल चम्पा बोली खिन्न स्वर में—"लेकिन मैंने उनका क्या बिगाड़ा था जो पुरोहित यों नाराज़ हो गये?"

गाड़ीवान मुंहफट गँवार था। बैलों को आगे हाँकता बोला—"उन्होंने अपना नियम बना लिया है; जहाँ, जिस बारात में रंडी नाचने आती है, वे उस बारात में नहीं जाते। कहते हैं कि मैं माँ भगवती का अपमान अपनी आँखों से नहीं देख सकता।"

तबलची नशे में बोला—"वह देवता आदमी है, देवता! क्या समझते हो, नज़र से नज़र नहीं मिला सकते उससे। ऐसा तेज है आँखों में। यह चौड़ा माथा, सफ़ेद विभूति लगी है—चेहरा दप-दप चमकता है। बस, चरणों पर झुक जाओ। मैं कहता हूँ, कोई ताक़त नहीं तुम्हारी जो उसे देखकर चरणों पर न गिरो। चरणों की रज आँखों से लगा लो, देव पुरुष का आशीर्वाद लो, जीवन सफल। लगता है, भीतर तक सब पवित्र हो गया शरीर।"

—लाकेट—

(१६वें पृष्ठ का शेषांश)

"मैं आज तक नहीं जान सका था। मैंने सोचा था, कि तुम किसी और को..."

बिलू ने कोई जवाब नहीं दिया।

"तुम्हारे लाकेट में..." अनुरूप ने यह बात भी अधूरी ही छोड़ दी।

कुछ देर बाद अनुरूप के हाथ में एक कड़ी-सी चीज आ लगी। बिलू ने उस वस्तु को उसके हाथ में दे, अपना हाथ खींच लिया। अनुरूप ने देखा—वह लाकेट था। पूछा—"इसे लेकर क्या करूँगा?"

"ले जाओ। उसके भीतर एक सिर है! शायद उसे पहचान सको!"

"बिलू!"

कोई उत्तर नहीं।

अनुरूप ने पुनः पुकारा—"बिलू!"

बिलू चली गई थी।

अब यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है, कि जब बिलू के मन में यही बात थी, तो वह उसे इतना परेशान क्यों करती थी? इस बात का उत्तर शायद बिलू भी न दे सके। इसीलिए मैंने पहले ही कह दिया था, कि इस कहानी का शीर्षक होना चाहिए था—'स्त्रियाश्च-चरित्र' अथवा...

"गृहस्थ हैं न? बाली-बच्चे तो हैं न उनके?"—चम्पा ने पूछा।

मीरासी को नशा कम चढ़ता है। उस ने शान्त भाव से कहा—"दो साल हुये, उनकी ब्राह्मणी का इन्तकाल हो गया। एक बालक है आठ-नौ बरस का, बस, और कोई नहीं है।"

गाड़ीवान ने भी दो कुल्हड़ चढ़ाये थे। झूमकर बोला—"उन्हें तो 'भगवती' सिद्ध हैं। मुंह से जो कह दें, वही हो जाय। मेरा छोटा भैय्या मौत के मुंह में था। अम्माँ उसे लेकर पुरोहित जी के चरणों में जा पड़ी। सिर पर हाथ फिराया बालक के, मुंह से कुछ मन्त्र पढ़ा और अम्माँ से बोले 'कि जाओ माँ, तुम्हारी गोद सूनी न होगी।' बस भैय्या, दो दिन पीछे चंगा हो गया वह।"

तबलची ने सिर डुला कर कहा—"जरूर यही कहा होगा। वे हर औरत से 'माँ' कहते हैं; डोम हो, चमार हो, चाण्डाल हो। बस, 'माँ' ही कह कर पुकारेंगे।"

तीसरा आदमी तब से चुप था। इतनी देर तक शायद नशे में आँखें मूंदे बैठा था। आँखें फाड़ कर उसने चारों ओर देखा और चिन्ता के स्वर में बोला—"हम लोग रास्ता भूल गये हैं। अपना गाँव तो पीछे छूट गया। अब तो यह पूरब को चली जा रही है गाड़ी।"

तबलची ने एक ठहाका मारा और उस आदमी के सिर पर एक धौल मार कर बोला—"अबे, चढ़ गई क्या?" सब हँसने लगे। केवल चम्पा चुप थी। उसने इधर को मुख फिरा लिया और दूर धुंधली चाँदनी में सोये एक बाग को देखने लगी।

पुरोहित गोपालराम के गाँव का नाम मोतिया था। दूसरे दिन सुबह होते-होते सारे मोतिया में यह खबर फैल गई कि सेठ बनवारी लाल की बारात में पुरोहितजी ने चम्पा रंडी का गाना रुकवा दिया। फिर इसी बात की चर्चा सारे दिन इधर-उधर होती रही और कहने वालों के मुंह से रंग बदलते-बदलते शाम को यह शकल हो गई इस बात की कि रात को बीच दड़े पर दस आदमियों की भीड़ में एक भक्त रैदास कहने लगा—"गोपालराम चच्चा ने डेरे के भीतर ही भगवती का ध्यान करके हुकुम दिया, गाना बन्द! और इधर महफ़िल में रंडी की जुबान तालू से चिपक गई। तब से बहुतेरे जतन हो रहे हैं, रंडी बोल ही नहीं पा रही है; गुमसुम है बिलकुल। सुना है, उसने चच्चा से मज़ाक किया था, फल मिल गया। हरामजादी को।..."

ठीक उसी समय पुरोहित जी अपने पुत्र को 'चाणक्य नीति' पढ़ा रहे थे। भगवती की पावन प्रतिमा के आगे, पीतल के दीपक में मोटी-सी बत्ती जल रही थी और उसके उज्ज्वल आलोक में सामने चटाई पर पिता-पुत्र बैठे थे।

आठ बरस का बालक सत्यकाम पोथी खोले था और पुरोहितजी नयन मूंदे बोल रहे थे—"मातृवत् परदारेषु..."

सत्यकाम ने पोथी में देखकर दुहराया—"मातृवत् परदारेषु..." फिर वह पिता के शान्त-सौम्य मुख की ओर देखकर पूछने लगा—"इसका क्या अर्थ है, दादा?"

दादा ने नयन मूंद कर ही कहा—"दुनिया की हर स्त्री माता के समान होती है, हर स्त्री को माता समझो।"

"क्या सब स्त्रियाँ भगवती का अवतार होती हैं?"—सत्यकाम सरल भाव से पूछने लगा।

"हाँ बेटा," पिता ने नयन खोले और प्रतिमा की ओर निहार कर बोले—"जय माँ भगवती! पढ़ो सत्यकाम, याद करो, मातृवत्..."

स घटना से तीन-चार दिन तक चम्पा का मन उदास रहा। जाने कैसी एक घृणा उसे मन-ही-मन कुरेदती रही, स्वयं अपने ही निकट अपना अस्तित्व लांछित और कालुष्य भरा लग रहा था और हर आदमी से, हर चीज से विरक्ति लगती थी। पर सहालगों के दिन थे, बारातों की भीड़-भाड़ थी। दो-चार बारातों में वह न भी गई, फिर बहिन के अनुरोध से उसे जाना ही पड़ा।

यह बारात एक बहुत बड़े जमींदार की थी। शहर से भी बहुत-सी तवायफ़ें आई थीं। इन दोनों बहिनों ने मन की सारी शक्ति लगा कर गाया। समाँ बँध गया। शहर की एक मशहूर तवायफ़ इनके बाद गाने को खड़ी हुई, तो लोगों ने तालियाँ पीट दीं। बड़ी भद्द हुई उसकी। रात को ठाकुर साहब इन के पास हँसते आये और बोले—"शाबाश चम्पा, आज तुमने कमाल कर दिया। इज्जत रख ली इस इलाक़े की। मैं तुम से बहुत खुश हूँ।"

ठाकुर साहब चले गये, तो वह शहरू तवायफ़ आई और स्नेह के स्वर में बोली—"बहिन, मुझे भी अपना शागिर्द बना लो!" दो गाने लिखवाये चम्पा से। चलने लगी, तो चाँदी की डिब्बी खोल कर खुशबूदार मगही

पान के बीड़े खिलाये और सुरती खिलाई बनारसी, किमाम चखाया।

दूसरे दिन चम्पा का गला बैठ गया। प्रतिद्वन्द्विनी ने ईर्ष्या से जलकर उसे पान में सिन्दूर खिला दिया था। घर आते-आते चम्पा को 'स्वर-भंग' हो गया। दो दिन में ही वह फटे बाँस की तरह बोलने लगी। अपनी उस भर्रायी हुई, भद्दी-मोटी आवाज़ को सुन कर चम्पा का चेहरा पीला पड़ गया, फिर बेसुध हो गई। फिर होश आया, तो खटिया में मुंह देकर फूट-फूट कर रोई।

उसने कई दिन तक मुंह न खोला। फिर जब-जब जुबान खोलती, अपनी बोली सुनकर उसके आँसू निकल आते। तरह-तरह की दवाइयाँ खिलाईं बहिन ने, तरह-तरह के उपचार हुये। पर वह आवाज ज्यों की त्यों रही—फिर कभी कोयल न चहकी। चिन्ता और क्लेश से चेहरे का गुलाबी रंग जर्द पड़ गया। भूख-प्यास जाती रही। रात में पहरों नींद न आती दुखियारी को।

जेठ का 'दशहरा' आ पहुँचा। दो-ढाई मील पर गंगा बहती थी। सारा गाँव उमड़ चला गंगा नहाने। बहिन भी तैयार हो गई। पर चम्पा न गई। बहुतेरी आरजू-मिन्नतें कीं बहिन ने; पर चम्पा राजी न हुई। वे लोग चले गये, तो फिर वह अपने कमरे की किवाड़ें देकर खूब रोई। फिर दुःख से कातर होकर एक बार जोर से चिल्ला कर पुकारा—"गोविन्द!"

एक भद्दी प्रतिध्वनि कमरे में गूंज गई—"गोविन्द!" मानो कोई उपहास कर रहा हो। चम्पा ने जल्दी से अपने मुंह में अंचल ठूंस लिया और घायल पंछो की तरह ज़मीन पर लोटती रही।...

छकवारें हो गई थीं और लोग गंगा-स्नान करके, माथे पर सफ़ेद चन्दन की लकीर लगाये घरों को लौटने लगे थे, गीली धोतियाँ लिये। चम्पा की बहिन रामा भी अपनी सवारी पर लौटी आ रही थी। तबलची हीरा लाल भी साथ था। बैलों की सुन्दर जोड़ी हलकी चाल से झूमती चली आ रही थी कि हीरा लाल चौंक कर कह उठा—

"अरे पुरोहित जी जा रहे हैं!"

"कहाँ? किधर?"—रामा ने अचरज से पूछा।

"वह देखो!" और तब सब ने देखा, राह के एक किनारे भीड़ से अलग-अलग पुरोहित गोपालराम हाथ में डंडा और कन्धे पर झोला लिये बलिष्ठ पैरों से लपकते चले जा रहे हैं, सिर नीचा किये। पीछे बालक सत्य-काम दौड़ता जा रहा है।

हीरा लाल से और संवरण न हुआ। गाड़ी रुकवा कर नीचे कूद गया और तेज क़दमों से दौड़ता पुरोहित जी के पास जा पहुँचा। राह रोक कर चरण छुए और प्रार्थी के स्वर में बोला—"सवारी पर बैठ लीजिये, महाराज!"

पुरोहित जी ने एक बार राह में हौले-हौले आती गाड़ी को ओर देखा और हँस कर बोले—"मैंने सवारी पर बैठना छोड़ दिया है। आनन्द से चल रहा हूँ।" और धीरे-धीरे आगे को पैर बढ़ाये। हीरा लाल पीछे-पीछे हाथ जोड़े चलने लगा और स्वर में दुख भर कर कहता गया—"महाराज, चम्पा का यह हाल हो गया है..."सब सुनाता गया और महाराज सब सुनते गये चलते-चलते यहाँ तक कि चन्दनपुर आ गया और दूर से चम्पा का घर दीखने लगा।...

गाँव के उत्तर में, बिलकुल छोर पर चम्पा की पक्की हवेली खड़ी थी, जिसकी दूसरी मंज़िल पर अटारी थी। वह अटारी चार-चार पाँच-पाँच कोस से दीखती थी। हवेली की बग़ल से राह थी और राह के उस ओर सौ शाखाओं वाला बटवृक्ष खड़ा था, जिसके नीचे धूप भूले-भटके ही पहुँचती होगी।

हवेली का द्वार आ गया आखिर। अब तक पुरोहितजी ने सान्त्वना का एक शब्द न कहा था। हीरा लाल को और साहस न हुआ। सिर डाले चला आ रहा था कि पुरोहित जी द्वार के सामने ठिठक कर खड़े हो गये और दस क़दम आगे जाते सत्यकाम को आवाज दी—"पीछे लौटो।"...

सूनी-सूनी नजर और उतरा चेहरा लिये चम्पा थमले के सहारे खड़ी थी। सामने काठ की चौकी पर पुरोहित जी पद्मासन से बैठे थे नत नयन किये। फिर एकाएक जैसे चौंके हों, दृष्टि उठा कर दुःखिनी चम्पा को ताका और स्नेह से बोले—"तुम्हें बहुत कष्ट है, माँ?"

चम्पा ने कोई उत्तर न दिया। केवल फफ-फफ कर के आँखों से आँसू गिरने लगे। रामा हाथ जोड़ कर बोली—"महाराज, इसके दुःख की क्या पूछते हैं। लगता है, जान दे देगी। इसे किसी तरह बचाओ, महाराज! हम पतितों पर भी दया हो जाय आपकी, कलंकी लोग हैं। पाप की जिन्दगी है।"

पुरोहित जी ने शीघ्रता से हाथ हिलाकर कहा—"ऐसा मत सोचो। यह जीवन तो भगवान् का दिया है, बहुत पवित्र वस्तु है, माँ! सब उसी एक की सन्तान हैं—सब एक हैं। दरवाजा बन्द कर दो और माँ, तुम इधर

आओ। यहाँ बैठो मेरे सामने।"—पुरोहितजी ने चम्पा को आदेश दिया।

सत्यकाम चौकी के एक किनारे, पिता के पीछे बैठा था। अचानक हौले से कह उठा—"दादा, प्यास लगी है।"

रामा ने आगे बढ़ कर उसकी बाँह पकड़ ली और प्यार से बोली—"चलो, पानी पिलायें, बेटा!"

सत्यकाम नीचे को सिर झुका गया और पानी पीने न उठा, तो पिता ने कहा—"जाओ, पी लो पानी।"

रामा उस देवमूर्त्ति बालक का हाथ पकड़े-पकड़े भीतर कमरे तक आई फिर पुकार दी—"अन्नपूर्णा।"

"क्या है, माँ?" कहती हुई एक अति सलोनी बालिका पीछे से आ खड़ी हुई। रामा ने सत्यकाम का हाथ छोड़ कर कहा—"राजा भैय्या को पानी पिलाओ। बैठो, बेटा, पलंग पर बैठ जाओ।..."

रामा बाहर आँगन में लौट कर आई, तो सन्नाटा-सा छाया था। सब स्तब्ध बैठे थे और चम्पा फटी-फटी आँखों से पुरोहितजी को निहार रही थी। पुरोहितजी ध्यानस्थ थे। हीरालाल और गाड़ीवान दोनों हाथ जोड़े बैठे थे, मीरासी शान्त था।

सहसा पुरोहितजी ने पलक उघारे। चम्पा की दृष्टि से दृष्टि मिलाई और गम्भीर मेघ-गर्जन जैसी वाणी से बोले—"पहिले तुम्हें एक प्रतिज्ञा करनी होगी, माँ। तुम्हारा कण्ठ-स्वर यदि ठीक हो जाय, तो तुम केवल भगवान् का गुण ही गा सकोगी। भगवान् के अतिरिक्त और किसी विषय का गीत तुम्हें जिन्दगी भर के लिये छोड़ना होगा। स्वीकार करती हो, माँ?"

रामा के कलेजे में धक्-से हुआ। मीरासी चौंक पड़ा। हीरालाल और गाड़ीवान एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। पर किसी की जुबान से एक शब्द न निकला।

फिर वही मेघ-गर्जन हुई—"स्वीकार है, माँ?"

चम्पा ने सिर हिलाकर, 'हामी' भरी। उसकी आँखों में पानी आ गया था।

मेघ-गर्जन हुई—"कहो माँ, आज से मैं केवल भगवान् का ही गुणानुवाद करूँगी।"

एक भद्दी प्रतिध्वनि हुई--"आज से मैं केवल---" चम्पा की आँखों से आँसू टपकने लगे।

"जय भगवती!" पुरोहितजी ने स्नेह से कहा---"अच्छा माँ, अब तुम नयन मूँदो और भगवान् का ध्यान करो। भगवान् की जो मूर्त्ति तुम्हें सब से प्रिय हो, उसके श्री चरणों का ध्यान करो। लो, यह पवित्र तुलसी-दल है और ये चार दाने हैं। सावधानी से मुंह में डाल लो। और फिर ध्यान लगाओ।"

भीतर कमरे में अन्नपूर्णा लजाकर सत्यकाम से कहने लगी---"लड्डू क्यों नहीं खाया? लड्डू खालो।"

सत्यकाम गिलास का पानी पी कर सिर झुकाये बैठा था और सामने कटोरे में लड्डू सजे धरे थे।

अन्नपूर्णा ने लजाते-लजाते कहा---"क्यों नहीं खाते लड्डू?"

सत्यकाम सिर झुकाये हौले से बोला---"मुझे भूख नहीं है।"

"तो एक ही खा लो।"

सत्यकाम ने हाथ न चलाया। अन्नपूर्णा वहाँ किवाड़ों के पास खड़ी थी। हौले-हौले पास चली आई और कटोरे से एक लड्डू उठा कर सत्यकाम को देती-देती प्यार से बोली---"लो, एक ही खा लो।" पर सत्यकाम निश्चल रहा।

अन्नपूर्णा क्षण भर लड्डू लिये सत्यकाम का लजीला मुख निहारती रही, फिर उसने धीरे से सत्यकाम का हाथ पकड़ लिया और उसकी हथेली पर वह लड्डू रख कर स्नेह में डूब कर बोली---"तुम्हें हमारे सिर की किसम है, खा लो।"

सत्यकाम का अशोभन मुख लाल हो उठा था। आखिर वह लड्डू खाने लगा। अन्नपूर्णा जूठा गिलास उठाती बोली---"और पानी ले आऊँ।"...

आँगन में इतनी देर निस्तब्धता छाई रही। फिर पुरोहितजी ने आगे को झुक कर ध्यान लगाये बैठी चम्पा के सिर पर अपना दाहिना हाथ रक्खा और गम्भीर स्वर से पुकारा---"जय भगवती---जय जननी!" और चम्पा से स्नेह भरी टोन में बोले---"अब पलक खोलो, माँ!"

चम्पा ने अपने नयन उघारे। दृष्टि जैसे बहुत उज्ज्वल हो गई थी।

पुरोहित जी उसी स्निग्ध स्वर में बोले---"लो, कुछ गाओ तो, माँ! तुम्हें वह गीत याद है---मेरे तो गिरिधर गोपाल?"

चम्पा ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

पुरोहित जी ने प्रसन्नता से कहा---"तो यही गाओ। मेरे साथ, गाओ, बोलो---मेरे तो गिरिधर गोपाल..."

क्षण भर चम्पा रुकी। फिर पुरोहित जी के स्वर में स्वर मिलाकर गाने लगी---"मेरे तो गिरिधर गोपाल---" पहिले आवाज़ अस्पष्ट रही फिर क्रमशः उसका स्वर चढ़ने लगा। सहसा पुरोहित जी गाते से रुक गये। पर चम्पा न रुकी, वह गाती रही--"मेरे तो गिरिधर गोपाल---" और तब सब ने सुना, साफ़-साफ़ वही नन्दन वन की कोयल कूक रही है! सब स्तब्ध और अवाक् थे।

चम्पा ने फिर नयन मूंद लिये और मधुर स्वर में वही एक लाइन गाती रही पागलों की तरह।

पुरोहित जी ने हौले से कहा---"अन्तरा गाओ माँ!" और चम्पा ने अन्तरा गाया---

"अँसुअन जल सींचि-सींचि प्रेम-वेलि बोई..." गाती गई और गाती गई। आँखों से आँसुओं की धार बँध गई---"अँसुअन जल सींचि-सींचि...अँसुअन जल सींचि-सींचि..."

क्रमशः चम्पा का स्वर क्षीण होता गया, गला रूँध गया। आँसुओं से और गा न सकी, हिचकियाँ बँध गईं। उसने पुरोहित जी के चरणों के आगे सिर रख दिया और लोट गई वहीं जमीन पर आँसू बहाती।

सब रो रहे थे---सब रो रहे थे।

ह कहानी का पूर्वार्द्ध हुआ। दस साल निकल गये। समय बीतते कितनी देर लगती है। रामा का देहान्त हो चुका था और पुरोहित जी अपनी 'साधना' पूरी कर रहे थे। 'दक्षिणा' तो पहिले ही तज दी थी, अब उन्होंने गृहस्थों के यहाँ अन्न ग्रहण करना भी छोड़ दिया और 'स्वयंपाकी' हो गये। खेत थे अपने, उन्हीं के ऊपर जीवन निर्भर कर लिया था। जौ की रोटी और मूंग की दाल खाते थे नित्य। सत्यकाम युवा हो गया था और अब तक बहुत से विषय और बहुत से ग्रन्थ पढ़ चुका था। कवियों में कालिदास उसे बहुत प्रिय थे, और आजकल रघुवंश का अध्ययन चल रहा था।---

...सरयू के उस पार, राजरानी सीता को पहुँचा कर दृढ़व्रती लक्ष्मण ने आर्य पुत्र रामचन्द्र की कठोर आज्ञा उन्हें सुना दी।...

नदी के ऊँचे कगारे पर एक पेड़ खड़ा था, जहाँ से दूर तक फैली शुभ्र बालुका-राशि और सरयू की निर्मल

धारा दीखती थी। सीता उसी पेड़ के नीचे बैठी थीं और पच्छिम का किनारा लाल करके भगवान् सूर्यदेव क्षितिज के नीचे चले गये थे। सारी प्रकृति पर मानो उदासी का आवरण छाया था और सामने महलों को लौटने के लिये उद्यत खड़े लक्ष्मण आर्या सीता से पूछ रहे थे कि कुछ कहना है, कुछ सन्देश देना है किसी को?...

...मैथिली ने उद्दीप्त मुख से कहा—"तुम मेरी ओर से अपने उस 'राजा' से कहना कि तुम्हारी आँखों के सामने जिसने अग्नि-परीक्षा दी, अग्नि में प्रविष्ट होकर जिसने अपनी 'विशुद्धि' सिद्ध कर दी, उस को तुमने केवल 'लोकवाद' सुन कर तज दिया! मैं पूछना चाहती हूँ, तुम्हारा यह कर्म तुम्हारे प्रख्यात कुल के अनुरूप ही हुआ है न?"

लक्ष्मण ने शान्त भाव से कहा—"मैं आर्य पुत्र से कह दूंगा।"

....राज वधू सीता की आँखों से छर-छर् करके आँसू झर गये। उन्हीं आँसुओं के बीच कहने लगीं—"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। तुम तो कल्याण-सिद्ध हो, तुम मेरे साथ कोई 'यथेच्छाचार' नहीं कर सकते। इसको शंका ही नहीं करनी चाहिये। मेरे ही उस जन्म के कोई पाप थे, जिनका यह दारुण, असहनीय फल मुझे मिला है।"

लक्ष्मण ने शात भाव से कहा—"मैं आर्य पुत्र से कह दूंगा।"

..लक्ष्मण चला गया। बालुका-राशि पर उसके चरण-चिन्ह बने रह गये। और कुछ नहीं है, और कोई नहीं है—और कोई नहीं है। चारों ओर से धुंधियारा झुकता आ रहा है। निर्वासिता सीता ने एक बार आँखें फाड़ कर अपने चारों ओर देखा फिर फूट-फूट कर क्रन्दन करने लगीं।

...उस रुदन को दूर वन में एक मुनि ने सुना, जो कुश और समिधा बीनने आये थे। उस क्रन्दन को दूर वन में उन मुनि ने सुना, जिनका कोमल हृदय बहेलिया से घायल किये एक पंछी को देखकर शोक से कातर हो गया था और वही 'शोक' संसार में सब से पहिली 'कविता' के रूप में प्रकट हुआ था।

..पादुकाओं की ध्वनि करते हुये महर्षि बाल्मीकि सीता के सामने आ खड़े हुये।...

..सूर्योदय के समय यह पाठ पढ़ा कर, पुरोहित गोपाल राम किसी दूसरे गाँव चले गये। किसी सद् गृहस्थ के यहाँ 'पुत्रोत्सव' था। लौटते-लौटते शाम हो गई और गाँव में घुसे तो दीपक जल गये थे।

पुरोहित जी ने आँगन में पहुँच कर आवाज़ दी—"सत्यकाम!"

कोई न बोला। कोठरी में अँधेरा छाया था। पुरोहित जी ने दियासलाई खोजकर दीपालोक किया और चारों ओर नज़र दौड़ाई, तो देखा, भगवती के आगे चटाई पर सत्यकाम पड़ा सो रहा है। पुष्ट, मांसल शरीर, उन्नत वक्ष, मसें भीग रही हैं। लम्बे-लम्बे केश मुख के चारों ओर छितरे पड़े हैं। मानो कोई ऋषि-कुमार सोया है। जाने कैसे मोह से उनका हृदय भर उठा। दीपक आगे करके, झुक कर अपने प्रसुप्त सुत का मुख निहारने लगे अतृप्त आँखों से।

पास ही कालिदास का रघुवंश और कापी-पेंसिल पड़ी थी।

कापी बीच से खुली थी और जाने क्या लिखा था उस पृष्ठ पर।

वात्सल्य से विह्वल पिता ने वह कापी उठा ली, मन में बोले कि जाने क्या लिखा है पगले ने! और दिये की रोशनी में वह सत्यकाम का लिखा बाँचने लगे। बाँचते रहे—बाँचते रहे, फिर कापी बन्द करके नयन मूंद लिये। और पिता के उन मुंदे नयनों से, नयनों की कोरों से आँसू टपकने लगे। आँसुओं को न पोंछा, नयन न खोले और मूक होकर सत्यकाम से पूछने लगे कि 'तुम कौन हो, इतनी प्रतिभा, इतना बुद्धि-वैभव ले कर यह देव-रूप लेकर इस झोपड़े में क्यों चले आये, बन्धु, मुझ अकिञ्चन के पुत्र क्यों बने, तात!'

सत्यकाम ने रघुवंश का हिन्दी में सुन्दर पद्यानुवाद किया था, बहुत मीठी कविता बनाई थी।

जाने कौन बाहर दरवाज़े पर पुरोहित जी का नाम लेकर ज़ोर से पुकारने लगा।...

ब्राह्म मुहूर्त में सत्यकाम को जगा कर पिता ने कहा—"बेटा, मैं तीन दिन के लिये बाहर जा रहा हूँ, एक भले आदमी का कुछ ज़रूरी काम है। तुम सावधान रहना और अभी सूर्योदय होने पर पूजा समाप्त करके हरिदासपुर चले जाना। मौसी तीर्थों से लौटी हैं, 'कथा' सुनेंगी तुम से।"

हरिदासपुर मोतिया से दक्षिण, तीन मील पर बसा था। वहाँ पुरोहित जी की दूर के रिश्ते की एक बूढ़ी विधवा मौसी रहती थीं।

पिता के चले जाने पर सत्यकाम को फिर नींद न आई और वह उसी समय नहा-धो कर चल दिया और सूरज चढ़े हरिदासपुर आ पहुँचा।

मौसी के कोई न था। पहिले बेटा मरा, फिर पतोहू भी एक ढाई साल का बालक छोड़ कर चल बसी। उसका नाम रामस्वरूप था। बचपन में कभी सत्यकाम से उसकी भेंट हुई थी। फिर वह ननिहाल चला गया और वहीं उसका पालन-पोषण हुआ और वहीं पढ़ा-लिखा भी। इतने दिनों बाद अचानक उसी स्वरूप के साथ मौसी के यहाँ फिर भेंट हो गई। वह दादी के पास गरमियों की छुट्टियाँ बिताने चला आया था।

सत्यकाम से मिल कर वह बहुत प्रसन्न हुआ। अच्छा होनहार नौजवान था। 'कथा' समाप्त हो गई, तो फिर पढ़ने-लिखने की बातें होती रहीं। राम स्वरूप सत्यकाम की ऐसी प्रतिभा देख कर चकित हो गया और बन्धु भाव से ही वह सत्यकाम से कहने लगा—"तुम इंगलिश और पढ लो। आज के युग में इंगलिश के बिना आदमी का ज्ञान अधूरा रहता है।"

सत्यकाम ने कहा—"कैसे पढ़ूँ इंगलिश, कौन पढ़ायेगा ?"

राम स्वरूप ने उसी भाव से कहा—"अभी दो महीने तक मैं यहाँ हूँ। तुम तीसरे-चौथे चले आया करो। बहुत शीघ्र अक्षर-बोध करा दूंगा। फिर आगे के लिये कुछ प्रबन्ध कर लेना। आया करोगे मेरे पास ?"

"अवश्य आऊँगा," सत्यकाम ने कहा—"मैं तुम्हें कालिदास का मेघदूत पढ़ा दूंगा बदले में। बहुत सुन्दर काव्य है।"

राम स्वरूप ने हँस कर कहा—"एकदम मेघदूत ?"

तभी बुढ़िया आ पहुँची और सत्यकाम से विनय के स्वर में बोली—"अपना अँगोछा मुझे दे दो बेटा। यह थोड़े-से जौ के सत्तू हैं, तीर्थ की प्रसादी है और ये चिउड़ा हैं, नीमसार के। अपने बाप को दे देना।" उसने अँगोछे में दोनों चीजें बाँध कर रामस्वरूप से कहा—"तू इसे थोड़ी दूर तक पहुँचा आ, रामू।"

दोपहरी ढलने लगी थी और आसमान में बादल आ गये थे। पुरवैय्या बह रही थी और गाँव के पेड़ झकोरे ले रहे थे।

गली खतम हो गई और मोतिया की ओर जाने वाली पगडंडी आ गई, तो सत्यकाम विदा का नमस्कार करने लगा।

राम स्वरूप सामने की ओर देख रहा था और चौंक कर कह उठा—"अरे आओ-आओ, चलो तुम्हें मन्दिर दिखलायें।"

जमींदार की माता ने 'वेणुगोपाल जी' का मन्दिर बनवा कर मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी। उसी का का उत्सव हो रहा था।

राम स्वरूप साथी सत्यकाम का हाथ पकड़े-पकड़े उधर बढ़ता गया और पूछता गया—"तुम्हारे दादा का यहाँ कल से बराबर इन्तजार हो रहा है। क्यों नहीं आये ?"

सत्यकाम ने कहा—"वे बाहर गये हैं।"

राम स्वरूप ने हाथ उठा कर कहा—"यह देखो मन्दिर, बहुत सुन्दर बना है।"

बाहर काफ़ी भीड़ जमा थी और संगीत हो रहा था। आस-पास दो-चार क़नातें और 'राउटियाँ' लगी थीं, जिनकी चोटियों से मन्दिर को रंग-बिरंगी काग़ज की झंडियाँ जुड़ीं थीं और हरे पत्ते लटक रहे थे।

दोनों साथी भगवान् के दर्शन कर के बाहर आये, तो राम स्वरूप ने कहा—"आओ, थोड़ी देर गाना सुन लो।"

पर संगीत मंडली के पास पहुँच कर देखा कि गाना सुन पाना कठिन है। चारों ओर आदमी-ही-आदमी खड़े थे और पीछे से कुछ भी दिखाई न देता था। उस भीड़ में जाने कैसे साथ छूट गया और राम स्वरूप जाने किधर चला गया। सत्यकाम घूमता-घामता 'राउटी' के पास आ खड़ा हुआ। यहाँ आदमी कम थे, क्योंकि इधर को गाने वालों की पीठ पड़ती थी। सत्यकाम ने सहारे के लिये 'राउटी' की रस्सी पकड़ ली और तिरछा झुक कर गाना सुनने लगा।

गाने वाला चम्पा थी। शुभ्र साड़ी पहिने आनन्दित होकर मन्दिर की ओर दृष्टि किये करुण स्वर में गा रही थी—"जाके प्रिय न राम-वैदेही..."

हीरा लाल तबला बजा रहा था, पर अब वह बूढ़ा हो चला था और मीरासी को भी आँखों से कम दीखने लगा था। वे दोनों भी माथे पर चन्दन लगाये थे और भाव में डूबे थे। एक ओर गाँव की कुलीन स्त्रियाँ बैठी थीं और दूसरे किनारे आबाल वृद्ध पुरुष जमा थे। सभी एक आसन पर, देवता के प्रांगण में एकाकार होकर बैठे थे, गरीब-अमीर, भले-बुरे सब और सब के चारों ओर कवि तुलसीदास का भक्ति रस बह रहा था—"जाके प्रिय न राम-वैदेही..." कोकिल कण्ठी चम्पा ने विह्वल होकर क्षण भर के लिये नयन मूंद लिये, पर गाना न रुका, अचेतन सारंगी उसी स्वर में मानो आँसू बहा कर गाती रही—"जाके प्रिय न राम..." सत्यकाम उस संगीत से विमुग्ध होकर खड़ा था कि हड़-बड़ करके पचास आदमियों की भीड़ आ गई और

इतने जोर से 'रेला' आया कि सत्यकाम के पास खड़े तीन-चार आदमी उसके ऊपर ही आ गिरे। सत्यकाम के हाथों से रस्सी छूट गई और वह चारों खाने चित्त होकर धड़ाम से पीछे को गिर पड़ा। आँखें मूंद गईं सत्यकाम की।...

क्षण भर में होश में आकर फिर सत्यकाम ने जो आँखें खोलीं, तो पागलों की तरह देखता ही रह गया।

डेरे का कपड़ा एक किनारे से चिरता चला गया था और सत्यकाम डेरे के भीतर आ गिरा था। और उस खाली डेरे में अनिंद्य सुन्दरता लिये बैठी एक षोडशी बाला खिन्न होकर कह रही थी—"हे भगवान्, पीठ तोड़ दी मेरी!"

सत्यकाम हाथों का बल लगा कर किसी प्रकार उठ कर बैठ गया और डर कर नवयुवती की ओर ताका; उसके बायें कपोल पर और बालों पर सफ़ेद सत्तू चमक रहा था। अपनी वसन्ती साड़ी से उन सत्तुओं को पोंछती-पोंछती वह अनिंद्य सुन्दरी दुखी होकर बोली—"हाय राम, सारा आटा मेरे ऊपर गिरा दिया!" तब सत्यकाम ने घबरा कर अपना अँगोछा खोजा। अँगोछा दूर पड़ा था। भयभीत सत्यकाम आगे को बढ़ कर अपना अँगोछा उठाने लगा कि एक झिड़की सुन पड़ी—"कौन हो तुम?"

सत्यकाम ने चौंक कर सिर उठाया। दृष्टि का विनिमय हुआ। और सत्यकाम ने हौले से कहा—"मैं सत्यकाम हूँ—"

"तुम सत्यकाम हो?"—नवयुवती ने जाने कैसी आवाज में कहा—"पुरोहित जी के पुत्र?"

सत्यकाम ने हौले से कहा—"जी हाँ।" और लजाकर अपना सामान ठीक करने लगा। फिर और सिर न उठाया। जल्दी-जल्दी अँगोछे में गाँठ लगाई और सिर डाले ही उठ कर डेरे के बाहर जाने लगा तो एक मृदु स्वर सुन पड़ा—"मुझे पहचाना?"

सत्यकाम ने आँखें उठाईं। दृष्टियाँ फिर मिल गईं।

उस अनिंद्य सुन्दरी ने ओठों पर मुस्कान लाकर स्निग्ध स्वर में कहा—"मैं अन्नपूर्णा हूँ।"

पर सत्यकाम के मुख से एक शब्द न निकला। दृष्टि गिरा ली और पलक मारते, झुक कर उसी फटे किनारे से बाहर निकल गया।

री रात सत्यकाम की आँखों के आगे स्वप्न चलते रहे। और रह-रह कर याद आती रही—'मुझे पहिचाना? मैं अन्नपूर्णा हूँ।'

दूसरे दिन भोर की बेला चित्त को स्थिर करके सत्यकाम सन्ध्या-वन्दन करने बैठा, तो आसमान से जमीन पर आ गिरा।

भगवान् 'शालिग्राम' की मूर्त्ति कहाँ है? वह कल मौसी के यहाँ सिंहासन समेत शालिग्राम को ले गया था। खूब अच्छी तरह याद है, कथा की पोथी और सिंहासन मौसी के घर से लाल कपड़े में लपेट कर लाया था। सब अँगोछे में ही तो था। अँगोछा वहाँ डेरे में खुल पड़ा। सिंहासन समेत शालिग्राम वहीं गिर गये? सत्यकाम भय और चिन्ता से व्याकुल होकर हरिदासपुर की ओर भाग छूटा।..

तन-बदन का होश खोये सत्यकाम भागता चला गया। तीन मील कब पूरे हो गये, पता न चला और आखिर दूर से नव-निर्मित मन्दिर का कलश दीखने लगा।

सत्यकाम के माथे से पसीना टपक रहा था। पर उसे किसी बात का ध्यान न था। मन्दिर पर दृष्टि जमाये सरपट चलता गया। पर यह क्या? मन्दिर के प्रांगण में खड़े होकर सत्यकाम ने चारों ओर आँखें फाड़ कर देखा—सब सुनसान है। न संगत-मंडली है, न वह डेरा है। सिर्फ़ एक ओर आठ-दस कुत्ते जूठी पत्तलों और कुल्हड़ों के ढेर पर लड़ रहे थे। बाक़ी किसी आदमी का पता नहीं। उत्सव समाप्त हो गया था। सत्यकाम ने एक साँस खींची, धोती से माथे का पसीना पोंछा और धूल-भरे पैरों से चन्दनपुर की राह ली।...

ठीक बारह बजे वह चम्पा के द्वार पर पहुँचा। किवाड़ भीतर से बन्द थे। सत्यकाम ने धड़कते कलेजे से साँकल खटखटाई और एक नौकर किवाड़ें खोलकर सामने आ खड़ा हुआ और पूछने लगा—"क्या है, क्या काम है?"

सत्यकाम हक्का-बक्का होकर नौकर का मुंह देखने लगा। क्या कहे, क्या बतलाये?

नौकर को हँसी आ गई उसका यह भाव देख कर। हँसता-हँसता पूछने लगा—"किसी से मिलना है क्या?"

सत्यकाम कुछ कहना ही चाहता था कि भीतर

से एक मृदु स्वर आया—"घनश्याम, कौन है ?" और फिर पलक मारते अन्नपूर्णा दीखी, द्वार की ओर आती। सत्यकाम का कलेजा धक्-धक् करने लगा।

अन्नपूर्णा चौखट पर आकर मुसकरा कर बोली—"आओ-आओ, मैं सुबह से ही तुम्हारी राह देख रही थी।"

नौकर एक ओर हट गया। धड़कता कलेजा लिये सत्यकाम अन्नपूर्णा के पीछे-पीछे बरामदे तक आया। अन्नपूर्णा उसी प्रसन्न भाव से बोली—"मैं जानती थी, तुम आते होगे। आओ, भीतर आ जाओ।"

सत्यकाम स्वच्छ, शान्त कमरे में पलंग पर आ बैठा तो अन्नपूर्णा उसके धूप से तमतमाये मुख पर पंखा झलने लगी। सत्यकाम जमीन पर दृष्टि गड़ाये निश्चल होकर बैठा रहा।

घड़ी बीते अन्नपूर्णा ने पंखा झलते-झलते हँस कर कहा—"कुछ याद है, जब तुम छोटे थे, एक दिन इसी कमरे में आकर बैठे थे ?"

सत्यकाम नजर उठा कर कमरे को देखने लगा।

अन्नपूर्णा ने हँसते-हँसते कहा—"मैंने तुम्हें लड्डू खिलाया था। शरमा कर खा नहीं रहे थे, मैंने किसम दिलाई, तब खाया। है कुछ याद ?"

सत्यकाम सिर नीचा करके हँसने लगा। उसने कोई बात न कही। अन्नपूर्णा पंखा नीचे रख कर बोली—"कुरता उतार दो, पसीने से तर हो गया है। और चलो हाथ-मुंह धो डालो।"

अन्नपूर्णा क्रमशः आदेश देती गई और सत्यकाम हर आदेश को मूक भाव से मानता गया। जब खूब ठण्डा और शान्त चित्त हो गया, तो अन्नपूर्णा कटोरे में जलपान के लिये मीठा लाई और सत्यकाम के आगे वह कटोरा रखकर अत्यन्त स्नेह से मुसकराती पूछने लगी—"खुद ही खाना शुरू कर दोगे या आज भी उसी दिन की तरह मुझे किसम दिलानी होगी ?"

तब सत्यकाम हँस कर मीठा खाने लगा कि दरवाजे पर किसी की परछाहीं देख कर चौंक पड़ा।

पर अन्नपूर्णा न चौंकी। आगन्तुक से हँस कर बोली—"इन्हीं के भगवान् गिर गये थे कल।"

चम्पा का चेहरा चमक उठा। पलक मारते वह सत्यकाम के पास आ बैठी और उसकी पीठ पर स्नेह भरा हाथ फिरा कर बोली—"तुम्हीं सत्यकाम हो ! पुरोहित जी के पुत्र ! ओहो, तुम तो भाई, बहुत बड़े हो गये। छोटे बच्चे थे, तब यहाँ आये थे एक दिन।'

सत्यकाम के मुख में ग्रास अटकने लगा। चम्पा ने मीठा देखा, तो अन्नपूर्णा को झिड़क कर बोली—"हाय पगली, ये सूखे लड्डू खिला रही है इसे !—वह टोकरी भरी ताजी गुझियाँ रक्खी हैं, उनकी सुधि न आई तुझे ?"

अन्नपूर्णा ने हँस कर कहा—"इन्हें लड्डू बहुत अच्छे लगते हैं।"

मोतिया यहाँ से सिर्फ़ चार मील था। पर चम्पा ने न माना। सूरज ढले जब सत्यकाम घर लौटने को तैयार हुआ तो उसने कहा—"अब पैदल नहीं, सवारी से जाओ।" और खुद बाहर खड़ी होकर नौकर से बैल जुतवाने लगी गाड़ी में।

भीतर सत्यकाम भगवान् शालिग्राम की मूर्त्ति को सम्हाल कर अगोछे में बाँधने लगा तो किवाड़ों के पास खड़ी अन्नपूर्णा ने हँस कर कहा—"अच्छी तरह गाँठ लगाओ। फिर न गिरा देना भगवान् को कहीं।"

सत्यकाम खूब लजाया।

अन्नपूर्णा हँस कर बोली—"तुमने कल मुझे इतनी चोट मार दी थी कि सारी रात मैं कष्ट से जागती रह गई।"

तब जाने कैसे सत्यकाम के मुख से निकल गया—"मैंने भी जागते रात काटी है . . ."

अन्नपूर्णा ने लजाकर नयन गिरा लिये। सत्यकाम उठ कर चल दिया और किवाड़ों तक आया, तो अन्नपूर्णा ने उसे रोक कर काँपते कण्ठ से पूछा—"अब कब आओगे ?"

"आऊँगा।"—सत्यकाम ने कहा और शीघ्रता से बाहर हो गया।

सरे दिन शाम होते-होते पिता लौट आये। रात को खा-पीकर निश्चिन्त होकर दोनों जने बैठे, तो पिता ने सत्यकाम से हँस कर पूछा—"तुम्हारी वह कविता वाली कापी कहाँ है ?"

सत्यकाम लजाकर मुसकराने लगा। पिता ने उसी तरह कहा—"देखें, वह उतना अनुवाद तो हमने पढ़ लिया था। और आगे लिखा है कुछ ?"

सत्यकाम ने संकुचित होकर कहा—"और नहीं लिखा है।"

"तब क्या पढ़ते रहे तीन दिन ?"

सत्यकाम ने अचकचाकर कहा—"श्रीमद्भागवत देखता रहा।"

"कोई शंका हो तो पूछो।"

"नहीं, शंका कुछ नहीं है।"

शंका कुछ नहीं है ! ऐसा कैसे हो सकता है ? सत्यकाम को तो श्रीमद्भागवत में प्रति पृष्ठ पर शंका उठती थी, जाड़ों में जब पढ़ता था। तीन दिन के पाठ में, सत्यकाम को एक भी शंका न उठी ! आश्चर्य है।

तभी अचानक सत्यकाम कह उठा—"दादा, मैं इंगलिश सीखूंगा।"

पिता प्रश्नमयी दृष्टि से पुत्र को देखने लगे।

सत्यकाम ने कहा—"राम स्वरूप मिला था। वह कहता है, इंगलिश के बिना आदमी का ज्ञान अधूरा रहता है। वह मुझे पढ़ाने को भी तैयार है। आप आज्ञा दें, तो हरिदासपुर चला जाया करूँ। मैं बहुत जल्दी इंगलिश पढ़ लूंगा।"

पिता घड़ी भर शान्त रहे। फिर गम्भीर भाव से बोले—"ज्ञान कभी पूरा नहीं होता बेटा, मनुष्य अपने जीवन में कितना ही अध्ययन-मनन करे, अन्त समय तक उसका 'अज्ञान' नहीं जा सकता। तुमने तो पढ़ा है सत्यकाम, भौतिकवाद हमारे पूर्वजों ने स्वीकार नहीं किया। ऋषियों का तप:पूत जीवन-दर्शन कभी पढ़ सकोगे, तो जानोगे कि यह दुनिया किस क़दर अन्धकार में है। ऐश्वर्य और भोग की चकाचौंध में खुद हमारे देश के आदमी ही राह भूल गये हैं, औरों की तो बात जाने दो। पर मैंने इंगलिश नहीं पढ़ी है। हो सकता है, उसमें भी मानव-कल्याण की बातें लिखी हों विद्वानों ने। विद्या कोई 'हेय' नहीं होती। तुम चाहो तो इंगलिश पढ़ सकते हो। मुझे भी फिर सिखा देना तुम, मैं भी बुढ़ापे में 'गिट-पिट' बोलना सीख लूंगा।"—कह कर पुरोहित जी खुद ही हँस पड़े। सत्यकाम को बहुत जोर से हँसी आ गई थी, वह उठ कर बाहर भाग गया।...

और वह प्रति दिन इंगलिश पढ़ने के लिए हरिदास

पुर जाने लगा। दस बजे तक खाना-पीना समाप्त करके वह चल देता और उधर से फिर सूरज डूबने के बाद लौटता। किसी दिन झुटपुटा रहता, तो किसी दिन दिये जल जाते। पिता भोजन बना कर प्रतीक्षा में बैठे मिलते।

पहिले दिन जब सत्यकाम अपने साथी राम स्वरूप से अँगरेज़ी के छब्बीस अक्षर पढ़ कर घर लौटने लगा, तो हरिदास पुर गाँव के बाहर आकर ठिठक कर खड़ा हो गया। तिराहे पर सत्यकाम खड़ा था, जहाँ से तीन ओर को रास्ते फटते थे। उत्तरी रास्ता उसके गाँव को जाता था, पर वह उधर न बढ़ा। और जाने कौन अज्ञात शक्ति उसे उस राह पर खींच कर ले गई, जो राह चन्दनपुर जाती थी। इस राह से घूम कर मोतिया जाने पर दो मील का चक्कर पड़ता था। यह दो मील की दूरी ध्यान में न आई, और क़दम उसके शीघ्रता से बढ़ने लगे चन्दनपुर की ओर।...

आकाश मेघाच्छन्न था और हवा खूब तेज़ थी। सत्यकाम विसुध-सा होकर उस बट वृक्ष के नीचे आ खड़ा हुआ, जिसके आगे धूल-भरी राह पूरब-पच्छिम होकर बिछी थी। और उस पार चम्पा की हवेली शोभित थी। सत्यकाम हवेली के बन्द द्वार को घड़ी भर वहाँ से खड़ा-खड़ा निहारता रहा। फिर एक निःश्वास छोड़ कर ऊपर की उस अटारी को देखने लगा, जो बादलों के बीच चमक रही थी। उस अटारी पर नज़र गई और चौंक कर सत्यकाम एक क़दम पीछे हट गया।

अन्नपूर्णा अटारी पर खड़ी थी। शायद सूखे कपड़े उठाने आई थी और शायद आसमान में ऐसी सुहावनी मेघ-माला और ऐसी हिल्लोल उठाने वाली समीर पाकर विभोर हो गई थी। उसका धानी अंचल फर-फर करके उड़ा जा रहा था और वह मुसकराती-मुसकराती उसे समेट रही थी और बालों की लटें उड़कर चन्द्रानन पर आ गिरी थीं। अन्नपूर्णा एक हाथ से बाल सम्हालती, एक हाथ से धानी अंचल सम्हालती और उस शोख हवा से हारी जा रही थी।

सत्यकाम बट वृक्ष के नीचे खड़ा अपलक नयनों से देख रहा था और उसके कलेजे की धड़कन द्विगुणित हो गई थी।

जाने कौन-से देवता थे, जिन्होंने बरबस अन्नपूर्णा का मुख इधर को कर दिया और प्यार से कान में 'कह गये कि उधर देख नादान, बट वृक्ष तले!'

आँखों में आँखें आ गिरीं और अन्नपूर्णा ने बाल सम्हालने के मिस दोनों हथेली माथे पर जोड़ लीं। पर सत्यकाम के हाथ न उठे, वह प्रति नमस्कार न कर के पागलों की तरह अन्नपूर्णा को अपलक ताकता रहा और चेहरा उसका रक्तिम हो उठा।

पर हवा तीव्र से तीव्रतर होने लगी और दूर पूरब के किनारे पल-पल पर कौंदा होने लगा बादलों के बीच।

अन्नपूर्णा ने अपनी पतली अगुलियाँ हिला कर सत्यकाम को घर जाने का इशारा किया और ओझल हो गई उसी अटारी में।

उस दिन से फिर नियम हो गया। सत्यकाम प्रति दिन इंगलिश पढ़ कर चन्दन पुर के उस बट वृक्ष तले जा खड़ा होता, जिसके सामने वाली अटारी पर एक सलोना मुखड़ा आँखों में प्यास लिये चमकता था रोज़ बादलों के बीच और दो सुन्दर-सी मेंहदी रंगी हथेलियाँ जुड़ कर माथे से लगती थीं जिस अटारी पर और संकेत होता था पतली सुकुमार अगुलियों से कि बादल आ रहे हैं कि नीचे मौसी चम्पा उसकी प्रतीक्षा कर रही हैं कि घर लौट जाओ बन्धु, पानी बरसने वाला है। और सत्यकाम सिर झुका कर उस धूल-भरी राह में शिथिल पैरों से चल देता, जो राह उसके घर जाती थी, जहाँ भगवती के साधक, स्नेहशील पिता रोटी सेंक कर उसकी प्रतीक्षा में भूखे बैठे रहते थे। इसी तरह प्रति दिन होता रहा।

बरसात आ गई थी। एक दिन फिर ऐसी वर्षा हुई कि चारों ओर पानी ही पानी हो गया। बादल छाये रहे और बादलों ने आँख न उघारी और झिमका लगा रहा, तो पिता ने सत्यकाम को रोक लिया, हरिदास पुर न जाने दिया और ठण्ड पाकर भगवती के आगे चटाई पर पड़े सोते रहे थे शाम तक।

पर सत्यकाम को नींद न आई। वह बादलों की ओर निहारता एक आसन से पोथी खोले बैठा रहा और पन्ने हवा से फर-फर करके आगे-पीछे उड़ते रहे।...

शाम हो गई और घर में अँधियारा झुक आया। पुरोहित जी ने दीपक जला कर भगवती को प्रणाम किया। फिर तख्ते पर से अपना सितार उतार लिया। आवरण खोल कर खूंटियाँ उमेठीं, छल्ला पहिना और तारों को एक बार झनझना कर 'तुम त,न,न,न' किया और प्रसन्न मुद्रा से सत्यकाम को पुकार कर बोले—"गाओ, आज 'मेघदूत' गाओ।" और नयन मूंद कर चपल गति से तारों पर अँगुलियाँ फेरने लगे। सारा

घर उस झनझनाहट से भर उठा। सितार करुण लय से बज रहा था, बाहर रिमझिम हो रही थी। सत्यकाम ने एक बार माँ की पावन प्रतिमा को देखा, एक बार पिता के शान्त, सौम्य, नयन मूंदे मुख की ओर देखा और 'यक्ष' के 'विरह की रागिनी' छेड़ दी:—

'. . . सखा, उस नगरी में पहुँचते-पहुँचते तुम्हें शाम हो जायेगी। फिर और आगे न बढ़ना। वह रात उसी नगरी में बिताना। तुम्हारी प्रियतमा 'बिजली' इतनी लम्बी यात्रा की थकान लिये होगी, उसे विश्रान्ति देना। किसी ऊचे 'हर्म्य' की अटारी में, प्रिया को लेकर वह रात्रि बिता देना, जहाँ गुटुर-गूं करके कबूतरों के जोड़े छज्जे की आड़ में सो गये होंगे। . . .

'बन्धु, मेरी तरह कौन अभागा होगा, जो इस भरी बरसात में अपनी प्रिया से बिछुड़ कर दूर 'परदेश' में पड़ा हो।' . . .

सत्यकाम और गा नहीं सका। उसका गला रुंधने लगा। परन्तु पिता द्रुतगति से तार झनझना रहे थे और बाहर रिमझिम हो रही थी। 'मन्दाक्रान्ता छन्द' की वह करुण लय तारों से झंकृत होती रही और विरही यक्ष रोता रहा—'बन्धु, मेरी तरह कौन अभागा होगा! . . ."

दूसरे दिन तीसरे पहर तक धूप छाई रही, आसमान साफ़ रहा, परन्तु जब सत्यकाम 'किसी' के दर्शनों की तीव्र पिपासा लिये सन्ध्या बेला में उस पेड़-तले आकर खड़ा हुआ, तो चारों ओर से फिर घटायें घिर आईं और धीरे-धीरे बूंदें गिरने लगीं। सत्यकाम एक बार बादल-भरे आकाश को ताकता, फिर दूसरे क्षण अटारी की ओर देखता। बादल उमड़-घुमड़ रहे थे, अटारी सूनी पड़ी थी। खड़ा रहा, खड़ा रहा, फिर प्रतीक्षा में व्याकुल होकर सत्यकाम भीतर ही भीतर छटपटाने लगा। पर अटारी पर वह प्रियमुख न चमका। आज भी 'उसे' नहीं देख पाया—आज भी नहीं देख पाया। निराश हृदय सत्यकाम ने घर के लिये क़दम बढ़ाया कि फटाक् से हवेली का द्वार खुला और किवाड़ों के बीच एक प्यारा मुख आलोकित हो उठा। पतले, लाल ओंठों से बाँसुरी के स्वर में पुकार आई—"आओ!" . . .

सत्यकाम को अपने कमरे में लाकर अन्नपूर्णा ने नौकर से पुकार कर कहा—"घनश्याम, बाहर का दरवाजा बन्द कर दे।"

फिर वह पलंग के पायते बैठ कर मुसकराकर पूछने लगी—"क्या बहुत देर से खड़े थे वहाँ बट-तले?"

"नहीं, अभी आया हूँ।"

अन्नपूर्णा ने हँस कर, कहा—"मौसी आज हीरा लाल को साथ लेकर 'बाराह जी' के दर्शन करने गई हैं, परसों तक लौटेगी। पढ़ आये अँगरेज़ी?"

"हाँ, पढ़ आया।"

हँसती-हँसती बोली—"मैंने घनश्याम से सब पता लगवा लिया। वह लड़का तुम्हारा भाई लगता है न?"

"हाँ, भाई लगता है।"

तभी पड़-पड़ करके आँगन में मेंह गिरने लगा। अन्नपूर्णा बाहर को उठ कर भागी और घनश्याम से नाराज़ होकर कहा—"बैठा है। ऊपर से ईंधन उठा कर ला, सब भीग जायेगा। जल्दी कर।"

फिर सत्यकाम के पास लौट आकर मुसकान दबा कर कहा—"ऐसे काले बादल आये हैं। घन घोर वर्षा होगी अब। आज अब घर को कैसे लौटोगे ऐसे पानी में?"

सत्यकाम चिन्तित होकर खिड़की से आसमान की ओर देखने लगा कि 'कड़-कड़' करके बिजली गिर गई। अन्नपूर्णा ने घबरा कर अपने कानों पर हाथ रख लिये। पर सत्यकाम खिड़की से न हटा। सोलह धार गिरते मेंह में अपने गाँव को जाने वाली राह को वह ताक रहा था।

अन्नपूर्णा ने पीछे से आकर धीरे से उसका हाथ पकड़ लिया और सरलता से पूछने लगी—"क्या देख रहे हो?"

सत्यकाम ने कोई जवाब न दिया।

पानी की फुहारें खिड़की की राह उसके और अन्नपूर्णा के ऊपर आने लगीं, तो अन्नपूर्णा ने हौले से उसका हाथ खींचा और बोली—"चलो, भीगे जा रहे हो।"

फिर वह पलंग पर उसे बिठा कर अचानक उसके लम्बे बालों को छू कर स्नेह में डूब कर बोली—"उफ़, सारा सिर भिगो लिया!" और अपने अंचल से सत्यकाम के बालों का पानी पोंछने लगी।

तब सत्यकाम मूर्ख की तरह कह उठा—"मैं घर जाना चाहता हूँ।"

अन्नपूर्णा क्षण भर अवाक् होकर उसका चिन्तातुर मुख देखती रही। फिर उसने मुसकरा कर कहा—"मैं दरवाजा खुलवाये देती हूँ, आप जा सकते हैं।"

सत्यकाम की दृष्टि जाने कैसी हो गई थी। बालकों की तरह अन्नपूर्णा की तरफ़ देखता रह गया। मेंह और ज़ोर से बरसने लगा।

अन्नपूर्णा ज़मीन पर दृष्टि गड़ाये, दुख में डूब कर बोली—"एक रात अगर मुझ अभागिन की कुटिया में रह जाओगे, तो पाप लग जायेगा शायद।"

"पाप!" सत्य काम ने दृष्टि स्फीत करके कहा—"तुम क्या कह रही हो?"

"सच ही कह रही हूँ,"—अन्नपूर्णा ने कम्पित स्वर में कहा—"तुम्हें रात भर अपने इस घर में रखने का क्या अधिकार है मुझ अभागिन को? तुम देवता की पूजा के फूल हो और मैं हूँ राह की धूल। मेरी तुम्हारी क्या समता है? दया करके रोज़ दूर से दर्शन दे जाते हो, यही बहुत है मेरे लिये!"—अन्नपूर्णा की आँखें सजल हो उठीं। उन्हीं पानी-भरी आँखों से सत्यकाम का सौम्य मुख देखती बोली— "तुम चले जाना। पर मेंह रुक जाने दो। इतनी देर यहाँ रहने का कष्ट सह लो।"

सत्यकाम घड़ी भर अपलक होकर अन्नपूर्णा की अश्रुपूर्ण आँखें देखता रहा, फिर उसने भरे गले से कहा—"मेरे हृदय की बात सुनोगी?"

आधी रात बीत गई थी और गोदी में सितार रक्खे अन्नपूर्णा कातर स्वर में पूछ रही थी—"फिर उन लोगों का मिलन हुआ? उस यक्ष का और उसकी प्रिया का?"

सत्यकाम ने अँगड़ाई लेकर कहा—"नहीं, महाकवि ने उनके मिलन की बात नहीं लिखी है।"

अन्नपूर्णा साँस खींच कर बोली—"कैसी दुख-भरी कहानी है, अभी तुम गा रहे थे, तो जाने क्यों मेरा दिल भर आया और रोना आने लगा, सब ग़लत बजाती रही।"

सत्यकाम ने हँस कर कहा—"लाओ, सितार मुझे दो। यह विरह का गीत सुन लिया। अब तुम कोई मिलन की रागिनी गाओ।"

अन्नपूर्णा ने सितार उठा कर सत्यकाम के आगे रख दिया और लजा कर कहने लगी—"क्या गाऊँ? तुम्हारे आगे मैं गा न सकूंगी। रहने दो।"

"गाओ, गाओ!"

"मुझे शरम लगती है," अन्नपूर्णा ने हँस कर कहा।

पर सत्यकाम न माना। तारों को झंकृत करके बोला—"गाओ।"

आखिर अन्नपूर्णा को गाना ही पड़ा। उसने 'चकोरी और चन्द्रमा' का गीत गाया। उस गीत को सुनकर विश्व चराचर सिहर उठा।...

दिन चढ़ आया, तो अन्नपूर्णा पास आकर सत्यकाम के बालों को सहलाती बोली—"उठोगे नहीं?"

सत्यकाम हड़बड़ा कर उठ बैठा और घबरा कर पूछने लगा—"मेरा कुरता कहाँ है, मेरी किताबें कहाँ हैं?"

अन्नपूर्णा खिलखिला कर के हँस पड़ी और हँसती-हँसती बोली—"एक चीज़ भूल गये; 'मेरा डंडा कहाँ है'!"...

सत्यकाम उस हवेली से बाहर निकलने लगा, तो धूप खूब फैल गई थी। अन्नपूर्णा ने किवाड़ों की आड़ में खड़े हो कर अनुनय के स्वर में कहा—"शाम को दर्शन देने आओगे?"

"आऊँगा,"—सत्यकाम उसके उतरे-उतरे चेहरे को निहार कर बोला—"तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य है।" और चौखट के नीचे पैर रक्खा कि देखा, सामने से मोतिया के चार-पाँच आदमी चले आ रहे हैं। शायद कोई पर्व था उस दिन, शायद सब गंगा-स्नानार्थी थे। वे लोग पास आये, तो सत्यकाम कतरा कर एक किनारे से आगे बढ़ गया।

रोहित जी ने हँस कर कहा—"क्यों, रात तो खूब फँसे!" सत्यकाम भी हँसने लगा। पिता ने प्रसन्न भाव से कहा—"मैं तो शाम को ही समझ गया था कि आज तुम आ न सकोगे मौसी के यहाँ से। बड़ी घनघोर वर्षा हुई रात।"

सत्यकाम हँसता रहा।

पिता स्नेह से बोले—"ये फल रक्खे हैं तुम्हारे, खा लेना। मैं तो भाई, जा रहा हूँ। उस दिन जिन के यहाँ 'पुत्रोत्सव' में गया था, उनका आदमी आया है, बालक बहुत बीमार है। भगवती की इच्छा। शाम तक लौट मिला, तो लौटूंगा, नहीं तो सबेरे आ सकूंगा।..."

पिता चले गये। सत्यकाम अनमना होकर सारे दिन लेटा-लेटा करवटें बदलता रहा। किताब उठा कर पढ़ने को इच्छा न हुई और ज्यों-ज्यों शाम नज़दीक आने लगी उसका चित्त छटपटाने लगा। सत्यकाम मन को इधर-उधर की बातों में बहुतेरा बहलाता रहा, पर उसकी एक न चली और मन के आगे हार मान कर, आखिर वह उठ बैठा। घर में ताला डाला और लम्बे-लम्बे डग भरता चल दिया उस वट वृक्ष को याद करता, जहाँ से वह

अटारी दीखती थी कि जिस पर बादलों के बीच एक सलोना मुखड़ा . . .

पर सलोना मुखड़ा अटारी पर न दीखा। हवेली की किवाड़ें बन्द थीं और भीतर से कई आदमियों के बोलने-चालने की आवाज़ें आ रही थीं। सत्यकाम वट-तले खड़ा रहा।

धीरे-धीरे अँधेरा छाने लगा और चन्दनपुर गाँव में जहाँ-तहाँ दिये जल गये, तो सत्यकाम एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर मुंह का पसीना पोंछने लगा, कि खट्-से किसी ने उसकी बाँह पकड़ ली। सत्यकाम ने घबरा कर देखा तो अन्नपूर्णा खड़ी काँप रही थी।

और अन्नपूर्णा ने काँपती ज़ुबान से कहा कि मौसी आ गई हैं और मौसी को सब मालूम हो गया है। घनश्याम नौकर ने सब बतला दिया और अटारी के ज़ीने पर ताला पड़ गया है और मैं पिछवाड़े से नाली की राह निकल कर आई हूँ।

सत्यकाम निश्चल, अवाक् खड़ा रहा।

अन्नपूर्णा उसका हाथ पकड़े-पकड़े कातर कण्ठ से बोली—"अब क्या होगा?"

सत्यकाम न बोला।

अन्नपूर्णा रुदन-भरे कण्ठ से बोली—"तुम्हें देख नहीं पाऊँगी, क्या हम लोग बिछुड़ जायेंगे? क्या यही अन्तिम मिलन है?"

सत्यकाम मूक रहा।

अन्नपूर्णा आँखों से आँसू बहाती बोली—"चुप क्यों हो, देवता? क्या सचमुच मुझे तज दोगे? यही सोचा हो, तो जाने से पहिले मेरा गला घोंटते जाओ। मुझे अपने हाथों से मार डालो!"

तब सत्यकाम ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा—"सुनो अन्नपूर्णा, मैं तुम्हारे बिना जीवित न रह सकूँगा। तुम्हें यदि नहीं देख पाऊँगा, तो मैं पागल हो जाऊँगा। तुम मेरी आँखों से ओझल न होना।"

अन्नपूर्णा से और सहा नहीं गया। उसने नीचे झुक कर सत्यकाम के धूल-भरे चरणों पर अपना सिर रख दिया और फूट कर रो उठी।

सत्यकाम विह्वल होकर अन्नपूर्णा को उठाता-उठाता बोला—"कल इसी स्थान पर, इसी समय मिलोगी?"

अन्नपूर्णा ने रोते-रोते कहा—"मिलूंगी।"

सत्यकाम ने उसके बालों पर हाथ फिरा कर कहा—"तो अब जाओ तुम। कल हम लोग भविष्य की बात सोचेंगे।"

रोहित जी उस दिन न लौट सके। सारी रात बालक की जीवन-रक्षा के लिये उपचार होते रहे। कुल का दीपक बुझा चाहता था। पर कोई भी शक्ति मृत्यु-पवन के झोंके से उसे बचा न सकी और दिन निकलते-निकलते उस लघु दीप की लौ झिलमिला कर बुझ गई। घर में कुहराम मच गया।

बच्चे को नदी किनारे समाधिस्थ करके बन्धु-बान्धव लौट गये और पुरोहित जी दुखी मन लिये मोतिया चले आये।

सत्यकाम इंगलिश पढ़ने चला गया था। पुरोहित जी ने भोजन न किया। बच्चे का कोमल मुख रह-रह कर याद आ रहा था, सारी दुपहरिया योंही बीत गई। फिर खिन्न चित्त लिये सन्ध्या-स्नान करके पूजा की तैयारी करने लगे कि अचानक हीरा लाल आँगन में आ खड़ा हुआ और प्रणाम करके बोला—"चम्पा आई है। गाँव के बाहर आपका इन्तज़ार कर रही है।"

पुरोहित जी भारी कुतूहल लिये हीरा लाल के साथ चले आये। . . .

बाग़ के किनारे सवारी रुकी थी और चम्पा नीचे खड़ी थी। पुरोहित जी निकट पहुँचे, तो वह भक्ति से विवश होकर उनके चरणों में झुकने लगी।

पुरोहित जी चौंक कर एक क़दम पीछे हट गये और हँस कर संकोच से कहा—"बुरा मत मानना माँ, मैंने स्त्री-स्पर्श छोड़ दिया है। कैसे कष्ट किया तुमने, क्यों आना हुआ इस तरह?"

चम्पा ने विनीत स्वर में कहा—"ज़रा एकान्त में चलिये, उस पेड़ के नीचे।"

पुरोहित जी पेड़ के नीचे आ खड़े हुये और प्रश्न भरी दृष्टि से चम्पा की ओर देख कर बोले—"कहो माँ, क्या बात है?"

तब चम्पा ने हौले-हौले कहा—"महाराज, क्या कहूँ आप से, कहते दुख लगता है। यह बात है . . ."

पुरोहित जी ने सब चुपचाप सुन लिया और स्थिर भाव से खड़े रहे।

चम्पा दुखी होकर बोली—"यह कैसे हो सकता है महाराज, यह क्या कभी सम्भव है? आकाश के तारे को कौन तोड़ सकता है? अभागिन ने यह न सोचा कि क्या नतीजा होगा इसका। चाँद को छूने चली थी अन्नपूर्णा।"

पुरोहित जी कुछ न बोले।

चम्पा दुखी होकर बोली—"आप मेरे पिता-तुल्य हैं। एक बार मुझे जीवन-दान दे चुके हैं। आप का अहित अपनी आँखों से नहीं देख सकती थी। सत्यकाम को समझा दीजिये महाराज, वह तो बहुत भोला है, पाप-पुण्य समझता नहीं, भला-बुरा भी नहीं जानता। मोह हो गया महाराज, उन दोनों ने कोई अपराध नहीं किया है, मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ, मोह हो गया था दोनों में। पर यह स्नेह कैसे निभ सकता था, कैसे यह सम्बन्ध चल सकता था?—मैंने अन्नपूर्णा पर अत्याचार करके उसे इस मोह से तोड़ा है। अब आप सत्यकाम को उधर जाने से रोक दें। जो जंजीर एक दिन तोड़नी पड़ेगी उसकी कड़ियाँ जोड़ने से क्या फ़ायदा!"

पुरोहित जी शान्त खड़े थे।

चम्पा हाथ जोड़ कर बोली—"आज्ञा दें, मैं जाऊँ अब?"

"हाँ माँ, जाओ तुम।"—पुरोहित जी ने कहा—"आज के इस कष्ट के लिये मैं तुम्हारा ऋणी रहूँगा।"

चम्पा ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं महाराज, ऐसा कह कर मुझे नीचे मत ढकेलिये। आप मेरे 'पिता' हैं।"..

चम्पा चली गई। पुरोहित जी स्वप्नाविष्ट की तरह गाँव में घुसे, तो होरी बनिया मिल गया। हाथ जोड़े और ठिठक कर बोला—"आप से एक बात कहना चाहता था—"

"क्या कहना चाहता था?"

"बात यह है कि वह जो चन्दनपुर की चम्पा है —"

पुरोहित जी ने हाथ हिला कर कहा—"मैं सुन चुका हूँ। तुम और मत कहो, सब सुन चुका हूँ।" और आगे बढ़ गये।

गली के मोड़ पर सुनार की दूकान थी। बाहर खड़ा पंखे से बयार कर रहा था। वह पालागन करके, राह रोक कर बोला—"एक बात सुनिये—"

"सुनाओ, भाई।"

"आपका लड़का सत्यकाम चन्दनपुर में—"

पुरोहित जी हाथ हिला कर बोले—"बस भाई, बस, रहने दो। जानता हूँ, सब जानता हूँ।"

दरवाजे पर आये अस्थिर पैरों से, तो बिरादरी का एक प्रौढ़ व्यक्ति खड़ा था। पैर छूकर बोला—"भीतर चलिये। कुछ गुप्त बातें करनी हैं।"

पुरोहित जी ने भवें सिकोड़ कर कहा—"क्या गुप्त बात कहोगे? सत्यकाम चन्दनपुर जाता है चम्पा के यहाँ, यही न?"

प्रौढ़ व्यक्ति अचरज से उनका मुख देखता रहा। मुख लाल हो गया था और आँखों में ऐसा भाव था, मानो वे किसी विक्षिप्त की आँखें हों।

पुरोहित जी ने भीतर घुस कर फड़ाक्-से किवाड़ दे लिये।

अन्नपूर्णा अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सकी। वह रात को बट-तले नहीं आई। सत्यकाम अँधेरे में आँखें फाड़े उस की राह देख रहा था। समय बीतने लगा और आकाश से बूंदें गिरने लगीं। पहिले छोटी-छोटी बूंदें गिरीं, फिर बड़ी-बड़ी, फिर सहस्र धाराओं से बादल जल बरसाने लगे और उस सौ शाखाओं वाले बट वृक्ष के नीचे खड़े सत्यकाम के ऊपर पत्तों से चू-चू कर पानी गिरने लगा। पर सत्यकाम को जैसे होश न था, आँखें फाड़े था और खड़ा था। समय बीतता गया। वर्षा होती रही और सत्यकाम धीरे-धीरे शराबोर हो गया। उसके बालों से पानी टपक रहा था, माथे पर और कपोलों पर पानी की धारें बह रही थीं और कपड़े तर होकर शरीर से चिपक गये थे। पर अन्नपूर्णा न आई। और अर्ध-चेतन-सा सत्यकाम यों ही सारी रात उस बट वृक्ष के नीचे पानी में भीगा खड़ा रहा।

पुरोहित जी व्याकुल होकर उस रात जागते रहे और बार-बार दरवाजे तक जाकर पुत्र सत्यकाम की मूर्ति अँधेरे में खोजते रहे। सत्यकाम न लौटा। एक प्रहर रात्रि शेष रही होगी, तब उन्हें नींद आ गई।...

फिर सहसा एक विचित्र स्वप्न देखकर वे चौंक कर जाग पड़े और चारों ओर भीत दृष्टि दौड़ाई, तो कोठरी के द्वार पर सत्यकाम को खड़ा पाया।...

दिये की बाती सारी रात जल कर बुझने पर आ गई थी। उसके मन्द प्रकाश में पिता ने देखा कि पुत्र सत्यकाम पानी से तर-बतर भीगा सामने किवाड़ों से सटा खड़ा है और उस के सम्पूर्ण शरीर से पानी टपक रहा है और नीचे उसके चारों ओर जमीन गीली हो गई है।

पुरोहित जी मानो वही स्वप्न देख रहे हों, ऐसे उठ कर आये और सत्यकाम की आँखों में आँखें डाल कर देखने

लगे कि यह उन्हीं का पुत्र सत्यकाम है, सत्यकाम ही है ! पर सत्यकाम की दृष्टि जैसे पत्थर की हो गई थी।

पिता उसकी ओर देख रहे थे और वह पिता को देख रहा था और सामने विराजती माँ की मूर्ति दोनों पिता-पुत्रों को देख रही थी।...

पुरोहित जी ने क्षीण स्वर में पूछा—"कहाँ थे तुम ?"

सत्यकाम अचल खड़ा रहा।

"कहाँ थे तुम ? सारी रात कहाँ थे ? उत्तर दो !"

सत्यकाम प्रस्तर बना खड़ा रहा।

"बोल, रे प्रपंची, यही इंगलिश तू पढ़ने जाता था, यही ज्ञान तू पूरा कर रहा था ? उत्तर दे ! उत्तर दे ! अरे, उत्तर दे !"

पर सत्यकाम ने उत्तर न दिया। पुरोहित जी को क्रोध आ गया। संयम न कर सके। डंडा पास ही पड़ा था, उठा कर सारी शक्ति से सत्यकाम की पीठ पर प्रहार किया और चीत्कार करके कहा—"अरे राक्षस ! तुझे मेरे ऊपर दया न आई ?"

क्या सत्यकाम के कपाल पर डंडा मार दिया ? यह बालों के ऊपर से लाल-लाल क्या बहने लगा ? रक्त है क्या ? अरे, रक्त बह रहा है क्या ?—पुरोहित जी आँखें फाड़े सत्यकाम के बिलकुल निकट आकर अँगुली से वह लाल पदार्थ छूकर देखने लगे, रक्त ही है क्या ? सत्यकाम का रक्त है ? फिर दिये के आगे दौड़े आये, दिये के प्रकाश में अपनी अँगुली देखी और चिल्ला कर बोले—"अरे, सिर फोड़ दिया है मैंने !"

और पागलों की तरह फिर सत्यकाम के पास दौड़े आये और उसका जल-सिक्त और रक्तसना मुख छाती से चिपटा कर काँपते बोले—"बेटा !"

सत्यकाम की मानो चेतना लौटी। वह वात्सल्य-भरी छाती से हट कर कटे वृक्ष की तरह पिता के चरणों पर गिर पड़ा और कलेजा चीर देने वाली आवाज में रोकर बोला—"और मारो पिता, और मारो, मेरे अपराध का भार हल्का कर दो ! मारो दादा, और मारो, नहीं तो मैं इस पाप के कष्ट से मर जाऊँगा..."

सत्यकाम विकल होकर उन चरणों पर बार-बार अपना रक्तसना मस्तक पटक कर चीत्कार करने लगा—"हाय पिता, हाय पिता.."

पुरोहित जी थर-थर काँपते खड़े थे और आँखों से आँसुओं की धारें बँधी थीं।

माँ की मूर्ति दोनों पिता-पुत्रों को देखती रही।

(अ)र्यादा पुरुषोत्तम राम ने 'लोकापवाद' के कारण ही सती-साध्वी सीता को घर से निकाल दिया। समाज में रह कर मनुष्य को समाज के नियम पालने चाहिये। मोह तो मन का एक विकार मात्र है। षड् रिपुओं पर विजय पाना ही पुरुषार्थ है नारी जीवन का लक्ष्य नहीं है।—पिता सब समझा बुझाते गये और सत्यकाम शान्त चित्त से सब सुन गया फिर उसने लजाकर कहा—"मैं दो दिन निराहार व्रत करना चाहता हूँ दादा, गायत्री-पुरश्चरण करूँगा भगवती के आगे।"

दादा ने विह्वल होकर कहा—"मेरी चित्तवृत्ति भी डाँवाडोल हो गई है सत्यकाम, मुझे भी व्रत करना होगा।"

सारा दिन बीत गया और रात पड़ गई, तो पिता पाठ समाप्त करके बाहर आँगन में जा सोये। आकाश स्वच्छ था और सप्तर्षियों की माला नीचे को उतर आई थी। पुरोहित जी हल्का हृदय लिये एक भजन गुनगुनाते रहे, फिर धीरे-धीरे उनकी आँखों पर नींद उतर आई।

पर सत्यकाम न उठा। भगवती के आगे पद्मासन लगाये, नयन मूँदे गायत्री मंत्र का पुरश्चरण कर रहा था, चित्त और आत्मा की शुद्धि के लिये। इसी प्रकार घंटे पर घंटा बीतने लगा। यहाँ तक कि रात्रि का द्वितीय प्रहर भी उतर चला।...

सहसा, जाने कैसी ध्वनि सुन कर, आँगन में सोये पिता की नींद खुल गई। चौंक कर देखा। उनके चरणों के पास पाटी पर सिर रक्खे बैठा सत्यकाम सिसक रहा था। पिता घबरा कर उठ बैठे और स्नेह से कातर होकर पुत्र के सिर पर हाथ रख कर पूछने लगे "क्या हुआ सत्यकाम ?"

सत्यकाम और फूट कर रो उठा।

पिता ने विकल होकर कहा—"कहो बेटा, क्या बात है, क्यों इस तरह रुदन कर रहे हो, तात ?"

तब सत्यकाम पिता के चरण पकड़ कर रोता-रोता बोला—"मुझे दृष्टि-दोष हो गया है दादा, मेरी दृष्टि लौटाइये पिता !"

"दृष्टि-दोष ? कैसा दृष्टि-दोष हो गया है ?"

सत्यकाम पिता के चरण पकड़े रोता-रोता बोला—"मुझे भगवती की मूर्ति नहीं दीखती..."

"भगवती की मूर्त्ति नहीं दीखती ?"

सत्यकाम क्रन्दन करके बोला—"अन्नपूर्णा का मुख दीखता है। भगवती का मुख अन्नपूर्णा का हो जाता है। मेरी रक्षा करो पिता, मुझे दृष्टि-दोष हो गया है।"

पुरोहित जी क्षण भर अवाक होकर बैठे रहे। फिर द्रुत-गति से कोठरी की ओर भागे आये।...

भगवती की पावन प्रतिमा के आगे पीतल के दीपक में मोटी-सी बाती जल रही थी, कोठरी में शान्त, उज्ज्वल आलोक छाया था।

पुरोहित जी सत्यकाम के रिक्त आसन पर बैठ कर मूर्त्ति की ओर निहारने लगे।

यह क्या ?

यह क्या हो रहा है ?

भय से धड़कता कलेजा लिये पुरोहित जी ने अपनी आँखों से स्पष्ट देखा, भगवती का वह सदा का मुख नहीं है। एक अति स्निग्ध, अति सुन्दर, अति प्रिय, अति सरल षोडशी बाला करुण नयनों से उनकी ओर निहार रही है! ये नयनों में आँसू भरे हैं न ?

थर-थर काँपते पुरोहित जी ने आँखें मूंद लीं और भगवती के चरणों में सिर रख कर एक बार रुधे कण्ठ से पुकारा —"माँ!"

पूरब में शुक्र तारा उदित हो चुका था। सब जाग रहे थे। अचानक बड़े ज़ोर से दरवाज़े की साँकल खड़खड़ा उठी। हीरालाल लालटेन लिये दौड़ा आया, शीघ्रता से किवाड़ें खोलीं और हक्का-बक्का रह गया।

सामने भगवती के साधक पुत्र सत्यकाम का हाथ पकड़े खड़े थे। भयभीत होकर हीरालाल ने प्रणाम किया। पुरोहित जी सत्यकाम का हाथ पकड़े भीतर घुस आये और हीरालाल से पूछने लगे—"माँ चम्पा कहाँ है ?"

आँगन में सब जमा थे और भगवती के साधक शान्त भाव से कह रहे थे—"सत्यकाम को नहीं, मुझे दृष्टि-दोष हो गया था, माँ। इतने दिनों तक, इतने सालों तक, भगवती की आराधना करता रहा, पर मेरी साधना अधूरी ही रही। माँ को नहीं पहिचान सका। अज्ञानी होकर माँ का अपमान करता रहा। इससे बढ़ कर और क्या अधर्म होगा ? माँ मेरी परीक्षा ले रही थीं, असफल हो गया। मैं अबोध समझ नहीं सका, तुम भी नहीं समझ सकीं, चम्पा माँ! तुम्हारी भक्ति भी अधूरी है। कहाँ है वह ?"

चम्पा की आँखों में पानी भर आया था। काँपते कण्ठ से बोली—"कोने में सिर दिये पड़ी है अभागिन। पिता, उसने अफ़ीम खा ली थी, जान दे रही थी। बड़ी कठिनता से हम लोग उसे बचा पाये हैं।"

पुरोहित जी तड़ित-वेग से उठ कर खड़े हो गये और माथे से दोनों हाथ लगा कर बोले—"भगवती, जगज्जननी, मुझे इतने बड़े पाप से बचा लिया, तू धन्य है मैय्या!"

फिर चौंक कर बोले—"हीरालाल!"

"महाराज!" हीरालाल हाथ जोड़े खड़ा था।

"भैय्या, जल्दी करो! यज्ञ-वेदी बनाओ! अभी ब्राह्म-मुहूर्त्त शेष है। मैं अपने हाथों से सत्यकाम को उसे सौंप कर अभी सूर्योदय से पूर्व चल दूंगा। उत्तरा खंड में मेरे गुरुदेव हैं—वे मुझे पुकार रहे हैं। चम्पा माँ!"

"हाँ पिता," चम्पा रो कर बोली।

"मेरी माँ को लाओ, कहाँ है मेरी माँ अन्नपूर्णा ?"...

शिथिल गात, शिथिल वसन और धूलि धूसरित, कुम्हलाये मुख वाली अन्नपूर्णा को चम्पा पुरोहित जी के आगे ले आई। नयन मुंदे थे दु:खिनी के और नयनों से मोती झर रहे थे।

पुरोहितजी ने गदगद होकर कहा—"आँखें खोलो माँ, मैं तुम से क्षमा की भिक्षा लेने आया हूँ।"

अन्नपूर्णा और खड़ी न रह सकी। कुछ विचार न किया, पुरोहित जी की गोदी में सिर रख कर फफकने लगी। भगवती के साधक 'स्त्री-स्पर्श' की बात भूले, विश्व-चराचर का ज्ञान भूले। अन्नपूर्णा के सिर पर काँपता हाथ रख कर रो कर कह उठे—"मैय्या मेरी!"

करुण, पवित्र आँसुओं की नदी बह रही थी हवेली में।

दीपावली विशेषांक

'माया' तथा 'मनोहर कहानियां' के आगामी अक्तूबर-अंक दीपावली विशेषांक होंगे। इन विशेषांकों की तैयारी अभी से आरम्भ हो गयी है। इन अंकों को हम यथाशक्ति हर प्रकार से सुन्दर, उपयोगी तथा पठनीय बनाने का प्रयत्न करेंगे। विशेष विवरण के लिये अगला अंक देखें

—सम्पादक

दो नन्हीं जानें

निकोलाइ शेड्रिन

आधी रात का समय है। एक बड़े, अँधेरे हाल में, जिसमें सिर्फ़ एक टिमटिमाती, पतली मोमबत्ती जल रही है, दो नन्हें लड़के, आठ और ग्यारह वर्ष के, फ़र्श पर एक आयताकार मेज का सहारा लेकर बैठे हुए हैं। मृत्यु का सन्नाटा छाया है। सब सो रहे हैं। केवल ये नन्हें दास अपनी मालकिन के लौटने के पहले आँख मूंदने का साहस नहीं कर सकते। इनकी मालकिन बाहर किसी से मिलने गयी हैं और अभी तक वापस नहीं आयी हैं।

आधी रात! भूतों का समय और इतना बड़ा हाल! इतने अँधेरे कोने! लड़के एक-दूसरे को ताक रहे हैं। बड़ा साहस की एक हवा बाँधने की बेहद कोशिश कर रहा है और आठ साल का नन्हा अपनी भीगी नीली आँखों को बाँह के चिथड़े से पोंछ रहा है। अकेली मोमबत्ती तेज़ी से गली जा रही है। कभी-कभी कुहरे से ढँकी खिड़की पर कुछ पीली छायायें तैर जाती हैं, दरवाज़े उदास स्वर में बज उठते हैं। बाहर क्षुब्ध हवा के झोंकों में बर्फ़ भँवरे खा रहा है।

काँपते लड़के एक-दूसरे के और भी समीप आ जाते हैं। उस श्वेत, डरावने वातावरण में जैसे वे किसी आत्मा को देख रहे हों, सर्दी की हवा की 'सायँ-सायँ' में जैसे उन्हें कहीं से आती हुई एक चीख सुनाई पड़ रही हो।

बड़े का नाम वैनिया है और छोटे का मिस्चा। मिस्चा नन्हा और पीला है। उसकी आँखें बहुत बड़ी-बड़ी और नीली हैं। वैनिया जो मजबूत काठी का काली आँखों वाला है, मिस्चा को यह जतलाना चाहता है कि वह बिल्कुल नहीं डरा है—बिल्कुल नहीं; "क्योंकि एक दिन मैंने एक भूत को देखा था, सच्चे भूत को, लेकिन न मैं चीखा और न डरा ही। सच मिस्चा, मैं डरा नहीं हूँ," उसने दुहराया, लेकिन ज़रा-सी खटक से चौंक कर बोला—"सिर्फ़ मेरा दिल ज़रा कमज़ोर है, लेकिन इस वक्त, जब तुम मेरे साथ हो, मुझे बिल्कुल वैसा नहीं लग रहा है।"

"लेकिन अगर हम जला दिये जायँ," बेचारा नन्हा मिस्चा होंठों में ही बुदबुदाया।

"जला दिये जायँ! नहीं, यह असम्भव है!" वैनिया ने ऐसे निश्चय की हवा बाँध कर कहा कि मिस्चा को धीरज बँध गया।

"बताओ, वैनिया," ज़रा रुक कर मिस्चा बोला—"एक तेज़, ठंडे छुरे की चोट से बहुत तकलीफ़ होती है?"

"पहले छन ज़रा-सी मालूम होती है, और फिर कुछ नहीं," मिस्चा के घुंघराले बालों को, उसे विश्वास दिलाने की गरज से, सहला कर वैनिया ने जवाब दिया।

"लेकिन तुम्हें क्या याद नहीं, जब मिही रसोइये ने अपना गला काटा था? 'मैं अपना गला काटने जा रहा हूँ,' वह चीखा और जब उसने अपने गले पर छुरा फेरा—ओह, कैसे खून बह पड़ा!"

"ओह, मिही—मिही का ख्याल न करो—वह डरपोक था, तभी तो मरा नहीं। डाक्टरों ने उसे अच्छा कर दिया, और उस पर फिर पहले ही की तरह मार पड़ती रही। लेकिन हम अपना काम उससे कहीं अच्छा करेंगे। हम जब अपना गला काटेंगे, तो ठीक तरह—ताकि फिर पीटने के लिये वे हमें अच्छा न कर सकें।"

"और छूरे—तैयार हैं, वैनिया?"

"तैयार? तीन दिनों से मैंने उन्हें तेज और चमचमा कर रख छोड़ा है। क्या आखिरी घड़ी में तुम पीछे हटना चाहते हो—कायर?"

मिस्चा ने जवाब न दिया। एक लम्बी, सिसकी-भरी साँस लेकर उसने अपनी नीली आँखें गलती मोम-बत्ती पर जमा दीं।

"इसे फूंक मारूँ, वैनिया, आ---आखिरी बार?" उसने काँपते स्वर में पूछा।

"क्या फायदा? इसे जलने दो। तुम मेरी बातें खूब ध्यान से सुनो! जैसा हमने सोचा है, वैसा अभी करेंगे, तो सीधे स्वर्ग पहुँच जायेंगे, क्योंकि हम नन्हें बच्चे हैं और अभी जीवन में अधिक पाप नहीं किया है। लेकिन केटरीना, जिसने हमें ऐसा करने को मजबूर किया है, नरक में पड़ेगी।"

"वहाँ केटरीना को उसके पापों का दण्ड मिलेगा?"

"जरूर, मेरे नन्हें साथी!" खुश होकर वैनिया चीख पड़ा---"वे वहाँ उसे एक लोहे के बड़े काँटे से लटका देंगे और कोड़े से तब तक पीटते रहेंगे, जब तक खून न बह जाय। वे वहाँ उसे लाल जलती ईंटों पर नंगे पाँव चलायेंगे; शायद उन्हें वे उससे चटवायें भी, जैसा कि केटरीना ने, कुछ दिन हुए, ग़रीब सीन्का से कराया था। हाँ, वह इतनी पीटी जायगी और उसे यातना दी जायगी, जिसकी कल्पना करके भी आदमी का खून सर्द पड़ जाय।"

"लेकिन वह यह सब सहेगी कैसे?" दया से भर कर कोमल हृदय मिस्चा होंठों में ही बोला।

"वे उससे सहन करायेंगे। भाई, वहाँ किसी के चीखने-चिल्लाने, शिकवा-शिकायत पर वे ध्यान नहीं देते और चाहे तुम सह सको या नहीं, तुम्हें सब भुगतना ही पड़ेगा।"

बाहर कुत्ता भूंक उठा।

"ओह, कुत्ते ने भूत देखा है!" मिस्चा पीला पड़ता चीख पड़ा।

"छिः! मान लो, उसने देखा ही है---फिर भी इस तरह कायरपना दिखाते तुम्हें शर्म नहीं आती?"

"नहीं, वैनिया, मैं कायर नहीं हूँ। लेकिन ये कुत्ते कैसे भूत को देख लेते हैं?"

"क्योंकि कुत्ता आदमी का दोस्त होता है। घोड़े को इसकी बिल्कुल समझ नहीं होती, किन्तु कुत्ता सब समझता है---इसीलिये जब भूत नजदीक आता है, तो वह भूंक उठता है।"

"वैनिया," बीच में ही मिस्चा बोल पड़ा---"गला काटने के बजाय, अगर हम डूब कर मरें, तो?"

"कैसी बेवकूफी की बात कर रहे हो। क्या यह गर्मी का मौसम है?"

"सच, पानी ठण्डा है---इतना ठंडा कि हम डुबकी लगायें, तो सह नहीं सकते।"

"जरूर ऐसे डूब मरेंगे! अरे पहले तो हमें बर्फ़ ही तोड़ना पड़ेगा, और तब मुझे बिल्कुल शक नहीं कि तुम बाहर निकल आने की कोशिश करोगे, कायर! और फिर उस तरह कितनी तकलीफ़ होगी! छुरे की बात और ही है। मजबूती से गले के आर-पार खींच दो; बस। हाँ, तुम्हारा हाथ काँपे नहीं।"

"और तब हम पर फिर मार नहीं पड़ेगी?" नन्हें मिस्चा ने सवाल किया।

"नहीं, नहीं! फिर हमें कोई भी मार न सकेगा। फरिश्ता हमारी आत्माओं को ले जायेंगे और सीधे स्वर्ग में हमारे पिता के चरणों में रख देंगे।

"और हमारे पिता क्या कहेंगे?"

"हमारे पिता कहेंगे; 'मेरे नन्हें दासो, क्यों नहीं धैर्य-पूर्वक तुमने अपने जीवन के अन्त की प्रतीक्षा की? तुम ने क्यों अपनी जानें ले लीं?' और हम जवाब देंगे; 'प्यारे भगवान, जीवित रहना इतना कठिन था,' और हम उनसे सब-कुछ कह देंगे---कि कैसे केटरीना ने हमें बार-बार पीटा है---जब तक खून न बह जाय---पीटा है, और यातनायें दी हैं।"

मिस्चा ने उत्सुकता से सुना। जिस व्यथा से उसका नन्हा दिल फूट पड़ने की सीमा तक भर गया था, वह गर्म आँसू की धाराओं में बह निकली। वैनिया ने उसे धीरज धराने की कोशिश की।

"हम कल उसके साथ एक आखिरी शरारत करेंगे। कल खाने पर उसके यहाँ बड़े-बड़े लोगों की भीड़ होगी और मैंने सब छुरियाँ छिपा कर रख दी हैं, उसे अपने साथियों के साथ खाने के लिये एक भी नहीं मिलेगी।"

लेकिन मिस्चा रोता रहा। वैनिया ने मोमबत्ती पर फूंक मार दी और खिड़की के बाहर देखने लगा।

"यह कैसी हवा है, कैसी हवा!" और तब वह एक गीत गुनगुनाने लगा---"ओ रात! ओ गहरी काली रात!" लेकिन मिस्चा वह परिचित स्वर सुन कर जोर-जोर से सिसकियाँ लेता रहा।

"कैसे रोअनिया बच्चे हो तुम!" धीरज खो कर वैनिया चीख पड़ा। घड़ी के बजने की आवाज से शान्ति भंग हो गयी। मिस्चा ने अपनी आँखें पोंछीं और सहमा हुआ ही बोला---"मालकिन अब आया ही चाहती हैं।"

"हाँ, तुम्हारा ख्याल ठीक हो सकता है कि अब वह आ जाय, लेकिन क्या अच्छा हो कि अब हम सो जायें।"

"नहीं, नहीं! भगवान् के लिये, वैनिया, मैं तुमसे बिनती करता हूँ, सोने न जाओ!"

"तुम्हें डर लग रहा है?"

"हाँ—हाँ ऽ ऽ —मुझे डर लग रहा है," नन्हा बेचारा मिस्चा हकलाया।

"बेवकूफ़! मैं कितनी बार कहूँ, कि इस हाल में डरने की कोई बात नहीं? अगर तुम चाहो, तो मैं चारों ओर घूम कर देखूं,"—लेकिन ज़रा भी न हिले, इसका उसे पूरा ध्यान रहा। गहरी शान्ति छायी रही। बुझती मोमबत्ती को लड़के घूरते रहे। कुत्ता फिर भूंक उठा।

"जहन्नुम में जाय यह कुत्ता!" मिस्चा ने कहा।

"ओलिया अब कहाँ होगी?" अचानक वेनिया पूछ बैठा।

ओलिया मिस्चा की बहन थी। अट्ठारह साल की। छै महीने पहले वह गायब हो गयी थी। किसी को मालूम न था कि उसको क्या हुआ, गोकि घर में उसके बारे में बहुत-सी फुसफुसाहटें हुईं और बहुत-सी ख्याली बातें कही गयीं। किसी का कहना था, कि रोज-रोज की यातनाओं से छुटकारा पाने के लिये वह भाग गयी और कोई कहता था कि अपनी बेशर्मी छिपाने के लिये। जो मालूम था, वह इतना ही था कि एक दिन कपड़े साफ़ करने वह नदी पर गयी और फिर वह दिखायी न पड़ी। कपड़े नदी-किनारे पड़े मिले। दो दिन पहले उसके बाल जड़ से काट दिये गये थे, जैसा कि बुरी राह पर जानेवाली लड़कियों के साथ करने का रिवाज था। जब बाल काटे जा रहे थे, तो ओलिया ने अपना पूरा ज़ोर लगा कर बचाने की कोशिश की थी। मालकिन ने कह दिया था कि दुष्ट ओलिया ने यातना से छुटकारा पाने के लिये नहीं, बल्कि अपनी दुश्चरित्रता छिपाने के लिये नदी में डूब कर जान दे दी। फिर भी उसके भाग्य के बारे में एक रहस्य बना ही रहा। ओलिया के बारे में जब जाँच हुई और पुलीस ने मुकदमा चलाया, तो मालकिन ने अपने ज़ोर से फ़ैसला अपने पक्ष में करा लिया। कानूनी कार्यवाहियाँ खत्म हो गयीं। कुछ दिनों तक केटरीना कुछ सावधान रही और फिर उसके मनोरंजन के वे पुराने तरीके—दास और दासियों को यातना पहुँचा कर दिल बहलाने के—पहले ही की तरह चालू हो गये। क्या लोग उसे दुष्ट तथा निर्दयी समझते थे? बिलकुल नहीं। हर आदमी उसके यहाँ आता था और उसकी बैठक हमेशा भरी रहती थी। हर आदमी को मालूम था कि उसे दासों को मौलिक तथा नये-नये ढंग से दंड देकर दिल बहलाने का शौक़ था, लेकिन इसके लिये उसे कोई भी दोषी न ठहराता। सचमुच वह अपने समाज में अपनी खुशदिली और अपने दोस्तों के साथ मधुरता से व्यवहार करने के लिये बेहद लोकप्रिय थी।

एक दिन उसे शोरबे में एक बड़ा कीड़ा दिखायी पड़ गया। उसने बावर्ची को बुलाया और बड़े इतमिनान से उसने उसे निगल जाने की आज्ञा दी और उसके साथियों में से किसी को भी ज़रा भी आश्चर्य न हुआ।

एक दूसरे दिन उसने कहा—"सोन्का, चलो, चूल्हे को चाटो।" और सिन्का में इतनी हिम्मत कहाँ थी कि वह उसकी आज्ञा उल्लंघन कर जाती। सिन्का जब लौटी, तो उसकी जीभ में फफोला पड़ गया था और पीड़ा के मारे उसका चेहरा तमतमा रहा था, उसके बाल झुलस गये थे और बड़ी-बड़ी आँसू की बूंदे उसके गालों पर लुढ़क रही थी।

"मूर्ख! क्या तिल का ताड़ बना रही है!" मालकिन के साथियों में से एक ने कहा और सब-के-सब अट्टहास कर उठे। यही उस ज़माने का रिवाज था—अपने मेहमानों के दिलबहलाव का रोजमर्रे का तरीका!

मिस्चा के शिशु-हृदय पर ओलिया की याद का प्रभाव कुछ ऐसा हुआ कि एक भार से उसका सिर झुक गया और गाल सफेद पड़ गये। बड़ी-बड़ी आँसू की बूंदे उसकी आँखों में भर आयीं।

वेनिया बोला—"ओलिया लौट आयी है, उस दिन वह मालकिन आयी थी।"

"झूठ!" मिस्चा चीख उठा।

"नहीं, यह सही है—वह सचमुच लौट आयी है। मेट्राना ने बताया था कि मालकिन काग़ज़ से भी ज्यादा सफेद हो कर कमरे से भागी थी।"

"नहीं, यह झूठ है! ओलिया जीवित है—वह डूब कर मरी नहीं थी।" मिस्चा सिसकियाँ लेने लगा।

"ओह, जहाँ तक इस बात का सम्बन्ध है, मिस्चा, उसका डूब मरना वैसे ही निश्चय है, जैसे दो और दो का मिलकर चार होना।"

"यह झूठ है! यह झूठ है!" मिस्चा कराह उठा।

"नादान! इतना शोर क्यों मचा रहा है? हम क्या खुद कुछ घंटों के ही अन्दर मरने नहीं जा रहे हैं?"

मिस्चा चुप हो गया। उसे इस समय ओलिया की कितनी यादें आ रही थीं। उसने देखा कि ओलिया, जैसा कि वह हमेशा किया करती थी, अपने गालों को उँगलियों से ठोंकती दुलार-भरे, मधुर स्वर में कहती उसकी ओर आ रही है: "मेरे प्यारे नन्हें नादान!" या हमेशा की तरह मुस्कराती, जैसा कि उसके लिये एक नया कुर्ता लाते समय वह करती, कह रही है: "मेरे

नन्हें भाई, जब तक यह कुर्ती तुम्हारी देह पर रहे, भगवान् तुम्हें खुश रखें!" फिर उसे वह दिन याद आया, जब रोने के कारण ओलिया का चेहरा बदसूरत हो गया था, जब उसके सुन्दर केश काट दिये गये थे। वह मालकिन के कमरे से भागी थी। और उसके याचना के वे शब्द! मिस्चा के कानों में वे सिसकियों से लिपटे विनती के शब्द आज भी गूंज रहे हैं: "मुझे छोड़ दो! छोड़ दो! मैं फिर कभी नहीं, कभी भी नहीं ऐसा काम करूँगी! भगवान् के लिये मेरे बाल न काटो!" और वह उसकी हृदय को दहला देने वाली व्यथा-भरी चीख, जब उसकी लम्बी, सुन्दर गूंथी हुई चोटियाँ कैंची के नीचे गिर पड़ीं! और मिस्चा को असीम पीड़ा की स्थिति का वह दृश्य कुछ इस तरह हृदय को बेधता साकार हो उठा कि उसे विश्वास हो गया कि सचमुच उसने ओलिया को अभी देखा है, कि सचमुच उसकी आत्मा मालकिन को पीड़ित करने के लिये लौट आयी है और वह इस समय बिल्कुल उसके निकट खड़ी है। उसे लगा कि वह उसकी फुंसफुंसाहट सुन रहा है: "मेरे प्यारे नन्हें भाई!"

"ओ, ओलिया यहाँ है! वैनिया, क्या तुम उसे नहीं [illegible]ते?"

[illegible] यह बात जरूर झूठ है," मिस्चा के चेहरे को घूरता हुआ वैनिया बोला।

"मैं कसम खा कर कहता हूँ कि वह यहाँ है!" मिस्चा ने जोर देकर कहा।

"मैं कहता हूँ कि वह नहीं है। ओलिया हमें तकलीफ़ देने क्यों आयेगी? आदमी को पीड़ित करने के लिये ही तो भूत आते हैं। वह हमें क्या नुकसान पहुँचाना चाहेगी? वह भली थी। ओलिया अच्छी लड़की थी।"

"हाँ, हाँ, मेरी ओलिया अच्छी थी," यान्त्रिक तौर पर मिस्चा ने दुहराया।

"रुको, मैं सब कोनों में देखता हूँ," वैनिया ने ऐसे कहा, जैसे अपने साथी को वह विश्वास दिलाना चाहता हो, लेकिन स्वयं भी वह विश्वास कर लेना चाहता था। उसने मेज के नीचे देखा, कोनों में झांका और ओसारे में खुलने वाले दरवाजों को भी आधा खोलकर देखा। कुछ दिखायी नहीं पड़ा।

"कहीं कुछ नहीं है, मिस्चा।"

"ओलिया अच्छी थी," मिस्चा ने एक उदास प्रतिध्वनि की तरह दोहराया।

"हाँ," वैनिया ने कहा—"इसीलिये तो हम उसे इतना प्यार करते थे। तुम्हें मालूम है न, कि स्टेपका उसे बहुत प्यार करता था और उससे ब्याह करना चाहता था। इसीलिये तो उन्होंने उसे जेल भेज दिया। जब ओलिया डूब मरी, तो उसने मालकिन से कहा, 'मुझे फौज में भेज दो। मैं एक फौजी बनना तुम्हारी सेवा से कहीं ज्यादा पसन्द करूँगा।' और मालकिन ने जवाब दिया, 'नहीं, स्टेपका, तुम फौज में नहीं जाओगे। तुम अब चरवाहे का काम करोगे और चरागाह में ढोरों की रखवाली करोगे।' और उसे यह करना मंजूर नहीं था। इसीलिये चोरी का इलजाम लगाकर उसे जेल भेज दिया।"

"वैनिया, क्या फौज में काम करने पर अधिक यातना सहनी होती है?"

"मुझे नहीं मालूम। मालकिन के यहाँ से अधिक नहीं होगी। अरे मिस्चा, हमारी जिन्दगी भी क्या है!" और वह काँप उठा।

"मिस्चा, आओ, एक बार और सब कमरों में घूम आयें।"

"चलो," मिस्चा फुंसफुंसाया "यह आखिरी बार होगा।"

वैनिया आगे-आगे चला। "यह बड़ा हाल है," उसने कहा।

"यह बड़ा हाल है," मिस्चा ने प्रतिध्वनि की।

"ओह, नन्हें भाई, अब आओ, हर कोने को प्रणाम कर लें।"

मिस्चा ने चार बार सिर झुकाया। वैनिया ने भी। फिर हर कमरे में वह गये और हर कमरे के चारों कोनों को उन्होंने प्रणाम किया। आखिर मालकिन के कमरे में पहुँचे। यहाँ फर्श पर वैनिया ने थूका। मिस्चा ने भी।

"मिस्चा, अगर हम रोशनी कर दें..."

"हाँ, आओ रोशनी करें।" और एक क्षण के लिये उसकी नीली आँखें चमक उठीं और उस नन्हें, बेचारे दास के पीले मुखड़े पर एक शिशु-मुस्कान थिरक उठी। उन्होंने सारी मोमबत्तियाँ जला दीं। मिस्चा मेजबान बना और वैनिया मेहमान। लेकिन अभी मुश्किल से वे मखमली गद्दों पर बैठ पाये थे कि जोर से घंटी बज उठी। मेजबान और मेहमान, दोनों पीले पड़ गये। जल्दी से वे पलंगों से कूदे और रोशनी बुझाने लगे। दूसरी बार ऐसी भयंकरता से घंटी बजी, मानो क्रुद्ध हाथों ने उसे बजाया हो। आखिर सब मोमबत्तियाँ बुझ गयीं। वे बाहर के दरवाजे की ओर दौड़े। मालकिन की भयंकर आवाज बाहर सुनायी पड़ रही थी।

"क्या कर रहे हो, बेहूदो? यहाँ मुझे खड़ो रखने की तुम्हें कैसे हिम्मत हुई, शैतानो?"

"अपना दिमाग नाहक खराब न करो, डार्लिङ्ग," मालकिन के पति की आवाज आयी—"शायद हमारे भाई आये हों।"

इसी समय वैनिया ने दरवाजे खोले।

"हमारे भाई आये हैं क्या?" भयंकर आवाज में मालकिन ने पूछा।

"नहीं, सरकार, कोई नहीं आया हूँ," वैनिया ने जवाब दिया।

"तब फिर किसने सब बत्तियाँ जलाने की हिमाक़त की?"

"कोई नहीं, सरकार।"

तभी एक भयंकर घूंसा वैनिया पर आ पड़ा और वह फर्श पर लुढ़क गया।

"किसने बत्तियाँ जलायीं?" मालकिन ने मिस्चा की गर्दन पकड़ कर फिर पूछा।

"किसी ने नहीं, सरकार," वह हकलाया।

"तुम हम पर और जुल्म नहीं कर सकोगी," पागलपन के गुस्से में सब डर भूल कर वैनिया चीख पड़ा और झपट कर नाखूनों से मालकिन का मुंह नोचने लगा। मालकिन बेहोश हो गयीं और वैनिया ऐसे अन्धे गुस्से में लड़ने लगा, कि उसे हटाना आसान न था। गुस्से और आवेश से जैसे वह अपने को भूल गया था। लेकिन अन्त में उसे घसीट कर बावर्चीखाने में डाल दिया गया। वहाँ उसने एक बूंद भी आँसू न बहाया, बल्कि चारों ओर से घिरे हुए एक घायल जानवर की तरह भयंकर रूप से चीखता रहा।

आश्चर्य है कि मालकिन ने उस रात उन नन्हीं जानों को दंड देने की आज्ञा न दी। खतरा गुजरने के बाद थक कर चूर हो वैनिया सो गया। बेचारा नन्हा मिस्चा उसकी बगल में ही पड़ा था, लेकिन एक क्षण के लिये भी उसकी आँखें बन्द न हुईं। कल सुबह कौन-सा जुल्म उन पर तोड़ा जायगा, यह सोच कर वह काँप रहा था। उसे फिर ओलिया का मुखड़ा दिखायी दिया और उसकी आवाज भी सुनायी पड़ी। लेकिन अब वह ऊनी कपड़े नहीं पहने थी; लगता था, जैसे एक झिलमिला श्वेत वस्त्र उसकी देह से लिपटा हुआ था, और वह अपने रेशमी बालों पर एक चमचमाता हुआ ताज पहने थी। तीन बजे के करीब उसे नींद आ गयी। और चार बजे वैनिया ने उसे जगाया फुंसफुसाते—"समय हो गया।"

मिस्चा उठा और बिना यह समझे कि वह क्या कर रहा है या उसे कहाँ जाना है, वह यान्त्रिक तौर पर कपड़े पहनने लगा। उन्होंने हाल को पार किया और सुबह की सर्द हवा में वे बाहर आकर खड़े हो गये। वैनिया ने एक कैंची अपने पास रख ली थी। उसने अपना चोगा नोच डाला और टुकड़े-टुकड़े काट डाला, फिर अपने बूटों की परतें उखाड़ डालीं और नंगे पाँव खड़ा हो गया।

"अब ये मालकिन के किसी काम नहीं आ सकते," वह दाँतों के बीच से बोला।

मिस्चा ने उसे ग़ौर से देखा और उसकी शिशु-आत्मा पर यह बात चमक उठी कि सचमुच वे जीवन से विदा लेने जा रहे हैं। वह ज़ोर-ज़ोर से सिसक पड़ा।

"जाकर सो रह, रोअनिये!" दाँतों को कटकटा कर वैनिया ने कहा।

"नहीं, नहीं वैनिया, मैं तुम्हें कभी न छोड़ूंगा!"

"तब क्यों रो रहा है? पिछली रात को भूल गया?"

उन्होंने सहन पार किया। खुशी से भूंकता हुआ कुत्ता उन पर झपटा, लेकिन वैनिया ने जब कोड़ा फटकारा, तो वह वापस अपनी जगह पर जा दुबक गया। सुबह नम और सर्द थी। वैनिया कमीज में काँप रहा था। उन्होंने हाते को कूद कर पार किया। खेत सुनसान पड़े थे, उनके चारों ओर एक गहरी शान्ति छायी थी। उनके सामने एक गहरी खाई मुंह खोले पड़ी थी। यहीं काम पूरा करना था।

वैनिया पहले कूदा। फिर मिस्चा। उसके हर कदम पर जीवन की मूक, शक्तिशाली चेतना और भी जोर पकड़ती जा रही थी। लेकिन कुछ कहने की हिम्मत कैसे करे? वैनिया ने उसे डराया था, लेकिन इस क्षण उसे भी जीवन के लिये कदाचित एक क्षणिक कसक का अनुभव हो रहा हो—शायद उसकी आत्मा में वही चेतना बोल रही हो। यद्यपि उसका शरीर सर्दी के मारे काँप रहा था, तो भी उसके मस्तिष्क में जैसे आग जल रही हो।

छुरों को एक-दूसरे पर तेज़ करते हुए वैनिया सीधा चल रहा था। उसके भयंकर शब्द से मिस्चा के हृदय की धड़कनें बन्द हुई जा रही थीं, फिर भी वह वैनिया के पीछे-पीछे चल रहा था, शासित, अन्धे और हतबुद्धि की तरह।

सूर्योदय के समय उधर गुजरते हुए दो किसानों ने एक चरवाहे को, जो गहरी नींद में बेखबर पड़ा था, जगाया, और उससे कहा कि उन्होंने खाई से आती हुई मदद के लिये व्यथापूर्ण चीखें सुनी हैं। "दौड़ो! मदद करो!" सूने खेतों में आवाजें गूंज उठीं। वे तुरन्त खाई में घुस पड़े। वहाँ दो बच्चे पड़े मिले—एक अधनंगा और दोनों खून में डूबे हुए। वैनिया शान्त, सर्द और निर्जीव पड़ा था। उसका हाथ खता न हुआ था, बल्कि दृढ़ता से, निश्चयात्मक रूप से अपना काम पूरा किया था। मिस्चा अभी साँस ले रहा था, उसके छोटे, काँपते हाथ ने चोट जरूर की थी, लेकिन अपूर्ण। जीने की स्वाभाविक चाह ने उसे प्रभावित कर दिया था और अन्त में उस पर अपना अधिकार जमा लिया था।

—अनु० 'मुक्त'

सकी आँखें खुलीं, तो कमरे में धूप फैल चुकी थी। उसने लेटे-लेटे तकिये से सिर उठाकर देखा। खिड़कियों से सरो और चनारों के वृक्ष की पंक्तियाँ दिखाई पड़ रही थीं। नीले, चमकीले आकाश में एक बादल भी नहीं था। भीगी हुई वायु का एक झोंका आया, और सुगंध छोड़ गया। उसने अपने चेहरे पर ताजगी और प्रकाश के स्पर्श का अनुभव किया।

चारों ओर एक-जैसे पहाड़ थे, बिलकुल शुष्क और बंजर। कहीं हरियाली का नाम तक न था। इसके बावजूद उसे वे पहाड़ अच्छे मालूम हुए, शायद इसलिये कि ये पहाड़ अजनबी थे, यह प्रदेश अजनबी था, आकाश का यह भाग अजनबी था। यहाँ वह पहली बार आया था।

घंटी बजा कर, उसने चाय मँगवाई, और सिगरेट सुलगा कर, धूप में जा बैठा। रात उसे वह सपना फिर दिखाई पड़ा था—वही सपना, जिसे वह दीर्घकाल से देख रहा था, जो बिलकुल बेमानी था, अर्थहीन और विचित्र। न जाने वह स्वप्न उसे बार-बार क्यों दिखाई पड़ता था, कभी सम्पूर्ण और कभी कई भागों में, किन्तु हर बार बिना किसी परिवर्तन के, ज्यों-का-त्यों।

स्वप्न यों आरम्भ होता—जैसे एक निर्जन स्थान है, विशाल और भयानक निर्जन स्थान, जिसमें न कोई उतार है, न चढ़ाव, न कोई पथ-चिन्ह। एक अस्पष्ट-सी, अनजानी-सी पगडंडी पर वह चला जा रहा है—पगडंडी जो शायद उसके भ्रम की रचना है। आकाश पर पूर्णचन्द्र भी है, और तारे भी हैं, लेकिन फिर भी चारों ओर अंधकार है। चाँद की चाँदनी ज्योतिहीन है, तारों की दमक ग़ायब है। धरती और आकाश बिलकुल अंधकार पूर्ण हैं। चलते-चलते जैसे युग बीत जाते हैं। फिर एक धुँधली-सी पगडंडी दिखाई पड़ने लगती है, और एक अस्पष्ट-सी मानव आकृति, जो निकटतर होती जाती है। पगडंडी आ मिलती है, और वह आकृति उसके साथ-साथ चलने लगती है। वह उसे देखता है। वह एक अपरिचित सुन्दरी है, जिसके नख-शिख अपरिचित हैं, जिस की वेश-भूषा अपरिचित है, जिसके होंठ मौन हैं। वह उसकी ओर देखती है। वह अपनी बाँह उसकी कमर में डाल देता है। वह अपना सिर उसके कंधे पर रख देती है। दोनों उसी खामोशी में चलते जाते हैं। और कुछ देर के लिये चाँद-तारों की ज्योति लौट आती है, धरती और आकाश जगमगा उठते हैं। फिर एक जगह पगडंडी अलग होती है, और वह बिना एक शब्द कहे जुदा हो जाती है। जुदा होते समय वह ऐसी निगाहों से देखती है, मानो सदैव के लिये बिछुड़ रही हो। अँधियारी लौट आती है; प्रकाश छिप जाता है। वह उसे लम्बे-चौड़े

और भयानक वीराने में गुम होते देखता है, और अपना सफ़र जारी रखता है उस आकाश के नीचे, जिसमें निर्ज्योति तारे हैं; उस धरती पर, जहाँ न कोई पथ-चिन्ह है, न मंजिल का निशान, उस पगडंडी पर, जो शायद उसके अपने भ्रम की ही रचना है।

इसके बाद स्वप्न का दूसरा भाग दिखाई पड़ता है—जैसे चारों ओर बादल-ही-बादल हैं—उजले बादल, भूरे बादल, ऊदे बादल, विभिन्न रूपों के, भांति-भांति के बादल। समस्त सृष्टि में बादल-ही-बादल हैं। क्षितिज पर बादलों के ऊपर संगमर्मर का एक महल है, जिसके नोकदार बुर्ज आकाश से बातें कर रहे हैं, सुन्दर मीनार ऊँचे चले गये हैं, परकोटे दूर-दूर तक फैले हुए हैं। बादलों में स्वच्छ महल बहुत सुन्दर दिखाई पड़ रहा है। महल के बड़े फाटक तक रास्ता जाता है, बल खाता, मुड़ता हुआ—पेंचदार रास्ता, जो कभी बादलों के किनारों को छूता है, तो कभी उन्हीं के अन्दर होकर जाता है। कहीं-कहीं धुंध ने रास्ते को छिपा रक्खा है। और महल की एक खिड़की में कोई खड़ा है—शायद वही अपरिचित सुन्दरी, जिसके नख-शिख इतनी दूर से अच्छी तरह पहचाने नहीं जाते। जैसे वह किसी की प्रतीक्षा कर रही है। बड़ी उत्सुकता के साथ वह इस बल खाते हुए रास्ते को तय कर रहा है। हर लम्बे अन्तर के बाद उसे प्रतीत होता है, कि रास्ता उतने-का-उतना बाक़ी है, और वह अपरिचित सुन्दर मुखड़ा उतनी ही दूर है।

फिर जैसे वह मुखड़ा गायब हो जाता है, और देखते-देखते महल में दरारें पड़ जाती हैं, बुर्ज गिर जाते हैं, मीनार धराशायी हो जाते हैं। देखते-देखते सब-कुछ अस्त-व्यस्त हो जाता है। उसके पाँव तले रास्ता फट जाता है, और वह गिरता चला जाता है—ऐसे वातावरण में, जहाँ कुछ भी नहीं है, जहाँ केवल भयानक अंधकार है। वह अथाह गहराइयों में, अंधकारों में गिरता चला जाता, जहाँ शून्य है, अनन्त शून्य।

यहाँ उसकी आँख खुल जाती है।

ह रात की गाड़ी से वहाँ पहुँचा। वह पूरे दो वर्ष के बाद लम्बे भ्रमण पर निकला था। इतने दिनों उसे लम्बी छुट्टी का इन्तजार रहा। इस बार वह ऐसे देशों की ओर जा रहा था, जिनके बारे में बचपन से तरह-तरह की बातें सुनता आया था, जिन्हें देखने की उसे अत्यधिक उत्सुकता थी। सिगरेट खतम हो चुकी थी। धूप तेज होती जा रही थी। उसने एक बार फिर उस अर्थहीन स्वप्न पर विचार किया। काश, कि ऐसे उदास कर देने वाले स्वप्न उसे न दिखाई पड़ा करें! वह उदास नहीं होना चाहता था। वह प्रसन्न रहना चाहता था—स्वतंत्र, निश्चिन्त और प्रसन्न। तभी तो उसे भ्रमण से इतना प्रेम था। उसकी सब से प्रिय स्मृतियाँ भ्रमणों से सम्बंधित थीं। उसने अपरिचित आकाशों के नीचे तरह-तरह के दृश्य देखे थे—ऐसे दृश्य, जो हृदय और मस्तिष्क में बस कर रह गये थे। ये स्मृतियाँ कैसी चित्ताकर्षक थीं! और ये इसी दुनिया की स्मृतियाँ तो थीं। उसका बस चलता, तो सृष्टि के इस अंधकार के अथाह सागर के दूसरी ओर देखता, जहाँ नन्हें-मुन्ने तारों में असंख्य संसार बसे हैं, जहाँ नये चाँद हैं, नई आकाश-गंगा है, जहाँ नये-नये लोग बसते हैं। वह सब-कुछ देखना चाहता था। वह जिन्दगी का हर नया दिन किसी नई जगह बिताना चाहता था।

यह सैर-सपाटे की आदत उसे आरम्भ से ही थी, शायद बचपन से हो। उसे वे दिन याद थे, जब उसे घर से दूर स्कूल भेजा गया था, इतनी दूर कि वह साल में केवल एक बार ही घर आ सकता था। उसके पिता ऐसे विदेश में नियुक्त थे, जहाँ जंगल-ही-जंगल थे। दूर-दूर तक कोई स्कूल न था। माँ से विदा होते समय वह कितना रोया करता था। विदा होने से कई दिन पहले वह माँ को दिलासे देना शुरू कर देता—"माँ, लोहे की छत पर मैं सफ़ेद-सफ़ेद पत्थर फेंक रहा हूँ। इन्हें देख कर मुझे याद कर लिया करना।...

"माँ, मैं यहाँ दो गेंदे के पौधे लगा रहा हूँ। इनमें फूल आयेंगे, तो मैं भी याद आया करूँगा।...

"इस गीले फ़र्श पर मैंने अपने पाँव के निशान छोड़ दिये हैं। सूख जाने पर निशान पक्के हो जायँगे, और तुम्हें मेरी याद दिलायेंगे।...

और माँ कितनी उदास हो जातीं। उनकी आँखें भीगी-भीगी रहतीं। छुट्टियों में क्षण भर के लिये भी उसे अलग न होने देतीं। सुबह-सुबह सब से पहले वे उसका चेहरा चूमतीं, और देर तक देखती रहतीं। विदा होते समय पिता जी तो सिर पर हाथ फेर कर पीठ को तनिक-सा थपथपा देते, पर माँ दूर तक साथ जातीं। साथ में नन्हीं बहन भी होती, जो माँ को दुखी देख कर रोने लगती। स्कूल पहुँच कर, वह माँ को तरह-तरह की चीजें भेजता। और हर तीसरे दिन पत्र लिखता—'माँ! —शाम को पश्चिम में जो चमकीला तारा उदय होता है, उसे मैं देर तक देखा करता हूँ। आप भी उसे देखा कीजिये। ...सुबह-सुबह उठकर प्रार्थना करता हूँ। पिछली रात का फीका-सा चाँद निकलता है, तो उसे देखता हूँ कि शायद आप भी पूजा करके उसे देख रही हों।'

स्कूल के और बच्चे अपने माता-पिता की बातें करते, तो उसकी आँखों में आँसू आ जाते। कैसा जी चाहता, कि वह भी अपने घर में रहे, जहाँ माता-पिता का प्यार मिल सके, खेलने के लिये नन्हीं बहन का साथ हो।

सकी आँखें खुलीं, तो कमरे में धूप फैल रही थी। उसने लेटे-लेटे तकिये से सिर उठाकर देखा। खिड़कियों से सरो और चनारों के वृक्ष की पंक्तियाँ दिखाई पड़ रही थीं। नीले, चमकीले आकाश में एक बादल भी नहीं था। भीगी हुई वायु का एक झोंका आया, और सुगंध छोड़ गया। उसने अपने चेहरे पर ताजगी और प्रकाश के स्पर्श का अनुभव किया।

चारों ओर एक-जैसे पहाड़ थे, बिलकुल शुष्क और बंजर। कहीं हरियाली का नाम तक न था। इसके बावजूद उसे वे पहाड़ अच्छे मालूम हुए, शायद इसलिये कि ये पहाड़ अजनबी थे, यह प्रदेश अजनबी था, आकाश का यह भाग अजनबी था। यहाँ वह पहली बार आया था।

घंटी बजा कर, उसने चाय मँगवाई, और सिगरेट सुलगा कर, धूप में जा बैठा। रात उसे वह सपना फिर दिखाई पड़ा था—वही सपना, जिसे वह दीर्घकाल से देख रहा था, जो बिलकुल बेमानी था, अर्थहीन और विचित्र। न जाने वह स्वप्न उसे बार-बार क्यों दिखाई पड़ता था, कभी सम्पूर्ण और कभी कई भागों में, किन्तु हर बार बिना किसी परिवर्तन के, ज्यों-का-त्यों।

स्वप्न यों आरम्भ होता—जैसे एक निर्जन स्थान है, विशाल और भयानक निर्जन स्थान, जिसमें न कोई उतार है, न चढ़ाव, न कोई पथ-चिन्ह। एक अस्पष्ट-सी, अनजानी-सी पगडंडी पर वह चला जा रहा है—पगडंडी जो शायद उसके भ्रम की रचना है। आकाश पर पूर्णचन्द्र भी है, और तारे भी हैं, लेकिन फिर भी चारों ओर अंधकार है। चाँद की चाँदनी ज्योतिहीन है, तारों की दमक ग़ायब है। धरती और आकाश बिलकुल अंधकार पूर्ण हैं। चलते-चलते जैसे युग बीत जाते हैं। फिर एक धुँधली-सी पगडंडी दिखाई पड़ने लगती है, और एक अस्पष्ट-सी मानव आकृति, जो निकटतर होती जाती है। पगडंडी आ मिलती है, और वह आकृति उसके साथ-साथ चलने लगती है। वह उसे देखता है। वह एक अपरिचित सुन्दरी है, जिसके नख-शिख अपरिचित हैं, जिस की वेश-भूषा अपरिचित है, जिसके होंठ मौन हैं। वह उसकी ओर देखती है। वह अपनी बाँह उसकी कमर में डाल देता है। वह अपना सिर उसके कंधे पर रख देती है। दोनों उसी खामोशी में चलते जाते हैं। और कुछ देर के लिये चाँद-तारों की ज्योति लौट आती है, धरती और आकाश जगमगा उठते हैं। फिर एक जगह पगडंडी अलग होती है, और वह बिना एक शब्द कहे जुदा हो जाती है। जुदा होते समय वह ऐसी निगाहों से देखती है, मानो सदैव के लिये बिछुड़ रही हो। अँधियारी लौट आती है; प्रकाश छिप जाता है। वह उसे लम्बे-चौड़े

और भयानक वीराने में गुम होते देखता है, और अपना सफ़र जारी रखता है उस आकाश के नीचे, जिसमें निर्ज्योति तारे हैं, उस धरती पर, जहाँ न कोई पथ-चिन्ह है, न मंजिल का निशान, उस पगडंडी पर, जो शायद उसके अपने भ्रम की ही रचना है।

इसके बाद स्वप्न का दूसरा भाग दिखाई पड़ता है—जैसे चारों ओर बादल-ही-बादल हैं—उजले बादल, भूरे बादल, ऊदे बादल, विभिन्न रूपों के, भाँति-भाँति के बादल। समस्त सृष्टि में बादल-ही-बादल हैं। क्षितिज पर बादलों के ऊपर संगमर्मर का एक महल है, जिसके नोकदार बुर्ज आकाश से बातें कर रहे हैं, सुन्दर मीनार ऊँचे चले गये हैं, परकोटे दूर-दूर तक फैले हुए हैं। बादलों में स्वच्छ महल बहुत सुन्दर दिखाई पड़ रहा है। महल के बड़े फाटक तक रास्ता जाता है, बल खाता, मुड़ता हुआ—पेंचदार रास्ता, जो कभी बादलों के किनारों को छूता है, तो कभी उन्हीं के अन्दर होकर जाता है। कहीं-कहीं धुंध ने रास्ते को छिपा रक्खा है। और महल की एक खिड़की में कोई खड़ा है—शायद वहीं अपरिचित सुन्दरी, जिसके नख-शिख इतनी दूर से अच्छी तरह पहचाने नहीं जाते। जैसे वह किसी की प्रतीक्षा कर रही है। बड़ी उत्सुकता के साथ वह इस बल खाते हुए रास्ते को तय कर रहा है। हर लम्बे अन्तर के बाद उसे प्रतीत होता है, कि रास्ता उतने-का-उतना बाक़ी है, और वह अपरिचित सुन्दर मुखड़ा उतनी ही दूर है।

फिर जैसे वह मुखड़ा ग़ायब हो जाता है, और देखते-देखते महल में दरारें पड़ जाती हैं, बुर्ज गिर जाते हैं, मीनार धराशायी हो जाते हैं। देखते-देखते सब-कुछ अस्त-व्यस्त हो जाता है। उसके पाँव तले रास्ता फट जाता है, और वह गिरता चला जाता है—ऐसे वातावरण में, जहाँ कुछ भी नहीं है, जहाँ केवल भयानक अंधकार है। वह अथाह गहराइयों में, अंधकारों में गिरता चला जाता, जहाँ शून्य है, अनन्त शून्य।

यहाँ उसकी आँख खुल जाती है।

ह रात की गाड़ी से वहाँ पहुँचा। वह पूरे दो वर्ष के बाद लम्बे भ्रमण पर निकला था। इतने दिनों उसे लम्बी छुट्टी का इन्तज़ार रहा। इस बार वह ऐसे देशों की ओर जा रहा था, जिनके बारे में बचपन से तरह-तरह की बातें सुनता आया था, जिन्हें देखने की उसे अत्यधिक उत्सुकता थी। सिगरेट ख़तम हो चुकी थी। धूप तेज़ होती जा रही थी। उसने एक बार फिर उस अर्थहीन स्वप्न पर विचार किया। काश, कि ऐसे उदास कर देने वाले स्वप्न उसे न दिखाई पड़ा करें! वह उदास नहीं होना चाहता था। वह प्रसन्न रहना चाहता था—स्वतंत्र, निश्चिन्त और प्रसन्न। तभी तो उसे भ्रमण से इतना प्रेम था। उसकी सब से प्रिय स्मृतियाँ भ्रमणों से सम्बंधित थीं। उसने अपरिचित आकाशों के नीचे तरह-तरह के दृश्य देखे थे—ऐसे दृश्य, जो हृदय और मस्तिष्क में बस कर रह गये थे। ये स्मृतियाँ कैसी चित्ताकर्षक थीं! और ये इसी दुनिया की स्मृतियाँ तो थीं। उसका बस चलता, तो सृष्टि के इस अंधकार के अथाह सागर के दूसरी ओर देखता, जहाँ नन्हें-मुन्ने तारों में असंख्य संसार बसे हैं, जहाँ नये चाँद हैं, नई आकाश-गंगा है, जहाँ नये-नये लोग बसते हैं। वह सब-कुछ देखना चाहता था। वह ज़िन्दगी का हर नया दिन किसी नई जगह बिताना चाहता था।

यह सैर-सपाटे की आदत उसे आरम्भ से ही थी, शायद बचपन से ही। उसे वे दिन याद थे, जब उसे घर से दूर स्कूल भेजा गया था, इतना दूर कि वह साल में केवल एक बार ही घर आ सकता था। उसके पिता ऐसे विदेश में नियुक्त थे, जहाँ जंगल-ही-जंगल थे। दूर-दूर तक कोई स्कूल न था। माँ से विदा होते समय वह कितना रोया करता था। विदा होने से कई दिन पहले वह माँ को दिलासे देना शुरू कर देता—"माँ, लोहे की छत पर मैं सफ़ेद-सफ़ेद पत्थर फेंक रहा हूँ। इन्हें देख कर मुझे याद कर लिया करना।...

"माँ, मैं यहाँ दो गेंदे के पौधे लगा रहा हूँ। इनमें फूल आयेंगे, तो मैं भी याद आया करूँगा।...

"इस गीले फ़र्श पर मैंने अपने पाँव के निशान छोड़ दिये हैं। सूख जाने पर निशान पक्के हो जायेंगे, और तुम्हें मेरी याद दिलायेंगे।...

और माँ कितनी उदास हो जातीं। उनकी आँखें भीगी-भीगी रहतीं। छुट्टियों में क्षण भर के लिये भी उसे अलग न होने देतीं। सुबह-सुबह सब से पहले वे उसका चेहरा चूमतीं, और देर तक देखती रहतीं। विदा होते समय पिता जी तो सिर पर हाथ फेर कर पीठ को तनिक-सा थपथपा देते, पर माँ दूर तक साथ जातीं। साथ में नन्हीं बहन भी होती, जो माँ को दुखी देख कर रोने लगती। स्कूल पहुँच कर, वह माँ को तरह-तरह की चीज़ें भेजता। और हर तीसरे दिन पत्र लिखता—'माँ! —शाम को पश्चिम में जो चमकीला तारा उदय होता है, उसे मैं देर तक देखा करता हूँ। आप भी उसे देखा कीजिये। ...सुबह-सुबह उठकर प्रार्थना करता हूँ। पिछली रात का फीका-सा चाँद निकलता है, तो उसे देखता हूँ कि शायद आप भी पूजा करके उसे देख रही हों।'

स्कूल के और बच्चे अपने माता-पिता की बातें करते, तो उसकी आँखों में आँसू आ जाते। कैसा जी चाहता, कि वह भी अपने घर में रहे, जहाँ माता-पिता का प्यार मिल सके, खेलने के लिये नन्हीं बहन का साथ हो।

स्कूल बदलते रहे। उसे नई-नई जगहों पर भेजा गया। संबंधियों के प्यार से वह सदा वंचित रहा। उसे कभी अनुमान न हो सका, कि घर की चारदीवारी में कैसी जिन्दगी होती है। धीरे-धीरे उसे अकेले रहने की आदत पड़ गई, और उसी के साथ-साथ भ्रमण की भी।

शहर में घूमते हुए प्रत्येक चीज में एक विदेशी प्रभाव का अनुभव होता था। मकानों की निर्माण-पद्धति भिन्न थी। लोग और तरह के थे। उनका पहनावा, चेहरे, शरीर की बनावट, भाषा, सब भिन्न थे। उसे यह सब अत्यन्त रहस्यमय और नया लग रहा था।

एक दूकान के सामने उसने एक बूढ़े आदमी को देखा, जो गा रहा था। उसकी बग़ल में किताबें थीं। आयु सत्तर से ऊपर थी। बाल सफ़ेद हो चुके थे। चेहरे पर असंख्य झुर्रियाँ थीं, और आँखों पर मोटे शीशों की टूटी हुई ऐनक। फटे-पुराने लिबास के बावजूद उसके चेहरे पर वह शान थी जो आयु के साथ आ जाती है। ऐसा प्रतीत होता था, मानो उसने कभी अच्छे दिन भी देखे हैं। वह एक इश्क़िया ग़ज़ल गा रहा था बहुत ही निम्न कोटि की, जैसी प्रायः तृतीय श्रेणी के लोग गाया करते हैं। जब वह स्वर ऊँचा करता, तो गर्दन की रगें फूल जातीं, गला भर जाता, और कभी-कभी साँस भी रुक जाती। जल्दी से साँस लेकर वह फिर गाने लगता। जब ग़ज़ल ख़तम कर चुका, तो उसने उच्च स्वर में बताया, कि यह ग़ज़ल उस किताब की थी। किताब में ऐसी बहुत-सी ग़ज़लें थीं। किताब का दाम भी बताया, पर कोई ग्राहक आगे न आया। कुछ इन्तजार के बाद उसने एक और ग़ज़ल शुरू कर दी। कुछ लड़कों ने आवाज़ें कसे—"बड़े मियाँ, इस उम्र में इश्क़ व मुहब्बत की बातें? आराम से बैठकर भगवान का नाम क्यों नहीं लेते?"

बूढ़े ने कनखियों से उनकी ओर देखा। माथे का पसीना पोंछा, और ऐसी निगाहों से ज़मीन की ओर देखने लगा, मानो वह बेहद थका हुआ हो।

उसने एक किताब ख़रीदी थी, और जान-बूझकर कुछ अधिक दाम दे दिये। बूढ़ा अभी गिन ही रहा था, कि वह जल्दी से चल दिया। उसे बूढ़े की आवाज़ सुनाई दी, जिसने उसे बुलाकर अधिक पैसे लौटा दिये। उसने देखा, कि बूढ़े के हाथ में कँपकँपी थी।

वह शहर की सब से अधिक रौनक़ वाली सड़क पर चल रहा था, जहाँ दूकानें तरह-तरह की चीज़ों से सजी हुई थीं—रोयेंदार कोट, बालों वाले, मुलायम जूते, सुन्दर क़ालीन, हाथी दाँत के बेंट के चाक़ू। वह हर दूकान के सामने कुछ देर ठहरता। उसे एक जाना-पहचाना चेहरा दिखाई दिया। पास जाकर देखा, तो एक पुराना दोस्त निकला। दोनों बड़े तपाक से मिले। कॉलेज में दोनों बड़े गहरे दोस्त थे। बड़े प्रेम से दोनों ने एक-दूसरे के बारे में सवाल पूछे। बीते हुए दिनों की बातें होने लगीं—पुरानी बातें, पुरानी घटनायें, पुराने क़िस्से। लेकिन ये बातें बहुत जल्द ख़तम हो गईं। उन्हीं चीज़ों को दोहरा-दोहरा कर वे ऊब गये। उसे कुछ निराशा-सी हुई। दोनों के विचार बहुत बदल चुके थे। अब कोई नया विषय नहीं मिलता। सहवास का वह अनुभव, जो कुछ क्षण पहले इस तीव्रता के साथ हुआ था, ख़तम हो गया। उसकी जगह अजनबीपन ने ले ली। शायद वह स्वयं बदल गया था। शायद यह बदलना स्वाभाविक था। पुराने दिनों के बाद दोनों के जीवन की धुरी विभिन्न रही थी। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। दूरी और समय आदमी को किस तरह बदल देता है। ऐसा लगता था, मानो वे पहले कभी नहीं मिले। उसका मित्र दोपहर की गाड़ी से जा रहा था। वह उसे छोड़ने गया। जब वे समय बिताने के लिये बेकार की बातें कर रहे थे, तब उसे एक बूढ़े पिता की बातों ने आकर्षित कर लिया, जो अपने बेटे के साथ खड़ा था। उसका बेटा कहीं दूर जा रहा था। वह उसे उपदेश दे रहा था—"अपना दिल पत्थर का बना लो। क़िस्मत पर कभी भरोसा मत करना। क़िस्मत हमेशा धोखा देती है। बहादुरी, संतोष, धीरज—मैंने ज़िन्दगी भर इन्हें हाथ से नहीं छोड़ा। अब तुम जवान हो। तुम्हें बहादुर और सख़्त-दिल होना चाहिये। यह याद रक्खो, कि तुम्हारे बाप ने कभी हिम्मत नहीं हारी। उसके सामने तक़दीर काँपती थी।"

गाड़ी के चलने का समय आया, तो उसकी बातचीत का ढंग बदल गया। वही अनुभवी बूढ़ा, जो उपदेश दे रहा था, बिलकुल बच्चों की-सी बातें करने लगा। उसके बूढ़े चेहरे पर पीड़ा की लहर दौड़ गई। होंठ काँपने लगे। वह बड़ी कठिनाई से अपने आँसू रोक सका।

"यही लिखा था, बेटा, कि इस उम्र में तुम मुझ से इतनी दूर रहो। अगर तुम्हारी माँ जीवित होती, तो शायद मुझे तुम्हारी जुदाई इतनी न खलती। लेकिन अब मुझ से अकेले न रहा जायगा।"

गाड़ी ने सीटी दी। बूढ़ा आँसू न रोक सका। बोला—"मालूम होता है, यह आख़िरी मुलाक़ात है। . . .लाओ, मैं तुम्हारा माथा चूम लूँ। जब तुम नन्हें-से थे, तो तुम्हें विदा करते समय मैं हमेशा तुम्हारा माथा चूमा करता था।"

"आप ऐसी बातें क्यों करते हैं?" नौजवान बेपरवाही से बोला।

"मेरा दिल कहता है, कि यह आख़िरी मुलाक़ात है। . . .तुम नहीं जानते। इस उम्र में एक-एक पल गिना-गिनाया है।"

बूढ़े ने बेटे के माथे को यों चूमा, जैसे वह एक नन्हें से बच्चे को प्यार कर रहा हो। गाड़ी गतिशील हुई। बूढ़े ने जल्दी से कुछ नोट निकाले, और बेटे के हाथ में थमा दिये।

"यह लो। मैं तो भूल ही गया था।"

"नहीं, पिता जी. . .मेरी तनख़्वाह बहुत है। मुझे ज़रूरत नहीं।"

"तुम्हें ज़रूरत न हो, पर मेरे लिये तो तुम वही नन्हें-से बच्चे हो।...ले लो!"

बूढ़ा लड़खड़ाते क़दमों से साथ-साथ चल रहा था। यहाँ तक कि गाड़ी तेज़ हो गई, और वह साथ न दे सका।

उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे, जिन्हें उसने पोंछा नहीं। वह देर तक खड़ा गाड़ी के धुएँ को देखता रहा।

सारे पहर वह वहाँ की मशहूर

घिरी हुई थी। सूखी भद्दी चट्टानों में इतनी बड़ी झील बड़ी सुन्दर लगती थी। सूरज चमक रहा था। वायु-मण्डल शान्त था। पानी की सतह आईने के समान स्वच्छ थी। किनारे पर छोटे-छोटे कुंज थे। वह पहाड़ पर चढ़ता गया और इतनी ऊँचाई पर पहुँच गया, कि झील छोटी-सी मालूम होने लगी। सामने शहर फैली हुई घाटी में दूर तक फैला हुआ था। धूप पीली पड़ चुकी थी। परछाइयाँ लम्बी होती जा रही थीं। वह एक रास्ते से उतरा, जो उसे दूसरी ओर ले गया। उसने एक समूह को देखा, जो उसकी ओर आ रहा था। आगे-आगे एक आदमी था, जिसने कपड़ों में लिपटी हुई कोई चीज़ थाम रक्खी थी। एक जगह वे सब रुक गये। यह किसी बच्चे का शव था। बच्चे का बाप एक छोटी आयु का लड़का था, जिसे लोग छेड़ रहे थे। उसको समझा रहे थे, कि उसे भगवान का कृतज्ञ होना चाहिये, कि उसका बच्चा इतनी छोटी आयु में मर गया, नहीं तो इतनी छोटी उम्र में उस पर इतना बोझ आ पड़ता। सचमुच भगवान जो कुछ करते हैं, उसमें मनुष्य की कोई-न-कोई भलाई छिपी होती है। उसे चाहिये, कि वह भगवान की इस कृपा के लिये उसे धन्यवाद दे।

वहाँ बचपन की शादी का रिवाज था। उसने बच्चे के बाप को फिर से देखा। बिलकुल छोटी-सी आयु का, हँसमुख लड़का था, जो ख़ूब खिलखिलाकर हँस रहा था। शायद उसे पता भी नहीं था, कि यह क्या हो रहा है।

जब बच्चा दफ़न हो चुका, तब लोग धीरे-धीरे जाने लगे। लड़का कुछ दूर उनके साथ गया, फिर लौट आया। जब वहाँ कोई न रहा, तो वह क़ब्र के पास बैठ गया। उसने हाथों से चेहरा छिपा लिया, और फूट-फूट कर रोने लगा। उसकी घिग्घी बँध गई। देर तक उसके आँसू न थमे। यह किसी छोटे से लड़के का रुदन नहीं था। यह एक बाप का रुदन था। अपनी सन्तान के लिये एक बाप मातम कर रहा था।

जब वह लौटा, तो उदास था। दिन में देखी तस्वीरें सामने फिर रही थीं। प्रेम, शादी, सन्तान—वह इन सब झंझटों से मुक्त रहना चाहता था। वह कुँआरा था, और जीवन-पर्यन्त कुँआरा रहना चाहता था। वह दुनिया और दुनिया के खेल एक दर्शक की भाँति देखना चाहता था। उसने निश्चय कर रक्खा था, कि वह दुनिया की हर चीज़ को देखेगा, किन्तु दूर से। वह जीवन भर दर्शक मात्र रहना चाहता था। जीवन की सब से बड़ी मुसीबत बुढ़ापा है, पर वह बुढ़ापे के आने तक जीवित रहना चाहता था। वह उस से पहले ही मर जाना चाहता था।

उसने विचारों की शृंखला को एकदम काट दिया, और बड़े कमरे में चला गया। वहाँ नाच की तैयारियाँ हो रही थीं। कुछ देर के बाद जब संगीत आरम्भ हुआ, तो वह सब-कुछ भूल गया।

गले दिन वह यात्रा पर चल पड़ा। पहले बाग़ आये, फिर इक्के-दुक्के पेड़ और कँटीली झाड़ियाँ। फिर शुष्क और बंजर वीराने आये। मीलों तक एक-जैसी पथरीली धरती और चट्टानें थीं, जो दूर से ऊदी दिखाई पड़ती थीं, और पास आने पर उनके काले और भूरे रंग स्पष्ट हो जाते।

फिर ऊँचे पहाड़ों का सिलसिला शुरू हो गया। ये पहाड़ बड़े डरावने थे। यहाँ चट्टानें सूरज की गर्मी से झुलस कर रह गई थीं, और उनमें दरारें पड़ गई थीं। वायु मंडल में एक अजीब-सी वीराने की उदासी के सिवा और कुछ नहीं दिखाई देता था। उसने सोचा, कि यही वीराने जीवन-यात्रा में मील का पत्थर बनते हैं।—वीराने, जो आत्मा की अँधियारियों को एक नई ज्योति से आलोकित करते हैं। तब हृदय का अँधेरा धीरे-धीरे ग़ायब होता है, झुलसी हुई चट्टानों में रंगीन फूल खिलते हैं, तपते हुए वायु-मंडल में सुगंधित झोंके आते हैं, और अनन्त नीरवता नई-नई रागिनियों से गूँज उठती है। तब मनुष्य अपने आप से बातें करता है। उसके हृदय के अन्तर से वे भेद निकलते हैं, जो न जाने कब से वहाँ निहित हैं। तब आत्मा एक नई ज्योति से परिचित होती है। तब आत्मा रचना करती है।

उन फैली घाटियों में से होते हुए उसे याद आया, कि यह इलाक़ा कभी प्राचीन सभ्यता का घर था। यहाँ नगर बसे थे। आदमी की बनाई हुई चीज़ें कितनी आसानी से मिट जाती हैं। उसके छोड़े हुए सारे चिन्ह मिट जाते हैं, और फिर यही पथरीली चट्टानें और तपती हुई धरती रह जाती हैं।

सड़क बल खाती हुई चढ़ रही थी। यहाँ तक कि चोटी आ गई, और वह दर्रा भी आ गया, जिसके बारे में उसने इतना सुन रक्खा था। मोटर रुकी। एक ऊँचे पत्थर पर खड़े हो कर, उसने निगाह दौड़ाई। सामने नया देश दिखाई पड़ रहा था। वहाँ से नई दुनिया शुरू होती थी।

जिन्दगी के इतने साल बीत गये, और उसे कभी ख़याल तक न आया, कि केवल चन्द दिनों चल कर एक नये देश में पहुँचा जा सकता है, जहाँ की हर चीज नई है। वह यहाँ पहले क्यों न आया?

यहाँ से कई विजेता गुजरे। तब भी यह दर्रा यों ही रहा होगा। ये चट्टानें, यह फैली हुई धुँध, यह मटियाला आकाश, सब यों ही रहे होंगे। वह कौन-सी भावना थी, जो आने वालों को खींच लाई थी? धन और सम्पत्ति का लोभ, देश-विजय की इच्छा, या शायद उनसे ऊँचा आकर्षण—वह भावना, जो मनुष्यों को चाँद-तारों की ओर देखने पर विवश करती है। जिज्ञासा की भावना—अनदेखे दृश्यों की मनोहरता, अनजाने रास्तों का आकर्षण।

मोटर नीचे उतर रही थी। यह इलाक़ा भी वैसा ही था। पहाड़ियाँ ख़तम हुईं, और चटियल मैदान दिखाई पड़ा। उसे दो देहाती दिखाई पड़े। वे हाथ के इशारे से मोटर ठहराना चाहते थे। उसने मोटर रोक ली। वे बिना कुछ कहे-सुने, खिड़कियों से अन्दर कूद आये। उसे उनकी यह बदतमीज़ी बुरी लगी। लेकिन उनके चेहरों की अबोध मुस्कान देखकर, वह मुस्कराये बिना न रह सका। वे अपने गाँव जाना चाहते थे, जो रास्ते में पड़ता था।

उसने ध्यान से उन्हें देखा। ताँबे-जैसा दहकता हुआ रंग, स्वाभिमान से चमकती आँखें, घनी भवें, ऊपर को उठी हुई मूँछें, स्वस्थ शरीर। मैले-कुचैले कपड़ों में भी वे जँच रहे थे।

एक देहाती गाने लगा—

'दोस्तो! मर्द जिन्दगी भर मौत से खेलते हैं—
मर्द गिरती हुई बिजलियों को ललकार कर थाम लेते हैं!
हमेशा याद रक्खो, कि जो मुसीबत कल आने वाली है, वह मुसीबत ही नहीं,
क्योंकि अभी इतनी लम्बी रात बाक़ी है।'...

दूसरे ने उसका साथ दिया—

'दोस्तो! मैं अपने देश का पता बताऊँ?
मेरा देश कहाँ है?
हर वह जगह, जहाँ पाँव के नीचे भगवान की ज़मीन है।
और सिर पर भगवान का आस्मान!...'

उनके स्वर में कठोरता थी। वे बिना किसी सुर [illegible] गा रहे थे। पर उनके गाने में ग़ज़ब का लोच था।

'दोस्तो! मैं अपनी प्रेयसी का अता-पता बताऊँ—
जिसने मेरा सिर ऊँचा रक्खा,
जिसने मुझ से कभी बेवफ़ाई नहीं की—
मेरी बन्दूक, जिससे अगर चाहूँ, तो आस्मान के तारे गिरा लूँ!'...

वे गाते रहे। यहाँ तक कि उनका गाँव आ गया। अँधेरा हो चला था। वह जल्द शहर पहुँच जाना चाहता था, लेकिन देहातियों ने न जाने दिया। वह उनका मेहमान है। वे तीनों कच्ची दीवारों के एक बड़े-से अहाते में दाख़िल हुए। बड़े उत्साह से स्वागत हुआ। भोजन का समय आया। भोजन परोसा गया। भोजन करने वालों में दो क़ैदी भी थे, जो उसी शाम को गिरफ़्तार करके लाये गये थे, जिन्हें अभी तक स्थानीय न्यायालय के सामने पेश नहीं किया गया था। कुछ देर के लिये, उनकी हथकड़ियाँ खोल दी गईं। हाथ धुलवाये गये, और उन्हें साथ बिठाया गया।

भोजन ख़तम हो चुका, तो नौजवानों ने आग के चारों ओर हलक़ा बना लिया, और नाच की तैयारियाँ होने लगीं।

संगीत आरम्भ हुआ। सादे साज़ों से निकली हुई सादी लय पर वे बड़ी सुन्दरता से नाचने लगे, ताल पर एक साथ हिलते, ताल पर एक साथ घूमते। दीवारों पर उनकी लम्बी-लम्बी परछाइयाँ थिरक रही थीं।

लय तेज होती गई। संगीत में गरमी आ गई। नृत्य में गरमी आ गई।

उसने पहले भी संगीत सुना था। उसने सुबह-सुबह जोगियों को गाते सुना था—सूर्योदय के समय जब फैलते हुए प्रकाश और रंगों के बावजूद एक अजीब-सी उदासी आत्मा में उतरती चली जाती है। जोगियों के गाने में आत्मा की इस उदासी का समर्थन था। उसने विलासी लोगों की महफ़िलों में शोख़ और चंचल संगीत सुना था—ऐसी महफ़िलों में, जहाँ बेफ़िक्री थी, और सुन्दर मुखड़े थे, जहाँ जिन्दगी मंजिल पर आकर थम जाती थी, जहाँ भूत और भविष्य दोनों अर्थहीन थे। उसने प्यानो पर उदास गीत सुने थे, जब सफ़ेद और नाज़ुक उँगलियाँ काले और सफ़ेद परदों पर गतिशील थीं, और सुन्दर नयनों में सन्देश थे। सन्देश में दर्द था। जागी हुई रातों की बेचैनी थी। अगणित उलाहने थे। उसने बन्दरगाहों का मदभरा संगीत सुना था, जो सिर्फ़ मल्लाहों के लिये था, जो शराब की बोतलों से निकला हुआ मालूम होता था, जिसमें ग़ज़ब का ख़ुमार था। उसने ग़रीबों की झोंपड़ियों में धरती पर बैठ कर वे गीत भी सुने थे जिनमें दुख और सच्चाई घुले हुए थे, जिनको सुनकर उनके उदास चेहरे सन्तोष और क्षणिक मुस्कराहटों से चमक उठते। उसने रात के अँधेरों में बाँसुरी पर करुण गीत भी सुने थे, जिनमें शिकायतें-ही-शिकायतें थीं—किसी की शिकायतें किसी के लिये।

लेकिन यह संगीत सब से भिन्न था, सब से अलग था। इसमें निराली मनोहरता थी, निराली गूँज थी। इसमें तूफ़ानों का-सा संघर्ष था। यह संगीत और यह नृत्य इन फैली हुई घाटियों और चट्टानों की रचना थे। यह संगीत स्वतन्त्र हृदयों का संगीत था—वह संगीत, जो धरती और आकाश के बंधन से आजाद है, जो जीवन और मृत्यु की क़ैद से आजाद है, जो जीवन का संगीत है, जो अनन्त है, अमर है।

कुछ दिनों के बाद उसे एक गाँव में ठहरना पड़ा। एक पुरानी सराय में निवास हुआ। वहाँ एक और भ्रमणकारी था। वह दूसरे देश से आया था। वह अत्यन्त उदास मालूम होता था। उसके बाल उलझे हुए थे, और कपड़े अस्त-व्यस्त थे। वह पी रहा था। उसने अपने साथी को बाहर चलने के लिये कहा। किन्तु वह पीने में बुरी तरह व्यस्त था। अकेला ही वह बाहर निकला।

गाँव के चारों ओर बादाम और ख़ुबानियों के पेड़ थे, और अँगूर की बेलें थीं। पहाड़ों से एक झरना शोर मचाता हुआ आ रहा था, जिसके किनारों पर लम्बी-लम्बी घास में जंगली गुलाब खिला हुआ था। जब सूर्य अस्त हुआ और हवा के झोंके तेज हुए, तो नई-नई निकली हुई कोंपलों की सुगन्ध हवा में फैल गई। ऊषा ने ऊँचे पहाड़ों की चोटियों को लाल कर दिया। फिर अँधेरा गहरा होता गया। सरो और सफ़ेदे के पेड़ डरावने लगने लगे। जब वह वापस लौटा, तो अँधेरा छा चुका था। एकाएक उसे लपटें ऊँची होती दिखाई दीं और गोलियों की आवाज सुनाई दी। उसके सामने एक आदमी चलते-चलते भागने लगा, उसे गोली लगी, आक्रमणकारी, जो शायद किसी दूसरे गाँव के थे, बन्दूकों के कुंदों से दरवाजे तोड़ रहे थे। गलियों के दोनों ओर से गोलियाँ चल रही थीं। भागना या छिपना बेकार था। सनसनाती हुई गोलियाँ बिलकुल उसे छूती हुई निकल रही थीं। चारों ओर घोर लड़ाई हो रही थी, जिसका कारण कोई पुरानी शत्रुता लग रहा था। वह तमाशाई था, लेकिन उस समय उस झगड़े में बराबर का शरीक माना जा रहा था। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो अभी कुछ क्षणों में जीवन समाप्त हुआ चाहता है। उसे मौत बहुत निकट लगी। उसने मौत की साँस अपने माथे पर महसूस किया। सराय में पहुँचा, तो उसने अपने साथी को पीते हुए पाया। उसकी आँखें लाल थीं, और बाल बिखरे थे। वह बहुत पी गया था। रोकने पर भी वह न माना। दोनों चुपचाप बैठे रहे। दोनों एक-दूसरे के लिये बिलकुल अपरिचित थे। फिर न जाने कैसे ज़रा देर में दोस्त बन गये। शायद यह उस तीव्र ख़तरे का अनुभव था या मौत का भय, जो संयुक्त था। वे कठिन क्षण दोनों के लिये एक समान थे।

बहुत जल्द वे घुल-मिल गये। वह अपने जीवन की कहानी सुनाने लगा। उसने बताया, कि वह पक्का शराबी है। शराब के अतिरिक्त हर प्रकार के नशे करता है। जब उसने पीना शुरू किया था, तब उसका हृदय उसे धिक्कारा करता था। लेकिन अब कभी ऐसा ख़याल नहीं आता। अब वह हर समय नशे में रहता है। हर समय उस पर नींद-सी छाई रहती है। जब कभी इस हालत से चौंकता है, तो आस-पास की चीज़ों और वातावरण से बहुत घबराता है। अतएव उसकी यही कोशिश रहती है कि यह ख़ुमार हर समय छाया रहे। लोग उससे घृणा करते हैं। दुनिया में कोई उसका दोस्त नहीं, फिर भी उसके दिन बड़े मजे में कट रहे हैं। उसका जन्म प्रकृति की बहुत बड़ी भूल थी। उसे ऐसे घराने में पैदा किया गया, जहाँ पहले ही से बहुत-सी सन्तानें थीं। जब वह पैदा हुआ, तो सब ने शोक प्रकट किया। उसका पालन-पोषण बहुत बुरी तरह हुआ। कोई उसके अस्तित्व को नहीं चाहता था। होश सँभाला, तो असफलताओं ने आ दबोचा। वह जो कुछ बनना चाहता था, न बन सका। उसकी एक इच्छा भी पूरी नहीं हुई। उसे एक ऐसी चंचल सुन्दरी से प्रेम हो गया, जिसके अनगिनत चाहने वाले थे, जो संगदिल थी, बेवफ़ा थी। हज़ार यत्न करने पर भी वह उसका ख़याल दिल से न निकाल सका, उसे न भुला सका। सारा प्रेम और कोशिश बेकार गई। जीवन उसकी चंचलताओं के गिर्द चक्कर काटता रहा। फिर संयोग से उसे कहीं से धन मिल गया, बहुत-सा धन। अब बहुत से लोग आकर्षित हुए। वह भी आकर्षित हुई। दोनों का विवाह हो गया। शादी की शाम को वह अपने किसी प्रेमी से मिलने गई। शादी के बाद उसने खुल्लम-खुल्ला अपने प्रशंसकों से मिलना आरम्भ कर दिया। कई साल इकट्ठे रहते हुए भी, वे एक-दूसरे के लिये अपरिचित रहे। लेकिन उसका प्रेम कम न हो सका। वह उससे नफ़रत न कर सका। अन्त में एक दिन वह उसे छोड़ कर, किसी के साथ चली गई।

इसके बाद उसका झुकाव धर्म की ओर हुआ। उसने कोशिश की कि किसी तरह ईश्वर की उपासना में यह दुख भुला दे। उसने बड़ी नम्रता और सच्चे हृदय से प्रार्थना की, परन्तु भगवान ने कोई सहायता न की। फिर उस ने पाप करने चाहे, पापमय जीवन बिताना चाहा; किन्तु असफल रहा, क्योंकि वह कायर था, भावुक था। पाप करने के लिये साहस चाहिये। तब उसने मित्रों की मित्रता के भरोसे जीवित रहना चाहा। किन्तु मित्रों ने एक-एक करके धोखा दिया। दुनिया में उसका कोई

न रहा। फिर चारों ओर अंधकार छाने लगा। मन एकान्तप्रिय बन गया।

सन्न-से एक गोली बिलकुल निकट से गुज़री। शोर-गुल बिलकुल क़रीब आ गया। लड़ाई बहुत पास हो रही थी।

"मैं कैसे बताऊँ, कि मैंने कैसे-कैसे दुख झेले हैं, कैसे-कैसे नरकों में जलाया गया हूँ? शब्दों-द्वारा सच्चा-सच्चा हाल नहीं बताया जा सकता। किसी भाषा में इसका वर्णन नहीं हो सकता। मैं सदैव प्यासा रहा हूँ—ऐसा प्यासा, जिसे दूर पानी भी दिखाई देता हो। मैं अत्यन्त दुर्बल हूँ, डरपोक हूँ। एक दिन मैंने निश्चय कर लिया कि मैं अब कष्ट सहन नहीं कर सकता, जीवन का मुक़ाबिला नहीं कर सकता, प्रसन्न रहा करूँगा। मुझे शराब से नफ़रत थी। मैं शराबियों को घृणा की दृष्टि से देखता था। लेकिन मैं पीने लगा। अब मैं हर समय नशे में रहता हूँ, हर समय स्वप्न देखता रहता हूँ। स्वप्न और वास्तविकता में अन्तर ही क्या है? स्वप्न देखते समय सब-कुछ वास्तविक मालूम पड़ता है, लेकिन जागने पर यह महसूस होता है, कि यह सब तो स्वप्न था। मैं स्वप्नों से बहुत कम जागता हूँ। क्या बताऊँ, कि मैं कैसी-कैसी दुनियाओं में रहता हूँ, कैसे-कैसे वायु-मण्डलों में पड़ता हूँ? सारी ऊँचाइयाँ और नीचाइयाँ मेरे सामने नतमस्तक हो जाती हैं। मैं सृष्टि पर राज्य करता हूँ। मैंने चाँदनी रातों में क्लियोपेट्रा के साथ नील में नौका-भ्रमण किया है। एक घिरे हुए किले के परकोटे पर मैंने हेलेन का चुम्बन लिया है। मैंने दुनिया की प्रत्येक सुन्दरी से प्रेम किया है। मुझे उनके होंठों का एक-एक चुम्बन याद है। उनका एक-एक शब्द मेरे कानों में गूँज रहा है। मैंने लड़ाइयाँ जीती हैं। मैं तीरों की बौछार में गया, और दुश्मन का झंडा छीन लिया। जब पराजित नगर में घुसा, तो लोगों ने चरणों में सिर झुका दिया। कई बार मुझे ऐसी प्यारी मौत नसीब हुई, कि दुनिया की सुन्दरतम आँखें मेरे लिये आँसू बहाने लगीं। मैं फ़रिश्तों के साथ आसमानों में उड़ा हूँ, और धरती पर रेंगते तुच्छ मनुष्यों को देख-देख कर मुस्कराया हूँ। एक झुलसे हुए पहाड़ की उच्चतम चोटी पर मैंने ईश्वर से बातें की हैं। मैंने चरवाहों के साथ जंगलों में वे तारे चमकते देखे हैं, जो हज़रत ईसा के आने का पता देते थे, जो इतनी तेज़ी से चमकते थे, कि आँखें चौंधिया जायें। मैंने सुन्दर गोपियों को वंशी की तान पर मोहित किया है। मैंने समुद्र को मथा है। और मैंने कई बार विष पिया है। कौन कहता है, कि ये स्वप्न हैं? ये सब असलियत हैं। यह एक नया जीवन मुझे मिला है। अब मैं उन अँधियारियों में वापस हरगिज़ नहीं जाऊँगा। अब मैं सदा प्रसन्न रहूँगा।"

रात भर गोलियों की आवाज आती रही, शोर-गुल मचा रहा, लाशें थिरकती रहीं। जब रात समाप्त हुई, तब वह कोलाहल ख़त्म हुआ। सूर्य उदय हुआ, और जीवन का प्रकाश फैल गया। एक मस्त और अनजानी सुगन्ध कहीं से आकर, वायुमण्डल में समा गई। उस सुगन्धित वायु में साँस लेते समय उसने जीवन के स्पर्श का अनुभव किया। उसे जिन्दगी जागती हुई दिखाई दी। बाहर निकल कर देखा, तो रात की भयानक परछाइयाँ और अंधकार लोप हो चुके थे। गलियों में लोग इस तरह चल-फिर रहे थे, जैसे कुछ भी न हुआ हो। पड़ोस के मैदान में, जहाँ रात भर मार-काट होती रही एक बारात आकर ठहरी थी। साज़ों पर बहुत मधुर धुन बज रही थी। रंग-बिरंगे वस्त्र दिखाई पड़ रहे थे। ऊँचे ठहाके सुनाई दे रहे थे।

वह सोचने लगा, कि जीवन और मृत्यु एक-दूसरे से कितने क़रीब हैं। हर सुबह ज़िन्दगी जागती है, और प्रकाश की बाढ़ को साथ लाती है। रात के अंधकार पर मृत्यु का साम्राज्य छा जाता है। ज़िन्दगी सो जाती है।

रात उसे कैसा विचित्र अनुभव हुआ था। इससे पहले उसने मौत का नाम सुना था। रात उसने मौत को चलते-फिरते देखा था। रात उसने एक आदमी को निकट से देखा था।

उसकी निगाहें सामने दरवाज़े पर चली गईं। पर्दे की ओट से कोई उसे देख रहा था। उसे मुस्कराहटें भेंट की जा रही थीं। जवाब में वह भी मुस्कराया। एक गोरा हाथ कुछ भड़कीले रंग के फूल लिये बाहर निकला। फूल उसके पैरों पर आ गिरे। दरवाज़ा बन्द हो गया। उसने फूल उठाकर सूँघे।

उसने सोचा, कि जब तक दुनिया में सुन्दर मुखड़े हैं, सुगंधित फूल हैं, मनोहर मुस्कानें हैं, तब तक वह जीवित रहेगा।

नये शहर में पहुँचकर, दिन भर वह ऐतिहासिक इमारतें देखता रहा। इमारतों पर अनगिनत नाम खुदे हुए थे। कुछ नाम जाने-पहचाने-से लगे। ये उसके देश के लोगों के नाम थे। उसने हर जगह ऐतिहासिक स्थानों पर नामों की भरमार देखी थी। लोग पुरानी इमारतों पर नाम क्यों लिखते हैं? शायद इस आशा में, कि उनके नाम बार-बार पढ़े जायँगे, और वर्षों, युगों तक सुरक्षित रहेंगे। यह अमर बनने की इच्छा है, जो मनुष्य के मन में आदि काल से मौजूद है, तब से जब उसे मृत्यु से हार जाने का अनुभव हुआ। मनुष्य अमर बनने की लालसा में देशों को जीतता है, शानदार इमारतें बनवाता है, पुण्य के कार्य करता है, आविष्कार करता है, अपने को किसी महान हस्ती के साथ जोड़ कर, 'चंगेज़ी' 'उस्मानी' कहलाता है। और जब कुछ नहीं कर सकता, तो किसी इमारत पर अपना नाम लिख कर खुश हो लेता है।

उसने पहली बार बाग़ों में लाल घास देखी । बाग़ ऐसे थे, जैसे सुन्दर क़ालीन बिछे हों। ख़ुशनुमा क्यारियाँ, फूलों के पौधे, घास के रंगीन टुकड़े, पेड़ों की पंक्तियाँ, हर चीज बड़े कलात्मक ढंग से सजाई गई थी

उसके पास कुछ लोगों के नाम परिचय के पत्र थे । एक सज्जन से मिला । शाम हुई, तो उन्होंने नाच में चलने के लिये कहा, और बताया कि वहाँ शहर के ऊँचे लोग आयेंगे, और बड़ी रौनक़ रहेगी। वे दोनों गये। नाच-घर की सजावट, बहु-मूल्य सजावट का सामान, भड़कीले, सुगंधित लिबास और गर्वीले चेहरों ने उसे प्रभावित किया । वहाँ प्रत्येक व्यक्ति एक-से-एक बड़ी हैसियत का मालिक था । प्रत्येक सुन्दरी के बारे में कहानियाँ सुनी जाती थीं। उस वातावरण ने उसे अत्यधिक शर्मीला बना दिया । वह एक कोने में जा बैठा । उसके नये मित्र ने ज़रा-सा रस चखने की दावत दी । उसने कहा—"तुम यहाँ शर्माने के लिये नहीं आये हो, आनन्द लेने आये हो। ज़रा-सा रस पी लो, सारा सोच दूर हो जायगा ।"

उसने बताया, कि उसने पहले कभी नहीं पी । किन्तु वह आग्रह करता रहा ।

पहले भी कई बार उसे पीने के लिये विवश किया गया था, ऐसे क्षणों में जब वह सब-कुछ भूल जाना चाहता था, ऐसे क्षणों में भी जब प्रसन्न हृदय से आनन्द की तरह-तरह के अनुभव करना चाहता था । लेकिन उसने दुख में भी शराब से परहेज़ किया था, और सुख में भी ।

वह सोच में पड़ गया । जीवन का यह अनुभव बाकी था। वह इस अनुभव से वंचित नहीं रहना चाहता था। उसके मित्र का आग्रह बढ़ा, तो उसने चन्द घूँट ले लिये। स्वाद कसैला और कड़ुआ था ।

फिर उसका मित्र वह अफ़वाहें और उलटे-सीधे क़िस्से सुनाने लगा, जो वहाँ आई हुई महिलाओं के बारे में मशहूर थे। सब से अधिक अफ़वाहें मादाम के बारे में थीं। उसने ध्यान से देखा। मादाम पक्की आयु की स्त्री थी। स्वस्थ और लम्बे क़द की स्त्री। उसके लाल रंग पर काला लिबास ख़ूब सज रहा था। उसने बहुत-से

क़ीमती आभूषण पहन रक्खे थे। उसमें कोई ख़ास आकर्षण न था, सिवाय इसके कि वह तन्दुरुस्त थी। उसका लिबास आवश्यकता से अधिक चुस्त था, और वह बड़ी अनुभवी दिखाई पड़ती थी। उसके मित्र ने एक गिलास

और भर के दिया, जिसे वह कड़ुवी दवा की तरह मुँह बनाकर पी गया।

जब सुरूर आया, तो आस-पास की हर चीज़ पर जादू छा गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वह बड़ा हल्का-फुल्का है। वह चाहे, तो हवा में दूर तक उड़ता चला जाय। और यहाँ जितने लोग हैं, सब उसे जानते हैं। सब से पुरानी दोस्ती है। मादाम के चेहरे के नक्श धुँधले होते गये, और उसका अपना काल्पनिक सौंदर्य मादाम के चेहरे पर छा गया। प्रत्येक क्षण के बाद वह आकर्षण होती गई। उसमें इतना आकर्षण आ गया, कि वह चुप न रह सका। उसके सामने जा खड़ा हुआ। धीरे से सिर हिला कर, उसने अपना परिचय स्वयं दिया। मादाम अपने बारे में बताने लगी, तो उसने बात काट कर कहा—"सुन्दर चेहरा स्वयं अपना परिचय है।"

मादाम ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा। संगीत आरम्भ होने वाला था। उसने नाच के लिये कहा। मादाम बहुत अनमने ढंग से बोली—"जाओ, अपनी हमजोली चुनो।"

"हमजोली ही तो चुनी है। आओ, तुम्हें आईने के पास ले चलूँ।"

वह चुप हो गई, और दूसरी ओर देखने लगी।

"मैंने इस देश की बड़ी तारीफ़ सुनी थी। आज आँखों से देख लिया।"

मादाम ने ऐसी निगाहों से उसे देखा, जिन में गुस्सा और आश्चर्य मिले हुए थे। जैसे वह ऐसी निर्भीक बातें सुनने की आदी नहीं है, और एक अपरिचित की यह धृष्टता उसे अच्छी नहीं लगी है।

संगीत आरम्भ हुआ। उसने आगे बढ़ कर, मादाम के बाज़ू थाम लिये। वह उसकी तारीफ़ें कर रहा था—उसके सौंदर्य की, पोशाक की, अदाओं की। वह उसे कवितायें सुना रहा था।

दूसरा नाच।

तीसरा नाच।

मादाम का रुख़ बदल गया। अब वह उसकी बातें एक मनोहर मुस्कराहट के साथ सुन रही थी। उसने उसे अपने पति को दिखाया, जो एक विख्यात राजनीतिज्ञ था। उसके गोल-मटोल चेहरे पर बिना फ्रेम की ऐनक थी। वह क़ीमती, भड़कीला सूट पहने किसी विदेशी राजदूत से बड़ी गंभीर बहस कर रहा था।

फिर एकाएक उसने देखा, कि मादाम के चेहरे पर झुर्रियाँ हैं, जिन्हें रंग-रोग़न से छिपाया गया है। मादाम की दो ठोड़ियाँ हैं। वह जरूरत से अधिक मोटी है। उसने जल्दी से रस के कुछ घूँट लिये, और मादाम के चेहरे की झुर्रियाँ ग़ायब हो गईं, और एक नई ताजगी आ गई, जो पहले नहीं थी।

नाचते-नाचते वे परदों के पीछे चले गये। खंभों के पीछे से होता हुआ, वह मादाम को बाहर ले आया। बराम्दे में बड़ी तेज़ रोशनी थी। वह सीढ़ियाँ उतरते हुए, बोली—"सामने बड़ा अँधेरा है।"

"तुम्हारे चेहरे की जगमगाहट से सब कुछ आलोकित हो जायगा।"

"तुम अच्छे अजनबी हो! अभी तुम कह रहे थे, कि यहाँ की भाषा तुम्हें नहीं आती, और अब कुतर-कुतर जीभ चल रही है।...तुम कितने चालाक हो...और कितने..."

चुम्बन ने वाक्य पूर्ण न होने दिया।

"चलो, बाग़ में बैठ कर बातें करें।"

"नहीं, मेरा पति मुझे तलाश कर रहा होगा।"

"तुम्हारा पति नशे में चूर है, और एक नौजवान लड़की के साथ नाच रहा है।"

वह बातें करता रहा। उसने दुनिया भर की बातें कीं, हर विषय पर। और वह सुनती रही। जब अन्तिम बार वह मादाम के साथ नाच रहा था, तो उसे कुछ भी महसूस नहीं हो रहा था—आनन्द, उदासी, थकान, ख़ुमार, कुछ भी नहीं। वह केवल इतना जानता था, कि मादाम के चुम्बनों में मिठास थी, और बाहुपाश में आग। और उसने बार-बार रस पिया था।

जब वह अपने मित्र के साथ वापस लौटा, तो रात काफ़ी बीत चुकी थी। वह उसे होटल में छोड़ गया। वह कुछ देर कमरे में बैठा रहा। सड़क के पार संगीत सुनाई दे रहा था। सामने काफ़ी हाउस था, जहाँ घटिया क़िस्म का नाच हुआ करता था। वहाँ लफंगे आते थे। वह जाना नहीं चाहता था, किन्तु उसके क़दम आप-से-आप उसे ले गये। न जाने वह क्यों वहाँ चला गया। हल्का-हल्का सुगंधित धुँआँ फैला हुआ था। मद्धिम-सा रहस्यपूर्ण प्रकाश हो रहा था। अजीब-से साजों पर अजीब-सी गत बज रही थी। स्वर के उतार-चढ़ाव पर साज थर्राते, घन्टियाँ बजतीं। एक छरहरे शरीर की सुन्दर युवती चंग लिये नाच रही थी। उसका रोआँ-रोआँ फड़क रहा था। वह संगीत और उस जादू-भरे वातावरण का एक अंश मालूम होती थी। यह पता चलाना कठिन था, कि नाच संगीत से घुला-मिला था, या संगीत नाच से। ऐसा नाच उसने पहली बार देखा था। नर्तकी की निगाहें उस तक पहुँच रही थीं। वह उसे बार-बार देखती थी। दर्शकों से हट कर, वह परदे के पीछे चला गया, और ओट से देखने लगा। ज़ोर की झुनझुनाहट के साथ संगीत समाप्त हुआ। तालियाँ बजीं। नर्तकी दर्शकों के सामने झुक कर, पर्दे की ओर चली। पर्दे के पीछे दो बाँहें उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। वह थकी हुई थी। उसने पलकें उठा कर, उसकी ओर देखा, और कोई आपत्ति न की। पीने की दावत पर पहले इनकार हुआ, फिर मुस्करा कर इक़रार। दोनों होटल में चले आये।

"पास बैठो। इतनी दूर क्यों हो?"

वह ज़रा खिसकी।

"इतनी दूर ?"

वह सरक कर, कुछ और पास आ गई।

"अब भी बहुत दूर हो।"

वह और निकट आ गई।

उसने गिलास उसके होंठों से लगाया। नर्तकी ने एक घूंट ले कर, उसी गिलास से उसे पिलाई।

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

उसने नाम बताया।

"मैंने आज तुम्हें कई बार देखा।"

"मैंने भी तुम्हें देखा था," उसने झूठ कहा।

'क्या तुम सब परदेशी एक-जैसे होते हो, निडर और निर्भीक ?"

"और यहाँ सब लड़कियाँ एक-जैसी होती हैं, हसीन और चंचल ?"

"सब लड़कियाँ ?" वह इठला कर, बोली— "तुम यहाँ और किस-किस को जानते हो ?"

"कितनों ही को।"

वह दूर जा बैठी। "कौन हैं वह ?"

वह उँगलियों पर गिनवाने लगा—"एक तुम हो, दूसरी तुम हो, तीसरी तुम हो, चौथी, पाँचवीं, छठी, सब तुम हो !"

वह खिलखिला कर हँसी, और पास आ गई।

"मुझे अपने देश के गीत सुनाओ।"

और उसने अपने देश के गीत गाकर सुनाये।

धीरे-धीरे नशा उतर रहा था। तिलिस्म टूट रहा था। नर्तकी के होंठ फीके मालूम हो रहे थे। उसकी बातें अप्रिय लग रही थीं। उसने रूमाल से वह रंग-रोग़न पोछा, जो उसके चेहरे पर लग गया था। वह बहुत जल्द नर्तकी को वापस छोड़ आया।

फिर एक अजीब-सा पश्चात्ताप हृदय पर छा गया। उसे ग्लानि-सी होने लगी। ये चुम्बन कितने फीके और अस्वादिष्ट थे, उसी रस के समान कसैले और कड़ुवे। मादाम और नर्तकी के चुम्बन एक-जैसे थे। उनकी बातें कितनी साधारण कोटि की थीं। यह सब कितना साधारण और सस्ता था। ज़िन्दगी में पहली बार उसने ऐसे कर्म किये थे, जिनका वह आदी नहीं था, जो वैसे वह कभी न करता। वह सो न सका। नींद उतर चुकी थी। आत्मा की तृष्णा और भी बढ़ गई। ज़िन्दगी का एक तजरबा असफल रहा।
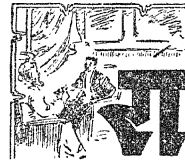
स्ते में एक चौराहे पर उसने नहरों के नाम पढ़े। एक नाम कुछ परिचित-सा लगा। देखा तो वहाँ के लिये भी एक परिचय-पत्र था, कुछ दूर पर जंगल विभाग के एक अफ़सर के नाम। उसका कोई खास इरादा नहीं था, फिर भी वह यात्रा स्थगित करके, उस तरफ़ चल दिया।

यह नया दोस्त बहुत अच्छी तरह मिला। उसका बँगला घने जंगलों के बीच में था। आस-पास बिलकुल आबादी नहीं थी। इतने बड़े जंगल में केवल दो मनुष्य रहते थे—वह और उसका नौकर। चारों ओर बड़ी मनोरम दृश्यावली थी। फिर भी वह दो-तीन दिन ठहरने के बाद ऊब गया। वहाँ ऐसा उदास एकान्त था, कि बड़ी घबराहट होती थी। उसके दोस्त ने बताया, कि वह उस जगह लगातार दस वर्ष से है। एक बार उसकी बदली आबादी के निकट हुई। किन्तु वह कुछ समय के बाद फिर यहीं चला आया। उसे जंगल बेहद पसन्द है। एकान्त के बिना वह जीवित नहीं रह सकता। खामोशी पर वह जान देता है। जब कभी उसे शहर जाने का संयोग होता है, तो उसे एक-एक क्षण काटना कठिन हो जाता है। उसकी आयु चालीस के लगभग है। वह कुँआरा है। उसके सगे-सम्बन्धी भी हैं। वह उनसे कभी-कभी मिलता भी है, लेकिन अधिक देर तक उनके साथ नहीं रह सकता। जंगलों में उसका मन खूब लगता है। वह अपना काम दिल लगाकर करता है, और शान्ति तथा एकान्त का आनन्द उठाता है। वह अब किसी का साथ, किसी की संगत नहीं चाहता। वह सब से दूर रहना चाहता है।

उसकी बातें बड़ी दिलचस्प थीं। शायद उसे दुखों का सामना करना पड़ा हो। शायद ज़िन्दगी ने उसके साथ बुरा व्यवहार किया हो। शायद उसे किसी प्रियजन ने धोखा दिया हो। उसकी उत्सुकता बढ़ती गई। उसने वहाँ और कुछ दिन रहने का निश्चय कर लिया। अन्त में एक दिन उसने पूछ ही लिया।

उसने बताया, कि न असफलताओं का सामना करना पड़ा, न ठोकरें लगीं, न कुछ और हुआ। बस, एक ज़रा-सी घटना घटी थी, जिसने उसके विचारों पर इतना प्रभाव डाला, कि वह बिलकुल बदल गया। पहले वह मित्रों और सम्बंधियों के बिना क्षण भर नहीं रह सकता था। वह महफ़िलों की जान था, मित्रों की आँखों का तारा था। फिर एक दिन उसने सुना, कि उसकी प्रेमिका मर गई—वह प्रेमिका, जिसे उसने मन-मन्दिर में वर्षों बैठाये रक्खा, जिसकी आराधना की। वह एक दुर्घटना में मरी। उसने जाकर देखा। वह एक मसले हुए हार के समान पड़ी हुई थी, टूटे हुए खिलौने की भाँति बेबस और तुच्छ। फिर जैसे

वर्षों का प्रेम और आराधना ख़त्म हो गई। सारी मधुर भावनायें ख़त्म हो गईं। तब उसे मालूम हुआ, कि उसे उसके होंठों से प्रेम नहीं था, बल्कि धधकते हुए गर्म चुम्बनों से था; उन गालों और केशों से प्रेम नहीं था, बल्कि उनके सजीव स्पर्श से था; उन आँखों की सुन्दर बनावट पसन्द नहीं थी, बल्कि निगाहों के वे सन्देश पसन्द थे, जो आत्मा में बिजलियाँ भर देते थे। उसे कदापि उस से प्रेम नहीं था। न जाने उसे क्या चीज़ प्रिय थी? वह किसी अनजानी चीज पर आसक्त था। वह चीज न जीवन था, न सौंदर्य। वह बिजलियों की चमक थी, लपकते हुए शोलों की तड़प थी—ऐसी चीज, जो महसूस की जा सकती है, छुई नहीं जा सकती।

उसके सामने जो शरीर पड़ा था, वह निष्प्राण और भयानक था। उसने नफ़रत महसूस की अपनी उस भावना से, जिसे वह प्रेम समझता रहा। उसने अपने-आप से नफ़रत महसूस की। उसके बाद न जाने क्या हुआ। वह बिलकुल बदल गया। वह अकेला रहने लगा। उसे सुन्दरता से दिलचस्पी रही, लेकिन स्थायी रूप से नहीं। लम्बे काल तक वह अपने कार्य में व्यस्त रहता। जब स्त्री की संगति की कमी का तीव्र अनुभव होता, तो छुट्टी लेकर शहरों में निकल जाता, जहाँ वह कुछ स्त्रियों को जानता था। वापस आकर, एक लम्बे समय के लिये वह सब-कुछ भुला देता। उसके विचार में स्त्री की संगति जरूरी थी, किन्तु हर समय नहीं, केवल कभी-कभी। हर समय की संगत से आदमी ऊब जाता है, उसके मानसिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

"पर यह एकाकीपन?"

"इतने दिनों लगातार अकेले रहकर अब मैं एकान्त को समझने लगा हूँ और वह मुझे। अब हम एक-दूसरे की भाषा समझते हैं। अब मुझे पक्षियों और पशुओं की भाषा आती है, पेड़ों, हवाओं और तारों की भाषा आती है। जब चीड़ के वृक्षों में से हवा सनसना कर गुजरती है, तो मैं घन्टों सुनता रहता हूँ। जब पहाड़ों की चोटियों को छूते हुए बादल भिन्न-भिन्न आकार बनाते हैं, तब मैं जान जाता हूँ कि उनका मतलब क्या है। सुबह-सुबह जब नन्हें-नन्हें पक्षी खिड़कियों में चहचहाते हैं, तो मैं उनकी एक-एक बात समझता हूँ। फूल खिलते हैं, तो मधुमक्खियाँ आकर वसन्त के गीत सुनाती हैं। जब जंगल सो जाता है, तब सन्नाटे में रात की हजारों आँखें मुझे ताकती हैं। मैं तारों को देखता रहता हूँ, और वे मुझे। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे मैं महफ़िल में बैठा हूँ। रात के गहरे सन्नाटे में मैंने भांति-भांति के शब्द सुने हैं—ऐसे शब्द, जिन्हें केवल अत्यधिक सन्नाटा पैदा करता है। कई बार ये शब्द मेरे हृदय से निकले हैं। अनेक बार सन्नाटे में मैंने अपनी आत्मा से निकले हुए गीत सुने हैं। नित्य सवेरे पक्षियों की सीटियाँ मुझे जगाती हैं। पक्षी मेरे तकिये पर आ बैठते हैं, और मुझे सुस्त, आलसी, आरामतलब और न जाने क्या-क्या कहते हैं। इन साथियों के अलावा मेरी लाइब्रेरी भी है, जहाँ कई पुराने दोस्त हर समय मेरा इन्तजार करते हैं। जब मैं पाइप सुलगाकर किताबों की आलमारियाँ खोलता हूँ, तो साहित्यिक गोष्ठियाँ जमती हैं। मेरे प्रिय कवि मुझे कवितायें सुनाते हैं, अपने प्रिय लेखकों से बहस करता हूँ। मेरी आलोचना पर वे बुरा नहीं मानते। बातों के बीच ऊँघने लगूँ, या सो जाऊँ, तो वे उठकर चले नहीं जाते। वे हर समय मेरी प्रतीक्षा करते हैं। कौन कहता है, कि मैं अकेला हूँ?"
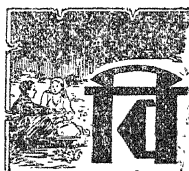
विदा होते समय उसने रास्ते में आने वाले एक स्थान की चर्चा की, जहाँ त्योहार पर उत्सव मनाया जा रहा था। एक परिचय-पत्र दिया, और अनुरोध किया, कि वह वहाँ अवश्य ठहरे।

अगले दिन वह वहाँ पहुँचा। शहर से बाहर पहाड़ी पर बाग़ों में उत्सव मनाया जा रहा था। आज उत्सव की अन्तिम रात थी। उसका मेज़बान शाम को उसे साथ ले गया। जब वह पहाड़ी पर पहुँचा, तो उसे ऐसा लगा, मानो परियों के देश में पहुँच गया हो। बादाम, शफ़तालू और सेब के पेड़ सफ़ेद और गुलाबी कलियों से लदे हुए थे। सूखी-सूखी टहनियों पर ये सुन्दर कलियाँ बड़ी प्यारी लग रही थीं। फूलदार पौधों में रंग-बिरंगे लट्टू चमक रहे थे। पटरियों के साथ-साथ गुलाब खिला हुआ था। भांति-भांति के गुलाब, लाल, पीले, सफ़ेद, नीले, कालापन लिये हुए। सरो के ऊँचे पेड़ों की पंक्तियाँ दूर-दूर तक चली गई थीं। हवा का हर झोंका अपने साथ एक नई सुगंध लाता, कभी कलियों से, कभी फूलों से, कभी किसी लिबास से।

बाग़ों के बीच में कोमल खम्भों और सुन्दर मेहराबों की एक सुबुक इमारत थी, जहाँ सब जमा थे। एक कोने में साजों पर संगीत हो रहा था। परिचय हुआ। उसे अजनबी दोस्त की हैसियत से शामिल कर लिया गया। एक महिला आई, और उसे नौजवान लड़कों और लड़कियों की टोली में ले गई, जहाँ खेल हो रहे थे। सब उस अजनबी को आश्चर्य से देखने लगे, जो विदेशी होते हुए भी, उन से अधिक भिन्न नहीं था। टोली में कुछ उत्तरी भागों के लड़के-लड़कियाँ भी थे, जिनके नख-शिख भिन्न थे, जिनकी भाषा भिन्न थी। शोर मचा हुआ था। सरो की पंक्तियों में से गुजर कर आगे मैदान था, जिसमें संगमर्मर की एक मूर्ति थी। मूर्ति के कन्धे पर सुराही थी, जिससे फ़ौवारा जारी था। क़ुमक़ुमों की रोशनी में पानी की बूँदें विभिन्न

रंगों में रंग जातीं, और बड़े ही मधुर शब्द के साथ नीचे गिरतीं।

पहले ताश के खेल होते रहे। फिर साज़ों के खेल आरम्भ हुए। वह अजनबी था, और सब की निगाहों और ध्यान का केन्द्र बना हुआ था। उसे बहुत-सी मुस्कराती हुई, नशीली आँखें देख रही थीं। आँखें सुन्दर थीं, मगर सब एक-जैसी थीं। दमकते हुए चेहरे भी एक-जैसे थे। फिर दो आँखें उसकी ओर उठीं। उन निगाहों में अजीब निरालापन था। उस चेहरे में अजीब आकर्षण था। उन लटों म अनोखा सौंदर्य था—लटें, जो माथे पर बिखरी थीं, कंधों पर बिखरी थीं। वह रसीले, गुलाबी होंठ, जो केवल चूमने के लिये बने थे। वह उजला माथा, और गाल जो प्यार भरे स्पर्श के लिये रचे गये थे। तेज झोंका आया। लटें बिखर गईं, और कानों में पहने हुए तारों की शक्ल के बुन्दे चमकने लगे। उसने बातें करनी चाहीं। जवाब हल्की-सी मुस्कराहट से मिला। वह उसकी भाषा नहीं समझती थी। अगले खेल में वे साथी बने। वे दरख्तों में भागते हुए दूर चले गय, फौव्वारे के पास। उसने जान-बूझकर देर लगा दी, और उसे ग़ौर से देखा। यह कैसा हुस्न था, यह कैसी दिलरुबाई है? इस सौन्दर्य से तो वह पहले कभी परिचित नहीं हुआ—यह अजनबी हुस्न, जिसमें हजारों शोलों की गर्मी थी, चाँद की किरनों-जैसी मुलायमियत और प्रभात की मद्धिम चमक, कमल के फूल की कलात्मक बनावट। इस सौन्दर्य में, रेगिस्तान म एकाएक दिखाई पड़ जाने वाली मृग-तृष्णा का आकर्षण था। शायद उसे निगाह भर देखने के लिये ही, उसने इतनी लम्बी यात्रा की थी। जब वे वापस लौटे, तो बहुत-सी लड़कियाँ बाग़ के दूसरे कोने से आ गईं, और वह उस भीड़ में ओझल हो गई। खोजते हुए उसने देखा, कि वह एक कोने में खड़ी उसकी ओर देख रही है। अगले खेल के लिये साथी चुने जा रहे। सब को कहा गया, कि बाग़ में दूर-दूर तक निकल जायँ। हर एक अपने अपने लिये एक फूल तोड़े। जिन-जिनके फूल एक-से होंगे, वे साथी बन जायँगे।

वह लड़कियों के साथ चली गई। जब लौटी, तो पास से गुजरते हुए एक फूल उसकी ओर फेंक गई। जब फूल पश किये गये, तो उसका फूल नीले रंग का

था। फूलों के ढेर में सिर्फ़ एक और फूल इस रंग का था।

तारों को गिनने का खेल शुरू हुआ। उसने बातें करनी चाहीं, लेकिन सिर हिलाकर जवाब दिया गया, कि वह उसकी भाषा नहीं समझती।

दरख्तों में चलते-चलते, वे दूर निकल गये, इतनी दूर, जहाँ क़ुमक़ुमों की रोशनी नहीं पहुँच सकती थी, जहाँ संगीत के स्वर इतने मद्धिम हो चुके थे, कि केवल काल्पनिक चीज जान पड़ते थे। उसके माथे पर जुल्फ़ें बिखरी थीं—बल खाती हुई, लहराती जुल्फ़ें, जिन में दो तारों-जैसे बुन्दे चमक रहे थे।

और आसमान से तारे झांक रहे थे—सरो की चोटियों से अटके हुए तारे, पत्तियों और टहनियों में उलझे हुए तारे, टिमटिमाते, जगमगाते तारे, नीले, हरे, लाल, गोल, नुकीले तारे, नन्हे-मुन्ने, बड़े-बड़े तारे।

होंठ चुप थे, और आँखें बोल रही थीं। आँखें महसूस कर रही थीं वह भावनायें, जो शब्दों द्वारा नहीं प्रकट की जा सकतीं, जिन्हें केवल संगीत प्रकट कर सकता है—संगीत, जो धीमे स्वर में गूँज रहा था।

तब उसके उजड़े हुए हृदय में प्रेम की किरण फूटी। उसकी आँखों में प्रेम की ज्योति समा गई। और उसकी आत्मा प्रेम के मस्ती-भरे बोझ के नीचे दब गई।

कई बार वे भीड़ में शामिल हुए, खेलों में शरीक हुए। फिर कुंजों में वापस लौट आये। फ़ौवारे के पास से गुज़रे। मूर्ति मुस्करा रही थी। फुहारें रंग-बिरंगी बूँदियों में बिखरी जा रही थीं।

वायलिन के तार साँस ले रहे थे। नग़मे की धड़कन सुनाई देने लगी। संगीत जीवित हो गया। उन दोनों को एक-दूसरे की भाषा नहीं आती थी, फिर भी जी भर के बातें हुईं। जिन्दगी भर की कहानियाँ एक-दूसरे को सुनाई गईं। वे अब अपरिचित नहीं रहे थे।

यह चेहरा, जो जीवन-पर्यन्त दर्शन का निमन्त्रण देता रहेगा, जिसकी मनोहरता और सुन्दरता कभी कम न होगी! काश, ये स्वप्न वास्तविकता का रूप धारण कर लें, यह बहाव रुक जाय! जिसके मौन में इतना जादू है, उसके बोल कैसे होंगे?

दीर्घकाल के बाद उसकी आत्मा की निर्जनता में बहार आई। जो शोला वर्षों से बुझ चुका था, वह आज भड़का। अँधियारियों के क्षितिज पर अबोध प्रेम उदय हुआ। चारों ओर प्रकाश छा गया।

प्रेम की तीव्र अनुभूति के साथ भविष्य के प्यारे स्वप्न, रंगीन स्वप्न, सहमी हुई उमंगें—सब जादू-भरे भाव फिर लौट आये। उसे अजीब-अजीब, सुखद घटनाओं की आशा थी। जैसे निगाहों के सन्देश कभी खत्म न होंगे, अब यह चेहरा कभी ओझल नहीं होगा। तपती हुई मरु-भूमि में जो कभी-कभी मृग-तृष्णा दिखाई पड़ती थी, कोज वास्तविकता बन गयी थी। आज उसने मृग-तृष्णा आ पा लिया था।

तारे झांकते रहे। वायलिन पर वह स्वर्गीय धुन बजती रही, खुशबूयें मचलती रहीं। वे दोनों एक-दूसरे को देखते रहे।...

फिर नए खेलों के लिये बुलाया गया। वह कुछ देर के लिये अलग हो गई। चलते-चलते उसने घूमकर देखा। वह खेल में नहीं शरीक हुआ, और प्रतीक्षा करता रहा। लेकिन वह न आई। क्षण-पर-क्षण बीतते गये, पर वह वापस न लौटी। वह देर तक बैठा उसकी राह देखता रहा। पर वह न आई।

उसने बाग़ के कोने-कोने में ढूँढ़ा, भीड़ में खोज की, अपने मेज़बान से पूछा। पर वह न मिली।...

फिर उसने देखा, कि रात ढल चुकी है। उत्सव समाप्त होने वाला है, और लोग जा रहे हैं। आँखों में जिज्ञासा और हृदय में आशा-निराशा लिये, वह बराबर उसकी खोज में लगा रहा। पहाड़ी से जब वह बाग़ में वापस आया, तो वहाँ कोई न था। सब जा चुके थे।

वह पेड़ों के झुंड में गया। लम्बे-लम्बे पेड़ उदास खड़े थे। फ़ौवारा चुप था। पानी की बूँदें सुराही से गिर रही थीं। पानी की ये बूँदें मूर्ति की आँखों से बहती हुई, गालों पर फिसल रही थीं। टप-टप-टप-टप! ऐसा लगता था, मानो मूर्ति रो रही हो।

एकाएक उसे अपना स्वप्न याद आया—स्वप्न, जिसे वह लड़कपन से देखता आया था। उस अस्पष्ट-सी पग-डंडी पर मिलने वाली सुन्दरी के नख-शिख बिलकुल ऐसे ही तो थे। यह वही तो थी, जो उसे निर्जन स्थानों में कुछ देर के लिये मिल कर बिछुड़ जाती थी। उसका दिल तिलमिलाने लगा।

हे राम, यह अभी कौन मिला था? यह अभी कौन जुदा हुआ था? यह स्वप्न था, या असलियत? यह क्या था? इस अजनबी आसमान का कोई जादू, या इन रहस्यपूर्ण सुगन्धों का जादू, या संगीत का तिलिस्म? वह जादू कहाँ गया? वह संगीत कहाँ गया? सुगंधें क्या हुईं? वह स्वप्नों की सुन्दरी कहाँ गई? काश उसने उसे पहले पहचान लिया होता! शायद, लेकिन नहीं। अब वह जिन्दगी में दोबारा नहीं मिलेगी।

सने पिछली रात के पीले चाँद को उदय होते देखा, तारों की ज्योति मद्धिम होते देखी। उदास चाँदनी फैलती गई। हल्की-हल्की धुँध कहीं से आकर छा गई। बादलों के गाले उड़े जा रहे थे। फिर एकाकीपन ने उसे घेर लिया—वह एकाकीपन, जिससे भ्रमण-प्रिय लोग परिचित होते हैं, जो दब-पाँव आती है, और एकदम दबोच लेती है!

एकान्त हो या समूह, जिसका वार कभी खाली नहीं जाता।

उसने बहुत चाहा, कि किसी प्रकार विचारों का रुख मोड़ दे। उसने अपने-आपको बहलाने की कोशिश की। अभी कुछ देर बाद सूरज निकलेगा, रोशनी फैल जायगी, चारों ओर चहल-पहल होगी। वह नई-नई चीजें देखेगा, या वह सरहद की तरफ़ लौट जायगा, अपने देश चला जायगा। वह सब-कुछ भूल जायगा।

लेकिन वह एकाकीपन बढ़ता गया। वह उदासी गहरी होती गई। दुख से उसका दिल बैठने लगा। वह क्यों इस तरह मारा-मारा फिरता है? वह कौन-सी बेचैनी है, कौन सी व्यथा है, जो उसे भ्रमण के लिये विवश करती है? वह किस दर्द को दिल में छिपाये, यों आवारा फिरता है? शान्ति से वह क्यों डरता है? आख़िर यह भागना कैसा? और यों कब तक होता रहेगा?

वह इस शोर मचाती, गतिशील दुनिया का एक जड़-अंश क्यों नहीं बन जाता? वह इस भारी भीड़ में क्यों शामिल नहीं हो जाता? क्या चीज है, जिसे वह यों ढूँढता फिरता है? वह इतने आदमियों को जानता है, लेकिन इनमें क्या कोई उसका दोस्त और साथी है? क्या दुनिया में कोई ऐसी चीज भी है, जिसे वह अपनी कह सकता हो? वह हमेशा मृग-तृष्णा की खोज में रहा। मृग-तृष्णा सदैव उसे अपनी ओर क्यों खींचती है? यह कैसा आकर्षण है?

नीचे नगर की रोशनियाँ टिमटिमा रही थीं। धुँध नीचे उतर आई। रोशनियाँ मद्धिम होकर छिप गईं। बादलों में से निस्तेज चाँद निकला, और ज्योतिहीन तारे झांकने लगे। धुँध में तरह-तरह की परछाइयाँ फैल गईं। आकृतियाँ गतिशील हो गईं। उसे ऐसा लगा, मानो वह इस नक्षत्र का पहला मनुष्य है, मानो वह इस नक्षत्र का अन्तिम मनुष्य है—वह मनुष्य, जो सृष्टि को मृत्यु से मिलाता है, वह मनुष्य जो सदियों से अकेला है, सदियों से बेचैन है।

उसने देखा, कि सामने क्षितिज पर बादलों ने एक सुन्दर महल बना रक्खा है, जिसके परकोटे दूर-दूर तक फैले हुए हैं। मीनार आकाश से बातें कर रहे हैं। महल के मुख्य द्वार तक बल खाता हुआ रास्ता जाता है, बादलों के किनारों को छूता, धुँध में से होता हुआ।

उसे याद आ गया। यही महल तो उसने स्वप्नों में देखा था। ठीक, बिलकुल यही तो था। कोई चीज उसके मन को मसोसने लगी, उसकी आत्मा में चुटकियाँ लेने लगी। वह उदासी तीव्र होती गई। एकाकीपन की भावना बढ़ती गई।

एकाएक बादल हिले। महल में दरारें पड़ गईं। बुर्ज गिर गये। मीनार धराशायी हो गये। बल खाता रास्ता फट गया। उसे ऐसा अनुभव हुआ, मानो वह अथाह गहराइयों में उतरता जा रहा है, ऐसे वातावरण में, जहाँ कुछ भी नहीं है, केवल भयानक अंधकार है।

वह अंधकार में गिरता चला गया, जहाँ केवल शून्य था, भयानक, अनन्त शून्य।

पाँच सौ रुपया इनाम

श्याम मोहन शुक्ल

पिता का नाम—कृष्ण कुमार शुक्ल

जो शख्स इस आदमी को तारीख १०-८-५१ के भीतर पकड़ कर किसी भी पुलिस स्टेशन पर पहुँचा देवेगा उसे ५००) का इनाम दिया जावेगा। यह शख्स तारीख १६-७-५१ को १५८५०)रु० फर्म बृजमोहन दास लछमनदास, ३६२ मुट्ठीगंज, इलाहाबाद से लेकर लापता हो गया है। उम्र करीब ३०, ३२ वर्ष, रंग गहरा गेहुँवा, हाफ शर्ट, कुर्ता, धोती तथा पैजामा पहिनता है। पैर दोनों तिरछे पड़ते हैं। बाएँ हाथ में एक जन्तर भी बँधा हुआ है। पुलिस इसके खिलाफ दफा ४२० का मुकदमा दायर कर चुकी है तथा खोज में लगी हुई है। इसका पता फौरन बृजमोहनदास लछमनदास, ३६२ मुट्ठीगंज, इलाहाबाद को दिया जाये।
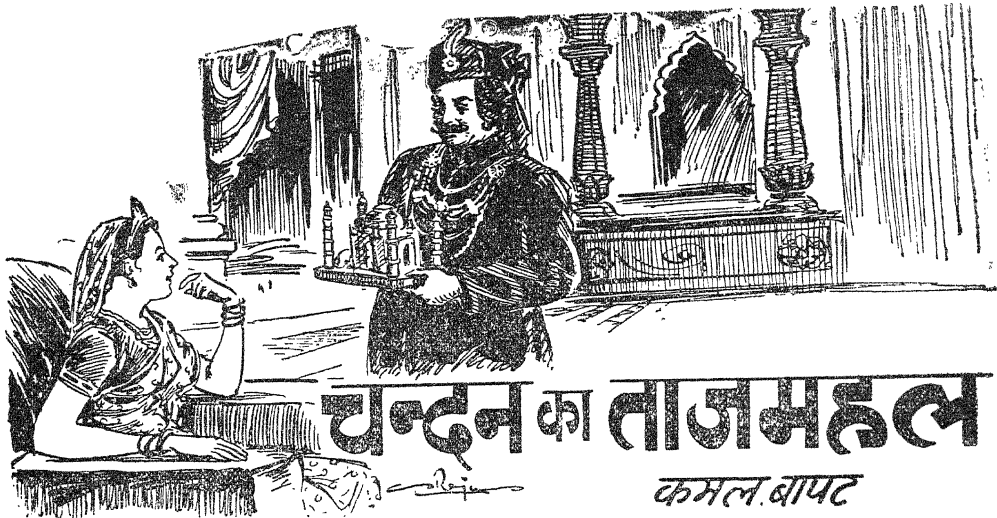
चन्दन का ताजमहल

कमल बापट

अनुराधा अभी सात ही वर्ष की थी, कि उसके सिर से माँ-बाप का साया उठ गया। इस तरह जब वह अनाथ हो गई, तो उसके चाचा उसे अपने घर ले आये। काम करने के लिये दो हाथ और प्राप्त हो गये, यह देखकर चाची ने कोई आपत्ति न की। चाची के हमेशा रोते रहने वाले गोद के बच्चों को सँभालते और उम्र के लिहाज से तिगुना काम करते हुए, अनुराधा के जीवन के दस वर्ष और बीत गये। इन दस वर्षों में अनुराधा ने यही बात सीखी थी, कि चाचा और चाची जो कुछ कहें, उसे जरा भी सोच-विचार किये बिना शिरोधार्य कर लेना उसका परम कर्त्तव्य है। अनुराधा अभागी जरूर थी, परन्तु प्रकृति ने उसे रूप-सम्पदा जी खोलकर दी थी। इसी कारण जब बिलासपुर के राजा साहब प्रेमसिंह ने अनुराधा को देखा, तो वे प्रथम दर्शन में ही मुग्ध हो गये।

राजा सहाब पचास वर्ष की सीमा छूना ही चाहते थे। उनकी रानी साहिबा का देहान्त हो चुका था, और वे अपने वैभव की मालकिन के रिक्त स्थान की पूर्ति करना चाहते थे। अनुराधा के चाचा ने राजा साहब से मुँह-माँगी रकम पाकर अनुराधा का विवाह राजा साहब से कर देने में आत्म-ग्लानि अनुभव नहीं की। अनुराधा बिलासपुर की रानी साहिबा बन गई।

राजा साहब बिलासपुर के जमींदार थे। लाखों की सम्पत्ति और दूर तक फैली हुई जमींदारी पास थी। रूपवती अनुराधा ने इस वैभव की स्वामिनी बन कर, राजा साहब के जीवन में अपार सुख बिखेर दिया।

मूल्यवान वस्त्राभूषणों में लिपटी हुई अनुराधा रेलवे-ट्रेन के एक फर्स्ट क्लास के रिजर्व किये डिब्बे में राजा साहब के साथ बैठी हुई थी। अनुराधा को न तो नैहर की ममता पीछे खींच रही थी, और न भविष्य की गोद में छिपे हुए गृहस्थ जीवन की मधुर कल्पनायें रोमांचित कर रही थीं। उसके हृदय में राजा साहब के लिये केवल कृतज्ञता के भाव थे, क्योंकि राजा साहब ने उसे उस जीवन से मुक्त कर दिया था, जिसमें कमरतोड़ मेहनत और ताने के सिवा और किसी चीज की वह अधिकारिणी न थी।

राजा साहब रसिक थे। अनुराधा का सौन्दर्य उनके हृदय में प्रेम की सरस धारा बहाये जा रहा था। अनुराधा के प्रति अपना प्रेम दर्शाने के लिये वे अत्यन्त अधीर हो रहे थे। परन्तु न जाने क्यों, वे प्रेम-प्रदर्शन के लिये पर्याप्त साहस नहीं बटोर पा रहे थे। अन्त में सारी हिम्मत लगाकर, उन्होंने कुछ कहने के लिये मुँह खोला ही था, कि गाड़ी चल पड़ी। और तभी हवा के एक झोंके ने अनुराधा के मुख पर से अंचल हटा देने की शरारत की। अनुराधा ने अपनी लम्बी, कोमल, सेम-जैसी उँगलियों से अंचल सँभालते हुए, राजा साहब की ओर कृतज्ञता-भरी निगाह से देखा। उस एक ही दृष्टिक्षेप ने राजा साहब को सूचित कर दिया, कि अनुराधा उनकी कृतज्ञ है, वे उसके लिये श्रद्धेय हैं, और उसके हृदय में उनके प्रति निष्ठा है। परन्तु यौवन-सुलभ प्रणय का उस दृष्टि में कहीं पता न था। राजा साहब के हृदय की प्रेम-धारा सहसा लुप्त हो गई। उनके अन्त-करण में प्रेम की कविता कूकने वाली कोयल चुप हो गई। उनके मुख की झुर्रियाँ और सिर के अधपके बाल उन्हें उनकी उम्र की कटु याद दिलाने लगे। अनुराधा खिड़की से बाहर सृष्टि-सौन्दर्य का निरीक्षण करने लगी।

गाड़ी की गति तीव्र हो गई। उसके नीचे की पटरियाँ तेजी से फिसलने लगीं। राजा साहब अपने-आप में खोये हुए चुपचाप बैठे रहे।

धीरे-धीरे प्रकाश मद्धिम होने लगा । बिदा लेता हुआ सूर्य क्षितिज पर लाल हो उठा। गाड़ी की खिड़की से इस बेजोड़ दम्पति की ओर एक बार दृष्टि डाल कर, सूरज डूब गया। आसमान में तारे निकल पड़े। गाड़ी की गति मन्द पड़ने लगी, और वह बिलासपुर के स्टेशन पर खड़ी हो गई। गाड़ी रुकने के साथ ही, राजा साहब के विचार भी स्थगित हो गये।

राजा साहब के मैनेजर उन्हें लेने स्टेशन पर आये थे । राजा साहब और नई रानी साहबा को उन्होंने झुक कर प्रणाम किया, और नम्रतापूर्वक यात्रा के कष्ट के सम्बन्ध में पूछ-ताँछ की। नौकरों ने डिब्बे से सामान उतारना शुरू किया। राजा साहब मैनेजर को संक्षिप्त किन्तु यथोचित उत्तर दे कर, रानी साहबा के साथ स्टे-शन के बाहर आ गये। बाहर दो सफ़ेद घोड़े की बग्घी खड़ी थी। सामान रखा गया। राजा साहब, रानी साहबा तथा मैनेजर बग्घी में बैठ गये। कोचवान ने घोड़ों को इशारा किया, और बग्घी चल पड़ी।

क़रीब दस-पन्द्रह मिनट बाद गाड़ी एक आलीशान बँगले के सामने पहुँच कर खड़ी हो गई। बँगला सुन्दर उपवन से घिरा हुआ था।

बँगले पर पहुँच कर राजा साहब ने सोचा, कि आज उनके विवाह की प्रथम रात्रि ह । उस मधु-रात्रि में वे अपने हृदय की भावनायें अवश्य व्यक्त करेंगे।...

सोने का वक्त हो गया। अनुराधा शयन-कक्ष में जाकर बैठ गई। राजा साहब अन्दर आये। नतमुख अनुराधा को राजा साहब ने अपने हाथ से उठाया। उन्हें आशा थी कि अनुराधा सकुचाएगी, लजाएगी, रोमांचित हो उठेगी। परन्तु राजा साहब निराश हुए, क्योंकि अनुराधा ने शान्त भाव से राजा साहब की ओर देखा। गाड़ी में जिन भावों का दिग्दर्शन अनुराधा की आँखों ने किया था, वे ही कृतज्ञता के भाव इस समय भी अनुराधा की आँखों में झलक रहे थे। राजा साहब के प्रेम-प्रकाशन के अरमान सूखे फूल की पंखु-ड़ियों के समान झर गये। उनके मुँह से केवल इतना ही निकला—"सफ़र से तुम थक गई होंगी, आराम करो।"

माँ के प्रेमपूर्ण अनुरोध पर आज्ञाकारी बालक जैसे अपने नयन मूँद लेता है, वैसी ही तत्परता से अनुराधा ने अपनी देह उस मुलायम बिस्तरे पर लिटा दी। उसके नयन मुँदने लगे, और थोड़ी ही देर बाद वह स्वप्नलोक में बिहार करने लगी। कमरे का दीप और अपनी आशा एक साथ ही बुझा कर, राजा साहब भी निद्रा के वशीभूत हो गये।

दूसरे दिन सुबह चाय पीते वक्त राजा साहब ने अनु-राधा से कहा—"मैं तो दिन भर काम में व्यस्त रहूँगा। तुम क्या करोगी? खैर, घर में शीला दीदी तो है ही। उसके साथ तुम अकेलापन महसूस न करोगी। किसी चीज की आवश्यकता हो, तो उस से कहना। वह मँगवा देगी।"

अनुराधा ने चुपचाप सिर हिला दिया।

राजा साहब कुछ देर मौन रहे। फिर उन्होंने पूछा—"तुम कहाँ तक पढ़ी हो?"

"जी, मैं तीसरी कक्षा तक ही पढ़ सकी," अनुराधा ने कहा—"मेरे पिता जी तरक्कीपसन्द थे, और चाहते थे कि मैं खूब पढ़ूं। वे हिन्दी के अच्छे कवि भी थे। परन्तु भगवान को मंजूर न था। वे स्वर्ग चले गये, और उनके बाद ही मेरी माँ भी मुझे अकेली छोड़कर स्वर्ग सिधार गईं। और चाचा-चाची ने मुझे पढ़ाना जरूरी नहीं समझा।"

राजा साहब को महसूस हुआ, कि जैसे अनुराधा को व्यथित करने का अपराध उन से हुआ हो। अपराधी के-से स्वर में उन्होंने फिर पूछा—"क्या फिर पढ़ाई शुरू करना चाहती हो?"

"अब पढ़ना तो क्या होगा?" अनुराधा ने उत्तर दिया—"हाँ, संगीत अवश्य सीखना चाहती हूँ। मुझे गाना बहुत पसन्द है।"

अनुराधा का हृदय कला-प्रेमी है, यह देख कर राजा साहब की आशा-लता फिर हरी होने लगी। उन्होंने कहा—"अच्छी बात है। मैं रुक्मिणी देवी से तुम्हें संगीत सिखाने को कह दूँगा। कल ही से वे आने लगेंगी।"

अनुराधा ने अत्यधिक कृतज्ञता और आदर से भरी दृष्टि से राजा साहब की ओर देखा।...

दूसरे दिन से रुक्मिणी देवी अनुराधा को संगीत-शिक्षा देने के लिये आने लगीं।

अनुराधा के दिन आनन्द से कटने लगे। परन्तु अनु-राधा के जिस प्रेम के लिये राजा साहब का हृदय-चातक तृषित था, उसकी प्राप्ति न हुई। उनका हृदय अतृप्त ही रहा। राजा साहब रसिक पुरुष थे। वे सहृदय थे, इस-लिये उनकी यह कदापि इच्छा न थी, कि वे अनुराधा पर प्रेम के सम्बन्ध में कोई जबरदस्ती करें। वे अपने व्यवहार से अनुराधा को दिखाना चाहते थे, कि वे उस से कितना प्रेम करते हैं। इसका परिणाम इतना ही हुआ था, कि अनुराधा राजा साहब को बहुत अधिक मानने लगी थी। परन्तु अनुराधा के हृदय में उनके लिये यौवन के उच्छृङ्खल प्रेम का अंकुर फूट नहीं रहा था। वह राजा साहब का आदर करती, कृतज्ञता-प्रकाश के लिये उनकी सेवा करने में कुछ बाकी न रखती। खास कर जब उसे शीला दीदी से पता लगा, कि सन्तान-प्राप्ति के लिये राजा साहब की प्रथम पत्नी पूजा-पाठ में इतनी निमग्न रहा करती थीं, कि उन्हें राजा साहब की ओर ध्यान देने को भी अव-काश नहीं मिलता था, तो अनुराधा ने उनकी सेवा और देख-रेख करना अपना प्रथम कर्त्तव्य बना लिया।

राजा साहब जब काम-धाम से छुट्टी पाकर घर लौटते, तो वह उनके साथ बैठ कर बातें करती। वह उनके साथ बग्घी में बैठ कर घूमने जाती। परन्तु यह सब वह केवल कर्त्तव्य की प्रेरणा से करती थी। उसकी, निष्ठा का नगीना प्रेम में जड़ा हुआ नहीं था।

एक दिन राजा साहब ने सोचा, कि आज चल कर अनुराधा का गाना सुनें। वे अनुराधा के कमरे की ओर बढ़े। कमरे से निकल कर अनुराधा के कोमल, मधुर स्वर की लहरियाँ हवा में तैर रही थीं। वह गा रही थी—

'पिया बिन नहीं आवत चैन !'

वे बाहर ही खड़े रहे। शृंगार-रस से परिपूर्ण यह गीत सुन कर उनका सारा शरीर उन्मत्त हो उठा। एकाएक उनके दृष्टि-पथ में अनुराधा की वही कृतज्ञता एवं आदर से परिपूर्ण आँखें आ गईं। उनकी अधेड़ उम्र ने उन्हें झिड़का, 'इस उम्र में तुम्हारा यह हाल !' वे भग्न-हृदय ले कर, अपने कमरे में लौट आये।...

उस दिन अनुराधा के सामने एक समस्या आ खड़ी हुई। वह बड़ी परेशान थी। रुक्मिणी देवी उसे पढ़ाने आईं। रुक्मिणी देवी न केवल अपने संगीत के कारण, बल्कि अपनी सच्चरित्रता के लिये भी बहुत प्रसिद्ध थीं। अनुराधा-जैसी नवयुवती का राजा साहब-जैसे अधेड़ पुरुष से विवाह होना उनके खयाल में बड़ी खेदजनक बात थी। इस कारण उन्हें अनुराधा से बड़ी सहानुभूति और स्नेह हो गया था। पढ़ाई के बाद वह कुछ देर तक उस से बातें करती रहती थीं।

आज रुक्मिणी देवी ने जब तानपूरा निकाल कर मिलाना शुरू किया, तो अनुराधा ने कहा—"आज रहने दीजिए। मेरी तबीयत ठीक नहीं है, गा नहीं सकूँगी।"

रुक्मिणी देवी ने कोमलता से कहा—"क्या बात है, राधा रानी ?"

अनुराधा कुछ देर मौन रही। फिर उसने कहा—"मैं यदि आप से कुछ कहूँ, तो आप किसी से कहेंगी तो नहीं ? यदि आप वचन दें, तो मैं अपनी परेशानी की बात आप से कहूँ ? इस मामले में आपकी राय भी लेना चाहती हूँ ?"

"विश्वास रखो, राधारानी," रुक्मिणी देवी ने कोमलता से कहा—"तुम्हारी बात किसी को मालूम न होने पायेगी। अपनी समझ के अनुसार तुम्हें राय भी अवश्य दूँगी।"

अनुराधा ने बताया—"आज मेरे पास एक पत्र आया है। पत्र देख कर मैं हैरत में पड़ गई। विवाह के बाद मैंने अपने चाचा-चाची से सम्बन्ध तोड़ दिया। मेरी कोई सहेली भी नहीं, जो मुझे पत्र भेजे। यह पत्र एक गुलाबी लिफाफे में था, और उस से बड़ी मधुर महक आ रही थी। किसी अज्ञात युवक ने वह पत्र लिखा है, और उस में मेरे लिये अगाध प्रेम प्रकट किया है। मैंने वह पत्र तो फाड़ डाला। अब मैं सोच रही हूँ, कि यह बात राजा साहब से कहूँ या न कहूँ। कभी जी में आता है, कि इस पत्र की बात ही भूल जाऊँ, और किसी से कुछ न कहूँ। फिर ख्याल आता है, कि राजा साहब मेरे पति हैं, और उनसे कोई भी बात छिपाना अनुचित होगा। बताइये, मैं क्या करूँ ?"

रुक्मिणी देवी चुप बैठी रहीं। उनका मौन अनुराधा की बेचैनी को और बढ़ा रहा था। अन्त में रुक्मिणी देवी ने कहा—"देखो, राधा रानी, राजा साहब तुम्हारे योग्य नहीं हैं, फिर भी जो कुछ होना था, हो चुका। मेरी राय में तो यही अच्छा होगा, कि तुम राजा साहब को यह बात बता दो। अपने पति से तुम्हारा कोई बात छिपाना ठीक न होगा।"

रुक्मिणी देवी के चले जाने के बाद अनुराधा बड़ी देर तक अपने-आप में खोई बैठी रही। वह जानती थी, कि इस प्रकार उसके पास प्रेम-पत्र आना ठीक नहीं। फिर भी आज जीवन में प्रथम बार उस एक अननुभूत, नवीनतम भावना का अनुभव हो रहा था। उस अनुचित पत्र का एक-एक अक्षर उसके मन में मिश्री घोल रहा था।

नौकरानी ने आ कर कहा—"राजा साहब आ रहे हैं।"

अनुराधा होश में आई। उसे आश्चर्य हुआ, कि राजा साहब इस समय यहाँ कैसे ?

राजा साहब ने कमरे में पदार्पण किया। आते ही उन्होंने कहा—"अनुराधा, मैं कल जमींदारी की देख-भाल करने गाँव जा रहा हूँ। वहाँ मुझे आठ दिन रहना पड़ेगा। तुम मेरे साथ चलोगी, या यहीं रहोगी ?"

अनुराधा भ्रम में पड़ गई। उसे मौन देख, राजा साहब ने कहा—"चलना न चाहती हो, तो यहीं रहो।"

अपने हृदय का सारा साहस बटोर कर, अनुराधा ने कहा—"मैं आप से कुछ कहना चाहती हूँ।"

"बोलो, बोलो !" कहते हुए, राजा साहब अनुराधा के कोच पर बैठ गये।

उनका प्यार से भरा स्वर सुन कर, अनुराधा का भय कुछ हद तक कम हो गया। कंपित स्वर में उस ने कहा—"कल मुझे किसी युवक ने एक पत्र भेजा है। यहीं के किसी ने भेजा हो शायद। उसमें उसने मेरे प्रति प्रेम प्रकट किया है।"

"तब तो वह पत्र फ्रेम में मढ़ कर रखने लायक होगा !" राजा साहब के स्वर में व्यंग्य था।

"मैंने उसे फाड़ डाला," अनुराधा ने कहा—"शायद वह पत्र आपको दिखा देना था, पर मैं हिम्मत न कर सकी।"

"फिर क्या आवश्यकता थी मुझ से कहने की ?" राजा साहब ने पूछा।

"आप मेरे पति हैं, स्वामी हैं। आपको यह बात बता देना मैंने अपने हित में समझा। आपके प्रति मेरे भाव अटल रहें, इसीलिये मैंने आप से यह बात कही।"—अनुराधा ने द्रवित होकर कहा।

अपने प्रति अनुराधा की निष्ठा देख, राजा साहब आश्चर्य-चकित रह गये। अत्यन्त मृदु स्वर में उन्होंने कहा—"अनुराधा, जो करना उचित था, वही तुमने किया। उस पत्र को नष्ट कर के तुमने अच्छा ही किया।
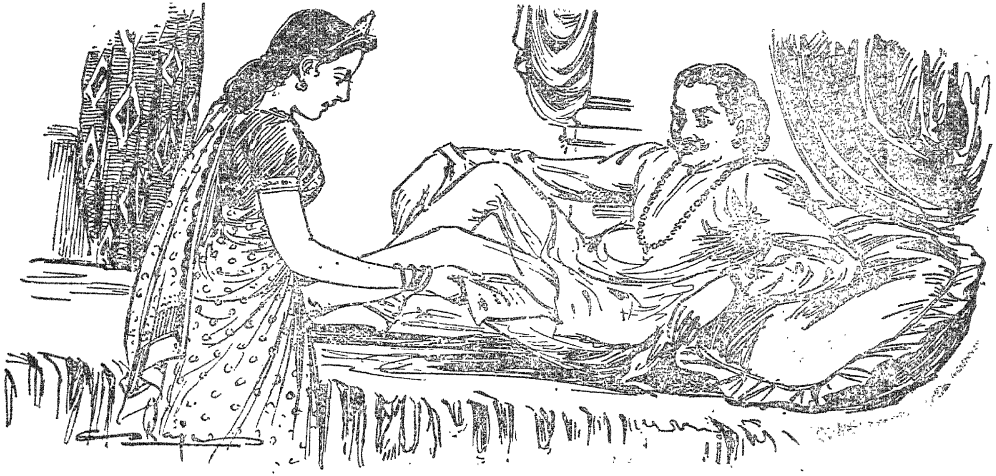
यदि उस पत्र को मैं देखता, और वह मेरे किसी दोस्त के लड़के का लिखा होता, तो मुझे बड़ा दुख होता।"

अनुराधा अनमनी हो उठी। इस मामले में राजा साहब का शान्त भाव उसके लिये अनपेक्षित था। क्रोध की जगह उपहासपूर्ण सहनशीलता देख, वह डर गई। सहमे हुए, उसने राजा साहब की ओर देखा। वे हँसे। कहा—"अनुराधा, तुम आदर्श पत्नी हो।"

कृतज्ञता ने अनुराधा को गद्गद कर दिया। उसका मन उस युवक के सम्बन्ध में कल्पना कर रहा था, कि वह बीस वर्ष से अधिक उम्र का नहीं है, और उसकी आँखें गहरे जल की तरह काली हैं।

"तुमने मुझे यह नहीं बताया, कि मेरे साथ चलोगी या नहीं?" राजा साहब ने प्रश्न किया।

"चलूँगी आपके साथ," अनुराधा ने उत्तर दिया।

"अच्छी बात है। कल भोजन कर के हम चल देंगे। शीला दीदी से कह देना, कि वे तुम्हारी तैयारियाँ कर दें।"—कह कर, राजा साहब चल दिये।...

दूसरे दिन सुबह राजा साहब मैनेजर को काम-सम्बन्धी आदेश दे रहे थे। एक नौकर ने आ कर, राजा साहब से कहा, कि रानी साहिबा उन्हें याद कर रही हैं। जल्दी मैनेजर को आदेश दे, वे अनुराधा के कमरे में आये।

"क्यों? क्या विचार बदल गया?" राजा साहब ने पूछा।

"नहीं," अनुराधा ने कम्पित स्वर में कहा—"आज फिर मेरे पास उस युवक का पत्र आया है। उसे पढ़ने का आपको अधिकार है।" अनुराधा का मुख श्वेत हो रहा था। उसके स्वर में आत्म-विश्वास का

राजा साहब गम्भीर हो उठे। अनुराधा के हाथ में दबे हुए पत्र की ओर उन्होंने दृष्टिक्षेप भी नहीं किया।

"तुम्हें दुख हो रहा है, अनुराधा?" उन्होंने पूछा।

"वह युवक मुझ से प्रेम करता है। वह कौन है, मैं जानती भी नहीं। लेकिन किसी विवाहित स्त्री से इस तरह प्रेम करना अनुचित है।"

"वही पहले वाला युवक है?"

अनुराधा ने 'हाँ' में गर्दन हिला दी। 'यह कविता पढ़ कर

"अच्छा! उसका पागलपन कविता लिखने की हद तक पहुँच गया? कविता अच्छी भी हो, तो भी मैं उसकी लिखावट नहीं देखना चाहता।"

"परन्तु कविता बड़ी सुन्दर है," अनुराधा ने अनुरोध पूर्ण स्वर में कहा।

"अच्छा, तो तुम्हीं पढ़ कर सुनाओ!"

अनुराधा ने कविता पढ़ी। अँधेरी रात्रि में पथहीन वन में गरजते, बरसते बादलों की छाया में चलने वाले राह-भूले पथिक को दूर क्षितिज पर टिमटिमाता दीपक का प्रकाश दृष्टिगोचर होने पर जो आनन्द अनुभव होगा, उसी की उस युवक ने उस कविता में अभिव्यक्ति की थी।

कविता की अन्तिम पंक्ति पढ़ने के बाद अनुराधा ने कहा—"कविता है तो सुन्दर, पर मैं क्या करूँ?"

"कर ही क्या सकती हो?" राजा साहब बोले—"कल हम यहाँ से चल देंगे। हमारे पीछे-पीछे तो वह युवक आयेगा नहीं। जो हो, इस तरह निष्फल प्रेम के पीछे

मरीचिका के मृग के समान भागनेवाले उस युवक के लिये मैं बड़ी हमदर्दी अनुभव कर रहा हूँ।" . . .

वे गाँव गये। वहाँ से लौटकर आने तक उस कविता की वे सुन्दर पंक्तियाँ अनुराधा के मन को हिलोरती रहीं। उसकी कल्पना में उदय हुए उस बीस वर्ष के युवक के लिये अनजाने ही उसके हृदय में प्रेम फूट निकला, और अनजाने ही उसका मन प्रेम के उस पौधे को बढ़ाने लगा।

उन दो पत्रों के बाद अनुराधा में जो परिवर्तन आ गया था, उस से राजा साहब अपरिचित न थे। परन्तु वे दुखी थे, कि उस आनन्द में वे सहभागी नहीं हो सकते थे।

उस दिन रविवार था। काम-काज से छुट्टी थी। राजा साहब भोजन कर के थोड़ी देर सुस्ताया करते थे। नौकर मुसंबी का रस लेकर आता, और राजा साहब रस पीकर सो जाया करते थे। आज अनुराधा स्वतः ही रस लेकर आई। उसे देखकर, राजा साहब आश्चर्य करने लगे।

अनुराधा ने कहा—"आज फिर उस युवक का पत्र आया है।" आज अनुराधा के स्वर में कम्पन नहीं था। वह आत्म-विश्वास के साथ बोल रही थी। "शायद मेरे गाँव से लौट आने का उस युवक को पता लग गया है। इस पत्र में भी एक कविता है। उसे पढ़कर आप भी बिना आँसू बहाये न रहेंगे।"

"और यदि मैंने आँसू न बहाये, तो शायद तुम कहोगी कि मैं पाषाण हृदय हूँ?" राजा साहब ने कहा।

"नहीं, नहीं। ऐसा मैं क्यों कहने लगी? आप उसे सुनिये तो सही।"

राजा साहब मौन बैठे रहे। अनुराधा कविता पढ़ने लगी। इतने उत्कृष्ट प्रेम की कविता राजा साहब शायद जीवन में प्रथम बार ही सुन रहे थे। व्यथित, व्याकुल प्रेमी के हृदय से निकले शब्द थे। प्रेमी की उत्सुकता, उन्माद और माधुर्य से परिपूर्ण थी वह कविता। अनुराधा के सुन्दर, कोमल अधरों से निकल कर वह कविता और भी अधिक सरस हो उठी।

कविता पूरी हो जाने के बाद, राजा साहब ने कहा—"जो हो, इस मूर्ख युवक की प्रतिभा बहुत पैनी है।"

अनुराधा ने कहा—"मुझे प्यार करके इस युवक को जो सुख नहीं मिल सकता, वह उसे किसी दूसरी लड़की से प्राप्त हो, यदि मैं ईश्वर से ऐसी प्रार्थना करूँ, तो आप बुरा तो न मानेंगे?"

"तुम्हारी किसी भी पवित्र भावना के विरुद्ध मैं नहीं हूँ," राजा साहब ने आश्वासन दिया।

"आप कितने अच्छे हैं!" अनुराधा ने स्निग्ध स्वर में कहा—"यह अज्ञात युवक और आप यदि एक ही व्यक्ति होते, तो कितना अच्छा होता!" कह कर, अनुराधा वहाँ से भाग गई।

अनुराधा के प्रति अपने असीम प्रेम की यह विडम्बना देख कर, राजा साहब तिलमिला उठे।

उस तीसरे पत्र ने अनुराधा के भावना-जगत को परिमल-पूर्ण कर दिया। प्रीति की मधुर, कोमल लहरियों पर उसका मन नृत्य करने लगा। संगीत की शृंगारिक चीजों का मर्म अब वह समझने लगी। उन चीजों की मधुर भावनाओं ने उसके अन्तस्तल को स्पर्श करना शुरू कर दिया।

महीने बीतते गये। राजा साहब वृद्धता की सीमा में पदार्पण कर चुके थे। अनुराधा उधर अपनी उम्र का अठारहवाँ बसन्त देख रही थी। उसका यौवन कुसुम प्रस्फुटित होना शुरू ही हुआ था। परन्तु राजा साहब उस कुसुम के सौरभ का आनन्द प्राप्त करने में असमर्थ थे।

आज उसके विवाह की प्रथम वर्ष-गाँठ थी। आज राजा साहब अपने प्रेम का सम्पूर्ण प्रदर्शन करने का अन्तिम प्रयास करने वाले थे।

अपने गिने-चुने मित्रों, अनुराधा और घर के लोगों के साथ राजा साहब ने वह वर्ष-गाँठ मनायी। सब लोगों के चले जाने के बाद, राजा साहब ने गुलाबी कागज में लिपटी हुई एक वस्तु अनुराधा के हाथ में देते हुए, कहा—"अपने विवाह की पहली सालगिरह के उपलक्ष्य में तुम्हें मैं यह भेंट देता हूँ।"

अनुराधा ने गुलाबी कागज हटाकर देखा। चन्दन की बनी हुई ताजमहल की अत्यन्त सुन्दर मूरत थी। राजा साहब सोच रहे थे, कि अब अनुराधा उनकी भावनाओं को अवश्य समझेगी। अनुराधा के गालों पर लज्जा के गुलाब खिल उठेंगे। परन्तु राजा साहब के भाग्य ने साथ नहीं दिया।

अनुराधा के अधरों की लाल पंखुड़ियाँ फैल गईं। सरल हास्य का सौरभ वातावरण में फैल गया। उसने कहा—"यह ताज महल कितना सुन्दर है! . . ."

उस सुन्दर कला-कृति को भेंट करने के पीछे जो भावनायें थीं, उन्हें समझने के बजाय, उस कलाकृति की ही तारीफ हो रही है, यह देख कर राजा साहब को गहरा धक्का लगा। खड़ा रहना उनके लिये कठिन हो गया।

"तुम्हें पसन्द आया न?" ऐसा ही कुछ बुदबुदाते हुए, अपनी भयंकर निराशा और तीव्र दुख छिपाने के लिये राजा साहब ने मुँह फेर लिया।

उस दिन के बाद ही राजा साहब बीमार पड़ गये।

भयानक निराशा और आत्म-ग्लानि ने उनकी शक्ति को तेजी से चूसना आरम्भ कर दिया। राजा साहब के अन्त-र्द्वन्द्व का अनुराधा को किंचित-मात्र भी पता न था।

आज-कल जमींदारी का सारा काम मैनेजर साहब ही करते हैं। राजा साहब रोग-शय्या पर पड़े हुए हैं। अनुराधा खूब उनकी सेवा-शुश्रूषा करती। उसके दिन का अधिकांश समय राजा साहब की सेवा में ही बीतता। वह उनसे बातें करती, या कुछ पढ़ कर सुनाती। वह हर समय उनका मनोरंजन करने की कोशिश करती रहती। राजा साहब उसके मनोहारी सौन्दर्य की ओर देखते रहते, और कभी-कभी आर्त्त स्वर में पुकार उठते—"अनुराधा!" अनुराधा बातें करती या पढ़ती हुई रुक जाती, और कहती—"जी, क्या चाहिये? सिर दबा दूं?" राजा साहब "हाँ" कह देते। अनुराधा का कोमल, नर्म हाथ राजा साहब के सिर को दबाने लगता। उसके हाथ का स्पर्श पाते ही, राजा साहब का सारा शरीर चेतन हो उठता। वे चाहते, कि अपने हाथ से अनुराधा का हाथ सिर पर दबा लें। परन्तु दूसरे ही क्षण उनका मन तुलना करने लगता। वे सोचते—अनुराधा का हाथ कितना कोमल और यौवनपूर्ण, कितना सुकुमार है और अपना हाथ कितना खुरदुरा और वृद्धत्व की झुर्रियों से भरा। वे शरमा जाते, और तुरन्त अपना हाथ खींच लेते।

अपनी भावनाओं से लड़ते-लड़ते अन्त में वे हार गये। उनकी जीवन-ज्योति बुझ गई। अनुराधा को अपार दुख हुआ। उसे राजा साहब से कभी भी उन्मादक प्रेम नहीं हुआ था, फिर भी उनके सहवास में उसे सन्तोष था।

राजा साहब का अन्तिम संस्कार हो जाने के बाद, अनुराधा के नाम लिखा हुआ एक बन्द लिफ़ाफ़ा उसे दिया गया। रोती हुई अनुराधा अपने कमरे में गई, और उसने दरवाजा बन्द कर दिया। कम्पित करों से उसने लिफाफा खोला। पत्र की जानी-पहचानी लिखावट देख कर, वह आश्चर्य-चकित रह गई।

'प्यारी अनुराधा,

म केवल तुम्हारे लिये जीना चाहता था, बहुत दिनों तक जीना चाहता था।

अनुराधा, अपने इस अन्तिम क्षण में एक बात बता देना चाहता हूँ, क्योंकि उसे प्रकट किये बिना मेरी आत्मा शान्ति न पा सकेगी। तुम्हारा पचास वर्ष का पति और तुम्हारी आराधना करने वाला, तुम पर परवाने के समान जलने वाला और तुम्हें प्रणयाकुल बनाने वाला वह अज्ञात युवक, दोनों एक ही व्यक्ति हैं।

जब मैं तुम्हारे सामने अपना प्रेम, अपनी अनुरक्ति जताना चाहता, तब तुम्हारी आँखों में मेरे प्रति श्रद्धा, भक्ति और आदर के भाव प्रकट हो कर, मुझे निराश कर देते। मुझे लगने लगा, कि मेरी प्रौढ़ अवस्था तुम में कभी भी उन्मादक प्रेम-भावना जाग्रत न होने देगी। ऐसा होना मुझे असम्भव प्रतीत होता। फिर भी प्रीति की भावना मुझे छोड़ नहीं रही थी। उलटे तुम्हें देख-देख कर वह बढ़ती ही जा रही थी। तुम्हें देख कर मेरा हृदय प्रेम से लबालब भर जाता। परन्तु इस बात का तुम्हें ज्ञान न था। अन्त में मैंने उस उत्कट प्रेम को काग़ज पर उँडेल कर, उस अज्ञात युवक के नाम पर तुम्हें भेंट करने लगा। तब जा कर तुम्हारे हृदय में उस प्रेम की प्रतिध्वनि हुई।

इसीलिये मैंने अन्त में प्रेम का प्रतीक ताजमहल तुम्हें भेंट करके अपनी भावनायें प्रगट कीं। फिर भी मेरी आवाज का कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। तुम्हारे और अपने बीच की उम्र की दीवार मैं ढहा नहीं सका।

फिर भी मैं तुम्हें बता दूं, कि तुम इस सफेद केशवाले अपने पति की प्राणप्यारी थीं, उसका जीवन-सर्वस्व थीं।

केवल तुम्हारा ही,
प्रेम।'

अनुराधा आश्चर्य से दिग्मूढ़ हो गई। परन्तु दूसरे ही क्षण उसका हृदय अभिमान से फूल उठा। सत्रह वर्ष की युवती को बीस वर्ष के युवक से प्राप्त होने वाला प्रेम उसे प्राप्त हुआ था। स्वप्न में कई बार उसने उस अज्ञात युवक को राजा साहब के रूप में देखा था। वह अभी तक एक बूढ़े पति की पत्नी थी; परन्तु आज वह अपने प्रिय-तम पति की, अपने जीवन-साथी की विधवा थी।

एक नये उत्साह से वह उठी। उसने आलमारी खोल कर, जिस प्रेम के लिये उसका पति चन्दन की तरह घिसा था, उसके प्रतीक चन्दन का बना वह ताज महल निकाला, और उसे हृदय से लगा लिया।
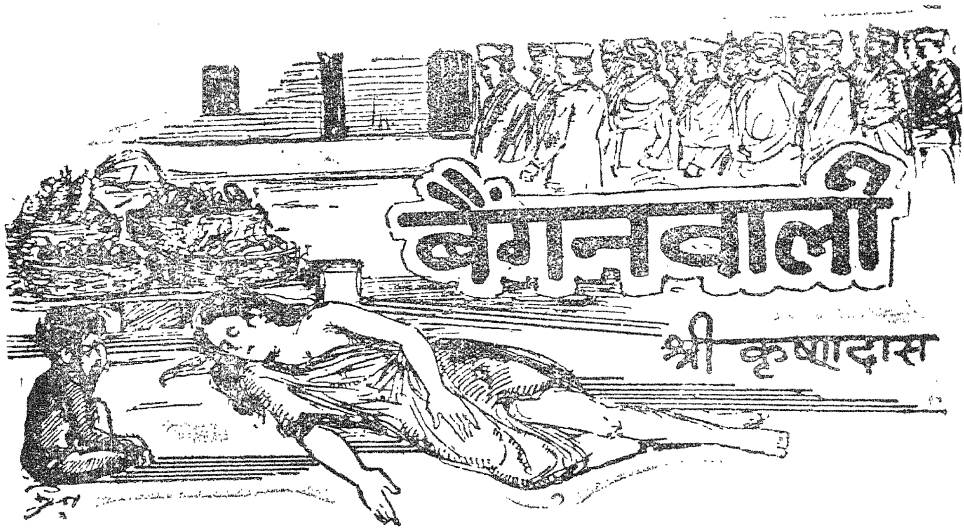
आप जान्स्टन गंज रोड से घण्टा घर की ओर चलिए, तो रास्ते में दाहिनी ओर की पटरी पर आपको तरकारी की एक दूकान मिलेगी। इस कहानी का सम्बन्ध उसी दूकान में बैठने वाली उस अधेड़ औरत से है, जो सचमुच अभी कुल तेइस-चौबीस बरस की है, मगर जिसका मुखड़ा समय के तेज थपेड़ों के कारण झुर्रियों से ढँक गया है, जिसका सलोना, साँवला रंग वातावरण की गर्म-सर्द हवाओं के कारण झाइयों के झीने पर्दे में दब गया है, जिसका लचीला, तेज, फड़कता बदन मुसीबतों के बोझ के तले जर्जर होकर ढल गया है। लोग उसे अब न गौर से देखते हैं, न आँखें चुराकर देख पाने के लिए ठिठक कर बैंगन खरीदते हैं, न व्यंग की हँसी हँसकर रामकली बैंगन वाली कहते हैं। रमिया नाम से भी अगर किसी ने उसे पुकार लिया, तो उसका वह आभार मानती है। मगर मैं, न जाने क्यों, अब भी, जब कि उसकी आँखों का पानी या तो बह गया या सूख गया है, ओंठों की मुस्कान उसकी पतली रेखाओं में खो गई है, और उसका चिकना, चमकता चमड़ा जगह-जगह पर सिकुड़ और झूल गया है, उसे अपने हृदय के समस्त प्यार से 'रम्मो' ही कहता हूँ।

उस समय जब कि वह अपनी उम्र पर थी, और मेरे साथ सभी उसे रम्मो या रामकली कहते थे, मुझे 'बैंगन वाली' शब्द पर बड़ा एतराज था। मैं इसे लोगों की उपमा देने की अक्षमता के ही रूप में नहीं, किसी अनिष्टकारी, अमंगलपूर्ण भविष्य की सूचना समझ कर, बहुत बुरा मानता था। परन्तु बहुमत के आगे, संसार का चढ़ाव-उतार देखे हुए लोगों के अनुभव के सामने मैं चुप हो जाता, और दबी जबान से कभी-कभी विरोध करने के बाद भी, लोगों के इस नामकरण को सह लेता था।

रम्मो की शादी जब हुई, तो कुछ लोगों को धक्का लगा, कुछ लोगों का सिर-दर्द समाप्त हुआ, कुछ नेक, भली मोहल्ले-टोले की घर वालियों के जी की जलन दूर हुई। परन्तु मैं बहुत खुश हुआ। मैं अपनी उस पराजय में ही रम्मो की सुखद भविष्य की कल्पना करता था। परन्तु अगर उस समय मैं भविष्यदृष्टा होता, और रम्मो के दुखद भविष्य की धुंधली रेखा भी देख पाता, तो निश्चय ही ललकार कर कहता, 'रम्मो की शादी मैं न होने दूँगा।' ऐसी स्थिति में मैं खुशी-खुशी मोहल्ले वालों के ताने बर्दाश्त कर लेता। शायद रम्मो को भी बुरा न लगता, और उसकी जान उस आसन्न संकट से छूट जाती। परन्तु भविष्य की बात कौन जान सकता है? भाग्य की रेखाओं को कौन मेट सकता है? रम्मो की शादी धूम-धाम से हुई, और वह दुख और आनन्द के बीच झूलती हुई ससुराल चली गई। जाते हुए वर्तमान को छोड़ने में उसे पीड़ा हो रही थी। अनजाने भविष्य से वह डर रही थी। परन्तु दोनों के बीच सोने की डोरी-

सा अपने सुघर, सुन्दर, सुडौल, वर का हाथ उसे मिल गया था। उसके सहारे वह अपना जीवन सुख-चैन से काट लेगी, ऐसा उसे विश्वास था। आशा और विश्वास के सम्बन्ध ने उसे अनजाने भविष्य की गोद में कूद पड़ने की हिम्मत दे दी, और वह कूद भी पड़ी। रम्मो के जीवन का यह मोड़ रम्मो को कहाँ ले गया, यही इस कहानी का सार है।

शादी मर्दों के लिये आनन्द और वासना-तृप्ति का साधन होती है, मगर औरतों के लिए वह एक परवशता से दूसरी परवशता का एक सोपान-मात्र है। रम्मो की शादी से उसकी माँ के कलेजे का भार उतरा, और वह मोहल्ले-टोले में मुंह दिखाने लायक़ हो गई। बाप ने अपना कर्त्तव्य पूरा किया, और उसे लगा कि वह आराम से हुक्का गुड़गुड़ा सकता है, उसके धुयें से मकान की छत तक उड़ा सकता है।

ससुराल में पहुँच कर, रम्मो ने वही स्वागत-सत्कार पाया, जो रम्मो के वर्ग की लड़कियों की क़िस्मत में लिखा होता है। बाजा बजा, टोले मोहल्ले की औरतों ने गाने गाये, दावत हुई। सोहागरात आई, और रम्मो अपने पति की प्यारी दुलहिन बनी। उसे लगा, कि ज़िन्दगी बड़ी प्यारी चीज होती है, लोग नाहक इसे कोसते हैं। उसकी सास ने उसे शिक्षा दी, ससुर ने मौन आशीर्वाद दिया। धीरे-धीरे समय कटने लगा। रम्मो के पाँव भारी होने लगे, तो उसकी चिन्ता बढ़ी। आठ महीने का समय ही क्या होता है? रम्मो के सास-ससुर ने अपना भाग्य सराहा। अब घर रोशन होगा, वंश चलेगा।

रम्मो की छोटी-सी गृहस्थी थी, उसका छोटा-सा कुनबा था। सुख-दुख, हँसी-रुलाई, स्नेह-विद्वेष के सर्द-गर्म वातावरण में दिन-रात के चौबीस घण्टे कट जाते। मगर तालाब के बँधे पानी की तरह रम्मो की छोटी-सी गृहस्थी में भी गतिहीनता आने लगी। तालाब का पानी बहती नदी के पानी की तरह साफ़, मीठा और प्राणदायी नहीं होता। रम्मो की गृहस्थी का आरम्भिक रसमय वातावरण शुष्क होने लगा, और धीरे-धीरे उसके सास-ससुर, पति सभी खीझने, रुठने, गुस्सा होने लगे। बात-बात में डाँट-फटकार, गाली-गलौज, यहाँ तक कि मार-पीट होने लगी। दो बच्चों की माँ रमिया शराब के नशे में धुत पति के हाथों से पिट कर जब सड़क के किनारे पड़ी आह भरती होती, या ज़ार-ज़ार रोती, तो राह चलते लोगों को भी उस पर दया आ जाती, और कभी-कभी वे बिना कहे ही बीच-बिचाव और समझौता कराने को तैयार हो जाते।

जब बुढ़ापे ने रम्मो के ससुर और सास को आनन-फानन ज़रा-सी बीमारी के बाद धोखा दे दिया, और वे अपने क्रूर-शराबी बेटे के हाथ में रम्मो को सौंपकर इस दुनिया से कूच कर गए, तो रम्मो के पति की बन आई। रम्मो का पति बालादीन अब पहिले का स्नेहालु पति न था। अब वह अपने पुराने व्यक्तित्व का प्रेत-मात्र रह गया था। शराब पीना, जुआ खेलना और ऐयाशी करना ही उसका नित्य का कार्य-क्रम हो गया। रम्मो जब बालादीन को रोकती, तो वह उसके हाथों से बुरी तरह पिटती। जब वह बच्चों को सामने कर उनके लिए दया की भीख माँगती, तो बालादीन उन बच्चों का गला घोंटने को तैयार हो जाता। रम्मो का जीवन नारकीय हो गया। भरी जवानी में ही वह दिन और रात में कई-कई बार मर जाने की बात सोच डालती। परन्तु बच्चों की मासूम आँखों को देख कर उसकी दृढ़ता पिघल जाती, और वह फिर बेहयाई की ज़िन्दगी बसर करने के लिए तैयार हो जाती। दिन बीतते गए—नरक के दिन। रातें कटतीं गईं—पापिन रातें।

और एक दिन बालादीन रण्डी के कोठे से गिर कर मरा पाया गया। उसके किसी साथी ने शराब के नशे में उसे गोली मार दी, और उसकी लाश सड़क पर लुढ़क गई। यह सब क्यों और कैसे हुआ, यह तो वह नर-भक्षिका वेश्या ही बता सकती थी, या पुलिस। रम्मो को केवल यही पता चला, कि वह, दो बच्चों की माँ, भरी जवानी में विधवा हो गई है, उसका सहारा टूट गया है, उसका जीवन-साथी दग़ा दे गया है।

रम्मो अब कहाँ जाय, क्या करे? बालादीन उसका ब्याहता पति था, उसका अपना आदमी, उसका सब-कुछ। अब वह नहीं रहा, तो रम्मो किसके सहारे जिए? बप्पा आए, अम्मा आईं। बहुत-कुछ कहा सुना, मगर रम्मो अपने पति के घर को छोड़ कर जाने को राजी न हुई। मोहल्ले-टोले वालों ने कुछ दिन तक उसका और उसके बच्चों का ख्याल किया, उसके साथ सहानुभूति प्रकट की। पर हमेशा कौन किसका होता है? धीरे-धीरे लोगों ने रम्मो की बेबसी और परेशानी को भुलाना शुरू कर दिया। इसी समय मकान-मालिक ने, जो कि मोहल्ले के रईस थे, और अपने को नेता कहा करते थे, रम्मो के घर आदमी भेज कर कहलाया, कि वह उनका घर छोड़कर कहीं और चली जाय। कितने दिनों

तक वह बिना किराया के उसे घर में बनी रहने दें? रम्मो को काठ मार गया। महाजन के आदमी ने उसे सब हाल बताया। रम्मो को यह जान कर और भी दुख हुआ, कि उसका शराबी और जुआड़ी पति कुछ दिन पहिले मोहल्ले का बहादुर देश-भक्त नौजवान था, सन् १९४२ में तार काटने के सिलसिले में जेल गया था, और एक बार इसी महाजन को बचाने के लिए खुद जुर्म क़बूल कर लिया था। सजा काट कर लौटने पर महाजन ने बालादीन की आवभगत की, कुछ दिन तक उसे मानते-जानते रहे, परन्तु उन्हें जब पता चल गया, कि अब हवा बदल गई है, और उनके लिए कोई खतरा नहीं है, तो उन्होंने अपना उल्लू सीधा करना शुरू कर दिया। स्वाधीनता दिवस पर उनके घर मोहल्ले भर में सब से अधिक दिये जले। परन्तु बालादीन के घर में अँधेरा ही रहा। उस समय मँहगी काफ़ी बढ़ चुकी थी। महाजन ने पट्टी पढ़ा कर बालादीन को अपनी चोरबाजारी का दलाल बना लिया। संगत का असर सब के ऊपर पड़ता है। जेल में राजनीतिक कार्य-कर्त्ताओं के नाम पर 'सी' क्लास में बालादीन का साथ जिन लोगों से पड़ा, बाहर आकर उनमें से कुछ चोरबाजारी वग़ैरा में लग गए, और कुछ ने अन्य धन्धे थाम लिए। बालादीन भी क्या करता? वह भी उसी दल में शामिल हो गया। उसमें बालादीन को महाजन का आशीर्वाद ही नहीं, सक्रिय सहयोग भी प्राप्त था। उसके बाद बालादीन का क्या हुआ, यह ऊपर बताया जा चुका है।

महाजन के आदमी ने जब बताया, कि उसे मकान छोड़ देना चाहिए, क्योंकि महाजन बदमाश और जाबिर आदमी है, वह उसके साथ अनीति भी कर सकता है, तो रम्मो डर गई। पति गया, घर-बार गया; अब इज्जत भी जाना चाहती है। "हाय, राम, अब क्या करूँ?" रम्मो के मुँह से निकल गया। यह वही महाजन है, जिसने बालादीन को हथियार बनाकर हजारों वारा-न्यारा किया। अब वह उसी की विधवा स्त्री के साथ...

महाजन का बूढ़ा नौकर सान्त्वना देकर, बोला—"बेटी, तू अपने मायके चली जा। अब तुझे वहीं शरण मिलेगी। माँ का आँचल और भगवान का साया बराबर होता है।"

रम्मो ने सोचा, कि क्यों न वह अपने बच्चों के साथ आत्म-हत्या कर ले? जब जीना कठिन है, तो मौत का सहारा क्यों न लिया जाय? परन्तु फिर उसे अपने दोनों बच्चों के मासूम चेहरे याद आए। निर्दोष, प्यारी-प्यारी आँखें, पतले-पतले ओंठ, तोतली बोली, थिरकती चाल! उसके कलेजे में दर्द उठने लगा। उसने निश्चय किया, कि जिस माँ के आँचल-तले वह बढ़ी और इतनी बड़ी हुई है, उसी का सहारा वह फिर लेगी। और एक दिन बिना किसी से कुछ कहे-सुने, रम्मो अपने दोनों बच्चों को साथ लेकर अपने पति का घर छोड़ कर, मायके चली गई।

मायके में रम्मो का स्वागत उसके बप्पा अम्मा ने उसी प्रकार किया, जिस प्रकार हर ग़रीब विधवा लड़की का स्वागत अपने घरों में होता है। बप्पा-अम्माँ का दिल तो वैसा ही था, परन्तु उनका बुढ़ापा आ गया था। मँहगी राक्षसी की तरह मुँह बाए, सब-कुछ निगलती जा रही थी। अम्माँ के धराऊँ गहने बिक चुके थे। अब पास उस छोटी-सी दूकान के अलावा कुछ नहीं था। परन्तु दूकान की पहिले-जैसी आमदनी कहाँ? उधार लेने वालों की संख्या बढ़ती जा रही थी। महीने भर उधार देने पर कहीं पहिली-दूसरी तारीख को ग्राहकों से कुछ रुपया मिलता। कितने ही ग्राहक महीने-दो-महीने तरकारी खाकर खिसक भी जाते। बूढ़े बप्पा रार-तकरार कर नहीं सकते थे। उनका रुपया डूब जाता। ग़रीबी और मँहगी में होड़ लगी थी, कि कौन आगे बढ़ता है। उस पर रम्मो और उसके बच्चों का भार भी आ गया। परन्तु माँ-बाप के लिए बच्चे भी कहीं बोझ होते हैं? रम्मो के दिन किसी तरह कटने लगे। उसके बच्चों के साथ अम्माँ बप्पा का भी मन-बहलाव हो जाता।

मैंने पहिले रम्मो को देखा, तो उससे कुछ कहने-बोलने की हिम्मत नहीं पड़ी। कतराकर निकल गया। मगर एक दिन उसने आवाज दे दी, तो मुझे रुकना ही पड़ा। पास पहुँचा, तो रम्मो ने उदास हो, शिकायत-भरे स्वर में कहा—"क्यों, बाबू, मुझे क्या बिलकुल ही भूल गए?"

"नहीं, रम्मो..." मैं आगे कुछ बोल न सका। मैंने रम्मो का जो रूप पहिले देखा था, उसकी विकृति को देखकर मेरा कलेजा फटा जा रहा था। आँखें बन्द हुई जा रही थीं। परन्तु अपने दिल की बात बता कर, मैं रम्मो को उसके वैधव्य और विकृति की याद नहीं दिलाना चाहता था। मैंने बात बदल दी। दूकान की बिक्री, बढ़ती हुई मँहगी, धोतियों की कमी से बात चल कर, बढ़ते-बढ़ते उस समय तक पहुँची, जब रम्मो कुँआरी थी, और मुहल्ले-टोले के लोग उसे देखने के लिए, उससे दो बातें कर पाने के लिए, बैंगन खरीदने का बहाना बनाकर,

आया करते थे। रम्मो को इन सब बातों का पता था। और जैसा उसने बताया, उसके मन में लोगों की उन बातों से गुदगुदी भी उठने लगती थी। मगर उसके मुँह का ताला खुल न पाता, न आँखों का पर्दा ही हट पाता। रम्मो ने मुस्कराते हुए कहा, (यद्यपि यह मुस्कराहट अवसाद के भारी बोझ के नीचे दबी हुई थी)—"और, बाबू, तुम भी बैंगन खरीदने का बहाना बना कर रोज़ आया करते थे।"

"हाँ, रम्मो," मेरे मुँह से सहसा निकल गया।

फिर दोनों चुप होकर, दूसरी दिशाओं की ओर देखने लगे। कुछ देर बाद मैंने देखा, रम्मो की आँखों की डोरियाँ लाल हो गई हैं, और उनके कोरों से मोती के दाने ढुलक चले हैं। मैं चुपचाप उठा, और भारी मन लिये, घर वापस आ गया।...

रम्मो के दुखों का अन्त जैसे अब भी नहीं हुआ था। जाड़े में एक दिन बप्पा और अम्माँ कमरा गर्म रखने के लिए कोयला जला कर, और रम्मो के बड़े बेटे को अपने पास लेकर सो गए। गैस निकलने के लिए उस कमरे में खिड़कियाँ न थीं। हवा से बचने के लिए दरवाजे को अच्छी तरह बन्द कर अम्मा-बप्पा सोए थे। सबेरे रम्मो की नींद खुली, तो उसे दरवाजा बन्द मिला। चीखने-चिल्लाने पर भी जब वह दरवाजा न खुला, तो रम्मो बहुत घबराई। मोहल्ले वालों ने दरवाजा खोला। वहाँ सर्वनाश हो चुका था। बप्पा-अम्मा के साथ रम्मो का बच्चा भी गैस में घुट-घुट कर दम तोड़ चुका था।

रम्मो कुछ बोल न सकी। वह अचेत होकर धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी। उसे जमीन पर गिरते देख, उसका अबोध नन्हा बच्चा भी चीख-चीख कर रोने लगा।...

रम्मो की जवानी ढल चुकी थी। ग़रीबी और दुखों के धक्कों ने उसे जर्जर कर दिया था। अब वह अपनी छोटी-सी दूकान पर अपनी गोद में उस नन्हें बच्चे को लिए बैठी रहती। ग्राहकों की तादाद बहुत घट गयी थी, क्योंकि रम्मो के पास ज्यादा माल नहीं रहता था। बस, कुछ बैंगन, कद्दू, आलू वग़ैरा पड़े रहते। शहर की मशहूर सड़क से दिन भर में हजारों आदमी इधर से उधर और उधर से इधर गुजरते, मगर उनमें से शायद ही किसी की निगाह रम्मो या उसकी दूकान पर पड़ती हो।

एक दिन सबेरे ही मैं रम्मो की दूकान पर पहुँच गया। बैठा ही था, कि बैंगन खरीदने के लिए दो-तीन ग्राहक आ गए। सम्भवतः वे आस-पास के ही थे, और रम्मो को उसकी उभरती जवानी के दिनों में देख चुके थे। उस समय रम्मो का बच्चा रो रहा था, और स्तन चूस रहा था। गुदड़ी में अपनी लाज छिपाए रखने वाली रम्मो बड़ी उलझन में थी। बच्चा छोड़ता न था। ग्राहकों को लौटाया नहीं जा सकता था। रम्मो को गुस्सा आगया। उसने बच्चे को जोर से झटक कर अलग कर दिया। उसकी फटी हुई चोली और भी फट गई। ग्राहक बैंगन लेकर जाने लगे, तो उनमें से एक ने अपने साथी से मुस्कराते हुए, कहा—"अब तो यह सचमुच बैंगन वाली हो गई है!"

आवाज़ रम्मो के कानों में पड़ी। उसका चेहरा तमतमा उठा। फिर सिर नीचा कर, जैसे वह किसी स्वप्न में खो गई।...

आज स्वाधीनता दिवस फिर आया था, और जश्न मनाने के लिए सब को हुक्म हुआ था। आस-पास के दूकानदारों ने झण्डियाँ सजाईं, बत्तियाँ लगाईं। मगर रम्मो के पास झण्डी के लिए पैसे न थे। उसने अपनी दूकान साफ़ की। तरकारी को धोकर सजा दिया, और चुपचाप बैठ गई। आज वह नई साड़ी पहिनना चाहती थी। परन्तु नई साड़ी खरीदने के लिये पैसे कहाँ थे? रम्मो को अपनी पुरानी, अधफटी साड़ी पर ही संतोष करना पड़ा। शाम के पाँच बजे जलूस निकले। पुलिस बैण्ड और वालंटियरों के पीछे खादीपोश नेताओं का झुण्ड था। रम्मो ने देखा, जीप कार में हार पहिने नेता बैठे हैं, और घूर-घूरकर प्रसन्न मुद्रा में दोनों ओर देखते ए, धीरे-धीरे चल रहे हैं। चारों ओर बिजली की चमक थी। मगर उसकी दूकान में रोशनी न थी। रम्मो उस नेता को देख रही थी। उसकी गोद का बच्चा जबरदस्ती दूध पीना चाहता था। वह सब के सामने बच्चे को दूध पिलाने में शर्मा रही थी। फटी साड़ी बच्चे को छिपाती कैसे? उसकी निगाहें नेता की ओर थीं, और दाहिना हाथ बच्चे को बार-बार रोक रहा था। नेता जब बिलकुल पास आ गए, तो उन्हें देखते ही उसकी आँखें फैल गयीं, हाथ ढीला पड़ गया। मौक़ा पाते ही, बच्चे ने स्तन में मुँह लगा दिया। उसका स्तन खुल गया। वह एकटक नेता की ओर देख रही थी। उसने नेता को पहिचान लिया था। यह वही उसकी ससुराल वाला महाजन था, जिसने...

रम्मो को चक्कर आ गया। वह ग़श खाकर नीचे गिर गई। बच्चा उसका स्तन पकड़े चीख रहा था। जलूस धीरे-धीरे आगे बढ़ गया।

निःशुल्क सचित्र पुस्तिका के लिए हमें लिखें:-

[illegible] पो० बा० १६६, कलकत्ता • पो० बा० ११६, बम्बई • पो० बा० १८७, मद्रास • नं० १५, फैज बाजार, दिल्ली।

दिन प्रति दिन
एक नया उजलापन,
एक नई आभा
रेक्सोना साबुन का 'कॅडिल' ही आप की त्वचा को अधिक स्वच्छ व मोहक बनायेगा। दिन में दो बार रेक्सोना उपयोग कीजिये।
रेक्सोना
'कॅडिल'*-युक्त एक मात्र साबुन

बांझ स्त्रियों के लिये
सन्तान पैदा करने का लासानी नुस्खा

मेरी शादी हुए पन्द्रह वर्ष बीत चुके थे। इस समय के बीच मैंने सैकड़ों इलाज कराये लेकिन कोई सन्तान पैदा न हुई। सौभाग्यवश मुझे एक वृद्ध महापुरुष से निम्नलिखित नुस्खा प्राप्त हुआ। मैंने इसे बनाकर सेवन किया। ईश्वर की कृपा से नौ मास बाद मेरी गोद में बालक खेलने लगा। इसके पश्चात् मैंने जिस सन्तान-हीन बहन को इसका सेवन कराया, उसी की आशा पूरी हुई। अब मैं इस नुस्खे को सूचीपत्र द्वारा प्रकाशित कर रही हूँ, ताकि मेरी निराश बहनों की आशा पूर्ण हो।

औषधि तन्त्र ये हैं—असली नैपाली कस्तूरी (जिस पर नैपाल गवर्नमेंट की मोहर हो) केसर, जायफल, सुपारी दक्खिनी हर एक साढ़े दस माशे, पुराना गुड़ (जो कम से कम दस साल का हो) तेरह माशे, भुनी हुई भंग दो माशे, लौंग चार अदद, कटियारी सफ़ेद की जड़ (यानी सत्यानाशी सफ़ेद की जड़) सवा तोला इन सब औषधियों को खरल में डाल कर २४ घंटे तक खरल करें और पानी इतना मिलावें कि गोलियाँ बन सकें, फिर जंगली बेर के बराबर गोलियाँ बना लें। इसके सेवन से गुप्त खराबियाँ दूर हो जाती हैं और बहनें इस लायक हो जाती हैं कि सन्तान पैदा कर सकें।

रीति—गाय के थोड़े गर्म दूध में मीठा डाल कर प्रातःकाल और सायंकाल एक-एक गोली तीन रोज तक सेवन करें। ईश्वर की कृपा से कुछ रोज में ही आशा की झलक दिखाई देने लगेगी।

नोट—औषधि तन्त्र के अन्दर सफेद फूल वाली सत्यानाशी की जड़ मिलानी आवश्यक है, क्योंकि इसके अन्दर सन्तान पैदा करने के अधिक गुण हैं।

इसके विषय में श्रीमान् राधेश्याम जी हापुड़ से लिखते हैं—मेरी समझ में नहीं आता कि आपकी सन्तान पैदा करने वाली औषधि की मैं किन शब्दों मे प्रशंसा करूँ। मैं आपको हर्ष के साथ सूचित करता हूँ कि आपकी औषधि से मेरी स्त्री को १६ वर्ष के पश्चात् बालक की प्राप्ति हुई। सरदार हरदत्त सिंह भटिन्डे से सूचित करते हैं कि आपकी सन्तान पैदा करने वाली औषधि एक अद्भुत जादू है। मैं इसकी जितनी प्रशंसा करूँ, कम है। मैं नहीं जानता था कि आपकी औषधि में इतने गुण भरे हुए हैं। हमारे शहर में आपकी औषधि की घर-घर प्रशंसा हो रही है। अब तक करीब-करीब बीस से ज्यादा बहिनें गर्भवती हो चुकी हैं। कृपया तीन दर्जन शीशी वी० पी० से भेज दें। धन्यवाद।

ऐसे अनगिनत प्रशंसा-पत्र मेरे पास हैं। अगर कोई बहिन देखना चाहें तो मेरे पास आकर देख सकती हैं।

मेरी सन्तानहीन बहनो !

आप इसे बेगुण औषधि न समझें। यदि आप बच्चे की माता बनना चाहती हैं, तो इसे बना कर जरूर सेवन करें। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि इसके सेवन से आप की अभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी।

यदि कोई बहिन इस औषधि को मेरे हाथ से ही बनवाना चाहें तो मुझे पत्र द्वारा सूचित करें। मैं उन्हें औषधि तैयार कर के भेज दूंगी। एक बहिन की औषधि पर पाँच रुपये बारह आने खर्च आते हैं। महसूल डाक वगैरह इससे अलग है।

रतनबाई जैन, [३३] सदर बाजार, थाना रोड, देहली।

दाँतों की सफ़ाई
केवल अधूरी
सफ़ाई है...
मसूड़ों की
दैनिक सुरक्षा
इसे पूर्ण
करती है!
आप के दांत चाहे कितने ही पुष्ट और स्वस्थ हों, मसूड़ों का विकार इन्हें नष्ट कर देगा। ऐसा मत होने दीजिए! गिब्स एस० आर० टुथपेस्ट दिन में दो बार उपयोग कीजिए। यह दांतों को साफ़, सफ़ेद व चमकीले और मसूड़ों को पुष्ट और स्वस्थ रखने के लिए विशेष कर के बनाया गया है। गिब्स एस० आर० में सोडियम रिसिनोलिएट है जिसे दन्त-चिकित्सक रोगी मसूड़ों के उपचार के लिए काम में लाते हैं।
गिब्स
रजिस्टर्ड एस.आर. टुथपेस्ट
दाँतों को सफ़ेद व चमकीले और मसूड़ों को सुस्वस्थ रखने के लिए विशेष कर के बनाया गया
S.R.
TOOTHPASTE
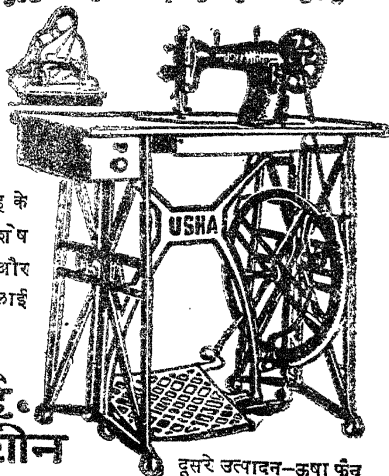
मुकामी बिक्री दफ़्तर :—जय इंजीनियरिङ्ग वर्क्स लि० ३१, हिवेट रोड, इलाहाबाद

कश्मीर ने बचा लिया

मैं एक अच्छे घर और एक अमीर का बेटा हूँ। मैं बचपन की गलतियों के कारण अनेक रोगों में फँस गया। कई डाक्टरों तथा हकीमों के बड़े-बड़े विज्ञापन देख कर के दवाइयाँ मँगवाईं। परन्तु कोई लाभ न हुआ। मैं बिल्कुल निराश हो गया। सौभाग्यवश मुझे अपने धन्धे के सम्बन्ध में काश्मीर जाना पड़ा। घूमते-घूमते एक दिन पहाड़ पर श्रीनगर से ५ मील दूर मेरी एक जटाधारी बूढ़े सन्यासी महात्मा जी से भेंट हुई। मुझे निराश देख कर प्यार से पूछा "बेटा तुझे क्या कष्ट है" मैंने अपनी रामकहानी उन्हें सुना दी। उन्होंने मुझे नुसखा लिखवा दिया। मैंने औषधि बनाई, एक गोलियाँ और दूसरा तैल, केवल चार दिन के सेवन से मेरा सारा रोग दूर हो गया। यहाँ तक कि मुझे अपने आपको रोकना कठिन हो गया। परन्तु महात्मा जी की आज्ञानुसार पूरा कोर्स सात दिन तक सेवन किया जिसके द्वारा मैं हृष्ट-पुष्ट जवान मर्द बन गया। मानसिक बल और अटूट शक्ति के अतिरिक्त बुढ़ापे में जवानी का आनन्द लाती है। इसमें हानिकारक वस्तु नहीं है। हर ऋतु में सेवन की जा सकती है। सात दिन के पूरे कोर्स का मूल्य काश्मीरी गोलियाँ २।।।) और काश्मीरी तैल २।।।) मैं न तो कोई डाक्टर हूँ और न वैद्य अथवा हकीम। इन दवाइयों ने मुझे मौत के मुँह से बचाया है। इस कारण इनकी कमाई खाना मैं पाप समझता हूँ। महात्मा जी को दिए हुए वचनानुसार अपने दुःखी भाइयों को केवल लागत पर भेज कर सेवा कर रहा हूँ।

प्रोफेसर बी० एस० सिंधू, हल्का नं० ६ (M. K, A.) नकोदर (पंजाब)

बिना पटके कपड़े सफ़ेद और उजले धोता है!

S. 148-50 HI

संतान ताबीज

कलकत्ता कालीघाट की दुर्गा जी ने स्वप्न में ताबीज की यह जड़ी बतायी है। इस ताबीज को कमर में बाँध कर सैंकड़ों बन्ध्या स्त्रियों के बच्चा हुआ है। हमारा दावा है कि ताबीज़ बाँधने के नौ मास के भीतर गर्भ होगा, नहीं तो मूल्य वापस देंगे। बीसों में से कुछ प्रशंसा-पत्र ये हैं:—

जी० पी० मिचे, पुलीस चौकी रोड, नगर, झांसी से लिखते हैं:—'सन्तान ताबीज से एक बच्ची-पैदा हुई है।' बी० एल० यादव, धमापुर, जबलपुर से लिखते हैं:—'सन्तान ताबीज बाँध कर एक लड़के का जन्म हुआ।' एस० के० देवी, शहजादी मन्डी, आगरे से लिखती हैं—'सन्तान ताबीज से सफलता मिली।'

एक ताबीज की कीमत ५) डाक खर्च, सात आने। कृपया अँग्रेजी में पत्र लिखिये।

पता—TABIZ ASHRAM, 14/B, Manohar PoKhar Road, P. O. Kalighat Calcutta, 26.

क्रान्तिकारी की आत्म-कथा

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी, भूतपूर्व काकोरी केस के कैदी

मन्मथनाथ गुप्त

और उनके अन्य क्रान्तिकारी साथियों के विद्रोही जीवन की रोमांचकारी घटनाओं से ओत-प्रोत यह ५०० पृष्ठों की पुस्तक भारतीय क्रान्ति-आन्दोलन और पिछले ५० वर्षों की राजनीतिक उथल-पुथल का सम्पूर्ण इतिहास पाठकों के सामने रखने का दावा रखती है। मन्मथनाथ जी गुप्त की क्रान्तिकारी, लौह-लेखनी क्रान्ति की ज्वालाओं में भी किस प्रकार उपन्यास की रोचकता, कहानी की सरसता और कविता की मधुरता की सतत प्रवाहिनी धाराओं का सृजन करती है, देख कर आप मुग्ध हो जायँगे।

बहुत कम प्रतियाँ छपी हैं। मूल्य केवल ४) डाक खर्च ।।) शीघ्र अपनी प्रति मगा लें।

यह पुस्तक ह्वीलर के हर रेलवे स्टेशन के बुक-स्टाल पर भी मिल सकती है।

माया प्रेस, इलाहाबाद

भिन्न-भिन्न उद्योग-धन्धों पर हिन्दी की सर्वोत्तम पुस्तकें

सुगन्धित तेलों का व्यापार १)
हर प्रकार के शरबत बनाना १)
५०० प्रसिद्ध देशी अँग्रेजी पटेन्ट दवाएं बनाने के गुप्त भेद (दोभाग) ४)
मुँह देखने के शीशे बनाना १)
हर वस्तु जोड़ने के सीमेंट ।।।)
सुनार का काम (सोने चाँदी के जेवर बनाना) २)
मीनाकारी का काम २)
हर प्रकार की स्याही बनाना १)
नेल पालिश बनाना ।।)
पामिस्ट्री (हाथ रेखा विद्या) ५)
फाऊंडरी (ढलाई का काम) ६)
फोटोग्राफी
खराद शिक्षा
फिटर ट्रेनिंग
आयल इंजन गाईड ६)
कच्छ आयल इंजन गाईड
लाण्ड्री और कपड़े धोने का काम २)

गृह-उद्योग

इस पुस्तक में लगभग ८० प्रकार के घरेलू धन्धों का पूर्ण विस्तार है, जैसे—प्लास्टिक के ऐनकों के फरेम, साइकिलों के बस्ते, खिलौने, बटन बनाना, कई प्रकार के साबुन, स्याहियाँ, अँग्रेजी मिठाइयाँ, सुगंधित तेल इत्यादि बनाना जिनसे आप २००) मासिक कमा सकते हैं, ३।।।)

प्राकृतिक चिकित्सा

दूध से हर रोग का इलाज २।)
पानी से कठिन रोगों का इलाज १)
मिट्टी से रोगों का इलाज ।।।
कब्ज का बिना दवा इलाज १।
बच्चों का पालन और इलाज ।।।
आँख के रोगों का इलाज ।।=
फलों और व्रत से हर रोग का इलाज
सूरज की किरणों से इलाज
हर रोग का प्राकृतिक इलाज

रेडियो गाईड—नये रेडियो बनाना, फिट करना और मरम्मत करना सिखाने वाली पुस्तक ४।।)
साबुन शिक्षा ३)
दरजी मास्टर—कपड़े सीने की पूर्ण शिक्षा ३) न्यू फैशनबुक २।)
इलक्ट्रो प्लेटिंग ४)
मोटर मेकैनिक टीचर—मोटर के हर प्रकार के इंजन मरम्मत करना तथा मोटर ड्राइवर का काम सिखाने वाली पुस्तक ६)
इलेक्ट्रिसिटी—बिजली का काम सिखाने, परीक्षा पास करने इत्यादि में पूर्ण योग देने वाली पुस्तक ५)
इलेक्ट्रिक वाईरिंग ४)

घरेलू रोजगार, पी० बी० १२०५ (5. M.) क्वीन्स रोड, देहली ६।